हिन्दी काव्य मे कृष्णचरित
का
भावात्मक स्वरूप-विकास

(भागलपुर विश्वविद्यालय मे पी-एच० डी० की उपाधि के निमित्त
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डॉ तपेश्वरनाथ प्रसाद

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
(भागलपुर विश्वविद्यालय)

हिन्दी प्रचारक संस्थान

व्यवस्था कृष्णचन्द्र बेरी एण्ड सन्स
पो० ऑफिस हिन्दी प्रचारक संस्थान
पिशाचमोचन, वाराणसी-१

समर्पण

प्राच्य विद्या के महान् व्याख्याता

एवं

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान्

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी

के

कर-कमलों में

सादर

समर्पित

●

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मेरे प्राय ८ वर्षों के अखण्ड स्वाध्याय का प्रतिफल है। इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा मुझे सर्वप्रथम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के 'सूर-साहित्य' के प्रथम निबन्ध की उन पंक्तियों से मिली जिन्हें इस प्रबन्ध की 'अवतरणिका' में उद्धृत किया गया है। वही मन्त्र बीज मेरे मन में विस्मयजनित जिज्ञासा के अनगिन प्रतानों के साथ संवर्द्धित होकर इस विस्तृत ग्रन्थ में प्रतिफलित हुआ है। इस बीच आचार्य प्रवर के साथ हुई वार्ताओं में जो कई सूक्ष्म संकेत मिले, उनके लिए मैं उनका चिर अनुगृहीत हूँ।

मैं सूर साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, निदेशक, हिन्दी शोध संस्थान, आगरा का भी परम आभारी हूँ जिन्होंने प्रबन्ध की प्रतिज्ञा के स्थिरीकरण और व्यावहारिक संतुलन सम्बन्धी यथेष्ट सहायता प्रदान की। इसी प्रसंग में डॉ० श्रीकृष्ण लाल (अब स्वर्गीय) रीडर हिन्दी विभाग, काशी विश्वविद्यालय, को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक स्मरण करता हूँ जिन्होंने मेरे काशी-वास के दिनों में अपना बहुत समय देकर अनेकानेक शंकाओं का समाधान किया। उनके साथ कई संलापों में लेखक को जो स्नेह-मिश्रित सुझाव मिले, उस अनुग्रह को भुलाया नहीं जा सकता। काशी-वास के पुण्य अवसर पर विद्यावतार पं० गोपीनाथ कविराज जी के दर्शन और विमर्श भी अविस्मरणीय हैं। अपनी रुग्णावस्था में भी उन्होंने जो संकेत दिये, वह उनकी विद्याव्यसनिता ही नहीं, सर्वसुलभता का प्रमाण है।

इसी सिलसिले में मैं मगध विश्वविद्यालय के तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रयाग विश्वविद्यालय के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के तत्कालीन संचालक डॉ० भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' जी का भी समवेत रूप से अनुगृहीत हूँ जिन्होंने समय समय पर अपने अमूल्य समय देकर लेखक को मूल्यवान सुझाव दिये।

अपनी शोध यात्रा के क्रम में अन्त्य पुस्तकालय पटना के श्रीकृष्ण चैतन्य जी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, गीता प्रेस गोरखपुर और राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता के पुस्तकाध्यक्ष का भी मैं आभार मानता हूँ जिन्होंने अपने संग्रहालयों की ज्ञात अज्ञात सामग्रियों की उपलब्धि करा कर मुझे यथेष्ट सहायता दी।

किन्तु मैं सर्वाधिक कृतज्ञ हूँ अपने आचार्य निर्देशक और अध्यक्ष डॉ० श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव जी का, जिन्होंने आदि से अन्त तक इस गहन विषय में तल्लीन होकर अनुसन्धान करने की सतत प्रेरणा दी। उनके पाण्डित्यपूर्ण निर्देशों और परामर्शों के बिना यह कार्य पूरा होना कदाचित् असम्भव था। उन्होंने लेखन से प्रकाशन तक इस कार्य को अपना ही जान कर जो अमूल्य सुझाव व प्राक्कथन में मूल्यवान शब्द मुझे प्रदान किये, इनके लिए मैं उनका आजीवन ऋणी रहूँगा।

लेखक प्रो० श्री विजयेन्द्र स्नातक (दिल्ली विश्वविद्यालय) व प्रो० विनय मोहन शर्मा जी (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय) जैसे यशस्वी विद्वानों का आभारी हूँ जिन्होंने अपनी सम्मति देकर इस प्रबन्ध की संवर्द्धना की है।

अन्त में, अपने अग्रज तुल्य डॉ० श्री त्रिभुवन सिंह (काशी विश्वविद्यालय) तथा श्रीकृष्ण चन्द्र बेरी जी (व्यवस्थापक, हिन्दी प्रचारक संस्थान काशी) के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिनकी प्रेरणा व सहयोग के बिना इस ग्रन्थ का आलोकित होना कठिन था। अस्तु !

भागलपुर
शरत्पूर्णिमा २०२७

तपेश्वरनाथ प्रसाद

प्राक्कथन

[डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव एम० ए० (द्वय), डि० लिट्०]
प्रोफेसर एव अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
भागलपुर विश्वविद्यालय

हिन्दी साहित्य के इतिहास म कृष्णाश्रित काव्यधारा निरन्तर प्रवाहित होती रही है। विद्यापति की पदावली से लेकर धर्मवीर की कनुप्रिया तक वह अविच्छिन्न धारा जनमानस के अनेक धरातलो को आप्लावित करती रही है। कृष्ण के जीवन चरित मे स्वत ही अनेक उपादानो का क्रमिक समावेश होता गया है। वैदिक साहित्य के वासुदेव कृष्ण महाभारत के कर्मयोगी कृष्ण और भागवत के गोपीवल्लभ कृष्ण ने एक अपूर्व व्यक्तित्व का निर्माण किया था। आभीरों के बाल गोपाल ने इस 'गोपवेष विष्णु' के व्यक्तित्व मे अपना भी योगदान दिया। हिन्दी साहित्य के आरम्भ होने से पूर्व ही कृष्ण के व्यक्तित्व का यह मर्मन्वयात्मक रूप सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश भाषाओ के वाङ्मय के माध्यम से पूर्णता को प्राप्त कर चुका था। हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल ने अपने परिवेश के अनुकूल कृष्ण के उस रूप का काव्य मे नियोजन किया। विद्यापति ने सामन्ती दरबार के अनुरूप कृष्ण को शृङ्गारदेव बनाकर चित्रित किया। उन्होंने कीर्त्तिपताका मे अर्जुन राय की शृङ्गारकेलि को 'हरिकेलि' बताया। वे लिखते हैं—

> ससाररत्न मृगशावकाक्षी, रत्न च शृगाररसो रसानाम्।
> तच्चानुभूयाच्चिरमर्जुनेन्द्र, पुरानुभूत मधुसूदनेन॥

उनकी दृष्टि मे राम ने कृष्ण का अवतार ही इसलिए लिया था कि वे सीता के वियोगदुख की क्षतिपूर्ति कर सकें। उन्होने कीर्त्तिपताका मे विविध रमणियों (नायिकाओं) के समागम के आमोद प्रमोद पूर्ण प्रसग का हृदयग्राही अकन किया है। पदावली मे वही शृङ्गारभूमि कृष्ण के चरित्र का आधार है। कालान्तर मे विद्यापति के इस शृङ्गारदेव का पूरा पल्लवन रीतिकाल में हुआ। सूर, तुलसी, मीराबाई, रसखान इत्यादि कवियो ने विभिन्न आचार्यों की छत्रछाया मे कृष्ण को भक्तिदेव बनाकर अपने रसस्निग्ध पदों की रचना की। कृष्ण वात्सल्य, सख्य, दास्य, माधुर्य और शान्त भक्ति के आलम्बन बने। रीतिकाल म पूर्वनिर्देशानुसार कृष्ण शृङ्गारदेव ही रहे। आधुनिक काल मे समाज की परिवर्तित विचारसरणि से प्रभावित होकर कृष्ण ने कुछ बौद्धिकता का आश्रय अवश्य लिया जसा कि हरिऔध

के प्रियप्रवास मे है परन्तु प्रधानत वे भावदेव ही बने रहे और कनुप्रिया उसकी चरम परिणति है। इस प्रकार लीलापुरुषोत्तम कृष्ण रति के–प्रेम के–सभी रूपो के उन्मुक्त आलम्बन हिन्दी साहित्य म बनते रहे हैं।

हिन्दी काव्य म कृष्णचरित के इस सम्पूर्ण विकास के गम्भीर विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता थी। डॉ० तपश्वरनाथ प्रसाद ने उस आवश्यकता की पूर्ति 'हिन्दी काव्य म कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप शीर्षक अपने शोधप्रबन्ध मे की है। इसमें उनकी भावयित्री प्रतिभा का अच्छा निदर्शन है। उन्होने कृष्ण सम्बन्धी उपलब्ध सम्पूर्ण सामग्री का अच्छी तरह समाकलन किया है और ऐतिहासिक विवेचन के साथ तकसगत पद्धति मे अपने विषय का प्रतिपादन किया है। हिन्दी काव्य म अकित कृष्ण के स्वरूप को समग्रता से आत्मसात् करने के लिए यह प्रबन्ध अभी तक सर्वोत्कृष्ट साधन है यह निर्विवाद कहा जा सकता है। आशा है हिन्दी के पाठक इस प्रबन्ध का खुले दिल से स्वागत करेंगे।

—•—

अवतरणिका

भारतीय सस्कृति के उन्नायको मे राम और कृष्ण के नाम सर्वाधिक प्राज्ज्वल हैं। इन्होंने अपने गरिमामय एव उदात्त चरित्र द्वारा भारतीय जन गण के भावो और विचारों को हिलकोर कर उसे एक नयी दिशा, नयी आस्था प्रदान की। परम्परा से विश्वासशील जनता ने हजारो वर्षों से इन महिमाशाली पूर्वपुरुषो का मुक्त कठ से यशोगान किया है। अपने प्रतापी पूर्वजो के आदर्श कृत्यों का कीर्तन ही इस आस्थाशील परम्परा की नैसर्गिक शृङ्खला ही रही, जिसने उत्तरोत्तर लौकिक वृत्त के स्थान पर अलौकिक चरित को आस्फूर्त किया। फलत मानवत्व म देवत्व की उद्‍बुद्धि हुई। और, लोकचित्त ने अपनी कल्पना और पूज्यबुद्धि के अतिरेक से राम-कृष्ण के नाम रूपात्मक अस्तित्व का ईश्वरीय ऐश्वर्य और आनन्द म रूपान्तरित कर लिया। क्षीरसिन्धु मे निवास करने वाले देवाधिदेव विष्णु भारतीय मनीषा की वैभवशालिनी चरित-कल्पना के ही पुञ्जीभूत प्रतीक हैं। हमारी श्रद्धा और कल्पना की इसी पीठिका पर राम-कृष्ण के अवतरण की सार्थकता को समझा जा सकता है।

इसके अनुसार, राम त्रेतायुग की धर्म-वेदना की उत्पत्ति हैं। जिन्होंने भक्तिस्वरूपा कौशल्या की वन्दना से अपने चतुर्भुज स्वरूप को तज कर मानवीय लीलाओ में अपना स्वरूप प्रावस्थ किया। उसी प्रकार कृष्ण भी द्वापर युग के भक्तों की प्रेम-वेदना से वशीभूत हो कमलागृह तज कर मथुरा के कारागृह मे प्रकट हुए और अपनी लीला का व्यापक प्रसार कर ब्रजमण्डल, मथुरा, द्वारका सभी को एक अद्भुत आनन्द लोक मे परिणत कर दिया। वैष्णवो का गोलोक इसी कल्पना का सुमधुर रूप है।

सामासिक सस्कृति के इस देश म, जहाँ की जनता करोड़ों देवी देवताओ को जानती और मानती थी, उन समस्त प्राचीन देवताओ के स्थान पर विष्णु के उक्त दो अवतार—राम और कृष्ण लोक मे प्रतिष्ठित और आराध्य बन गये। राम यदि मर्यादापुरुषोत्तम हैं तो कृष्ण लीलापुरुषोत्तम। अपनी लीला रजनकारिणी वृत्ति के ही कारण श्रीकृष्ण सर्वाधिक जनप्रिय और लोक भावना के सन्निकट हैं।

श्रीकृष्णचन्द्र को पूर्णावतार कहा गया है। उनमे समस्त कलाओ का पूर्णरूपेण विकास हुआ है। उनका बचपन गोप-जीवन म असाधारण प्रेम, उमग और उल्लास का स्मारक है तो उनका यौवन गोपी-कृष्ण शृङ्गार लीलाओ का चरम सन्निधान। उसी प्रकार उनकी प्रौढावस्था यादव कुल मे अलौकिक शक्ति, कुशाग्र बुद्धि और नेतृत्व-क्षमता का दृष्टान्त है। यदि लोक चातुर्य से इन्होंने सकटापन्न पाण्डवो का मार्ग निर्देश किया तो अलौकिक प्रतिभा से अर्जुन को रण-स्थल म ही गीता का तेजस्वी मन्त्र दिया। यदि वह द्वारकाधीश-रूप म अनन्त ऐश्वर्यों के भोक्ता और असख्य रानियो के पतिदेव रहे तो साथ ही स्थितप्रज्ञ योगी भी। इस प्रकार, कृष्ण प्रेमी और वीर नायक हैं, कला-कोविद और

शस्त्रास्त्रविद् युवक हैं, योद्धा और नेता सामन्त हैं, राजनीतिज्ञ और दार्शनिक योगी हैं— सब एक साथ हैं और सब म महान् हैं।

यही कारण है कि उनके सम्बन्ध म सर्वाधिक विवाद भी उठ खड़े हुए हैं। अधिकाश हिन्दुओं की आस्था के अनुसार कृष्ण भगवान् विष्णु के आठवें-और पूर्ण अवतार हैं। किन्तु, विद्वान् इस तथ्य को कृष्णविषयक तत्त्व ज्ञान की इयत्ता नहीं मानते। इस सम्बन्ध मे अनेक पण्डित (जिनम प्रो० विन्टरनित्स, भण्डारकर आदि प्रमुख हैं) तर्क-माध्यम से ऐतिहासिक कृष्ण के सम्बन्ध म विचिकित्सा करते हुए इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि वस्तुत कृष्ण नाम के तीन विभिन्न महापुरुष हुए —

(१) वैदिक ऋषि कृष्ण
(२) गीतागायक कृष्ण
और, (३) गोपीजनवल्लभ कृष्ण

कुछ बुद्धिवादी (श्री टी० पी० सिंह—'हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ' के लेखक) कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर सन्देह किन्तु 'कृष्ण लीला के भौतिक अर्थापत्ति' का आग्रह रखते हैं। और कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जिन्होंने कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व और पौराणिक चरित्र की श्रृङ्खलाबद्ध गवेषणा म अपनी प्रतिभा और श्रम का अधिकांश समर्पित किया है। श्री एस० एन० ताडपत्रीकर की गवेषणात्मक पुस्तक 'द कृष्ण प्रोब्लेम' इस दिशा म एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। कुछ विद्वान् कृष्ण को देव पुरुष कुछ ईश्वर और मनुष्य के बीच की कोई शक्ति और कुछ इन्हें अर्द्धऐतिहासिक अर्द्धपौराणिक रहस्यमय पात्र मानते हैं जो अब तक पूर्णत बोधगम्य नहीं हो सके। इस मत के समर्थकों में 'हू इज कृष्ण' के लेखक प्रो० श्री क्षेत्रलाल साहा आते हैं। और अधिकांश व्यक्ति उन्हें एक ऐसे मनमौजी निष्काम पुरुष के रूप में देखते हैं जिसका जीवनोद्देश्य इस जगत को एक विशाल क्रीडा भूमि के रूप मे अंगीकार करता है।

ऐतिहासिक व्यक्तित्व के अतिरिक्त बाल और किशोर कृष्ण का एक पौराणिक स्वरूप भी है जो अपने कल्पनाप्रवण रूप मे काव्यत्व के सन्निकट है। इस पौराणिक स्वरूप के एक पक्ष बाल कृष्ण के सम्बन्ध मे वेबर ग्रियर्सन केनेडी, भण्डारकर आदि विद्वानो की यह मान्यता रही कि यह ईसामसीह की कथा का भारतीय रूपान्तरण है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने इस धारणा का उचित निरास अपने 'सूर साहित्य' के अति गवेषणात्मक प्रथम निबन्ध में बहुत पहले कर दिया था।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध है कि इतिहास पुराण आदि के विभिन्न स्रोतो मे विकीर्ण कृष्ण-चरित से सम्बद्ध आख्यान इतने बहुवर्णी हैं कि इस विषय के नवीन अनुस धाताओं को एक बार पुन गम्भीरतापूर्वक सोच विचार करने को प्रेरित कर देते।

वस्तुत भारतीय वाङ्मय के प्राचीन और अतिविस्तृत पट पर चाहे वह वैदिक हो या औपनिषदिक, पौराणिक हो या लौकिक—कृष्ण की तरह गतिशील, बहुवर्णी, रंगीन और आध्यात्मिकता सम्पन्न चरित्र कोई दूसरा नहीं दिखाई देता। कृष्ण के व्यक्तित्व मे अखिल ब्रह्माण्ड की सचालिका शक्ति है तो पूर्ण निस्सगता भी। क्रियाशीलता है तो शान्त निवि

कारिता भी। वह एक साथ ही सासारिक जीवन के सर्वांगीण भोक्ता और आध्यात्मिक मूल्यो के स्रष्टा भी हैं। अपनी इन उपलब्धियो मे कृष्ण जहाँ ऐतिहासिक व्यक्तित्व मे अद्वितीय हैं, पौराणिक चरित्रो म अप्रतिम हैं, वही रूपकात्मक एव रहस्यात्मक साहित्य में वर्णित नायको मे अतुलनीय हैं। उक्त चारित्रिक वैचित्र्य भी काव्य मे उनकी व्यापकता का एक कारण है, जिसकी विद्वानो के एक वग ने सस्तुति की है। कि तु उसमे भी अधिक महत्वपूण एक और तथ्य है। और, वह है कृष्णावतार का प्रयोजन।

पौराणिक ग्र थो के अनुशीलन से कृष्णावतार के दो रूप दृष्टिगत होते हैं। इनमे पहला बौद्धिक और दूसरा भावात्मक है। कृष्ण का धम सस्थापक रूप बौद्धिक प्रयोजन की सिद्धि है कि तु उनका लोकरजनकारी आनन्दवादी रूप भावात्मक प्रयोजन की परिणति है। उत्तरवर्ती युगो मे यही भावात्मक प्रयोजम साधना और साहित्य मे प्रतिफलित हुआ है।

हि दी का य की सुदीघ परम्परा मे कृष्णावतार के इसी आन दवादी पक्ष का सर्वाधिक विनियोग हुआ है। आदि काल से लेकर अत्याधुनिक काल तक के भावसाधक कवियो ने कृष्ण के उत्तरवर्त्ती पौराणिक स्वरूप के आश्रय से—जिसमे कवियों की कल्पना और भावुकता को छेड़ने की नैसर्गिक स्फूर्ति है—जनवाणी का शृङ्गार किया। कृष्ण का यही आन दवादी अवतार-स्वरूप सगुण भक्ति साधना का मूल उपजीव्य है। इसी कारण लेखक ने निर्गुण, सम्प्रदायो (हरिदासी, निरजनी, सिक्ख अथवा राधा स्वामी सम्प्रदाय) मे वर्णित निर जन और निराकार कृष्ण का उल्लेख नहीं किया है। उनका यह निर्गुण और अव्यक्त रूप पौराणिक कृष्ण के भावात्मक स्वरूप के कथमपि अनुरूप नहीं।

कृष्ण काव्य परम्परा के समानान्तर राम काव्य परम्परा के प्राणाधार राम कृष्ण के प्रतिस्पर्द्धी चरित्र है। किन्तु, इनके स्वरूप और प्रयोजन मे मौलिक अ तर है।

वैष्णवभक्ति भाव प्रवण, प्रवृत्तिमूलक और आन दविधायक है। अत इसके आश्रय म पल्लवित होने वाले भक्तिकाव्य मे भी भावों की विशद व्यजना का व्यापक क्षेत्र है। इन भावो के अधिष्ठानभूत राम मे शक्ति और शील का तथा कृष्ण म सौ दय का चरम विकास हुआ है। राम मूलत दास्य भाव के और कृष्ण सख्य, वात्सल्य तथा मधुर भाव के प्रेरक हैं। भक्तिका य के भीतर रतिभाव का सर्वांगीण परिपाक तो कृष्णचरित मे ही सघटित हुआ। यही कारण है कि हि दी में जहा राम और कृष्ण भावना को लेकर काव्य प्रणयन हुआ एक ओर 'राम चरित मानस' का शा त सरोवर लहराया तो दूसरी ओर कृष्णचरित का 'सागर' ही उमड पडा। 'मानस' म रामचरित सयम के तटों मे सयत रहा कि तु इसके प्रतिकूल कृष्णचरित ने अपनी निब ध भावाकुलता से काव्यत्व के कगारो को तोडकर उसे लीलाचचल सागर की महिमा प्रदान की।

इसके अतिरिक्त, रामभक्ति के उद्घोषक आचाय मुख्यत रामानुज और रामान द ही हुए। कि तु कृष्णभक्ति धारा मे निम्बार्क, विष्णुस्वामी, मध्व, वल्लभ, चैत य आदि कई भाव साधक भक्त हुए। इसीलिये, रामचरित की पुनीत गाथा के एक दो पुजीभूत प्रबन्धो के अतिरिक्त कृष्णचरित की जो सगीत धारा हि दी म फूटी उसमें विद्यापति और मीरा,

सूर और रसखान, घनानन्द और भारतेन्दु आदि ब्रज के रससिद्ध कवियों और आधुनिक युग में गुप्त और भारती की भावुकतापूर्ण कृतियों की लहरियाँ उठती रही हैं।

इन कवियों के आराध्य देव कृष्ण ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रतिपाद्य हैं।

हिन्दी के मूर्द्धन्य आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कृष्णचरित का–महाभारत की अपेक्षा श्रीमद्भागवत के आश्रय में पनपने के कारण स्वभावत रञ्जक, और पालक न होकर मात्र 'रञ्जक' होने के उपलक्ष्य में–संकीर्ण ऐकान्तिक और लोकबाह्य माना है। यद्यपि उन्होंने कृष्ण के लोक रञ्जक स्वरूप पर मुग्ध होकर लिखा है–"कृष्ण के जिस मधुर रूप को लेकर ये भक्त कवि चले हैं वह हास विलास की तरंगों से परिपूर्ण अनन्त सौन्दर्य का समुद्र है। उस सार्वभौम प्रेमालम्बन के सम्मुख मनुष्य का हृदय निराले प्रेमलोक में फूला फूला फिरता है।–(हि० सा० इ० पृ० १६४) परन्तु उन्होंने अपने 'महाकवि सूरदास' शीर्षक प्रबन्ध के अन्त में सूर की 'अन्त प्रवृत्ति की छानबीन' करते हुए जो व्यंग्य किया है उसके छींटे सूर के भाव देव कृष्ण पर पड़े बिना कैसे रह सकते थे। उनके अनुसार–'सूर की प्रवृत्ति कुछ क्रीडाशील थी। उन्हें कुछ खेल तमाशे का भी शौक था। लीला पुरुषोत्तम के उपासक कवि में यह विशेषता होनी ही चाहिए।" यह लोकरञ्जक कृष्णचरित पर लोक-संग्रह-वृत्ति के आलोचक का अभिमत है। किन्तु यहाँ यह ध्यातव्य है कि सौन्दर्य के अतिरिक्त उपास्य के अन्यान्य गुण उपासक के लिये अनुकरणीय भले ही बन जाँय, रमणीय नहीं बन सकते। रमणीयता तो केवल अनवद्य सौन्दर्य में ही होती है। अत भगवद्दस्व मे परम सौन्दर्य ही सर्वोपरि मान्य है। इस सौन्दर्य की रमणीयता और भावप्रवणता के कारण कृष्णचरित प्रारंभ से ही हिन्दी कवियों का आग्रह करता रहा है। कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं ने कवियों में मानवीय कोमल वृत्तियों और रञ्जनकारिणी रागात्मक अनुभूतियों को उद्वेलित किया। परिणामत कृष्ण काव्य इतिवृत्तात्मक न बनकर शत शत भावधाराओं में प्रवाहित हो उठा। अत शुक्ल जी की उक्त मान्यताएँ अपने ही संस्कारों से आवृत हैं। शुक्ल जी के पूर्ववर्ती इतिहासकारों में डॉ० ग्रियर्सन पाश्चात्य प्रभाव से ग्रस्त हैं। हाँ, मिश्रबन्धुओं ने अवश्य ही कृष्णचरित की परम्परा पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया। शुक्ल जी की गुरु गंभीर दृष्टि कृष्णचरित के सरस पहलुओं में विशेष नहीं रमी। इनके उपरान्त डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में अत्यन्त सहृदयतापूर्वक कृष्ण के इस भावात्मक स्वरूप का क्रमबद्ध अनुशीलन प्रस्तुत किया। आभीरों के आराध्य 'बलदेव' की आदिम कल्पना पर घनश्याम कृष्ण का विकास उनके इसी अध्ययन का परिणाम है।

हिन्दी आलोचना में सर्वप्रथम आचार्य हजारी प्र० द्विवेदी ने अपने 'सूरसाहित्य' के प्रारंभिक और अंतिम निबन्धों में अत्यन्त विदग्धतापूर्वक कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप पर प्रकाश निक्षेप किया। यह पुस्तक कृष्ण विषयक प्राय समस्त प्राप्त सामग्रियों के गंभीर मन्थन का परिणाम है। निस्सन्देह, उनके ये सुचिन्तित निष्कर्ष-वाक्य ही प्रस्तुत प्रबन्ध के आधार-स्तम्भ हैं–कृष्ण का वर्तमान रूप नाना वैदिक अवैदिक, आर्य अनार्य धाराओं के मिश्रण से बना है। शताब्दियों की उलट फेर के बाद प्रेम, मान, वात्सल्य, दास्य आदि

विविध भावों के मधुर आलम्बन पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण रचित हुए। व्रजभाषा काव्य के प्रारम्भ काल मे राधा और कृष्ण इतिहास या तत्ववाद की चीज नही रह गये थे। वे सम्पूर्णत भावजगत् की चीज हो गये थे। भक्ति, प्रेम और माधुर्य की नाना सम्प्रदायों से विचित्र यह युगलमूर्ति ईश्वर का रूप तो थी पर उस ईश्वर मे वैदिक देवताओं का सम्भ्रम नही था, ग्रीक अपोलो की भाँति नही थी, इस्लामी खुदा की तटस्थता नही थी, दार्शनिक ईश्वर की अद्भुतता तो एकदम नही थी, था एक सहज, सरल, घरेलू सम्बन्ध। भागवत सम्प्रदाय के देवदेव देवकी-पुत्र वासुदेव कृष्ण इसके उपास्य अंश थे और आभीरो के बालक देवता इसके प्रेय रूप थे। इन दोनो रूपो मे आरोपित सहजवाद, तन्त्रवाद और बौद्ध विनय (डिसीप्लीन) ने एक इत पूर्व अननुभूत, अज्ञात भाव देव की सृष्टि की जो व्रजभाषा काव्य का उपास्य हुआ –(सू० सा०, पृ० २१)

उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 'मध्यकालीन धर्म-साधना' के अन्तिम कुछ निबन्ध इस भाव धारा के सम्पूरक हैं।

तदन्तर, विन पण्डितो के सूर सम्बन्धी अन्य शोधात्मक ग्रन्थो मे छिटफुट रूप से कृष्ण भावना का विकास देखा जा सकता है। इस दिशा मे डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा के 'सूरदास', डॉ० मुन्शीराम शर्मा के 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के 'महाकवि सूरदास', डॉ० हरवंश लाल शर्मा के 'सूर और उनका साहित्य' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। इन कृतियो मे जहाँ भावात्मक कृष्ण का सूर तक प्रासंगिक निदर्शन हुआ है वही एक ऐसा भी अप्रकाशित शोध प्रबन्ध है ('सूर का श्रृङ्गार वर्णन–डॉ० रमाशंकर तिवारी) जिसमे कृष्ण के भावात्मक स्वरूप विकास सम्बन्धी धाराओं का खण्डन तथा सूरदास के कृष्ण में 'सहृदयता का अभाव' प्रदर्शित किया गया है। अत मात्र लौकिक श्रृङ्गार की भावना से प्रवृत्त सूर-काव्य के इस अध्ययन मे प्रस्तुत विषय की विशेष सामग्री ढूढ़ना व्यर्थ है।

अन्य भक्तिसम्प्रदायगत शोधों मे डॉ० दीनदयालु गुप्त के 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के 'राधावल्लभ-सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' तथा सामान्यत अवतारवाद पर डॉ० कपिलदेव पाण्डेय के 'मध्यकालीन साहित्य मे अवतार-वाद' आदि ग्रन्थो में प्रसंगवश एतद्विषयक महत्वपूर्ण उल्लेख हुए मिलते हैं। इन समस्त सामग्रियो का यथाप्रसंग उपयोग किया गया है।

तुलनात्मक शोध ग्रन्थो में डॉ० जगदीश गुप्त के 'गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य' तथा डा० मलिक मुहम्मद के 'तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण-काव्य' मे भी कृष्ण के भावात्मक स्वरूप से सम्बद्ध सामग्री इतस्तत विकीर्ण मिलती है। इसमे डा० गुप्त का अनु-शीलन कृष्णलीला के क्रमबद्ध अध्ययन पर आधारित होने के कारण भाव-समृद्ध और मननीय है। किन्तु, प्रासंगिक होने के कारण इन समस्त गवेषणाओं मे भावात्मक कृष्ण की सुनिश्चित रूपरेखा सम्पूर्ण काव्य परिवेश मे नही उभर सकी है। विकीर्ण सामग्रियो की दृष्टि से 'कल्याण' का 'श्रीकृष्णांक' तथा 'पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ' के एतद्विषयक निबन्ध द्रष्टव्य हैं।

निराशा तो तब होती है जब कृष्ण की लीला सहचरी राधा की भाव धारा के क्रमविकास मे दत्तचित्त विद्वान् भी (डॉ० शशिभूषण दास गुप्ता—'श्रीराधा का क्रम विकास') प्रणयदेवता कृष्ण की उपेक्षा कर जाते। अथवा कुछ विद्वान् (प० बलदेव उपाध्याय—'भारतीय वाङ्मय म श्रीराधा) उनका सतही सकेत कर राधा भाव की मजुलता के प्रदशन म तल्लीन हो जाते हैं। कृष्ण के बिना राधा की कल्पना ही कैसे हो सकती ? कृष्ण तो उनके अतर में सूत्र की भाँति रमे हुए हैं। अत राधा भाव के अनुसन्धान म प्रवृत्त इन पारगत विद्वानो द्वारा जहाँ कृष्ण भावना के उन्मीलन की अपार सभावनाए थी, वही यह काय अछूत रह गया।

एक भावात्मक कृष्ण ही वह चिरन्तन प्रेरणा-स्रोत हैं जिनसे आधुनिक भारतीय भाषा और साहित्य ही नही, वरन् समस्त ललित कलाएँ मुकुलित और प्राणवन्त हुई हैं। विशुद्ध काव्य और कला दृष्टि से प्रणीत एक अग्रेज विद्वान्—डब्लू० जो० आचर की अविज्ञापित पुस्तक—'द ल व ऑफ कृष्ण' इस विषय की स्वतन्त्र और सुन्दर अभिव्यक्ति है। कितना अच्छा होता कि लेखक कृष्ण भावना के प्रतिफलन को चित्रफलक तक ही सीमित न करके अन्य ललित कलाओ म भी प्रदर्शित करता।

अत आवश्यकता थी सम्पूर्ण हिन्दी कृष्ण काव्य के अनुशीलन द्वारा कृष्ण के पूर्ण भावात्मक स्वरूप के अनुसन्धान और विवेचन की। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध— हिन्दी काव्य मे कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप विकास हिन्दी मे इसी अभाव की पूर्ति का प्रयास है।

प्रस्तुत प्रबन्ध का मूल प्रतिपाद्य 'कृष्णचरित', तत्रापि उसका भावात्मक स्वरूप' तथा अध्ययन क्षेत्र सम्पूर्ण 'हिन्दी काव्य' है। यहाँ काव्य की निरन्तर प्रवहमान अन्त प्रवृत्ति के रूप मे कृष्ण भावना का निदशन हुआ है। अत प्रतिना का अन्तिम पद 'विकास कृष्ण विषयक काव्य बोध के इसी नरन्तय का द्योतक है।

प्रारभ से ही कृष्ण चरित के अन्तगत २ स्पष्ट स्वरूप परिलक्षित होते हैं—(१) बौद्धिक और (२) भावात्मक। यहाँ भावात्मक स्वरूप का निदशन ही अभीष्ट है।

प्रथम अध्याय म 'कृष्ण तत्व का विकास' प्रदर्शित किया गया है। इसके अन्तगत कृष्ण के आविर्भाव के सम्बन्ध में वैदिक ग्रन्थो का अनुशीलन कर उनके प्राचीन अस्तित्व की गवेषणा की गयी है। वैदिक मन्त्रो तथा छान्दोग्यादि उपनिषदों मे कृष्ण मूलत दो रूपों में मिलते हैं—(१) ऋषि कृष्ण और (२) साम त कृष्ण।

इसी अध्याय मे यशस्वी कृष्ण के स्वरूप म अन्य देवताओ का स्वरूप-सक्रमण प्रदर्शित किया गया है। इन्द्र, विष्णु, नारायण, वासुदेव और गोपाल कृष्ण आदि ऐसे ही देवता हैं जिनका काल क्रम से कृष्ण स्वरूप म माहात्म्य प्रक्षेप होता गया। इन्होने अपने आत्मदान से कृष्णचरित को महिमाशाली बनाया। 'वासुदेव कृष्ण'—पद इसी सम्मिश्रण का द्योतक है।

महाभारत-काल म इस सघ भावना का पूर्ण परिपाक हो गया है। द्वितीय अध्याय में महाभारत, गीतादि की सामग्रियो का पुनपरीक्षण किया गया है। और इनसे कुछ ऐसे विकीर्ण प्रमाण भी सकलित किय गये हैं जिनकी पीठिका पर पौराणिक युग में कमनीय

कृष्ण की भावात्मक स्वरूप-कल्पना सम्भव हो सकी है। उनका भी एक मनोवैज्ञानिक लक्ष्य है। अतः उन सामग्रियों को मात्र प्रक्षेप कह कर ठुकराया नहीं जा सकता।

तृतीय अध्याय में पुरुषोत्तम कृष्ण के चरित्र में प्रकृति-तत्त्व के योगदान पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत वेदान्त की ब्रह्म माया, सांख्य की पुरुष प्रकृति और तन्त्र की शिव शक्ति से लेकर वैष्णवागमों की विष्णु लक्ष्मी आदि युगलमूर्तियों तक पर विचार किया गया है। सांख्य और तन्त्र के युग्मवाद का वैष्णवागमों पर जो प्रभाव पड़ा उसके परिणाम-स्वरूप युगलवाद की धारणा विष्णु-लक्ष्मी से होती हुई सीता राम और राधा कृष्ण तक में प्रसारित हो उठी है। इन प्रभावों के साथ ही लोक भावना के समीपस्थ होने के कारण रुक्मिणी-कृष्ण पर लोक जीवन के नर-नारी दाम्पत्य भाव ने भी अपना नैसर्गिक योगदान किया है। उत्तरवर्ती युगों में कवि-कल्पना के आश्रय में जब रमणीमोहन कृष्ण का शृङ्गारिक स्वरूप पल्लवित हुआ तो उसकी प्रगल्भता प्रदर्शित करने के लिए रुक्मिणी के स्थान पर एक लीला सहचरी की कल्पना हुई। बाद में यही लीला-सहचरी राधा नाम से रुक्मिणी की स्थानापन्न बन कर धर्म-दर्शन के साथ-साथ उत्तरवर्ती पुराण और काव्यों में भी प्रतिष्ठित हो चली।

चतुर्थ अध्याय में पौराणिक कृष्ण के चरित्र पर विचार किया गया है। हिन्दी काव्य में कृष्ण लीला का जो विस्तृत प्रतिफलन हुआ है उसके मूल में हरिवंश, विष्णु, भागवतादि पुराणों का अत्यन्त शक्तिशाली योग-दान रहा है। इनमें श्रीमद्भागवत का प्रभाव सर्वाधिक मान्य है। सूर आदि कृष्ण काव्य के मूर्द्धन्य कवियों ने श्रीमद्भागवत को आधार-ग्रन्थ बनाकर ही अपने सूरसागर के तथाकथित सवा लाख लीला संगीत माधुर्यव्यञ्जक पद गाये थे। इनमें गोपी-कृष्ण का रूप सर्वाधिक भास्वर है। किन्तु राधाभाव को लेकर ये कवि भागवतेतर स्रोतों के भी अनुगृहीत हैं। इनमें उत्तरवर्ती पुराण पद्म और ब्रह्मवैवर्त का नामोल्लेख किया जा सकता है। इनमें गोपी भाव धीरे धीरे राधा भाव में केन्द्रित होता गया है। यहाँ कृष्ण राधा-कृष्ण हैं। मोटे तौर पर इन पुराणों के प्रभाव क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं। श्रीमद्भागवत मध्यदेशीय कृष्ण भक्ति-धारा का केन्द्रीय शक्ति स्रोत है, किन्तु, पद्म, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों का रचना केन्द्र और प्रभाव क्षेत्र मुख्यतः भारत का पूर्वी अंचल है। पूर्वी प्रदेश में हुए जयदेव, विद्यापति आदि रससिद्ध कवियों के राधा कृष्ण सम्बन्धी शृङ्गारिक दृष्टिकोण को इससे भलीभाँति परखा जा सकता है। पुराणों के कृष्ण चरित में दर्शन की दीप्ति, भक्ति की महिमा और भावना की मधुरिमा है। उत्तरोत्तर उत्तरपक्ष और भी सबलित हो गया है। कृष्ण की अवतार लीला पौराणिक युग की ही उपलब्धि है। इसी प्रसंग में दक्षिण देशीय तमिल प्रबन्धम् की कृष्ण लीला और श्रीमद्भागवत की कृष्ण लीला की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है जो अपने निष्कर्षों की दृष्टि से एक नवीन और मौलिक अध्ययन है।

पंचम अध्याय में इसी 'अवतारवाद' की पृष्ठभूमि पर कृष्ण के विभिन्न अवतार स्वरूपों का दिग्दर्शन कराया गया है। भागवत में अवतारवाद के ३ वर्ग हैं।

(१) पुरुषावतार (२) गुणावतार और, (३) लीलावतार।

अन्तिम लीलावतार के दो भेद हैं–(क) स्वरूपावतार और (ख) आवेशावतार। इनमे प्रथम स्वरूपावतार के २ अग हैं —

(अ) अशावतार

और (आ) पूर्णावतार

इस स्वरूपावतार के अन्तर्गत ही परब्रह्म कृष्ण पूर्णावतार माने गये हैं। उत्तर युग मे गौडीय वैष्णवो ने भी कृष्णावतार के सम्बन्ध मे पृथक स्वरूप-कल्पना की है। आचार्य रूपगोस्वामी के अनुसार (उज्ज्वल नीलमणि) कृष्ण के ३ रूप हैं।

(१) स्वय रूप

(२) तदेकात्म रूप

और, (३) आवेश रूप

प्रथम 'स्वय रूप' के अन्तर्गत ही 'प्रकाश रूप' की कल्पना की गयी है जिसके–'मुख्य प्रकाश' और 'गौण प्रकाश' इन दो वर्गों मे 'मुख्य प्रकाश' के अन्तर्गत कृष्ण की रासादि लीलाओ का सविधान हुआ है।

यहाँ कृष्ण मथुरा में पूर्ण, द्वारका म पूर्णतर और ब्रजमण्डल मे पूर्णतम माने गये हैं। इस वैशिष्ट्यमूलक विभाजन के पीछे ध्यान देने पर यह स्पष्ट हुए बिना नही रहता कि भावात्मक कृष्ण की गोपीलीला या रमणीरमण कृष्ण की शृङ्गार लीला ही इस वर्गीकरण का आधार है। अवतारवाद का पर्यवसान कृष्ण के रसात्मक स्वरूप म हो गया है।

हिन्दी के कवियो ने इनके दार्शनिक पदो के स्थान पर अधिकाश में राधा कृष्ण लीला, राधा कृष्णयुगलभाव या राधा-कृष्ण के रसेश्वर रूप का सविशेष चित्रण किया है। षष्ठ अध्याय मे शृङ्गारी मुक्तक गीतो के प्राणाधार कृष्ण का विवेचन है। यह विशुद्ध जन गीतो के आश्रय में पनपने वाली काव्य धारा है जिसम भक्ति की आमुखिमता के स्थान पर शृङ्गार की ऐहिक परम्परा का कान्य विकास प्रतिष्ठित हुआ है। कृष्ण यहाँ अपने विशुद्ध भावात्मक स्वरूप में विराजमान हैं। देश्यभाषा काव्य के आश्रय म पनपनेवाला यह रूप अपने आद्यस्वरूप म हाल की गाथासप्तसई म उपस्थित है। यही परम्परा सस्कृत के मुक्तको और अपभ्रश के दोहों स होती हुई पूर्वी प्रदेश के जयदेव, विद्यापति आदि पीयूष वर्षी कवियों की रचनाओं म विकसित हुई है। यह रासान्वयी न होकर रमान्वयी है। शरद्रास के स्थान पर वसन्त रास, स्वकीया के स्थान पर परकीया प्रेम कृष्णचरित के बाल, किशोर यौवनादि विविध पक्षों के स्थान पर यौवन-लीला भक्ति के स्थान पर शृङ्गार भाव आदि इस परम्परा की विशेषतायें हैं। इसके साथ ही लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के स्थान पर यहाँ शृङ्गारेश प्रतिष्ठित हैं। इस शृङ्गार भावना का उत्तरवर्ती रीतियुग के कृष्ण पर भी दूरवर्ती प्रभाव पड़ा।

सप्तम अध्याय म दक्षिण देशीय वैष्णव भक्तिवाद का विवेचन किया गया है। इसके पहले दक्षिण देश में प्राचीन काल से ही पायी जाने वाली नप्पिन्नई-कण्णन की प्रेम कथा का अनुसन्धान कर राधा-कृष्ण भावना के विकास म इनके योगदान का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर आधुनिक कृष्ण के मधुर स्वरूप के निर्माण म दक्षिणी कृष्ण अर्थात्

'कन्नन' का प्रतिनिधि योग रहा है। चाहे राधा-भाव में नप्पिन्नई के योगदान पर पूर्ववर्ती विद्वान् सदिग्ध रहे हों किन्तु कृष्ण के सम्बन्ध में यह द्विविधा नहीं है। अत राधा कृष्ण के स्वरूप विकास मे तमिल सस्कृति का अनुपम योग है।

इसी प्रसङ्ग में आल्वार भक्तों की वात्सल्य और माधुर्य भक्ति का हिन्दी काव्य पर भागवत के माध्यम से—जो सभावित प्रभाव पड सकता है, उसका सकेत भी यथास्थान किया गया है। इस दृष्टि से आण्डाल और मीरा की माधुर्यभक्ति तथा विष्णु चित्त और सूरदास की वात्सल्य भक्ति का तुलनात्मक महत्व है।

अत प्रस्तुत खण्ड वैष्णव आचार्यों के भक्ति सिद्धान्तो से सम्बद्ध है। ब्रह्म के निर्गुण और निराकार रूप के स्थान पर परब्रह्म परमेश्वर के सगुण और साकार रूप की कल्पना बुद्धिवाद पर भक्ति-भावना की ही विजय है। मध्व के द्वैतवाद, निम्बार्क के द्वैता द्वैतवाद, विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद तथा चैतन्य के अचिन्त्य भेदाभेद वाद आदि भक्ति सिद्धान्तों मे लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के भावात्मक स्वरूप की स्फुट झाँकी मिलती है। शकर ने जगत को माया का रूप देकर उसका वारण किया था। प्रतिक्रिया स्वरूप इन आचार्यों के भक्ति सिद्धान्तो में माया का पोषण किया गया। माया कृष्ण लीला की प्रेरक शक्ति के रूप मे नियुक्त हुई। वैसे ही अन्य लीलावादोों की भी दार्शनिक अनुसगति मिलाई गयी।

हिन्दी कृष्ण भक्तिकाव्य पर इन वैष्णव सिद्धान्तों की पूरी छाप है। ये कवि किसी-न किसी सम्प्रदाय की छत्रछाया मे अवश्य हैं। तथा, इन्होंने अपने श्रद्धेय आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कृष्ण-लीला के समस्त उपादानो का काव्य में सुन्दर विनियोग किया है।

अष्टम अध्याय मे 'हिन्दी भक्ति-सम्प्रदाय और भावदेव कृष्ण' का विवेचन है। भक्ति काल का साहित्य धार्मिक आन्दोलन की प्रेरणा से ही पुनरुज्जीवित हुआ। इस आन्दोलन के पश्चिम मे भागवत और पूर्व में ब्रह्मवैवर्त ये दो सवाहक सूत्र हैं जिन्होंने दक्षिण के वैष्णव आन्दोलन का उत्तरापथ के भक्ति आन्दोलन से जोड दिया है। अत इन भक्त कवियो की रचनाओ मे भावात्मक कृष्ण का विश्लेषण करने के लिये इस पृष्ठ-भूमि को स्वीकार किया गया है। इसके अन्तर्गत निस्सदेह निम्बार्क-सम्प्रदाय के राधा कृष्ण को प्राचीन सम्मान दिया गया है। साथ ही, वल्लभाचार्य के गोपी-कृष्ण, चैतन्यदेव के राधा-कृष्ण, हितहरिवंश के राधास्वामी कृष्ण, तथा स्वामी हरिदास के सखीसेवित कुञ्जविहारी कृष्ण का स्वरूप वैशिष्ट्य निरूपित किया गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय की काव्य साधना और विशेषत सूर के साहित्य पर स्वतन्त्र रूप से विद्वान् पहले ही गभीर और विशाल अध्ययन प्रस्तुत कर चुके हैं। अत इस प्रसग का, आवृत्तिभय से, अत्यन्त सक्षिप्त विवेचन किया गया है। अष्टछाप की काव्य साधना में शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और मधुर पचभावोपासनाओं में यद्यपि वात्सल्य और शृङ्गार-भाव की प्रबलता है पर कवियों ने इन सभी भावो का व्यापक रूप से वर्णन किया है। अत पचभावोपासना प्रणाली मे ही कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का सौन्दर्य-पर्यवेक्षण किया गया है।

इन सबो से विलक्षण है गौडीय आचार्यों की कृष्ण भाव-कल्पना। आचार्य रूप-गोस्वामी ने अपने वैष्णवरस शास्त्र 'भक्ति रसामृत सिन्धु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' मे कृष्ण को सर्वातिशायी प्रेम भाव का सार्वभौम स्वरूप दे कर उन्हे काव्यशास्त्र के स्थायी भावो का स्थानापन्न बना डाला। यहाँ कृष्ण पूर्णत भाव प्रतीक बन गये हैं। अत उक्त सामग्रियो का विस्तृत परिशीलन किया गया है।

इसके साथ ही इस काल-परिधि मे आने वाले मीरा, रसखान जसे सम्प्रदायमुक्त कवि भी हैं जिनकी सरस रचनाओं में कृष्ण के प्रियतम और प्रेमदेव रूप अत्यन्त मार्मिकता से प्रकट हुए हैं। अत इन्हे स्वतन्त्र वर्ग मे रखा गया है। इसी वर्ग मे रामभक्तिशाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसी भी आते हैं जिन्होने रामभक्त होकर भी कृष्ण की कमनीय मुद्राओ और शृङ्गार-केलि का सुमधुर अकन किया है। इसी सन्दर्भ म कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का उत्तरवर्ती रामचरित पर जो प्रभाव पडा है उसकी भी एक झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

नवम अध्याय म उत्तरमध्यकालीन कृष्ण का अध्ययन है।

उत्तर मध्यकाल का काव्यानुशीलन मुख्यत रीति शृगार की पीठिकाओ पर होता रहा है। इसके अन्तर्गत पूर्ववर्ती भक्तियुग की कृष्ण-लीला पृष्ठभूमि रूप म अन्तर्भुक्त कर ली गयी है। किन्तु आधुनिक शोधो के परिणाम स्वरूप रीतिकाल की सीमा में कृष्ण-लीला के विपुल साहित्य आलोकित हुए हैं। इनम चतन्य-सम्प्रदाय का व्रज-साहित्य विशेष मूल्य वान है। अत रीतिकालीन काव्य धारा में भक्ति शृङ्गार की धारा के प्रवृत्तिमूलक स्वतन्त्र महत्त्व की स्थापना करते हुए उसमे वर्णित कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप स्पष्ट किया गया है। यह अपने आप म एक मौलिक प्रयत्न कहा जा सकता है। भक्ति शृङ्गार की धारा व्रजाश्रित है। इसमें सखी भाव की प्रधानता है। तथा इसके कृष्ण रसिक कृष्ण हैं। इसके अतिरिक्त, प्रेमाश्रित कवियो के प्रेमी कृष्ण और राज्याश्रित कवियों के नायक कृष्ण के भी सप्रमाण विस्तृत उल्लेख हैं।

दशम अध्याय में आधुनिक युग के कृष्ण का अध्ययन है। भारतेन्दु प्राचीन और नवीन भावनाओं के विष्कम्भक हैं। अत उनके कृष्ण भी प्राचीन-नवीन हैं। और इसके साथ ही व्रजभाषा के व्रजदेव-दर्शन का पटाक्षेप समझना चाहिए। आधुनिक काल मूलत बौद्धिक पुनरुत्थान का युग है। इसमें परिवर्तित जीवन मूल्यों का प्रभाव काव्यात्मक मूल्यों पर भी पड़ना स्वाभाविक ही था। इस परिवर्तित काव्यात्मक मूल्य के परिणाम हैं—व्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली तथा भावात्मक कृष्ण के स्थान पर बौद्धिक कृष्ण। 'प्रिय प्रवास' बौद्धिक कृष्ण का साक्षात् प्रतिबिम्ब है।

किन्तु उत्तरोत्तर इस बौद्धिकता के प्रति प्रतिक्रिया हुई है। इसी प्रतिक्रिया का फलक गुप्त जी के वर्णित कृष्ण (द्वापर) में देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त, गुप्त जी के कृष्ण की यह व्यक्तिगत विशेषता रही कि वह राम के ही अनुरूप चित्रित हुए। तुलसी और उनके अनन्तर अन्य रामभक्त कवियों ने जो कृष्णचरित का प्रभाव ग्रहण किया था, गुप्त जी ने उसे ही कृष्ण को राम के स्वरूप म ढाल कर लौटा दिया है।

बौद्धिकता के विरुद्ध सबल प्रतिक्रिया अत्याधुनिक कविता 'कनुप्रिया' के कृष्ण में पूरी तरह व्यक्त हुई है। यहाँ कृष्ण की लीला सहचरी राधा के माध्यम से बुद्धिवाद के प्रति भावुकता का प्रबल विद्रोह स्पष्ट है। और, इसके साथ ही, इस घोर नास्तिक सशय शील युग म भावात्मक कृष्ण की चारित्रिक गरिमा खण्डित होने के बजाय पुन, प्रतिष्ठित भी हो गयी है।

इस प्रकार, सम्पूर्ण हिन्दी कृष्ण काव्य के व्यापक पृष्ठाधार पर कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप के निदशन का यहाँ प्रथम बार प्रयत्न किया गया है। एक तो कृष्ण का विराट चरित्र होने से, दूसरे, उसके अध्ययन को विस्तृत अवधि तथा विशाल काव्य परिवेश म स्वीकार कर लेने से यद्यपि यह स्वाध्याय अपने आप मे अत्यन्त परिश्रम-साध्य तथा समय सापेक्ष भी बन गया है किन्तु उसका सर्वांगपूर्ण स्वरूप प्रतिफलन इस सम्पूर्ण काव्यात्मक पृष्ठाधार को स्वीकारे बिना कदाचित् असमव था। अत अपने प्रबन्ध की प्रतिज्ञा मे जानबूझ कर काल सीमा का निर्धारण नही किया गया। हिन्दी काव्य धारा से अन्तरग रूप मे सम्बद्ध कृष्ण चरित की भाव धारा को कालखण्ड मे सीमित न कर एक प्रकार से उसके स्वरूप की पूर्णता को ही खण्डित होने से बचाया गया है। अत प्रस्तुत प्रबन्ध म आदिकाल से लेकर अत्याधुनिक काल तक के भावात्मक कृष्ण को हिन्दी काव्य की प्रतिनिधि भावधारा के साथ एक ही दृष्टि मे देखा जा सकता है।

अन्त में, काव्य परम्परा को ही अध्ययन का प्रामाणिक आधार मान कर इस विषय का अनुशीलन प्रस्तुत किया जाता है।

विषय-सूची

विषय	पृ० सं०
कृतज्ञता ज्ञापन	१–२
अवतरणिका–	१–१२
अध्याय	
प्रथम—वैदिक कृष्ण का विकास —	१–१६
१ कृष्ण तत्त्व का आविर्भाव–	२–६
२ कृष्ण तत्त्व में अन्य तत्त्वों का सम्मिश्रण– (कृष्ण-वासुदेव विष्णु-नारायण)	७–१६
द्वितीय—महाभारत कालीन कृष्ण का विकास—	१७–४३
१ महाभारत के दिव्य पुरुष	१८–२४
२ गीता के योगेश्वर–	२५–३३
३ अवतारवाद के प्रेरक चरित्र–	३४–४३
तृतीय—श्रीकृष्ण चरित में युगल भावना—	४४–७९
१ आगमों की युगल कल्पना–	४५–५०
२ लीलावाद की पौराणिक कल्पना–	५१–५४
३ रुक्मिणी, गोपी और राधा भाव का विकास–	५५–७९
चतुर्थ—पुराणों में कृष्ण लीला—	८०–१२८
१ विभिन्न पुराणों में कृष्ण-लीला–	८१–१०६
२ भागवत और तमिल प्रबन्धम् की कृष्ण लीला–	१०७–११८
३ पुराण और सूरसागर की कृष्ण लीला–	११९–१२८
पंचम—अवतारवाद की पृष्ठ भूमि में कृष्ण—	१२९–१५७
१ अवतारवादी परम्परा में कृष्ण–	१३०–१३५
२ पूर्णावतार कृष्ण	१३६–१३७
३ लीलावतार श्रीकृष्ण–	१३८–१४०
४ युगलावतार कृष्ण	१४१–१४५
५ रसावतार कृष्ण–	१४६–१५७

अध्याय	विषय	पृ० स०
षष्ठ—लोक काव्य में शृंगारदेव श्रीकृष्ण—		१५८–२०५
	१ प्राकृत काव्य (गाथा सतसई) म कृष्ण	१५६–१६३
	२ सस्कृत गीतिकाव्य (गीतगोविन्द) म कृष्ण—	१६४–१७८
	३ अपभ्रंश काव्य (प्राकृत पैंगलम्) म कृष्ण—	१७६–१८१
	४ दशभाषा काव्य (विद्यापति) मे कृष्ण—	१८२–२०५
सप्तम—दक्षिण के वैष्णव आचार्य और भक्तिदेव श्रीकृष्ण—		२०६–२३३
	१ आचार्यों का भक्ति आन्दोलन—	२०७–२१४
	२ आचार्यों के श्रीकृष्ण—	२१५–२२७
	३ विभिन्न लीलोपादानो की आध्यात्मिक व्याख्या—	२२८–२३३
अष्टम—भक्ति सम्प्रदाय के कवि और भावदेव श्रीकृष्ण—		२३४–३४१
	१ निम्बार्क मतावलम्बी कवियो के कृष्ण—	२३५–२३६
	२ चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण	२४०–२७२
	(क) व्यक्तित्व—	२४०
	(ख) माधुर्य भक्ति का स्वरूप—	२५४
	(ग) चैतन्य मत के प्रतिनिधि कवि—	
	३ वल्लभ मतावलम्बी कवियो में कृष्ण—	२७३–३००
	पच भावोपासना का स्वरूप—	२७५
	१ शान्त भक्तिभावना—	२७५
	२ दास्य भक्ति,—	२७७
	३ वात्सल्य भक्ति,—	२८०
	४ सख्य भक्ति,—	२८५
	५ माधुर्य भक्ति,—	२८६
	४ राधावल्लभ मत मे कृष्ण—	३०१–३१०
	५ हरिदासी मत में कृष्ण—	३११–३१५
	६ सम्प्रदाय मुक्त कवियों के कृष्ण—	३१६–३४१
	(क) मीराबाई—	३१७
	(ख) रसखान—	३२७
	(ग) तुलसीदास—	३३५
नवम—रीतिकाल की भूमिका में कृष्ण—		३४२–४१०
	१ शृङ्गारिक प्रवृत्ति, काव्यधारा और कृष्ण—	३४३–३४६
	२ भक्ति-शृङ्गार के कवि और कृष्ण—	३५०–३७२
	३ स्वच्छन्द शृङ्गार ,, ,,	३७३–३६०
	४ रीति शृङ्गार ,, ,,	३६१–४१०

अध्याय	विषय	पृ० सं०
दशम—आधुनिक काल की भूमिका में कृष्ण—		४११–४३९
	१ युग-सन्धि के कवि (भारतेन्दु) और कृष्ण	४१२–४२५
	२ पुनरुत्थान के कवि और कृष्ण—	४२६–४३४
	(क) प्रियप्रवास के कृष्ण—	४२७
	(ख) द्वापर के कृष्ण—	४३०
	३ रोमानी भावना के कवि (भारती) और कृष्ण	४३५–४३९
	कनुप्रिया के कृष्ण—	४३७
	उपसंहार—	४३९
	परिशिष्ट–१	१
	परिशिष्ट–२	३
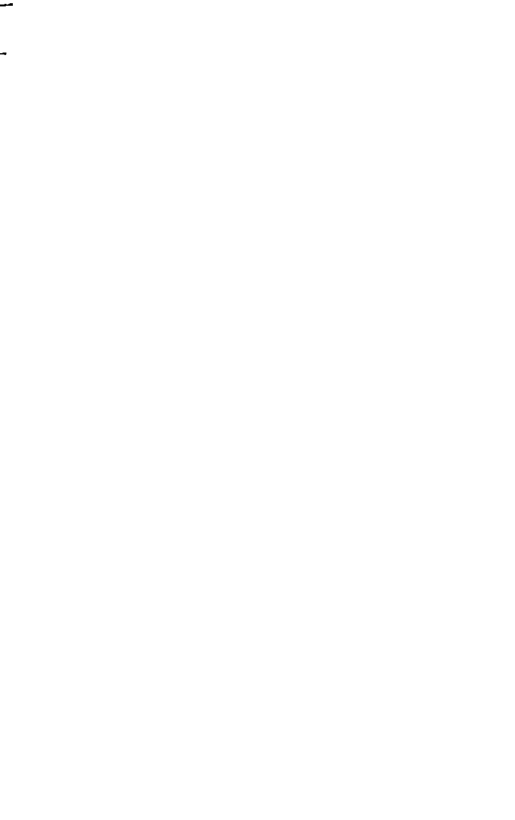
प्रथम अध्याय

"वैदिक कृष्ण का विकास"

अनुच्छेद–१

★कृष्ण तत्त्व का आविर्भाव

अनुच्छेद–२

★कृष्ण तत्त्व में अन्य तत्त्वों का सम्मिश्रण
(कृष्ण = वासुदेव + विष्णु + नारायण)

अनुच्छेद–१

कृष्ण-तत्त्व का आविर्भाव

प्राचीनतम उल्लेख भारतीय संस्कृति और साहित्य में कृष्ण अत्यन्त प्राचीन हैं। 'कृष्ण' नाम का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त–१०१ के प्रथम मंत्र में ही मिल जाता है। किन्तु, वैदिक देवता इन्द्र के साथ प्रतिस्पर्द्धा के कारण उन्हें पराभूत होते देखा जाता है। एक दूसरे मंत्र में अंशुमती के तट पर कृष्ण इन्द्र द्वारा पराजित लखे गये हैं—

> अव द्रप्सो अंशुमती मतिष्ठ दियान कृष्णो दशभि सहस्रै।
> आवत्तमिन्द्र शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१३॥
> —(म–८, अनु–१०, सू–९६)

यद्यपि सायण भाष्य के अनुसार यहाँ 'कृष्ण' के साथ 'असुर' जोड़ कर यह अर्थ किया गया है तथापि मूल मंत्र में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। अतः कुछ विद्वान् इसे इन्द्र के पक्ष में[1] और कुछ इस कृष्ण के पक्ष में[2] मान बैठे हैं।

प्रथम मण्डल में ही अन्यत्र कृष्ण एक स्तोता ऋषि हैं। वे तथा उनके पुत्र क्रमशः अपने पौत्र और पुत्र विश्वक–विष्णापु को पुनः जीवन और आरोग्य देने के लिए अश्विनीकुमारों का आह्वान करते हैं।[3]

अष्टम मण्डल, सू० ८५, म० ३, ४ में उक्त ऋषि अपने को स्वयं भी 'कृष्ण' कहते जान पड़ते हैं—

> (क) अयं वां कृष्णो अश्विनाहवते वाजिनी वसू।
> (ख) शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा।

अनुक्रमणी के रचयिता महर्षि कृष्ण को आंगिरस नाम देते हैं जिनका उल्लेख कदाचित् 'कौशीतकी ब्राह्मण' (३०–९) में भी आया है।[4]

ऊपर जहाँ इन्द्र कृष्ण स्पर्द्धा का उग्र स्वरूप देखा गया वहीं इन्द्र कृष्ण अनुकूलता का दृश्य भी देख सकते हैं—

> अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीर नूषत।
> परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥
> (ऋ० सं० १०/४३/१)

---

१ डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा—हिन्दी साहित्य कोश (१) पृ० २४०

२ ,, (२) पृ० ९३

२ प्रो० सत्यनारायण पाण्डेय—कृष्ण काव्य की परम्परा, पृ० २७

३ ऋग्वेद १, ११६, ७ २३, ८, ८५, १ ६ ८, ८६, १ ८

४ प० परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दुस्तानी—१९३७

कृष्ण आंगिरस ऋषि कह रहे हैं कि जिस प्रकार जाया पति का आलिंगन करती है, उसी प्रकार हमारी मति इन्द्र का आलिंगन करती है। अनुकूलता के बावजूद जो इन्द्र का उच्च और कृष्ण का न्यून पद रह जाता है उस भावना का पर्याय यहाँ देखा जा सकता है।

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽ धारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या ३ चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥१५॥

(ऋ० म० ८, अ० १०, सू० ९६)

अर्थात् कृष्ण अंशुमती के तट पर ओजस्वी स्वरूप में प्रकट होते हैं और उनके चारों ओर से आते हुए असुर ('अदेवी'—जिसका सायण ने यही अर्थ किया है) गणों को इन्द्र बृहस्पति की सहायता से समाप्त कर देते हैं। कुछ महानुभावों ने जो इन्द्र के विरुद्ध कृष्ण के पक्ष में इसका अर्थापन किया[1], वह अत्यन्त भ्रमोत्पादक अथच अशुद्ध है।

उक्त समस्त उल्लेखों पर विचार करने से कृष्ण के २ स्वरूप लक्षित होते हैं—

(१) इन्द्र स्पर्द्धी कृष्ण

(२) ऋषि कृष्ण

इनमें प्रथम अवस्था इन्द्र से कृष्ण की न्यूनाधिक स्पर्द्धा की द्योतक है। दूसरी अवस्था वह है जहाँ इन्द्र कृष्ण-द्वन्द्व की भूमिका शेष हो जाती है और कृष्ण शनैः शनैः इन्द्र का अनुकूलता प्राप्त करने लगते हैं। चरम विकास की अवस्था में यही कृष्ण इन्द्र पर छा जाते हैं। यह कृष्ण-तत्त्व के विकास का द्योतक है। जो कृष्ण आगे चल कर इन्द्र पत्नी शची या लक्ष्मी को विष्णुरूप[2] में या रुक्मिणी को कृष्ण रूप में आहरण कर लेते हैं अथवा आगे चल कर ब्रजलीला में इन्द्र पूजा का विरोध करने के लिए गोवर्धन-धारण कर लेते हैं उनका आदिम रूप अपनी विकासशील प्रकृति में विराजमान है। उक्त सन्दर्भों का भागवत धर्म के उपास्य कृष्ण की कथा से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं जान पड़ता।[3] इनके अतिरिक्त, 'अथर्व संहिता' में कृष्णकेशी नामक असुर के नाशक कृष्ण की कथा है। संभवतः यह वसुदेव-नन्दन है।[4]

वैदिक मन्त्रों के अनन्तर छान्दोग्य उपनिषद् में पुनः कृष्ण का दो रूपों में उल्लेख किया गया है। एक में वह ऋषि कृष्ण और दूसरे में सामन्त कृष्ण रूप में उल्लिखित हैं। किन्तु ये दोनों रूप एकत्र हो मिल जाते हैं—

"तद्धैतद्घोर आंगिरस कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वा[5] "

---

१ देखिए, श्री सत्यनारायण पाण्डेय कृत "कृ० का० प०" (पृ० २७–२८) पर उद्धृत मंत्र और उनका अर्थ।

२ हिन्दुस्तानी—३७—प० परशुराम चतुर्वेदी (पृ० ३८)

३ डा० ब्रजेश्वर वर्मा–हि० सा० को० (२)—(पृ० ९३)

४ बंकिमचन्द्र–कृष्ण-चरित्र (पृ० ८७)

५ छान्दोग्य–३, १७, ६

यह कृष्ण (क) घोर आंगिरस के शिष्य—ऋषि कृष्ण

तथा, (ख) देवकी—पुत्र साम त कृष्ण है।—यहां कृष्ण की वदिक द्विविध प्रवृत्तियां का जोडने का उपक्रम किया गया है। किन्तु, क्या वदिक मन्त्रों के रचयिता कृष्ण आंगिरस और घोर आंगिरस के शिष्य देवकी पुत्र कृष्ण—एक ही व्यक्ति थ ?

डॉ० भण्डारकर ने इस सम्ब ध म अपना अनुमान प्रकट करते हुए कहा था कि यदि कृष्ण भ। आंगिरस और घोर भी आंगिरस थ तो इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि कृष्ण के ऋषि होने की परम्परा 'ऋग्वेद के मन्त्रों के समय से लेकर छांदोग्य उपनिषद् के रचना-काल तक चली आती होगी। इसी समय कार्ष्णायन' नाम का कोई गोत्र भी वर्तमान था जिसके मूल पुरुष कृष्ण थे। वासुदेव उसी कार्ष्णायन गोत्र के थे, अत उनका नाम भी कृष्ण पड गया।'[1] कुछ विद्वान् छा दोग्य के उक्त उद्धरण को ही कृष्ण विषयक इतिवृत्त का प्रथम उल्लेख मानते हैं[2], जो ठीक नहीं। छान्दोग्य उपनिषद् के कृष्ण ऋषि और साम त दोनों हैं। स्वामी शंकराचार्य प्रथम पद के प्रति आग्रह रखने के कारण इस आंगिरस कृष्ण को वार्ष्णेय कृष्ण स भिन्न बतलाते हैं। परन्तु व किस तात्त्विक आधार पर ऐसा मानने को विवश हुए यह अज्ञात है। अत यह कृष्ण देवकी पुत्र वासुदेव भी हो सकते हैं।[3] अ य विद्वानों ने इसी आधार पर एतिहासिक देवकी पुत्र कृष्ण का आंगिरस कृष्ण के साथ सम्ब ध जोडा है।[4] इन दोनों के मध्य एक और योगसूत्र है—और वह है गीता प्रवचन। छा दोग्य म घोर आंगिरस न अपने शिष्य देवकी पुत्र कृ ण (कृ ण आंगिरस) को जो उपदेश दिये हैं वह परवर्ती काल मे कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये गीता प्रवचन के कुछ अंशों स हू बहू मिल जाते हैं।[5] निष्कर्षत आंगिरस कृष्ण ने जो उपदेश अपने गुरु घोर आंगिरस से ग्रहण किये थे उन्हें ही गीता प्रवचन के रूप म अपने शिष्य अर्जुन को सौंप दिया। स्वयं गीता म हो इस बात का संकेत है कि उक्त ज्ञानोपदेश की परम्परा दाय रूप मे अग्रसर हुई है। जो हो इससे इतना सिद्ध हुए बिना नहीं रहता कि कृष्ण ऋषि का समस्त वेदज्ञान और देवकी का पुत्र गौरव दोनों कालांतर म पूर्णत सघटित हो गया और, परमदेव वासुदेव के साथ सम्बद्ध होकर उसने कृष्ण की वैयक्तिक महिमा का सवर्धन किया।

---

१ वैष्णविज्म शैविज्म (पृ० ११-१२)

२ आचर- द लम ऑफ कृष्ण (पृ० १७)

३ मिश्रब धु- हि० सा० और इतिहास (पृ० ६६)

४ आचर- द लम ऑफ कृ ण (पृ० १७)

५ तुलना के लिए द्रष्टव्य—छा दोग्य गीता

(३ १७ ४) – (१६/१/२)
(३, १७ ६) – (८-५, ८-१० ११)

इनके अतिरिक्त (क) मजुम दार- 'द एज ऑफ इम्पीरियल युनिटी (पृ० ४३२) (ख) बाशम- द वण्डर दैट वाज इण्डिया (२४२)

जिस प्रकार उधर घार आगिरस से ज्ञान प्राप्त कर कृष्ण आगिरस की ज्ञान पिपासा सदा के लिए शान्त हो गयी उसी प्रकार इधर वासुदेव कृष्ण का गीता-प्रवचन सुनकर अर्जुन भी 'आश्वस्त' हुए। अत कृष्ण सम्बन्धी यह सन्दर्भ उन्हे गीतावाचक वासुदेव कृष्ण के पूर्ण सन्निकट ले आता है।

बौद्ध जातकों में भी 'वासुदेव कण्ह' की कथा के दो सदर्भ मिलते हैं।

'घट जातक' मे देवगभा और उपसागर के पुत्र कृष्ण अत्यन्त क्रीडा शील पराक्रमी, उद्धत और बलवान् रूप म चित्रित हैं। यह कथा भागवत वर्णित कृष्ण कथा म साम्य रखती है।

'महाउम्मग्ग जातक' मे वासुदेव कण्ह कामासक्त रूप मे चित्रित है। यहाँ वह चाण्डाल कन्या जाम्ववती के प्रेम पर आसक्त होकर उसे महिषी बनाने का उपक्रम करते हैं।

डॉ० भण्डारकर उक्त कथा प्रसगो के आधार पर व्यक्तिवाची 'वासुदेव' तथा काष्णर्यायन गोत्री 'कृष्ण' इन दो भिन्न भिन्न तत्वो के एकीकरण की बात कहते हैं। इसमे सन्देह नही कि 'कृष्ण' और 'वासुदेव' तत्वत भिन्न थे जिनका कालान्तर म एकीकरण हुआ। किन्तु, इस सम्बन्ध म डॉ० भण्डारकर ने जो दो कारण दिये हैं वे अत्यधिक तर्कसम्मत नही हैं। उनके अनुसार वासुदेव और कृष्ण के एकत्व के दो कारण हैं—(१) कृष्ण के ऋषि होने की परम्परा और (२) उनका काष्णर्यायन गोत्री होना। देवकी या वसुदेव का पुत्र गौरव जिसमे वासुदेवत्व की महिमा आयी थी, देवकी की वश परम्परा म न होकर उस व्यक्तित्व मे था। अत गोत्र-साम्य के आधार पर किसी की भगवत् महिमा का प्रतिष्ठित हो जाना स्वाभाविक नही। वस्तुत कृष्ण आगिरस के आचार्यत्व और देवकी के पुत्र गौरव दोनो ने मिलकर वसुदेव-नन्दन कृष्ण के व्यक्तित्व को इतना आकर्षक और तेजोमय बना डाला कि उनकी पूजा भगवान् की तरह होने लगी। चूंकि वृष्णि वशियो के देवता और वसुदेव नन्दन दोनो ही वासुदेव कहलाते थे, अत कालान्तर म इन दोनो का एकीकरण हो गया।[1] एकीकरण के समय काष्णर्यायन गोत्री कृष्ण और वृष्णिवशी वासुदेव दोनो दो भिन्न भिन्न कुल दीपक न रहकर सात्वत कुल के देवता बन गये थे। "वासुदेव-कृष्ण"-यह पद इसी समष्टि का द्योतक है। यहाँ पहुँच कर इन दोनो के वश-वृक्ष ही आपस म नही मिले प्रत्युत् इनके तेज और प्रताप परस्पर मिलकर इस तरह एकमेक हो गये कि इन दोनो का भिन्न भिन्न अस्तित्व के रूप मे मानना तो असम्भव हो ही गया[2], इनका स्वरूप एक व्यापक जन-समुदाय की धर्म-भावना का आधार भी बन गया। आचार्य द्विवेदी के अनुसार वासुदेव के साथ कृष्ण के योग का यह काल ब्राह्मणयुग के अन्तिम चरण म पडता है।[3]

इसके साथ ही अनेक विद्वान् वासुदेव कृष्ण मे विष्णु, नारायण आदि वैदिक

---

१ मिश्रबन्धु—हि० सा० और इतिहास (पृ० ६६)

२ प्रो० राय चौधरी—"अर्ली हिस्ट्री ऑफ द वैष्णव सेक्ट", (पृ० १८-१९)।

३ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी"—सूर साहित्य', (पृ० १२)

देवताओं के सम्मिश्रण की बात कहते हैं। डा० भण्डारकर इस मत के प्रतिनिधि व्याख्याता हैं।[1] वैष्णवधर्म का पूर्ण संघटन इसी एकीकरण का परिणाम है। यहाँ पहुँच कर कृष्ण वासुदेव, विष्णु, नारायण आदि सभी देवताओं से आंतरिक रूप में सम्बद्ध हो जाते हैं। यों तो वैष्णव धर्म के अधिदेवता विष्णु हैं और वह इसके अन्तरंग में प्रतिष्ठित रहे भी किन्तु इस धर्म का संघ भावना के रूप में पूर्ण प्रसार उक्त सभी देवताओं के सम्मिश्रण का ही प्रतिफल है। कृष्ण का सम्बन्ध इन सबों से है। इन्होंने सम धर्म (कॉमन फोम) बन कर इन सबों का अपने चरित्र में आत्मसात कर लिया है। महाभारत के अनेक ग दर्भ इसके प्रमाण हैं। भीष्मपर्व के श्रीमद्भगवद्गीता पर्वाध्याय तथा शान्ति पर्व में कृष्ण को विष्णु माना गया है। साथ ही शान्ति पर्व के "नारायणीय" खण्ड में कृष्ण का नारायण रूप में माहात्म्य कथन है। यही व्यूहवाद तथा पाँचरात्र धर्म का बीज है

इसके साथ ही, शिशुपाल, 'पौण्ड्रक' अथवा 'शृगाल' वासुदेव के वध में तथा गीता की "वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि" इस घोषणा में कृष्ण की वासुदेवत्व प्रतिष्ठा की झलक है। अतः इसमें आश्चर्य नहीं कि आगे चलकर विष्णु, नारायण आदि वैदिक देवताओं ने भी कृष्ण स्वरूप में अपना अपना आत्म दान किया। मोटे तौर पर मिश्रण का यह काल महाभारत काल माना जा सकता है।

अगले अनुच्छेद में इन सबों का क्रम क्रम से विवेचन प्रस्तुत है

---

१ 'वैष्णविज्म', पृ० ३५

अनुच्छेद–२

कृष्ण में विभिन्न तत्त्वों का सम्मिश्रण

वासुदेव कृष्ण कृष्ण-तत्त्व मे वासुदेव का मिश्रण हमे "वासुदेव" तत्त्व की गवेषणा के लिए प्रेरित करता है। वासुदेव ने कृष्ण तत्त्व मे अपनी सम्पूर्ण महिमा का दान किया है। कृष्ण के विभिन्न पर्यायो मे यह "वासुदेव' शब्द अन्तरंग रूप मे जुडा है।

"वासुदेव' का कदाचित प्रथम उल्लेख 'तैत्तिरीय आरण्यक' मे मिलता है—

नारायण य विद्महे, वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णु प्रचोदयात।

—(प्रपाठक–१०)

किन्तु, डॉ० राजेन्द्र लाल मित्र उक्त अंश को उसका परिशिष्ट मानते हैं।[1] महाभारत (ई० पू० ७ वी शती–ई० पू० ३ री शती) मे ६ रूपो मे वासुदेव आते हैं।

(१) अलौकिक ज्योति सम्पन्न पुरुष–"वसनात्सर्वभूताना वसुत्वाद्देव योनित ।[2]

(२) सूर्य रूपी किरणो से सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित करने वाले—

"छादयामि जगद्विश्व भूत्वा सूर्य इवाशुभि ।[3]

(३) वासुदेव पुत्र (वासुदेव या "वसुदेव '? यह विचारणीय है)।[4]

(४) बनावटी वासुदेव–[5] पौण्डो का राजा पुण्डरीक, जो अपने को वासुदेव कहकर पुजवाने लगा था। कृष्ण ने इसे मार कर अपना वासुदेवत्व स्थापित किया।

(५) वासुदेव का व्यूह रूप मे अवतरण–भीष्म पर्व, अध्याय–६५

(क) वासुदेव–

(ख) सकर्षण–

(ग) प्रद्युम्न–

(घ) अनिरुद्ध–

उक्त अध्याय के अन्त मे प्रार्थना है कि एक बार फिर मनुष्य योनि मे वासुदेव जन्म ग्रहण करें। यही अवतारवाद का बीज है। डॉ० भण्डारकर के अनुसार उक्त वासुदेव भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। तथा, लगता है इनके जन्म पूर्वकाल मे कभी मनुष्य रूप मे हो चुके थे।

---

१ तैत्तिरीय आरण्यक, भूमिका–(पृ० ८)

२ महाभारत–५/७०/३

३ वही–१२/३४१/४१

४ वही–३/१४/८

५ वही–१/२०१/१२, १७ आदि।

(६) गीतावाचक कृष्ण अपना यश परिचय देते हुए कहते हैं—

"वृष्णीना वासुदेवोऽस्मि पाण्डवाना धनजय "।[1]

अर्थात् मैं वृष्णिओं में वासुदेव हूँ।

विद्वानों का पाणिनि (७ वी सदी ई० पू०) से पूर्व ही वासुदेव पूजा के संकेत मिलते है। पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' में एक सूत्र मिलता है—

वासुदेवार्जुनाभ्या वुन् –(४/३/९८) अर्थात् वासुदेव और अर्जुन देव युग्म हैं। यहाँ वासुदेव कृष्ण हैं।

पालि ग्रन्थ निर्देश के अनुसार ई०पू० ४थी सदी में वासुदेव तथा बलदेव के साम्प्रदायिक अनुयायी वर्तमान थे।

इनके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा विष्णु भागवतादि प्राचीन पुराणों में वासुदेव के सात्वत–कुल का उल्लेख मिलता है। डॉ० भण्डारकर उक्त शोधो के अनन्तर जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं वे इस प्रकार हैं–

(१) 'सात्वत' परमात्मा का वाचक शब्द है। वासुदेव इसके पर्याय हैं।

(२) वह सात्वत कुल भूषण हैं। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके वशधरो ने उन्हे साक्षात् ब्रह्म मान कर पूजना शुरू किया।

(३) गीता में वासुदेव और कृष्ण का पूर्ण एकीकरण हो गया है। यह इस कुल का गौरव ग्रन्थ है।

अन्त देवकी पुत्र और वासुदेव कृष्ण ब्राह्मण काल के अन्त में एक ही हो चले थे। इन्होंने अपने शिष्यत्व काल में ग्रहण किए हुए सिद्धान्तो का अपनी प्रौढावस्था में अपने अनुयायियो के बीच प्रचारित किया।[2] यह बात गीता के इस प्रवचन से बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। जन्म जन्मान्तर में भटकती हुई आत्मा मे वासुदेव की सर्वव्यापकता का बोध कदाचित् कृष्ण की वासुदेव रूप मे आत्म प्रतिष्ठा के रहस्य को ही चरितार्थ करता है।[3]

साराशत, वासुदेव पूजा कृष्ण से पूर्व प्रचलित हो गयी थी। 'वासुदेव' पद ईश्वरीय महिमा का सम्बोधक हो गया था। वसुदेवनन्दन कृष्ण ने अपने आदर्श जीवन की उपलब्धियो मे इसी वासुदेवत्व का पुरस्कार पाया था। उन्होंने इसके लिए अपने सम्पूर्ण पाण्डित्य का प्रदर्शन तथा बल विक्रम का प्रकटीकरण किया था। अत आगे महाभारत के अन्तस्साक्ष्य पर कृष्ण को वासुदेवत्व प्रतिष्ठा से सबधित कुछ तक दिये जाते हैं।

महाभारत में कृष्ण के मूल वासुदेवत्व में सन्देह के कई प्रसग है—

---

१ गीता—१०/३७

२ प्रा० राय चौधरी "अर्ली हिस्ट्री ऑफ द वैष्णव सेक्ट" (पृ० ५०)

३ गीता ७/१९ "वासुदेव सर्व मिति स महात्मा सुदुर्लभ ।'

(१) (क) महाभारत, सभापर्व अध्याय–२२–जरासन्ध की खुली चुनौती

(ख) महाभारत, सभापर्व अध्याय–४२– शिशुपाल का स्पष्ट विरोध

(ग) गीतोक्त (१०/३७) यह श्लोक भी विचारणीय है जिसमे उन्होंने अपने को—'वृष्णीना वासुदवोऽस्मि' अर्थात् वृष्णियो मे वासुदव कहा है। यही नहीं, बल्कि इस रूपक पद म युक्ति सगत अर्थ निकालने के लिए उसके आगे के सूत्र 'पाण्डवाना धनजय' अर्थात पाण्डवो म अर्जुन को भी देखना होगा। तात्पर्य यह कि कृष्ण जैसे 'अर्जुन', 'द्वन्द्व' (१०/३३) या 'मार्गशीर्ष' (१०/३५) ही नही थ वैसे ही 'वासुदेव' भी नही थे। हा, सम्बन्ध परम्परा स वह यह सब है। उन्होने उक्त पद में अपने महत्त्व स्थापनार्थ समानुपाती शैली का अनुगमन किया है।

(घ) कृष्णोक्त गीता प्रवचन के पूर्व वृष्णिवशीय वासुदेव परम दवता के पद पर प्रतिष्ठित हो चुके हैं। कृष्ण की महिमा जब पुरुषोत्तमत्व का स्पर्श करने लगी और उन्हें अपनी लोकोत्तर महिमा का आत्म-साक्षात्कार हुआ तो उन्होंने गीता म अपने मत का प्रकाश किया। प्रो० जकोबी के शब्दो म––

"Vasudev, the God, and Krishna, the sage, were originally different from one another and only after wards became, by a syncretism of beliefs, one diety, thus giving rise to, or bringing to perfection, a theory of incarnation "[1]

अत गीतोक्त अवतारवाद वासुदव कृष्ण की आत्म प्रतिष्ठा की एक दार्शनिक अनुसगति है।

(ङ) अपने से पूर्व कई जन्मों मे कृष्ण का वासुदेव होना और जब जब धर्म की ग्लानि हो तब तब साधुओ के परित्राण और दुष्टो के दमन के लिए उनका जन्म लेना उनकी वासुदेवत्व साधना को चरितार्थ करने वाला अवतार दर्शन है।[2]

सर भण्डारकर भी पहले वासुदेव और कृष्ण दोनो में अन्तर मानकर ही बाद म एकत्व का समर्थन करते है। हौपकिंस महाभारत मे कृष्ण को मात्र मनुष्य रूप म देखते है।[3] कीथ यहा कृष्ण का देवत्व की भावना स सम्पन्न मानते है।[4] किन्तु इससे भी ज्यादा समीचीन यह है कि कृष्ण महाभारत में मनुष्य और देवता दोनो हैं।[5] क्योंकि महाभारत में कृष्ण के पुरुषोत्तम कृत्य और देवी कृत्य दोनो का ही मणि काचन योग घटित हुआ है। महाभारत एक काल और एक हाथ की कृति नही है।[6] यहा कृष्ण का मनुजत्व से देवत्व तक उठने मे काल और हाथ के कई सोपान

१ E R E Vol VII Incarnation (P 193–197)

२ गीता ४/५, ६, ७, ८

३ हौपकिंस—"द ग्रेट इपिक ऑफ इण्डिया"

४ जे० ओ० आर० ए० एस०—१९१५ (पृ० ५४८)

५ प० परशुराम चतुर्वेदी–हिन्दुस्तानी' ३७ तथा, आर्चर—'द लव्स ऑफ कृष्ण' (पृ० २५)

६ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी—"सस्कृत महाकाव्यो की परम्परा" (आलोचना–'५६)

मिल गय हैं। अत उत्तरकाल म वासुदेव और कृष्ण इस प्रकार घुलमिल गय कि दोनो मिश्रित स्वरूप "वासुदव कृष्ण' ही लोक मे चल पडा। और, यह धीरे धीरे एक ही परम सत्ता या पुरुषोत्तम का वाचक पद बन गया। अत प्राचीन देव वासुदेव की महिमा सक्रमित होकर कृष्ण मे प्रतिबिम्बित हो गयी। लोक विश्वास के दायर म आकर व्यक्ति का माहात्म्य देवत्व का दरजा प्राप्त कर लेता है। और, अगली पीढी उसे अवतार मानकर पूजने लगती है। भारतीय जाति का यह नैसर्गिक श्रद्धा धम रक्षक और दुष्टदमनो के प्रति अनादिकाल स उमडती रही है। वासुदेव कृष्ण के सगम के पीछे भी यही रहस्य है।

अब वासुदेव कृष्ण की प्राचीनता पर एक विहगम दृष्टि दी जानी चाहिए।
(१) पाणिनि (ई० पू० ७ वी शती) के एक सूत्र म —"वासुदेवार्जुनाभ्या वुन्'— वासुदेव और अर्जुन का देव युग्म के रूप म उल्लेख है। इससे वासुदेव और कृष्ण के पारस्परिक एकत्व पर भी प्रकाश पडता है।

(२) मेगास्थनीज (ई० पू० ४थी शती) के यात्रा विवरण मे मथुरा, कृष्णपुर यमुना आदि का वृत्तान्त मिलता है। डा० भण्डारकर क अनुसार यह विवरण इस प्रकार है—

हेराक्लीज हरिकुल—वासुदेव
शौरसेन सात्वत
मेथारा—मथुरा
क्लइसाबोरा—कृष्णपुर
जोबारे—यमुना

(३) पतञ्जलि काल मे (ई० पू० २रा शती) कोई नाटक खेला जाता था जिसम कस वध की कथा थी।[२]

(४) हेलिया डोरा (ई० पू० २री शती)—ग्रीक राजदूत का भागवत होना तथा उसके द्वारा 'देवदेव वासुदेव' के नाम पर गरुडध्वज का निर्माण किया जाना वासुदेव की प्राचीनता का द्योतक है। बेसनगर के इस शिलालेख को "छान्दोग्य" और "गीता' क उपदेशो स प्रभावित माना जाता है।[३]

(५) घोसुडी शिलालेख (राजपूताना ई० पू० २री शती) तथा नानाघाट गुफा के अभिलेख (नासिक—ई० पू० १ली शती) के अनुसार भी वासुदेव और सकर्षण की पूजा का पता चलता है।

उक्त उद्धरणो के आधार पर ७ वी शती ई० पू० स ही वासुदेव और कृष्ण का अध्यात्म के क्षेत्र म समन्वय उल्लेख मिलने लगता है। कृष्ण के पूज्य स्वरूप के विकास का यही समय अनुमानित होता है। महाभारत के अन्तर्गत प्राय इसी समय स कृष्ण का वासुदेव कृष्ण रूप म महत्त्व स्थापित हुआ होगा। कुछ विद्वानो न वासुदेव कृष्ण क

१ "वासुदेवकृष्ण' (पृ०-६)
२ प्रो० राय चौधरी—"अर्ली हिस्ट्री ऑफ द वैष्णव सेक्ट" (पृ० २८-२९)
३ वही वही (पृ० ५९-६०)

सम्मिलन के फलस्वरूप ही कृष्ण के धर्मात्मा, मधुर और वीररूपों का विकास माना है। उनके अनुसार[1] ये तीनों रूप कृष्ण के उस दैवतरूप के ही अधीन विकसित हुए जो अत्यन्त प्राचीन काल से इष्टदेवता वासुदेव कृष्ण के रूप में लोकप्रिय होता आया था। इस दैवत रूप की परिणति अन्ततोगत्वा साक्षात् परब्रह्म में हुई। किन्तु, कृष्ण के पौराणिक स्वरूप में जिस सौन्दर्य और माधुर्य का व्यापक दृश्य प्रस्तुत हुआ उसके मूल में वासुदेव के दैवत रूप की अपेक्षा लौकिक परम्परा में प्रचलित ललित मधुर गोपाल रूप का विशेष हाथ होगा। इसके रहते हुए, कृष्ण के सौन्दर्य स्वरूप को वासुदेव के दैवत रूप की परिणति मानना विशेष संगत नहीं लगता। इसी को दूर करने के लिए विद्वानों को परमदैवत वासुदेव कृष्ण के आदि स्वरूप में भी सौन्दर्य माधुर्य की प्रतिष्ठा करनी पड़ी है। डा० व्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में "ऐसा जान पड़ता है कि इष्टदेव वासुदेव कृष्ण के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता उनका सौन्दर्य और माधुर्य ही थी, और इसी रूप में वे वृष्णिवंशीय सात्वत जाति के कुलदेव मान जाते थे।"[2]

निष्कर्षतः महाभारत काल कृष्ण में वैदिक देवताओं के योगदान का काल है। ऐतिहासिक पूज्य पुरुष वासुदेव के भी कृष्ण में विलयन का यही काल है। कृष्ण यहाँ वसुदेवनन्दन से द्वितीय वासुदेव और अन्ततोगत्वा वासुदेव कृष्ण बन गये हैं।

विष्णु कृष्ण—महाभारत के प्रारम्भिक काल में व्यक्ति कृष्ण अपने वीर कृत्यों की बदौलत पुरुषोत्तम घोषित हो चुके थे। जिस समय वासुदेव और कृष्ण का यह दैवी संयोग घटित हुआ वह महाभारत का मध्यकाल था। कदाचित् इसी समय उस युग के शीर्षस्थ विचारकों (व्यास), मनीषियों (नारद) एवं अजेय योद्धाओं (भीष्म) में यह दिव्याशा अंकुरित हो रही थी कि अपनी वीरता और कूटनीतिज्ञता में पारंगत यशस्वी कृष्ण, जो आर्यधर्म की प्रतिष्ठा में प्राणपण से तत्पर हैं, अतीव संभवतः ब्राह्मण काल के परम देवता भगवान विष्णु के ही अवतार हैं।[3] यदि महाभारत के उक्त अंश को गीता की पूर्ववर्ती कल्पना मान लें तो गीतावाचक कृष्ण के "यदा यदा हि धर्मस्य ....." वाले पूर्ण आश्वासन से इस अवतरण की कल्पना को भरपूर समर्थन प्राप्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त जैसे वासुदेव कृष्ण ऐक्य के सम्बन्ध में 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि'-पद का महत्त्व है वैसे ही विष्णु कृष्ण ऐक्य के सम्बन्ध में "आदित्यानामहं विष्णु"[4] पद का भी महत्त्व होना चाहिए।

महाभारत के जिन ३ प्रसंगों में कृष्ण के विष्णु अवतार की झलक मिलती है वे हैं -

(१) शिशुपाल का सुदर्शन चक्र द्वारा शिरश्छेदन

(२) द्रौपदी चीरहरण

और (३) अर्जुन को विश्वरूप प्रदर्शन

१ डॉ० व्रजेश्वर वर्मा "हि० सा० को० (१) "कृष्ण काव्य' (पृ० २४०)

२ वही - ,, वही - वही (वही)

३ महाभारत-भीष्मपर्व, ६६वां अध्याय, विश्वोपाख्यान कथन

४ गीता १०/२१

उसी प्रकार, विष्णु का नाम कहीं कहीं "ऋतस्य गभम्" आदि प्रसगो मे यज्ञ के बीज रूप देवता अथवा ब्राह्मणो की रचना के समय तक "यज्ञोहवै विष्णु" आदि द्वारा स्वय यज्ञ के अथ म भी प्रयुक्त हुआ है। यहाँ वह यज्ञपुरुष हैं।

किन्तु, इन दोनो से महत्त्वपूर्ण है विष्णु को देवराज इन्द्र का "योग्य सहायक"[1] मानना अथवा जहा तहाँ इन्द्र के साथ ही इनके पराक्रम की प्रशसा किया जाना। बाद मे तो इन्हें इन्द्र से भी बडा माना जाने लगा।[2] फिर तो ब्राह्मणो की रचना के समय वे सबसे बडे देवता बन गये।[3]

शतपथ ब्राह्मण म विष्णु के प्रसिद्ध वामनावतार की कथा आती है। वामन विष्णु सम्पूर्ण पृथ्वी पर लटकर देवताओ के लिए असुरराज बलि से उसे प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रसग म उस देवता की महत्ता मे चमत्कार आ जाता है। इसके अतिरिक्त, विष्णु का उद्धारक रूप और सग्राम म कृत्रिम रूप धारण करना तथा भक्तो को ही इस गुप्तरूप का ज्ञान होना गीता के प्रमुख स्थलो स तुलनीय हैं—

विष्णु		कृष्ण
विष्णु के भक्त ध्रुव ऋग्वेद सहिता ७/१००		गीता ४/७
अजन्मा होने पर भी जन्म	वही १ १५६ तथा, वही ७/६६	गीता ४/५,६
विष्णु माता, पिता, पुत्र	वही १ १५८	गीता ११/४४
विष्णु पवना के धारणकत्ता वही वही		पुराणोक्त गोवधन धारण म साम्य

इसके अतिरिक्त, ऋग्वेद म० १/१५५ के "विष्णु के अनेक जन्म" तथा ऋग्वेद म० १/१५६ के "विष्णु आर्यों के रक्षक" आदि विषयक मन्त्र भी तुलनीय हैं।

फिर, कृष्ण पत्नी रुक्मिणी तथा कृष्ण की राधा एव श्री सभी विष्णु की विभूति प्रकृति के ही नाम हैं।[4]

उक्त तुलनात्मक अध्ययन का एक ही उद्देश्य है, और वह है कृष्ण का विष्णु का अवतार सिद्ध करना। गीता में—जो वासुदेव कृष्ण का मान्य ग्रन्थ है—विष्णु, वासुदेव कृष्ण, गोविन्द, हरि आदि कई सम्बोधन पर्याय रूप मे भगवान के लिए आये हैं। इनमे विशेषत विष्णु, वासुदेव, कृष्ण आदि द्रष्टव्य हैं। विद्वानो के अनुमान से वदिक काल मे ही देवराज इन्द्र विष्णु की प्रतियोगिता मे दबने लगे और देव द्र का पद क्रमश खिसकता हुआ इन्द्र के पास से विष्णु के पास पहुँच गया। "इन्द्र सूक्त" के ढर्रे पर "विष्णु सूक्त" की रचना हुई। और, इन्द्र के लिए आये हुए महत्तासूचक शब्द कालान्तर मे विष्णु के प्रसग म प्रयुक्त होने लगे।[5] उदाहरण के लिए, विष्णु, वासुदेव, केशव आदि

१ "इन्द्रस्य युज्य सखा ऋग्वेद, म० १, सू० २२, म० १९।
२ वही, म० ७, सू० ६९।
३ एतरेय ब्राह्मण १/१, शतपथ ब्राह्मण १४ १ १।
४ त्रि प्र० सिंह – हिन्दू धार्मिक कथाओ के भौतिक अथ"—(पृ० ७८)
५ प० परशुराम चतुर्वेदी–"हिन्दुस्तानी" (पृ० ३८)

नाम किसी न किसी रूप में इन्द्र के अथवा इन्द्र-सम्बन्धी किसी वस्तु के नाम पर लिये गये हैं।[1]

अतः इन्द्र विष्णु प्रतिस्पर्द्धी, प्रकारान्तर से इन्द्र कृष्ण प्रतिस्पर्द्धा का प्रेरक रूप है। क्या आश्चर्य है, यदि कृष्ण में अपने समान धर्मी विष्णु का सारा उत्कर्ष हेतु विनियोग हुआ हो। अतः हम मानाय द्विवेदी के निष्कर्ष से पूर्ण तरह सहमत हैं कि—"महाभारत युग तक आकर वासुदेव कृष्ण, विष्णु और नारायण एक हो चुके थे।"[2]

"अथर्वनारायणोपनिषद् का भाष्यकर्ता नारायण उपनिषद् के इस मूल सूत्र - 'परम विष्णु, पर ब्रह्मविष्णु' का भाष्य करते हुए कहता है —
"आनन्दैकरूपतेजो मयामृतमयपरमार्थविविधभूता विष्णु श्रीकृष्णएव' अर्थात आनन्द स्वरूप श्री कृष्ण ही एकमात्र विष्णु हैं। आगे उनने जिन जिन विशेषताओं की गणना की है, उसकी व्याख्या प्रो० जी० एन० मलिक के शब्दों में प्रस्तुत है -

> "Shree Krishna alone is Vishnu, who is preeminently Bliss in form, who is lustrous (i.e. self luminous), who is eternity embodied and who is the culminating point of sumnumbonum"[3]

नारायण कृष्ण कृष्ण चरित्र को उज्ज्वल रूप प्रदान करने वाले तत्वों में नारायण का महत्त्व अत्यधिक है। विष्णु ने अपने प्रकर्ष पर नारायण को भी अपने में समेट लिया था। इन दोनों का मिश्रित रूप आगे चल कर कृष्ण के स्वरूप में तदाकार हुआ।

वैष्णव धर्म के उपास्यदेव का एक दूसरा नाम नारायण है, जो वैदिक साहित्य में अनेकशः उद्धृत है।

ऋग्वेद—[4] नारायण की प्राचीनता का रहस्य ऋग्वेद के मंत्रों में गुंजता है।

"आकाश पृथ्वी या देवता के भी पहले वह गर्भरूपी वस्तु क्या थी, जो पहले पहल जल पर ठहरी थी और जिसमें सभी देवता वर्तमान थे? जो सब का आधार स्वरूप वह विचित्र वस्तु अज मा की नाभि पर ठहरी हुई थी, जिसके भी सभी जीव थे।' यही गर्भाण्ड कदाचित आगे चल कर जगत्स्रष्टा ब्रह्मदेव हुए और वह अज था जिसकी नाभि पर गर्भाण्ड ठहरा था वही नारायण है।

अर्थात गर्भाण्ड ब्रह्मा

अज मा—नारायण

इस प्रकार ऋग्वेद में भी (ऋ० १२ ६ १) नारायण की प्रधानता का प्रमाण पाया जाता है।[5]

---

१ डा० गोस्वामी– 'भक्ति कल्ट इन एनसियन्ट इण्डिया –(पृ० १०१, १०२)
२ सू० सा०–पृ० ४
३ The philosophy of Vaishnav Religion' Prof G N Mallik, (P 130)
४ ऋग्वेद म १०, सू० ८२
५ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी– "सू० सा०' (पृ० १)

शतपथ ब्राह्मण के कई स्थलों म (१२ ३ ४, १३ ६ १ आदि) पुरुष नारायण के सर्वाधार होने का उल्लेख है। इससे जान पडता है कि ब्राह्मण काल के अंत मे नारायण परम देवता मान लिये गये थे। तैत्तिरीय आरण्यक , १० ११) म भी ऋग्वेद के उपयुक्त प्रसग के आधार पर परम दैवत माने जाने की बात है।

नारायण या पुरुष नारायण इस प्रकार परम देव या परमात्मा के ही समान सर्वोच्च हो जाते हैं और ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (१० ६) के प्रणेता नारायण ऋषि[२] को यदि, अ य कई स्थलो के रचयिता की भाति उक्त सूक्त का विषय "पुरुष" मान लिया जाय तो, कह सकते हैं कि, वास्तव म 'पुरुष" और "नारायण" शब्द वहाँ एक ही देवता के लिए प्रयुक्त हुए है। यह बात शतपथ ब्राह्मण (१२ ३ ४) के उपयुक्त "पुरुष नारायण शब्द से भी सिद्ध होती है। नारायण ऋषि के सम्ब ध म महाभारत, आदि पर्व, २२८वा अध्याय, २४ वें सूत्र का "नर नारायणावृषी" पद क्रमश अर्जुन और कृष्ण के आदि रूप मे कई बार स्मरण किया गया है।

तैत्तिरीय आरण्यक म इसी परमात्म स्वरूप नारायण को हरि भी कहते हैं। यही "हरि" शब्द बाद मे क्रमश विष्णु और कृष्ण का पर्याय बन गया। इस प्रकार वैदिकयुग मे विष्णु और नारायण देव भिन्न भिन्न थे। उनका पहली बार सम्मिलन तैत्तिरीय आरण्यक की रचना के समय हुआ। फिर भी इन दोनो मे तात्विक अतर वर्त्तमान रहा। विष्णु यज्ञ देवता थे, नारायण सृष्टि के मूलाधार। विष्णु कर्मकाण्ड के आधार थे तो नारायण ज्ञान काण्ड के। इनम दयालु भगवान की भावना का अधिष्ठान वासुदेव कृष्ण मे मिलनापरा त ही हुआ। इसी से भागवत धर्म की नींव सुदृढ हुई। डॉ० भण्डारकर के अनुसार-"नारायण का श्वेतद्वीप वैसा ही है जैसा विष्णु का वैकुण्ठ, शिव का कैलास या श्री कृष्ण का गोलोक।"[१]

महाभारत म कृष्ण को नारायणावतार सिद्ध करने के लिए एक दिलचस्प आख्यान गढा गया है। "आदि पर्व', अध्याय-२१४ के ३२ वें सूत्र म नारायण के दो-कृष्ण और श्वेत बालो की चर्चा है। नारायण अपने इन दो बालो को तोडकर मथुरा के परित्राणार्थ बलराम और कृष्ण के अवतरण का उद्योग करते है। ३२ वें सूत्र मे स्पष्टत इस बात का उल्लख है कि इन्ही दो कृष्ण और श्वेत बालों म यदुकुल की देवकी और रोहिणी इन दो स्त्रियों की कुक्षि मे श्वेत बलदेव और श्याम कृष्ण का आधान हुआ-

तौ चापि केशौ विशता यदूना कुले स्त्रियौ देवकीं रोहिणीं च।
तयोरेको बलदेवोबभूव योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केश।
कृष्णा द्वितीय केशव सबभूवकेशो योऽसौ वर्णत कृष्ण उक्त ॥३२

---

१ वही वही

२ महाभारत- आदि पर्व-(२३८/२१, २२, २३, २४)

३ 'वैष्णविज्म " (पृ० ३२)

इस प्रकार नारायण के काले बाल से कृष्ण की उत्पत्ति मानी गई। एक स्थल पर[१] स्वयं कृष्ण अर्जुन से अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि तुम नर हो और मैं नारायण हूँ—

नरस्त्वमसि दुर्धर्ष हरिर्नारायणो ह्यहम्
काले लोकमिमं प्राप्तौ नरनारायणावृषी ॥ ४७

उद्योग पर्व में भी कहा गया है कि भगवान् कृष्ण शत्रु महारथ श्री नारायण की मूर्ति है।[२]

इसी प्रकार, गीता में "गोविन्द" शब्द आया है। इसे कुछ विद्वान् "गोपेन्द्र" शब्द का प्राकृत रूप मानते हैं। पाणिनि के सूत्र (३-१-१२८) पर वार्तिक लिखकर कात्यायन ने इस शब्द को सिद्ध किया है। भण्डारकर के मत में इस शब्द का सम्बन्ध ऋग्वेद के "गोविन्द" (इन्द्र) से अधिक सम्भव है।[३]

इनके अतिरिक्त महाभारत में जनार्दन आदि कृष्ण के कई पर्यायों का उल्लेख है।

महाभारत में जैसे कृष्ण को वासुदेव माना गया, वैसे ही नारायण को भी नहीं माना गया है। वासुदेव कृष्ण बिल्कुल मिले हुए हैं। किन्तु नारायण और कृष्ण में अवतारी-अवतार सम्बन्ध बरकरार है। नारायण के साथ नर के आने वाले उल्लेख को क्रमशः कृष्ण अर्जुन के युग्म से आपूरित किया गया है। अर्जुन को नरावतार माना गया और वह इन्द्र के अंश से अवतरित हुए। उसी प्रकार नारायणावतार कृष्ण को नारायण के अंश से अवतरित माना गया। नारायण के एक बाल से कृष्ण को उत्पन्न बतलाकर नारायण की दार्शनिक महिमा बढ़ाई ही गयी है।

इस प्रकार, उपर्युक्त देववाची नामों के स्वरूप पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण में जब इन सबों का एकीभाव हुआ तभी भागवत धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ी। महाभारत काल तक वासुदेव, कृष्ण, विष्णु, नारायण, हरि आदि सभी एक एवमेव हो चुके थे। किन्तु गोपाल कृष्ण का सम्बन्ध इनके बीच अभाव था। ऐसे किसी भी देवता का नाम न तो महाभारत में आता है और न पाणिनि या पतञ्जलि के महाभाष्य में।[४]

महाभारत के नारायणीय खण्ड में वासुदेवावतार का उल्लेख है। वहाँ कंस वध की भी चर्चा है। पर इसमें गोपाल कृष्ण या उनके असुर-दमन का कहीं कोई उल्लेख नहीं। प्रश्न हो सकता है—तो क्या कंस का वध नारायण या विष्णु ने किया था? आचार्य द्विवेदी के अनुसार आदि कृष्ण और देव वासुदेव के योग से एक कृष्ण ब्राह्मण युग के अन्त में प्रतिष्ठित हो चुके थे। दूसरा में बाद का एक कृष्ण का मिश्र—(१) मथुरा के बाल गोपाल और (२) वृष्णियों के नायक राजपूत कृष्ण। इस प्रकार कृष्ण का विकास हुआ।[५] किन्तु आभीरों के बाल देवता अब भी अनुपस्थित थे। इस पर आगे विचार किया जायगा।

---

१ महाभारत—वन पर्व, १२—४७, ४८
२ ,, —उद्योगपर्व, ७०—३, ४
३ आचार्य द्विवेदी—सू० सा० (पृ० ४—५) तथा भाण्डारकर—'वैष्णविज्म (पृ० ३६)
४ ,, ,, ,,
५ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी— 'सू० सा० —(पृ० ४—५)

द्वितीय अध्याय

"महाभारत कालीन कृष्ण का विकास"

अनुच्छेद–१

★महाभारत के दिव्य पुरुष

अनुच्छेद–२

★गीता के योगेश्वर

अनुच्छेद–३

★अवतारवाद के प्रेरक चरित्र

अनुच्छेद–१

"महाभारत के दिव्य पुरुष"

श्री कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप की स्फुट झाँकी महाभारत काल में ही मिल जाती है।

वासुदेव पूजा पाणिनी काल (ई० पू० ७ वी शती) से ही हमारे यहाँ प्रचलित थी। ई० पू० ५ वी शती में तामिल प्रान्तीय एक सन्त संघ द्वारा वैष्णवता का आदर हुआ। इन सन्तों ने वैष्णव संगीत का गान किया। इनमें नारायण और विष्णु की प्रधानता थी।[1] किन्तु, भण्डारकर के अनुसार इन पूज्य विधियों के अतिरिक्त एक चौथी विधि बाल कृष्ण महिमा की निकली, वह अर्वाचीन है। हरिवंश, वायु, भागवत आदि पुराणों में बाल कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण की महिमा वर्णित है किन्तु उनका प्रतिपादन महाभारत में नहीं है। सभापर्व में जहाँ शिशुपाल ने कृष्ण का विरोध करते हुए उनके प्रति "गोपाल" शब्द का प्रयोग किया तथा वहीं पूतना वध, गोवर्धन धारण आदि का उल्लेख किया गया है, उस स्थल को विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं। आगे इसी पर विचार किया जाता है।

महाभारत में ब्रजलीलाओं की कुछ चर्चा नहीं है। शिशुपाल ने कृष्ण की भरपेट निन्दा की है। किन्तु, उस निन्दा में भी कृष्ण द्वारा गोपियों के साथ विहार करने का वर्णन नहीं है। बंकिम चन्द्र कहते हैं–"यदि महाभारत लिखे जाने के समय कृष्ण पर गोपियों का यह कलंक होता तो शिशुपाल या शिशुपाल वध की कथा लिखने वाले इस कलंक का उल्लेख किये बिना कभी न रहते।[2] किन्तु इसका एक समाधान यह भी हो सकता है कि यदि गोपियों के साहचर्य से कृष्ण मलिन हो जाते तो शिशुपाल इस दोष के वर्णन में कभी न चूकता। उसने कहीं परस्त्रीगामी होने का कलंक नहीं लगाया। अतः इससे कृष्ण चरित्र की गोपियों के सान्निध्य में भी निष्कलंकता ही सिद्ध होती है।[3]

इसके अतिरिक्त आज मे ब्रह्मचारी भीष्म ने भी कृष्ण की सच्चरित्रता का माहात्म्य गाया है। यदि कृष्ण का चरित्र दूषित रहता तो भीष्म उनका देव सदृश गुणगान नहीं करते।

किन्तु, हम आगे देखेंगे कि भीष्म भी कृष्ण का गोकुल-लीला का संयत संकेत (वृन्दावन, यमुना, नन्दगाँव, मुरली, वनमाला, पशुगण्या, गायन, क्रीडन, नृत्यन आदि के वर्णन में) करते हैं।

1. प० गुरुन्द बिहारी मिश्र–"हिन्दी साहित्य और इतिहास" (पृ० ६४–६५)
2. बंकिम चन्द्र–"कृष्ण चरित्र"–पृ० ६५
3. द० बलदेव उपाध्याय– भारतीय वाङ्मय में श्री राधा" (पृ० ३८)

कुछ विद्वानों के तर्क के अनुसार यदि गोकुल लीला परवर्ती कल्पना है तो उसका उल्लेख न करने वाले "शिशुपाल वध" का प्रक्षिप्त अंश ही क्या माना जाय ?[१] किन्तु, ऐसी बात नहीं है। महाभारत के सभा पर्व में शिशुपाल के मुँह से ऐसी बातें कहलाई गयी हैं जिनमें कृष्ण की गोकुल वाली कथा का आभास पाया जाता है।[२] डा० भण्डारकर इसे इसलिये प्रक्षिप्त मानते हैं कि शान्ति पर्व में भीष्म के मुँह से जो कृष्ण स्तुति कराई गयी है, उसमें इनका उल्लेख नहीं है।[३]

यहां देखना यही है कि कृष्ण की लीलाओं के उपर्युक्त संदर्भ महाभारत में उपलब्ध होते हैं या ये कुछ मिलाकर परवर्ती कल्पना अथवा इतर जातियों के कृष्णचरित पर सांस्कृतिक उत्तरदान भर हैं।

इस दृष्टि से महाभारत के कुछेक स्थल ध्यातव्य हैं।—

(१) महाभारत–आदि पर्व–२३९ २४६–सुभद्रा–हरण प्रसंग–कृष्ण की प्रेम प्रवणता

(२) वही – वही–२४७/३६–इन्द्र प्रस्थ में नवदंपत्ति को उपहार व्रज की गायें

(३) वही – वही–२४७/४९ ६०–कृष्ण–अर्जुन का यमुना तटवर्ती वनों में विहार

(४) महाभारत–आदिपर्व–२४८/१४, ४१ अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण की यमुना तट पर जल क्रीडा—आगामी वृत्तान्त इस प्रकार है—"वहां यमुना तटवर्ती विहार योग्य एक सुरम्य स्थान पर पहुँच कर, जहां भाँति भाँति के वृक्ष और भवन बने थे, वे एक विशाल भवन के भीतर प्रविष्ट हो गये जहां खान पीने की भोग सामग्रियाँ तैयार रखी गयी थीं। श्री कृष्ण और अर्जुन के इच्छानुसार उभडे हुए और कडे स्तनों वाली विशाल नितम्बों वाली, मत्तगामिनी एवं सुन्दर नेत्रों वाली उनकी रमणियां भी वहां क्रीडा करने लगीं। इस प्रकार, वेणु, वीणा, मृदंगादि उत्तम बाजों से वह समृद्धिशाली रंग महल तथा आस पास का वन प्रदेश प्रतिध्वनित होने लगा। तब वृष्णिवंशी कृष्ण एवं अर्जुन एक सुरम्य स्थान पर गये और बहुमूल्य आसनों पर बैठ गये। वहां बैठ के दोनों पूर्वकृत पराक्रमयुक्त कार्यों की तथा अन्यान्य विषयों की चर्चा करने लगे।

"तस्मिंस्तदा वर्तमाने कुरु दाशार्हनन्दनौ क्वचिदुद्देश सुमनोहर" ॥३९
"तत्र पूर्वव्यतीतानि विक्रान्तानीतराणि च। बहूनि कथयित्वा तौ
रेमाते पार्थमाधवौ ॥४१

उपर्युक्त संदर्भ कृष्ण की लीला प्रियता का स्फुट आभास प्रदान करते हैं।

(५) (क) महाभारत – सभापर्व – ४२ वां अध्याय–भीष्म द्वारा विष्णु के अवतार कृष्ण की स्तुति – गोकुल लीला विषयक उल्लेख—श्लोक – १७—नन्द गोप, शकट वध,

१ प० गुरुदेव बिहारी मिश्र–' हिन्दी साहित्य और इतिहास ' (पृ० ६५)
२ महाभारत–सभा पर्व–अध्याय–६४–(४–पूतना), (७–वक केशी, वृषासुर), (८–शकट) (९–अर्जुन वन कालीय) (१०–गोवर्धन–धारण) (१२–कंस–वध)
३ "वैष्णविज्म " (पृ० ३६)

१८-यशोदा, यमुना, शिशुलीला, २३-पूतना, २५-महागप ७७-नवनीत, गोपी, २८-उखल बन्धन ३१-वत्सपाल, ३२-मयूर मुकुट, ३३-गाप, वेणु।

(ख) ८३ वाँ अध्याय १-कालिय मदन, २-धनुष वध, ३-गोवर्धन धारण, ४-अरिष्टासुर वध, ५-केशि वध ११-गोपाल कृष्ण, २१-बाल गोपाल, २६-केशी वध, ३०-चाणूर वध ३२-मुष्टिक वध, ३२/३३-कंस वध।

उपर्युक्त अवतरणा से कृष्ण की गोकुल लीला का अस्तित्वाभास मिलता है। इसमें यद्यपि परवर्ती अतिरंजना की गुञ्जाइश है किन्तु अक्षेपों के अस्तित्व को भी एक सीमा में ही स्वीकार करना होगा।

यहाँ यह बात विचारणीय है कि भीष्म ने कृष्ण के वासुदेवत्व का कथन पृथक् किया है और उनकी गोकुल लीला का प्रसंग युधिष्ठिर की जिज्ञासा पर प्रसंग से किया गया है। अतः दो बातें संभव हैं—एक तो यह कि "युधिष्ठिर की जिज्ञासा" किसी परवर्ती व्यक्ति की जिज्ञासा है। दूसरी यह कि दोनों दो उद्देश्यों से प्रेरित माहात्म्य कथन हैं। एक में पुरुषोत्तम माहात्म्य कथन है तो दूसरे में अवतार लीला की कल्पना। उत्तरयुग में इस द्वितीय पक्ष का ही प्रसंग विस्तार हुआ है। यही कृष्णचरित का भावात्मक पक्ष है। महाभारत में कृष्ण का मनुजत्व और देवत्व दोनों अंकित हैं। मनुजत्व प्राचीनतर स्वरूप है। इसी में देवत्व की परवर्ती कल्पना अग्रसर हुई है। अतः उपर्युक्त द्विविध कथन से यह स्थापना सिद्ध होती है कि महाभारत काल कृष्ण चरित्र के मनुजत्व से देवत्व के आसन पर क्रमशः विराजमान हो जाने का एक सोपान है।

(ग) ६० वाँ अध्याय—द्रौपदी चीर हरण-चीर हरण के प्रसंग में स्वयं द्रौपदी के मुख से कृष्ण के विभिन्न सम्बोधनों में उनकी गोकुल लीला का आभास मिलता है। द्रौपदी की कृष्ण से यह प्रार्थना है—

श्री कृष्ण द्वारिकावासिन् गोप गोपी जनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥४५॥

इस संकट में पड़ी हुई द्रौपदी ने लीला पुरुष कृष्ण का जिन मार्मिक संबोधनों में आह्वान किया था उनमें गोपीजनप्रिय (४५), रमानाथ और व्रजनाथ (४६) कृष्ण उल्लेखनीय हैं। कहते हैं कृष्ण की कृपा से नाना रागविरागाणि धर्म स्वरूप वसन आपसे आप बढ़कर अनन्त हो गया। पं० चिन्तामणि विनायक वैद्य उक्त श्लोक पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि 'गोपीजनप्रिय' नाम का यही अभिप्राय है कि वे (कृष्ण) दीन अबलाओं के दुःख हर्त्ता हैं। इस नाम में यदि निन्द्य अर्थ होता तो सती द्रौपदी को पातिव्रत की अग्नि परीक्षा के समय उसका स्मरण नहीं होता। यदि होता भी तो उसे वह अपने मुँह से कदापि नहीं निकालती और यदि निकालती भी तो वह उसके लिए फलप्रद नहीं होता। अतएव यह निर्विवाद है कि इस नाम में गोपियों का विषयातीत भगवत्प्रेम ही गर्भित है। महाभारत का वर्तमान स्वरूप ई० सन् से २५० वर्ष पूर्व मिला। उस समय तक यह कल्पना थी कि गोपियाँ श्री कृष्ण के साथ जो प्रेम करती थीं, वह निर्व्याज विषया

तीत और ईश्वर भावना से युक्त था। यही कल्पना महाभारत मे दिखाई पडती है।[1] प० बलदेव उपाध्याय की सम्मति म इस पद्य का "गोप गोपीजनप्रिय" शब्द इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि महाभारत कृष्ण की बाल लीला (?)–गोपियों के साथ क्रीडा करने से पूर्णतया परिचित है। अत इन लीलाओ को नवीन तथा कल्पित मानना नितान्त अनुचित है।[2] गोपी जन वल्लभ कृष्ण ने अपने किशोर जीवन म गोपियों का चीर हरण किया था। पूर्ण प्रौढावस्था मे उन्होंने द्रौपदी का चीर बढाया। लीला पुरुषोत्तम ने जिस अद्भुत ढग से अपने को मर्यादा पुरुष सिद्ध किया, वह अपने आप म एक रहस्य है। पुराणकारो और कवियों की भावुकता इस प्रसग म अनेक बार उद्वलित हुई है। इसमे कृष्ण के चरित्र की विलक्षणता झलकती है—

> वासासि व्रजवासि वारिज दृशा हृत्वा हठादुच्चकैर्यं,
> प्राग्भूरहमाह रोह स पुनर्वस्त्राणि विस्तारयन।
> व्रीडाभारमपाचकार सहसा पाचालजाया स्वय,
> को जानाति जनो जनार्दन मनोवृत्ति कदो की दृशी।[3]

अर्थात्, जिस कृष्ण ने पहले जबरदस्ती गोपियो के वस्त्र चुराये थे, उसी चोर श्री कृष्ण ने वस्त्रों को बढाकर द्रौपदी की लज्जा रखी। जनार्दन की वृत्ति को कौन जान सकता। काव्यत्व की दृष्टि से इसका बडा महत्त्व है। कुछ विद्वान् तो चीर हरण प्रसग को ससार के साहित्य म एक दुर्लभ वृत्तान्त मानते हैं।[4] किन्तु सत्याग्रह उन्हे इस मनोहर रसास्वाद से वचित कर देता है। क्योकि इसके ऐतिहासिक तत्वानुसन्धान करने पर उन्हे निराशा होती है।

(घ) वन पर्व–अध्याय–१२–काम्यक वन म अर्जुन द्वारा कृष्ण का माहात्म्य कथन

यहाँ उन्हे क्रमश तपस्वी (११–१७), वीर सामन्त (१६–२०), इन्द्रसखा (२१), नारायणावतार (२२), विष्णु अवतार (२२) आदि कहा गया है। कृष्णावतार की माला जो विभिन्न युगो के देवताओ के हृदकमल से हो कर गूथी जा सकी है, कृष्ण की उक्त विकास कथाएँ उनकी इसी द्वन्द्व साधना के निर्दिष्ट सोपान हैं। कृष्ण चरित्र का इतिहास यहाँ पहुँचकर एक मोड लेता है और इसी मोड पर कृष्ण के सामाजिक चरित्र म गोकुल लीला की कल्पना साकार हो उठती है। अर्जुन इसी प्रसग म कृष्ण की बाल क्रीडाओ का उल्लेख करते हुए कहता है—

अपने बालकपन म बलदेव जी के साथ रह कर जो दिव्य कर्म किये हैं, वैसा कर्म कभी किसी से नहीं हो सकते और आगे भी कोई वैसा कर्म नहीं कर सकता।[5]

---

१ "महाभारत मीमासा "पूना (पृ० ५६८)—श्री चि० वि० वैद्य।

२ भारतीय वाङमय म श्री राधा' (पृ० ३८–३९) प० ब० उपाध्याय।

३ "श्रीकृष्णाङ्क कल्याण' ३२–'देववाणी म श्रीकृष्ण" सग्रहकर्ता गगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण "विष्णु"।

४ बकिमचन्द्र कृष्ण चरित्र" (१२५)

५ महाभारत–वनपर्व–१२/४३, ४४।

(ङ) उद्योग पर्व-अध्याय-६९-कृष्ण के विभिन्न पर्याय—

यहाँ वह वासुदेव, विष्णु माधव, मधुसूदन और कृष्ण हैं। समस्त विश्व प्रपंच को अपने में लय कर लेने वाले और मोक्ष दाता होने के कारण श्री विष्णु भगवान् को ही यहाँ कृष्ण कहा गया है।

५वाँ श्लोक इस प्रकार है+"विष्णुस्तद्भाव योगाच्च कृष्णाभवति सात्वत ।"

अध्याय-७८ के १७वें श्लोक में कृष्ण अपने अवतार के सम्बन्ध में आत्म घोषणा करते हैं। द्रौपदी इसका अनुमोदन करती है। आगे चलकर दुर्योधन भी इन्हें तीनों लोकों में पूजनीय मान लेता है।

अध्याय-१३० के ६०-६३वें श्लोक तक महात्मा विदुर भाविष्ट दुर्योधन के समक्ष कृष्ण की बाल लीलाओं का उल्लेख करते हैं। द्वारिका लीला में पारिजात हरण का भी विवरण है। पुराणकारों ने इसका विस्तृत उल्लेख किया है। हिन्दी कविता के आदि चरण में हुए मैथिल नाटककार उमापति ने इस कथा का आधार लेकर "पारिजात हरण" नाटक रचा है।

(च) भीष्म पर्व-महाभारत का प्रारम्भिक युद्ध पर्व है। इसमें कृष्ण की शान्ति में अगा पर नियति के व्यंग्य और गीता प्रवचन के रूप में नियति के अधिकार पर नियन्ता के सत्य प्रकाश की विजय का प्रदर्शन हुआ है।

इसके २५ से लेकर ४२ तक के १८ अध्यायों में गीता प्रवचन है। गीतावाचक कृष्ण का अनुशीलन अगले अनुच्छेद में विस्तार से किया जायगा।

५९ वें अध्याय में कृष्ण भीष्म प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए हाथ में शस्त्र उठा लेते हैं। भीष्म रुक जाते हैं। कथा शेष हो जाती है। पुराणकार एक कदम और आगे बढ़ता है। उसे इसमें एक भक्त हृदय का वीर व्रत पूर्ण होता जान पड़ता है। कविगण इसी के आश्रय में भगवान की भक्त प्रतिज्ञा पूरक विभूति के दर्शन करते हैं।

इस पर्व में विश्वोपाख्यान विषयक ६५ ६६ और ६७-तीन अध्याय हैं।

६५वें अध्याय में भीष्म दुर्योधन संवाद है। भीष्म के शब्दों में यहाँ कृष्ण पीताम्बरधारी (५२) हैं कामेश्वर (५७) हैं। वह साथ ही वासुदेव (४७) भी हैं नारायण (५०) भी विष्णु (६३) भी और कृष्ण (६४) भी। यहाँ वैदिक देवताओं सम्बन्धी विभिन्न तत्वों का जैसे समवाय हो गया है। इस तत्व समवाय के मूल में अवतारवादी दर्शन था। और सबों के केन्द्र में कृष्ण प्रतिष्ठित थे

६६वें अध्याय में मूलतः कृष्ण के वासुदेवत्व का विधान है। और ६७वें अध्याय में उनकी संस्तुति।

(छ) द्रोण पर्व के ११ वें अध्याय में धृतराष्ट्र द्वारा श्री कृष्ण का चरित्रानुकीर्तन किया गया है। यहाँ क्रमबद्ध रूप में प्रथमबार कृष्ण के ऐतिहासिक पौराणिक चरित पर प्रकाश डाला गया है। प्रक्षेपों के इस घोर अरण्य में जहाँ पग पग पर 'समन्नामयिक आख्यान (कान्टम्पररी हिस्ट्री) और परवर्ती पुराण कल्पना का द्वन्द्व है पाश्चात्य

विद्वानो की अश्रद्धेय स्थापनाए[१] हैं और जिनसे प्रभावित अपनी संस्कृति के अभिमानी साहित्यकारों की धमकियाँ है[२], वही हमारे आस्तिक संस्कार भी है जो "पाण्डवों के साथ ही कृष्ण कथा के अंश का" मूल महाभारत की प्रथम प्रामाणिक तह भी स्वीकारते हैं।[३]

११ वें अध्याय में कृष्ण द्वारा बाल्यकाल में गोप मण्डली में पलकर अलौकिक 'दिव्यानि कर्माणि"-(७/११/१) कर्म किये जाने का उल्लेख है। इसमें एक ओर तो महाभारत (पाण्डव कथा)-पूर्व कृष्ण की अद्भुत लीलाओं से लेकर कंस वध तक की कथा है और दूसरी ओर पाण्डवों के नेता रूप में उनकी अद्भुत कृतियों का भी समावेश है।

यहाँ पूर्व महाभारत की कृष्ण लीला—जिसकी कल्पना इसकी दूसरी-तीसरी तह में सृष्ट बतायी जाती है और जिसका विकास परवर्ती पुराणों और काव्यों में भाव विदग्धता के साथ हुआ निम्नप्रकार से वर्णित है—

(१) बाल्य काल में गोप कुल में पलकर कृष्ण का त्रिभुवन भर में अपने बाहुबल से सुविख्यात हो जाना—

(२) (क) गोवर्धन धारण, दावानल शमन आदि।

(ख) पूतना, शकट, केशि, ऋषभ, धेनुक, अरिष्ट, प्रलम्ब, नरक, जम्भ, पीठ, चाणूर, मुष्टिक, कंस आदि असुरों का वध।

यहां कृष्ण एक सामान्य बालक न होकर बाल देवता है। महाभारत वर्णित कृष्ण लीलाएँ प्राय वही हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

जरासंध वध के अनन्तर कृष्ण की अलौकिक महिमा के सम्बन्ध में इदमित्थं प्रारम्भ हो गया था। 'शिशुपाल-वध' पर्वाध्याय में उन्हें विधिवत् (भीष्म आदि के सम्मान द्वारा) और निषेधवत् (शिशुपाल के विरोध द्वारा) देवत्व का पद मिला। देवराज इन्द्र से पारिजात छीन कर उन्होंने इसकी सिद्धि की। दुर्योधन की सभा में अन्धे धृतराष्ट्र के अन्तर्नेत्रों में अपनी ज्योति दर्शाकर उसे चमत्कृत कर दिया। यहां प्रथम बार "कृष्णमीश्वरम्"[४] शब्द का प्रयोग हुआ है। और, फिर गीता के विराट दर्शन में तो वह पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम ही बन गये हैं। यहाँ पहुँचकर कृष्ण ईश्वर के पूर्णावतार सिद्ध होते हैं। प्रश्न है कि क्या ईश्वर सचमुच मानवरूप में अवतार लेता है? इसके मूल में पठने पर—"हकारात्मक' उत्तर ही मिलता है। बंकिमचन्द्र के शब्दों में[५]—

---

१ Wilson, Preface to the Vishnu Purana– "The Mahabharata, however, is the work of various periods and requires to be read through carefully and critically "

२ बंकिमचन्द्र–'महाभारत को कृष्णचरित्र का आधार मानने में बड़ी सावधानी के साथ उससे काम लेना होगा।''–' कृष्णचरित्र (पृ० ६८)

३ वही (पृ० ६२)

४ द्रोणपर्व—११/२४, २५—"यच्च भक्त्या प्रपन्नाऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम्।"

५ बंकिमचन्द्र–कृष्णचरित्र (पृ० ७५–७६)

"निराकार ईश्वर हमारा आदर्श हो नहीं सकता यद्यपि पहले तो वह अशरीरी है हम शरीरी है, शारीरिक वृत्तियाँ हमारे धर्म का प्रधान विघ्न है इसलिए ईश्वर यदि स्वयं साकार और शरीरी होकर दर्शन दें तो उस आदर्श की आलोचना से सच्चे धर्म की उन्नति हो सकती है। इसी हेतु ईश्वर के अवतार की जरूरत है।'

'कृष्णमीश्वर का यही रहस्य है। इस दर्शन की पीठिका पर कृष्ण के बाल और यौवन कालीन अद्भुत कृत्यों पर उत्तरोत्तर अलौकिक आख्यानों की कल्पना विकसित होती गयी। कृष्णचरित कृष्ण लीला में रूपान्तरित हुआ और ऐतिहासिक कृष्ण अपने भावात्मक स्वरूप में लोक चेतना में पुराणों और काव्यों में विराजने लगे। उनके परमदैवत स्वरूप का लोक विश्वासों में आधान हुआ, पुराणों में पल्लवन और काव्यों में पुष्प विकास किन्तु यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि महाभारत काल में ही कृष्णचरित्र में अलौकिक आख्यानों का प्रस्फुटन होने लगा था। अतः भावना का जो प्रसार आगामी पुराण युग या काव्य युगों में देखा जाता है उसका मूल उद्गम महाभारत ही है। यहीं उनके चरित्र में भूत (Matter) और अध्यात्म (Spirit) का समन्वय हो गया है।

"It is true that in the Epic poems Ram & Krishna appear as Incarnation of Vishnu but they at the Same time come before us as human heros and these two characters (the divine & the human) are so far from being inseparably blended together, that both of these heros are for the most part exibited in no other light than other highly gifted men acting according to human motives & taking no advantage of their divine superiority "[1]

उत्तरवर्ती पुराण युग में इसी समन्वय का प्रयत्न है।' अवतार वाद'' और ''लीलावाद इस समन्वय की दिव्य मनोभूमियां हैं। वासुदेव कृष्ण के सिद्धान्तों पर जो धर्म चला उसे वैष्णव, सात्वत या भागवत धर्म कहते हैं। वैष्णव भक्ति की सगुणधारा यहीं से फूटती है। इस प्रकार शास्त्र पुराण और काव्य का आधार पाकर कृष्ण भक्ति की निर्मल धारा भारतीय संस्कृति के तल से फूट पड़ी और सम्पूर्ण जन मानस इसमें सराबोर हो गया। विष्णु पुराण में ईश्वर लीला की परम मनोवैज्ञानिक प्रतिपत्ति मिलती है–

"मनुष्यदेहिना चेष्टामित्येवमनुवर्त्तत ।
लीला जगतपतेस्तस्य छन्दत सम्प्रवर्त्तते ॥"[2]

अर्थात् मनुष्य धर्म का अनुसरण करने वाला वह जगत्पति स्वेच्छा से ये लीलाएँ करता है।

---

१ Lassen s Indian Antiquities (quoted by Muir)
२ विष्णु पुराण-५/२२/१८

अनुच्छेद–२

"गीता के योगेश्वर"

भीष्म पर्व के २५ से लेकर ४२ तक के १८ अध्यायों में कृष्ण और अर्जुन के संवाद रूप में गीता कही गई है। इस कथा के वाचक संजय और श्रोता धृतराष्ट्र हैं। कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में योद्धा अर्जुन को मोह उत्पन्न होता है। उसके मोह को दूरकर उसे कर्मक्षेत्र में प्रेरित करने के लिए कृष्ण ज्ञान और कर्म की जो भी बातें कहते हैं वही गीता है। इस प्रकार, केशव अर्जुन के रथ चालक ही नहीं, उसकी आत्म विस्मृत कर्तव्य चेतना को झकझोर कर जगा देने वाले चैतन्य पुरुष भी हैं। गीता उसी पुरुष की मानसिक उपलब्धि है।

सम्पूर्ण विषय-वस्तु को देखने से ऐसा लगता है कि गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का त्रिवेणी संगम हुआ है। गीता के ही अनुसार उस युग में ज्ञान की दो मुख्य धाराएँ-(१) ज्ञान योग और (२) कर्मयोग के रूप में प्रचलित थी।–

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३/३

इन्हीं दो मार्गों को क्रमश निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग भी कहा जाता था। स्थितप्रज्ञता और निष्काम कर्मयोग इन दोनों पद्धतियों के द्वारा केशव ने उक्त दोनों विचार-धाराओं का मर्यादित और समन्वित किया। किन्तु, ज्ञान के इस प्रचलित क्षेत्र में केशव ने एक क्रांति भी की थी। गीता का सारा "भक्तियोग' इसी नयी दिशा में एक प्रयोग है। कृष्ण ने ज्ञानवाद के गौरव और कर्मवाद की क्लान्ति को शरणागति की शांति में परिणत करते हुए एक नवीन भावयोग को जन्म दिया। यही भक्ति योग है जो भागवतों के बीच 'ऐकान्तिक धर्म' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यही गीता का प्राण है। स्वयं कृष्ण ने इस धर्म की ओर लक्ष्य करते हुए स्पष्ट कहा है–

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥११/५३
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥११/५४

अर्थात् हे अर्जुन ! जैसे तूने मुझे देखा वैसे न तो वेद और तप से और न दान और यज्ञ से ही मुझे कोई देख सकता है। किन्तु अनन्य भक्ति से इस रूप में कोई भी मुझे तत्त्व जान और प्राप्त कर सकता है। समर्पण और ऐकान्तिक प्रेम इस "अनन्य भक्ति" के आधार हैं। तथा अवतारवचन स्वरूपदर्शन और एकान्तवाद इसके तीन क्रमिक सोपान हैं।

अनुच्छेद–२

"गीता के योगेश्वर"

भीष्म पव के २५ से लेकर ४२ तक के १८ अध्यायो मे कृष्ण और अजु न के सवाद रूप मे गीता कही गई है। इस कथा के वाचक सजय और श्राता धृतराष्ट्र हैं। कुरक्षेत्र की युद्ध भूमि म योद्धा अजु न को मोह उत्पन्न होता है। उसके मोह का दूरकर उसे कमक्षेत्र मे प्रेरित करने के लिए कृष्ण नान और कम की जो भी बातें कहते है वही गीता है। इस प्रकार, केशव अजु न के रथ चालक ही नही, उसकी आत्म विस्मृत मत य चेतना का झकझोर कर जगा देने वाले चत य पुरुष भी हैं। गोता उसी पुरुष की मानसिक उपलब्धि है।

सम्पूण विषय वस्तु को देखने से ऐसा लगता है कि गीता मे नान, कम और भक्ति का त्रिवणी सगम हुआ है। गीता के ही अनुसार उस युग मे ज्ञान की दो मुख्य धाराएँ–(१) नान योग और (२) कमयोग के रूप म प्रचलित थी।–

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साख्याना कर्मयोगेन योगिनम्॥ ३/३

इ हीं दो मार्गों का क्रमश निवत्ति माग और प्रवत्ति माग भी कहा जाता था। स्थितप्रनता और निष्काम कमयोग इन दोना पद्धतियो के द्वारा केशव न उक्त दोना विचार धाराओ का मर्यादित और समन्वित किया। कि तु, नान के इस प्रचलित क्षेत्र मे केशव ने एक क्रांति भा की थी। गीता का सारा 'भक्तियोग'' इसी नयी दिशा मे एक प्रयाग ह। कृष्ण ने नानवाद के गौरव और कमवाद की क्लान्ति को शरणागति की शांति म परिणत करते हुए एक नवीन भावयाग का ज म दिया। यही भक्ति योग है जो भागवता के बीच "ऐकान्तिक धम" के रूप म प्रसिद्ध हुआ। यही गीता का प्राण है। स्वय कृष्ण न इस धम की ओर लक्ष्य करते हुए स्पष्ट कहा है–

नाहवेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एव विधो द्रष्टु दृष्टवानसि मा यथा॥११/५३
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन।
ज्ञातु द्रष्टु च तत्वेन प्रवेष्टु च परतप॥११/५४

अर्थात् हे अजु न ! जसे तून मुझे देखा वस न तो वद और तप स और न दान और यन से ही मुझे कोई देख सकता है। कि तु अनन्य भक्ति मे इस रूप म कोई भी मुझे देख जान और प्राप्त कर सकता है। समपण और ऐकान्तिक प्रेम इस 'अनन्य भक्ति' के आधार है। तथा अवतारकथन, स्वरूपदशन और एकान्तवाद इसके तीन क्रमिक सोपान हैं।

वस्तुत इसी आधार पर गीता के कृष्ण स्वरूप को हृदयंगम किया जा सकता है। गीता के चतुर्थ अध्याय का ७वां श्लोक अवतारवाद का प्रतिनिधि सूत्र है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ ४/७

अर्थात् हे भारत! जब जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म की प्रबलता फैल जाती है, तब (तब) मैं स्वयं ही जन्म (अवतार) लिया करता हूँ। अगले श्लोक में उसके प्रयोजन रूप में साधुओं के परित्राण दुष्टों के विनाश और धर्म के संस्थापन का उल्लेख है।[1] मनुष्य जीवन में जन्मान्तरवाद सम्बन्धी धारणा नष्ट कर रही है। किन्तु उक्त श्लोक में उसकी समस्त कटुता का परिहार करते हुए जीवन के प्रति अविनश्वर आस्था और चिरन्तन प्रेम का विधान किया गया है। इसमें मानो देवकी कृष्ण का जीवन दर्शन बोल उठा है। केशव के इस आश्वासन की शीतल छाया में हजारों वर्षों से मनुष्य अपनी जीवन यात्रा तय करता आया है। यह उसकी अमर जिजीविषा का सशक्त उद्घोष है। इसने निखिल मानव मन में विश्वास की दीपशिखा जलाई है। यही विश्वास भक्ति मार्ग का प्रस्थान बिन्दु है। यहीं से भक्तों के निर्मलचित्त में श्रद्धा भाव उमड़ने लगता है जो क्रमशः अनन्यता को प्राप्त करता हुआ करुणासिन्धु भगवान के चरणों में आत्म समर्पित हो जाता है। यहां वैदिक कर्मकाण्ड की दुहाई नहीं है ('नाहं वेदै'), कृच्छ्र साधना का झमेला नहीं है ('न तपसा') दान दक्षिणा का ब्राह्मणाभिमान नहीं है ('न दानेन') और न यज्ञ योग का दुर्विधान ('न चेज्यया') ही है। यहां है एक निश्छल भक्त हृदय की भगवान के चरणों में अगाध प्रीति सखा की सखा के प्रति पूर्ण आत्म प्रतीति। जिस अर्जुन के हृदय में भक्ति की यह ज्वाला जल उठती है वह अपने कृष्ण को प्रत्यक्ष देख ही नहीं लेता, तत्त्वतः हृदयंगम भी कर लेता और उसमें तदाकार भी हो जाता है।

यों तो सम्पूर्ण महाभारत के कृष्णचरित्र में विचित्रताओं का ही अद्भुत संयोग लक्षित होता है किन्तु गीता में भी इसकी कमी नहीं है। विचित्रता लीलामय कृष्ण की एक अन्तरंग विशेषता रही है। एक ओर वह युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में स्वागताध्यक्ष भी थे और पुरुषोत्तम यज्ञ पुरुष भी जो समागत अतिथियों के चरण भी धोते थे और शिशुपाल जैसे प्रतिपक्षियों का पत्र में संहार भी कर रहे थे। वह कौरवों की सभा में संधि की भीख भी माग रहे थे और जन्मान्ध को दिव्यपुरुष के दर्शन भी करा रहे थे। वह कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में मित्र अर्जुन का सारथ्य भी कर रहे थे और मोहाविष्ट प्रकृति का जागरण करने के लिए गीता का मंगल मंत्र भी पढ़ रहे थे। वह अद्भुत हैं। वह गीता के अनासक्ति योग द्वारा मनुष्य के वैराग्य को भी उद्बुद्ध करते हैं और निष्काम कर्मयोग का पाठ पढ़ाकर उसे कर्त्तव्य प्रेरित भी कर देते हैं। विविधताओं में सामंजस्य उनके चरित्र की विलक्षण उपलब्धि है। नैष्कर्म्य में नियत कर्म, 'अजोऽपि सन्' 'बहूनि मे जन्मानि', 'अमृतं च मृत्युश्च' तथा अरूप में विश्वरूप के दर्शन हो इस चरित्र का रहस्य

[1] गीता—४, ८

है जो अपने प्रेममय द्वन्द्व से अपनी लीला में समस्त सृष्टि में सतत् संतुलन स्थापित किए हुए हैं।

केशव के स्वरूप दर्शन में भी इसी विचित्रता के दर्शन होते हैं। ११ वें अध्याय में इसका विस्तार से निदर्शन हुआ है। पुरुषोत्तम कृष्ण के परम गोपनीय आध्यात्मिक प्रवचन को सुनकर अर्जुन मोहातीत तो हो जाता है किन्तु उसके मन में कृष्ण के विराट स्वरूप को एक बार देखने की इच्छा[1] बनी रहती है। वह अपनी इच्छा खुल कर व्यक्त करता है और "महायोगेश्वर हरि",[2] उसे दिव्यचक्षु प्रदान कर अपना ऐश्वर्ययुक्त अद्भुत स्वरूप सामने कर देते हैं। विश्वेश्वर के उस "महाकाल स्वरूप को देखकर "भीतभीत" अर्जुन उस सच्चिदानन्द घन ब्रह्म को बारम्बार प्रणाम करके अपने धृष्ट सखा भाव के लिए क्षमा याचना करता है। किन्तु उसकी कुछ उपमा, कुछ सम्बोधन बड़े महत्व के हैं। इसमें भक्त और भगवान के बीच जो आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध हो सकता है, उसकी प्रथम बार सुन्दर झलक मिल जाती है। वह कहता है —

> सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
> अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥ ४१
> यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहार शय्यासन भोजनेषु।
> एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ ४२

अर्थात् ("हे कृष्ण") तुम्हारी इस महिमा को बिना जाने, मित्र समझकर प्यार से या भूल से 'अरे कृष्ण' 'ओ यादव', 'हे सखा' इत्यादि जो कुछ मैंने कह डाला हो और हे अच्युत! आहार विहार में अथवा मौन बैठने में अकेले में या दस मनुष्यों के साथ मैंने हँसी दिल्लगी में तुम्हारा जो अपमान किया हो, उसके लिए मैं तुमसे क्षमा मांगता हूँ। किन्तु अर्जुन की यह माहात्म्यबुद्धिगत निस्संगता (डिटैचमेंट) बहुत देर टिक नहीं पाती और वह तत्क्षण एक अनन्तपरम आत्मीयतापूर्ण आलिंगन-पाश में आबद्ध होता हुआ कहता है—

> "पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥"४४

अर्थात् हे देव! जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के, सखा अपने सखा के अथवा प्रिय अपनी प्रिया के अपराध क्षमा करता है उसी प्रकार आप मेरे अपराध क्षमा करें।[3] यहां अर्जुन की बुद्धि पर राग हावी होता है और वह कृष्ण से क्षमा याचना करते हुए भी उन्हें वात्सल्य, सख्य अथवा कान्त भाव के उत्तरोत्तर गाढ़तर मानवीय मनोरागों में बांध कर प्रेमी भक्तों का भगवान् बना लेता है। यह भक्त चित्त की तन्मयता का लक्षण है। कौशल्या ने भी भगवान् को प्रिय भावों का आलम्बन बना लेने के लिए चतुर्भुज राम से ऐसी ही प्रार्थना

---

१ गीता-११/३

२ वही-११/९

३ लोकमान्य तिलक 'प्रियः प्रियायाः' इन पदों के 'प्रिय प्रिया' जैसे अर्थ करना नहीं चाहते। विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य- गीता रहस्य अथवा कर्मयोग-शास्त्र-(पृ० ७७०)

की थी— माता पुनि बोली मा मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा॥

और, जैसे भक्ति स्वरूपा कौशल्या की प्रार्थना पर भगवान राम ने 'सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना', उसी प्रकार अर्जुन की आरजू पर कृष्ण ने भी अपना विराट स्वरूप तजकर सहज सौम्य वेश प्रकट कर दिया। ज्ञान और कर्म के साथ साथ भक्ति की यह त्रिवेणी कदाचित् प्रथम बार कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि पर प्रवाहित हो सकी है।

अर्जुन का भक्त हृदय भगवान कृष्ण की विभूतियों में पूरी तरह रम कर एकाकार हो गया है। कृष्ण अर्जुन के सारथी बन भगवान भक्त के लिए क्या क्या नहीं करते। वह न केवल अर्जुन को प्रथम बार अपना विराट रूप ही दिखलाते हैं बल्कि सौम्य मानुष रूप भी दिखलाते है और भक्ति की प्रथम बार व्याख्या भी करते है। उन्हें क्रम क्रम से ब्रह्म के सभी रूपों के साक्षात्कार का सुअवसर प्राप्त हुआ था-ज्ञान रूप ब्रह्म का ('विराट पुरुष'), कर्मरूप देव का ('चतुर्भुज विष्णु') तथा भक्तिरूप "सौम्यवपुमहात्मा" का ("मानुष रूप")। प्रथम रूप को देखकर भक्त हृदय अर्जुन हर्षित भी होते हैं तो भयभीत भी (११/४५), द्वितीय रूप को देखकर भी उन्हें धैर्य नहीं होता (११/५०)। अन्त में पुनः सौम्य मूर्ति, जनार्दन के मनुष्यरूप से वह 'आश्वस्त,' "सचेत' और 'सचेत' हो जाते है (११/५१)। इसके स्पष्टीकरण के लिए ५० वें श्लोक के अन्तिम अंश 'भूत्वा पुनः सौम्य वपुर्महात्मा' तथा ५१ वें श्लोक के प्रथम अंश 'दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन' का ध्यानपूर्वक देखना आवश्यक है। यद्यपि यह सत्य है कि अंतिम मानुषरूप पूर्णत स्फुट नहीं है किन्तु 'भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा' के पुनः तथा अगले 'मानुष रूप' से इस गर्भित संकेत को वैसे ही लक्षित किया जा सकता है जैसे श्री मद्भागवत में राधा को। रहस्य जो हो, तथ्य तो यही है कि इस आनन्द मूर्ति को निरखकर अर्जुन की भक्तात्मा परितृप्त हो जाती है। तथा किन्हीं अन्य रूपों के प्रति उनके मन में आसक्ति का भाव शेष नहीं रह जाता। वह पूर्णकाम बन जाते हैं। भक्तवर अर्जुन ज्ञानियों के ज्ञेय ब्रह्म और योगियों के सर्वशक्तिमान परमेश्वर को छोड़ भक्तों के भगवान को पकड़ते हैं और उन्हीं के अनन्य प्रेम को पाकर सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। यही अनन्य भक्ति है। स्वयं कृष्ण ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है–[2]

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥५३
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥५४

वैष्णव के इस वक्तव्य को एक मध्ययुगीन कृष्ण भक्त ने किस प्रकार हृदयंगम किया है इस उसके ही शब्दों में व्यंजित किया जा सकता है—

---

१ राम चरित मानस–बाल काण्ड

२ गीता–११ वाँ अध्याय।

ब्रह्म म ढूँढ्यो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन ।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।।
टेरत हेरत हारि पर्यो रसखानि बतायो न लोग लुगायन ।
देख्यो दुर्यो वह कुन्जकुटीर मे बैठो पलोटतु राधिका पायन ।।२८-मु० २०

इस प्रसग म चतन्य महाप्रभु और रामानन्द की गोदा तटवर्ती वार्त्ता भी उल्लेख योग्य प्रतीत होती है जिसम भक्ति की स्वधर्माचरण स लकर माधुय दशा, तक का निवचन हुआ था।[1] रायरामानन्द ने चत न्यदेव के उत्तर स्वरूप भक्ति का जिन जिन अवस्थाओं का उल्लेख किया, वे सब की-सब गीता के श्लोकों मे मिल जाती है। उन्ह क्रमश नीचे प्रद शित किया जाता है—

रायरामानन्द	गीता
(१) स्वधर्माचरण—	(१) स्वधर्मे निधन श्रेय -३/३५
(२) कृष्ण म समस्त कर्मों का अपण	(२) यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।९/२७
(३) भगवत्शरण—	(३) सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज ।।१८/६६
(४) परम प्रेममय भक्ति—	(४) तेषा सततयुक्ताना भजता प्रीतिपूर्वकम् ।।१०/१०
(५) दास्य प्रेम—	(५) पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्चगुरुर्गरीयान ।११/४३
(६) सख्य प्रेम—	(६) पितेव पुत्रस्य सखेव सख्यु ।११/४४
(७) कान्ता प्रेम—	(७) प्रिय प्रियायार्हसि [2] ११/४४

यहा तक आते आते चतन्य महाप्रभु आनन्द रस म परिप्लावित होने लगे थे। उनकी जिज्ञासा शेष हो चुकी थी। तद्वत् अर्जुन भी भगवान के श्यामसुन्दर रूप को देखकर तवमूढ और रस मग्न हो जाते ह। भगवान के समक्ष उन्ह प्रमाण मागने की जरूरत ही क्या रही! वह तो स्वय उसके कारण और काय दोनो ही है। यह भक्ति, यह माधुय, यह लीला ही गीता की सर्वोपरि कल्पना है। इसमे सम्बन्धो की स्वीकृति है,[3] मानवीय भावो की अभिव्यजना है और है एक तर्कातीत विश्वास। इश्वर अगम है, अगोचर है—पर ये ज्ञान की बातें हैं। यहाँ तक ज्ञाता की स्थिति उस अर्जुन की सी रहती है जो उस ज्ञेय कृष्ण के विश्व रूप पर विस्मय विमूढ बना रहता ह। भगवान ज्ञान के अगम्य हैं। क्योंकि, ज्ञान बुद्धि का विषय

---

१ आचाय ह० प्र० द्विवेदी—"मध्यकालीन धम साधना" "लीला और भक्ति" शीषक निबन्ध (पृ० १४३) पर आधारित।

२ किन्तु वस्तुत " प्रियाय" से यहाँ 'प्रिया" अथ न होकर ' प्रिय" अथ ही है।

३ "Our conception of the Diety is then bounded by the conditiona which bound all human knowledge, therefore, we cannot repran tetysshe Deity as he is but as he appears to us"-Mausel, Metspthcs- (P 384)

मिला, भक्तो और कवियो को लीला भक्ति की स्फूर्ति मिली। वैष्णव धम म भगवान के साथ भक्त का व्यक्तिगत (घरेलू) सम्बन्ध लीला भक्ति की पहली कसौटी है। इसकी उपलब्धि गीता म ही हो जाती है।

कृष्ण न इस भक्ति के स्वरूप और आत्मा क्रमश पूजा पद्धति[1] और एकनिष्ठ आत्म समपण[2] (सेल्फ आफ सेल्फ सरेण्डर) दोनो पक्षो का सागोपाग विवेचन प्रस्तुत किया है। इन्होने अपने अनुयायी भक्तो को इसके स्वरूपगत आडम्बरत्व (६/२४) और आत्मगत रागात्मकता (१३/१०) के अन्तर्बाह्य दोनो अतिवादी ध्रुवान्ता से बचने का सदुपदेश दिया है। इसी निमल भक्ति का नाम "अव्यभिचारिणी" (१३/१०) भक्ति है। इसके देवता कृष्ण हैं। कृष्ण प्रीतिपूवक अर्पित किय हुए—"पत्र पुष्प फल तोय, (६/२६) सबो को सहज भाव से ग्रहण कर सतुष्ट हो जाते है। "देवता भाव का भूखा है, न कि पूजा की सामग्री का'[3]। राज भोग की अपक्षा मित्र सुदामा का तण्डुल चबाने वाले अथवा मदान्ध दुर्योधन के महल का मेवा त्याग कर विदुर का शाक ग्रहण करनेवाले कृष्ण आदि से अन्त तक एक अलबेला चरित्र है। इन्होने अपनी भगवत्ता म भी इस अलबेलपन का सन्निवेश कर दिया है—

सर्वेन्द्रियगुणाभास सर्वेन्द्रियविवर्जितम्
असक्त सर्वभृच्चैव निर्गुण गुणभोक्तृ च ॥१३/ ४

अर्थात् समस्त ऐन्द्रिक गुणो का ज्ञाता किन्तु वास्तव म सभी इन्द्रियो से विरहित उसी प्रकार आसक्तिरहित और निर्गुण होकर भी सबका का गुण भोक्ता गीता के कृष्ण का श्रोताओ म यही एकीकृत रूप है। कहना न होगा कि उत्तरोत्तर कृष्ण का सगुण गुण भोक्ता रूप ही पुराणो और काव्यो म प्रतिफलित होता गया है। भावात्मक स्वरूप की यहाँ अस्फुट झाकी मिलती है।

समासत गीता ज्ञान कम और भक्ति की त्रिवेणी ह इसम अवगाहन करन वालो को भगवान कृष्ण के प्रति प्रगाढ प्रेम पूण आत्म समपण एव उत्कट आस्था के अतिरिक्त और मिल ही क्या सकता है।

जो विद्वान् 'उत्पन्ना द्राविडे' अथवा 'भक्ति द्राविड ऊपजी' वाले कथन के आधार पर भक्ति को दक्षिण देश की निजी सम्पत्ति तथा उत्तर को उससे पूर्णत अनभिज्ञ मानते हैं उनके लिए उपर्युक्त विवरण ध्यातव्य हैं। तमिल प्रब धम् को माधुर्य भक्ति का प्राथमिक आधार माननेवाले विद्वान् भी इस तथ्य से इन्कार नही करते कि भगवद्गीता

१ पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदह भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन ॥९/२६

२ सर्व धर्मा परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अहत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥१८/६६

३ लोकमान्य तिलक—"गीता रहस्य' (पृ०७४६)

भक्ति का ही एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें कृष्ण भक्ति का एकान्तिक पर अपने उज्ज्वलतम स्वरूप में विराजमान है। अतः इसकी प्राथमिक उपलब्धि अश्रद्धेय नहीं।[१]

योगेश्वर कृष्ण निर्गुण या सगुण–गीता में कृष्ण ने जिस वैष्णव धर्म का स्वरूप स्थापन किया वह वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड और दार्शनिक मूल्यों का संस्कार है। इसके समानान्तर वैदिक धर्म विरोधी जैन और बौद्ध नामक जो दो सम्प्रदाय चले वे मूलतः निरीश्वरवादी थे। इनके पूर्व चार्वाक आदि का भौतिकवादी दर्शन भी ईश्वर प्रेम के स्थान पर लौकिक प्रेम पर अनुरक्त था। निरीश्वरवादी दर्शन में वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त हुई।[२] किन्तु, ईश्वरवादी धर्म भावना का इसमें पूर्ण तिरोभाव था।[३] अतः आवश्यकता थी एक परम भावुकतापूर्ण धर्म की जो जनता की आस्तिकता और श्रद्धा बुद्धि को अपनी ओर पूर्णतः आकृष्ट कर सके। बहुत कुछ इसी उद्देश्य से भागवत धर्म की स्थापना हुई। इसमें साधकों की कल्याण कामना के निमित्त एक ठोस और साकार ईश्वररूप की कल्पना हुई— साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूप कल्पना'। भगवान् विष्णु इसी रूप कल्पना के परिणाम हैं। गीता तक आकर इसमें वासुदेव कृष्ण की भक्ति भी सम्मिलित हो गई। यही कारण है कि इसमें ईश्वर के गुणमय रूप की उपासना उतनी घनीभूत हो उठी है।[४] भगवान् कृष्ण यहां अर्जुन का स्पष्ट शब्दों में निर्गुण को क्लिष्ट कह कर अपनी सगुण विभूतियों का रहस्य बतलाते हैं।[५] ध्यानपूर्वक देखने पर राग और विराग में पूर्ण सन्तुलन की चेष्टा होने पर भी यहां राग के प्रति ईषत् पक्षपात भासित हुए बिना नहीं रहता। कृष्ण स्वयं कहते हैं—

> समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
> ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ ९/२९

अर्थात् यद्यपि मैं (कृष्ण) सब भूतों में समभाव से व्याप्त हूँ न कोई मेरा अप्रिय है और न कोई प्रिय तथापि जो भक्त मुझे प्रीतिपूर्वक भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ। इसी मन्तव्य का अतिरेक अगले श्लोक में प्रकटित है। इसके अनुसार यदि अतिशय दुराचारी भी भक्ति भावना में अनन्य है तो वह साधु ही है—

> अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
> साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ ९/३०

इस प्रकार गीता के सूत्रों में ज्ञान कर्म के अतिरिक्त भक्ति भावना की पूर्ण प्रवणता है। यह भक्ति निर्गुण की अपेक्षा सगुण के सन्निकट है। भगवान् कृष्ण सगुण काव्य के प्रेरक चरित्र हैं। इनके भक्ति वचन में भावात्मक स्वरूप के मूल बीज हैं जो

---

१ डॉ मलिक मुहम्मद–'तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य' (पृ० ७)
२ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा–'मध्यदेश' (पृ० ७४)
३ प० परशुराम चतुर्वेदी–हिन्दुस्तानी–(जनवरी १९३७)
४ गीता—६/२६/, १३/१४
५ वही—१२/२ १२/५

सगुण भक्ति के परवर्ती रूपों में उत्तरोत्तर पल्लवित होते गये हैं। मध्यकालीन कृष्ण काव्य में उद्धवगोपी संवाद और भ्रमरगीत प्रसंग में सगुण निर्गुण विवाद तथा निर्गुण पर सगुण की भावात्मक महिमा का वितान इसी मूलभूत विचारतत्त्व से अनुप्रेरित कहे जा सकते हैं। रामभक्त कवि तुलसी की गुणवादी धारणा[1] भी उक्त स्थापना का ही संतुलित पल्लवन है। इसी संतुलित गुणवादी भावधारा में ऐसे भी संत और भक्त आते हैं जिन्होंने प्रायः समत्व-बुद्धि का प्रदर्शन कर भगवान् कृष्ण की आराधना की है। मराठी में तोका विट्ठल-प्रेम और वारकरी सन्तों की कृष्णभक्ति इसी कोटि की है। इनमें गुणवाद की तटस्थ स्वीकृति होने के कारण रहस्यात्मक प्रवृत्तियों की झलक भी मिलती है। ब्रज के ऐसे ही कवियों में मीरा और घनानन्द का नाम भी लिया जा सकता है। इनकी विशेष समीक्षा यथाप्रसंग होगी। उक्त प्रसंगोल्लेख का मूल लक्ष्य इतना ही है कि कृष्णभक्ति का आद्य ग्रन्थ गीता में बीज रूप में इन सारी प्रवृत्तियों का आरोपण हो गया है। भक्तिवाद अपनी पूर्ण प्रखरता में यहाँ समुपस्थित है। तथा, योगेश्वर कृष्ण अपनी चारित्रिक उज्ज्वलता में यहाँ विराजमान हैं।

---

१ अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन, अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेमवस सगुन सो होई॥ (मानस, बाल काण्ड)

अनुच्छेद–३

"अवतारवाद के प्रेरक चरित्र"

महाभारत युग के कृष्ण अवतारवाद के प्रेरक चरित्र हैं। महाभारत म कई कल्पित उपाख्यान तथा गीता के कई दार्शनिक उद्घोष इसी अवतारवादी कल्पना के पूरक हैं। महाभारत के कृष्ण म विष्णु, नारायण, वासुदेव सब का सम्मिश्रण हो गया है। अत सब की महिमा से सम्पुजित कृष्ण म अवतारवादी भावना की पूर्णाहूति स्वाभाविक रूप म हुई है।

गीता मे कृष्ण विष्णु के पूर्णावतार हैं। वह ब्रह्म के साकार रूप तथा अपने आप मे परिपूर्ण हैं। निम्न श्लोक म इसी परिपूर्णता अथच सव व्यापकता का उद्घोष हुआ है—

मत्त परतर नान्यत् किंचिदस्ति धनजय।
मयि सर्वमिद प्रोक्त सूत्रे मणिगणा इव ॥७/७

ब्रह्म के श्रेष्ठत्व और सर्वव्यापकत्व के सश्लेष मे ही कृष्ण में रस[1] और काम[2] का भी सन्निवेश हो गया है। आगे चलकर तो सगुण स्वरूप की महिमा भी प्रतिष्ठित हो गयी है।[3] इस प्रकार कृष्ण के अवतारवादी स्वरूप ने गीता म सैद्धान्तिक स्तर पर भाव भक्ति को पूर्ण स्वीकृति प्रदान की है।

उधर महाभारत के 'नारायणीय खण्ड' मे तथा अन्य अनेक प्रसगो मे वसुदेव नन्दन कृष्ण के अवतार प्रयोजन तथा उनकी प्रकृति उपासना के वृत्तान्त सकलित हैं।

महाभारत म[4] नारायण के दो बालो से बलराम कृष्ण के अवतरित होने का वृत्तान्त पिछले अनुच्छेद म उल्लिखित हो चुका है। पुराणो मे इस अवतरण कल्पना का क्रमश विकास होता गया है। नृसिंहपुराण म ठीक उसी प्रकार एक वृत्तान्त आया है जिसके अनुसार भगवान् विष्णु की श्वेत और कृष्ण इन शक्तियो से क्रमश 'राम (बलराम) और 'कृष्ण' का अवतरण हुआ। अध्याय ५३ का उक्त श्लोक इस प्रकार है—

प्रेषयामास द्वे शक्ती शित कृष्णे स्वके नृप।
तयो सिता च रोहिण्या वसुदेव द्वाद्बभूव ह ॥
तद्वत् कृष्णा च देवक्या वसुदेवाद्बभूव ह।
रौहिणेयोऽय पुण्यात्मा राम नामाश्रितो महान् ॥
देवकीनन्दन कृष्ण ॥

---

१ "रसोऽहमप्सु कौन्तेय ।७/८
२ "धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ' ७/११
३ गीता–१२/२ १२/५ आदि
४ आदि पर्व, अध्याय–२१४ ३२ वाँ सूत्र

अर्थात्, पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्री विष्णु भगवान् ने अपनी दो शक्तियों को पृथ्वी पर भेजा-एक सफेद, दूसरी काली। श्वेत शक्ति रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर "राम" नाम से प्रसिद्ध हुई और काली शक्ति देवकी के गर्भ से उत्पन्न होकर कृष्ण नाम से प्रसिद्ध हुई।[1]

उक्त अवतरण-कल्पना में गीता दर्शन और महाभारत के उक्त आख्यान का सम्मिश्रण हो गया है। निस्सन्देह इसमें शक्ति तत्त्व का समावेश परवर्ती विकास का द्योतक है। किन्तु, इन भावनाओं का आधार महाभारत है, इसमें दो मत नहीं हो सकते।

व्यूहवाद—महाभारत के नारायणीय खण्ड में व्यूहवाद, पांचरात्र मत तथा अवतार ग्रहण के सांगोपांग विवरण प्राप्त होते हैं। नारायणीय पर्व शान्ति पर्व का अंतिम पर्वाध्याय है। इसके ३३४ वें अध्याय से ३५१ वें अध्याय तक नारायणीयोपाख्यान का वृहित उल्लेख हुआ है। इसमें ऐकान्तिक धर्म की गूढ़ व्याख्या मिलती है। महर्षि नारद अपनी भक्ति विषयक जिज्ञासा से प्रेरित हो भगवान् नारायण के दर्शनार्थ श्वेतद्वीप गये। वहाँ के नियमानुसार भगवान् के एकान्तनिष्ठ भक्त हुए बिना उन्हें देव दर्शन दुर्लभ था। नारद विष्णु के ऐकान्तिक भक्त थे। अतः भगवान् ने प्रकट होकर उन्हें भागवत धर्म के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों से अवगत कराया। उनके सद्वचनों के रूप में ही व्यूहवाद की सैद्धान्तिक कल्पना की गयी है। इसमें वासुदेव परमात्मा के प्रतीक माने गये हैं। वैसे ही वासुदेव के अन्य परिकर (भ्राता, पुत्र तथा पौत्र) भी इसमें यथास्थान न्यस्त हैं—

(१) वासुदेव—परमात्मा
(२) सङ्कर्षण—जीव
(३) प्रद्युम्न—मन
(४) अनिरुद्ध—अहं

ये चारों नारायण या वासुदेव कृष्ण की ही मूर्तियाँ हैं। अतः यहाँ नारायण या वासुदेव के साथ कृष्ण की भगवन्महिमा व्यूहवाद के केन्द्र में सुप्रतिष्ठित है। नारद ने इस ऐतिहासिक साक्षात्कार के अनन्तर अपने प्रसिद्ध 'भक्ति सूत्र' का प्रणयन किया। सारांशतः नारायणीय खण्ड के वासुदेव कृष्ण द्वारकावासी कृष्ण ही हैं जिन्हें परवर्ती काल में अवतारवादी केन्द्रीय तत्त्व के रूप में दार्शनिक प्रतिष्ठा दी गयी है। इसके लिए दो प्रमाण दिये जा सकते हैं। पहला तो यह कि नारायणीय खण्ड में यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि नारायण ने जो उपदेश नारद को दिया उसे वह पहले अर्जुन को दे चुके थे।[2] अर्जुन को भक्ति विषयक उपदेश सर्वप्रथम गीता ही में मिला। और, यह उपदेष्टा स्वयं कृष्ण हैं। दूसरे, गीता पर्वाध्याय नारायणीय-पर्वाध्याय की अपेक्षा पूर्ववर्ती कृति तो है ही।[3] अतः सिद्ध है कि नारायणीय खण्ड के नारायण गीता भक्ति के उपदेष्टा

१ "श्री कृष्णावतार—" डा० गंगानाथ झा (कल्याण-श्री कृष्णांक-१९३२)

२ शान्ति पर्व—अध्याय-३४६, श्लोक १० ११,१२,३४८/६ ८

३ सी० वी० वैद्य-संस्कृत साहित्य का इतिहास (पृ० ३८, ४१)

कृष्ण ही हैं और कोई इतर देव नहीं। इसी मान गुह्य स्वरूप के लिए अपनाया न स्वतन्त्र रूप म उपबृंहित कर लिया होगा।[1]

इस प्रकार नारायणीय अश की समीक्षा म यह बात पूर्णत स्पष्ट हो जाती है कि वासुदेव कृष्ण के द्वारा अर्जुन को उपदिष्ट भक्ति-सिद्धान्त की ही नारायणीय मत म साम्प्रदायिक स्थापना हुई और नारद भक्ति सूत्र आदि म इसका पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत हुई। इन सबो के केन्द्र मे कृष्ण अवस्थित हैं। अत उनी द्वारा मर्यादित रूप म प्रस्तुत की गई भाव भक्ति का ही उत्तरवर्ती पुराणो आदि म व्यावहारिक निरूपण हुआ। निस्सन्देह इसम गोपाल कृष्ण की केलि कथा का भी सनातन योगदान रहा है। किन्तु इस भाव मूलक प्रवृत्ति का सघटन बाद म सभव हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता म वासुदेव कृष्ण की अष्ट प्रकृतियो म पचतत्वो के साथ साथ मन, बुद्धि, जीव और अहकार का भी स्पष्ट समावेश है। इनम वासुदेव तो स्वस्थानीय ही हैं, शेष जीव, मन और अह को ही नारायणीय म क्रमश सकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का रूप दे दिया गया जान पडता है।

अवतारवाद—व्यूहवाद के अनन्तर ही भगवान् के अवतार ग्रहण की चर्चा है। इनम वाराह, नृसिह, वामन, भार्गव राम, दाशरथी राम तथा कृष्णावतार इन ६ अवतारो की गणना है। इनका सद्य विकास पुराणो म हुआ। यहाँ कृष्ण भावना के साथ साथ अवतार कल्पना मे भी श्री सवद्धना हुई। हरिवश पुराण को महाभारत का परिशिष्ट कहा जाता है। इसी से इसे खिल हरिवश' भी कहते हैं। इसम उक्त नारायणीय म उल्लिखित ६ अवतारो का ही यथावत् ग्रहण कर लिया गया है। यहाँ पहुँच कर वासुदेव कृष्ण म गोपाल-कृष्ण की मधुर भावना का भी समावेश हो गया है। अत कृष्णचरित का प्रथम लीला-कोश हरिवश कहा जा सकता है। उत्तरवर्ती अन्य पुराणो म अवतारो की यह संख्या ६ से लेकर २३ २४ तक पहुँच गयी है। इनका विवरण इस प्रकार है—

वाराह पुराण–१० अवतार
नृसिह पुराण– ,, ,
अग्नि पुराण – , ,
वायु पुराण – १२ अवतार
भागवत पुराण–प्रथम स्कन्ध–२२
द्वितीय , –२३
एकादश –१६

इनका विस्तृत विवेचन 'अवतारवाद शीर्षक अध्याय म किया जायगा। साराशत महाभारत म तो गोपाल कृष्ण की भावना का प्रत्यक्ष सन्निवेश नही है किन्तु इसके परिशिष्ट रूप हरिवश म इसका समावेश हो गया है। कृष्ण की गोवधन पूजा तथा वृन्दावन वास से उनके इस नवीन ऐतिहासिक रूप का पता चलता है।[2] किन्तु

१ भण्डारकर–'वैष्णविज्म '' (पृ० ८, १२, २६)
२ डॉ० रा० कु० वर्मा–हि० सा० आ० इ० (पृ० ७१०)

उनके इस रूप का समावेश जिस वासुदेव कृष्ण के साथ हुआ उनमे कृष्णावतार के रूप म प्रारम्भिक पृष्ठभूमि की पूव कल्पना पूर्णत प्रशस्त हो चुकी थी। कृष्ण मे दैवी महिमा का सयोग हो गया था। वे अवतारी पुरुष मा य हो चुके थे।

इसी दिव्य कृष्ण के साथ आभीरो के बाल देवता कृष्ण का सयोग और सद्भाव हो गया। अत इस दिव्य कृष्ण मे पहले से ही माधुय आदि का समावेश किया जाना तथ्याश्रित न होकर किसी मनोवैज्ञानिक आग्रह का ही परिणाम माना जा सकता है।[१]

आभीरों के बाल देवता–आभीरो के सम्ब ध मे विद्वानो का अनेक मा यताएँ है। डॉ० भण्डारकर के अनुसार "कृष्ण आभीर नामक एक घुमक्कड जाति के बाल-देवता है।"[२] इनके अनुसार इस बाल देवता के सम्ब ध मे भारतीय प्राचीन साहित्य और शिल्प लगभग मौन है। अत इसका वासुदेव कृष्ण के साथ समावेश इस्वी सन् के बाद की घटना है।

आभीरो का मुख्य केन्द्र मथुरा प्रदेश के आसपास से लेकर सौराष्ट्र और गुजरात तक माना जाता है। इनकी जीविका गोपालन है। तथा इनके देवता बाल गोपाल है। डा० भण्डारकर के अनुमान से बाल गोपाल का वासुदेव कृष्ण के साथ मिश्रण ईसा की दूसरी शताब्दी मे हुआ होगा।[३] 'क्राइस्ट' शब्द से नाम साम्य होने के कारण सम्भवत बाल-कृष्ण की अनेक लीलाएँ ईसा मसीह की जन्म कथाओ के ढग पर रची गई हो जिनका परवर्ती पुराणो म उत्तरोत्तर आस्फालन होता गया। किन्तु, इस विदेशी प्रभावापन्न धारणा के निराकरण के कई प्रमाण हैं। एक तो बाल कृष्ण की कथा का महाभारत के परिशिष्ट 'खिल हरिवश मे पाया जाना ही इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि बाल कृष्ण की लीलाएँ ईसा पूव के वर्षों म ही भारतीय वाङमय म परिग्यात हो चुकी थी। दूसरे यह कि द्रविड देश मे आभीरो (द्रविड नाम 'आयर') के प्राचीनतम आदिजाम का पता चलता है जिनके इष्टदेवता का नाम "मायोन' (अर्थात् श्याम वर्ण वाला–वाद के साहित्य म "कण्णन' नाम से उल्लिखित) था। इस "मायोन" के प्रति आयर (आभीर ग्वाल) रमणियो के हृदय म वसा ही प्रेम उमडता था जसा कि गोपाल कृष्ण के प्रति गोपियो के मन मे उमडता है। तमिल वाङमय म सघपूव काल की रचनाओ म (तोलक्काप्पियम् आदि) वन देवता 'मायोन' की प्राय वसी ही रमणीय भूमिका है जैसी कि इन आभीरो के बाल देवता कृष्ण की रही। अत विद्वानो ने गम्भीर मनन के उपरान्त भण्डारकर की उक्त विजातीय धारणा का समुचित निरास करते हुए यह भली भाति सिद्ध किया है कि बाल कृष्ण की भावना क्राइस्ट का रूपान्तर न होकर द्रविड ही नही, पर, विशुद्ध भारतीय है।[४] श्रीकुमार स्वामी के अनुसार "आभीर' शब्द द्रविड भाषा का है जिसका अथ होता हैं–"गोपाल"।

१ हि० सा० का० (१)–(पृ० २४०)–डॉ० अ० वर्मा
२ "वैष्णविज्म ' (पृ० ३६–३७)
३ "वष्णविज्म " (पृ० ३७–३८)
४ आचाय द्विवेदी–सूर साहित्य (पृ० ९)

तामिल साहित्य के अन्य विद्वान् इस तथ्य का समर्थन करते हैं।[१] इनकी धारणा में प्रसिद्ध आभीर जाति तामिल प्रदेश की "आयर" जाति ही थी।[२] पाश्चात्य विद्वान् केनेडी इन्हें सीथियन मानते हैं।[३] उक्त सभी मान्यताओं का समाहार करते हुए आचार्य द्विवेदी का अनुमान है कि "आभीर" नाम की कोई द्राविड़ जाति जिसका धर्म भक्ति प्रधान और देवता बाल कृष्ण हो पहले से ही इस देश में रहती हो, बाद का य सीथियन जातियाँ आकर इनका धर्म ग्रहण करके अपने को आभीर कहने लगी हों। 'आभीर' शब्द का द्रविड़ होना और देवता का कृष्ण (काला) होना इस अनुमान का सहायक होना बताया जा सकता है।[४] अन्य यूरोपीय विद्वानों—वेबर,[५] ग्रियर्सन,[६] केनेडी[७] आदि के साथ साथ भारतीय पण्डितों—जिनमें भण्डारकर मुख्य हैं—की यह धारणा कि बाल कृष्ण की कथा ईसा मसीह की जन्म कथा का भारतीय रूपान्तर है, पूर्णत खण्डित हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, ईसा मसीह के व्यक्तित्व में मनुजत्व और तदन्तर ईश्वरत्व का सम्मिलित रूप दृष्टिगत होता है। उनका ऐतिहासिक इतिवृत्त पौराणिक कल्पनाओं से इतना आवृत्त नहीं है जिससे उनके वास्तविक अस्तित्व में किसी को भी किसी प्रकार का सन्देह हो। वह अपनी सदाशयता तथा लोकोत्तर मानवता के कारण ईसाइयों के भक्ति भाजन है। किन्तु इसके प्रतिकूल आभीरों के बाल देवता ऐतिहासिक नहीं, विशुद्ध पौराणिक कल्पना की उत्पत्ति हैं। तथा, वासुदेव कृष्ण के साथ उनका सम्मिश्रण इसी पौराणिक (अवतारवादी) कल्पना के कारण सम्भव हो सका है। वासुदेव कृष्ण भी देव थे, बालकृष्ण भी वन देव थे। अत दोनों का स्वरूपैक्य सहज भाव से घटित हो गया है।

इस प्रकार कृष्ण का वर्तमान स्वरूप नाना वैदिक और अवैदिक, आर्य और अनार्य, हिन्दू और तमिल, बौद्धिक और भावात्मक मान्यताओं की सरणियों के सम्मिश्रण से निर्मित हुआ। भावात्मक कृष्ण के स्वरूप निर्माण में मोटामोटी जिन चार भाव धाराओं ने योगदान किया, वे हैं—वैदिक देवता विष्णु दार्शनिक देवता नारायण, ऐतिहासिक देवता वासुदेव कृष्ण और आभीर देवता-बाल कृष्ण। इनमें उपर्युक्त दो तत्त्व वैदिक हैं। तीसरा वैदिक अवैदिक और चौथा पूर्ण अवैदिक है। कहना न होगा कि इस अन्तिम तत्त्व में ही उक्त सभी रूप उत्तरोत्तर आत्मलीन हो गये। गोपालन इनकी जीविका, ऐहिकता इनकी लोक संस्कृति और उल्लास इनका जीवन दर्शन था। भावात्मकता इनकी सर्वोपरि विशेषता रही। लोक भावना की सहजता और आत्मीयता ने संस्कृत की

१ कनकसभाई—"तामिल्स एटीन हड्रेड इयर्स एगो' (पृ० ५७)
२ डा० मलिक मुहम्मद—"तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण-काव्य' (पृ० ३७)
३ ज० रा० ए० सो०, सन् १९०७ ई०
४ आचार्य द्विवेदी—'सूर साहित्य (पृ० ६)
५ इण्डियन एन्टीक्वेरी जिल्द ३ ४ ' कृष्ण-जन्माष्टमी'—शीर्षक निबन्ध
६ ज० रा० ए० सो०—१९०७ ' हिन्दुओं पर नस्टोरियन ईसाइयों का ऋण'—निबन्ध
७ वही — वही ' कृष्ण ईसाइयत और गूजर —निबन्ध

वदिक परम्परा को पूणत आत्मसात् कर लिया। प्रकृति दशन ने नागर सभ्यता पर नया रग डाला। पुराणा की रचना इसी समय शुरू हुई जिनमे कृष्ण के ललित मधुर गोपाल रूप की नूतन झाँकी प्रस्तुत हुई। कृष्ण इसी प्रकृति दशन के अग्रदूत हैं। अत कुछ विद्वान् कृष्ण की दवी सृष्टि सवप्रथम प्रकृति देवता 'वन देव' की भावना म सन्निहित पाते हैं।[१] इस अनुमान के मूल म कृष्ण जीवन से सबद्ध कुछ महत्वपूण तथ्य य है।

(१) कृष्ण-जीवन की भावना स्पष्टत गोप रूप म है, जिसका सम्बन्ध गायो से है। कृष्ण को इसी कारण "गोपाल" अथवा "गोपेन्द्र भी कहा गया है उनका "श्रीवत्स" चिह्न इसी गोप-जीवन का प्रतीक चिह्न है।

(२) कृष्ण के बडे भाई बलराम भी ऋतुओ के देवता हैं। उनका सम्बन्ध भी धान्यादिक से है। उसी प्रकार, उनके अस्त्र शस्त्र भी हल और मूशल हैं जिनम प्राकृतिक सम्पदाओं की सृजन शक्ति है। कुल मिलाकर ये कृषि युग के प्रवत्तक है।

(३) कृष्णचरित की महिमा गोवधन-पूजा और अन्नकूट आदि से निखर उठी है। अत प्रकृति के प्रति आदर से ही कृष्ण के देवत्व को सबत्र मिला। कालान्तर म अवतार सम्बन्धी अन्यान्य भावनाओ का भी मिश्रण हुआ। किन्तु, उनका आदिम रूप 'वनदेव' ही रहा होगा क्योकि वह आभीरा के देवता थे।

पौराणिक पृष्ठभूमि —महाभारत के ऐतिहासिक कृष्ण तथा गीता के दाशनिक कृष्ण की समीक्षा का जा चुकी है। महाभारत की रचना का उद्देश्य अत्यन्त व्यापक था।[२] इसी व्यपक उद्देश्य के कारण उसम क्रम क्रम स अगणित चरित्रो और असख्य घटना चक्रो का अम्बार लग गया। अत उसम विभिन्न जातियो और उनके प्रभुतासम्पन्न नायको के जीवन का स्थूल कथात्मक ग्रथन है, आस्तिक मन का अवतार दशन है। किन्तु, इस अवतार दशन का पृष्ठभूमि पर अवलम्बित लीलापुरुष कृष्ण की कलात्मक भगिमाओ का प्रतिफलन नही है। य दोनो बातें कदाचित् सभव न भी थी। यही कारण है कि इस कथा-कोश म कृष्ण चरित की केन्द्रीय भाव धारा प्रवाहित न हो सकी। दुष्टो के भनय से प्रताडित युग ने साधु पुरुषो की कल्याण कामना के निमित्त ब्रह्म की रूप कल्पना का जो विराट फलक तैयार किया, युग पुरुष कृष्ण के पराक्रमपूर्ण कृत्य तथा धार्मिक कीर्तियाँ उसे रूपायित करने वाले रेखाचित्र स हैं। इसम रग भरने का काम पुराणकारो न पूरा किया।[३] फलत कृष्ण का पुराण कल्पना नाना कोमल, मधुर भावो से सुसज्जित होकर

---

१ डॉ० रा० कु० वर्मा–हि० सा० आ० इ०–(पृ० ७११)

२ Tadpatrikar–The Krishna Problem–"We can very well see that whatever the present state of the Epic text be, it was mainly meant to describe the Pandava & their cousins, & Krishna, though a very important ally of the former comes in only where he is wanted "

३ Tadpatrikar–"The Krishna problem" (P 7)–"Krishna was first glorified in the Mahabharata and the remaining account of his

प्रस्तुत हुई किन्तु, पुराणों में स्वरूप ग्रहण करने के पूर्व उनका लोक भावना में संचरित होना सहज सम्भव है अतः पुराणों में कृष्णचरित का धार्मिक रूपक के रूप में जो शनैः शनैः प्रतिष्ठापन हुआ उसके पूर्व उसका लोक प्रचलित होना सुगम ही है।[१] लोकभावना और लोक कल्पना से संयुक्त होने के कारण ही उसमें कवि सुलभ नूतन प्रसंगों की सरस उद्भावना हुई। इसमें आध्यात्मिकता का झमेला कम तथा और भावना की तरलता अधिकाधिक है। हरिवंश की कृष्ण लीला में पाई जाने वाली जन भावना सुलभ ऐहिकता से इसकी गवाही ली जा सकती है। किन्तु इनमें उत्तरोत्तर धर्म भावना अग्रसर होती गयी और कृष्ण चरित के शृङ्गारात्मक पहलू को इससे एक मर्यादा प्राप्त होती गयी। श्रीमद्भागवत महापुराण का कृष्णचरित इसी संतुलित दृष्टिकोण का परिपाक है। एक प्रकार से शृङ्गार और भक्ति के घात प्रतिघात में ही कृष्ण चरित का विकास होता रहा है कृष्ण चरित में व्रजलीला का आख्यान भावना का प्रतिनिधि समाहक है तो मथुरा और द्वारका लीला के आख्यानों में निरंतर बुद्धि व्यवसाय प्रवृत्त रहा है। इस तरह कृष्ण चरित के इन द्विविध पक्षों को कवियों ने हजारों वर्षों से अपने शाश्वत काव्य बोध का केन्द्रबिन्दु बना रखा है। इसका पूर्वार्द्ध यदि भाव बोध का विषय हुआ तो उत्तरार्द्ध विचार बोध का आधार। किन्तु आगामी पुराण और काव्य युगों में भाव बोध को ही प्रधानता मिली। अतः इस बोधपरक भिन्नता के कारण महाभारत और पुराणों के कृष्ण चरित को भिन्न भिन्न मानना समीचीन नहीं।[२] रमणीयता के कारण, स्वभावतः कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप को ही चिरन्तन प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है। इस भावात्मक स्वरूप की लोक प्रियता प्राचीन शिल्प और साहित्य में सुरक्षित है। काव्य में इसका प्रथम प्राप्त उल्लेख प्रथम शती के आसपास हाल की गाथा सतसई में मिलता है। इसमें तो राधा का भी स्पष्ट उल्लेख है। इसके प्रभाव का संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश से होते हुए हिन्दी काव्य में यथेष्ट विकास हुआ है। इसे हम एक स्वतन्त्र अध्याय में देखेंगे। मूर्तियों और शिलालेखों में उत्कीर्ण कुछ चित्र भी कृष्ण की बाल लीला के अति प्राचीन और लोक प्रचलित स्मारक हैं।

[३]अनुमानतः प्रथम शती का मथुरा में प्राप्त एक खण्डित शिलापट्ट मिला है जिसमें वसुदेव अपने नवजात पुत्र कृष्ण को एक सूप में रखकर यमुना पार जाते हुए दिखाये गये हैं। ५ वी शती एक दूसरे शिला खण्ड में कालिय दमन का दृश्य अंकित है।

---

life, which had nothing to do with the Pandavas and their warfare, and was still in oral tradition, was put togather to be used in the Purans

१ डॉ० व्रजेश्वर वर्मा—हि० सा० को० (१)—पृ० २६०

२ Tadpatrikar—"The Krishna Problem"—'At least, we can only state that the mutual influence between these two is very great (P 335)

३ हि० सा० को० (२) 'कृष्ण'—पृ० ९३—डॉ० व्र० वर्मा के अनुसार

मथुरा में ही सम्भवत छठी शती की एक मूर्ति मिली है जिसमें कृष्ण के गोवर्धन धारण का दृश्य है। इसी समय की बंगाल के पहाड़पुर नामक स्थान में कुछ मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें धेनुकवध, यमलार्जुन भञ्ज तथा चाणूर और मुष्टिक के साथ कृष्ण के मल्ल युद्ध के दृश्य उत्कीर्ण हैं। यहीं वह प्रसिद्ध मूर्ति भी मिली थी जिसे डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने राधा की मूर्ति करार दी थी।[1] यदि यह सच है तो राधा कृष्ण से सम्बद्ध शिल्प-कला का यह प्रथम साक्ष्य है। उधर दक्षिण भारत की पहाड़ियों में बादामी की शिला पर कृष्ण जन्म, पूतना वध, शकट भंग आदि की अनेक मुद्राएँ उत्कीर्ण मिली हैं, जिनका काल छठी ७ वीं शती माना गया है।[2]

इस प्रकार, साहित्य, पुराण और शिल्प में कृष्ण लीला ईस्वी सन् के प्रारंभ से ही मिलने लगती है। इनमें कृष्ण चरित का समानान्तर रूप में विकास होता गया है। जन भावना से अनुप्राणित होने के कारण इनके वीर चरित्र के साथ साथ मधुर चरित्र भी पल्लवित होता गया है। किन्तु, अवतारवाद का लक्ष्य 'रक्षण' के स्थान पर उत्तरोत्तर 'रंजन' हो जाने तथा काव्य में राधा भाव की प्रधानता हो जाने के कारण कृष्ण चरित में भी वीर भावना गौण होती गई और उसके स्थान पर माधुर्य भावना का प्रभुत्व बढ़ता गया। इसे हम पौराणिक युग के सन्दर्भ में विस्तार से देख सकेंगे।

पाञ्चरात्र मत और कृष्ण भावना—पाञ्चरात्रमत को सात्वतमत भी कहते हैं। सात्वत यदुवंशी थे जिनमें कृष्ण का जन्म हुआ था। इस मत का प्रचार सुदूर दक्षिण में भी हुआ था। पाँचरात्र मत का विशिष्ट सिद्धान्त व्यूहवाद में प्रकट हुआ है। यह व्यूहवाद-जिसके केन्द्र में वासुदेव कृष्ण प्रतिष्ठित हैं—महाभारत के पूर्वोक्त नारायणीयाख्यान (३३४ अध्याय-३५१ अध्याय) में द्रष्टव्य है। इस मत के अनुसार वासुदेव परमात्मा हैं। वासुदेव—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज-इन षड्गुणों से युक्त तथा हयगुणों से मुक्त होने के कारण भगवान् कहे जाते हैं। इनके अन्य परिकरों में क्रमश दार्शनिक अनुसंगति बिठलाते हुए कहा गया है कि परमात्मा से जीव (संकर्षण) जीव से मन (प्रद्युम्न) और मन से अहंकार (अनिरुद्ध) की उत्पत्ति होती है। पाञ्चरात्र मत के उपासकों को भागवत कहते हैं। इनकी उपासना के ४ अंग है—(१) ज्ञान (२) योग, (३) क्रिया और (४) चर्या। शंकराचार्य ने व्यूहवाद को वेद बाह्य मानकर उसका खण्डन किया था। किन्तु रामानुज आदि वैष्णवाचार्यों ने पुनः इसकी प्रतिष्ठा की।

कालान्तर में इन उपासना के अंगों में प्रकृति तत्त्व का भी संयोग हो गया। यद्यपि इसका ठीक ठीक समय इंगित करना कठिन है किन्तु सांख्य की पुरुष प्रकृति की भाँति हम वैष्णवागमों में भी विष्णु लक्ष्मी या नारायण-श्री की युग्म कल्पना का सन्निवेश पाते हैं। इस युग्म भावना ने भक्तिवाद को कितनी दूर तक अग्रसर किया है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। सारा का सारा वैष्णव काव्य साहित्य इसी आधार बिन्दु पर आधारित है। इसकी समीक्षा अगले अध्याय में सविस्तर होगी। यहाँ केवल इतना

१ मध्यकालीन धर्म-साधना पृ० १३१ ("गोपियाँ और राधा' शीर्षक निबन्ध में उद्धृत)
२ आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया-रिपोर्ट-सन् १९२६ २७, १९०५ ६ तथा १९२८ २९

प्रारम्भ हो गयी थी।[1] उधर वदिक युग मे धनदेवी शची, श्री या लक्ष्मी 'विष्णु पुराण' तक आते आते दुर्वासा के शाप से समुद्र मथन के अनन्तर विष्णु के अधिकार म चली आयी। जब गुप्तकाल म आकर "स्त्रियो के अधिकार का प्रबल आदोलन उठा"[2] तो साख्य की पुरुष प्रकृति से प्रेरणा लेकर वैष्णवो ने लक्ष्मी-नारायण को अपना लिया। बाद म रुक्मिणी-कृष्ण उन्ही के स्थानापन्न बन गये। आल्वारो के दिव्य प्रबन्धम् म इनका प्रारम्भिक रूप व्यक्त हुआ।

यह एक सुखद सयोग की बात है कि आभीरा के बाल देवता कृष्ण मे नारी-सयोग पहले से ही विद्यमान था। वैदिक धम के इस स्तम्भ से जब कृष्ण का सहयोग हुआ तो इसमे आभीर वधुआ के साथ कृष्ण की विलास क्रीडा का अवैदिक अथच ऐहिक तत्त्व भी स्वयमेव आ मिला। इसकी झाकी दूसरी शती की एक तामिल रचना "शिलप्पधिकारम्" म स्पष्टत मिल जाती है। कवि इलगो की इस ममस्पर्शी काव्य कृति म कन्नन के साथ आभीर वधुओ तथा 'पिन्नई' (अथवा 'नप्पिन्नई') के मण्डल नृत्य तथा गोपी गीत वर्णित हैं। इसे गोपी कृष्ण रास का प्रारूप कह सकते हैं। इसकी विशेष समीक्षा यथा प्रसग की जायगी।

इस प्रकार अवतारी कृष्ण के साथ गोपी लीला का जो पुराणा मे सुमधुर अकन हुआ उनके मूल म भी वैदिक अवदिक–इन दो धाराआ के सम्मिश्रण का सकेत मिल जाता है। 'पाचरात्र' मे इसकी दाशनिक पृष्ठभूमि मिलती है। साख्य की पुरुष प्रकृति से इस वष्णव युग्मवाद को विशेष प्रेरणा मिलती है। फलत पुराणो तथा काव्यो म गोपी कृष्ण की प्रेम मधुर लीलाएँ व्यापक रूप ग्रहण कर लेती हैं।

पुराणा मे गोपाल कृष्ण गोपीजन वल्लभ कृष्ण या राधा कृष्ण के विकसित स्वरूप म ही आते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि पौराणिक कृष्णचरित म गोपी तथा राधा भावना के अविर्भाव की गवेषणा पहले कर ली जाय। अत आगामी अध्याय मे कृष्ण चरित के साथ इस प्रकृति-तत्त्व के सयोग पर विस्तार से विचार किया जाता है जिसने अवतारवाद के इस प्रेरक चरित्र को ऐसा भावात्मक और रसमय विग्रह प्रदान किया।

१—प्रो० राय चौधरी–"अर्ली हिस्ट्री ऑफ द वैष्णव सेक्ट"–(पृ० १०४–१०६)
२—मिस्टर निवदिता–"फुटफाल्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री" (पृ० २०६)

तृतीय अध्याय

"श्री कृष्ण चरित म युगलभावना"

अनुच्छेद–१

★आगमों की युगल-कल्पना

अनुच्छेद–२

★लीलावाद की पौराणिक कल्पना

अनुच्छेद–३

★रुक्मिणी, गोपी और राधा

भाव

का विकास

अनुच्छेद–१

"आगमों की युगल कल्पना"

भारतीय धर्म साधना और साहित्य में कृष्ण के तत्त्व भावाश्रित स्वरूप का विकास मुख्यतः दो पद्धतियों पर हुआ। प्रथम तो धर्म और दर्शन की बौद्धिक पद्धति है और दूसरी कथोपाख्यान की भावाश्रित पद्धति। प्रथम रूप आगम और तंत्रों में विकसित हुआ तो दूसरा रूप पौराणिक आख्यानों में। प्रथम स्वरूप पर तत्त्व चिन्तन की छाप है तो दूसरे स्वरूप में लोक विश्वास की मान्यता। इसीलिये प्रथम पक्ष में कृष्ण की लीला सहचरियों का विशेष सहचार नहीं मिलता यद्यपि दूसरे पक्ष में लीलावाद का ही प्राबल्य है। किन्तु, पांचरात्र आदि मतों तथा संहितादि ग्रंथों में जहां कहीं भी परमेश्वर या पुरुष रूप में कृष्ण का अस्तित्व मिलता है वहीं प्रकृति या शक्ति रूप में उनकी सहचरी की अति सूक्ष्म अथच बौद्धिक छाया वर्तमान मिलती है। पुराणों में चलकर यही छाया अपनी मोहिनी छवि में अनेकशः प्रतिबिम्बित हो उठी है। अतः पौराणिक लीलावाद की पृष्ठभूमि के रूप में आगमों आदि की शक्ति कल्पना के महत्त्व को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

सच तो यह है कि इन द्विविध विकास स्रोतों का आदि उत्स भारतीय लोक मन ही रहा है। इस लोक मन के गहन अन्तर्देश में जो श्रद्धा संभ्रम, सौन्दर्य माधुर्य बीज रूप में प्रच्छन्न था, वही दीर्घकालीन विकास परम्परा में परिणत हो कर प्रकट हुआ है। वही हमारे धर्म और साहित्य में भी पुरुषोत्तम और लीलापुरुषोत्तम रूपों में परिस्फुट हुआ है। इसका आदि यदि वैदिक और सूत्र साहित्य में है तो मध्य पुराणों में और काव्य साहित्य में आकर तो यह पूर्णतः पल्लवित और पुष्पित ही हो गया है। संक्षेप में, गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की लीलाओं के विकास की यही सरणि है। नाना युगों से होते हुए धर्म विश्वास के अन्तरालों को पार कर लीलामय श्रीकृष्ण का अपने परम प्रेममय स्वरूप में अवतरण निश्चय ही विस्मय और आनन्द का हेतु है। अतः इसके विकास के पथ चिह्नों को संकेतित करने के लिए हमें उक्त दोनों पद्धतियों का संधान करना होगा। इस दृष्टि से पहले संहिताओं में प्रकृति या शक्ति-तत्त्व की गवेषणा की जायगी। फिर, पुराणों में इसके सद्य विकास को प्रतिफलित देखा जायगा। साथ ही हम यह भी देखेंगे कि प्रारंभिक बौद्धिक स्वरूप सहज भाव से पौराणिक स्वरूप में आत्मलीन होता गया है। इस विनयन में ही लीलावाद का अशेष प्रसार संभव हो सका और कृष्ण लीला लक्ष्मी आदि देवियों, रुक्मिणी आदि पटरानियों तथा राधा आदि गोपियों के साहचर्य से सहस्र-रूपों में विकसित हो उठा।

कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप विकास में उनकी लीला-सहचरियों का अन्यतम महत्त्व है। क्योंकि, इनके अभाव में लीला कल्पना ही असंभव है। हिन्दी काव्य में अथवा

समस्त आधुनिक भारतीय लोकभाषा और साहित्य में ही कृष्ण अकेले कहीं नहीं दिखाई देते। या तो वह गोपीजनवल्लभ रूप में आते हैं या राधावल्लभ रूप में। बृहदारण्यक के उस मूल मन्त्र में ही यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि एकाकी ब्रह्म कभी रमण नहीं कर सकते। रमणेच्छा के जगते ही वह द्विधाविभक्त हो जाता है। काव्य तो वस्तुतः रमणीय भावनाओं का ही प्रकृत क्षेत्र है। स्वभावतः इसके द्वारा भाव में परिगृहीत कृष्ण चरित में भी अनिवार्य रूप से उक्त रमण क्रीड़ा का साकारजन्य विधान हुआ है। काव्य के भावात्मक कृष्ण इसी कारण युगल तथा वल्लभ स्वरूपों में सज कर प्रकट हुए हैं। अतः इस युगल भावना के मूल उत्स की ओर अनुसंधान वांछनीय ही है।

पांचरात्रमत का प्रथम उल्लेख "शतपथ ब्राह्मण" में बताया जाता है।[1] अनन्तर, महाभारत, शान्ति पर्व के नारायणीय प्रसंग में एतद्विषयक विवरण उपलब्ध होता है। यद्यपि प्रकृत यहाँ भी नारायण की शक्ति या पत्नी के रूप में श्री या लक्ष्मी आदि का कोई उल्लेख नहीं है। नारद ऋषि ने उक्त मत का विशेष प्रचार किया। उनके नाम से प्रचलित "नारद पाँचरात्र" में शक्ति-सम्बन्धी धारणाओं का अत्यधिक विकास हुआ। किन्तु इसके अन्तर्गत आये 'राधा' आदि नामों को विशेष प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इस मत के प्राचीन ग्रन्थ 'संहिता' कहलाते हैं। ये आगमों की ३ कोटियों में से एक हैं। आगमों को तन्त्र भी कहते हैं।[2] किन्तु व्यवहारतः आगम शैव मत के ग्रन्थ हैं और तन्त्र शाक्त मत के। उसी प्रकार वैष्णव मतवादी शास्त्र 'संहिता' कहलाते हैं।

पांचरात्र संहिताएँ मूलतः उत्तर में रचित और दक्षिण में प्रचलित हुई। परवर्ती युग में दक्षिण में भी संहिताएँ रची गईं। इनमें "अहिर्बुध्न्य संहिता" (रामानुजाचार्य सम्पादित आड्यार पुस्तकालय मद्रास) "पुराण-संहिता"[3] (यामुनाचार्य के समय सम्पादित-चौखम्बा विद्या भवन, काशी द्वारा प्रकाशित) आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। "पुराण-संहिता" में राधा कृष्ण तथा व्रजमंडल आदि का भी नामोल्लेख हुआ है। यह परवर्ती कृति है। इसकी अपेक्षा "अहिर्बुध्न्य संहिता" को विद्वान् अधिक प्रामाणिक मानते हैं।[4] अन्य संहिताओं में नारद, जयाख्य, वासुदेवादि संहिताएँ महत्त्वपूर्ण हैं। वैष्णवाचार्यों ने इन संहिताओं के उद्धरण आदरपूर्वक दिये हैं। इनकी रचना सामान्यतः ईस्वी सन् के चतुर्थ शतक से लेकर दशम शतक तक हुई है।

---

१ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० २३)

२ आचार्य द्विवेदी—म० ध० सा० (पृ० ३४)

३ इसके महत्व की सूचना पहलेपहल लेखक को म० म० प० गोपीनाथ जी कविराज से विमर्श प्रसंग में मिली थी। किन्तु, पुस्तक के अनुशीलन से उसकी परवर्तिता प्रच्छन्न न रह सकी। अस्तु।

४ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० २३) तथा प० ब० उ०—भा० स० (पृ० ११७)

पाँचरात्र मे वासुदेव सर्वव्यापक देवता हैं। षडगुणा से युक्त होकर यही "भगवत्" कहलाते हैं। ये षडगुण हैं –

ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य वीर्य तेजास्य शेषत.।
भगवच्छब्द वाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभि ॥

उक्त षडगुणा से सयुक्त होने के कारण ही नारायण को सगुण भी कहा गया है। वे निर्गुण होकर भी सगुण हैं। अत पाचरात्र म ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूप मान्य हैं। गीता से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।[1] इनमे ज्ञान वासुदेव का श्रेष्ठ रूप है। शक्ति आदि शेष ५ गुण ज्ञान के आनुषगिक होने के कारण सदा उसी से अनुशासित है।

शक्ति—भगवान् की शक्ति सामान्यत लक्ष्मी नाम से अभिहित होती है। भगवान् शक्तिमान हैं और लक्ष्मी उनकी शक्ति। भगवान् और लक्ष्मी का सम्बन्ध वसे तो अद्वैत प्रतीत होता है किन्तु इन दोनों म तात्त्विक अद्वतता नही है। शक्ति-शक्तिमान् मे चन्द्रिका और चन्द्रमा के समान समभाव स्वीकृत है। विष्णु की यह आत्मभूता शक्ति भिन्न भिन्न गुणों के कारण भिन्न भिन्न नामों से पुकारी जाती है। आनन्दा, स्वतन्त्रा, लक्ष्मी, श्री, पद्मा आदि इस एक शक्ति के ही विभिन्न पर्याय हैं।

सृष्टि के आरम्भ म लक्ष्मी की दो शक्तियां होती है[2]– (१) क्रिया शक्ति और (२) भूति शक्ति। जगतोत्पत्ति क्रिया शक्ति है। जगत्परिणति भूति शक्ति है। लक्ष्मी भगवान् की इच्छा शक्ति की ही परिणति है। यह सृष्टि उनके अनुग्रह का ही परिणाम है।

सृष्टि भी दो प्रकार की होती है–(१) शुद्ध और (२) शुद्धेतर। जिस प्रकार शान्त जलधि म प्रथम बुद्बुद् फूटकर उसे नितान्त सक्षुब्ध कर देता है ठीक उसी प्रकार ब्रह्म के निर्विकार चित्त म माया का आविर्भाव होता है। लक्ष्मी के इस प्राथमिक उदय का नाम शुद्ध सृष्टि है।

सांख्य म प्रकृति (पुरुष से) स्वतन्त्र रूप से सृष्टिकार्य म सलग्न होती है। किन्तु, पाचरात्र मे प्रकृति आत्म तत्त्व के द्वारा विच्छुरित होने पर ही गतिमति होती है। गीता म भी इसी पाचरात्र पद्धति का समर्थन हुआ है।[3] किन्तु, इससे पाचरात्र मत की शक्ति पर सांख्य की प्रकृति के प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता।[4] ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से विष्णु शक्ति 'श्री' या 'लक्ष्मी' का आत्म प्रकाश ऋग्वेद, मण्डल-८ के अन्त म खिल सूक्तस्थ १८ वें मन्त्र म होता है—

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजत स्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥

उक्त लक्ष्मी ऐश्वर्यमयी या कान्तिमती देवी ही नही है। आगे चलकर इनके लिए जिन

---

१ गीता–१३/१४–'निर्गुणं गुणभोक्तृ च'।

२ अहिर्बुध्न्यसंहिता–३/२१

३ गीता–९/१०

४ प० ब० उपाध्याय–"भागवत–सम्प्रदाय" (पृ० १२७)

विशेषणा के प्रयोग हुए समवत उनमें ही पौराणिक विष्णु लक्ष्मी के बीज सन्निहित थ। 'पद्मिनी', 'कमला, या 'कमलिनी' आदि तत्त्व विकास की दृष्टि से विशेष महत्त्वशाली हैं।

फिर, "बृहदारण्यक उपनिषद्" की उस श्रुति (१/४/३) विचार का सकेत हम कर चुके हैं जिसके अनुसार एकाकी ब्रह्म ने रमणेच्छा से प्रेरित हो अपना का ही-स्त्री और पुरुष-दो रूपों म विभक्त कर लिया। यही आदि मिथुन तत्त्व है। इसी की अभि व्यक्ति सृष्टि के अन्यान्य सभी मिथुना के भीतर से हुई है। इस आत्म रमण की आदिम इच्छा और तज्ज य अभेद म भेद कल्पना पर ही वल्लभवा का लीलावाद अवलम्बित है। परवर्ती काल के पौराणिक मिथुन तत्त्व पर उक्त श्रुति का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। इसके अनन्तर, श्वेताश्वतर उपनिषद, बाल्मीकि रामायण आदि म भी शक्ति या श्री का विष्णु के साथ उल्लेख मिलता है। फिर, महाभारत म जहाँ जहाँ श्री कृष्ण का ईश्वरत्व वर्णित है उनकी अर्द्धांगनी रुक्मिणी देवी को उनकी शक्ति (श्री या लक्ष्मी) के रूप म दखा गया है।

इसके बाद ही त त्र पुराण युग का प्रादुर्भाव होता है। पाचरात्र म विष्णु की शुद्ध सृष्टि, जिसका सकेत ऊपर किया गया, के अन्तर्गत ही चतुर्व्यूह का सिद्धा त पल्लवित हुआ है। चतुर्व्यूह के ४ तत्त्वो-वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध व उल्लेख अनेकश हो चुके हैं। सम्प्रति, इनम शक्ति और शक्तिमान् के घात प्रतिघात का चित्रण ही अभीष्ट है। अहिर्बु य सहिता म इसका सु दर सकेत मिलता है।

शक्ति और शक्तिमान् की भेदावस्था का ही वासुदव तत्त्व कहा जा सकता है।[१] शक्तिमान् वासुदेव सिसृच्छा कर अपने को ही द्विधा विभक्त कर लते है। यह आत्म विभक्त रूप ही सकर्षण (जीव) है।[२] सकर्षण व्यूह से प्रद्युम्न व्यूह (मन) उत्पन्न हुआ। इस व्यूह म आकर पुरुष से प्रकृति अलग हो गयी। यही स त्रिगुणात्मिका शक्ति का आरम्भ समझना चाहिए। प्रद्युम्न स अनिरुद्ध (अहकार) की उत्पत्ति हुई। अनिरुद्ध ने प्रद्युम्न द्वारा लिये हुए दायित्व के आधार पर सृष्टि विकास के कार्यों को सम्पन्न कर दिया। इस प्रकार चतुर्व्यूह के सिद्धा त म सृष्टि लीला पूर्णत सम्पन्न दिखाई गइ है।

वासुदेव षड्गुण-सम्पन्न परमेश्वर हैं सकर्षण म ज्ञान और बल प्रकट है, प्रद्युम्न म एश्वर्य और वीर्य ह तो अनिरुद्ध म शक्ति और तेज का प्राधा य है।

इस शक्तिवाद के सम्बन्ध म मूलत यह प्रश्न उठ सकता है कि अभेद म भेद बुद्धि उत्पन्न होकर जो यह सृष्टि हुइ, उसका प्रयोजन क्या ? इसका एकमात्र उत्तर है लीला। और, लीला-जो विष्णु की इच्छा है, उसका प्रयोजन कुछ नही। स्वय लीला ही उसका प्रयोजन है।

बृहदारण्यक सूत्र के ही अनुसार अहिर्बु घ्य सहिता[३] म भी सिसृच्छा विषयक प्रसग अत्य त मनोरम रूप म वर्णित है। इसके अनुसार महाप्रलयकाल मे शक्ति विश्व पुरुष मे तल्लीन थी। एकाकी ब्रह्म रमण नही कर सकते थे। अत उस सनातन पुरुष न

१ अहिर्बु घ्य सहिता- ५/२६-२७
२ वही - ५/२६-३०
३ वही - ४१,४

लीला के लिए यह सृष्टि रची। पहले उसने नाम रूपादि की सृष्टि की। तदन्तर लीला की उपकरणभूता त्रिगुणात्मिका प्रकृति की सृष्टि करके उसी आत्म माया के साथ जनार्दन रमण रत हुए। कल्पान्तर के बाद भगवान् पुरुषोत्तम ने लीला रस समुत्सुक होकर ही जगत् की सृष्टि करने का विचार किया–[1]

> एकाकी स तदा नैव रमते स्म सनातन ।
> स लीलार्थं पुनश्चेदमसृजत् पुष्करेक्षण ॥
> स पूर्वं नाम रूपाणि चक्रे सर्वस्य सर्वग ।
> लीलोपकरणा देव प्रकृतिं तृगुणात्मिकाम् ॥
> पुरा कल्पावसाने तु भगवान् पुरुषोत्तम ।
> जगत् स्रष्टु मनश्चक्र तु लीलारस समुत्सुक ॥

अत जैसा कि ऊपर सकेत किया अहिर्बुध्न्य सहिता म मुख्यत शक्ति के दो वर्ग हैं– (१) क्रिया-शक्ति और (२) भूति शक्ति–

सात्वत-सहिता[2] म विष्णु की दो शक्तियाँ हैं– (१) लक्ष्मी और (२) पुष्टि । इसी म अन्यत्र इन्ह—श्री, माया, प्रकृति, सुन्दरी प्रीतिवर्द्धिनी, रति आदि भी कहा गया है। विहगेन्द्र के दूसरे और पराशर-सहिता के दशम अध्याय तक ३ शक्तियो के उल्लेख है– श्री, भू और लीला। वैसे ही जयाख्य सहिता[3] मे ४ देवियां है— लक्ष्मी, कीर्ति, जया और माया।

उक्त विवचन से स्पष्ट है कि पाचरात्र म यद्यपि भगवान् की 'लीला' की कल्पना है किन्तु यह लीला मायातीत या गुणातीत अवस्था म स्वरूप-शक्ति के साथ नहीं है। तन्त्र और आगमो म महाप्रलय के अन्दर से ही सृजन का लीला-प्रसार प्रदर्शित हुआ है। स्वच्छन्द तन्त्र आदि मे शक्ति कल्लोल है, जगत् उसकी लहर है और परमेश्वर शिव इन तरगो म बठकर ही केलि या लीला किया करते हैं।

शिव सूत्र के अनुसार परमशिव की दो शक्तियां है– पराशक्ति और अपराशक्ति। इसे ही क्रमश स्वरूप-शक्ति तथा माया शक्ति भी कहते है। पराशक्ति ही परमानन्दरूपिणी है।[4] यह आनन्दमयी शक्ति ही महामाया कहलाती है।

इस प्रकार, वैष्णव सहिताओ, शैवागमो और शाक्त-तन्त्रो से होती हुई यह विष्णु शक्ति ही पुराणो म श्री या लक्ष्मी रूप म मूर्द्धाभिषिक्त हुई। पुराणो मे प्रतिष्ठित हो जाने पर कृष्णचरित म लीलावाद का ऐसा व्यापक प्रसार हुआ कि प्रारभ से लेकर अन्त तक इसके चारो ओर तत्व दर्शन का जो मण्डान था वह जन भावना के परिपाक से अत्यन्त सरस और लोकरजनकारी स्वरूप म परिणत हो गया।

१ अहिर्बुध्न्य सहिता – ४१/४
२ सात्वत-सहिता, काजीवरम् सस्करण-१२/८६
३ वही ६/७७
४ शिव सूत्र- वार्तिक (का०- स० ग्र० -४३)

अनुच्छेद—२

"लीलावाद की पौराणिक कल्पना"

पुराणों में कृष्ण चरित देशज उपादानों से बृंहित है। देश के विशाल लोक विश्वास रुचि संस्कृति और ध्यान मनन को यहां प्रकट होने का सुअवसर प्राप्त हो गया है। इसका भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है।

तात्त्विक अर्थ में शक्ति और शक्तिमान् परस्पर अभिन्न है। किन्तु, लोक में विष्णु और लक्ष्मी पुरुष-स्त्रीवत् मान्य है। अतः शक्ति और शक्तिमान् में दाम्पत्य-सम्बन्ध धर्म मत पर लोक भावना का प्रतिबिम्ब ही है। वस्तुतः निर्विकल्प ब्रह्म में भी रमणेच्छा की कल्पना देववाद पर जनवाद का ही प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। विचारकों ने ठीक ही कहा है कि ईश्वर ने मानवों को बनाया हो या नहीं पर मानव मन ने तो अवश्य ही देवताओं की कल्पना प्राचीन काल से ही कर रखी है। अतः कुछ विद्वानों ने धर्म बोध पर लोक मत के प्रभुत्व के स्थान पर जो दोनों को अन्योन्याश्रित माना है, वह उनके अतिरिक्त औदार्य और वष्णवता का ही परिचायक है।[1]

पुराणों में लोक भावना के आधिपत्य में लक्ष्मी का विष्णु पत्नी-स्वरूप ही स्थिर रहा, शक्ति रूप बहुत कुछ तिरोहित सा होता गया। इसके लिए जिस पौराणिक आख्यान की कल्पना की गई, वह विष्णु पुराण के अनुसार इस प्रकार है—

दुर्वासा ऋषि ने देवराज इन्द्र को एक सुरभित सुमनमाला भेंट की। 'श्री' की निवासभूता वह माला इन्द्र द्वारा उपेक्षित हुई। मुनि ने इन्द्र को शाप दिया कि उनका देवलोक 'प्रनष्ट लक्ष्मीक' हो। इस शाप से लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी। देवता हत श्री होकर असुरों द्वारा पराजित हो गये। ब्रह्मा के नेतृत्व में देवगण देवाधिदेव विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने समुद्र मथन की मन्त्रणा दी। इसी समुद्र मन्थन के परिणामस्वरूप कान्तिमती लक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ—

> ततः स्फुरत्कान्तिमती विकासि कमले स्थिता।
> श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुत्थिता धृतपङ्कजा॥
>
> —विष्णुपुराण—१/९/९९

इसी कान्तिमती दिव्यमाल्याम्बरधरा देवी ने सबों के समक्ष विष्णु के वक्ष स्थल पर आश्रय ग्रहण किया।[2] इसके अनन्तर पुराणों में कहा है कि भृगु पत्नी 'श्री' (अथवा, मन्वन्तर में दक्ष कन्या श्री) देव दानवों के अमृत मथन से पुनः उत्पन्न हुई, अर्थात् लक्ष्मी का दक्षकन्यापन या ऋषि कन्यापन लक्ष्मी के पुनराविर्भाव के ही कारण है।

---

१ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० ०)
२ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० ५२)

उक्त आख्यान की अपेक्षा विष्णु पुराण का वह वक्तव्य साम्प्रतिक महत्व का विशेष अधिकारी है जिसके अनुसार भगवान् जनार्दन के नाना अवतारों म उनकी सहायिका लक्ष्मी देवी सदा उनके साथ विभिन्न नाम रूपा म अवतरित होती हैं। विष्णु के रामावतार म लक्ष्मी ही सीता बनी थी और कृष्णावतार म वही रुक्मिणी बन कर प्रकट हुई। देवत्व म देवी और मनुष्य रूप म मानुषी बनकर सदा वही अवतरित होती रही हैं। पद्म, ब्रह्मव वत्त आदि पुराणो म भी इसी का समथन है।

माया—गीता म प्रकृति को श्री भगवान् की आत्ममाया कहा गया है। यहाँ केशव की त्रिगुणात्मिका प्रकृति उनकी अपनी ही प्रकृति है।[१] कल्पना म सब भूत उनकी प्रकृति म विलीन हो जाते है और कल्पान्तर म वे उन्हे पुन रचते हैं।[२] यह गुणमयी प्रकृति उनकी माया है। इसी शक्ति के अवलम्बन स वह अपने को जगदाकार प्रसारित करते है।[३] इसके अनन्तर कायकरणकत्तृत्व'—हेतु के रूप म प्रकृति का विस्तृत स्वरूप विश्लेषण भी किया गया है।[४]

पुराणा म अनेक स्थला पर प्रकृति को विष्णुमाया कहा गया है। भागवत क अनुसार परब्रह्म का गुणमयी आत्म माया के द्वारा ही सारी सृष्टि हुई। इस प्रकार पौरा णिक माया चि तन पर गीता का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

इसके अतिरिक्त, भागवत आदि पुराणो मे माया के स्वरूप को किंचित् भ्रमात्मक सिद्ध किया गया है। इसके अनुसार भक्तियोग के द्वारा ही प्राकृत माया के बन्धन स मुक्त होना चाहिए।[५] इस दृष्टि से गीता के इस सूत्र 'मामव ये प्रपद्य ते मायामेता तरन्ति ते" का भागवत के उक्त उल्लख— माया मदीया तरति स्म दुस्तराम्' पर सीधा प्रभाव जान पडता है।

किन्तु माया क इस दुस्तर प्रभाव को वष्णव जनो ने जिस भावात्मक संस्पश से रसमय और लीलामय बना लिया है वह विस्मय की वस्तु है। वष्णवो न मायावाद से सम्बन्धित शाकर मत का चुनौती देते हुए इसे परब्रह्म विष्णु के विलास का एक विचित्र शक्तिशाली उपकरण माना है। माया भ्रम मात्र न होकर 'विलास विभ्रम मानी गयी, अर्थात् विलास के लिए ही लीलामय भगवान् ने स्वेच्छा से अपनी सव यापी अखण्ड एक सत्ता म बहु के अस्तित्व का प्रतिभासित किया। अत माया सम्बन्धी बौद्धिक द्वन्द्व का सर्वोत्तम समाधान इसकी उक्त भावात्मक स्वरूप परिणति ही है जिसके माध्यम स भग वान् का माधुय भक्ति का अशेष प्रसार हुआ है। मध्यकालीन व्रज का य म भ्रमरगीत प्रसङ्ग

१ गीता–६/८
२ गीता–६/७
३ गीता–६/१०
४ गीता–१३/२० २३
५ भागवत—४/२०/३२
६ डॉ० ग० भू० ग० गुप्ता— श्री गा० अ० वि० (पृ० ६४)

तथा उद्धव गोपी सवाद मे प्रकृति या माया का जो खण्डन मण्डन हुआ है उसम गोपियो के पक्ष का यही दार्शनिक आधार है। सच तो, इसी प्रत्यय म हिन्दी काय की कृष्ण धारा का मधुर वशिष्ट्य है।

लक्ष्मी—पुराणो मे विष्णु शक्ति श्री या लक्ष्मी ही विष्णु माया की स्थानापन्न है। इस विष्णु माया के २ भेद हैं-(१) आत्म माया (२) बाह्य (प्राकृत त्रिगुण) माया। आत्म माया ही वष्णवी माया है। इसी माया के द्वारा देवकी के आठवें गभ का आकषण हुआ था। सद्य जात कृष्ण की रक्षा के लिए क या बन कर माया ने ही कस को धोखा दिया था। इसी माया के योग से मृत्तिका भक्षक कृष्ण न यशोदा को मुख म तीनो लोक दिखलाया था। इसी प्रेरणा से गोपाल कृष्ण न ब्रह्मा द्वारा गोवत्स हरण कर लिये जाने पर मायारचित गोवत्सो की प्राणप्रतिष्ठा कर ली थी। और, इसी की प्रेरणा से गोकुल वासियो क बीच अद्भुत लीलाएँ प्रदर्शित कर भी वह उनके द्वारा सदा सौम्य मानव रूप मे गृहीत होते रहे। यही योगमाया है। इसी योगमाया का विस्तार कर भगवान् कृष्ण सारी प्रकट लीलाएँ किया करते हैं।[1] योगमाया कृष्ण लीला की प्रेरक शक्ति है। गौडीय वष्णवो ने इस पर विस्तार से विचार किया है।

तत्त्व और दशन के क्षेत्र म देवी देवताओ के युग्म म परस्पर भेद बुद्धि रही है। कि तु भक्ति और काय के लोको म पाथक्य-बुद्धि की यही कट्टरता नही रहती। वहाँ तो सहयोग और समन्वय का सर्वोपरि महत्त्व दिया जाता है। अत तत्त्व दृष्टि से देखने पर शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि देवता तथा काली-दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सीता, रुक्मिणी आदि देवियाँ भले ही भिन्न और निरपक्ष हो कि तु जनता की सघ भावना के समक्ष सब के सब एक दि य युगल भावना म परिणत होकर ही प्रस्तुत होते हैं। अत पौराणिक युग का देवशास्त्र (माइथोलॉजी) मानवशास्त्र के युग्मवाद से प्रभावित है। और, सबके मूल म है उक्त सघ भावना का प्राधान्य। यही समीकरण की सहजात लोक प्रवृत्ति है।[2] पुराणो म इसी समीकरण के परिणाम स्वरूप सांख्य के प्रकृति पुरुष का तन्त्र के शक्ति शिव से सयुक्त कर लक्ष्मी विष्णु म पूर्णत एकमेक कर दिया गया है। यहाँ, पुराणो के लक्ष्मी-विष्णु वेदान्त के माया ब्रह्म, सांख्य के प्रकृति पुरुष और तन्त्र के शक्ति-शिव सब की युगल-भावना प्रतिष्ठित हो गयी हैं। परवर्ती पुराणो म रुक्मिणी कृष्ण और राधा कृष्ण इसी युगल भावना के प्रतिनिधि बन गय ह। म० म० प० गोपीनाथ कविराज ने अपने एक निबन्ध म इस भावना की पुष्टि की है। इस युगल भावना की सम्पुष्टि म निस्सन्देह शक्तिवाद के सिद्धान्त का विशेष प्रभाव रहा है। सामा यत लक्ष्मी विष्णु शक्ति ही हैं। उसी प्रकार कृष्णावत सम्प्रदाय म यह शक्ति रुक्मिणी और फिर राधा बन गयी ह। गौडीय गोस्वामियो और वष्णव सहजिया मतावलम्बियो न कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के रूप म ही रस साधना की है। कि तु इनकी स्वरूप प्रतिष्ठा पुराणो मे ही हुई। पुराणो न इस जातीय

---

१ 'विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्॥ भागवत–१०/१४/२१

२ डा० स० भू० दा० गुप्ता-श्री रा० क्र० वि (पृ० ७०)

विश्वास को सम्प्रदायवाद के संकीर्ण दायरे से निकाल कर लोक सामान्य भाव भूमि पर प्रतिफलित कर दिया। इसी भाव भूमि पर विद्यापति के 'हरिहर वाद'[1], मराठी सन्तों के विट्ठल प्रेम या प्राचीन आलवारों के राम कृष्ण विषयक समवत् गीत आदि की पर्यवसान को हृदयगम किया जा सकता है। वस्तुतः क्या राधा कृष्ण और क्या सीता राम सर्वा पर उस आदिम विश्वास का ही प्रभाव है। किसी किसी पुराण में विष्णु लक्ष्मी का राधा कृष्ण के साथ-साथ ब्रह्म माया, पुरुष प्रकृति शिव-दुर्गा के साथ साथ सीता राम भी आ मिले हैं।[2] किन्तु इनमें भी दृष्टिकोणगत वभिन्य है जो सूक्ष्मता से लक्षित किया जा सकता है। इनमें राधा कृष्ण के अतिरिक्त अन्य युग्मों का काव्यात्मक प्रतिफलन उतनी सरलता के साथ नहीं हुआ। उन अन्य स्वरूपों पर तत्ववाद का भीना आवरण पड़ा ही रह गया। किन्तु अवैदिक स्रोतों से भी सम्बद्ध होने के कारण कृष्ण चरित में लौकिकता, प्रेम और शृङ्गार की प्रधानता है, भावात्मकता है, प्रेमाख्यानों और जनगीतों का माधुर्य है। इनके विषय में तो पद्मपुराण[3] ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि की स्थापना ही यह है कि राधा के समान न कोई नारी है और न कृष्ण के समान कोई पुरुष। राधा कृष्ण की यह युगल जोडी सृष्टि में नारी पुरुष का अन्यतम आदर्श है।

---

१ "भल हरि भल हर भल तुअ कला" आदि पदों में शिव और कृष्ण के प्रति कवि का प्रकट हुआ सामान्य लोक विश्वास।

२ पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २४३/३१ ३७ तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड, राधामहिमा

३ वही, १ श्लोक-५१-"न राधिका समा नारी न कृष्ण सदृश पुमान्"

अनुच्छेद—३

"रुक्मिणी, गोपी और राधा भाव का विकास"

रुक्मिणी—पुराणों में जैसे जैसे विष्णु के स्थान पर कृष्ण प्रतिष्ठित होते गए वैसे-वैसे कृष्ण की पट्टमहिषी रुक्मिणी विष्णु प्रिया लक्ष्मी का आसन ग्रहण करती गयी। इस प्रक्रिया में रुक्मिणी उत्तरोत्तर लक्ष्मी का स्थापन्न बनती गयी। कृष्ण लीला का प्रथम उल्लेख खिलहरिवंश में हुआ है। खिल हरिवंश में यद्यपि रुक्मिणी स्पष्टत लक्ष्मी नहीं हैं किन्तु उनका स्वरूप चित्रण बहुत कुछ लक्ष्मी रूप का सा ही हुआ है।[1]—"ता ददर्श तत्र कृष्णो लक्ष्मीं साक्षादिव स्थिताम्।" अर्थात् कृष्ण महिषी रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी सी प्रतीत हो रही हैं। पुराणों में लक्ष्मी स्वयंवर की कथा प्रसिद्ध ही है। संभवत कृष्णचरित में रुक्मिणी स्वयंवर की कथा के पीछे उसी की परोक्ष प्रतिध्वनि रही हो। यहां रुक्मिणी की अन्य सहमहिषियों का भी यथास्थान उल्लेख है। हरिवंश में इन महिषियों के नाम हैं—कालिन्दी, मित्रवृन्दा, नाग्नजिती, जाम्बवती, रोहिणी, लक्ष्मणा और सत्यभामा। विष्णुपुराण में उक्त महिषियों का ही परिगणन है। ये ही ८ महिषियाँ १६ महिषियों से होते होते १६ हजार पत्नियां बन गयी हैं। किन्तु ऐतिहासिक समीक्षा के अनन्तर कुछ विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "रुक्मिणी के सिवा श्री कृष्ण के और कोई स्त्री नहीं थी।[2] उनके अनुसार श्री कृष्ण ने एक से अधिक विवाह किये या नहीं इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला। स्यमन्तक मणि के साथ जैसी स्त्रियाँ उन्हें मिलीं वह नानी की कहानी के उपयुक्त है। और नरकासुर की १६ हजार बेटियां तो नानी की कहानियों की भी नानी हैं। कहानियाँ सुनकर हम प्रसन्न हो सकते हैं, पर विश्वास नहीं कर सकते।[3] बंकिमचन्द्र का उक्त निष्कर्ष महाभारत, आदि पर्व, संभवपर्वाध्याय, ६७वां अध्याय के अंशावतार वाले अंश पर आधारित है।

बंकिम बाबू का कृष्ण के पौराणिक चरित के प्रति बहुत अनुकूल दृष्टि ... हो, ऐसी बात नहीं। उन्होंने कृष्ण चरित्र सम्बन्धी इतिवृत्तों की छानबीन में ... पद्धति का आश्रय लिया है उससे कोई गम्भीर तत्त्वानुसंधान हो सकता है, ... का उद्घाटन नहीं। उसके लिए तो एक रमणीय प्रत्यय की अपेक्षा है। ... के बल पर कोमल कल्पना के धनी पुराणकारों ने लीला पुरुषोत्तम ... पत्नियों के साथ उनकी विलास क्रीडा का सुमधुर अंकन किया है। ... इन सहचरियों के बिना कृष्ण लीला की कल्पना ही अधूरी रह जाती। ... दृष्टि और फिर पौराणिक दृष्टि से इन सहचरियों के सम्बन्ध में विचार ...

---

१ ८९/३५ ३६

२ बंकिमचन्द्र—'कृष्ण चरित्र'—'कृष्ण का बहु विवाह'

३ वही वही

तत्वत गीता म ही कृष्ण की अष्टधा प्रकृति का उल्लेख हुआ है।[1] इसकी पुष्टि सांख्य से भी होती है। इसके अनुसार प्रकृति आठ और विकार सोलह हैं।[2] सम्भवित इन्ही आठ प्रकृतियों से कृष्ण की आठ महिषियों की कल्पना हुई हो जिसकी पुष्टि पुन सोलह विकाररूपा महिषियों से भी कालान्तर म हो गई है। किन्तु इन सोलह महिषियों की कल्पना मे मूल म अन्य बात भी सहायक रही है। उपनिषद् काल स ही शक्ति को सर्वत्र षोडश-कलात्मिका कहा जाता रहा है। लगता है कि इन १६ कलाओं स ही कृष्ण की सोलह पत्नियो का रूप निर्मित हुआ।[3] तन्त्रशास्त्र म सूर्य यदि पुरुष प्रकार है तो चन्द्र प्रकृति या शक्ति प्रतीक। और चन्द्र सोलह कलाओ स पूर्ण है। अत शक्ति भी षोडश कलात्मिका कही गई। रुक्मिणी लक्ष्मी की प्रतीक हैं। अतः यदि उनके साथ भी महिषी स्वरूपा सोलह महिलाओं की रूप कल्पना कर ली गई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

श्री सूक्त की श्री तथा पुराणों की लक्ष्मी दोनो ही 'चन्द्रा' हैं। अत रुक्मिणी भी चन्द्रा हैं। अर्थात् उनम भी सोलह कलाएँ महिषी सदृश हैं। पुराणो म यही षोडश महिषियाँ षोडश सहस्र महिषियो म चन्द्रावली की सहस्र किरणो की नाई मण्डलबद्ध कर प्रतिभासित हो उठी हैं। स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड के अनुसार श्री कृष्ण चन्द्रस्वरूप हैं और ये सोलह देवियाँ षोडश कला रूपा उनकी शक्तियाँ हैं। चन्द्र जिस प्रकार प्रतिपदा आदि तिथियों का अवलम्बन करके सचरण करता है उसी प्रकार कृष्ण इस मण्डल म यथाक्रम विहार करते हैं।—

सत्यैत शक्त्यो देवी षोड़शैव प्रकीर्तिता।
चन्द्ररूपी मत कृष्ण कलारूपास्तु ता स्मृता॥
सम्पूर्ण मण्डला तासा मालिनी षोड़शी कला।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य सचरत्यासु चन्द्रमा॥ आदि

प्रति कलात्मिक गोपी से हो पुन प्रति हजार गोपियों का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार कुल गोपियों की संख्या सोलह हजार हो गयी। जीव गोस्वामी के 'श्री कृष्ण स दर्भ' के अनुसार लक्ष्मी भगवान् की षोडश कलात्मिका शक्ति हैं। इस लक्ष्मी रूपी एक स्वरूप शक्ति स ही सोलह कृष्ण वल्लभाओ का उद्‌भव हुआ।[4]

यह तो द्वारका लीला के अ तर्गत आने वाली कृष्ण की महिषियो का तत्वविकास हुआ। उनकी व्रज लीला मे तो उनकी सहचरी भावना का सहस्रदल कमल की भाँति विकास हुआ है। और, यह आश्चर्य की बात नही है कि महिषियो की संख्या म गोपियो का विशाल मण्डली के प्रभाव स्वरूप वृद्धि हुई है। मात्र ह हजार नायिकाओ के साथ एक ही समय एक ही कृष्ण के अभिरमण की कल्पना ऐतिहासिक नही, पौराणिक ही हो सकती है। पुराणो म गोपी कल्पना और महिषी भावना दोनो एक दूसरे के बिल्कुल पास पहुँच गयी हैं।

१ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० ८२)
२ "अष्टौ प्रकृतय षोडशविकाराः" —रामानुज का श्री भाष्य, ४ पा, ७ सू०।
३ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० ८२)
४ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० ८२)

गोपी—ऊपर, स्क द पुराणान्तगत कृष्णच द्र की षोडश कलात्मिका शक्तियो का उल्लेख किया जा चुका है। उसी के अ तगत शिव गौरी सवाद के प्रसग मे यह उपाख्यान आया है कि पुराने समय मे कृष्ण जब यादवा के साथ प्रभास के तीर पर आये थे तो उनके साथ १६ हजार गोपियाँ भी आयी थी। इनमें से सोलह प्रधान गोपिया को गिनाकर कहा गया कि ये ही कृष्णच द्र की षाडश कलाएँ हैं।[1] अत पुराणा की समन्वय भावना म गोपी और महिषी भावना भी अ तर्मुक्त हो गयी हैं। बाद म जब कृष्ण लीला के रमणीकत्व पर ही दृष्टि के द्रीभूत हो गयी तो व्रज देवियो की तुलना मे कृष्ण की पटरानियो का महत्त्व कुछ न्यून हो गया। कहना न होगा कि इस काटि भ्रम के पीछे परकीयाप्रेम की प्रबलता का शक्तिशाली प्रभाव था। इसके परिणामस्वरूप जहा महिषियो का स्वीया भाव गोपियो के परकीयाप्रेम के समक्ष म्लान मलिन पड गया वहाँ कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का यथेष्ट सवर्द्धन भी हुआ। कृष्ण के गोपीप्रेम मे जब राधा भाव का सन्निवेश हो गया ता राधा कृष्ण के युगल स्वरूप मे इस भावना का चरम परिपाक घटित हुआ। काव्य मे केन्द्रीय भावना के रूप मे गोपीशिरामणि राधा और गोपशिरोमणि कृष्ण की युगल जाडी के प्रेम प्रसगों का ही कल गान हुआ है।

गोपीभाव की प्राचीनता के निदशन मे विद्वान् वैदिक मन्त्रो मे प्राय "वृषाकपि सूक्त" तथा "अपालासूक्त" का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार "अपाला" गोपियो की ही तरह एक कुमारी क या थी जिसके मन मे अपने पति की अपेक्षा इन्द्र समागम की बलवत्तर कामना जगी रहती थी। इस सूक्त के चौथे मन्त्र मे ऐसी ही अन्य कुमारियो के सम्बन्ध म सकेत मिलते हैं। उनकी स्पष्ट यह प्रार्थना थी—

कुवित् पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सगमामहै॥ ४॥

अपाला या ऐसी अन्य स्त्रियाँ कुमारी थी या विवाहिता, यह ता विवादास्पद है ही नही क्योकि उन्होने अपने पतियो का स्पष्ट उल्लेख किया है। सायणाचाय ने अपने भाष्य मे इन्हे विवाहिता ही माना है। प० बलदेव उपाध्याय ऐसा नही मानते। कि तु उ हाने आगे जो तर्क[2] दिये हैं उनसे स्वय उन्ही की धारणा खण्डित हो गयी है। ये कुमारियाँ विवाहिता भी हो तो हमें कोई आपत्ति नहा क्योकि, स्वय कृष्ण म अनुरक्ता गोपियाँ भी विवाहिता अविवाहिता थी। इन्होंने कृष्ण का पति रूप म प्राप्त करने के लिए किशारी अवस्था से ही लौकिक अलौकिक सारे अनुष्ठान शुरू कर दिये थे। कृष्ण उनके प्रेम-सवस्व थे। अत कृष्ण के लिए उन्हाने यदि अपने सामाजिक बन्धनो को भी तोडा हो तो कोई आश्चय नही। वे विशुद्ध प्रेम की निश्छल प्रतिमा थी। उन्हा के कारण कृष्णचरित इतना अधिक रमणीय और लीलामय बन सका। अत उक्त वैदिक सूक्त के अनुशीलन से हम इस निष्कष पर पहुँचते हैं कि उत्तरोत्तर अपने प्रभाव विस्तार के साथ कृष्ण द्वारा इन्द्र-पत्नी शची या लक्ष्मी का ही रुक्मिणी रूप मे आहरण नही हुआ अपितु इन्द्र प्रेयसी उन कुमारियो का भी गोपकुमारियो के रूप मे कृष्ण की व्रज लीला म आरोप हो गया।

१ स्कन्दपुराण, प्रभास खड–शिव गौरी सवाद।

२ "उस युग म ऐसी बहुत सी कुमारियाँ विद्यमान थी, जो अपने पतियो से द्वेष करती थी (पतिद्विष) तथा इन्द्र के सगम करने की इच्छुक थी।"–भा० वा० श्री रा० (पृ० ४१)

वैदिक युग की कुमारियाँ भी विवाह व घन से दूर रहकर प्रियतम इन्द्र की उपासना म वैसी ही तल्लीन दिखाई पडती हैं जैसे पौराणिक युग की गोपियाँ कृष्ण म अनुरक्त दिखलाई गई हैं।

लीलावाद—प्रश्न है कि आखिर कृष्ण में इस उत्तरोत्तर बहुवल्लभ का उद्देश्य क्या है ? ऐसा बहुवल्लभ तो धरती पर प्रतापी नरेश ही हो सकते हैं, अथवा स्वर्ग मे मुक्त विलासी देवता ही। और चूकि, कृष्णचरित म लौकिक माधुर्य और अलौकिक ऐश्वर्य दोनो का मणि काचन सयोग है अत नाना लीलारस विस्तार हेतु कृष्ण म बहुवल्लभत्व का समावेश कोई आकस्मिक सयोग न होकर शृङ्गार लीला मे उद्देश्य से ही प्रेरित है। इसी शृङ्गार लीला के हेतु वेदान्त, सांख्य, तन्त्र आदि म प्रकृति का बौद्धिक धरातल पर अधिष्ठान हुआ। पुराणो मे यही स्निग्ध, कोमल भाव भूमि पर अवतरित होकर गोपी कृष्ण तथा राधा-कृष्ण की मधुर केलियो म परिणत हो गया। काव्य म इसी लीला का सुमधुर वितान हुआ। किन्तु इस लीला की लीलावाद रूप म प्रतिष्ठा किसी गभीर सैद्धान्तिक पृष्ठाधार के बिना असंभव ही थी। और, जहाँ तक इस सद्धान्तिक आधार का प्रश्न है स्वामी शकराचार्य के अद्वतवादी दर्शन से इसका प्रत्यक्ष विरोध था। इसलिए, आवश्यकता थी एक अत्यन्त प्रखर वैष्णव दर्शन की, जिसम एक साथ ही ब्रह्मवाद और मायावाद का खडन तथा अवतारवाद और लीलावाद के मडन की सामर्थ्य हो। रामानुजादि वैष्णवो के चतु सम्प्रदाय इसी दिशा मे गभीर प्रयत्न हैं। इनके अद्वैत विरोधी दर्शन के आधार उपर्युक्त आगम तन्त्र और पुराणो की मान्यताए ही हैं। इन्ही की माया, शक्ति या प्रकृति के आश्रय से शाकर विवर्त्तवाद के पर्दे को भेदकर लीलावाद की प्रतिष्ठा की गयी है। तथा सीता राम और राधा कृष्ण की युगल लीला मे परमात्मा और प्रकृति क नित्य मिलन की रूपकात्मक अनुसगति बैठायी गयी है। हाँ, तन्त्र या आगमो के लीला वाद और इन वैष्णवाचार्यों के लीलावाद म स्वरूपभूत अन्तर है, जिसे सूक्ष्मता से लक्षित किया जा सकता है। और वह अन्तर यह है कि तन्त्र आगमो का लीलावाद जहाँ सृष्टि लीला तक ही सीमित है वहाँ इनम स्वरूप लीला का भी साक्षात्कार हुआ है।

पद्मपुराण का "उत्तर खण्ड' जिसे बहुत प्रामाणिक नही माना जाता उसम इस स्वरूप लीला का अस्फुट आभास मिलता है। इसके अनुसार परम व्योम विष्णु का भोग स्थल और यह अखिल सृष्टि उसकी लीला भूमि है। भोग और लीला दोनो ही इनकी विभूतियाँ हैं। भो। नित्य स्थित है और लीला नैमित्तिक। भोग के समय लीला को वह समेट लेते हैं अन्यथा सृष्टि विकास म उसका प्रसार करते हैं। स्वधाम मे वह नित्य लीला रत हैं। यही भोग है। यही उनकी स्वरूप लीला है। और, जगत सृष्टि उनकी बाह्यलीला है।

'भोगार्थं परम व्योम लीलार्थमखिल जगत्।
भोगेन क्रीडया विष्णोर्विभूतिद्वय सस्थिति ॥
भोगे नित्यस्थितिस्तस्य लीला सहरते कदा।
भोगो लीला उभौ तस्य धार्यते शक्तिमत्तया ॥'[1]

---

१ पद्मपुराण-उत्तर खड-२२७/६-१०

इन समस्त लीलाओ की आधारभूता लक्ष्मी या श्री हैं। यही श्री श्री–सम्प्रदाय के केन्द्र म प्रतिष्ठित हैं। रामानुज के गुरु श्री यामुनाचाय ने अपने "श्री स्तोत्र रत्न" मे कहा है—

अपूर्व नाना रस भाव निर्भर प्रबुद्धया मुग्ध विदग्धलीलया।
क्षणाणुवत्क्षिप्त परादि कालया प्रहर्षयन्त महिषीं महाभुजम् ॥[१]

अर्थात्, अपूव नाना रसो और भावा पर निभर जो प्रबुद्ध लीला है, जो (लीला) केवल मुग्ध लीला ही नही वरन् विदग्ध लीला भी है–जा नित्य भी है और ब्रह्म की सम्पूर्ण आयु जहा क्षण के अणुमात्र की तरह है–उसी लीला द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् अपनी प्रेयसी को हृष प्रदान कर रहे हैं। ये विवरण परवर्ती वैष्णवा की रस निभर स्वरूप-लीला का आभास प्रदान करते हैं।

काव्य म गोपियो का प्रथम उल्लेख हाल की "गाथा सतसई" मे मिलता है। अनन्तर दक्षिण देशीय आल्वार भक्तो के भक्ति गीतो म गोपी भावना का सुन्दर विन्यास हुआ है। अण्डाल गोपी भाव की उपासिका भक्तिन ही थी। पुराणा में आभीर वधुआ का ही कृष्ण प्रेयसी गोपी रूप में लीलावतरण हुआ है। आभीर-देवता कृष्ण का सम्बन्ध हम पहले से ही गो, गोप, गोपी और गोकुल से देख रहे हैं। इस प्रेमदेव गोपाल के साथ वासुदेव कृष्ण सयुक्त होकर जब पुराणो मे प्रकट हुए और उनकी प्रणय लीला का उत्तरोत्तर प्रसार हुआ तो लीलापुरुष कृष्ण के साथ गोपिया तथा शृङ्गार लीला के अन्य भावात्मक उपकरणो को भी आध्यात्मिक प्रतीक के रूप मे निरूपित किया गया।

ऋग्वेद के विष्णुसूक्त म विष्णु के लिए "गोपा" पद का प्रयोग परवर्ती गोप कल्पना का आद्य समथक जान पडता है।[२]

महाभारत के चीर हरण प्रसग मे द्रौपदी के मुख से द्वारिकावासी कृष्ण के जो सम्बोधन हुए हैं उनमे "गोपीजनप्रिय" पद भी आया है। विद्वानों ने उक्त सम्बोधन के आधार पर वहाँ गोपी वल्लभ कृष्ण के अस्तित्वाभास की सम्भावना की है, इसे यथा स्थान दिखलाया जा चुका है।

अनन्तर खिल हरिवश म कृष्णावतार का प्रयोजन बतलाते हुए कहा गया है कि कुरु और वृष्णिवश म देवताओ का ही जन्म हुआ था।[३] अत ब्रज की गोपियाँ भी देवियाँ ही सिद्ध होती हैं। इस धारणा की पुष्टि अन्य पुराणा से भी हो जाती है। विष्णु-पुराण मे भी गोपियो के प्रेम की चर्चा है। यहाँ तो अनेक गोपियो मे उस एक विशिष्ट गोपा की भी चर्चा है जो स्वय भगवान् कृष्ण के द्वारा "पुष्पालङ्कृता हुई थी। उसके इस सौभाग्य पर ईर्ष्या प्रकट करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

१ श्री स्तोत्ररत्न–४४

२ "यदि समय के व्यवधान का हम अकिंचित्कार मानें, तो कालिदास के "गोपवेषस्य विष्णो" म हम 'विष्णुर्गोपा अदाभ्य" की बहुत ही दूरगामी प्रतिध्वनि पाते हैं।" -प० ब० उपाध्याय (भा० वा० श्री रा०–पृ० २५)

३ हरिवश आदि पव, अध्याय–५३ ५५

"अन्यज मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितस्तया।"[1]

अर्थात्, उस गोपी विशेष ने अवश्य ही पूर्व ज म म भगवान् विष्णु की अभ्यर्चना की थी। ठीक यही प्रसग श्रीमद्भागवत मे भी आया है जहाँ गोपियो के बीच से कृष्ण अचानक एव गोपी विशेष को लेकर अ तर्धान हो जाते है। विष्णु पुराण की ही भाँति भागवत की गोपिया भी यमुना पुलिन पर कि ही दो मजु पद चि हो को पहचान कर असूया से जलती हुई कहती हैं—

अनयाराधितो नून भगवान् हरिरीश्वर ।
यन्नो विहाय गोवि द प्रीतो यामनयद्रह ॥[2]

अर्थात्, इस रमणी के द्वारा अवश्य ही भगवान् कृष्ण आराधित हुए हैं। क्योंकि गोवि द हम को छोडकर प्रसन्न होकर उसे एका त म ले गये है। अत जो विष्णु पुराण मे "अभ्यर्चितस्तया" है वही भागवत म 'अनया राधित है। काला तर म, गोपियों म से इसी "आराधिका' से 'राधिका" निकल पडी है।

भागवत मे गोपियो को देव पत्नी कहा गया है जो वसुदेव गृह म साक्षात् विष्णु रूप म ज म लेने वाले भगवान् के रजन हेतु धरती पर अवतरित हुइ।[3] विद्वानो ने भागवत की गोपियो को 'हरिवश' या विष्णु पुराण' की गोपिया की भाँति ही लौकिक माना है[4] कि तु, जब हम भागवत वर्णित गोपी प्रेम के अन्तरग रहस्य का परिचय प्राप्त कर लेते हैं तो उसका उदात्त रूप प्रकट हुए बिना नही रहता। अपने को सर्वतोभावेन कृष्णार्पित कर देने वाली गोपागनाओ ने प्रेम का जो अनुपम दृष्टा त रखा वह काला तर म परमात्मा के प्रति जीवात्मा की मिलनेच्छा का सरस प्रतीक बन गया। श्री मद्भागवत म गोपियों के सर्वस्व समर्पण पर विस्मित भगवान् कृष्ण ने जो कुछ भी कहा है उससे इस प्रेम की चरम महिमा प्रतिष्ठित हो गयी है—

न पारयेऽह निरवद्यसयुजा स्वसाधुकृत्य विबुधायुषापि व ।
या माभजन् दुर्जरगेहशृखला सवृश्च्य तद् व प्रतियातुसाधुना ॥[5]

अर्थात् हे प्रियाओ ! तुमने जो अपने घरो की अत्य त कठिन बेडियो को तोड कर मेरा सहयोग किया इस साधु कृत्य का प्रतिदान क्या मैं अमर आयु प्राप्त कर भी कभी चुका सकूँगा। अत तुम हमेशा एसी ही उदारता का दान देकर सदा मुझ उऋण किये रहना । और, सचमुच इस प्रेम के सर्वस्व दान का ऋण कृष्ण कभी न चुका सके। गोपी प्रेम महिमा के स्वत त्र वर्णन म भागवत अ या यपुराणो मे अत्यतम है। वायु, अग्नि आदि पुराणो मे भी इसका छिटपुट उल्लेख हुआ है।

परवर्ती पुराणो मे पद्म और ब्रह्मवैवर्त गोपी महिमा के उद्गायक पुराण हैं।

---

१ विष्णुपुराण—५/१३/३५
२ भागवत पुराण—१०/३०/२४
३ भागवत—१०/१/२३
४ डा० ब० वर्मा—हि० सा० का (१)—(पृ० २७७)
५ भागवत—१०/३२/ २

पद्मपुराण में गोपी जन्म का रहस्य बतलाते हुए यह कहा गया है कि दण्डकारण्य वासी मुनियों ने कृष्ण रूप के सौन्दर्य माधुर्य का आस्वादन करने के लिए गोपी रूप में जन्म ग्रहण किया था। श्रुतियों की प्रार्थना और उनसे गोपी रूप का अवतरण भी अनेकश उल्लिखित हुआ है। यहाँ गोलोक के नित्य वृन्दावन की विशद कल्पना है जिसमें परमानन्दरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण गोपी तथा राधा के साथ नित्य लीला रत रहते हैं। पद्मपुराण में राधा सहित १६ गोपियाँ हैं। प्रो० सुकुमार सेन ने अपनी "ब्रजबुली " पुस्तक में 'चन्द्रावती' और "चन्द्रावली" को अलग अलग लिखा है, जो ठीक नहीं।[१] चन्द्रावली राधा की प्रतिद्वन्द्विनी थी।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में गोपी जन्म ग्रहण का भी विशद वृत्तान्त है। श्री कृष्ण जन्म खण्ड में गोलोक वासी परब्रह्म श्री कृष्ण ने अपने नन्दव्रज में अवतीर्ण होने के पूर्व राधा तथा गोलोक की अन्य गोपियों को व्रज में जन्म लेने की आज्ञा दी।[२] अनन्तर अन्य देवी देवताओं को भी गोप गोपी रूप में व्रजमण्डल में जन्म लेने को कहा गया है।[३] इसी के अन्तर्गत महामाया स्वरूपिणी पार्वती के यशोदा की माया पुत्री रूप में अवतरित होने का संकेत है। यहाँ राधा भाव का चरम प्राधान्य है। उसे साक्षात् प्रकृति-स्वरूप कहा है जिसमें शक्ति के रूपों का समाहार हुआ था—

स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम्।
सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वधारा सनातनी ॥[४]

राधा की सुशीलादि तैंतीस सखियों का उल्लेख है[५] जो ३३ संचारी भावों का स्मरण दिलाती हैं। अनन्तर कृष्ण राधा को यह आदेश देते हैं कि अनेकानेक गोपियों के साथ तुम व्रज में पधारो। इस प्रकार राधा, गोपी तथा अन्यान्य देव देवियों का यह अवतरण अत्यन्त समारोहपूर्ण है। और, इन सबों के मूल में श्रीकृष्णावतार की आनन्दवादी लीला-कल्पना काम कर रही है। क्योंकि, कृष्ण इस अवतरण का प्रयोजन बतलाते हुए विरह विदग्धा राधा से इष्ट कहते हैं—' वस्तुतः कंस भय के व्याज से मैं तुम्हारे लिए ही गोकुल आऊँगा। कल्याणि ! तुम वहाँ यशोदा के मन्दिर में मुझे (नन्दनन्दन कृष्ण को) प्रतिदिन आनन्दपूर्वक देखोगी और हृदय से लगाकर धन्य होगी।[६] ब्रह्मवैवर्त में राधा को छोड़ अन्य ३३ गोपियाँ हैं। प्रो० सुकुमार सेन ने ५ अन्य गोपियों के भी नाम दिये हैं, जो विचारणीय हैं।[७] इस प्रकार पुराणों में उत्तरोत्तर गोपियों की संख्या बढ़ती गयी है। इनका इतिहास अति रोचक है।

---

१ प्रो० सुकुमार सेन—'हिस्ट्री आफ ब्रजबुली लिटरेचर' (पृ० ४७५)
२ ब्रह्मवैवर्त—६/६३-६६ ३ वही—६/११९ ४ वही—६/२१८
५ वही—६/२३२ ६ ब्रह्मवैवर्त–६/२९–४०
७ प्रो० सुकुमार सेन—' हि० ऑ० ब्र० लि०" (पृष्ठ ४७५)–आचार्य द्विवेदी ने भी प्रो० सेन का ही अनुवर्तन किया है, देखिये—"म० ध० सा०', (पृ० १३४)
ब्रह्मवैवर्त, कृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय ५२ ५४ में अवश्य ही राधा की ३६ सखियों का उल्लेख हुआ है जो ३६ राग रागिनियों की प्रतिरूपा मानी गयी हैं। किन्तु, उनका अध्याय—६, श्लोक २३२ में उक्त ३३ गोपियों से स्पष्ट संख्या विभेद है। यह उत्तरोत्तर इनकी संख्या वृद्धि का प्रमाण उपस्थित करता है।

वैष्णवाचार्यों ने भी गोपियों के लीला-हेतुश्रा का समथन किया है। राधा तथा गोपियाँ कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति मानी गयी हैं। निम्बार्क रचित "दश श्लोकी" में इनके अस्तित्व की स्पष्ट स्वीकृति है। यहाँ श्री कृष्ण के वामाग म विराजमाना वृषभानु नन्दनी को नमस्कार किया गया है जो सदा सहस्रा सखियो द्वारा परिसेवित बतायी गयी हैं। इस प्रकार, यहाँ तक आते आते आठ, सोलह, तैंतीस आदि सखियों से सहस्रा सखियो तक इनकी सख्या वृद्धि हो गयी है। यहाँ लक्ष्मी आदि ऐश्वयभूता हैं तथा राधा गोपी आदि माधुयभूता। गौडीय गोस्वामियों ने इनम सर्वाधिक विस्तार से काम लिया है। इनका उल्लेख "उज्ज्वल नीलमणि' के 'कृष्णवल्लभ" प्रकरण मे हुआ है। इ ह प्रथमत स्वकीया परकीया वर्गों मे रखा गया है। आगे चलकर यूथश्वरी, सखी तथा मजरी वग की कल्पनाएँ की गई हैं। श्री कृष्ण की ही भाति गोपियो के भी प्रकट और अप्रकट दोना रूप हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय म चैत य मत के आचार्यों का उक्त वर्गीकरण ही किंचित् अ तर से अगीकार कर लिया गया है। वल्लभाचाय ने "सुबोधिनी मे गोपियो को भाव की दृष्टि से तीन वर्गों मे विभक्त किया है—

(१) अ यपूर्वा

(२) अन यपूर्वा

और, (३) सामा या

प्रथम भाव मे 'जार' भाव की कृष्णोपासना है। यह भक्ति का उच्चतम सोपान है। इसके नायक वृ दावन बिहारी कृष्ण हैं। द्वितीय भाव म मर्यादामार्गी कृष्णोपासना है। यह भक्ति का उच्चतर सोपान है। इसके नायक पति कृष्ण हैं। और, तृतीय भाव म वात्सल्य भाव पूण कृष्णोपासना है। यह भक्ति का उच्च सोपान है। इसके नायक बाल कृष्ण हैं।

ब्रज के अ य भक्ति सम्प्रदायो म गोपियाँ सखी भाव से गृहीत हुई हैं। सखी सम्प्रदायो म इनकी महत्ता चरम उत्कषवद्धक हो गई है। किन्तु, यह ध्यान देने को बात है कि काव्य मे उत्तरोत्तर गोपी भाव राधा भाव मे केन्द्रीभूत होता गया है।

गोपियाँ आदि से अन्त तक उत्सग प्रधान प्रेमाभक्ति की ही प्रतिमूर्ति बनी रही हैं। यह कृष्ण की लीला सहचरी, ह्लादिनी आदि रस शक्ति हैं। राधा से ही इनके पृथक पृथक नाम रूपों का विस्तार हुआ है। अत य कृष्ण से अभिन्न होकर भी भिन्न हैं और भिन्न होकर भी अभिन्न हैं। भाव साधकों ने अपनी अपनी प्रवृत्ति क अनुसार इन्हें समझा है। मूलत यह श्री कृष्ण लीला की विस्तारिणी हैं। डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार—

'राधा रस सिद्धि की प्रतीक हैं तथा अ य गोपियाँ गोपी स्वरूप बनने की कामना करने वाले भक्तो की प्रेम भक्ति-साधना की विविध स्थितियो का प्रतीक हैं।'[1]

रस दृष्टि से विचार करने पर ऐसा लगता है कि कृष्ण भावना को केन्द्र म प्रतिष्ठित कर राधा और उसकी अष्ट सखियो के रूप म नव रस ही उद्वलित हो गये हैं। पुराणों की

१ डॉ० ब्र० वर्मा०— हि० सा० को० (पृ० २७८–२७६)

३३ सखियाँ ३३ संचारियों के रूप में कवि मानस से स्रवित हो इन नवधा सरणियों में मिलकर इसे परिपुष्ट किये देती हैं। अपने नाम रूपात्मक अस्तित्व के आदि चरण से ही ये कृष्णमूलक केन्द्रीय भावधारा में सराबोर रहीं। कृष्ण के साथ इनके पूर्ण संयोग और विलास की वेला में 'रति" है, हास परिहास में हास" है, वचनबद्ध होकर भी उनके मुकर जाने के उपलक्ष में "क्रोध' है, मिलन मध्य अन्तर्धान हो जाने के कारण जो सम्पूर्ण व्रज मण्डल का मथन हुआ, उसमें "उत्साह" है विश्लेष भय ही 'भय" है सर्वस्व अर्पित करने पर भी प्रिय के हँसते हँसते अक्रूर के रथ पर बैठ मथुरा चल देने वाली जो क्रूरता है उसके प्रतिकार स्वरूप 'जुगुप्सा" है, एक होकर अनकानेक गोपियों के साथ एक ही समय रास निरत होने में जो कुतूहल है उसमें "विस्मय' है, प्रिय के प्रवास और पुनः न मिलने की जो निराशा है, उसमें 'शोक" और अन्ततः प्रिय विश्लेष दुःख दग्धा गोपियों के उन्मथित मानस में हरि लीला का जो शान्तिदायक चिरस्मरण है उसमें "शम" है। गोपियों का यह भावविदग्ध कृष्ण प्रेम भक्ति भावना की चरम उपलब्धि है। डॉ० विनयकुमार गोस्वामी के शब्दों में—

"The milk women were the incarnation of love of Him, and He the incarnate object of their love The Hladini Shakti, the power of love and joy, to fulfil self was revealed as so many milkwomen Krishna enjoyed His love & joy through them The Puranas & the rest of the Satwata literature mention accordingly eight prominent comrades of Radha These nine led the music of love & life in Vrindavana or Brajbhumi, while others clusternd round them, just as Sanchari bhawas cluster round the leading types of emotion [1]"

अमृत मधुकृष्ण लीलाओं में रास का अमा निशा में पूनम के मधुर उल्लास का सा अन्यतम महत्व है। गोपियाँ रासेश्वर कृष्णचन्द्र की प्रेम ज्योत्स्ना में पूर्णतः सरोवर उनकी अनन्त रश्मियाँ हैं। ये उनके भावात्मक स्वरूप से विच्छुरित होकर व्रज की नित्य लीला-भूमि में रम गयी हैं। सम्पूर्ण व्रज मण्डल जैसे उन्हीं के प्रेम का सरस वितान हो। काम रूपा प्रेम जो माधुर्य भक्ति का प्राण है, गोपी कृष्ण के पारस्परिक सम्बन्ध का आधार है। अतः यह सम्बन्ध जनित प्रेम से निश्चय ही गुरुतर है। वे अनेकों बार कृष्ण के सम्मोहन मन्त्र पर कूल किनारा को तोड़ कृष्णमय बन गयीं। इस पूर्ण चन्द्र को देख उनके प्रेम सिन्धु का ज्वार अनुक्षण उमड़ता ही रहा। भक्त सूर का सागर इन्हीं गोपियों के आश्रय से अपने सवा लाख पदों के ज्वार में लहराया है। उनके जीवन का एक मात्र यही सार्थकता रही। स्वयं भगवान ने इनके इस काम-सम्बन्ध का निगूढ़ रहस्य बताते हुए कहा है—

[२]निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ प्रेमभाजनम् ॥

1 The Bhakti cult in Ancient India (P 403–406)

२ 'श्री राधा माधव चिन्तन'—पृ० ६२० पर उद्धृत (लेखक-श्री हनुमान प्र० पोद्दार गीता प्रेस, गोरखपुर)

सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः ।
सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न ॥
मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम् ।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः ॥

अर्थात् 'हे अर्जुन ! गोपियाँ अपने अंगों की सम्हाल इसलिए करती हैं कि उनसे मेरी सेवा होती है, गोपियों को छोड़कर मेरा निगूढ़ प्रेमपात्र और कोई नहीं है । वे मेरी सहायिका हैं, गुरु हैं, शिष्या हैं, दासी हैं, बन्धु हैं, प्रेयसी हैं—कुछ भी कहो, सभी हैं। मैं सच कहता हूँ कि गोपियाँ मेरी क्या नहीं हैं। हे पार्थ मेरा माहात्म्य, मेरी पूजा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनोरथ को तत्त्व से केवल गोपियाँ ही जानती हैं और कोई नहीं'।[1]

भगवान् कृष्ण के साथ परम प्रेममय सम्बन्ध की कल्पना माधुर्य भक्ति का मूलाधार है। दास्य, सख्य वात्सल्य और कान्त इन सभी भावों की आश्रयभूता गोपियाँ ही हैं। इन्होंने भावात्मक कृष्ण को इन सभी सम्बन्धों के रागात्मक प्रतिरूप मान कर इनकी सेवा की है, इनके साथ नाना क्रीडाएँ की हैं, इन पर अपार ममता उड़ेली है तो इनसे मधुर प्रेम में आजीवन कौमार्य भी रखा है। ये इनकी दासी हैं सखी हैं माता हैं और कान्ता हैं। नारी जीवन के दो श्रेष्ठतम आदर्श—जननी और जाया, स्त्री जाति के दो उत्कृष्टतम पहलू—माता और प्रमदा—क्रमशः यशोदा और राधा के निर्मल चरित्र में अमर हो गये हैं। कृष्ण लीला को गोपियों का यही आत्म दान है। भाव देव कृष्ण को समर्पित गोपियों की प्रेम वाटिका के ये ही दो सर्वोत्तम श्रद्धा सुमन हैं।

राधा—श्री राधा कृष्ण के भावात्मक स्वरूप की सर्वप्रधान प्रेरक शक्ति हैं। राधावाद के विकास में प्रारम्भ से ही दो प्रणालियाँ रही हैं। इनमें पहली है काव्य और पुराणों की भावाश्रित प्रणाली और दूसरी है धर्म दर्शन की तत्त्वाश्रित प्रणाली। ये दोनों ही प्रणालियाँ नदी के दो किनारों की भाँति हैं जिनके बीच से होकर राधा भाव प्रवाहित हुआ है। अतः ये दो भिन्न किनारे बाहर से अलग अलग दीखने पर भी भावना के प्रवाह से ही परस्पर सम्बद्ध हैं।

राधा के प्रेम देवी स्वरूप का आविर्भाव नाना श्रुतिस्मृति वाहित लौकिक प्रेमाख्यानकों से हुआ है। उनके लीला सहचरी रूप का प्रकाश भगवान् के स्वरूप लीला से विच्छुरित हुआ जहाँ वह विष्णु शक्ति लक्ष्मी के रूप में प्रदर्शित हुई। किन्तु लक्ष्मी से राधा तक के विकास की मध्यान्तरित अवधि में कृष्ण महिषी रुक्मिणी के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।[2] काव्य में राजा के प्रति प्रति पूज्य बुद्धि के स्थान पर मधुर भावों का

---

१ श्री राधा माधवचिन्तन' (पृ० ६२०) से उद्धृत ।

२ आधुनिक कविता (कनुप्रिया) में जहाँ राधा के प्रति कृष्ण की ऐतिहासिक उपेक्षा से खेद प्रकट किया गया है वहाँ यह भुला दिया गया है कि राधावाद के प्रवेश और प्रश्रय से न केवल काव्य में ही बल्कि धर्म दर्शन के क्षेत्र में भी राधा को रुक्मिणी का अधिकार मिल गया है और रुक्मिणी की उपेक्षा सी हो गयी है। रुक्मिणी के लक्ष्मी रूप के स्थान पर राधा का तद्रूप विकास गौडीय वैष्णवों का परवर्ती अनुष्ठान है।

ही प्रसार हुआ है। पुराणो म उत्तरोत्तर इसी लोक मधुर स्वरूप को ग्रहण कर कृष्ण-लीला का रस विकास हुआ। कवियो ने इसी रसात्मक स्वरूप का लक्ष्य कर राधा कृष्ण युगल प्रेम के गीत गाये। प्राकृत काव्य से चलकर ब्रजभाषा काव्य तक श्री राधा कृष्ण प्रेम का मधुर वितान अपने आप म ही ध्यान द का सुन्दर विषय है। विद्वानो ने अपने गम्भीर मनन और मधुर शैली मे इस रसात्मक चरित्र का सुन्दर उन्मीलन किया है। अत उन्ही के आधार पर यहा भावात्मक कृष्ण के इस पूरक पक्ष का यथाशक्य उद्घाटित किया जाता है।

जैसा कि ऊपर सकेत किया गया, धम के स्वर्णासन पर विराजमान कृष्ण की लीला सहचरी राधा के स्वरूप निर्धारण मे मानवीय अनुभूतियो की पुरजोर प्रेरणा है। प्राणी युग्म के परस्पर मिलन समागम की अत्युच्च भावभूमि पर ही इस दिव्य नारीमूर्ति का काया कल्प हुआ और उसकी प्रत्येक चेष्टा मे मानवीय सौन्दय चेतना, शृङ्गार भावना तथा केलि कल्पना का प्राण सचार हुआ। आदि युगल की इस विशिष्ट रागात्मक प्रतिमूर्ति में पार्थिव केलि क्रीडा की सरस अवतारणा एक अद्भुत कल्पना है। दिव्य चरित्र की सामाग्री इस पार्थिव प्रतिमा का अवतरण पार्थिव तत्वो से ही हो सकता था। सो हुआ, और राधा के रूप म रुक्मिणी की छाया मूर्ति उन समस्त शृङ्गार भावो का मधुर आलम्बन बनकर भावात्मक कृष्ण की मधुर लीला को पूर्णता प्रदान करने के लिए अवतरित हुई। राधा सोलह हजार गोपियो की एक गरिष्ठतम प्रतिमूर्ति है। राधा म आकर गोपी-कृष्ण का प्रेम सिमट कर एकाग्र हो गया है। अत वह इसी एकाग्र प्रेम की प्रतिनिधि है। इस एकाग्र प्रेम रूपा राधा के सम्बन्ध म प्राचीन काव्य मौन नही, मुखर हैं। हम सम्प्रति इन्ही प्राचीन उल्लेखो का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

काव्य में राधा—काव्य जगत् म राधा का प्रथम नामोल्लेख प्राय प्रथम शती की प्राकृत रचना हालकृत "गाथासतसई म पाया जाता है। इसकी कई गाथाओ मे श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन है, जिनम से एक मे तो राधा नाम की स्पष्ट व्यजना है—

> मुहमारुएण त कण्ह गोरअ राहिआएँ अवणेन्तो।
> एताण बल्वोण अण्णाणावि गोरअ हरसि॥ १/२९

अर्थात् हे कृष्ण! तुम अपने मुख की हवा से, मुँह से फूक मार कर, राधिका के मुह मे लगे हुए गोरज (धूलि) को हटा रहे हो। इस व्यापार से, इस प्रेम-प्रकाशन के द्वारा तुम इन गोपियो का तथा दूसरी गोपियो का गौरव हर रहे हो।

उक्त पद म राधा के प्रति कृष्ण के अपार प्रेम तथा तज्जन्य राधा का गौरव गरिमा का भी प्रकारान्तर से सकेत मिलता है। पचम शती के आसपास रचित[१] "पचतन्त्र' मे भी राधा का स्पष्ट उल्लेख है। इसमे कृष्ण को एक कौलिक का स्वरूप दे दिया गया है।

१ "यह बात सिद्ध हो चुकी है कि पचतन्त्र का वर्तमान रूप अपेक्षाकृत नवीन है पर इसका पुराना रूप ईस्वी-पूर्व म निर्मित हुआ था"—आचार्य द्विवेदी, सूर साहित्य, पृ० १६ पादटिप्पणी–१।

कृष्ण एक राजकन्या से प्रेम करते हैं। एक दिन जब वह लकड़ी के गरुड यन्त्र पर चढ़ कर चतुर्भुज स्वरूप में उस राज कन्या के अन्तपुर में पहुँचते हैं तो वह कहती है कि 'कहाँ मैं अपवित्र मानुषी और कहाँ आप अलौकिक पावन महाप्रभु।'' इसी के प्रत्युत्तर में कृष्ण कहते हैं—

'राधा नाम मे भार्या गोपकुलप्रसूता प्रथममासीत्। सा त्वमत्र अवतीर्णा। तेनाहमत्रागत।'

अर्थात, हे सुभगे! पहले मेरी राधा नाम की गोपकुलोत्पन्न भार्या थी। वही तुम्हारे रूप मे अवतीर्ण हुई है। इसलिए तुम्हारे ऊपर मेरा सहज अनुराग है। इस तरह उक्त कथा से भी राधा का गोपकुलोत्पन्न होना तथा कृष्ण की पत्नी होना विदित होता है।

ईस्वी सन् के आस पास भास के नाटकों[1] में बाल कृष्ण की लीलाओं का अनेकश उल्लेख मिलता है। उनकी रचना 'बाल चरित'' के तृतीय अंक में 'हल्लीसक नृत्य' का मनोरम विवरण है। इसके अनुसार कृष्ण अनेक गोप वधुओं के साथ मण्डलाकार रूप में नाचते है। गोप-मण्डली नाना वाद्यों के साथ इस समारोह में भाग लेती है। इस तरह यह रास नृत्य का प्रागरूप है जिसके दर्शन हरिवंश पुराण तथा तमिल कृति 'शिलप्पदिकारम्' में भी होते हैं। किन्तु जैसे उक्त दोनों कृतियों में राधा का नामोल्लेख नहीं है वैसे ही इस नाटक में भी राधा कृष्ण नहीं हैं। यह वस्तुत गोपी कृष्ण लीला का प्रकृत क्षेत्र है।

आठवीं शती के पूर्व शिल्प में राधा कृष्ण का अवतार हो चुका था इनके प्रमाण स्वरूप पहाड़पुर (बंगाल) के मन्दिर की दीवार पर खड़ी युगल मूर्ति का उल्लेख किया जा चुका है। पुरुष मूर्ति कृष्ण हैं इसमें दो मत नहीं है। नारी मूर्ति राधा या रुक्मिणी— इस सम्बन्ध में मतभेद है। यदि डॉ सुनीति कुमार चटर्जी का सुझाव ठीक है तब तो शिल्प में राधा कृष्ण का यह प्रथम प्रकाश माना जा सकता है अन्यथा यह रुक्मिणी भी हो सकती है।[2] विद्वानों ने १६ वीं शती के पूर्व वृन्दावन कृष्ण को राधा विहीन बतलाया है। इस उपलक्ष में 'प्रेम विलास और भक्ति रत्नाकर' का हवाला देते हुए कहा गया है कि नित्यानन्द महाप्रभु की छोटी पत्नी जानकी देवी को वृन्दावन में यह देख कर बड़ा दुःख हुआ कि कृष्ण के साथ राधा की पूजा कहीं नहीं होती। अत बंगाल लौटकर उन्होंने नयान भास्कर नामक शिल्पी से राधा की मूर्ति बनवायी और उन्हें वृन्दावन भिजवाया। पीछे जीवगोस्वामी की आज्ञा से इन्हें कृष्ण का वाम पार्श्व प्राप्त हुआ और इनकी भी पूजा होने लगी।[3] उक्त कथा से भी यही सिद्ध होता है कि ब्रज मण्डल के पूर्व बंग भूमि में ही

---

१ विशेषत काल निर्णय के लिए द्रष्टव्य सूरसाहित्य (पृ० १४) आचार्य ह० प्र० द्विवेदी।

२ आचार्य द्विवेदी ने म० ध० सा० 'गोपिया और श्री राधा' शीर्षक निबन्ध, पृ० १३१ में) लिखा है—'डॉ० सु० कु० चा० ने यह सुझाया था कि यह मूर्ति राधा की हो सकती है। पर । अत रुक्मिणी विषयक धारणा के लिए द्रष्टव्य श्री रा० कृ० वि० डॉ० श० भू० दा० गुप्ता-(पृ० ११८)

३ प्रा० सु० सेन- हि० ब्र० लि० (पृ० ४८१)

राधा कृष्ण की पूजा प्रतिष्ठा पूर्णत लोक प्रचलित हो चली थी। अत इससे भी उस शिल्प के राधा के ही पक्ष म होने की सभावना दृढ होती है।

आठवा शती मे रचित भट्टनारायण के "वेणी-सहार' नाटक मे राधा कृष्ण की प्रणय लीला का स्पष्ट सकेत है। ध्वन्यालोक से लगभग सौ वर्ष पूर्व इस नाटक की नान्दी म यह श्लोक मिलता है।

कालिन्द्या पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रस
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषा कसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुण्णोऽनुनय प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु व ॥

अर्थात्, कालिन्दी तट पर रासक्रीडा के समय केलिकुपिता राधिका अश्रुकलुषा हो कही चली गई। कृष्ण उन्हे खोजने के लिए आतुर हो इधर उधर घूमने लगे। सहसा राधा के पद चिह्नों पर पर पडते ही उन्हें रोमाच हो आया। प्रेम की इस पुलक को निरखकर राधा प्रसन्न हो गया तथा कृष्ण के प्रेम की दृढता का वह बडे प्रेम से निरखने लगी। यहाँ राधा के कृष्ण प्रेम की गरिमा पूर्णत स्पष्ट है।

इसके अनन्तर 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनन्दवर्धन ने अपने सुप्रसिद्ध लक्षण ग्रन्थ के तीन उदाहरणो मे राधा का नामोल्लेख किया है। एक प्राचीन श्लोक का उदाहरण इस प्रकार है—

तेषा गोपवधू विलास सुहृदा राधारह साक्षिणा
क्षेम भद्र कलिन्दराजतनयातीरे लता वेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनविधिच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विष पल्लवा ॥ (पृ० ७७)

प्रवासी कृष्ण वृन्दावन से आये सखा से पूछ रहे हैं—'हे भद्र, उन गोपवधुओं के विलास सुहृत् और राधा के गुप्त साक्षी कालिन्दी तटवर्ती लता गृह कुशल से तो हैं न। स्मरशय्या कल्पनविधि के लिए पल्लवो को तोडने की आवश्यकता न रहने के कारण लगता है, वे सूख कर विवर्ण हो गये हैं।[१]

राधा विरह विषयक एक और पद ध्वन्यालोक म उद्धृत मिलता है—

याते द्वारवतीं पुरीं मधुरिपौ तद्वस्त्रसव्यानया
कालिन्दी तटकुजवजुल लतामालम्ब्य सोत्कण्ठया।
उद्गीत गुरु बाष्पगद्गद गलत्तार स्वर राधया
येनान्तर्जलचारिभिर्जलचरैरुत्कठमाकूजितम् ॥

अर्थात् मधुरिपु कृष्ण के द्वारका चले जाने पर उन्ही वस्त्रो को शरीर पर लपट कर और यमुना तटवर्ती कुजो की लताओ से लिपट कर सोत्कठा राधा ने जब रुँधे हुए कठ और विगलित स्वर से गान शुरू किया तो उससे उत्कठित होकर यमुना के जलचर जीव भी

१ यही श्लोक 'कवीन्द्रवचन समुच्चय' मे भी मिलता है (स० ५०१)।

करण कूजन करने लगे। यह राधाविषयक एक प्रसिद्ध विरह दृश्य है जो 'वक्रोक्ति जीवित' (कुंतक दशम शती), पद्यावली (रूपगोस्वामी–१६ वीं शती) तथा 'सदुक्ति कर्णामृत' में भी पाया गया है।[1] इनके अतिरिक्त राधाविषयक एक तीसरा श्लोक भी है जिसे आनन्दवर्धन ने ध्वनि के दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत किया है—

> दुराराधा राधा सुभग यदनेनापि मृजत-
> स्तवैतत् प्रायेणाजघनवसनेनाशु पतितम्।
> कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुपचारैर्विरमहे
> क्रियात् कल्याण वो हरिरनुनयेष्वेवमुदित ॥ (पृ० २१४–२१५)

दशम शती के त्रिविक्रम भट्ट ने अपने प्रेमकाव्य नलचम्पू में नल दमयंती के प्रसंग में जो बातें कही हैं, व कई जगह श्लेष द्वारा राधा कृष्ण के प्रसंग में भी घटित हो जाती हैं। ऐसे ही एक श्लोक का अर्थ इस प्रकार है—'शिक्षित और कला विदग्ध राधा परम पुरुष मायामय केशिहंता कृष्ण के प्रति अनुरागबद्ध है—

> शिक्षित वैदग्ध्यकलापराधात्मिका पर पुरुषे।
> मायाविनि कृतकेशिवधे राग बध्नाति ॥

इसी शती में कश्मीर के एक प्रसिद्ध संस्कृत टीकाकार वल्लभदेव ने 'शिशुपालवधम्' की टीका करते हुए, सर्ग–४ श्लोक ५ का व्याख्या में 'लोचक' (काले रंग की ओढनी) शब्द के उदाहरण के लिए एक प्राचीन पद्य उद्धृत किया है जिसमें खण्डिता राधा अपनी सखी से पूछती है—

> "यो गोपीजनवल्लभ कुचतट व्याभोग लब्धास्पद
> छायावान्त्रविरक्तको (?) बहुगुणश्चारश्चतुर्हस्तक।
> कृष्ण सोऽपि हताशयाऽप्यपहृत सत्य कयाऽप्यद्य में"

उपर्युक्त दो चरणों में जो कतिपय विशेषण प्रयुक्त हुए हैं वे श्लेष से लोचक (अर्थात् काले रंग की ओढनी) और कृष्ण' दोनों के सश्लेष में सार्थक हैं। अत जब तीसरे चरण में राधा सखियों से पूछती है कि गोपियों के प्यारे मेरे कृष्ण को आज किस हताशा ने चुरा लिया है ? तो सखियों को इस वक्रोक्ति से स्वभावत मधुसूदन का बोध होता है। और, जब वे राधा से पूछती हैं कि क्या तुम मधुसूदन की बात कहती हो ? तब राधा बात उलटती हुई कहती है कि नहीं नहीं मैं तो अपनी काली ओढनी के बारे में पूछ रही हूँ। अंतिम चरण इस प्रकार है—

> किं राधे मधुसूदनो नहि नहि प्राणप्रिये लोचक।[2]

इस प्रकार, इस पद्य में वक्रोक्ति का सुन्दर विन्यास भी है और राधा कृष्ण के सुमधुर प्रेम का खण्डित प्रकाश भी। ऐसा ही एक श्लोक 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' में भी मिलता है।

---

१ डा० न० मु० दा० गुप्ता—श्री रा० क्र० वि० (पृ० ११६–१२०)
२ शिशुपालवध—वल्लभ देव की टीका के साथ (पृ० १५६ पर उद्धृत श्लोक)

किन्तु कृष्ण का नाम पूर्णत स्फुट होने पर भी राधा का नाम संकेत यहां स्पष्ट नहीं है।" किन्तु अन्यत्र इसी संग्रह में राधा कृष्ण प्रेम का सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत हुआ है—

> धेनुदुग्धकलशानादाय गोप्यो गृह
> दुग्धे वष्कयिणीकुले पुनरिय राधा शनैर्यास्यति।
> इत्यन्यव्यपदेशगुप्त हृदय कुर्वन् विविक्त व्रज
> देव कारणनन्दसूनुरशिव कृष्ण स मुष्णातु व ॥

कृष्ण गोपियों से कहते हैं कि ऐ गोपियो ! दुग्ध कलश लेकर तुम अपने अपने घर जाओ। जो गाएँ अभी दुही नहीं गई उनके दुहे जाने पर यह राधा भी पीछे जायेगी। अन्य अभिप्राय को हृदय में गुप्त रखकर जो कृष्ण गोष्ठ को (गोपी रहित) निर्जन कर रहे हैं, वह नन्दसुत देव रूप में अवतीर्ण, तुम्हारी रक्षा करें।" एक अन्य पद में गोवर्धनधारी कृष्ण को देख राधा प्रेमार्द्रदृष्टि हुई दिखाई गई है।[2]

इनके अतिरिक्त, और कई पदों में कृष्ण की व्रज लीला का रमणीय अंकन हुआ है। इनका उल्लेख आगे किया जायगा।

१० वीं शती के आस पास अपभ्रंश में कृष्ण लीला को लेकर लिखा गया सर्वाधिक महत्वशाली ग्रन्थ पुष्पदन्त का महापुराण है। इसमें गोपी कृष्ण विहार, पूतना वध, ओखल बन्धन, गोवर्धन धारण, कालियदमन से लेकर रास लीला तक के प्रसंग वर्णित हैं। इन वर्णनों पर अवश्य ही पुराणों का (विशेषत भागवत महापुराण) प्रभाव लक्षित होता है।

अनुमानत ११वीं शती के प्रारम्भ में वाक्पति की "लिपि" में भी एक स्थल पर राधा का उल्लेख है। यहां राधा से कृष्ण प्रेम को लक्ष्मी प्रेम की अपेक्षा कमनीयतर करार दिया गया है। किन्तु, ये सब के सब प्रार्थना के पद हैं।[3]

इसी शती के प्रसिद्ध आलंकारिक भोज के "सरस्वतीकंठाभरण" में राधा विषयक एक उद्धरण[4] प्राप्त होता है जिसे "कवीन्द्रवचन समुच्चय" में भी संकलित देखा जाता है।[5] १२ वीं शतीय हेमचन्द्र के "काव्यानुशासन" में भी उक्त श्लोक उद्धृत है।

१२ वीं शती काव्य में राधा कृष्ण प्रेम की प्रतिष्ठान की दृष्टि से परम उर्वर काव्य काल है। लीलाशुक विल्वमंगल कृत "कृष्णकर्णामृत" और जयदेव कृत "गीत गोविन्द" इसी काल की अत्यन्त रसविदग्ध कृतियाँ हैं। संयोगवश श्रीधरदास कृत "सदुक्तिकर्णामृत"

---

१ काऽयं द्वारि हरि प्रयाह्युपवन शाखामृगेणात्र किं
कृष्णोऽहं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्ण कथं वानर।
मुग्धेऽहं मधुसूदनो व्रजलतां तामेव पुष्पासवाम्
इत्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरि पातु व ॥

२ कवीन्द्र वचन समुच्चय-हरिव्रज्या, ४२।

३ "दी इण्डियन एन्टीक्वेरी १८७७, पृ० ५१ पर उद्धृत।

४ "कनक निकषस्वच्छे राधा पयोधर मण्डले ' ५ कवीन्द्रवचन समुच्चय-४६।

भी इसी समय की सर्वलित कृति है। इन तीनों में कवियों ने उन्मादात्मक से राधा-कृष्ण प्रेम की जो रमणीय व्यंजना हुई है उससे राधावाद की काव्य तथा धर्म दर्शन में परम प्रतिष्ठा हो गयी।

'कृष्णकर्णामृत" दक्षिण देशीय माधुर्य भक्त लीला शुक विल्वमंगल की अमर कृति है। महाप्रभु चैतन्यदेव ने अपने दक्षिण भ्रमण में जिन दो पुस्तकों की "महारत्न" मान उनकी प्रतिलिपियाँ लाई थीं उनमें एक ग्रन्थ यही है। इसके दाक्षिणात्य संस्करण में राधा के अनेकश उल्लेख हैं। वंग संस्करण में भी राधा नामांकित दो श्लोक हैं। प्रथम श्लोक में उस तेजःपुञ्ज को नमस्कार किया गया है जो एक साथ ही धेनुपालक भी है और लोक पालक भी, राधा के पयोधरोत्सङ्ग शायी भी है और शेषशायी भी —

> तेजसेऽस्तु नमो धेनुपालिने लोकपालिने।
> राधापयोधरोत्सङ्गशायिने शेषशायिने ॥ ७६

यहाँ राधा के स्पष्ट उल्लेख से यह धारणा पुष्ट होती है कि १२ वीं शती से पूर्व दक्षिण में वैष्णव धर्म और उसकी माधुर्य भक्ति के आश्रय से राधा भावना प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। इसका एक दूसरा प्रमाण चैतन्यदेव और दक्षिण देशीय भक्त राय रामानंद के वार्ता प्रसंग से प्राप्य राधा भाव में भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त आन्ध्वार भक्तों के मधुर गीतों से गोपी कृष्ण तथा 'नप्पिन्नई कृष्ण' का प्रेम बखान परवर्ती राधा कृष्ण लीला को जैसे नेपथ्य संगीत प्रदान करती हैं। विद्वानों ने इस नप्पिन्नई अथवा नीलाम्बा को थी राधा की तमिल प्रतिनिधि माना है।[१] हम प्रसंगवश राधा के इस दाक्षिणात्य संस्करण का भी समीक्षात्मक दिग्दर्शन करेंगे। किन्तु, इन सभी रूपों का विकसित रूप कविवर जयदेव का "गीतगोविन्द" ही है जिनके पदचिह्नों पर देशभाषा काव्य में सर्वत्र राधा कृष्ण लीला की प्रेम मधुर स्रोतस्विनी पूर्ण व्यवस्थित रूप में फूट कर सम्पूर्ण लोक जीवन का रस प्लावित करने लगी। कृष्णकर्णामृत की विशेषता है राधा कृष्ण-लीला को गीता राम के अनन्तर परवर्ती विकास रूप में दिखाया जाना। वैसे ही गीतगोविन्द की राधा की विशेषता है उनका लक्ष्मी का रूपान्तरण कहा जाना।[२] इन स्थलों की समीक्षा से यह निष्कर्ष निकलता है कि जयदेव काल में ही लक्ष्मी रूपा राधा अत्यन्त शनैः शनैः लक्ष्मी तत्त्ववाद से हटकर काव्य के सौन्दर्य माधुर्य लोक में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व में प्रतिष्ठित होती जा रही थी। वैसे भी 'गीतगोविन्द" कृष्ण प्रेयसी राधा देवी के प्रेम समागम का ही प्रकृत क्षेत्र है। समस्त काव्य में कृष्ण नायक हैं राधिका नायिका है तथा सखियाँ लीला सहचरी हैं। लक्ष्मी के स्थान पर राधाभाव की इस प्रतिष्ठा के संकेत तद्युगीन अन्य कृतियों—"वाक्पति लिपि" तथा 'सदुक्तिकर्णामृत" आदि में भी मिलते हैं। इनसे हमारी उक्त धारणा का पोषण ही होता है। अतः काव्य में राधा कृष्ण लीला की कमनीय प्रतिष्ठा का श्रेय महाकवि जयदेव को ही दिया जा सकता है। इन्हीं की प्रेरणा से हिंदी काव्य में

---

१ डा० श० भू० दा० गुप्त—श्री रा० क्र० वि० (पृ० ११७)—प० ब० उपाध्याय ने भी इसी निष्कर्ष को स्वीकार किया है देखिये—भा० धा० श्री रा० (पृ०६०)

२ गीतगोविन्द—१२/२७

विद्यापति ("अभिनव जयदेव") आदि रससिद्ध कवियो की कोमलकान्त पदावली का सचार हुआ। और, इसके माध्यम से राधा कृष्ण प्रेम वर्णन हिंदी मे प्रवाहित हुई।

१२ वी शती के ही आगे पीछे रचित कुछ ऐसे नाटको के विवरण अलकारादि ग्रन्था म उपलब्ध होते हैं जिनमे विधिवत् राधा कृष्ण प्रेम के सरस प्रसग विवृत हैं। इन नाटको मे "राधाविप्रलम (भेजलकृत) "रामाराधा', "कन्दप मजरी, "राधा वीथि' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त, विद्यापति और जयदेव के काव्य युगों की मध्यावधि म राधा कृष्ण प्रेम की सु दर झाँकी सस्कृत के अनेक मुक्तक सग्रहा म द्रष्टव्य है। इन दो सौ वर्षों का निखिल काव्य-सम्पदा आज अपनी सम्पूर्णता में, दुर्भाग्यवश, अनुपलब्ध है। किन्तु परवर्ती कवियो और भक्त साधकों मे अपने अभिनिवेश से इनका जितना ही अश रुचिनुकूल सग्रहा म जुगा कर रखा है, वे कम श्रेयस्कर नही हैं यदि इन्हे ही यथाक्रम सजाकर प्रस्तुत कर दिया जाय तो तद्युगीन रिक्त का भरने के लिए भरपूर सामग्रियो का रिक्थ हमे मिल जाय। और, इनके ही आधार पर राधा कृष्ण और गोपी कृष्ण शृङ्गार लीला के सरस उद्घाटन का सुअवसर भी प्राप्त हो जाय। अन हिंदी शृङ्गार काव्य परम्परा मे कृष्ण लीला की आधारभूत सामग्री की दृष्टि से इन सस्कृत पद सग्रहों की मूल्यवत्ता एव प्रामाणिकता असदिग्ध हैं। इन सग्रहा म—कवीन्द्रवचन समुच्चय, सुभाषितावली, सदुक्ति कर्णामृत, सूक्ति मुक्तावली, सुभाषित मुक्तावली, सुभाषित रत्नकोश, शार्ङ्गधर पद्धति, सूक्ति रत्नावली, पद्यावली आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं।

सस्कृत कविता के समानान्तर अपभ्रश के दोहा म भी कृष्ण लीला के सुमधुर छवि दशन होते हैं। ऊपर १० वी शतीय पुष्पदन्त के महापुराण का उल्लेख हा चुका है। पुष्पदन्त की कृष्ण लीला व्यजक यह रचना सस्कृत के अन्यतम गीतकार जयदेव के गीत-गोविन्द से प्राय दो सौ वष पूव रचित है, यह ध्यान देने की बात है। जयदेव काल म हो हमचन्द्र के द्वारा सकलित दोहे हैं जिनमे कृष्ण सम्बधी उल्लेख हुए हैं। एक दोह मे तो राधा कृष्ण का प्रेम प्रसग स्पष्ट व्यजित है—

हरि नच्चाविउ पगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ
एम्वहि राह पओहरह ज भावइ त होउ

अर्थात् हरि का प्रागण मे नाचनेवाले तथा लोगा को विस्मय मे डाल दने वाले राधा के पयोधरो को जो भावे सो हो। यहाँ किसी प्रगल्भा सखी की उक्ति मे राधा कृष्ण प्रणय लीला की ओर सकेत किया गया है, जिसमे भक्ति का सभ्रम नही है। यहाँ प्रेम की लौकिकता का स्वरूप-स्फुटन है। किन्तु, अन्यत्र चिन्मुख प्रेम की ओर भी सकेत किया गया है।

इसी शृङ्खला म १४ वी शतीय पिंगलग्रन्थ 'प्राकृत-पैंगलम्' का भी रखा जा सकता है। इसमें कृष्ण-लीला व्यजक कई पद आये हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे पद हैं जिनमें भक्ति और शृङ्गार की धूप छाँह व्यक्त हुई है। अर्थात्, यहाँ कृष्ण को नारायण या परमात्मा

के प्रतीक रूप म स्वीकार पर भी उनके गोपी प्रेम या राधा प्रेम की तीव्रता का व्यंजना हुई है। 'मधुर भाव की भक्ति का यह संकेत ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।[1] परमात्मा कृष्ण की अनेक मधुर चमत्कारी लीलाओं के साथ ही यहाँ उनके राधा गुण मधुपायी स्वरूप को एकत्र देखा जा सकता है—

> जिणि कंस विणासिय कित्ति पयासिय
>
> मुट्ठि अरिट्ठ विणास करे गिरि हत्थ धरे।
>
> जमलज्जुण भंजिय पय भर गंजिय
>
> कालिय कुल महार करे जस भुवण भरे।
>
> चाणूर विहंडिअ, णिय कुल मंडिअ
>
> राहा मुह महु पाण करे जिमि भमर वरे।
>
> सो तुम्ह णरायण विप्प परायण
>
> चित्तह चिंतिय देउ वरा, भयभीअ हरा।
>
> (प्राकृत-पैंगल-२२४/२०७)

इन पदों को कृष्ण लीला परक व्रजभाषा कविता का आधार स्वरूप समझना चाहिए। साथ ही इसकी प्राचीनता का लक्ष्य कर यह धारणा भी बँधती है कि विद्यापति आदि प्राचीन कवियों के पूर्व भी देश्यभाषा काव्य म राधा कृष्ण के मधुर प्रेम की एक परम्परा विकसित रूप म वर्तमान थी।

इस प्रकार राधा भाव के क्रम विकास का काव्यात्मक स्वरूप शृंखलाबद्ध रूप म हमारे समक्ष प्रस्तुत हो चुका है। यह इस भावधारा के विकास की प्राचीन सरणि है। प्राय इसके समानान्तर या इससे यत्किंचित् स्फूर्ति प्राप्त कर ही पुराणों म राधावाद प्रतिष्ठित हुआ।

पुराणों म राधा — काव्य धारा ने इस दिशा म निश्चय ही पुराण धारा का प्रवाहित किया है। इसका एक प्रमाण तो स्वय यही है कि प्राचीन पुराणों म राधा का नामोल्लेख नहीं हुआ। श्रीमद्भागवत् म—जिसे कृष्ण लीला का सर्वाधिक शक्तिशाली आधार माना जाता है—राधा प्रत्यक्ष नहीं हैं। किन्तु, यहाँ उनकी परोक्ष स्थिति से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। भागवत के गौडीय टीकाकारों ने यहाँ से उनकी उपस्थिति के कई प्रमाण और तर्क दिये हैं। अनन्तर पद्म और ब्रह्मवैवर्त पुराण म उत्तरोत्तर राधा कृष्ण लीला ही गोपी कृष्ण लीला पर आधिपत्य प्राप्त करती गई है। इसके अनन्तर वैष्णवाचार्यों ने—जिनमें निम्बार्क और गौडीय वैष्णव प्रमुख हैं—राधा-तत्त्व को भगवान कृष्ण की सनातन सहचरी के रूप म पूर्ण प्रतिष्ठित कर दिया। राधा महाभावस्वरूपा ह्लादिनी शक्ति के रूप में सर्वत्र परिणत हुई। अत यहाँ पहले पुराणों म, तदनन्तर वैष्णव दर्शन म राधावाद का दिग्दर्शन कराया जाता है।

---

१ डॉ० शि० प्र० सिंह—विद्यापति (पृ० ८६) एतद्विषयक विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य 'सूर पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य'—डॉ० शि० प्र० सिंह।

विष्णुपुराण में उस कृतपुण्या गोपी विशेष के[1] चरणचिह्नों को देखा जा चुका है जिसके प्रेम पर मुग्ध हो दामोदर उसे गोपियों के बीच से उठा कर एकान्त में ले गये थे। पुराणकार ने उसके इतिवृत्त के विषय में जो कुछ भी कहा ("विष्णुरभ्यर्चितस्तया — ५/१३/३५) वह भागवत की उस धन्या गोपीविशेष के प्रसंग और इतिवृत्त से पूर्णत मिल जाता है। भागवत के रासलीला प्रसंग[2] में यह वर्णन मिलता है कि कृष्ण रास-मण्डल में से एक अपनी प्रियतमा गोपी को साथ लेकर अन्तर्हित हो जाते हैं। इस व्यापार से सब गोपियाँ क्षुब्ध हो उठती हैं और व्याकुल होकर कृष्ण को इधर-उधर ढूँढती हैं। खोजते खोजते यमुना पुलिन में कृष्ण के साथ किसी बाला के मासूम पदचिह्न दिखाई पड़ते हैं। उसकी प्रशंसा करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

अनयाराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ १०/३०/२४

अर्थात्, इस रमणी के द्वारा अवश्य ही भगवान हरि आराधित हुए हैं। क्योंकि, गोविन्द हमको छोड़ उस ही प्रीतिपूर्वक एकान्त में ले गये। उक्त श्लोक में आया 'अनयाराधितो' (विशेषत —आराधितो) विष्णुपुराणोक्त 'अभ्यर्चित' पद से पूर्ण साम्य रखता है। विद्वानों ने उक्त 'अभ्यर्चित >' 'आराधित >' राधित से ही कालान्तर में 'राधिका' की नामनिरुक्ति ढूँढ निकाली है। इस दिशा में गौड़ीय गणों के प्रयास स्तुत्य हैं। 'अनया-राधित' का पदच्छेद दो प्रकार से किया गया है—

(१) अनया / राधित
तथा (२) अनया / आराधित

'राध्' धातु जिस आराधना का अर्थ निष्पन्न होता है वह उक्त दोनों प्रकार के पद विच्छेदों में समान है। अत इनके अर्थ भी समान हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

(क) सनातनगोस्वामी—बृहत्तोषिणीव्याख्या—
'राधयति आराधयतीति श्रीराधेति नामकरणञ्च'
(ख) जीवगोस्वामी—वैष्णवतोषिणी टीका—
'राधयति आराधयतीति श्रीराधेति नामकरणञ्च'
(ग) विश्वनाथ चक्रवर्ती—'राधा' नामकरण की शुभ स्वीकृति
(घ) धनपतिसूरि—

साराशत श्रीमद्भागवत में प्रत्यक्षत 'राधा' नाम न मिलने पर भी उक्त प्रकार से हुए परोक्ष नामोल्लेख को असाधु नहीं कहा जा सकता। वैसे तो अध्यात्मबुद्धि प्रवण कुछ विद्वानों[3] ने भागवत के इतर श्लोकों में भी राधा नाम का शुभ मधुर संकेत पाया है, उनमें से एक नीचे उद्धृत है—

१ अंश–५, अध्याय–१३, श्लोक–३३

२ स्कन्ध–१०, अध्याय–२९–३०

३ श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार—'श्री राधा माधव चिन्तन' (पृ० १२३)

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वता, विदूरकाष्ठाय मुहु कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा, स्वधामनि ब्रह्मणि रस्यते नमः ॥ २/४/१४

अर्थात्, 'सात्वत भक्तो के पालक, कुयोगियो के लिए दुर्ज्ञेय प्रभु को हम नमस्कार करते हैं। वे भगवान कैसे हैं ? स्वधामनि-अपने धाम वृ दावन म, राधसा-श्री राधा के साथ, रस्यते-क्रीडा करने वाले हैं और वे राधा कैसी हैं ? जिनसे बढकर तो क्या, समानता करने वाला भी कोई नही है।

उक्त सन्दर्भों के आधार पर इन भक्ति भावुक महानुभावा का यह निश्चित मत है कि श्रीमद्भागवत मे, लीला मे तथा शब्दो मे भी श्री राधा के स्पष्ट दशन होते हैं।[१] ऐसे ही कुछ राधातत्त्वान्वेषी अन्य विद्वान है जो इस उत्साह को वेदो तक ले जाते हैं। उनकी सम्मति म यह राधा वैदिक 'राध' या 'राधा का व्यक्तिकरण है।[२] किन्तु, वस्तुत यह अतिरजित उत्साह प्रदशन है। भागवत काल तक राधा का नाम मर्यादावाद के झीने आवरण मे ढके बहुमूल्य रत्न की भाँति है जो उसकी अनेक व्याख्याओ से यदाकदा उभर कर झलक मार जाता है। प्रश्न हो सकता है कि इस राधा नाम गोपन का अन्तरग रहस्य क्या है ? यद्यपि पडितो ने इसके अनेक उत्तर दिये है। किन्तु सर्वाधिक सम्मत तो यही है *कि जो रस और आनन्द का कारण है उसका अवगम अभिधा से नही, व्यजना से ही* ठीक ठीक हो सकता है। अत भागवत की राधा अभिव्यग्य हैं।

जिन दो पुराणो मे राधा अपनी महिमा मे पूर्णत विराजमान हैं, वे हैं-पद्म पुराण और ब्रह्म वैवतपुराण। पद्म पुराण म कई स्थलो पर राधा का नामोल्लेख है। गौडीय गोस्वामियो ने इनका उद्धरण भी दिया है।[३] किन्तु इसके पातालखण्ड म राधा के स्वरूप और महिमा का जैसा सभ्रमपूर्ण वणन मिलता है उससे इसके प्राचीनता में विद्वानों को सदेह होना स्वाभाविक ही है।[४] पाताल खण्ड की वृ दावन कल्पना और उसमें आद्या प्रकृति राधा का प्रतिष्ठापना अत्यन्त समारोहपूर्ण है। इसके अडतीसवें अध्याय मे सहस्र पदकमल गोकुलधाम की कल्पना है। कमल के विभिन्न दला म कृष्ण की विभिन्न लीला भूमियाँ हैं। अनन्तर राधा का परिचय है। उनहत्तरवें अध्याय के अनुसार कृष्ण प्रिया राधा आद्या प्रकृति हैं। यही कृष्ण वल्लभा कहलाती हैं। राधा की कला के करोडवें अश के समान दुर्गा आदि देवियाँ हैं। राधा के पद रज स ही करोडो विष्णु उत्पन्न होते हैं। इस राधा के साथ गोविन्द स्वर्णसिंहासन पर विराजमान दिखाये गये हैं।[५]

तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा।
तत्कलाकोटिकोट्यशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिका ॥
तस्या अघ्रिरज स्पर्शात् कोटि विष्णु प्रजायते ॥ ११८॥

---

१ श्री हनुमान प्र० पोद्दार-'श्री राधा माधव चिन्तन' (पृ० १२३)
२ प० ब० उपाध्याय—'भा० वा० श्री रा०' (पृष्ठ ३१)
३ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता- श्री रा० क्र० वि०' (पृ० १०६)
४ वही – वही (पृ० १०८)
५ पद्म पुराण पातालखण्ड, अध्याय-६६

७० वें अध्याय म गोपियों को राधा की अशरूपिणी कहा गया है, जो अहर्निशि उनके सिंहासन के पास रहती हैं। राधा शक्ति रूपा, माया रूपा चिन्मयी वृन्दावनेश्वरी देवी हैं। वृन्दावनेश्वर कृष्ण इनका आलिंगन कर सदा आनन्द-मग्न रहा करते हैं–[1]

वृन्दावनेश्वरी नाम्ना राधा धात्राऽनुकारणात्।
तामालिंग्य वसन्त त मुदा वृन्दावनेश्वरम्॥ १७

पद्मपुराण की राधा नारी आदर्श है, कृष्ण पुरुषादर्श। परवर्ती पुराण ब्रह्मवैवर्त म भी इसी आदर्श युगलमूर्ति की स्वतन्त्र प्रतिष्ठा हुई है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के 'श्री कृष्णजन्मखण्ड' म राधा की महिमा और कृष्ण के लीला शाली चरित्र का बडे विस्तार से वर्णन हुआ है। यहा राधा भाव की चरम परिणति हुई है।

१५ वें अध्याय मे राधा के स्वरूप की महिमा बतलाते हुए स्वय भगवान् कृष्ण कहते हैं—[2]

'कृष्ण वदन्ति मा लोकास्त्वयेव रहित यदा।
श्रीकृष्ण च तदा ते हि त्वयेव सहित परम्॥ ६२

अर्थात् जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ ता लोग मुझे कृष्ण (काला कलूटा आदमी) कहते हैं और जब तुम मेरे साथ हो जाती हो ता वे ही लोग मुझे श्रीकृष्ण (शोभा श्री सम्पन्न) की सज्ञा देते हैं।[3]

राधा कृष्ण के इस अविनाभाव सम्बन्ध की पूर्व झाकी इस पुराण के पाचवें और छठे अध्याय मे ही मिल जाती है। पाचवें अध्याय मे ब्रह्म उस अलौकिक तेज पुञ्ज की स्तुति करते हुए कहते हैं—

'गोपीवक्त्राणि पश्यन्त राधावक्ष स्थलस्थितम्।'[4]

अर्थात्' जो गोपिया के मुख की ओर देखता है तथा श्री राधा के वक्ष स्थल पर विराजता है।–उक्त कथन से राधा कृष्ण की एकत्र स्थिति का बोध होता है। इस भावना की पराकाष्ठा अगले अध्याय मे राधा के वक्तव्य म हो जाती है। राधा कृष्ण से कहती हैं–मेरे प्राणो से ही तुम्हारा शरीर निर्मित हुआ है–मेरे प्राण तुम्हारे श्री अङ्गो से विलग नही हैं। मेरी इस धारणा का कौन निवारण कर सकता है ? मेरे शरीर से ही तुम्हारी मूर्ति बनी है और मेरे मन से ही तुम्हारे चरणो का निर्माण हुआ है। तुम्हारे शरीर के आधे

---

१ पद्म पुराण पातालखण्ड, अध्याय–६६
२ ब्रह्मवैवर्तपुराण–श्री कृष्णजन्मखण्ड, अध्याय–१५
३ चूकि हिन्दी काव्य म राधा कृष्ण अविनाभाव रूप से परस्पर सम्बन्ध चित्रित हुए हैं इस लिए प्रस्तुत प्रबन्ध म 'कृष्ण' के पूर्व अनिवार्यत श्री जोडकर उक्त धारणा का पोषण किया गया है।
४ ब्रह्मवैवर्त–श्री कृष्णजन्मखण्ड, अध्याय–५ श्लोक–११६।

भाग से किसने मेरा निर्वाण किया है ? हम दोना म भेद है ही नहीं[1]। कृष्ण इमी क प्रत्युत्तर स्वरूप उक्त अद्वय भावना की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

'तुम्हारा सयोग प्राप्त कर ही मैं चेष्टावान होता हूँ। राधे! हम दोनों म वही भेद नही है। जैसे दूध म धवलता, अग्नि म दाहिका शक्ति, पृथ्वी म गन्ध और जल में शीतलता है, उसी प्रकार तुमम मेरी स्थिति है। मेरे बिना तुम निर्जीव हो और तुम्हारे बिना मैं अदृश्य हूँ।'[2]

१५ वें अध्याय म राधा कृष्ण प्रसग को जिस प्राकृतिक सन्दर्भ म प्रस्तुत किया गया है, वह अतिशय काल्पनिक, काव्यात्मक और कमनीय है। जिस वर्षाकालीन कृत्रिम भूमिका म नन्द द्वारा कृष्ण को राधा के हवाले किया गया है वह गीत गोविन्द के प्रारभिक अश तथा सूरसागर मे राधा कृष्ण मिलन की भावभूमि म समान रूप से परिव्याप्त है। अनन्तर ब्रह्मा आते हैं और अपनी कन्या की नाइ राधा का हाथ कृष्ण के हाथ मे भक्ति भाव से रख देते हैं। इसके बाद ही राधा कृष्ण रमण का व्यापक क्षेत्र खुल जाता है। कदाचित् इस अश पर लोक-सस्कार का प्रभाव है। अध्याय-१८ और २६ मे रास लीला का विस्तृत विवरण है। इसमें प्रथम बार राधा भी प्रस्तुत हैं। यह वसन्त रास है। अध्याय-५२ मे राधा का अभिमान प्रकट हुआ है। कृष्ण अन्तर्धान होकर तत्काल उसका शमन करते हैं। वह विलखती हुई चन्दनवन म गोपियो का साथ देती है। पुन कृष्ण प्रकट होते हैं। तथा, रासमग्न हो उनकी केलि काक्षा तृप्त करते हैं। आगे 'राधा-कृष्ण' पद म प्रकृति पुरुष के (प्रतिनिधि) नामोच्चारण के पौर्वापर्य की महत्ता प्रकट की गई है। इस प्रसग मे 'राधा' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ करते हुए कहा गया है कि—

'रा' शब्द के उच्चारण मात्र से माधव हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं और 'धा' शब्द का उच्चारण होने पर तो वह अवश्यमेव भक्त के पीछे वेगपूर्वक दौड पडते हैं। किन्तु, वस्तुत उक्त पद मे राधा महिमा की पराकाष्ठा सिद्ध करने वाली अतिरञ्जित कल्पना व्यक्त हुई है। इसी उद्देश्य से ब्रह्मवैवर्त म कृष्ण प्रवास काल मे कृष्ण सखा उद्धव के ब्रजागमन के अवसर पर राधा द्वारा उपदेश भी दिलाया गया है। इतना ही नहीं, उनमे मातृशक्ति का आरोप करने के लिए उन्हे नन्द यशोदा को उपदेश मन्त्र देते दर्शाया गया है। ये सारे प्रसग परवर्ती राधाभक्तो के प्रक्षेप से जान पडते हैं। राधा का गोलोक गमन भी कुछ कुछ वैसा ही है। उपर्युक्त वृत्तान्त ब्रह्मवैवर्त की राधा भावना की विलक्षणता के परिचायक हैं।

किन्तु इसके अनेकानेक काव्यात्मक सन्दर्भ राधा कृष्ण विवाह का तथा राधा के विरहिणी स्वरूप परवर्ती राधा कृष्ण लीला के प्रेरक रहे हैं। सूर आदि ब्रजभाषा के मूर्धन्य कवियो ने इस पुराण के राधा चरित्र से यथेष्ट स्फूर्ति प्राप्त की है।

ब्रह्मवैवर्त की राधा मानवी और देवी इन दोना रूपों मे विलक्षण हैं।

उनके मानवी रूप का आभास 'श्री कृष्ण जन्म खण्ड' के दूसरे-तीसरे अध्याय मे मिलता है। इसके अनुसार, गोलोक म श्रीकृष्ण का विरजा देवी के साथ समागम करने से

१ ब्रह्मवैवर्त श्री कृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय-६, श्लोक-२०० २०२
२ वही वही अध्याय-६, श्लोक-२१३ २१६।

राधा को क्रोध हुआ। श्री राधा सखियों के साथ वहाँ जाने लगी। द्वार पर श्रीदाम ने उन्हें रोका। इसपर श्री राधा ने श्रीदाम को असुरयोनि प्राप्ति होने का शाप दिया। प्रत्युत्तर में श्रीदाम ने भी राधा को अभिशाप दिया कि राधा मानवी योनि प्राप्त करें। वहाँ गोकुल मे श्रीहरि के ही अंश महायोगी 'रायाण' नामक एक वैश्य की वह पत्नी हो तथा उनका छाया रूप उसके साथ रहे। फिर, सौ वर्षों तक हरि से उनका वियोग रहे। आदि, आदि।' तदनन्तर, शापदग्ध राधा को सान्त्वना देते हुए कृष्ण ने कहा—'वाराहकल्प में मैं पृथ्वी पर जाऊँगा और व्रज में जाकर वहाँ के पवित्र कानन मे तुम्हारे साथ नाना भोगविलास करूँगा।'[1] इन्ही शापो के परिणामस्वरूप राधा का वृषभानु गोप के घर मे कलावती की कुक्षि से जन्म हुआ तथा हरि राधा की विश्ववृन्दावन मे अवतार लीला अग्रसर हुई। इस उपाख्यान का ग्रहण हिन्दी कृष्ण काव्य में नहीं हुआ है।[2] राधापति 'रायाण' को विद्वानो ने मूल 'अभिमन्यु' से विकसित माना है, जिनकी ३ स्थितियां है—आयहन > आयान > रायाण।[3]

यहाँ उनका देवी रूप अत्यन्त उज्ज्वल है। राधा शक्तिमान पुरुष कृष्ण की शक्ति हैं। इसके पाँच वर्ग हैं—सरस्वती कमला, दुर्गा, गायत्री और राधा। इनमें राधा सर्वोपरि हैं। सभी शरीरी देवता प्रकृति के ही विकास हैं। इनका पुरुष के साथ नित्य संयोग है। इसी को अग्नि और ताप के सम्बन्ध से स्पष्ट किया गया है। पद्मपुराण मे राधा और कृष्ण को स्त्री पुरुष के आदर्श प्रतीक रूप में देख चुके हैं। ठीक उसी प्रकार यहाँ भी राधा और कृष्ण निखिल लोक मे स्त्री पुरुष के समवेत प्रतिरूप हैं। कृष्ण कहते हैं—

'या योषित् सा च भवती य' पुमान् सोऽहमेव च, (अ० ६७/८०)

अर्थात्, जो स्त्री है वह तुम्हारी ही मूर्ति है और जो पुरुष हैं वह मेरे ही स्वरूप हैं।

सौ वर्षों के प्रिय वियोग-ताप को झेल कर ब्रह्मवैवर्त की राधा उज्ज्वल बन गयी है। लक्ष्मी उसकी शैय्या सजाती है, पार्वती उसे चन्दनचर्चित करती है। यह वियोग, आत्म बलिदान अपने प्रियतम कृष्ण की विश्व मंगल-साधना को सहयोग प्रदान करने के निमित्त ही आयोजित है। उसके बलिदानपूर्ण तेज के समक्ष रुक्मिणी आदि रानियां मलिन पड़ जाती हैं।' विश्व के प्राणो मे समाई हुई यह राधा अनन्त शक्ति की स्वामिनी होते हुए भी,

---

१ श्री कृष्ण जन्म खण्ड—२-३ अध्याय, श्लोक—१०४-१०६

२ डा० व्र० वर्मा हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, १६६० ई० ('ब्रह्मवैवर्त की कृष्णकथा के ३ प्रसंग' शीर्षक निबन्ध पृ० ५०६)

3 'The name' Abhimayu occurs in its proper tadbhava from 'Aihana' in the Sri Krishna Kirttana In Murari Gupta's chaitanya–Charitamita it is 'Ayana' & in the Brahmavaivarta it occurs as 'Rayana', an obviously late form —Prof S Sen–A H B L (P 478)

निरहकार होकर नान, कम और प्रेम की त्रिलयात्मिका भक्ति के महाभाव मे लीन होकर अपने विश्वमगल विधायक पति, विश्वात्मा श्रीकृष्ण के पादपद्मो मे लीन रहती है।'[1]

इस प्रकार पद्म, ब्रह्मवैवत आदि पुराणा म राधा भावना का यथष्ट सवधन हुआ। साथ ही इनके गम्भीर अध्ययन से इन पर पडे शाक्त प्रभाव का भी पता चलता है। विद्वानो ने इ ही कतिपय आधारो पर इ हे पूर्वी प्रदेश स सम्बद्ध माना है।[2]

वैष्णवाचार्यों की राधा—अनन्तर वैष्णवाचार्यों की दार्शनिक व्याख्याओ में राधा भाव को मा यता मिली है। इनमे गौडीय सम्प्रदाय विशेष उल्लेखनीय है।

चतुर्वैष्णव सम्प्रदाय म रामानुज और मध्व सम्प्रदाय मे श्री या लक्ष्मी को महत्व मिला। कि तु निम्बाक और विष्णु स्वामी सम्प्रदाय मे राधा भाव की प्रतिष्ठा हुई। यहाँ राधा कृ ण की ह्लादिनी शक्ति है। १२ वी शती के पूव चरण मे हुए निम्बाक कृत दश श्लोकी[3] मे कृष्ण की वामागविहारिणी वृषभानुनन्दिनी राधा का सहस्रों सखियो से परि वेष्टित गौरवशाली रूप हम देख चुके हैं। इसी समय काव्य म राधा कृष्ण प्रेम की जो ललित व्यजना जयदेव के गीत गोवि द म हुई है उसे भी देखा जा चुका है। १६वी शती मे महाप्रभु चैत य ने अपनी भक्ति पद्धति मे राधा-कृष्ण के शास्त्र काव्य सवलित युगल स्वरूप को पूणत घोल कर प्रकट किया है। उ हे कुछ विद्वान् माध्व मतावलम्बी मानते हैं। कि तु, उनके मा व मतावलम्बी होने मे भक्ति रस पूण यह राधा कृष्ण की मजुल मूर्ति ही प्रत्यक्ष बाधा है। महाप्रभु चत यदेव ने अपने तीर्थाटन क्रम मे दक्षिण देश की माधुयमूलक भक्ति और पश्चिमोत्तर भारत की मर्यादावादी भक्ति सबो को अपनी युगल भक्ति मे प्रभावित किया था। व लभाचाय के पुष्टिमाग मे गोपी कृष्ण और बालकृष्ण भावना के अतिरिक्त राधा-कृष्ण युगल भावना के प्रवेश का श्रेय कदाचित् इ ह ही था। इनके प्रति भाशाली शिष्यो मे रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी सनातन गोस्वामी के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी साधनाभूमि मुख्यत ब्रजमण्डल मे ही शुरू से स्थिर रही। वृ दावन के अ य भक्तो के साथ इनके घनिष्ठ सम्पक के भी अनेक प्रमाण हैं अत यह भली भाँति कहा जा सकता है कि अष्टछाप के कवियो के सस्कार पर इनकी राधा कृष्ण युगलोपासना की परोक्ष प्रति ध्वनि है। बल्लभाचाय के अन तर वल्लभ सम्प्रदाय पर जब विट्ठलनाथ का स्वामित्व हुआ तो उ होने गोपी कृष्ण-लीला के साथ स्वामिनी लीला के सुमधुर विधान की स्वीकृति भी द दी। फलत तत्कालीन ब्रजभाषा का य म राधा कृष्ण युगल लीला की चूडा त प्रतिष्ठा हुई। ब्रज म विशुद्ध भाव से पल्लवित होने वाला स्वामी हितहरिवश का राधा वल्लभ सम्प्र

---

१ डा० रामनिरजन पाण्डेय–हि दी अनुशीलन १९६१ ई० (ब्रह्मवैवत म भक्ति का स्वरूप शीर्षक निब ध, पृ० १६)

२ रा० ब० योगेश च द्र राय (आचाय द्विवेदी–म० ध० सा०, पृ० १३२ के साक्ष्य पर) तथा डॉ० व्र० वर्मा हि दी अनुशीलन, धीरेन्द्रवर्मा विशेषाक, १९६० ई० ('ब्रह्मवैवत की कृष्ण-कथा के ३ प्रसग' शीर्षक निब ध पृ० ५०९)

३ प्रथम श्लोक मत्र–१

दाय राधावाद के पूर्ण महत्त्व का प्रतिष्ठापक है। इसमें तो कृष्ण की अपेक्षा राधा ही शीर्ष स्थानीया हैं। उत्तरोत्तर राधावाद का बढ़ता हुआ प्रभाव मध्ययुगीन व्रजभाषा काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। इसे स्वामिनी भाव भी कहा गया है जिसको केन्द्र मानकर सखी भाव की साधना अग्रसर हुई। यही प्रभाव जिसके आश्रय से पूर्वमध्ययुग की कृष्ण लीला का मधुरातिमधुर वितान हुआ था, आगे चलकर रीतिकालीन कामुकता के परिवेश में कृष्णचरित में घोर विलासिता और अश्लीलता के प्रवेश का कारण भी बन गया।

निष्कर्षत, राधाभाव के विकास में काव्य, पुराण और शास्त्र तीनों का योगदान है। सूर के पूर्व इन तीन धाराओं से मिलकर राधा कृष्ण युगल स्वरूप की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। यहाँ वह इतिहास या तत्त्ववाद की वस्तु न होकर सम्पूर्णतः कवि मानस के भाव प्रतीक बन गये थे। इस युगलवाद के स्वरूप गठन में तन्त्रवाद और वैष्णव सहज मत की अन्तरंग प्रेरणा थी।

इसे ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों की राधा कृष्ण अद्वय भावना तथा चैतन्यदेव की 'अन्त कृष्णबहिर्गौर' वाली द्वन्द्व साधना में भली भाँति लक्षित किया जा सकता है। ब्रजभाषा काव्य में इन्हीं साधनाओं के समवेत प्रतिफल के रूप में युगलमूर्ति की स्वरूप प्रतिष्ठा हुई है। इसके परिणामस्वरूप जहाँ कृष्णावतार का लक्ष्य धर्म संस्थापन के स्थान पर मात्र जन मन रंजनकारी हो गया, वहीं कृष्ण लीला का क्षेत्र मथुरा और द्वारका से बिल्कुल सिमट कर ब्रज में ही केन्द्रीभूत हो गया। धीरे धीरे इस सौन्दर्य माधुर्य के समक्ष ब्रज की लोकप्रिय बाल लीला भी फीकी पड़ गयी। अष्टछाप काव्य के अनन्तर बाल लीला का अभाव उक्त तथ्य का पोषक है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि से कृष्णचरित्र अत्यन्त माधुर्य व्यंजक, भावविदग्ध और लीला-रंजनकारी हो गया है। यह बौद्धिकता पर भावात्मकता की विजय का द्योतक है। इस भावात्मक स्वरूप का प्रथम दर्शन हमें पुराणों में होता है। कृष्ण लीला व्यवस्थित रूप में वहीं से अग्रसर होती है। कृष्ण की भावात्मक स्वरूप प्रतिष्ठा में इनका योग असंदिग्ध है। अत अगले अध्याय में पौराणिक कृष्ण की लीलाओं का स्वरूप आकलन प्रस्तुत किया जाता है।

चतुर्थ अध्याय

"पुराणों मे कृष्ण लीला"

अनुच्छेद–१

★विभिन्न पुराणों में कृष्ण लीला

अनुच्छेद–२

★भागवत और तमिल प्रबन्धम् की कृष्ण लीला

अनुच्छेद–३

★पुराण और सूरसागर की कृष्ण लीला

प्रथम अनुच्छेद

निभिन्न पुराणों मे कृष्ण-लीला

पुराण और कृष्ण चरित—पुराण भारतीय धम बुद्धि की रागात्मक अभिव्यक्ति है। इसके अन्तगत सैकडो वर्षों के लोक मानस के विश्वास और चि तन का समवेत प्रतिफलन हुआ है। ईश्वर चि तन यहाँ ज्ञान की अपेक्षा भाव का विषय बन गया है। लीलावाद इसकी अ यतम परिणति है। इसी लीलावादी आग्रह से विभिन्न देवी देवताओं के इति वृत्तात्मक या बौद्धिक चरित मे पौराणिक कल्पनाओं का विनियोग कर उन्हे परम रजन कारी स्वरूप म ढाल दिया गया है। कहना न होगा कि इन वैष्णव पुराणो मे कृष्ण-चरित के साथ भी यही परिणति हुई है। फलत कृष्ण का चरित्र तत्त्व या इतिवृत्त से ऊपर उठकर पूर्ण सौन्दय, परिपूर्ण माधुय और सम्पूर्ण आनन्द से मडित हो गया है। यहाँ पहुँच कर दुर्ज्ञेय ब्रह्म भी अ तरग मानवीय सम्बन्धो मे पूर्णत व्यक्त हो उठा है। सम्ब धो की यह स्वीकृति अ यक्त पुरुष के भावात्मक स्वरूप से ही सम्भव है। वह जब तक अपने कोमल मधुर भाव वपु मे रूप ग्रहण नही करता तब तक भक्तो और कवियो के मनोरागो का आलम्बन नही बन सकता। रमणीय रूप और रुचिर सम्ब ध को स्वीकार कर ही वह सवजनसवेद्य बनता है। अत भक्ति के क्षेत्र म भगवान् के भाव रूप की कल्पना परमावश्यक है। पुराणकार न इस प्रयोजन का भली भाति हृदयगम करते हुए स्पष्ट कहा है–[1]

> वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
> ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

सच्चिदान द पुरुषोत्तम के तीन स्वरूप हैं–ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्। वह ज्ञानियो के ब्रह्म, योगियों के परमात्मा और भक्तो के भगवान् हैं। किन्तु, ज्ञानी और योगी जहा उनके अश विशेष का जानते हैं वहाँ भक्त भगवान् के सम्पूर्ण स्वरूप का अनुभव और रसास्वादन करते हैं। पुराणो की कृष्ण लीला का यही रहस्य है। यहाँ आस्वादन लक्ष्य सर्वोपरि है। यहा सौन्दय, माधुय और प्रेम का अतिरेक है। कृष्ण यहाँ रजन के देवता हैं। इसलिए इन्हे लीला पुरुषोत्तम कहा गया है। इस पुरुषोत्तम की लीला म शक्ति और शिव का अश न हो, ऐसी बात नहा। किन्तु, उक्त दाना का सौन्दय म अध्यवसान हो गया है। यही कारण है कि पौराणिक कृष्ण लीला और अवतार का प्रधान हेतु धम सस्थापन न होकर भक्तानुग्रह हेतु लीला विस्तारण है। लघुभागवतामृत' के अनुसार—

> स्वलीला कीर्तिविस्ताराद् भक्तेष्वनुजिघृक्षया।
> अस्य जन्मादि लीलाना प्राकट्ये हेतुरुत्तम॥

यहाँ कृष्ण धम सस्थापक न होकर 'भक्तानुग्रहकातर' हैं। इसी अवतार प्रयोजन को लक्ष्य कर पौराणिक कृष्ण लीला म गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं की

१ भागवत–३/२/११

नानाविध प्रचुरता हो गई है। किन्तु इन समस्त शृङ्गार लीलाओं में अन्तरतम म जो ईश्वरीय तटस्थता है, रति म जो विरति है, उसके महत्व को लक्ष्यान्तर नहीं किया जा सकता। यह कृष्ण चरित्र की अन्तरग विलक्षणता का परिचायक है। इस शृङ्गारातिशय को काम वासना की कसौटी पर कसना ठीक नहीं। वैसे ही इस विमुक्त प्रेम को लौकिक शृङ्गार मानना अनुचित है। वैष्णवाचार्यों ने इसीलिए इसे माधुर्य रस की उज्ज्वल सज्ञा प्रदान की। पुराणों म वर्णित कृष्ण-लीला का भी यही रग है, यही रहस्य है। पौराणिक कृष्ण मदन नहीं, मदन मोहन हैं।

पुराणों के मूल रचयिता और उनके काल के सम्बन्ध मे पौरस्त्य पाश्चात्य विद्वानों म घोर मतभेद रहा है। सामान्यत इनके रचयिता व्यास माने जाते हैं। किन्तु, पौराणिक ग्रन्थों मे आये कतिपय नाम और घटनाक्रम इतने भिन्न, बहुरूपी और आधुनिक हैं कि विद्वानों को उनकी तथाकथित प्राचीनता और प्रामाणिकता मे स्वाभाविक सन्देह होता है। किन्तु इस मनोवृत्ति से कुछ प्राचीनतर पुराणों के प्रति आलोचकों की यह सामान्य विरक्ति आदरास्पद नहीं।

वस्तुत पुराणों का स्वरूप और काल निर्णय हमारा अभीष्ट नहीं। हम तो मात्र इस निश्चय से इस रसार्णव म प्रवेश कर रहे हैं कि पुराणों म जो कृष्ण लीला का सुमधुर विन्यास हुआ है, उसे भाँक सकें। इन लीलाओं का हिन्दी कृष्ण लीला पर सीधा प्रभाव है। और, इस प्रभाव का कारण है—धर्म तत्व और लोक भावना का मणिकाचन योग।

जैसा कि ऊपर कहा गया, पुराण शास्त्र हैं जिनमे देशज प्रेमाख्यानों को प्रवेश पाने का यथेष्ट अवसर मिला। इसलिए इनमे काव्य के कोमल उपादानों का वहन हो गया है।

यहाँ जन मानस के भाव देव और शास्त्र के धर्मतत्व देव का सम्मिश्रण हुआ है। तत्त्व और भाव का यह मिलन बिन्दु धर्म है। चूंकि यह धर्म समाज बोध से प्रेरित है इसलिए इसमे लौकिकता और अलौकिकता का अद्भुत साक्य घटित हुआ है। इसी कारण कृष्ण के चरित्र मे जिन लीलाओं का स्फुटन हुआ उनमे धर्म का अकुश भी है और प्रेम का पूर्ण बुलावा भी। एक शब्द मे यह प्रेम धर्म का अकलुष प्रतिफलन है। यही लीला है।[१] इसके भीतर वैष्णवाचार्यों ने जो 'अपूर्वनानारसभावनिर्भरता'[२] देखी हिन्दी भक्ति काव्य के कृष्ण उसी के आगामी विकास हैं। लीला पुराणकारों की कल्पना का ऐश्वर्य है। कृष्ण का भावात्मक स्वरूप उसी लीला ऐश्वर्य से मंडित काव्योपलब्धि है। इस लीला के आश्रय भगवान् कृष्ण और आलम्बन गोपियाँ हैं।

मध्ययुग का कृष्ण काव्य इसी पौराणिक लीलादर्श की लोक प्रतिध्वनि है। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर इसकी छाप सर्वाधिक स्पष्ट है। पौराणिक कृष्ण लीला के अनुशीलन से इस प्रभाव का सम्यक आकलन किया जा सकता है। साथ ही इन लीलाओं के अनुशीलन से इसके सूत्रधार इसके केन्द्र मे प्रतिष्ठित कृष्ण के भावात्मक चरित्र का भी समुचित निरू

१ पद्मपुराण—उत्तर खण्ड—२२७/९-१०
२ श्री स्तोत्ररत्न (४४)—यामुनाचार्य

पण सहज सम्भव है। सम्प्रति इसी उद्देश्य से पुराणो म भगवान् कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं का अकन प्रस्तुत किया जाता है।

जिन वैष्णव पुराणो मे कृष्ण लीला का विधिवत् उल्लेख हुआ है, वे हैं—(१) हरिवंश पुराण, (२) विष्णु पुराण, (३) श्रीमद्भागवत पुराण, (४) पद्म पुराण और (५) ब्रह्मवैवर्त पुराण।

(१) हरिवश पुराण—हरिवंश मे गोपाल कृष्ण के प्रसग म प्राय २० अध्याय लिखे गये हैं। यहा मुख्यत कृष्ण का दुष्टदमनकारी रूप प्रधान है। कुल लीलाएँ इस प्रकार हैं—शकटवध, पूतनावध, दामब ध, यमलार्जुनभग वृकदर्शन, वृ दावन-वास, धेनुक-वध, प्रलम्ब वध, गोवर्धन धारण, हल्लीस क्रीडा वृषभासुरवध, केशिवध आदि।

कृष्ण की गोपियो के साथ वृ दावन लीला की अवतारणा पहले पहल खिल हरिवंश म मिलती है। खिल हरिवंश अधिकाश विद्वानों की धारणा म महाभारत का परिशिष्ट है जिसम कृष्ण लीला का ही पल्लवित करने की चेष्टा की गई है। किन्तु कुछ विद्वान् इसे विष्णुपुराण की परवर्ती कृति मानते हैं।[१] उधर सस्कृत के १८ महापुराणो की सूची मे इसकी गणना नही होती। हरिवंश को यहा १८ उपपुराणा मे परिगणित किया जाता है।[२] परन्तु अपने वत्तमान रूप म, अनेक प्रक्षेपो का समावेश किये हुए भी, हरिवंश से हिन्दी के कृष्ण-काव्य की हा नही, उत्तर भारत के समस्त वैष्णव साहित्य की पृष्ठभूमि समझने मे पर्याप्त सहायता मिलती है।[३] इनके अतिरिक्त वाल्टर रूबेन[४], आचर[५] आदि इसे आदि पुराण मानते हैं।

हरिवंश के 'विष्णुपर्व' के २० वें अध्याय मे सक्षेप म गोपियो के साथ श्रीकृष्ण की रास लीला वर्णित है। यहा किसी प्रियतमा प्रधान गोपी का आभास नहीं मिलता। इसका मुहूर्त अ य पुराणा की ही भाँति शरत् पूर्णिमा की रात्रि है। गोपियाँ परकीया हैं किन्तु इसे 'रास' नाम न देकर 'हल्लीश क्रीडा' कहा गया है। किन्तु, ऐसी बात नही कि हरिवंश म 'रासलीला' का उल्लेख नही हुआ है। द्वारकावासी भगवान् कृष्ण जब अनेका-

---

१ स्वर्गीय बंकिमचन्द्र इनम से एक हैं। इनकी इस मान्यता का आधार महाभारत के बगला भाषान्तरकार श्री कालीप्रसन्न सिंह का वक्तव्य है। उन्होने महाभारत के १८ पर्वों के साथ हरिवंश का भाषान्तर नही छापा। इसका कारण उन्होंने इस प्रकार लिखा है—'वास्तव म हरिवंश महाभारत का पर्व नही है। मूल महाभारत बनने के बहुत दिनों बाद वह उसम परिशिष्ट की तरह जोड दिया गया है' (कृष्ण चरित्र—पृ० १०३ मेंउद्धृत)

२ डॉ० शशि अग्रवाल—'हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव' (पृ० ३६)

३ डॉ० व० वर्मा—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ 'हरिवंश और हिन्दी वैष्णव काव्य' शीर्षक निबन्ध (पृ० २४३)

४ वही वही वही

५ 'द० सम्म० ऑफ कृष्ण' अध्याय—२ का अंतिम अंश।

नेष अप्सराओ और चुनी हुई पटरानियां के साथ यथेच्छ रति क्रीडा कर सते हैं तो नारद का हाथ पकड कर सत्यभामा और अर्जुन के साथ सागर म कूद पडते हैं। और, इस जल क्रीडा को भी हरिवंश 'रास' नाम से अभिहित करता है।

रासावसाने स्वयं गृह्य हस्ते महामुनिं नारदमप्रमेय ।
पपात कृष्णो भगवान्समुद्रे साश्चित्य पार्जुनमेवचाथ ॥ ३०
(विष्णुपर्व, अध्याय ८९)

इस पुराण म कृष्ण का वश वृत्त दिया गया है और इनमे व सारे विवरण इतनी स्पष्टता के साथ आये हैं जितनी स्पष्टता कि महाभारत म भी नही थी। इसम श्रीकृष्ण की वास्तविक प्रकृति, जन्मगत परिस्थितियां, शैशव से लेकर यौवन काल की चटुल वृत्तियों आदि को एक सूत्र म पिरो कर समुपस्थित किया गया है। यहाँ कृष्ण सामान्यत एक वीर सामन्त है। यद्यपि श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार कहा गया है जिसका तात्कालिक प्रयोजन एक प्रजापीडक शासक का दमन करना है, किन्तु उसकी लीलाओ म किसी प्रकार की अलौकिकता की व्यजना नही की गई है। उसके समस्त क्रिया-कलाप ऐन्द्रिक हैं। इसके लिए ३ दृष्टा त यथेष्ट होगे।

हरिवश मे ग्वालो के गोकुल से वृ दावन विस्थापन का कारण भेडियो का प्रकोप बतलाया गया है। बाल कृष्ण की अलौकिक शक्तियो के प्रति यदि पुराणकार पूर्णत आश्वस्त होता तो असुर निन्दन कृष्ण के कुशल क्षेम के लिए ही ऐसे बहाने नही रचता।

दूसरा प्रसग गोवधन धारण का है। यह प्रसग विष्णुपर्व के १६ वें अध्याय मे वर्णित है। इन्द्र मेघों के देवता हैं। मेघो से शस्य और धान्य की सवृद्धि होती है। इनसे गोधन भी दुग्धसम्पन्न होते हैं। अत गोधन और कृषि प्रधान सस्कृति मे इन्द्र पूजा आदि काल से ही विहित मानी गई है। स्वभावत गोकुलवासी भी इन्द्र की धूमधाम से पूजा करते हैं। किन्तु कृष्णावतार में इन्द्र पूजा की अपेक्षा उत्तरोत्तर बढती हुई निष्ठा के कारण इन्द्र की प्रलय वृष्टि और उसके प्रतिकार स्वरूप कृष्ण के गोवधन धारण का आख्यान सृष्ट हुआ। कृष्ण ने इन्द्र की जगह गोवधनपूजा का महत्त्व बतलाया और स्वय गोवधन देव बन गये। अपनी पूजा मे विघ्न पडते देख इन्द्र ने प्रलय वृष्टि आरम्भ की। कृष्ण ने गोवधन उठाकर गोकुल की रक्षा की। इन्द्र को कृष्ण के महत्त्व का बोध हुआ और उन्होने गोवधन शिला पर सस्थित गोपवेशधारी विष्णु कृष्ण का अभिनन्दन किया।[1] इतना होने पर भी इन्द्र कृष्ण-स्पर्द्धा मे इन्द्र इतने हीन नही प्रदर्शित किये गये, जितने आगे चलकर किये गये हैं। इन्द्र यहाँ कृष्ण का अभिषेक करते हुए उन्हे अपना अनुज तथा अपने को उनका अग्रज कहते हैं।[2] कृष्ण इसी कारण उपेन्द्र कहलाते ह।[3] इतना ही नही, सारी बाता के बावजूद यहा इन्द्र पूजा भी सुरक्षित रखी गयी है।[4]

तीसरा प्रसग पारिजात हरण से सम्बद्ध है। हरिवश के कृष्ण पारिजात हरण युद्ध म इन्द्र पर युद्ध विजय प्राप्त नही करते। वरन् उनके समान माता पिता अदिति और

१ विष्णु पर्व, अध्याय-१६ श्लोक ३५।
२ वही, श्लोक-३७।
३ वही, श्लोक-४६
४ वही, श्लोक-४७।

कश्यप उनमे आपसी समझौता करा देते हैं। इन्द्र कृष्ण से स्पष्ट कहते हैं–हे कमलाक्ष ! भाई होकर भी तुम मेरी ज्येष्ठता भुलाकर मेरे निर्वाण की इच्छा क्यो करते हो ?'[1]

इन तीन प्रसगो म जहाँ कृष्ण के लौकिक अलौकिक द्विविध स्वरूपो का स्फुटन होता है वहीं महाभारत के इस परिशिष्ट अश की प्राचीनता भी सिद्ध होती है।

अब तनिक व्रजलीला पर भी विशेष तौर पर से दृष्टिपात करना चाहिए। यह अत्यन्त विस्मय की बात है कि हरिवश की द्वारिका लीला की अपेक्षा व्रज लीला के कृष्ण किञ्चित् सयमित है। हल्लीसक्रीडा मे वह गोपियो को नाना प्रेम क्रीडाओ से शरद यामिनी की निमल चन्द्रिका म आनन्द मुग्ध करते दर्शाये गय ह।[2] इस क्रीडा म पृथुल अगो वाली, कटाक्ष पटु और रति प्रीता गोप रमणियाँ कृष्ण प्रम म अपन पतियो और माता पिता आदि की अवहलना करती दिखाई गई हैं।[3] रास मण्डल मे श्री कृष्ण चक्रवाल से अलकृत, शरच्च द्र की चन्द्रिका से चर्चित यामिनी मे गोपियो के साथ मोद मनाते हुए अत्य त प्रसन्न दिखाये गये हैं।[4]

> एव स कृष्णो गोपीना चक्रवालैरलकृत ।
> शारदीषु सचद्रासु निशासु मुमुदे सुखी ॥ ३५ ॥

यह अतिशय मर्यादित प्रेम वणन है जिसकी 'पिंडार यात्रा" जैसे निता त ऐन्द्रिक चित्रो से कोई तुलना नही। यह प्रसन्नता की बात है कि आगामी पुराणो म इस रास क्रीडा की शृङ्गार प्रणाली का ही अनुगमन हुआ है। उनमे 'पिंडार यात्रा' मे वर्णित मद्य, मास, वेश्या आदि के वासनात्मक उपकरणो के नग्न द्र य 'वर्जित प्रदेश' की भाँति उपेक्षित छोड दिये गये हैं।

इनके अतिरिक्त, यहा कुब्जा का भी सक्षिप्त उल्लेख है तथा कृष्ण के एक बार पुन गोवधन आने का वणन है। कदाचित् इसी से ब्रह्मवैवत पुराण के रचयिता को प्रेरणा मिली हो जिसके अनुसार वहा व्रज मे कृष्ण का प्रत्यावत्तन चित्रित हुआ। किन्तु, पुन यह हरिवशकार की सयम वृत्ति का ही परिचायक है कि व्रज मे लौटे हुए कृष्ण नन्द यशोदा से कुशल पूछते दिखाये गये किन्तु गोपियो के सम्ब ध में उन्हे मौन ही रखा गया है। कुछ-कुछ इसी सयम वृत्ति की झलक भागवत के कुरुक्षेत्र मिलन प्रसग म दिखाई देती है। हिन्दी कृष्णकाव्य मे यह कठिन योगसाधन नही है।

(२) विष्णु पुराण—वैष्णव पुराणो म यह एक प्राचीन पुराण है। बकिम चन्द्र इसे हरिवश पुराण से पहले की रचना मानते हैं।[5] विलसन के अनुसार इसका रचनाकाल छठी शती है। किन्तु, भारतीय विद्वान् इसे ईस्वी सन् के पूव या उसके आस पास की कृति मानते हैं।[6] इसमे कुल ६ अश हैं। इसके पचम अश मे कृष्ण का अलौकिक चरित्र वर्णित

---

१ अध्याय–७५, श्लोक– ८२६। २ अध्याय-२०, श्लोक १५-१६।

३ विष्णुपव, अध्याय—२०, श्लोक—२१।

४ वही ५ 'कृष्ण चरित्र' (पृ० १०३)

६ आचाय ह० प्र० द्विवेदी– 'सूर साहित्य' (पृष्ठ ६) तथा प० बलदेव उपाध्याय– 'भी० वा० श्री रा०' (पृ० १५)

है। यह अवतार भक्तों के आदर का आलम्बन है। इसकी कृष्ण लीला भागवत तथा हरिवंश से साम्य रखती है। किन्तु यहाँ संक्षेप में वर्णन किया गया है। १८ अध्यायों में यह वर्णन समाप्त किया गया है।

कृष्ण विष्णु के पूर्णावतार हैं। भगवान् गोपियों के रूप में विष्णु के विहारार्थ अवतीर्ण हुए हैं। उसके १३ वें अध्याय में कृष्ण का रास वर्णन करते हैं, पुराण भागवत के ढंग पर हुआ है। यह प्रसंग ब्रह्म पुराण के १८ वें अध्याय में ज्यों का त्यों मिल जाता है। यहाँ गोपियों में कृष्ण की प्रियतमा 'कृतपुण्या मदालसा' (श्लोक ३३) गोपी का उल्लेख मिलता है। इसने पूर्व जन्म में भगवान् विष्णु की 'सम्यक् आराधना' की थी। इसलिए इस जन्म में उसे कृष्ण का विशेष प्रेम प्राप्त हुआ। कदाचित् इसी 'सम्यक् आराधना' शब्द से प्रेरणा पाकर भागवत में 'अनयाऽऽराधितो' शब्द से राधाविशेष के सौभाग्य की सराहना की गयी है।

कृष्ण की दुष्टदमनकारी बाल लीलाएँ प्राय वे ही हैं जिनका उल्लेख हरिवंश के प्रसंग में किया गया। कृष्ण की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उनका वात्सल्य और परोपकार वृत्ति ही है।

७ वें अध्याय में कालिय दमन लीला वर्णित है। यहाँ जल के भीतर ही कालिय कृष्ण-संघर्ष की भूमिका प्रस्तुत की गयी है। इस लिए तट पर खड़े गोप गोपी चिन्तित और विलाप करते दिखाये गये हैं। गोपी विलाप के इस प्रसंग में 'कृष्ण के बिना व्रज का वृष के बिना गाय'[1] कहा गया है। इससे कृष्ण के प्रति गोपियों के शृङ्गारिक दृष्टिकोण का पता चलता है। कृष्ण और गोपियों के प्रेम सम्बन्ध (काम-सम्बन्ध) की यह प्रथम स्वीकृति है।[2]

कृष्ण की यौवन-लीला से सम्बद्ध—रास, प्रिय प्रवास और गोपी उपालम्भ-ये तीन प्रसंग द्रष्टव्य हैं।

१३ वें अध्याय में रास वर्णन है। वंशी ध्वनि से मन्त्रमुग्ध गोपियाँ रास मंडप की ओर खिची चली आती हैं। किन्तु वहाँ पहुँचने पर कृष्ण उन्हें नहीं मिलते। वह किसी प्राणाधिका प्रिया गोपी को साथ ले कहीं निकल पड़ते हैं। पद चिह्नों से गोपियाँ यह भली भाँति भाँप लेती हैं कि कृष्ण किसी रमणी के साथ हैं। किन्तु, आगे चलकर उस पुण्यशीला के भी त्याग देने का संकेत मिलता है। वे यमुना-तट पर कृष्ण लीला का अनुकरण करती हैं। उसी समय कृष्ण प्रकट होते हैं और पुनः रास मंडल का निर्माण कर रास रचाते हैं।

गोपी प्रेम का विप्रलंभ रूप कृष्ण के मथुरा गमन के अवसर पर गोपियों के वियोग में प्रकट हुआ है। इसमें उपालंभ का अंश है। गोपियाँ नागर वनिताओं के प्रेम पाश में आबद्ध होकर उन्हें बिसरा देने वाले कृष्ण को कोसती हैं।

विष्णुपुराण में कुब्जा का विशेष उल्लेख नहीं है। हाँ, २४ वें अध्याय में बलराम के व्रजागमन पर गोपियाँ उन्हें जी भर उपालम्भ देती हैं। वे उन पर नागरियों के प्रेम में

१ 'विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रज' ५/७/२७।

२ डॉ० मिथिलेश कान्ति-'हिन्दी भक्ति शृङ्गार का स्वरूप' (पृ० ४३)

फँसने का इल्जाम लगाती हैं। उनके लिए अपने माता पिता, बन्धु भ्राता तथा पति के त्याग का उल्लेख कर अपना पश्चात्ताप व्यक्त करती हैं। पुन स्वाभिमान से भर कर कहती हैं कि जब हमारे बिना उनकी बन गयी तो हम भी उनके बिना निभा ही लेंगी। इस उक्ति म निराशा अत्य त करुण स्वरो म प्रकट हुई है।

विष्णु पुराण मे भक्ति दशन और काव्यत्व का सुन्दर समाहार हुआ है। गोपियो की माधुय भक्ति अत्यन्त मर्यादित है। रासादि के सरस वणना मे भी इस सयमवृत्ति का यथेष्ट पालन किया गया है। परन्तु, कृष्ण के प्रति अपने उत्कट प्रेम के प्रदशन मे विरहिणी गोपियाँ कभी नहीं चूकती। उनके उपालम्भ हृदय पर सीधा आघात करते हैं। यहा उनकी पीडा मार्मिक बन जाती है।

यहाँ भगवान् कृष्ण के चरित्र को वैष्णव सम्प्रदाय के दायरे से निकाल कर एक व्यापक धमभूमि म प्रस्तुत किया गया है। अध्याय ३३ मे किया गया कृष्ण शिव अभेद-वणन इसी सामञ्जस्य भावना का परिचायक है। इसका प्रभाव आगे चलकर पद्मपुराण तथा विद्यापति के 'हरिहरवाद' पर पडा है। भगवान् कृष्ण अपने को शिव से अभिन्न बतलाते हुए स्वय कहते हैं[1]—

योऽहं स त्व जगच्चेद सदेवासुरमानुषम्।
मत्तो नान्यदशेष यत्तत्त्व ज्ञातुमिहार्हसि ॥

यह एक प्रामाणिक पुराण है। वैष्णवाचार्यों ने इसे अनेकश उद्धृत किया है। 'इस पुराण के दार्शनिक सिद्धान्तो और कृष्ण चरित्र का प्रभाव हिन्दी भक्ति काव्य पर बहुत अधिक पडा है।'[2]

(३) भागवत पुराण—श्री मद्भागवत कृष्ण लीला का सर्वाधिक सुव्यवस्थित कोश है। इसके अन्तगत प्रथम बार कृष्ण की बाल, कैशोर और यौवन लीलाओ का व्यापक विन्यास हुआ है। इस प्रकार, इसमे कृष्ण चरित के भावात्मक पक्षो का सागोपाग निदशन प्राप्त होता है। पूववर्ती पुराणो के सक्षिप्त प्रसगों का यहाँ यथेष्ट विस्तार हुआ है तथा अनेक नये प्रसगो की उद्भावना भी हुई है। इस सुव्यवस्थित लीला वर्णन तथा रस स्निग्ध गीतिमत्ता के ही कारण यह वैष्णव भक्तो का कठहार बना रहा है। इसका तत्त्व विवेचन रमणीय और कवित्व विलक्षण है। स्वय भागवतकार अपने इन गुणो स परिचित है। उसने प्रारम्भ म ही भागवत की विशेषताओं पर आलोकपात करते हुए कहा है कि यह निगम रूपी कल्पतरु का सुपक्व रसगलित फल है जिसे शुकदेव जी ने अपने अमृतवचन से सयुक्त कर मधुरातिमधुर बना डाला है[3]—

निगमकल्पतरोर्गलित फल शुकमुखादमृतद्रवसयुतम्।
पिबत भागवत रसमालय मुहुरहो रसिका भुवि भावुका ॥

---

१ विष्णु पुराण—५/३३/४८
२ डा० म० अग्रवाल—'हि० कृ० भ० का० पु० प्र०' (पृ० २०)
३ भागवत— १/१/३

महर्षि व्यास ने चिल्ला चिल्ला कर कहा है कि रसिकजनो, यदि रस का वास्तविक आनन्द लेना चाहते हो तो भागवत रस को चखो। हे भावुक जनो! तुम्हारे भाव की तृप्ति, हृदय को परमानन्द की प्राप्ति इसी रस सरिता में अवगाहन करने से होगी।'

वैष्णव धर्म के प्राय सभी भक्ति-सम्प्रदाय इससे प्रभावित हैं। विशेषत वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदाय में यह प्रस्थान त्रयी (उपनिषद् भगवद्गीता-ब्रह्मसूत्र) के समान उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में मान्य रहा।[१] वल्लभाचार्य ने भागवत पुराण को महर्षि व्यास की 'समाधि भाषा' कहकर समादृत किया।[२]

श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध में भगवान् कृष्ण की अवतार-लीलाओं का क्रमबद्ध चित्रण हुआ है। हिन्दी काव्य की कृष्ण लीला पर जिसका प्रतिनिधि रूप सूरदास के सूरसागर में व्यक्त हुआ है—इस पुराण का सर्वाधिक प्रभाव है। बाहर से देखने पर तो सूरसागर श्रीमद्भागवत का अनुवाद सा प्रतीत होता है। पर वस्तुत उसकी मौलिकता अपने आप में सुस्थिर है।

स्थूलत भागवतवर्णित कृष्ण लीला को ३ वर्गों में रखा जा सकता है- (क) बाल लीला, (ख) किशोर लीला और (ग) यौवन लीला।

यद्यपि कृष्ण ब्रज में ११ वर्ष की अवस्था तक ही रहे तथापि अपनी अतिमानवीय प्रकृति अथवा दिव्यशक्ति के माध्यम से अवस्था सुलभ दुर्बलता और सुकुमारता का अतिक्रान्त कर उन्होंने अपने अद्भुत विक्रम और रमणशीलता का परिचय दिया। अत इस छोटी उम्र में, ब्रज में, उनके द्वारा किये गये सारे पराक्रमपूर्ण कृत्य तथा यौवनशीली लीला केलि विस्मयोद्रेचक हैं। रस दृष्टि से भी इन लीलाओं के ३ वर्ग किये जा सकते हैं—(१) वात्सल्य (२) वीर और (३) शृंगार। वात्सल्य लीला के अन्तर्गत ललित मधुर बाल कृष्ण और उनकी सारी चपल चेष्टाएँ आती हैं। जिनके आनन्द की आश्रय माता यशोदा तथ नन्द और उनके अन्य सहयोगी गोप गोपियाँ हैं। वीर रस के अन्तर्गत अवतारी कृष्ण और उनके द्वारा वध किये जाने वाले असुरों के प्रसंग अन्तर्भुक्त हैं। यद्यपि, नितान्त बाल रूप में कृष्ण के द्वारा इन भयंकर राक्षसों के विनाश के पीछे उत्साह की अपेक्षा विस्मय भावना के उद्रेक की अधिक अनुकूल स्थिति प्रतीत होती है। इसलिए, इसे अद्भुत रस के अन्तर्गत भी परिगणित किया जा सकता है। किन्तु जिस मायाशक्ति के सचार से ये सारी लीलाएँ आयोजित हुईं, उनके मूल में ही विस्मय की भावना बद्धमूल है। यह विस्मय सम्पूर्ण कृष्ण लीला का आधार है और तज्जन्य आनन्द का हेतु भी। इसलिए प्रकृत रस दृष्टि से असुर वध के वृत्तान्त को वीर रस के अन्तर्गत ही परिगणित किया गया है। स्थान की दृष्टि से इनके दो वर्ग हैं—(१) गोकुल और (२) वृन्दावन। गोकुल से वृन्दावन विस्थापन की चर्चा प्राय सभी पुराणों में हुई है—

---

१ प० ब० उपाध्याय-'भागवत सम्प्रदाय' (पृ० १४७-१४८)

२ शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, पृ० ४६

(क) बाल लीला—बाल लीला के चित्रण में स्कन्ध-१०, अध्याय ६ से लेकर अध्याय १८ तक के वृत्तान्त लिये जा सकते हैं। इसके अन्तर्गत आने वाली प्रमुख लीलाओं का विवरण नीचे दिया जाता है।

(१) पूतना वध स्कन्ध-१०-अध्याय-६, श्लोक -१३
(२) शकटभग „ „ -७ „ -९
(३) तृणावर्तवध „ „ -७ „ -२९
(४) नामकरण, मृत्तिका भक्षण, मुख मे विश्व रूप दर्शन,—८ वाँ अध्याय उरूखल बन्धन—स्कन्ध-१०, अध्याय-९
(५) यमलार्जुनोद्धार „ , -१०

गोकुल मे कृष्ण की उक्त ५ प्रकार की लीलाएँ ही हुई। इन सभी लीलाओं मे उनकी अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन हुआ है। किन्तु, यह उनकी माया का ही प्रभाव है कि भोले भाले व्रजवासी उनके ब्रह्मत्व की याद अक्षुण्ण नही रख पाते। इसी कारण वे मनुष्य रूप मे उनकी इन लीलाओं के प्रति विस्मय विमुग्ध होकर भी भ्रम विमूढ नही होते। और, कृष्ण को अपने ही बीच का एक विलक्षण सस्कार-सम्पन्न बालक समझकर प्राणपण से प्यार और दुलार किया करते थे। यही कारण है कि गोकुल म आये दिन होने वाली दुर्घटनाओं से सशंकित होकर गोपेश नन्द ने वृन्दावन वास का सकल्प किया। और, सम्पूर्ण गोकुल एक दिन उठकर यमुना तटवर्ती वृन्दावन की श्यामल वन भूमि म आ बसा। श्रीमद्भागवत की अन्य पश्चाद्वर्ती लीलाएँ इसी वृन्दावन लीला के अन्तर्गत आती हैं। कृष्ण इस समय तक प्राय पाच वर्ष के हो गये थे। उनकी वृन्दावन लीलाएँ इस प्रकार हैं—

(६) वत्सासुर वध— स्कन्ध-१० -अध्याय-११, श्लोक-४३
(७) बकासुर वध — , „ „ „ „ -५०
(८) अघासुर वध— „ „ „ १२ , -
(९) (क) ब्रह्मा द्वारा
गो वत्सहरण— „ - „ - १३ „ -
(ख) ब्रह्म मोह भग— „ - „ - „ „ -
(ग) गोवत्स प्रत्यावर्तन— „ - „ - १४ „ -
(१०) धेनुकासुर वध— „ - „ - १५ „ -४०

इस असुर के वध मे यद्यपि कृष्ण और बलराम दोनो ने सहयोग किया किन्तु मरण बलराम के हाथो ही वर्णित है।

(११) कालिय दमन— „ „ „ - १६ , -

यद्यपि विष्णु पुराण म कृष्ण कालिय सघर्ष जल म ही दिखलाया गया है किन्तु उस पुराण मे कालिय का यमुना जल से बाहर निकल कर सूखे मे प्राण त्यागना वर्णित है। यहाँ कृष्ण कालिय दमन के अभीष्ट से ही यमुनातट पर कन्दुक-क्रीडा करते हैं। किन्तु जब कालिय के विष से विषाक्त यमुना जल से ग्रस्त प्राणियों के उल्लेख से कालिय दमन का औचित्य एक बार प्रकट हो चुका तो पुन इस गद सम्बन्धी दूसरे व्याज का कारण

कृष्ण की लोकातीत कल्याणवृत्ति पर लौकिक बाल क्रीडा का रंग चढ़ाना ही हो सकता है। इसी रात जंगल में आग लगती है और कृष्ण नन्द यशोदा के आह्वान पर अग्नि पान कर जाते हैं।

(१२) दावानल पान स्कन्ध – १० – अध्याय – १७ –

(१३) प्रलम्बासुर-वध „ – „ – „ – १८ –

प्रलम्ब गोप रूपी राक्षस है जिसका वध कृष्ण की मन्त्रणा से बलराम करते हैं।

उक्त अवसरों पर कृष्ण ब्रज के धनपति नन्द गोप के पुत्र और ग्वाल बालों के सच्चे नायक के रूप में मान्य हैं। उनके साहसपूर्ण वीर चरित्र, गोपों को संकटकालीन स्थितियों से मुक्त करने की सामर्थ्य, उनका पूर्ण आत्म विश्वास तथा राजकुमार सा जीवन उन्हें सब मिलाकर एक असामान्य व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। यदा कदा उनका विष्णु तेज भी प्रकट हुआ है किन्तु तत्काल उन्होंने अपनी माया का संचार कर गोपों की माहात्म्य बुद्धि पर एक आवरण डाल दिया है। परिणामतः ईश्वर के रूप में होकर भी वह सदा ब्रजवासियों के प्रेम भाजन ही बने रहे।

(ख) **किशोर लीला** – यही वह सीमा रेखा है जहाँ पुराण कृष्ण-लीला की रमणीय प्रेम भूमि में पदार्पण करता है। आगे ५ अध्यायों में किशोर कृष्ण की कमनीय छवि, प्रकृति की प्रफुल्लित पृष्ठभूमि तथा प्रेमोमंग और उल्लास की प्रदायिनी मोहन की वंशी ध्वनि के साथ गोपी लीला का धूमधाम से समारंभ हो जाता है। यही कृष्ण की किशोर लीला है। चीर हरण इसका चूडान्त है। संभवतः यहीं से कृष्ण में यौवन और समागम का अंकुर फूटा होगा। गोवर्धन धारण इसी जाग्रत पौरुष का प्रमाण है।

विद्वानों ने ब्रह्मा मोह भंग (अध्याय-१४) तथा धेनुक वध (अध्याय-१५) की मध्यान्तरित अवधि में ही कृष्ण में यौवनागमन के लक्षण बतलाये है।[1] कृष्ण इस समय पूरे ८ वर्ष के है। उनके चरित्र में वन विहार के नाना मोदमय दृश्य प्रतिबिम्बित हुए हैं। वे इस समय ग्वाल सखाओं के साथ मधुर मुखर और केका ध्वनित वन में मोद मनाते हैं। कभी पुष्प माल्यों से कभी मयूर पंख से तो कभी पर्वतीय धातुओं से नाना रंग छवि में सजते हैं। पत्रशय्या रचते है। गाते हैं, नाचते हैं और बाँसुरी बजाते हैं। इस प्रकार उनके भीतर अनेक मधुर अनुभूतियाँ और संवेगों का संचार होता है। जब वह प्रेमोन्मत्त दशा में सन्ध्या समय घर लौटते हैं तो गोपियाँ उनके मुखारविन्द का मकरन्द पान कर अपने दिल की जलन शान्त करती हैं। भागवतकार कहता है—

गोपियों ने अपने नेत्ररूप भ्रमर से भगवान् के मुखारविन्द का मकरन्द पान करके दिन भर के विरह की जलन शान्त की। उधर भगवान् ने भी उनकी लाजभरी हँसी और विनय से युक्त प्रेम भरी बाँकी चितवन का सत्कार करके ब्रज में प्रवेश किया। अब गोपियों का चित्त उनके हाथ में नहीं रहा चूँकि चितचोर कृष्ण ने उसे पहले ही चुरा लिया था।'

---

१ मावर–'द लव्ज ऑफ कृष्ण –'बाल लीला–शीर्षक अध्याय द्रष्टव्य तथा डॉ० मिथिलेश कान्ति– 'हिन्दी भक्ति शृङ्गार का स्वरूप' (पृ० ४५)

किशोर लीला के अन्तगत ५ प्रसग हैं—

(१) शरद् वणन – दशम स्कन्ध – अध्याय – २०
(२) वेणुगीत – ,, – ,, – २१
(३) चीर हरण – ,, – ,, – २२
(४) यज्ञपत्नीअनुग्रह– ,, – ,, – २३
(५) गोवधन धारण– ,, – ,, – २५

इनमे अन्तिम को छोड शेष सभी प्रसग श्रीकृष्ण की शृङ्गार लीला से सम्बद्ध हैं। ऊपर यह भली भाँति लक्षित किया गया है कि कृष्ण की बाल लीलाएँ और वीरतापूर्ण कृत्य ही उनके गोपी-नायक ('हीरो') बन जाने के पर्याप्त प्रेरक हैं। क्रमश प्रौढता प्राप्त कर वह और भी आधिकारिक ढग से यौवनानन्द की प्राप्ति के लिए कदम बढाते हैं। वह अवस्था से एक चचल किशोर हैं किन्तु अपने स्वरूप गत सौन्दय, माधुय और प्रेमप्रवणता के कारण गोपियो के चितचोर। अधिकाश गोपिया विवाहिता हैं। फिर भी उनके बीच कृष्ण का प्रेम सम्मोहन इतना उत्कट है कि नैतिकता के पहरो और उनके पतियो के अस्तित्व के बावजूद प्रत्येक गोपी मोहन के प्रेम पाश म पूर्णत आबद्ध हो जाती है। कृष्ण उधर वन म विचरते हैं, गोपिया इधर उनके सम्मोहन की ही चर्चा मे सलग्न रहती हैं। वे अपना काम करती हैं किन्तु ध्यान उन्ही पर टँगा रहता है। वे अपने घर मे होती हैं किन्तु अहर्निश उनसे मधुर मिलन के ही गुन धुन करती हैं।

वेणुगीत—कि, एक दिन कृष्ण वन में बासुरी की तान छेड देते हैं। कृष्ण की प्रवीणता वेणु वादन म भी विलक्षण है। वेणु की अमृत मधुर स्वर लहरी लहर की भाति सम्पूर्ण वन भूमि मे फैल जाती है। पावन वन कुञ्जो से छनकर यह ध्वनि जब गोपियो के कर्ण-कुहरा म पडती है तो उनका हृदय सिहर उठता है। वे साथियों मे उमड आती हैं। और आपस म एकान्त कुञ्ज मे मधुर रागिनी छेड़ने वाले श्याम सलोने के दर्शन की व्याकुलता प्रकट करती हैं। स्वर-सम्मोहन का जादू ऐसा चलता है कि गोपिया कृष्ण के अधरामृत का पान कर गुञ्जरित होने वाली वशी को अपनी सौत तक मान लेती हैं। स्पष्टत इस प्रसग से यौवनवती गोपियों मे काम वृत्ति का जागरण प्रदर्शित हुआ है। इसी काम-वृत्ति से प्रेरित होकर वे कृष्ण को पति रूप मे प्राप्त करने की कामना करती हैं और फलत शरद् स्नान, कात्यायनीव्रत तथा चीर हरण के प्रसग अग्रसर होते हैं।

चीर हरण—२२ वें अध्याय म चीर हरण प्रसग है। एक दिन जब गोपिया यमुना म नग्न स्नान कर रही थी, कृष्ण ने चुपके से आकर उनके वस्त्र उठा लिये और कदम्ब पर जाकर बैठ गये। गोपियो की जब नजर पडी और उन्होने जल मे धँस कर वस्त्र के लिए आग्रह करना शुरू किया तो कृष्ण ने उन्हे पूर्णत नग्न रूप म आकर वस्त्र लेने को कहा। काफी हठधर्मी के बाद गोपियो ने सोचा कि कृष्ण तो उनके तन मन का एक-एक रहस्य जानते ही हैं, अत इनके समक्ष लज्जित होने का प्रश्न ही बेकार है। वे हाथों से अपनी लज्जा ढँकती हुई जल से बाहर आती हैं। धृष्ट कृष्ण उनसे हाथ उठाने को कहते हैं। और तब, उनके वस्त्र लौटाते हुए वह एक नैतिक उपदेश देते हैं। पूरे शृङ्गाराढ्य प्रसग को देखते

हुए उपदेश की इसी तत्त्वदर्शी विस्तृत 'भरतम सोन' की तरह है। व्रज-बाला गोपियाँ अपने पत्र पढ़ कर भी वहीं न नहीं टलतीं।

तब कृष्ण उन्हें हेमन्त के प्रारम्भ में फिर रास रमण के लिए आमंत्रण और वचन देकर उन्हें विदा करते हैं।

यज्ञपत्नीअनुग्रह के प्रसंग में कृष्ण का भावी जन वन्दन रूप ही उद्घाटित होता है। कृष्ण के नाम से जहाँ मथुरा के याज्ञिक मुनि ध्यान मग्न थे। डांट कर लौटा देते हैं उनकी पत्नियाँ गोपियों के चितचोर कृष्ण का नाम सुनते ही व्यंजन-सामग्री लेकर उनकी सेवा में आ जुटती हैं। एक मुनि जब अपनी भार्या को हठपूर्वक रोकता है तो वह पति के समक्ष अपना पाञ्चभौतिक शरीर छोड़ कृष्ण में प्राणों से आ मिलती है। कृष्ण की नारी सम्मोहन शक्ति की यह विलक्षण विजय है। किन्तु उनके अभी चरित्र में सहज ही एक निर्मल संयम है। इसी वृत्ति का परिचय वह प्रेमागत मुनि पत्नियों को घर भेज कर देते हैं। इस प्रसंगावतरण का एक और भी उद्देश्य है। और वह है कर्मकाण्ड पर प्रेमासक्ति की मधुर विजय घोषित करना। मथुरा के ब्राह्मण जब अपनी कृष्णप्रेमिका पत्नियों के सौभाग्य पर जलते हैं तब जैसे प्रेम की आँच में सारा और कर्मवाद का सारा अहंकार ही जल उठता है।

गोवर्धन धारण इसी प्रेम महत्ता की अगली कड़ी है। पूर्वोक्त लीला में जहाँ कृष्ण ब्राह्मणवाद को अहंकार मुक्त कर प्रेमार्द्र करते हैं वहीं गोवर्धन धारण लीला द्वारा देववाद को मात देकर मानवीय शौर्य, प्रेम और सदाचार की प्रतिष्ठा करते हैं। इन्द्र महिमा के स्थान पर कृष्ण महिमा की स्थापना होती है। इन्द्र (महिमा) के पतन से वैदिक धर्म का अवसान होता है। और, कृष्ण (महिमा) के उदय से प्रेमप्रधान वैष्णव भक्ति का उत्थापन होता है।

आगामी यौवन लीला में जहाँ गोपियाँ अपने को सर्वतोभावेन कृष्णार्पित करती हैं इस भक्ति के चरम निगूढ़ रहस्य को परखा जा सकता है।

(ग) यौवन लीला—यौवन लीला का वास्तविक प्रारम्भ २६ वें अध्याय से माना जा सकता है। अध्याय–२६ से लेकर ३३ तक गोपी-कृष्ण की रास लीला का सुमधुर वितान हुआ है। ५ अध्यायों में विधिवत् सम्पन्न होने के कारण इसे 'रासपंचाध्यायी' भी कहते हैं।

रासपंचाध्यायी के क्रमिक प्रसंग इस प्रकार हैं—

(१) (क) वेणुनादाकर्षण— } स्कन्ध –१० , अध्याय – २६
(ख) रासारम्भ— }
(ग) कृष्ण का अन्तर्धान होना— }

(२) गोपियों का कृष्ण लीलानुकरण
कृष्ण प्रतीक्षा— , – – , – ३०

(३) गोपी गीत– ,, – – , – ३१

(४) कृष्ण का आश्वासन– स्कन्ध १० , अध्याय – ३२

(५) महारास– ,, ,, – ३३

(१) शरदागम से एक ओर जहा कृष्ण को गोपियो को दिये गये वचन की याद आती है वही उसकी निमल चादनी से उनके मन मे गोपी समागम की उद्दाम लालसा भी जाग्रत होता है। और, अपने सकल्प की याद कर वह एक रात दूर वन म वशी की मोहिनी तान टेर देते है। उस दूरागत गूज मे गोपियों के चित्त मे सनसनी भर जाती है। वे सज सध कर परिवार के गुरुजनो को छोड अपने वचनबद्ध प्रियतम कृष्ण के पास कानन म पहुँच जाती हैं। भागवतकार ने उस समय श्रीकृष्ण की जिस त्रिभगी मोहिनी छवि का चित्रण किया है वह अनुपम है। चरणोपरि चरण, माथे पर मोर मुकुट, कटि मे पीताम्बर, ओठो पर वशी ! रूप यहा मोहन बन गया है। और उस सुनहली कौमुदी म चमकती हुई उनकी सावली सूरत। जब गोपिया उनके चारो ओर उमड आती हैं तो वह उन पर ताना भरते हुए अपने अपने धर्म की याद दिलाते हैं। तथा, लौट जाने का उपदेश देते हैं। गोपिया इस विरुद्ध धर्मी नायक की वक्रोक्ति से रो पडती हैं। अन्ततोगत्वा गोपियो के द्वारा अपना सर्वस्व समर्पण कर दिये जाने तथा उन्हे अपना सर्वस्व मान लेने पर वह प्रसन्न होते हैं। और देखते ही देखते यमुना तट की वह क्षुब्ध वेला नृत्य, गीत और प्रणय कूजन से मुखरित हो उठती है। आनन्द और प्रेम के समुद्र म ज्वार उठ आता है। इस उन्मुक्त प्रेम पर्व म शील भी सकुचित हो जाता है। गोपियाँ प्रियतम कृष्ण के साथ जो जो मन म आता है, सब करती हैं। कृष्ण उनके समस्त काम स्थलो का स्पर्श कर उन्हे पूर्णत उद्दीप्त कर देते हैं। रात बीत रही है—बीत रही है। रास मग्न कृष्ण उनके बीच ऐसे भव्य लग रहे हैं जैसे तारिकाओं के बीच मुस्कुराता हुआ चाद। आनन्द जब शिखर पर पहुँच रहा था तो उधर गोपियो का प्रेम-गर्व भी आकाश छू रहा था। ठीक उसी समय कृष्ण अपनी एक प्रियतम गोपी को साथ लेकर मध्य रास से अन्तर्धान हो जाते हैं।

(२) सहसा कृष्ण को अपने बीच न पाकर प्रमोन्मत्त गोपियाँ अवाक रह जाती हैं। वे वन की खाक छानने लगती हैं। किन्तु, कुछ पता नही चलता। वे कृष्ण की प्रणय सुधि से व्याकुल होकर उनकी बहु विचित्र लीलाओ के अनुकरण करने लगती हैं। अन्त म व कुछ दूर पर बालुका राशि मे कृष्ण तथा किसी परिचित गोपी विशेष के मिश्रित पद चिह्न पा लेती हैं। इन दो युगल चरणो का अन्त एक पत्रशय्या के निकट जाकर होता है। *गोपियाँ उसके सौभाग्य की जलनभरी सराहना करती हैं।*

उधर कृष्ण के साथ जाने वाली गोपी को भी गर्व होता है। फलत कृष्ण उसे भी त्याग देते हैं। वह वेदना स भर कर चिहुँक उठती है। वह त्यक्ता पीछे गोपियो के झुण्ड म आ मिलती है। तथा, वे सब की सब कृष्ण प्रेम का करुण राग अलापती हुई रमण-रेती लौट आती हैं।

(३) वहाँ एक बार पुन वे प्रियतम कृष्ण का आह्वान करती हुई अपने कृष्ण-सम्मोहन की उन्मादना का गुणी घोषणा करती हैं। पर सब बेकार। उनकी चीख-पुकार निरुत्तर लौट आती है। इस प्रकार, कृष्ण के लिए विलाप करती हुई व उनसे विनय करती, मिलन उचारती, भूमि पर छटपटाती रहती हैं।

(४) अन्त में, कृष्ण पसीजते हैं। और, वह उनके बीच खड़े होते हैं। गोपियों का विरह दूर हो जाता है जैसे मुरझाई हुई लताओं पर अमृत के छींटे पड़ गये हों। वे उन्हें मीठी झिड़की देती हैं। किन्तु सबों से कृष्ण का एक ही उत्तर है—'हमारे शुद्ध प्रेम की परीक्षा लेने के लिए ही वे छिप गये थे। उन्होंने (गोपियों ने) अपने प्रेम का भरपूर एहसास दिलाया है। अब कृष्ण रोम रोम से उनके ऋणी हैं।' किन्तु उनकी जैसा के लिए वे दो आभार प्रगट करें, यह आवश्यक था। आओ सब गोपियों ने कृष्ण का मनक चुम्बनों से भरकर इसका सुमधुर स्वागत कर दिया था। अब पुनः महारास की अवतारणा आवश्यक थी।

(५) ३३ वें अध्याय में इसी की पूर्ति हुई है। महारास प्रारम्भ होता है। कृष्ण अपनी 'मायाशक्ति' का सहारा कर प्रत्येक गोपी के साथ अपने अलग अलग स्वरूप में नृत्य निरत हो जाते हैं। इस प्रकार उस महान् नृत्य में गोपी-कृष्ण युगल स्वरूप की एक मनोहर माला सी बन जाती है। और इस सम्पूर्ण मण्डल के मध्य में भी एक कृष्ण अपनी प्रियतमा के साथ नृत्य निरत प्रदर्शित होते हैं। प्रत्येक गोपी अपने साथ कृष्ण का दर्प प्रेमाभिमान अनुभव करती है। वे उनकी उँगलियों में उँगलियाँ डाल आनन्द विभोर हो नाचती हैं। उनके मध्य मध्य में कृष्ण लगते हैं जैसे सौदामिनी से घिरे सुन्दर घन हों। इस प्रकार नाच, गान, परिरम्भन, चुम्बन आदि में न जानें कितनी घड़ियाँ इस आनन्द विस्तार पर व्यतीत हो जाती हैं। अन्त में वे अपने अपने वस्त्राभूषण उतारकर कृष्ण को अर्पित कर देती हैं। प्रेम के इस दृश्य को देखने के लिए स्वर्ग के देवता उमड़ पड़ते तथा देवियाँ उसमें सम्मिलित हो जाने के लिए आतुर हो उठती हैं। इस दिव्य समागम की वेला का चित्रण करते हुए भागवतकार कहता है—

'उनके समूह गान की ध्वनि अनन्त व्योम में गूंज उठी। वायु विरम गयी। नदियों का प्रवाह थम गया। तारे मूर्छित हो गये। पूनम के चाँद से अमृत चूने लगा। इस प्रकार, रात बीतती रही, और छः मास व्यतीत होने पर रास नृत्य के आनन्द का समापन हुआ।'

यह पुराण की चरम काव्योपयुक्त कल्पना है। हिन्दी काव्य में इस रस कल्पना का सर्वाधिक पल्लवन हुआ। इस समागम के अनन्तर कृष्ण गोपियों के साथ यमुना में पठकर श्रान्ति का परिहार करते हैं। और, अन्त में, एक बार फिर उनके काम को प्रशमित कर कृष्ण उन्हें अपने अपने घर विदा कर देते हैं। रास लीला के अन्त में (अध्याय ३३) राजा परीक्षित शुकदेव मुनि से इस अतिशय शृङ्गार लीला के औचित्य पर शंका करते हैं। शंका समाधान करते हुए शुकदेव इस प्रेम की लोकोत्तरता का बखान करते हुए इसे काम कारण के प्रतिबन्धों से पूर्णतः मुक्त बतलाते हैं। उनके अनुसार भगवान् की लीलाओं में उचित अनुचित का विचार मिथ्या है। इसलिए जो लोक में गर्हित है वह ईश्वर के संश्लेष में माधुर्य भक्ति का परमोच्च पद प्राप्त करता है।

यही माधुर्य भागवत रस का सार है। 'कामासक्त गोपियों के भाव का अनादर तो दूर, उसे दिव्य प्रेम में परिणत करके भगवान् कृष्ण ने विशुद्ध आनन्द का दान दिया।'[१]

१ डॉ० एस० के० डे०—'अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णविज्म' पृ० ५

इसी रस की प्राप्ति के लिए आदिकाल से ऋषि महर्षि, दार्शनिक, कर्मकाण्डी, ज्ञानी आदि विभिन्न मार्गों की खोज करते आ रहे थे। वही रस श्री मद्भागवत में आकर रास लीला मे प्रकट हुआ।

इसके अनन्तर अध्याय ३७ तक अरिष्ट, केशि, व्योम आदि असुरो का वध वर्णित है।

३८ वें अध्याय मे अक्रूर का आगमन होता है। ३९ वें अध्याय में बलराम-कृष्ण के मथुरा प्रवास तथा गोपियो के करुण वियोग का हृदय द्रावक चित्रण हुआ है। विशेषत गोपियाँ इस बात से क्षुब्ध हैं कि जिस कृष्ण के लिए उन्होने अपने सग सम्बन्धियो को भी छोड दिया था, आज वे ही उनसे विमुख होकर चल देते हैं। उन्हे भय है कि मथुरा की चतुर नागरियाँ उन्हें अपने प्रेम फास मे पूर्णत आबद्ध कर लेंगी। वह उनके सौभाग्य पर ईर्ष्या भी प्रकट करती हैं।

४२ वें अध्याय मे कुब्जा प्रसग है। ४६ वें अध्याय मे कृष्ण सखा उद्धव का व्रजागमन वर्णित है। ४६ से ४७ अध्याय तक सुप्रसिद्ध भ्रमरगीत का प्रसग है। हिन्दी काव्य मे इसका अति विस्तृत चित्रण हुआ है। ४८ वें अध्याय में कृष्ण कुब्जा को दिये गये वचन पूर्ण करते हैं।

कृष्ण द्वारिका चले जाते हैं। किन्तु कृष्ण के रस स्निग्ध हृदय में व्रज प्रेम की सुधि तब भी ताजी है। अध्याय-८२ मे वह इसी उद्देश्य से सूर्य ग्रहण के उपलक्ष मे कुरुक्षेत्र आते हैं। यहा गोपियों से उनका पुनर्मिलन होता है। किन्तु वह प्रेम वार्ता न कर एक शुष्क प्रवचन दे जाते हैं। इस प्रकार, सम्पूर्ण भागवत की कृष्ण लीला के तनिक विस्तृत सर्वेक्षण से उसकी प्रेम धर्मिता प्रकट होती है। इसमे भगवान् कृष्ण को विभिन्न भाव भूमि म रखकर उनके साथ सुमधुर मानवीय सम्बन्धों की स्थापना की गयी है। इन सम्बन्धो मे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर-ये पाँचो भाव मूर्त हो गये हैं। भगवान् कृष्ण इन सभी भावों के लजित आलम्बन हैं। किन्तु, माधुर्य मे वह सर्वाधिक रमे हैं। इसीलिए मधुर भावा की आश्रयभूता गोपियो का उन्होंने अपनी आत्मा माना है। वस्तुत यही माधुर्य भक्ति-लोक का सर्वस्व तथा समस्त चराचर मे सर्वव्यापक भाव है। यही भागवत का प्राण है। भागवत ने श्रीकृष्ण चरित्र के माधुर्य का लोगो का रसास्वादन कराकर कृष्णोपासना के वैष्णव पथ द्राविड, महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, उत्तर हिन्दुस्तान और बगाल में स्थापित किये।"[1] इसका यह सार्वदेशिक प्रचार भगवान् कृष्ण के काव्यमय भावपूर्ण यश गायन के कारण ही हुआ।[2] कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा-गमन तक की विविध लीलाओं म सख्य, वात्सल्य और मधुर भावो का ही व्यापक प्रतिफलन हुआ है।[3] इनमे उत्तरोत्तर आनन्द की श्री वृद्धि होती गई है। यह आनन्द ही

१ ला० रा० पागारकर ('मराठी वाङ्मय चा इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० ११०)

२ डॉ० एस० के० डे०-'अर्ली हिस्ट्री आफ द वैष्णव फेथ ऐण्ड मूवमेण्ट इन बगाल', (पृ० ५)

३ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी-'महाकवि सूरदास' (पृ० ३१)

इसका प्रयोजन है। माखन लीला, चीर हरण, रास इसी रस रूपी आनन्द के ऊर्ध्व सोपान हैं। रास लीला इसकी मणि है। यही प्रेमासक्ति का पर्याय भी है। प्रेमासक्ति के इस अनीन्द्रिय महत्त्व को अस्वीकार करते हुए कुछ लोग इसे अमर्यादित, अनैतिक तथा अनुचित तक कह गये हैं।[1] किन्तु, विद्वान् इसके समर्थन में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक और काव्यात्मक–तीनों प्रकार की व्याख्याएँ देते हैं। ये व्याख्याएँ निम्न प्रकार हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्, अर्थात्, श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। उनके द्वारा आयोजित रासलीला योग माया के आश्रय से रची गयी थी। और, यह योग माया उनकी अन्त प्रेरणा से परिचालित थी, जैसा कि रासपंचाध्यायी (२९ वाँ अध्याय) के प्रथम श्लोक में ही स्पष्ट घोषित है।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १०/९/१

अत रास भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य अन्तरंग लीला हुई। इसमें भाग लेने वाली गोपियाँ उनकी निज स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति की कायव्यूह रूपा तथा नितान्त कृष्ण प्रेम प्रतिरूपा थीं। इसके श्रोता वैराग्य-सम्पन्न ज्ञानी और मोक्ष प्रतीक्षित परीक्षित थे और वक्ता परमयोगी जीवन्मुक्त शुकदेव मुनि थे। लीला भगवान् कृष्ण की आदर्श अनादश-शून्य विशुद्ध आनन्दमयी 'लीलेच्छा' थी। 'रास' का आविर्भाव ही एकमात्र रसाभिव्यक्ति के लिये हुआ था। अत यह (रासलीला) लौकिक शृङ्गार के अमर्यादित प्रसंग रूप में कदापि मान्य नहीं है।[2]

इसी प्रसंग में एक मत यह भी है कि रास मदनमोहन की कामविजयलीला थी। भागवत में रास विहारी कृष्ण को 'योगेश्वरेश्वर' कहा गया है। उधर गोपियों के प्रसंग में अनेक बार 'काम', 'कन्दर्प' या 'अनंग' की चर्चा हुई है। एक प्रकार से गोपियों का कृष्ण प्रेम ही काममाव से जाग्रत हुआ था। वल्लभाचार्यों ने उनके कृष्णप्रेम सम्बन्ध को इसी कारण काम रूप कहा है। इस मत के अनुसार वंशी सम्मोहन से लेकर महारास तक की सभी शृङ्गार लीलाओं (वंशी सम्मोहन, चीर हरण, रास आदि) में मदनमोहन कृष्ण ने शृङ्गार देवता मदन का मनुहार नहीं किया है प्रत्युत उस पर आक्रमण कर विजय पायी है। योगिराज शिव ने भी मदन दहन किया था। किन्तु, तब मदन पूर्ण सन्नद्ध नहीं था। कृष्ण ने अपनी लीलाओं में उसे पूर्णत कुण्ठित कर दिया। रास पूर्व की सारी लीलाएँ इस काम द्वन्द्व की तैयारी हैं। और जो कमी रह जाती है उसे नटवर कृष्ण अपनी अधर सुधा मिश्रित वंशी ध्वनि से पूरी कर देते हैं। इस राज धज के साथ जब कामदेव १६ हजार से भी अधिक गोपरमणियों की रति सेना लेकर द्वन्द्व में प्रस्तुत हुआ तो रासेश्वर ने आदि रास में उसे अपमानित किया। मध्य रास में गर्व हरण किया। और, अन्त में जब उनकी

---

१ डा० मिथिलेश कान्ति–'हिन्दी भक्ति–शृङ्गार का स्वरूप पृ० ४७)

२ श्री हनुमान प्र० पोद्दार–'श्री राधा माधव चिन्तन' (पृ० ४८४–'रास-लीला रहस्य' शीर्षक निबन्ध द्रष्टव्य)

नोवोत्तर नृत्य, गान, वाद्यादि कलाओं के ममग्र आनन्दोन्मत्त गोपियाँ विख्यात होकर अपने वस्त्राभूषण उतार कृष्णार्पित करने लगीं तो जसे कामदेव ने ही भगवान् के समक्ष अस्त्र डाल दिया। इस तरह देखने पर यह रास लीला काम लीला नहीं, अपितु काम-विजय लीला प्रतीत होती है।[1] इस तथ्य की सिद्धि स्वय कृष्ण के वचनों से ही जानी है जब वह गोपियों को सम्बोधित करते हुए काम बीज के सम्बन्ध म कहते हैं—'न मय्या-वेशितधियां काम कामाय कल्पते। भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते।' अर्थात्, मेरे निकट साहचर्य म आते ही वह काम सर्वथा निष्काम बन गया। वह जले हुए धान्य बीज की भाँति शक्तिहीन हो गया।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर कृष्ण–'धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि'[2] अर्थात् धर्मसम्मत काम हैं। राम-लीला काम शक्ति का ही ऊर्ध्वमुखी प्रदर्शन है। यह आनन्द-विधायिनी कलाओं के सन्निवेश से भाव-परिवर्तन (ट्रान्सफॉर्मेशन) द्वारा प्रकट हुई है। रास लीला में सभी ललित कलाओं का सहयोग और समूह-नृत्य इस बात के साक्षी हैं कि ललितेश्वर कृष्ण ने इसकी मधुर आयोजना ऐन्द्रिक लालसा से कभी नहीं की होगी। उन्होंने प्रेम और आनन्द के इस विराट पर्व द्वारा काम का गुप्त रूपेण पोषण नहीं, गुप्त काम का समूह मध्य शोधन किया था। काम की स्थूल वृत्तियाँ कलाओं के सौन्दर्य-लोक म आकर लयमान हो गयीं। इसी कारण रास मे जिस उज्ज्वल आनन्द की अनुभूति हुई वह जड़ो मुख कामोत्पन्न नहीं, चिदोन्मुख विकासशील प्रणय-जन्य सौख्य था, अतीन्द्रिय आनन्द था।[3]

काव्यात्मक दृष्टि से अनेकानेक भावों के आलम्बन कृष्ण रसेश्वर हैं–'रसो वै स'[4] उनके द्वारा आयोजित यह रास विविध भावों की रसरूपता ही है। 'रास' शब्द का मूल भी 'रस' ही है।[5] जिस दिव्य क्रीड़ा मे एक ही रस अनेक रसों के रूप मे होकर अनन्त रस का आस्वादन करे, एक ही रस रस-समूह रूप म प्रकट होकर स्वय आश्रय आलम्बन, नायक नायिका आदि रूपों में क्रीड़ा करे–उसी का नाम रास है। अत यह गोपी भावों का साधारणीकृत रूप है। इसलिये इस कृष्ण का लीलामय स्वरूप भी कहा गया है। यहां आश्रय आलम्बन के बीच पूर्ण ऐक्य विधान है। अत रामानन्द रसानन्द के स्वरूप से

---

१ श्री किशोरीशरण अलि'—'श्री कृष्ण लीला विशेषांक, भारती–१९६२ ('रसेश्वर की रास लीला' शीर्षक निबन्ध, पृ० ८३)

२ गीता ७/११

३ डॉ० शिव प्र० सि०–'श्री कृष्ण लीला विशेषांक, भारती–१९६२ 'श्री कृष्णचेतना कामाशक्ति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा' शीर्षक निबन्ध, (पृ० ४०)

४ तैत्तिरीय आरण्यक २/७

५ रास और रासान्वयी काव्य (परिचय, पृ० १ श्री रुद्र काशिकेय) तथा श्री रा० मा० चि०– रासलीला रहस्य शीर्षक निबन्ध, पृ० ४८१ (लेखक-श्री ह० प्र० पाण्डार)

नितान्त भिन्न नही है। इस व्याख्या को स्वीकार कर लेने पर रास लीला की औचित्य विषयक शकाएँ भी काव्यानन्द के ही स्तर पर समाधित हो सकती हैं।[१]

कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप सस्थापन मे इन विविध व्याख्याओं का न्यूनाधिक महत्व है। हिन्दी काव्य म इन तीनो की यत्किंचित् झाँकी मिलती है।

(४) पद्म पुराण—यह एक प्रमुख वैष्णव पुराण है तथा इसकी विशेषता राधा भाव के प्रथम व्यवस्थित उन्मीलन म है। गौडीय वैष्णवो ने अन्य पुराणों की अपेक्षा राधा तत्वालोक के लिए इसे ही प्रामाणिक माना है। रूप गोस्वामी के 'भक्तिरसामृत सिंधु में श्रीमद्भागवत (१७८ श्लोक उद्धृत) के बाद इसी के उद्धरण की सख्या (कुल ५३ श्लोक) है। इससे इसकी प्रसिद्धि का आभास मिलता है। किन्तु यही प्रसिद्धि इसकी प्राचीनता मे सन्देह का कारण भी है।

पद्मपुराण के अन्तगत ५ खण्ड हैं–इनम से अन्तिम दो–(१) पाताल खण्ड तथा (२ उत्तर खण्ड कृष्ण लीला से सम्बद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इसके 'पद्मखण्ड' के सप्तम अध्याय म राधा जन्म तथा राधाष्टमी' व्रत का पूरा विधान दिया गया है।[२]

इसके पाताल खण्ड म वृन्दावन, कृष्ण तथा राधा की महिमा का समारोहपूर्ण विवरण मिलता है। प्रो० विन्टरनित्स के मतानुसार ये अश बाद म जोडे गए हैं। आचाय ह० प्र० द्विवेदी तथा डॉ० शशिभूषण दास गुप्त भी इसे पश्चाद्वर्ती मानते हैं।

इसके उत्तरखण्ड मे भी कृष्ण लीला का सक्षिप्त उल्लेख हुआ है। किन्तु यहाँ शृङ्गारिक लीलाओ का विशेष प्रसार नही है।

पातालखण्ड के ५९ वें अध्याय के अनुसार नित्य वृन्दावन निखिल ब्रह्माण्ड के ऊपर विराजमान है। यह अव्यय आनद लोक है। गोलोक ही गोकुल है, वैकुण्ठ ही 'द्वारिका है और नित्य वृन्दावन ही प्राकृत वृन्दावन के रूप म सुशोभित है। इसमे सहस्रपत्रकमल रूपी लीलाभूमि है। यह गुह्य लोक कृष्ण का प्रियतम धाम है। यह गोविन्द की देह से अभिन्न है। यही स्वर्ण के सिंहासन पर श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उनकी प्रिया राधा आद्या प्रकृति हैं। यही कृष्ण वल्लभा हैं। ललिता आदि सखियाँ उन्ही की अशभूता हैं। राधा कृष्ण प्रकृति की अशभूता अष्टसखियो से सेवित हैं। वृन्दावन अधीश्वरी चन्द्रावली भी उन्हे अत्यन्त प्रिय हैं। इनके वाम भाग म देवकन्याएँ तथा दक्षिण भाग म श्रुति-कन्याएँ सहस्रो की सख्या मे विलासोत्सुक हैं।

---

१ R G K (The Illustrated Weekly of India, Aug 30, 1964) 'Moral Aspects of Rasa Krira'–'A more sensible thing to do, surely, is to explain the Rasa Krira in terms of poetic symbolism

२ प० ब० उपाध्याय 'भा० वा० श्री रा० ' पृ० १६) डा० श० अग्रवाल ने पद्मपुराण, के ५ खण्डो म उक्त ब्रह्मखण्ड का उल्लेख नही किया है। उनके अनुसार 'पद्मपुराण का एक सस्करण आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली से ४ भागो मे प्रकाशित हुआ है।' हि० कृ० भ० का० पृ० प्र० (पृ० २३)–उक्त विवरण सदिग्ध है।

अगले अध्याय में यह वर्णन मिलता है कि एक दिन वृन्दावन में बाल कृष्ण को देखकर नारद ने उन्हें साक्षात् भगवान् का अवतार समझ लिया। इसके साथ ही उन्हें गोपियों में लक्ष्मी के अवतार का भी अनुमान हुआ। ढूँढ़ते ढूढ़ते भानु नामक गोप के घर में उन्होंने सुलक्षणा गौरा कन्या को देखा जिसमें उन्हें कृष्ण-वल्लभा का अनुमान स्थिर हुआ। राधा कृष्ण युगल कल्पना इस पुराण की अन्यतम उपलब्धि हैं।[१]

इस पुराण में कृष्ण का द्वारका से वृन्दावन प्रत्यागमन भी वर्णित है। कृष्ण इस बार गोपांगनाओं के साथ ३ रात्रि तक विहार करते हैं। कुछ-कुछ इसी प्रकार का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी हुआ है। ये दोनों पुराण युगल स्वरूप प्रधान हैं। इस राधा कृष्ण युगलवाद के आश्रय में बाल कृष्ण और गोपी कृष्ण की लीला-केलि अत्यन्त गौण रूप में चित्रित हुई है। इन पर तन्त्रों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। राधावाद शक्तिवाद से अनुप्राणित है। राधावाद के शोधकर्त्ता विद्वान् इसके राधा सम्बन्धी अतिरंजनात्मक वर्णनों को परवर्ती कल्पना मानते हैं।[२]

(५) ब्रह्मवैवर्तपुराण–आधुनिक वैष्णव पुराणों में भागवत के बाद सबसे महत्वपूर्ण पुराण ब्रह्मवैवर्त है। राधावाद का यहां चरम प्राधान्य है। इस राधा के आश्रय से शृङ्गारी वैष्णवता अपने पूर्ण अनावृत स्वरूप में यहीं प्रकट हुई है। यह अपने प्राप्त रूप में आधुनिक कृति है। फिर भी कुछ विद्वान् इसे १२ वीं शतीय जयदेव के गीतगोविंद काव्य का प्रेरक पुराण मानते हैं। उनके अनुसार–'यह ब्रह्मवैवर्त पुराण उस समय (जयदेव काल १२ वीं शती) प्रचलित और अत्यन्त सम्मानित न होता तो गीतगोविन्द कभी न लिखा जाता और इस ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्री कृष्ण जन्म खण्ड का १५ वाँ अध्याय उस समय प्रचलित न होता तो गीतगोविन्द का पहला श्लोक 'मेघैर्मेदुरमम्बरम्' इत्यादि कभी नहीं बनता। इसलिए यह भ्रष्ट ब्रह्मवैवर्त भी ११ वीं शताब्दी के पहले का है।'[३] इस स्थापना के पक्ष में ब्रह्मवैवर्त और गीतगोविन्द में वसन्त रास, परकीया प्रेम, राधा कृष्ण शृङ्गार लीला आदि कई समान प्रसंग आ सकते हैं। फिर भी यह विस्मय की बात है कि १६ वीं शती के राधा प्रेमी गौडीय गोस्वामियों ने इस पुराण को विशेष उद्धृत नहीं किया है। डॉ० शशिभूषण दास गुप्त ने भी इसी सन्देह से अपने राधा तत्त्वानुसन्धान में इस पुराण की उपेक्षा की है।[४] किन्तु पं० बलदेव उपाध्याय ने गौडीय गोस्वामी विषयक उक्त

---

१ पातालखण्ड, अध्याय–७७, श्लोक–१७ में शक्ति स्वरूपा राधा की वृन्दावनेश्वरी रूप में कल्पना है जिसका आलिंगन कर वृन्दावनेश्वर कृष्ण सदा प्रसन्न रहते हैं—

'वृन्दावनेश्वरी नाम्ना राधा धात्र्यानुकारणात्। तामालिंग्य वसन्तं तं मुदा वृन्दावनेश्वरम्।'

२ डॉ० श० भू० दा० गुप्त–श्री रा० क्र० वि० (पृ० १०८) तथा पं० ब० उपाध्याय–भा० वा० श्री रा० (पृ० १६)।

३ बंकिमचन्द्र–'कृष्ण चरित्र' (पृ० ६४)

४ इसके अतिरिक्त वह जयदेवकृत गीतगोविन्द के प्रथम श्लोक से मिलते जुलते ब्रह्मवैवर्त, श्री कृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय–१५, श्लोक ३–५ का परवर्ती गृहण मानते हैं।

सन्देह का उल्लेख कर भी इस पुराण की महत्ता को कम नहीं करते हैं। उनके मत में 'ब्रह्मवैवर्त पुराण राधा माधव की लीला का भाण्डार है।'[1]

इन सारी बातों के बावजूद ब्रह्मवैवर्त पुराण राधा कृष्ण के युगल चरित का प्रतिपादक अत्यन्त प्रभावशाली पुराण है। कृष्ण लीला और कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप का जितना सांगोपांग विकास इसमें हुआ है उतना श्रीमद्भागवत को छोड़ अन्य किसी पुराण में नहीं हुआ। यह बात सत्य है कि गौड़ीय गोस्वामियों ने इसका उल्लेख नहीं किया। रूपगोस्वामी के 'भक्ति रसामृत सिंधु' में द्वितीया साधन भक्ति-लहरी प्रकरण के अन्तर्गत एकादशी माहात्म्य के प्रसंग में जो ८० संख्यक श्लोक उद्धृत है वह ब्रह्मवैवर्त का है। गीता और 'ब्रह्मपुराण' जैसे प्राचीन ग्रन्थों का भी वहाँ एक ही बार उल्लेख हुआ है। अतः यह १६ वीं शताब्दी में अधिक प्रसिद्ध था यह निर्विवाद है। हाँ राधा विषयक अतिरंजित प्रसंग परवर्ती प्रक्षेप हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु कुछ प्रक्षेपों से ही उसका सम्पूर्ण अस्तित्व खंडित नहीं हो जाता। बल्कि यदि श्रीकृष्णजन्म खंड के १५ वें अध्याय के २२–३२ श्लोकों को गीतगोविन्द के प्रथम श्लोक का आधार मान लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मवैवर्त की राधा कृष्ण लीला ग्यारहवीं शती तक लोकाख्यानों से उठकर पुराण पृष्ठों में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुकी थी। यह कोई विस्मय की बात नहीं है क्योंकि इसी समय के लगभग निम्बार्काचार्य कृत 'दश श्लोकी' में हम राधा कृष्ण लीला का स्पष्ट उल्लेख पाते हैं।

ब्रह्मवैवर्त में कृष्ण—ब्रह्मवैवर्त में राधा भाव की चरम परिणति का प्रभाव स्वभावतः कृष्ण पर भी पड़ा है।

कृष्ण यहाँ चिर किशोर नित्य विलासी कामकलाविशारद तथा रासेश्वर हैं। ये विशेषताएँ उनकी लीला सहचरी राधा के सौन्दर्य माधुर्य साज शृङ्गार, रति चेष्टा तथा उद्दामकेलि की अतृप्त उत्कंठा से ही परिलक्षित होती हैं।[2] अतः ब्रह्मवैवर्त के नायक कृष्ण की केलि क्रीड़ाओं का अध्ययन सौंदर्यशास्त्र तथा कामशास्त्र की दृष्टि से भी रोचक तथा महत्त्वपूर्ण होगा।[3]

---

१ प० ब० उपाध्याय– भा० वा० श्री रा०' (पृ० १६)

२ यहाँ प्राणशक्ति राधा और प्राणेश्वर कृष्ण दोनों परस्पर (मे) अनुस्यूत हैं। प्राण शक्ति की इस प्रक्रिया का वर्णन ग्रन्थकर्त्ता ने दार्शनिक परिभाषाओं में न करके काम शास्त्र में परिभाषित परिभाषाओं (संयोग वियोग, आलिंगनादि) से किया है। प्राणशक्ति के विवर्तों का केवल कामशास्त्र की परिभाषाओं में वर्णन मात्र से इस ग्रन्थ को ग्राम्यग्रन्थ मानकर अवहेलना करना महापाप है—अनन्त श्री स्वामी अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्य ('पुराण तत्त्व' कल्याण, संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणांक, पृ० ४)

३ अध्याय ५३ में रासेश्वर कृष्ण के सम्बन्ध में नारायण कहते हैं—समस्त भावों के जानकारों में श्रेष्ठ, बोधकला के ज्ञाता एवं विलासशास्त्र के मर्मज्ञ श्री हरि ने अपनी प्राणवल्लभा को जगाया और अपने वक्षःस्थल में उनके लिए स्थान दिया' (कल्याण, संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणांक, पृ० ४६२)

कृष्ण चरित्र के उद्दाम प्रवाह की दिशा यहा उनके जन्म वृतान्त से ही नया मोड ले लेती है। यहाँ राधा और कृष्ण के जन्म की कथा एक नवीन और आध्यात्मिक सदर्भ म प्रस्तुत हुई है। नवीनता से तात्पय यह कि यहाँ नित्य गोलोक म निरन्तर विहार करने वाले राधा कृष्ण ही (श्रीदामा और राधा के परस्पर शाप से) प्राकृत वृन्दावन मे प्रकट हुए हैं। अत इस प्राकृत वृन्दावन में राधा और कृष्ण को दो पृथक प्राणियों के रूप मे सोचा भी नही जा सकता। भागवत मे यह स्थिति विकास नही है।

वहाँ कृष्ण गोपी जन वल्लभ हैं वह वल्लभ हैं। यद्यपि अनेकानेक गोपियो मे से एक के चुनाव और अन्य के त्याग की चेष्टा वहाँ अत्यन्त रहस्यपूर्ण ढग से व्यजित हुई है। किन्तु हजारा हजार म से उस एक का चित्र पूर्णत मूर्त नही हो सका। किसी ने अचानक उनके गायब हो जाने से तो किसी ने पद रख से, किसी ने पुष्प शय्या से तो किसी ने दर्पण से रस की पुञ्जीभूत प्रतिमा (राधा) का अनुमान भर किया था। कृष्ण के साथ राधा की दाम्पत्य लीला तो विधिवत् यहीं आकर सम्पन्न हुई। यहा राधा और कृष्ण निखिल सृष्टि मे स्त्री पुरुष के रसमय द्वन्द्व हैं (श्री कृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय ६७)। इन्ही के आश्रय म ये सारी शृङ्गार लीलाएँ, वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य लीलाएँ, जिनम असुर वध विषयक साहसिकतापूर्ण वृत्त भी सम्मिलित हैं, पूववर्ती पुराण श्री मद्भागवत से प्रभावित हैं। हिन्दी काव्य पर इन लीलाओं का पर्याप्त प्रभाव है।

कृष्ण लीला—ब्रह्मवैवर्तपुराण म ४ खण्ड हैं। अन्तिम खण्ड 'श्री कृष्ण जन्म खण्ड है। श्री कृष्ण जन्म खड म राधा कृष्णचरित ही मूल विषय है और इसको जिस विस्तार से चित्रित किया गया है वह सम्पूर्ण पुराण का प्राय अर्द्धांश है। किन्तु इसके प्रथम तथा द्वितीय 'ब्रह्म खण्ड' तथा 'प्रकृति खण्ड' म भी अशत राधा कृष्ण की प्रकृति का समुचित तत्त्वालोचन हुआ है।

'ब्रह्मखड' म परमात्मा के उज्ज्वल तेज पुञ्ज का वर्णन कर उसम सस्थित गोलोक मे श्याम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण के परात्पर स्वरूप का निरूपण है। वह साक्षात् मन्मथ मन्मथ, द्विभुज, मुरली हस्त, किशोरवयस्क, मोरमुकुटधारी और रासेश्वर हैं। श्रीकृष्ण सृष्टि के आरभक हैं। उनका गोलोक मे नारायण आदि के साथ रासमडल म निवास है। परब्रह्म श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से विवत स्वरूप राधा देवी का प्रादुर्भाव होता है। राधा के रोमकूपो से गोपागनाओ का तथा कृष्ण से गोप और गौओं का प्राकट्य होता है।

'प्रकृति खण्ड' म परब्रह्म श्रीकृष्ण और राधा से प्रकट होने वाले चिन्मय देव और देवताओं का चरित्र वर्णन है। श्रीकृष्ण से नारायण, विष्णु आदि देव प्रकट हुए तो राधा से दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री आदि देवियां प्रकट हुईं। इस प्रकार ब्रह्म का वैवत हुआ।

'श्रीकृष्णज मखण्ड' (अध्याय-६) के अन्तगत कृष्णावतार के समय तेज पुञ्ज म सस्थित राधा कृष्ण युगल स्वरूप मे, उक्त सभी देवी देवताओं का युग्म रूप में आगमन और विलय वर्णित हुआ है। अनन्तर १३ वें अध्याय मे 'कृष्ण' शब्द की जो व्युत्पत्ति की गयी है उसके अनुसार भी श्री हरि उक्त सभी देवताओं की तेजोराशि हैं।

इस भूमिका के अनन्तर ७ वें अध्याय में कृष्णावतार होता है। यहीं से कृष्ण की गोकुल लीला का आरम्भ मानना चाहिए। अगले अध्यायों में इस लीला का जो सांगोपांग वर्णन हुआ है, उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

स्थान-क्रम से कृष्ण की गोकुल-लीला के ८ खण्ड हैं।

(क) बाल-लीला—प्रारम्भिक ६ खण्ड बाललीला से सम्बद्ध हैं।

(१) जन्मोत्सव-	अध्याय -९
(२) पूतना वध-	,, -१०
(३) तृणावर्त उद्धार-	,, -११
(४) शकट भंग-	,, -१२
(५) (क) गर्ग द्वारा राधा-कृष्ण-लीला का रहस्यात्मक संकेत- (ख) नामकरण अन्नप्राशन आदि संस्कार	,, -१३
(६) (क) माखन भक्षण, भाण्ड भंजन- (ख) वृक्ष बन्धन, - (ग) नल-कूबर मुक्ति -	,, -१४

(ख) किशोर लीला—वृन्दावन विस्थापना के पूर्व की सारी लीलाएँ इसके अन्तर्गत आती हैं।

(७) (क) नन्द का शिशु कृष्ण को लेकर वन में गोचारण हेतु जाना - (ख) राधा का आगमन तथा शिशु कृष्ण को लेकर राधा का एकान्त वन में जाना- (ग) रत्न मंडप में नवतरुण कृष्ण का प्रादुर्भाव तथा राधा कृष्ण प्रेम वार्त्ता - (घ) ब्रह्मा का आगमन और राधा कृष्ण विवाह- (ङ) राधा कृष्ण प्रथम समागम तथा पुनः शिशु रूप कृष्ण को लेकर राधा का यशोदा गृहागमन	अध्याय -१५

उपर्युक्त प्रसंग इस पुराण की नूतन उद्भावना है।[१]

(८) (क) असुर वध— बकासुर, प्रलम्बासुर और केशी वध (ख) वृन्दावन वास-	,, -१६

(ग) यौवन लीला—१७ वें अध्याय में वृन्दावन के अन्तर्गत रासमण्डल तथा रत्न मण्डप के निर्माण से लेकर अध्याय ५४ तक के सम्पूर्ण पूर्वार्द्ध खण्ड' तथा उत्तरार्द्ध

---

१ 'गीतगोविन्द के प्रथम श्लोक तथा सूरसागर दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) के ६८४ संख्यक पद का ब्रह्मवैवर्त, श्री कृष्णजन्मखण्ड, अध्याय-१५, के श्लोक ३-५ से पूरा साम्य है।

के अध्याय ७१ तक की सम्पूर्ण लीलाएँ इसमे अ तर्भुक्त की जा सकती हैं। अन तर कृष्ण प्रवास वर्णित है। राधा और कृष्ण के आश्रय से होने वाली समस्त लीलाओं मे ब्रह्मवैवर्त की यौवन लीला सर्वाधिक शृङ्गारिक, उद्दाम और विस्तृत है।

लीला	अध्याय
(१) विश्वकर्मा द्वारा वृन्दावन निर्माण–	
(क) वृ दावन पाँच योजन का सु दर नगर (ख) वृषभानु गोप का भवन– (ग) न द भवन (घ) वृ दावन मे शृङ्गार योग्य रासमण्डल तथा मधुवन के पास रत्नमण्डप का निर्माण (ङ) राधा के १६ नामो की व्याख्या	अध्याय –१७
(२) यज्ञ पत्नी उद्धार–	„ –१८
(३) (क) कालिय दमन–	„ –१९
(ख) दावानल का अमृत दृष्टिनिक्षेप मात्र से दूरीकरण–	„ –१९
(४) ब्रह्म मोह भग–	„ –२०
(५) गोवर्धन धारण–	
(क) गिरिराज पूजन– (ख) ब्रजवासियों का गोवधन प्रवेश (ग) दण्ड की भाँति गोवधन धारण	„ –२१
(६) धेनुकासुर-वध–	„ –२२
(७) गोपियो का गौरी व्रत और चीर हरण लीला–	„ –२७
(८) रास-लीला–	„ –२८
(९) राधा कृष्ण वन विहार–	„ –२९
(१०)(क) राधा का गर्व और श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना गोपियो का रुदन– च दन वन मे पुन प्रकटन– गोपी कृष्ण रास–	„ –५२
(११) (क) जल क्रीडा तथा गोपी विदाई– (ख) राधा कृष्ण शृङ्गार तथा विभिन्न कानना मे रमण तथा (ग) ३६ गोपिया का अ या य गोपियों के साथ पुन आगमन तथा रास-नृत्य	„ –५३
(१२) श्रीकृष्ण की मथुरा तथा द्वारिका-लीला से लेकर परम धाम-गमन तक के संक्षिप्त विवरण–	„ –५४

(१३) श्री राधा का दुःस्वप्न–
राधा की आसन्न विरह वेदना
श्रीकृष्ण का सान्त्वना देना तथा
राधा कृष्ण एकत्व महिमा– } अध्याय ६६ तथा ६७

(१४) राग मदन दाह
कृष्ण का नन्द ब्रज की तैयारी–
राधा की प्रगाढ़ वेदना–
अक्रूर आगमन तथा मथुरा गमन की प्रेरणा–
श्रीकृष्ण के जाने से राधा की मूर्च्छा–
कृष्ण का लौटना और पुनः जाना– } , ६८ तथा ६९

(१५) अक्रूर-आगमन–
गोपियों का प्रखर विरोध–
श्रीकृष्ण की मथुरा यात्रा } , ७० तथा ७१

मथुरा लीला के अन्तर्गत आगामी अध्याय ७२ में सर्वप्रथम कुब्जा प्रसंग है। कुब्जा पर श्रीकृष्ण की लीला दृष्टि पड़ते ही वह यौवन श्री सम्पन्ना रमणी बन जाती है। कृष्ण उस रमणी का रमणेच्छा पूर्ण कर गोलोक भेज देते हैं। फिर, मनोहर माली पर कृपा कर तथा उद्दण्ड धोबी का उद्धार कर वह कंस की जीवन लीला समाप्त करते हैं।

इस पुराण में उद्धव प्रसंग अत्यन्त सरम्भ से चित्रित हुआ है। अध्याय–९१ में कृष्ण उद्धव को गोकुल भेजते हैं। अगले अध्याय में उद्धव वृन्दावनेश्वरी राधा के ऐश्वर्य की संस्तुति करते हुए उन्हें बारम्बार कृष्ण मिलन का आश्वासन देते हैं। अध्याय ९ में राधा उद्धव के समक्ष जो अपनी करुण व्यथा खोलती है वह अपने आप में ही एक मर्मस्पर्शी विरहकाव्य है। आगे गोपियों का रूढ़ उपालम्भ वर्णित है। विरह शोक से मूर्च्छित राधा चेतना लौटने पर उद्धव को मथुरा लौटने का सन्देश देती और कहती हैं—'कृष्ण के बिना आज मेरा जीवन बेकार है। मेरे समान दुखिया संसार में कोई नहीं। कल्पवृक्ष पाकर भी मैं दरिद्र रह गयी। मैं उन्हें कैसे भूलूँ।'

ब्रह्मवैवर्त की राधा के ऐसे कितने ही हृदयद्रावक वक्तव्य हैं। यह उस विरहिणी नारी के निविड मन की घोरतम व्यथा है। काव्यत्व की दृष्टि से इसे यदि ब्रह्मवैवर्त का मर्मस्थल कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। इस दारुण उक्ति से ज्ञानी उद्धव भी विगलित होकर कहते हैं— इस गोकुल में आकर मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। इन गोपियों को मैं गुरुस्थानीया मानता हूँ जिनसे आज मुझे भगवान् हरि की अचलभक्ति प्राप्त हुई। अब मैं मथुरा नहीं जाऊँगा और जन्म जन्मान्तर तक यहाँ गोपियों का किंकर बनकर तीर्थश्रवा श्रीकृष्ण का

कीतन सुनता रहूँगा।'[१] राधा उद्धव सवा" मे राधा से मातृशक्ति आभासित होती है। वह उद्धव को 'बटा' कहती है।

अध्याय–९७ मे कृष्ण-सखा उद्धव मथुरा लौट जाते है। अध्याय–९८ मे वह कृष्ण के समक्ष उनकी विरहिणी प्रेयसी की विरह दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते है। साथ ही, वह अपने द्वारा गोपियो का दिये गये कृष्ण मिलन के वचन की याद दिलाते हैं। कृष्ण स्वप्न मे ही विरहाकुल गोकुल जाकर व्रजवासियो का परितृप्त कर आते हैं। कृष्ण जीवन के आगामी वृत्तान्त भागवत के ढग पर ही हैं। ११३ वें–११४ वें अध्याय म, अति सक्षेप से, कृष्ण की महाभारत वर्णित कथा का सकलन कर दिया गया है। यह सभवत प्रक्षिप्त है। प्रक्षेपकार ने कृष्ण के व्रज, मथुरा और द्वारिका के विकीर्ण जीवन वृत्तान्तो का एक शृङ्खलाबद्ध चित्र उभाडने के उद्देश्य से ही कदाचित् ऐसा किया है। इनकी चर्चा यहाँ अप्रासगिक है। वह न तो कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का विधायक है और न तो उस ऐतिहासिक पहलू के उद्घाटन के लिए ब्रह्मवेवर्त कोई प्रामाणिक स्रोत ही है।

१२५ वें अध्याय मे कृष्ण लीला मे पुन प्रत्यावर्त्तन होता है। यह सभवत हरिवंश पुराण का प्रभाव है।[२]

श्रीदामा शाप के सौ वर्षों की अवधि पूरी होने पर गणेश पूजा के अनन्तर सिद्धाश्रम मे राधा कृष्ण पुर्नमिलन होता है। शक्ति स्वरूपा होने क कारण अयोनिजा राधा अक्षय यौवना है। प्रिय विश्लेष की इस लम्बी अवधि स उसकी मिलनेच्छा और भी उत्कट हो गयी है। परब्रह्म कृष्ण भी लीलामय अत चिरकिशोर है। इधर मुरलीधर श्यामसु दर, उधर सुवर्णकान्तिमती राधिका। राधा माधव के पुन प्रेम मिलन से सिद्धाश्रम गोरोचन की तरह दीप्तिमन्त हो उठता है। प्रकृति और पुरुष, प्राण और रयि के इस महामिलन को ब्रह्मवैवर्त ने भाग की भाषा मे उद्भासित किया है। राधा कृष्ण स कहती है—"तुमसे सयुक्त मैं" शिव "हूँ, तुमसे वियुक्त मैं शव हूँ।"[३] यही आत्मोपलब्धि है। कृष्ण कहत हैं–"गोलोक म मैं परिपूर्णतम कृष्ण हूँ, गोकुल म राधापति हूँ, वेकुण्ठ म चतुर्भुज विष्णु हूँ। श्वेत द्वीप और क्षीर सिन्धु मे भी मैं ही हूँ। नारायण भी मैं ही हूँ और अर्जुन का सारथी भी मैं ही हूँ।[४] यह आत्म साक्षात्कार की वाणी है।

---

१ ब्रह्मवैवर्त—श्री कृष्ण जन्म खण्ड—अध्याय–९४/८०–८१ तुलनीय श्रीमद्भागवत १०/४७–म यह उद्धववचन–'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्या वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवी श्रुतिभि निमृग्याम्॥ ६१

२ द्रष्टव्य–प्रस्तुत प्रबन्ध का 'हरिवंश-पुराण' शीर्षक खण्ड (पृ० १२१)

३ श्री कृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय–१०६, श्लोक—१८।

४ वही वही ,, ,, —८६–९५

निष्कर्षत ब्रह्मवैवर्त के कृष्ण निखिल देवत्व के सर्वीभूत स्वरूप हैं। १२८ वें अध्याय में श्रीकृष्ण लीला का विसर्जन होता है। इस विसर्जन काल में भी इस स्वरूप की सघ भावना चरितार्थ हुई है।

श्री कृष्णजन्मखण्ड के ६ ठे अध्याय में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार गोकुल लीला आरम्भ होने के पूर्व सरस्वती लक्ष्मी सहित वैकुण्ठवासी नारायण का, क्षीरशायी विष्णु का तथा धर्मपुत्रस्वरूप नर नारायण ऋषि का श्रीकृष्ण विग्रह में समावेश हुआ है।[1] 'रसिकेश्वर' कृष्ण विश्वप्रिया राधा के साथ जब अपनी लीलाओं का सम्प्रसार और समापन करते हैं तो (१२८ वें अध्याय में) श्रीकृष्ण विग्रह में से उपर्युक्त देवगण विष्णु, नारायण, बाल गोपाल आदि पृथक पृथक प्रकट होकर पार्षदों सहित दिव्य विमान पर चढ़कर अपने अपने धाम को चले जाते हैं।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ब्रह्मवैवर्त की कृष्ण लीला में श्रीमद्भागवत से भिन्न, अनेकवाद के स्थान पर युगलवाद अथवा अद्वय युग्मवाद की प्रतिष्ठा हुई है। कृष्ण यहाँ बहुवल्लभ न होकर राधा वल्लभ या राधा कृष्ण हैं। यह प्रतिपत्ति निश्चय ही, तन्त्रवाद से प्रभावित है। जयदेव और विद्यापति की राधा कृष्ण शृङ्गार लीला इससे अनुप्राणित जान पड़ती है। हिन्दी के चैतन्य, राधा वल्लभ आदि वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में इसका प्रत्यक्ष प्रभाव है। चैतन्य महाप्रभु तो इस अद्वय युग्मवाद के साक्षात प्रतीक ही थे। सूर-साहित्य के विशेषज्ञ विद्वान् सूर पर भागवत के बाद इसी का ऋण स्वीकार करते हैं। विशेषत राधा विषयक प्रसंग तो इसी से आप्लुत हैं।[3]

ब्रह्मवैवर्त अपने वर्तमान स्वरूप में विवादास्पद होने के बावजूद, मध्ययुग में राधा कृष्ण के प्रचलित प्रेमाख्यानों का वह वर्द्धमान रस कोश है जिसके परिणामस्वरूप कृष्ण लीला राधा कृष्ण लीला, कृष्ण भक्ति राधा कृष्ण भक्ति तथा कृष्ण काव्य राधा कृष्ण काव्य बन गया।[4]

---

१ (क) 'गत्वा नारायणो देवो विलीन कृष्ण विग्रहे' —६/८६
(ख) 'स चापि (विष्णु) लीनस्तत्र राधिकेश्वर विग्रहे' —६/९३

२ (क) 'एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गत चतुर्भुजश्च पुरुष' —१ ९/६३
(ख) '(नारायणश्च) यानेन वैकुण्ठ स्वपद ययौ।' —१२९/८७

३ 'डॉ० हरवंश लाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य' —(पृ० १७९)

४ डॉ० ब्र० वर्मा—हिन्दी अनुशीलन—धी० वर्मा विशेषांक—१ ६० ।

द्वितीय अनुच्छेद

भागवत और तमिल-प्रबन्धम् की कृष्ण-लीला

भारतीय भक्ति भावना वदिक और अवदिक दो सास्कृतिक सरणियो के सगम का प्रतिफल है। ये दो सरणियाँ उत्तर मे वदिक संस्कृति और दक्षिण मे तमिल या द्राविड सस्कृति के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये दो धार्मिक परम्पराएँ अत्यन्त प्राचीन और महान् हैं। साथ ही, इन दोनो की कुछ उल्लेखनीय विलक्षणताएँ भी हैं। और वे यह हैं कि वदिक पथ मूलत कम काण्ड प्रधान है तो द्राविड पथ भक्ति या प्रपत्ति प्रधान। इन धर्मों के विधायक देवता भी भिन्न भिन्न हैं। विष्णु आर्यों के प्रतिनिधि देवता हैं तो शिव द्रविडो के। वेद, उपनिषद्, गीता और महाभारत वदिक धम के आधार ग्रन्थ हैं तो 'तोलकाप्पियम्' ('सघपूव काल' अर्थात् ई० पू० ५०० वर्ष से भी पूर्व का एकमात्र उपलब्ध ग्रथ, 'परिपाडल' ('सघकाल अर्थात् ई० पू० ५०० वष से लेकर ईसा की दूसरी शती के मध्य की रचना), 'शिलप्पधिकारम' ('सघोत्तर काल' अर्थात् ईसा की २री शती से ५वो शती के बीच का महाकाव्य) आदि द्राविड पथ की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। कालान्तर म, इन धर्मों और इनके प्रतिनिधि देवताओ म परस्पर ऐक्य भावना का आविर्भाव हुआ। क्षीर सिन्धु शायी विष्णु और कैलाश निवासी शिव में इसी सामरस्य की कल्पना है। साथ ही, विष्णु पत्नी लक्ष्मी का सिन्धु कन्या होना तथा शिव पत्नी उमा का हिमाचल का पुत्री होना उक्त कल्पना के ही पोषक हैं। यह बात वदिक 'पुराणकाल' और तमिल 'भक्तिकाल' की सामञ्जस्य विधायिनी का समाधनाओं के अवलोकन से चरितार्थ होती है। 'पुराण' और 'भक्तिकालीन प्रब ध गीतियां' मे भक्ति भावना का अजस्र स्रोत फूट पडा है। भक्ति के इस सार्वदेशिक प्रवाह म उत्तर से लेकर दक्षिण तक की समस्त जन भावना आलोडित हुई थी। इस तत्कालीन लोक चेतना की सार्वभौम प्रवृत्ति के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। भक्ति के इस लोक प्रवाह मे इतना खरतर वेग था कि वह कूलकिनारो को काटता हुआ प्रवाहित हुआ और एक व्यापक सांस्कृतिक सगम का कारण भी बना। आर्य और तमिल सस्कृतियों मे काफी आदान प्रदान हुआ। फलत दक्षिण को अर्चाविग्रह प्रधान पाचरात्र धम मिला और उत्तर को प्रपत्ति प्रधान माधुर्य भक्ति मिली। वैष्णवधर्म के अतिम विकसित रूप पाचरात्र धम का लोकधम बनाने का श्रेय तामिलनाडु के श्री वैष्णवो को ही है[1] श्रीमद्भागवत और दिव्यप्रबन्धम् इसी सामञ्जस्य मूलक मधुर भक्ति के दो उच्छल स्रोत हैं। इन दोनो म ही विष्णु के अवतार (राम और) कृष्ण की लीलाओ के सुमधुर चित्र अकित हुए हैं। कृष्ण लीलाओ का तुलनात्मक अध्ययन आगे इसी अनुच्छेद म किया जायगा।

भक्ति का यह रूप तत्कालीन जीवन की पर्याप्त विकसित और व्यवस्थित मनोदशा का मधुर परिचायक है। अत इसे भक्ति भावना का आविर्भाव काल नहीं समझना

1 डा० हिरण्मय—'हिन्दी और कन्नड म भक्ति आन्दोलन' (पृ० १९)

चाहिए ।[1] इससे सैकडा वर्ष पूर्व भक्ति भावना का स्फुटन वैदिक अवैदिक दोनों सांस्कृतिक परम्पराओ म हो चुका था । अत सक्षेप म, सम्प्रति, इन दोनो का द्रुत सर्वेक्षण कर इनम वर्णित कृष्णचरित का स्वरूपाकन प्रस्तुत किया जाता है ।

वैदिक भक्ति परम्परा — वैदिक भक्ति का आदि स्रोत वेद है । किन्तु वेदो म 'भक्ति' शब्द का प्रयोग नही है अनुरागमूलक भक्ति का कदाचित् प्रथम उल्लेख श्वेताश्वतर उपनिषद् मे ही मिलता है ।[2]

सहिताओ म 'वृषाकपि सूक्त' तथा 'अपालासूक्त' की ओर सकेत किया जा चुका है ।[3] इनमे इन्द्र के साथ कुमारियो के प्रेम की मधुर कल्पना की गई है । जब इन्द्र के स्थानापन्न विष्णु हुए तो इन मधुर उपाख्यानो का सम्बन्ध विष्णु के साथ जुड गया । कालान्तर मे य सारी लीलाएँ विष्णु क कृष्णावतार म सम्मिलित हो गयी ।[4]

महाभारत काल मे विष्णु के कृष्णावतार की कल्पना सुदृढ हुई और शनै शनै विष्णु की सारी महिमा और माधुर्य सिमट कर वासुदेव कृष्ण म पुजीभूत हो गये । यहाँ पहुँचकर कृष्ण वासुदेव, विष्णु नारायण आदि के पर्याय से हो रहे थे । यह वैष्णव धर्म का चरमोत्कर्ष काल था । गीता इस काल का प्रतिनिधि ग्रन्थ है । इसम स्थान-स्थान पर माधुर्य भक्ति के सूक्ष्म सकेत मिलते हैं । इसका निर्देश पहले किया जा चुका है । अत इसे कृष्ण भक्ति का प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ माना जा सकता है । अनन्तर महाभारत के नारायणीय पर्वाध्याय' म पाचरात्र मत का उल्लेख मिलता है । इसे वैष्णव, भागवत या सात्वत मत का अन्तिम विकसित रूप समझना चाहिए ।

इसके अनन्तर आगम और तन्त्रो के नेतृत्व का काल आता है । प्रकृति पुरुष के युग्म सिद्धान्त का प्रभाव कृष्णमत पर भी पडता है । और रुक्मिणी कृष्ण की उपासना प्रशस्त होती है ।

किन्तु इसी समय कृष्णचरित मे आभीरो के बाल देवता ललित मधुर गोपाल का भी समावेश होता है । और, इससे सारा चित्र ही बदल जाता है । गोपी कृष्ण तथा राधा-कृष्ण के आश्रय मे पल्लवित होने वाली पुराण लीला इसी की रसमय परिणति है । खिल हरिवश, विष्णु, भागवत आदि पुराणो म मधुर भक्ति के आश्रम म मनमोहन कृष्ण की अनेकानेक बाल और किशोर लीलाएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं । श्रीमद्भागवतपुराण इनका प्रतिनिधि कोश है । इन्हे पूर्व अनुच्छेद मे दिखलाया जा चुका है । इन पुराणो के समानान्तर दक्षिण मे भी कृष्ण के आश्रय म मधुर भक्ति शनै शनै विकसित हो रही थी । ६ ठी शती के आलवार वैष्णव भक्तो के गीतो म हम कृष्ण की पुराण लीला की मधुर झाँकी प्राप्त कर विस्मित होते हैं । कुछ उत्साही विद्वानो ने तो भागवत पर इन गीतो का

---

1 जैसा कि प्राय लोग 'भक्ति द्राविड ऊपजी ' अथवा 'उत्पन्ना द्राविडे ' आदि प्रसिद्धियो क आधार पर समझ लिया करते हैं ।
2 श्वेताश्वतर उपनिषद्–६/२३
3 द्रष्टव्य प्रस्तुत प्रबन्ध का 'गोपी शीर्षक खण्ड (पृ० ७८)
4 प० ब० उपाध्याय–'भा० वा० श्री रा० (पृ० ४१)

परोक्ष प्रभाव भी माना है।[1] इसका सम्यक परीक्षण तो हम भागवत और प्रबन्धम् की कृष्ण लीला के तुलनात्मक प्रसङ्ग मे ही कर सकेंगे। किन्तु प्रबन्धम् की कृष्ण लीला को प्रस्तुत करने के पूर्व द्राविड भक्ति परम्परा की पृष्ठभूमि तथा उसमे कृष्ण के अस्तित्व पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

द्राविड़ भक्ति-परम्परा—आलवार तमिल 'भक्तिकाल' के प्रतिनिधि कवि हैं। इनसे पूर्व तमिल साहित्य का इतिहास ३ खण्डों म विभक्त है—

(१) संघपूर्वकाल (ई० पू० ५०० वर्ष से पूर्व)

(२) संघकाल (ई० पू० ५०० वर्ष से ईसा की २ री शती)

(३) संघोत्तर अथवा जैन बौद्ध काल (३री से ८ वीं शती)

(१) संघपूर्वकाल की प्रतिनिधि रचना 'तोलकाप्पियम्' है। इसम तमिल प्रदेश के ५ भूभागो और उनके देवताओं का विस्तृत वर्णन है। इन पाँचों देवताओं (मायोन, शेयोन, इन्द्र, वरुण और कोटवे) मे 'मायोन' या 'तिरुमाल' का स्थान सबसे ऊँचा है। यही तमिल विष्णु हैं। यह आयरकुल के बाल देवता हैं। इनकी क्रीडा भूमि हरितश्यामल वन भूमि हैं। 'आयर' आभीरो का ही एक कुल है जो वन भूमि म गोचारण व्यवसाय म संलग्न रहा है। 'मायोन' इस जाति के वात्सल्य और माधुर्य भावना से सम्पूज्य देवता हैं।

'मायोन' शब्द का अर्थ है—'नीलमेघद्युतियुक्त भगवान'। कालान्तर में इस देवता का एकीकरण वैदिक विष्णु के साथ हुआ।[2] बाद मे जब विष्णु के कृष्णावतार की कल्पना अग्रसर हुई तो 'मायोन या तिरुमाल' ही आगे चलकर 'कण्णन' कहलाने लगे। आलवारो की भक्ति म तिरुमाल का मुख्य स्थान है।

(२) संघकाल की रचनाओं में विष्णु, नारायण, वासुदेव और कण्णन के एकीकरण का रसमय संकेत मिलता है। संघकाल की प्रतिनिधि रचना 'परिपाडल' है। इसमे अवतारवाद की झाँकी मिलती है। इसके रचयिता 'कीरन्तैयार' ने बलराम के अनुज के रूप म अवतरित विष्णु (कण्णन) का वर्णन किया है। इसमे ४ व्यूहों का भी उल्लेख है। इसम वर्णित शेषशायी विष्णु के वक्ष म लक्ष्मी का निवास विष्णु पुराण की उक्त कल्पना का स्मारक है।

दूसरी रचना कलित्तोकै मे बाल-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है। कंस के द्वारा भेजे गये 'केशी' नामक घोडे को मारने की कथा है।[3] आल्वारो ने कण्णन (कृष्ण) की बाललीलाओं म इसका यथेष्ट प्रयोग किया है।

(३) संघोत्तर काल की 'पंच वृहद् कृतियां' में कविवर इलंगो (चेर राजभ्राता) का 'शिलप्पधिकारम् (नूपुर काव्य) एक श्रेष्ठ कृति है। इलंगो यद्यपि जैन थे[4] तथापि उन्होंने अपने काव्य मे तत्कालीन लोकप्रचलित तिरुमाल (वैष्णव) धर्म तथा उसके

---

१ डा० मलिक मुहम्मद—'तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य' (पृ० १७६–१७७)

२ डा० म० मुहम्मद—'तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य' (पृ० १४)

३ डा० म० मुहम्मद–तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य', (पृ० २६)

४ पूर्ण सोमसुन्दरम्–'तमिल और उसका साहित्य' (पृ० ३७)–किन्तु डॉ० म० मुहम्मद ने इन्हें बौद्ध बतलाया है–द्रष्टव्य–'त० प्र० हि० कृ० का० (पृ० २८)

आश्रय में पल्लवित होने वाली कृष्ण लीला का समुचित समावेश किया है। कण्णन की बाल लीला, वंशी माधुरी, नप्पिन्नई कण्णन की प्रेम कथा, कुरव नृत्य (कुरवकुत्तु) नाम से प्रसिद्ध रास लीला या हल्लीश लीला के ढंग का मण्डल नृत्य, वृष वशीकरण आदि इस काव्य की कृष्ण लीला के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। आल्वारों ने अपनी कृष्ण लीला में इनका पर्याप्त प्रयोग किया है।

साराशत प्राचीन तमिल कृतियों के सर्वेक्षण से ऐसा ज्ञात पड़ता है कि नप्पिन्नई कण्णन (राधा कृष्ण) की प्रेम लीलाओं से सम्बद्ध अनेकानेक कथाएँ आल्वार भक्तों के पूर्व प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थीं। इन कथाओं का समावेश आल्वार भक्तों की मध्यस्थता से पुराणों तथा उत्तरी भारत की समस्त कृष्ण काव्य परम्परा में धीरे धीरे हो गया। तमिल में प्रबन्धम् और संस्कृत में भागवत दोनों ही इसके प्रतिनिधि कोश हैं।

आल्वार भक्तों के सुमधुर गीत 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' नामक वृहत् काव्य संकलन में संगृहीत हैं। आल्वार संख्या में १२ थे और इनका समय ईसा की [illegible] शती के बाद से लेकर आठवीं नवीं शती तक बतलाया जाता है।[1] उक्त १२ संतों की प्रायः ४ हज़ार वैष्णव पदावली का चार भागों में क्रमानुसार सम्पादन सर्व प्रथम १० वीं शती के नाथमुनि (रघुनाथाचार्य) ने किया।[2] दिव्यप्रबन्धम्' दक्षिण में वेदवत् पूज्य है।

श्री वेदांत देशिकाचार्य ने आल्वारों का जो नाम क्रम बतलाया है वह प्रायः सर्व मान्य है। इनके अनुसार आल्वारों के क्रमशः तमिल और संस्कृत नाम इस प्रकार हैं।[3]

तमिल	संस्कृत
(१) पोयगै आल्वार	(१) सरोयोगी
(२) भूतत्ताल्वार	(२) भूतयोगी
(३) पेयाल्वार	(३) महद्योगी
(४) तिरुमल्लाइ	(४) भक्तिसार
(५) नम्माल्वार	(५) शठकोप
(६) मधुरकवि आल्वार	(६) मधुर कवि सूरि
(७) कुलशेखराल्वार	(७) कुलशेखर सूरि
(८) पेरियाल्वार	(८) विष्णुचित्त (भट्टनाथ)
(९) आण्डाल्	(९) गोदा
(१०) तोण्डरडिप्पोडि आल्वार	(१०) भक्तांघ्रिरेणु सूरि
(११) तिरुप्पाणआल्वार	(११) योगीवाहन
(१२) तिरुमंगयाल्वार	(१२) परकाल

---

१ डॉ० कृष्ण स्वामी आयंगर–'अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णविज्म इन साउथ इंडिया' (पृ ८९)

२ प्रो० राय चौधरी–अर्ली हिस्ट्री आफ द वैष्णव सेक्ट (पृ० ११९–११३)

३ डॉ० भंडारकर–'वैष्णविज्म शैविज्म ' (पृ० ६९)

इनका परिचयात्मक विवरण इस प्रकार है–[1]

पोयगै—यह आदि वैष्णव कवि हैं। इनके स्फुट पदों का संग्रह 'मुदल तिरुवतादि' है। इसमें भगवान् की अवतार लीला का कथन है। कृष्ण की बालनीलाओं का चित्रण है।

भूतत्ताल—'इरटाम तिरुवतादि' इनके स्फुट पदो का संग्रह है। इसमे बाल लीलाओं का चित्रण है।

पेयाल्वार—'मून्ड्राम तिरुवतादि' इनका संग्रह है। इसमें भी बाल लीला वर्णित है।

तिरुमल्लाई—'नानमुवन तिरुवतादि', इनका संग्रह ग्रंथ है। इसमें कृष्णावतार के प्रति आस्था प्रकट की गयी है।

नम्माल्वार आल्वारो मे सर्वोपरि हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तिरुवाय मोली' है। इसमें विष्णु प्रेम का सुन्दर निदर्शन हुआ है।

कुलशेखर—रामभक्त होते हुए भी इनकी कृष्ण-स्तुति चित्ताकर्षक है। इस कवि ने कृष्ण की विभिन्न लीलाओ की ओर भी संकेत किया है।

पेरियाल्वार—या विष्णुचित्त कृष्ण का बाल लीला के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार हैं। इन्हे इस दृष्टि से तमिल का सूरदास समझना चाहिए। इनकी प्रसिद्ध रचना 'पेरियाल्वार तिरुमौलि' है। विष्णुचित्त (पेरियाल्वार) और सूरदास इन दोनो रससिद्ध कवियो ने भाव देव श्रीकृष्ण की बाल और किशोर लीलाओ का ऐसे क्रमागत जीवन विकास की प्रक्रिया के रूप में चित्रित किया कि इन दोनो की वयसन्धि का जोड सहसा लक्षित ही नही होता।

आण्डाल—यह विष्णुचित्त का पालिता पुत्री थी। इसने अपने यौवन-काल में रंगनाथ विष्णु (कृष्ण) की पति रूप में माधुर्योपासना की थी। तिरुप्पाव और 'नाच्चियार तिरुमाली' उसकी दो अत्यन्त माधुर्य भक्ति प्रधान कृतियाँ हैं। उसकी माधुर्य भक्ति मीरा की मधुरोपासना की पूर्वपीठिका है।

इनके अतिरिक्त आल्वारों में योगीवाहन ने भी श्रीकृष्ण का विभिन्न लीलाओं का चित्रण किया है।

दिव्य प्रबन्धम् पाच छ सौ वर्षों में विकीर्ण पदों का संकलन है। अत इसमें कृष्ण लीला का क्रमबद्ध चित्र नही मिलता। परन्तु भागवत की भाँति ही इसम दास्य सख्य, वात्सल्य और मधुर भावो की सुन्दर व्यंजना मिलती है। इन दोनों से ही परवर्ती कृष्ण-लीला का प्रभूत प्रेरणा मिली है। अत मुख्यत वात्सल्य और मधुर इन दो लीलाओ को प्रमुख दृष्टि बिन्दु बनाकर इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इन दो रसो के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार विष्णु चित्त और आण्डाल हैं। अत उन्ही की पंक्तियों का अधिकांश उद्धरण दिया जायगा।[2]

---

१ विशेष विवरणार्थ देखिये– (१) त० प्र० हि० कृ० का०–'डॉ० म० मुहम्मद तथा त० उ० सा०' पूर्ण सोम सुन्दरम्

२ ये सारे उद्धरण–'दिव्य प्रबन्धम्' के संस्कृत टीकाकार श्रीमत् अण्णागराचार्य स्वामी, कांचीपुरम् (मद्रास) द्वारा प्रकाशित संस्करण से दिये गये हैं।

(क) बाल लीला—इनके अन्तर्गत पहले वात्सल्य लीला फिर असुरवध लीला ली जायगी। (१) जन्मोत्सव—पेरियाल्वार कृत 'तिरुमालि' के प्रथम शतक के प्रथम दशक का शीर्षक है—'वण्णमाडन' अर्थात् व्रज में कृष्णावतारजन्य कोलाहल। स्पष्टतः इस दशक की प्रत्येक गाथा का मुख्य प्रसंग कृष्ण जन्म के मांगलिक अवसर पर नन्द गोकुल में हर्षोल्लास का चित्रण है। श्रवण नक्षत्र में भगवान् कृष्ण का अवतरण होता है।[1] सुन्दर महलों से परिवृत व्रज (गोष्ठपुर) के स्वामी श्रीनन्द जी के यहाँ केशव नामधारी ('कण्णन् केशवन् नम्बि') कल्याणगुण सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण का जब अवतरण हुआ तो वहाँ के समस्त गोप जनों ने आनन्दातिरेक के कारण एक दूसरे पर तेल और हल्दी चूर्ण फेंकना शुरू किया। इससे समस्त गृहांगण कीचड़ बन गया।[2] सारा व्रजमण्डल खुशी से झूम उठा।[3] लोग दूध घी की मटकी लुढ़काने लगे।[4] (मुल्ले) पुष्पदन्त गोप नृत्यगान करने लगे।[5] गोपियों को बाल गोपाल में देवत्व का आभास मिला।[6]

(२) नाम संस्कार बारहवें दिन (बरही के दिन) कृष्ण का धूमधाम से (व्रज को ध्वज पताका, तोरण से सजाकर) नाम संस्कार किया गया।[7] मुखमज्जन के समय यशोदा को कृष्ण के मुख में सात (?) लोकों के दर्शन हुए।[8] यशोदा उस बलिष्ठ शिशु के सम्बन्ध में गोपियों से कहती है—झूले पर झुलाओ तो चरण प्रहार से झूला ही जैसे तोड़ने लगता है। गोद में उठाऊँ तो कमर तोड़ने लगता है। छाती से चिपका लूँ तो पेट में लात मारने लगता है। इस नटखट के हैया के मारे परेशान रहती हूँ।[9]

इसकी ८ वीं गाथा में गोवर्धन का भी अग्रिम उल्लेख हुआ है जो स्वाभाविक नहीं।

श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध, अध्याय ५ में जातकर्म और जन्मोत्सव का प्रसंग है। उक्त सदर्भ की तुलना के लिए निम्नांकित श्लोक द्रष्टव्य हैं।

जातकर्म ५ २ चित्रध्वजपताका पल्लव तोरण–५/६ हरिद्रातैल ५/७ हरिद्रा चूर्णतैल–५/१२ दधिक्षीर घृताम्बु नवनीत ५/१४

इनके अतिरिक्त, यशोदा द्वारा कृष्ण मुख में विश्व दर्शन के लिए स्कन्ध–१० अध्याय–७ के श्लोक–३५–३७ तथा नामकरण संस्कार के लिए स्कन्ध–१० अध्याय–८ के श्लोक–११ द्रष्टव्य है।

पालना चित्रण—सूरसागर में अनेकशः वर्णित है।

ब्रज भूमि के कवि पेरियाल्वार कृष्ण जन्म का आनंद बधाई का जैसा समारोहपूर्ण विवरण देते हैं वैसा केवल ब्रजभाषा के कवि सूरदास ही चित्रित कर सके हैं। भागवत इस दृष्टि से चित्रित नहीं है।

---

१ पेरियतिरुमोऴि–१ १ १ ३ १/१/२/ ४ १/१/४

२ कण्णन् केशव नम्बि पिरन्दिनिल्
एण्णेय् सुण्णम् एदिर् एदिर्तूविड
कण्णन् मुट्रम् कलन्दळराइ
वण्णमाडन् केर् वासलिन् ॥ १/१/१

५ पेरियतिरुमोऴि–१/१/५

६ १/१/७ ७ १/१/८ ८ १/१/६ ९ १/१/८

(३) नखशिख छवि 'तिरुमोलि' के प्रथम शतक के द्वितीय दशक मे बाल कृष्ण की नखशिख छवि (शीदक्कडल्-पादादिकेशान्त सौन्दय) का रम्य अकन है। कृष्ण का अगूठा पान[१], दशागुली सौन्दय[२], बलिष्ठ जानु[३], कठोर जघा, शिशु लिंग[४], कटि सूत्र, नाभि, वक्ष, भुजा, हथेली, ग्रीवा, बिबाधर, मुख, नेत्र, नासिका तथा इनमे मीलित हास्य-सौन्दय, भ्रुवा, मकरकुण्डल, ललाट, केशपाश आदि का क्रमबद्ध अकन इस नखशिख-सौन्दय की विशेषता है। भागवत स्कन्ध-१०, अध्याय-८, श्लोक-३१ म इस लघुशका प्रसग का हल्का सकेत है। अन्य किसी पुराण तथा सूरसागर मे 'लिंग सौन्दय' अथवा 'मूत्र सौन्दय' (पेरियाल्वार तिरुमोलि-१/७/१०) का अनावृत वणन नही है। लिंग-पूजा वस्तुत द्रविड सस्कृति की अपनी विशेषता रही है।

इसमे प्रसगवश पूतना[५], कुवलयापीड[६], शकटासुर[७], आदि असुर वधो तथा माखन चोरी[८], उलूखल बन्धन[९] तथा अर्जुनवृक्ष[१०] लीला के अग्रिम सकेत कर दिये गये हैं, जो प्रासगिक नही है।

श्रीमद्भागवत मे यद्यपि बाल कृष्ण का नखशिख-सौन्दय वर्णित नही है किन्तु, प्रासगिक सभी लीलाओं के चित्र उपलब्ध हैं। भागवत मे शास्त्रीय गाभीय है, पेरियाल्वार और सूर म कविसुलभ भावुकता। इसीलिए, बाल छवि का जैसा सुविस्तृत अकन पेरी और सूर दोनो म प्राप्त होता है वैसा भागवत मे नही।

(४) डोला गीत तृतीय दशक मे (किशोर) कृष्ण का डोलागीत ('माणिक्कम्कट्टि') है। माता यशोदा कृष्ण को पालने मे सुलाकर मधुर गीत गाती है। गीत म वह कृष्ण को सम्बोधित करती हुई उन्ह देवताओ द्वारा समर्पित किय गये विभिन्न पदार्थों का उल्लेख करती है। 'ब्रह्मा जी ने झूला दिया। शिव, इन्द्र, देवगण, कुबेर, वरुण महालक्ष्मी तथा भूदेवी ने नाना आभूषण भेजे, हिरण वाहिनी देवी ने सुगध द्रव्यो की भेंट की।' इन चाजो का उल्लेख करती हुई यशोदा अपने लोरी गान द्वारा कृष्ण को सुलाने का उपक्रम करती है।

भागवत म डोला गीत नही है। सूरसागर मे इसका अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण हुआ है।[११]

(५) चन्द्राह्वान क्रीड़ा—चतुथ दशक म बाल कृष्ण की चन्द्राह्वान क्रीडा ('तन्मुहत्तु च्चुट्टि') वर्णित है। यशोदा चाँद का सम्बोधित करती हुई कहती है—ह तेजोमय चद्र! मेरा लाडला कृष्ण अपने सुदर मुख से अमृतसम लार टपकाते हुए तोतली बोली म तुझे बुला रहा है। ऐसे म भी अगर तू इधर न आये तो तुझे बहरा ही समझना चाहिये।'[१२] चन्द्राह्वान परियाल्वार की बाल लीला का मनोहर अग है।

---

१ १/२/१—तुलनीय भागवत—१०/७/६७ तथा सूरसागर—६३/६८१ ६४/६८२
२ १/२/२ ३ १/२/४५ ४ १/२/६। ५ १/२/५
६ १/२/७ ७ १/२/११। ८ १/२/४। ९ १/२/१०।
१० — वही। ११ ४३/६६१। १२ १/४/५

(८) लोक संस्कार—प्रबन्धम् की अपेक्षा भागवत में इस ओर सीमित संकेत है।
कर्णवेधोत्सव ,, – २/३/३ (सम्पूर्ण दशक) – डॉ जगदीश गुप्त के शब्दों में कर्णछेदन का कोई पौराणिक उल्लेख नहीं मिलता और सूर ने ही इसका वर्णन किया है।[1]
स्नान, केश विन्यास, पेरियाल्वार–क्रमश २/४ १/५
पुष्प, शृङ्गार तिरुमोली २/७ (सम्पूर्ण दशक–)यह भागवत में नहीं है।
दृष्टिदोष परिहाराय—
मंगलारती[2] ,, ²/८ भागवत[3]–१०/६/१९ २०
(९)—असुर वध लीला—यह प्रबन्धम् की अपेक्षा भागवत में सुव्यवस्थित है।

पूतना वध	,,	–१/२/५ (सर्वाधिक उल्लेख)–	श्रीमद्भागवत–१०/६/२
शकट भजन	,	–१/२/११ (अनेकश चित्रण)	,, –१०/७/८
तृणावत वध	,,	–यह प्रबन्धम् में नहीं है	,, –१०/७/२०
यमलार्जुन उद्धार	,,	–२/५/२	,, –१०/१०/२७
वत्सासुर वध	,,	–१/५/६	,, –१०/१२/४२–४३
कपित्थासुर असुराविष्ट फलवृक्ष	,	२/५/५ तथा १/५ ४	भागवत में यह असुर कल्पना नहीं है।
बकासुर वध	,,	–२/५/४	–श्रीमद्भागवत–१०/११/५०
अघासुर वध	,	–यह प्रबन्धम् में नहीं है	,, –१०/१२/१६
धेनुकासुर वध	,,	–१/५/४	,, –१०/१५/३१–३२
अरिष्टासुर वध[4]	पेरियाल्वार–२/३/१० तिरुमोली		–श्रीमद्भागवत–१०/३६/१३
कालिय दमन	,,	–१/८/३	,, –१०/१६/४
प्रलम्बासुर		यह प्रबन्धम् में नहीं है[5]	,, –१०/१८/१७
केशी वध	पेरियतिरुमोली–३/२/८		,, –१०/३७/९
दावानलपान	तिरुवायमोली–५/६/८		१०/१७/२५ तथा १०/१९/३२

१ गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन–(पृ० ९४)

२ डा० मलिक मुहम्मद ने इस दशक (प० ति०) में मंगलारती की जगह कंकण बाँधने का उल्लेख किया है, जो नहीं है।

३ डॉ० गुप्त ने अपने शोधप्रबन्ध (गु० ब्र० का० तु० अ०–पृ० ९४) में इसका पौराणिक आधार नहीं माना है, जो ठीक नहीं।

४ डॉ० म० मुहम्मद ने अपने शोध प्रबन्ध में इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। द्रष्टव्य- 'तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य' (पृ० १८३–१८५)

५ वही त० प्र० हि० कृ० का० (पृ० १८४) में प्रलम्बासुर वध के आगे कुछ नहीं लिखा है।

(ख) **किशोर लीला**—यह भागवत म यवस्थित रूप से चित्रित है। कृष्ण की किशोर छवि, वशी माधुरी आदि का प्रब धम् मे कवि पेरियाल्वार ने अत्य त चित्ताकर्षक अकन किया है। ये चित्र भागवत के समकक्ष है।

(१) **गोचारण तैयारी** पेरियाल्वार–२/६/३ लकुटी के –श्रीमद्भागवत–१०/११/२८–४१
तिरुमोली लिए काग प्रार्थना ,, ,,

वनगमन ,, –३/२/१–वन भेजकर
यशोदा प्रलाप

(२) यज्ञपत्नीनुग्रह गोदासूक्त –१२/६ ,, १०/२३/२१

(३) गोवधन धारण ,, १/१/८ (प्रथम उल्लेख) ,, १०/२५/१९

(४) वेणुगान धारण ,, ४/१/१ तथा ३/६/८–६ ,, १०/२१/२

(५) गोप बाला का कक्ण ,, २/९/१० ,, यहां यह लीला
चुराकर उससे जाम नही है।
फल खरीदना–

(६) चीरहरण–गोदासूक्त ३रा दशक पूर्ण २/१/४तथा२/१०/२ ,, १०/२/६

(ग) **यौवनलीला**—भागवत का यह प्रसग सुरुचिसम्पन्न है। इसमे रास लीला सर्वोपरि है।

वृष वशीकरण– ,, १/५/७ तथा १/५/३ ,, (प्रसगान्तर)१०/५८/३३
कुरवै कोत्तु (रासलीला)–पेरियाल्वार–२/३/५– श्रीमद्भागवत रासलीला–१०/३३/३
तिरुमोली

भ्रमरगीत प्रसग पेरिय तिरुमोली –३/६/१–१० ,, १०/४७
कि तु, प्रब धम् का यह प्रसग जहाँ भ्रमर सन्देश है वहा यह अ योक्तिप्रसङ्ग है।

(घ) **मथुरा लीला**—

(१) मथुरा प्रवास-पेरिय तिरुमोली– ६/७/५ श्रीमद्भागवत–१०/३९

(२) कुब्जा उद्धार पेरियाल्वार , १/८/४ –१०/४२

(३) कुवलयापीड वध , १/५/३–६ ,, –१०/४४

(४) चाणर मुष्टिक वध , २/२/८ –१०/४४

(५) कस वध , २/२/४ ,, –१०/४४

अनन्तर मथुरा तथा द्वारिका और कुरुक्षेत्र से सम्बद्ध अ य (कृष्ण जीवन के) प्रसग भी वर्णित हैं। जिनका उद्धरण सम्प्रति आवश्यक नहा।

उपर्युक्त तुलना से स्पष्ट है कि प्रब धम् के कवि ने भागवत की अपेक्षा कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओ के चित्रण में अधिक मनोनिवेश और भावुकता का परिचय दिया है। स्वभावत इनके लीला पट म अपरिमित विस्तार और नवताएँ आ गया हैं। सक्षेप म, इनकी विलक्षणताएँ य हैं–

(१) विप्रचित्त की बाल-लीलाएँ वर्णित हैं घटित नहीं। इनके प्रतिकूल भागवत की लीलाएँ प्रत्यक्ष घटित हैं।

(२) गोपी कथित होने के कारण कृष्ण की धूर्त चेष्टा, बाल-चापल्य आदि के जो स्वाभाविक और शक्तिशाली प्रभाव पड़ सकते थे वह उसी अनुपात में नहीं पड़ते। इसके लिए बहुत कुछ उत्तरदायी उनका वर्णन शैथिल्य है। फिर भी, कवि कृष्ण प्रेम में डूब कर जो चित्र उरेहता है उनमें एक अपूर्व तन्मयता है। इसी ने उसके समस्त शैथिल्य का मधुर भक्ति के परिपाक से प्रांजल और मर्मस्पर्शी बना डाला है। हिन्दी कृष्ण काव्य का उपजीव्य ग्रंथ भागवत है। किन्तु, उसको आधार मान कर चलने वाले कवि सूरदास की बाल लीला के अनेक चल चित्र जब भागवत से न मिलकर प्रबन्धम् के इस कवि से मिलने लगते हैं तो पाठकों को जिस आनन्द विस्मय का अवगम होता है, वह स्वाभाविक ही है। निस्सन्देह प्रबन्धम् की बाल लीलाएँ विशृङ्खल होने पर भी भागवत की तुलना में अधिक ही नहीं, अच्छी भी हैं। और इसकी बदौलत प्रबन्धम् के विशेषज्ञ अध्येताओं ने उसकी पूर्ववर्तिता का अनुमान भी किया है।[1] किन्तु, फिर भी यह प्रश्न तो बना ही रह जाता है कि यदि भागवत से पूर्व प्रबन्धम् की उक्त लीलाएँ चित्रित हो चुकी थी तो भागवतकार ने उन्हें अपने कलेवर में समाविष्ट करने की चेष्टा क्यों नहीं की ?

(३) सम्भवतः इसका कारण यह है कि प्रबन्धम् की कृष्ण-लीला तमिल लोक परम्परा, उसके रीति रिवाज, भक्ति और आचार की प्रतिध्वनि है। किन्तु, भागवत की कृष्ण-लीला मध्य-देश में प्रशस्त भागवत धर्म की सम्पूर्ण शास्त्रीय अभिव्यक्ति है। प्रबन्धम् दिव्य काव्य है, भागवत रसमय स्थान।

(४) प्रबन्धम् की कृष्ण-लीला में किशोर और यौवन लीलाओं का जैसा सरस और आत्मानुभूत चित्रण आण्डाल ने किया है, दूसरे भक्तों ने नहीं किया। आण्डाल का कृष्ण प्रेम स्वतः सिद्ध गोपी भाव का था। अपने पूर्ण यौवनकाल में वह इस बात की निर्भीक घोषणा करती है कि वह भागवत रंगनाथ के चरणों में चढ़ी हुई पूजा की पुष्पिका है जिसपर किसी भी दूसरे व्यक्ति का अधिकार नहीं हो सकता। वह अपनी मधुर कृति 'नाचियार तिरुमोलि' के प्रथम दशक में ही प्रेम-देवता मन्मथ से प्रार्थना करती है—'भगवान् के उपभोग के लिए ही मैं बनी हूँ। उनको छोड़ अन्य किसी मनुष्य को मैं नहीं वरूँगी। यदि ऐसा प्रस्ताव किसी ने किया तो मैं प्राण दे दूँगी। भगवान् के लिए सकल्पित इस नैवेद्य (उराज) को कोई क्षुद्र जन्तु (जंगली सियार) छुए, यह सर्वथा अनुचित है।'[2] गोदा नारी थी और उसने अपने समस्त यौवन, प्रेम और नारीत्व का निचोडकर कृष्ण के चरणों में चढ़ा दिया था।

प्रबन्धम् के अन्य कितने ही कवि हैं जिनकी भक्ति गाथा में भगवान् के साथ उनके दाम्पत्य प्रेम का परिचय मिलता है। किन्तु ये सारे वर्णन पूर्णतः मर्यादित हैं। इसके अनेक प्रमाण हैं।

गोदा वर्णित चीरहरण लीला में कृष्ण एक दूसरी गोपियों के हाथ से हाथ मिलाकर दी गयी अजलि से सन्तुष्ट हो वस्त्र लौटा देते हैं।[3] जब कि भागवत के कृष्ण एक हाथ से दी गयी अजलि से सन्तुष्ट न होकर दानों हाथ उठाने का कहते है।[4] 'नाचियार तिरुमोलि' (छठे दशक में) में गोदा कृष्ण विवाह भी स्वप्न-वर्णित है।

१ डा० म० मुहम्मद—त० प्र० हि० कृ० का०, (पृ० १७७) २ श्री गोदा सूक्त (नाचियार तिरुमोलि)—१/६ ३ श्री गोदा सूक्त (नाचियार तिरुमोलि)—३/६ ४ भागवत—१०/२२/१९

(५) प्रबन्धम् में कृष्ण प्रेयसी नप्पिन्नै का स्पष्ट उल्लेख है। इसे कृष्ण ने वृष वशीकरण द्वारा प्राप्त किया था।

भागवत में राधा का उल्लेख स्पष्ट नहीं है। वृष-वशीकरण का उल्लेख है किन्तु वह एक गौण प्रसग को लेकर, राधा को लेकर नहीं। यह तमिल देश की कथा मुख्य परम्परा का अंग है जिसको भागवत में विशेष समादर नहीं मिला। भागवत में नप्पिन्नई तो है ही नहीं। जहाँ तक प्रभाव और पौर्वापर्य की बात है, कृष्ण चरित के इन दो अनिवार्य अंगों का भागवत से नहीं मिलना, इनका स्वतन्त्र और निरपेक्ष विकास-परम्परा की ओर संकेत करते हैं।

(६) प्रबन्धम् में कुरवै नृत्य है, भागवत में रास-लीला। यद्यपि प्रबन्धम् में 'रास' शब्द का कहीं उल्लेख नहीं है और न भागवत में ही 'कुरवै नृत्य' का उल्लेख मिलता है तथापि, दोनों मण्डल नृत्य ही हैं जिनमें अनेक गोपियों के साथ नटवर कृष्ण का नृत्य संगीत विलास वर्णित है।

इसका सुन्दर समावेश 'शिलप्पधिकारम्' में हुआ है। इसकी विशेष समीक्षा आगे की जायगी। इधर पूर्ववर्ती पुराणों में हरिवंश में पायी जाने वाली 'हल्लीसक क्रीडा' इसी कोटि की है। 'सर्वप्रथम रास को हल्लीसक नाम से हरिवंश में (ही) उद्घाटित किया गया है।'[२] हरिवंश, ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण आदि में भी 'रास' का वर्णन उत्तरोत्तर विस्तार से मिलने लगता है। हरिवंश के हल्लीसक वर्णन में कृष्ण के अन्तर्धान होने का संकेत नहीं है। किन्तु विष्णु पुराण और श्रीमद्भागवत तक आते आते यह प्रसंग भी जुड़ गया है। इसमें आगे अभिनय तत्त्व के भी संयोग का अवकाश मिल गया है। और आगे चलकर, इस लीला के मुहूर्त में भी विकास हुआ। हरिवंश और भागवत में यह शरद् लीला है जब कि परवर्ती पुराण ब्रह्मवैवर्त में यह शरद् और वसंत दोनों ऋतुओं में आयोजित है। किन्तु प्रश्न हो सकता है कि 'हल्लीसक' को 'रासनृत्य' का ही पर्याय क्या माना जाय। तो उसके पर्याय मानने के भी हमारे पास प्राचीन साक्ष्य हैं। ११ वीं शती के हरिपाल ने अपनी 'पाइयलच्छि नाममाला' में 'हल्लीस' को 'रास' का पर्याय घोषित किया था।[३] इसके अतिरिक्त डॉ० विंटरनित्स ने भी अपने इतिहास में दोनों को पर्याय बतलाते हुए लिखा है—

'These are the dances called Rasa or Hallis accompanied by pantomimic representations and which still to day take place in some parts of India, &, for instance, in Kathiawad are still known by a name corresponding to the Sanskrit Hallis.'[४]

अतः उक्त प्रमाण इस निष्कर्ष के द्योतक हैं कि रास लीला हल्लीसक नृत्य की ही स्वाभाविक परिणति है, जिसकी पूर्णता श्रीमद्भागवत में लक्षित होती है।

---

१ हरिवंशपुराण विष्णु पर्व अध्याय–२० श्लोक–१५ १६

२ रास और रासान्वयी काव्य (पृ० २६)–डॉ० दशरथ ओझा

३ रास और रासान्वयी काव्य (पृ० ३६) डॉ० दशरथ ओझा

४ A History of India (Ancient), Vol I (Winternitz)

तृतीय अनुच्छेद

पुराण और सूर सागर की कृष्ण-लीला

'सूरसागर' हिन्दी कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास की प्रतिनिधि कृति है। यह ब्रजभाषा म गय पदो का एक विशाल सग्रह है। इसमे कृष्ण की सभी लीलाओ का रसमय वर्णन हुआ है। साथ ही कुछ नवीन प्रसगो का भी समावेश हुआ। ये कथात्मक और नवीन प्रसग सूर की मौलिक उद्भावनाओ के प्रतिफल हैं। पुराण और काव्य मे सैकडो वर्षों से विकसित होकर आने वाली कृष्ण लीला सूरसागर क अनन्त आवर्तों म फूट पडी है। कुल मिलाकर, इसे यदि हिन्दी मध्यकालीन कृष्ण लीला का विश्वकोश कहे, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

सूरसागर का मूल उपजीव्य श्रीमद्भागवत महापुराण है। यदि सम्पूर्ण भक्ति काव्य का वैष्णव आचार्यों की विचार क्रान्ति का परिणत फल मानें तो श्रीमद्भागवत को उक्त क्रान्ति का सर्वाधिक शक्तिशाली प्रेरक ग्रथ सिद्ध किया जा सकता है। विशेषत वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति-परम्परा का यह प्राणाधार है।

सूर वल्लभ-सम्प्रदाय मे दीक्षित भक्त थ। वह स्वामी वल्लभाचाय के पट्टशिष्य तथा श्रीनाथ जी के अनन्य सेवक थ। वल्लभाचाय द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग' पर श्रीमद्भागवत के 'पोषण तदनुग्रह'[1] की छाप है और पुरुषोत्तम कृष्ण की अष्टकालीन लीलाओ मे नियुक्त आठ साधका पर भी उसी की छाप है। अत अष्टछाप की भावोपासना पर भी भागवतीय भक्ति का ही प्रभाव सिद्ध होता है। अष्टछापी कवियो के सिरमौर सूर ने अपने 'सागर' मे भागवत वर्णित कृष्णचरित कृष्ण भक्ति और कृष्ण लीला के अनमोल रत्नो को ही सकलित करने का उपक्रम किया है।

श्रीमद्भागवत म यद्यपि कृष्ण की ब्रज, मथुरा और द्वारिका से सम्बद्ध त्रिविध लीलाओ का वर्णन है तथापि सम्पूर्ण दशम स्कन्ध म ब्रजवल्लभ कृष्ण की अनुरजनकारिणी लीलाओं का जैसा मधुर विन्यास हुआ है, वसे अन्य रूपों का नही। स्वभावत रसिक शिरोमणि कृष्ण के लीला गायक कवि सूर की कृति पर भागवत क दशम स्कन्ध की पूरी छाप है। इस प्रभाव का स्वय सूर ने भी स्वीकार किया है—

> 'व्यास कहे सुकदेव सा द्वादस स्कध बनाई
> सूरदास सोई कहे, पद भाषा करि गाई।'

दशम स्कन्ध के प्रथम पद से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।[2] किन्तु इस आधार पर

---

१ भागवत—२/१०

२ व्यास कह्यो सुकदेव सौं श्रीभागवत बखानि।
द्वादस स्कध परमसुभ, प्रेम भक्ति की खानि।
नव स्कध नृप सौं कहे, श्रीसुकदेव सुजान।
सूर कहत अब दशम कौं, उर धरि हरि को ध्यान॥ १॥—६१६

सूरसागर को भागवत का अविकल अनुवाद नहीं कहा जा सकता।[१] यह तो मुख्यतः कृष्ण की बाल, किशोर और यौवन लीलाओं का ही अक्षय स्रोत है। यह बात इसकी बहिरंग अन्तरंग परीक्षा से सिद्ध की जा सकती है। श्रीमद्भागवत के ६ स्कन्धों के प्राय २०० अध्यायों को सूर ने लगभग ५०० पदों में ही समाप्त कर दिया है जबकि अकेले दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) के ४६ अध्यायों को प्राय ५००० सरस पदों में विस्तार से चित्रित किया।[२] यहाँ श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर यौवनकालीन समस्त प्रेम प्रसंगों का इन्द्रधनुषी वितान है। भावात्मक कृष्ण के प्रति ब्रजवासियों का नाना भावों से उमडता हुआ प्रेम सागर ही सूरसागर है। इसकी विलक्षणताओं का सकेत नीचे किया जाता है।

(१) कृष्ण के जन्मोत्सव, हर्षोद्रेक, बाल सस्कार तथा बाल क्रीडाओं का चित्रण।
(२) माखन चोरी म शृङ्गार भावनाओं का आरोप
(३) कृष्ण प्रेम की आध्यात्मिक भाव भूमि के स्थान पर उसका सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव भूमियों मे अभिरमण
(४) राधा कृष्ण प्रथम मिलन का चारु चित्रण
(५) राधा-कृष्ण शृङ्गार वर्णन
(६) राधा कृष्ण विवाह
(७) शरद और वसन्त रास दानों के उल्लेख
(८) दान लीला आदि की स्वतन्त्र उद्भावनाएँ
(९) कृष्ण चरित मे मानवीय अतिमानवीय स्वरूपों का सङ्गम कवित्व और भक्ति का समन्वय

उपर्युक्त विलक्षणताओं के निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि सूरसागर वर्णित कृष्ण लीला को पौराणिक कृष्ण लीला के परिप्रेक्ष्य म रखकर इसकी उपलब्धि और सीमाओं का सम्यक् आकलन किया जाय। पौराणिक कृष्ण लीला मे सवप्रथम श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवत पुराण की कृष्ण लीला का सूत्रात्मक सर्वेक्षण किया जायगा क्योंकि सूर का राधा कृष्ण शृङ्गार लीला रास आदि प्रसङ्गों म ब्रह्मवैवत की अमित प्रेरणा परिलक्षित होती है।

इस तुलनात्मक सर्वेक्षण के लिए भागवत, ब्रह्मवैवत और सूरसागर इन तीनों को क्रमश क ख और ग वर्गों म रखा गया है। उक्त तीनों वर्गों की कृष्ण लीला के क्रमबद्ध चित्रण के अनन्तर इन तीनों म पाई जाने वाला समान लीलाओं की सूची दी जायगी। इसके अन्तर्गत उन समान लीलाओं के सामने 'क, ख, ग' य तीनों वर्गीय दिये जायेंगे जिनसे इन तीनों ही स्रोतों म इनकी समान उपलब्धि का सकेत भली भाँति मिल सकेगा। अनन्तर जिन दो स्रोतों मे कुछ शेष लीला तत्त्व उपलब्ध होंगे उनकी समानता के सकेतार्थ किन्हीं दो वर्गों के वर्ण दिये जायेंगे। और, अन्त म जो लीला या लीला तत्त्व अपनी विलक्षणता के कारण किसी एक ही स्रोत में उपलब्ध होंगे उनका उल्लेख कर कृष्ण-लीला के इस तुलनात्मक अध्ययन का समापन किया जायगा।

---

१ डॉ० मुंशीराम शर्मा—सूर-सौरभ (२रा भाग—पृ० ११)
२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—महाकवि सूरदास (पृ० १०२)

(क) श्रीमद्भागवत में क्रमागत कृष्ण लीला —

गोकुल-लीला —

लीला	स्कन्ध	अध्याय	
(१) ज-मोत्सव	स्क-ध १०	अध्याय	५/५–१४
(२) पूतना वध	,,	,,	६/१३
(३) शकट भग	,,	,,	७/९
(४) तृणावत वध	,,	,,	७/२९
तथा, जम्हाते कृष्ण के मुख मे यशोदा का आकाशादि के दशन	,,	,,	७/३५
(५) नामकरण, मृद्भक्षण तथा विश्वरूप दशन	,,	,,	८
(६) उलूखल ब-धन	,,	,,	९
(७) माखनचोरी तथा यमलार्जुन भग	,,	,,	१०
वृ-दावन लीला —			
(८) वत्सासुर वध	,,	,,	११/४३
(९) बकासुर वध	,,	,,	११/५०
(१०) अघासुर वध	,,	,,	१२
(११) ब्रह्मामोह भग	,,	,,	१३ तथा १४
(१२) धेनुक वध (बलराम द्वारा)	,,	,,	१५/४०
(१३) कालिय दमन	,,	,,	१६
(१४) दावानल-पान (प्रथम)	,,	,,	१७/२५
(१५) प्रलम्ब वध–(गोप रूपी बलराम द्वारा)	,,	,,	१८/२९
(१६) दावानल पान (द्वितीय)	,,	,,	१९/१२
(१७) शरद् वर्णन	,,	,,	२०
(१८) वेणु गीत	,,	,,	२१
(१९) चीर हरण (कात्यायिनि पूजा नीप वृक्ष)	,,	,,	२२
(२०) यज्ञपत्नीनुग्रह	,,	,,	२३
(२१) गोवधन धारण	,,	,,	२५–२७
(२२) वरुण से न द की मुक्ति	,,	,,	२८
(२३) वेणुनाद, रामारम्भ तथा कृष्ण का अन्तर्धान	,,	,,	२९
(२४) गोपियो द्वारा कृष्ण चरितानुकरण तथा कृष्ण प्रतीक्षा	,,	,,	३०
(२५) गोपी गीत	,,	,,	३१
(२६) कृष्ण का प्रकटन तथा आश्वासन	,,	,,	३२
(२७) महारास	,,	,,	३३
(२८) युग्मगीत	,,	,,	३५
(२९) अरिष्टासुर वध	,,	,,	३६
(३०) केशी-वध	,,	,,	३७
(३१) व्योमासुर वध	,,	,,	३७

(३२) अक्रूर आगमन	स्कन्ध-१०	अध्याय	३८
(३३) गोपियों का करुणोद्गार	,,	,,	३९

मथुरा लीला —

(३४) कृष्ण का मथुरा गमन	,,	,,	३९
(३५) रजक वध तथा दरजी और माली पर कृपा	,,	,,	४१
(३६) कुब्जा उद्धार	,,	,,	४२
(३७) कुवलयापीड वध	,,	,,	४३
(३८) चाणूर, मुष्टिक तथा कंस वध	,,	,,	४४
(३९) उद्धव-ब्रजागमन	,,	,	४६
(४०) उद्धव गोपी संवाद	,,	,	४७
(४१) उद्धव द्वारा गोपी प्रेम की प्रशंसा	,,	,,	४७

द्वारिका लीला —

(४२) कुरुक्षेत्र मिलन	,,	,,	८२

(ख) ब्रह्मवैवर्त में क्रमागत कृष्ण लीला —

गोकुल लीला :—

(१) जन्मोत्सव	श्रीकृष्णजन्मखण्ड	अध्याय	९
(२) पूतना वध	,,	,,	१०
(३) तृणावर्त वध	,,	,,	११
(४) शकट भंग	,,	,,	१२
(५) नामकरण तथा अन्नप्राशन	,,	,,	१३
(६) माखनचोरी, वृक्ष बन्धन तथा यमलार्जुन भंग	,,	,,	१४
(७) नन्द का शिशु कृष्ण के साथ गोचारण, राधा का आगमन, राधा कृष्ण मिलन तथा विवाह	,,	,,	१५
(८) बकासुर वध	,,	,,	१६
(९) प्रलम्बासुर वध (वृष रूपी कृष्ण द्वारा)	,,	,,	,,
(१०) केशी वध	,,	,,	,,

वृन्दावन लीला —

(११) रास मंडल का निर्माण	,,	,,	१७
(१२) यज्ञपत्नीनुग्रह	,,	,,	१८
(१३) कालीय दमन	,,	,,	१९
(१४) दावानल शमन	,,	,,	,,
(१५) ब्रह्मा मोह भंग	,	,	२०
(१६) गोवर्धन धारण	,,	,,	२१
(१७) धनुक-वध (कृष्ण द्वारा)	,,	,,	२२

(१८) चीर-हरण (गौरीव्रत कदम्बवृक्ष)	श्रीकृष्णजन्मखण्ड	अध्याय	२७
(१९) वसन्त वर्णन	"	"	२८
(२०) रासारम्भ ('रास यात्रा' नाम ध्यातव्य)	"	"	"
(२१) राधा कृष्ण-रास	"	"	"
(२२) गोपी-कृष्ण रास	"	"	"
(२३) काम लीला	"	"	"
(२४) राधा कृष्ण अन्तर्धान	"	"	२९
(२५) मलयद्रोणी में राधारूपधारी कृष्ण का राधा के साथ संभोग तथा जलविहार	"	"	"
(२६) राधा गर्व, कृष्ण का पुनः अन्तर्धान होना, गोपियों का रुदन, चन्दनवन में कृष्ण-दर्शन तथा गोपियों के प्रणयकोप जनित उद्गार	"	"	५२
(२७) कृष्ण का उनके साथ विहार	"	"	५३
(२८) संक्षिप्त कृष्ण चरित वर्णन	"	"	५४–५५
(२९) कृष्णवियोग से प्राणत्यागोद्यत राधा के लिए ब्रह्मा का वैकुण्ठ गमन	"	"	५७
(३०) संक्षिप्त राधा विरह वर्णन	"	"	५८
(३१) राधा का दुःस्वप्न और कृष्ण का उन्हें सान्त्वना देना	"	"	६६–६७
(३२) कृष्ण प्रवास की करुण पृष्ठभूमि	"	"	६८–६९
(३३) अक्रूर ब्रजागमन, गोपियों का उग्र विरोध तथा कृष्ण की मथुरा यात्रा	"	"	७०–७१
(३४) कुब्जा पर कृपा, माली को वरदान तथा धोबी का उद्धार	"	"	७३
(३५) कंस वध	"	"	७३
(३६) उद्धव ब्रजागमन	"	"	९१
(३७) राधा उद्धव संवाद	"	"	९३
(३८) राधा विरह वर्णन	"	"	९३ तथा ९५
(३९) गोपी उपालम्भ	"	"	९४
(४०) उद्धव को राधा का उपदेश	"	"	९६
(४१) राधा कामदशा का चित्रण	"	"	९७
(४२) उद्धव मथुरागमन तथा कृष्ण का प्रेम संदेश	"	"	९८
(४३) राधा कृष्ण पुनर्मिलन	"	"	१२६
(४४) राधा कृष्ण विहार	"	"	१२७
(४५) राधा कृष्ण गोलोक गमन	"	"	१२८–१२९

(ग) सूरसागर'[1] में क्रमागत कृष्ण लीला —

लीला			
गोकुल लीला			
(१) जन्मोत्सव	दशम	स्कन्ध	गीत संख्या-११
(२) पूतना वध	"	"	४६
(३) श्रीधर अंग भंग	"	"	५७
(४) कागासुर वध	"	"	५८
(५) सकटासुर वध	"	"	६१
(६) तृणावर्त वध	"	"	७७
(७) बाल संस्कार—			
नामकरण	"	"	८५
अन्नप्राशन	"	"	८८
वर्षगाँठ	"	"	९४
कर्णछेदन	"	"	१८०
(८) बाल छवि—			
घुटरुनचाल	"	"	९७
डगमग चाल	"	"	११२
बाल सौन्दर्य	"	"	१६६
(९) चन्द्र प्रस्ताव	"	"	१८८
(१०) बाल क्रीडा	"	"	२१३
(११) बाल क्रीडा	"	"	२४८
(१२) माटी भक्षण'[2] तथा यशोदा विश्व दर्शन	"	"	२५३
(१३) शालिग्राम प्रसंग	"	"	२६१
(१४) माखनचोरी	"	"	२६४
(१५) उलूखल बन्धन	"	"	३४१
(१६) यमलार्जुन मोक्ष	"	"	३६१
(१७) गोदोहन	"	"	४००
वृन्दावन लीला			
(१८) गोचारण	"	"	४११
(१९) बकासुर वध	"	"	४२७
(२०) अघासुर वध (अजगर)	"	"	४३१
(२१) ब्रह्मा मोह भंग	"	"	४३६
(२२) धेनुक वध (बलराम द्वारा)	"	"	४६६
(२३) काली दमन	"	"	५ २

१ सम्पादक—श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२ ना० प्र० सभा संस्करण के संपादक ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है।

(२४) असुराविष्ट दावानल का पान	दशम स्कन्ध गीतसंख्या		५६७
(२५) प्रलम्ब वध (गोप रूपी भागवत कृष्ण द्वारा ब्रह्मवैवत)	,,	,,	६०४
(२६) मुरली महिमा	,,	,,	६२०
(२७) गोपी गीत	दशम स्कन्ध पदसंख्या		६६०
(२८) राधा-कृष्ण मिलन	,,	,,	६७२
(२९) राधा कृष्ण विहार	,,	,,	६८४
(३०) चीर हरण (भागवत नीप, ब्रह्मवैवत-कदम्ब)	,,	,,	७८४
(३१) यज्ञपत्नीनुग्रह	,,	,,	८००
(३२) गोवर्धन धारण	,,	,,	८२२
(३३) वरुण से नन्द की मुक्ति	,,	,,	९८४
(३४) रासारम्भ	,,	,,	९८९
(३५) राधा कृष्ण विवाह (रास)	,,	,,	१०७१
(३६) राधा कृष्ण अन्तर्धान	,,	,,	१०८५
(३७) राधा गर्व तथा पुनः कृष्ण अन्तर्धान	,,	,,	११००
(३८) गोपियों द्वारा कृष्णचरितानुकरण	,,	,,	११२१
(३९) कृष्ण का प्राकट्य	,,	,,	११२८
(४०) रास नृत्य	,,	,,	११३२
(४१) जल क्रीडा	,,	,,	११६७
(४२) मुरली प्रति गोपी वचन	,,	,,	१२१६
(४३) मुरली वचन गोपी प्रति	,,	,,	१३३०
(४४) कृष्ण-ब्रजागमन सौन्दर्य	,,	,,	१३६८
(४५) वृषभासुर वध	दशमस्कन्ध गीतसंख्या		१३८६
(४६) केशी वध	,,	,,	१३९६
(४७) व्योमासुर वध	,,	,,	१३९७
(४८) पनघट लीला	,,	,,	१३९९
(४९) दान लीला	,,	,	१४६०
(५०) ग्रीष्म लीला	,,	,,	१७५०
(५१) युगल समागम	,,	,,	२०२३
(५२) मान लीला	,,	,,	२०७२
(५३) नेत्र व्यापार	,,	,,	२२१६
(५४) झूलने	,,	,,	२८२९
(५५) वसन्त लीला	,,	,,	२८४४
(५६) अक्रूर ब्रजागमन	,,	,,	२९२३
(५७) गोपियों की उद्विग्नता	,,		२९६०

(५८) यशोदा विलाप	दशम स्कन्ध	गीतसंख्या	२९९२
मथुरा लीला			
(५९) कृष्ण का मथुरा गमन	,,	,,	३०१३
(६०) रजक वध	,,	,,	३०३८
(६१) कुब्जा पर कृपा[1]	,,	,,	३०५१
(६२) कुवलया वध	,,	,,	३०५३
(६३) मल्ल-संहार	,,	,,	३०६५
(४) व्रज दशा	,,	,,	३१५८
(६५) गोपी विरह	,,	,	३१८२
(६६) स्वप्न दर्शन	,,	,,	३२५८
(६७) उद्धव-व्रजागमन	,,	,,	३४१२
(६८) गोपी-उद्धव-संवाद	,,	,,	३४८७
(६९) भ्रमरगीत	,,	,,	३४९८
(७०) उद्धव प्रत्यागमन	,,	,,	४०९७
(७१) उद्धव-कृष्ण वार्ता	,,	,,	४०९९
द्वारिका लीला—			
(७२) पथिक सन्देश	,,	,,	४२४८
(७३) कुरुक्षेत्र मिलन	,,	,,	४२६१
(७४) रुक्मिणी-कृष्ण वार्ता	,,	,,	४२८६
(७५) रुक्मिणी राधा-मिलन	,,	,,	४२९२
(७६) राधा माधव मिलन	,,	,,	४२९१

त्रिविध स्रोतों में उपलब्ध लीलाओं का क्रमिक संकेत –

(१) गोकुल-लीला	क, ख, ग	(१३) कालिय-दमन	क, ख, ग
(२) जन्मोत्सव	,, ,, ,,	(१४) दावानल पान	,, ,, ,,
(३) पूतना वध	,, ,, ,,	(१५) यज्ञपत्नीनुग्रह	,, ,, ,,
(४) शकट भंग	,, ,, ,,	(१६) चीरहरण लीला	,, ,, ,,
(५) तृणावर्त वध	,, ,, ,,	१७) गोवर्धन धारण	,, ,, ,,
(६) यमलार्जुन भंग	,, ,, ,,	(१८) वरुण से नन्द की मुक्ति	,, ,, ,,
(७) वृन्दावन गमन	,, ,, ,,	(१९) रासारम्भ	,, ,, ,,
(८) वत्सासुर वध	,, ,, ,,	(२०) [illegible]	,, ,, ,,
(९) बक-वध	,, ,, ,,	(२१) गोपी विरह	,, ,, ,,
(१०) अघासुर वध	,, ,, ,	(२२) प्राकट्य	,, ,, ,,
(११) ब्रह्मा द्वारा वत्स हरण	,, ,, ,,	(२३) गोपियों के प्रणयोद्गार	,, ,, ,,
(१२) धेनुकासुर वध	, , ,,	(२४) रास क्रीड़ा	,, ,, ,,

१ [illegible] ने [illegible] दिया है।

	क	ख	ग
(२५) जल-क्रीडा	क	ख	ग
(२६) अक्रूर आगमन	,,	,,	,,
(२७) कृष्ण का मथुरागमन	,,	,,	,,
(२८) गोपियो का विलाप	,,	,,	,,
(२९) कुब्जा प्रसङ्ग	,,	,,	,,
(३०) उद्धव आगमन	क	ख	ग
(३१) गोपी उद्धव सवाद	,,	,,	,,
(३२) उपालम्भ वर्णन	,,	,,	,,
(३३) उद्धव सदेश	,,	,,	,,

किन्हीं दो स्रोतों में लीला साम्य

(१) शरद् वर्णन	क, ख
(२) वेणु गीत	,, ,,
(३) कृष्ण ब्रजागमन-सौन्दय	,, ,,
(४) गोपी गीत	,, ,,
(५) भ्रमर गीत	,, ,,
(६) कुरुक्षेत्र मिलन	,, ,,
(७) राधा	ख, ग
(८) राधा कृष्ण मिलन	,, ,,
(९) राधा कृष्ण विहार	,, ,,
(१०) राधा-कृष्ण विवाह	,, ,,
(११) वसन्त विलास	,, ,,
(१२) राधा कृष्ण रास	,, ,,
(१३) राधा कृष्ण अन्तर्धान	,, ,,
(१४) राधा गव तथा ,,	,, ,,
(१५) राधा कृष्ण वनविहार	,, ,,
(१६) कृष्ण द्वारा प्रलम्ब वध	,, ,,
(१७) चीरहरण प्रसङ्ग मे कदम्ब वृक्ष[1]	
(१८) अन्न प्राशन	ख ग
(१९) स्वप्न दर्शन	,, ,,
(२०) कृष्ण का स्त्री रूप धारण	,, ,,

लीला वैलक्षण्य

(१) श्रीधर अग भग	ग
(२) कागासुर वध	,,
(३) बाल छवि	,,
(४) गो, गोष्ठ, ग्वाल और गोपाल	,,
(५) पनघट लीला	,,
(६) दान लीला	,,
(७) मान-लीला	,,
(८) ग्रीष्म लीला	,,
(९) झूलन लीला	,,
(१०) नेत्र लीला	,,
(११) गरडी प्रसङ्ग	,,
(१२) कुन्ज लीला	,,
(१३) शखचूड वध	,,
(१४) मुरलीप्रति गोपीवचन	,,
(१५) मुरली वचन गोपीप्रति	,,
(१६) कृष्ण का भावुकता, उद्धव कृष्ण वार्ता, कुरुक्षेत्र मे मिलन प्रसङ्ग	,,
(१७) रास यात्रा	ख
(१८) राधा का दु स्वप्न और कृष्ण द्वारा सान्त्वना	,,
(१९) कृष्ण प्रवास काल म राधा का विलाप और मूर्च्छा	,,
(२०) राधा-उद्धव सवाद	,,
(२१) राधा विरह वर्णन	,,
(२२) राधा-काम दशा	,,

१ भागवत म चीरहरण प्रसङ्ग म नीपवृक्ष (१०/२२/९) का उल्लेख हुआ है। यद्यपि नीप और कदम्ब पर्याय हैं तथापि 'नीप' का एक अर्थ 'अशोक' भी होता है। भागवत इन दोनो में स्पष्टत भेद मानता है, जैसे 'कदम्बनीप' (१०/३०/९)

उक्त तुलनात्मक प्रसङ्गों में विशेषतः कृष्ण की ब्रज लीला का ही समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त मथुरा और द्वारिकावासी कृष्ण के चरित्र में जहाँ कहीं भावुकता के दर्शन हुए, उनका यथास्थान सन्निवेश कर लिया गया है। ऐसे प्रसङ्ग उद्धव-कृष्ण संवाद, कुरुक्षेत्र मिलन आदि के हैं। इन प्रसङ्गों का जैसा मधुर विन्यास सूर ने किया है वैसा अन्यत्र नहीं। इसलिए जैसा कि ऊपर सङ्केत किया गया, सूर की कृष्ण-लीला में भगवत्ता के स्थान पर उत्तरोत्तर मानवीय भावुकता का अतिरेक होता गया है। इसी कारण ब्रजभाषा काव्य के कृष्ण का स्वरूप अतिशय भावात्मक हो उठा है। वैसे, पुराणों में ब्रह्मवैवर्त में भी इसके सूक्ष्म सङ्केत मिलते हैं, किन्तु, सूर की कवि प्रतिभा के संयोग से इसमें एक अपूर्व कमनीयता आ गयी है। विद्वानों ने इसी ओर लक्ष्य करते हुए सूरसागर के कृष्ण चरित में भाव विकास की कल्पना की थी।[1] कृष्ण काव्य के उक्त व्यापक और तुलनात्मक गवेषण से यह कल्पना मात्र न होकर अब वस्तुमुखी प्रयत्न के रूप में सत्य सिद्ध हो गयी है। साथ ही, इस अध्ययन से कृष्णचरित में भाव विकास की सम्भावना के निषेध का भी पूर्णतः प्रत्याख्यान हो गया है। इस भाव विकास का पूर्ण रूपेण दिग्दर्शन आगे कराया जायगा।

---

१ डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा—'सूरदास' (पृ० ३७९–३७१) — सूर का शृङ्गार-वर्णन'

पंचम अध्याय

अवतारवाद की पृष्ठभूमि मे कृष्ण

अनुच्छेद–१

★अवतारवादी परम्परा में कृष्ण

अनुच्छेद–२

★पूर्णावतार कृष्ण

अनुच्छेद–३

★लीलावतार कृष्ण

अनुच्छेद–४

★युगलावतार कृष्ण

अनुच्छेद–५

★रसावतार कृष्ण

प्रथम अनुच्छेद

अवतारवादी परम्परा में कृष्ण

भक्ति के लिए भगवान् के साथ वैयक्तिक सम्बन्ध की कल्पना आवश्यक है। ईश्वर अनन्त और असीम है और जीव सान्त और ससीम किन्तु यह सान्त का विषय है। उसके भावात्मक स्वरूप की कल्पना कर उसके साथ विभिन्न रागात्मक सम्बन्धों की परियोजना ही वैष्णव भक्ति का मूलाधार है। कृष्णावतार में इस रागात्मक सम्बन्ध की सर्वाधिक अनुकूलता है। पुराणों की कृष्ण लीला में वर्णित यह रागात्मक सम्बन्ध अनेक रूपों में प्रकट हुआ है। यह लीला पौराणिक युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

ध्यान से देखने पर पुराणों का मूल प्रतिपाद्य ज्ञेयब्रह्म ही है। जिसके सम्पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि जीव का चरम लक्ष्य है। किन्तु, इसका प्रतिपादन जिस रूपक शैली में किया गया उसके मूल में मानवीय मनोराग है। इसीलिए, उपनिषदों के रस रूप ब्रह्म यहाँ लीलापुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण बन गये हैं। यहाँ वह सुन्दर होकर, प्रिय होकर, पुत्र बन्धु अथवा प्रेमी बनकर वैयक्तिक प्रेमपाश में आबद्ध हो गये हैं। इस समय वे मथुरा का राजत्व त्याग, बाँसुरी हाथ में लिए, वृन्दावन के गोपबालकों के दल में मिलकर आ खड़े होते हैं।[1] कृष्णावतार का यही रहस्य और यही प्रयोजन है।

यद्यपि श्री मद्भगवद्गीता में, जिसे अवतारवाद का एक प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है, ईश्वर के इस धरतीतल पर अवतरण का मूल उद्देश्य धर्मसंस्थापन[2] और दुष्ट दलन माना गया किन्तु परवर्ती युग में भक्तानुग्रह[3] और आनन्दवादी लीला कल्पना को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया। यह लीला, जैसा कि पहले देखा गया कमनीय मानव मूर्ति धारण कर ही सम्भव है। इस मूर्ति को धारण करने वाला कृष्णावतार मनुष्य की समस्त रागात्मक वृत्तियों का केन्द्रबिन्दु बन गया है।[4] मध्यकाल का साहित्य अवतार रूप में मान्य ईश्वर की मधुर लीलाओं का आगार है। यही ईश्वर भावात्मक कृष्ण हैं जिनका आविर्भाव मनुष्य के मधुर दिव्य राग भावों से हुआ है। स्वयं अवतारवाद दर्शन की अपेक्षा काव्य की उपलब्धि अधिक है।[5] अतः अवतारवाद के वृत्त में आने वाले कृष्ण और उनकी समस्त लीलाओं का काव्य के औरस उपादान भाव के मधुर स्वरूप में दिग्दर्शन स्वाभाविक ही है।

---

१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर– वैष्णवधर्म का मूलतत्त्व –विश्वभारती पत्रिका जनवरी १९४५ (अनुवादक मोहन लाल वाजपेयी)

२ गीता–४/७ ८

३ लघुभागवतामृत–'स्वलीलाकीर्तिविस्ताराद् ।।'

४ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी– मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद' शीर्षक शोध प्रबन्ध की भूमिका

५ 'मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद' (पृ० १९)–डॉ० कपिलदेव पाण्डेय।

महाभारत—कृष्णावतार की कल्पना महाभारत के नारायणीय खण्ड म देखी जा चुकी है। इसम वर्णित छ अवतारा मे वराह, नृसिह वामन, भागव राम (परशुराम) तथा दाशरथि राम के साथ वासुदेव कृष्ण का भी नाम आता है। यहाँ विष्णु या नारायण के कृष्ण रूप मे तथा इन्द्र के अर्जुन रूप में अवतरित होने के अनेकश उल्लेख हैं। यहाँ सवत्र ही उनके अवतारत्व का परिचायक 'पुरुषसूक्त' से विकसित विराट रूप रहा है। किन्तु, यह कृष्णावतार की भावना का आरम्भिक काल है। इसीलिए महाभारत तथा खिल हरिवश मे इस अवतारवादी धारणा के विरुद्ध कितने ही प्रतापी सामन्तो का स्वर फूटा है। कृष्ण ने विराट स्वरूप द्वारा इन विरोधी स्वरो को शा त कर दिया।

गीता के कृष्ण भी तटस्थ ब्रह्म नही हैं। बल्कि, वह परब्रह्म के अवतारी स्वरूप तथा भक्तो के भगवान् हैं। ज्ञानी और कमकाण्डी उनके एक रूप को जानते हैं। परन्तु भक्त उन्हें जानते भी हैं, देखते भी हैं और उनसे मिलकर एक भी हो जाते हैं।

हरिवंश पुराण—खिल हरिवश म भी उक्त छ अवतारा की चर्चा बनी हुई है। यहा उनकी शृङ्गार लीलाओ का समावेश होने पर भी गोपाल कृष्ण का दुष्टदमन रूप ही प्रधान है। 'हरिवश की हालीसक क्रीडा ही भागवत की रास लीला का पूव रूप है।'[1] इसे यथाप्रसग पहले ही सिद्ध किया जा चुका है।

विष्णु पुराण—इस पुराण म कृष्ण की अपेक्षा विष्णु का महत्त्व अक्षुण्ण है यहाँ कृष्ण विष्णु के अशावतार हैं। इसके सृष्टि खड मे परब्रह्म विष्णु के अवतार रूप के अतिरिक्त उसके पुरुष, प्रधान आदि जो व्यक्त रूप कहे गये हैं उन्ह उसकी बाल क्रीडा या लीला कहा गया है।[2]

इसके अतिरिक्त यहा उनका एक प्रकृति पुरुष वाला स्वरूप भी है जिसके माध्यमा से वह प्रयोजनातीत लीलाएँ करते हैं। भागवत मे इस लीला का प्रसार हुआ है।

विष्णु पुराण में सवप्रथम युगल अवतार की भावना पायी जाती है। यह युगल लक्ष्मी विष्णु हैं। यही त्रेता म सीताराम और द्वापर म रुक्मिणी-कृष्ण के युगल स्वरूप म अवतरित हुए हैं। लक्ष्मी विष्णु के देव रूप के साथ देवी तथा नर रूप के साथ नारी हैं।[3] यह बात ब्रह्मववत के राधा कृष्ण युगल स्वरूप के सन्दभ म यथावत् दुहरायी गयी है। इसका सकेत पहले किया गया है।

विष्णु पुराण के युगल अवतार और लीलावाद का प्रभाव परवर्ती पुराणा की मध्यस्थता म मध्यकालीन कृष्ण चरित पर पडा है।

भागवत पुराण—भागवतपुराण अवतारवाद विषयक सर्वाधिक प्रभावशाली शास्त्र है। इसम वर्णित अवतार विषयक ३ स दभ हैं। प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय म २२ अवतारो के नाम हैं। इसके २३ वें श्लोक म राम के साथ कृष्णावतार की चर्चा है। २८ वें

१ आचाय ह० प्र० द्विवेदी–'श्री कृष्ण की प्रधानता' (मध्यकालीन धमसाधना–पृ० १२९)
२ वि० पु०–१/२/१८
३ वि० पु०–१/२/१८

सूत्र में कृष्ण को स्वयं पूर्ण भगवान् मानकर अन्य स्वरूपों को उन्हीं का अंश या कलात्मक रूप माना गया है।[1]

द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में इनकी संख्या २३ है पर अन्यत्र इन्हें २४ बतलाया गया है। इसके २६ वें श्लोक में श्वेत और कृष्ण केशों से यदुकुल में जन्म लेने वाले राम कृष्ण का उल्लेख है। अवतार कृष्ण की सम्पूर्ण लीला का विस्तृत प्रोद्भास है।

एकादश स्कन्ध के नवें अध्याय में केवल १६ अवतारों के नाम गिनाये गये हैं।[2]

भगवान् वैकुण्ठ आदि धामों में ३ रूपों में रहते हैं- (१) स्वयं रूप (२) तदेकात्म रूप और (३) आवेश रूप।

स्वयंरूप भगवान कृष्ण हैं। यह सच्चिदानन्द विग्रह परम सौन्दर्य निकेतन तथा सर्वश्रेष्ठ हैं 'प्रथमा' इनकी लीलाशक्ति है। तदेकात्म रूप में उन अवतारों की गणना होती जो तत्त्वत भगवद्रूप होकर भी रूप और आकार में भिन्न होते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह आदि लीलावतार इसके उदाहरण हैं।[3] आवेश रूप में भगवान ज्ञान, शक्ति आदि मन तत्त्वों द्वारा महान् पुरुषों में आविष्ट होकर निवास करते हैं। नारद आदि ऐसे ही अवतार हैं।

भागवत की अवतारवादी कल्पना में सामञ्जस्य की भावना सन्निहित है। इसी उद्देश्य से भगवान् के तीन प्रकार के अवतारों की कल्पना की गयी है। ये अवतार हैं-

(१) पुरुषावतार
(२) गुणावतार
और (३) लीलावतार

पुरुषावतार के भी ३ वर्ग हैं-(१) प्रथम पुरुष, (२) द्वितीय पुरुष और (३) तृतीय पुरुष। प्रथम पुरुष सम्पूर्ण सृष्टिकर्त्ता हैं। द्वितीय पुरुष समष्टि कर्त्ता हैं। और, तृतीय पुरुष व्यष्टि कर्त्ता अन्तर्यामी हैं।

गुणावतार ३ हैं। सत्त्वगुण प्रधान ब्रह्मा हैं। रजोगुण प्रधान विष्णु हैं। तथा तमो गुण प्रधान महेश हैं।

लीलावतार २४ हैं। वामन, नृसिंह, बलराम, बुद्ध आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं। इनमें कृष्ण अवतार नहीं अवतारी हैं।

भागवत के भगवान—भागवत में भगवान की महिमा सर्वोपरि है। इन अवतारों के अतिरिक्त भागवत में अखण्डज्ञान स्वरूप तत्त्व के ३ रूप हैं— (१) ब्रह्म (२) परमात्मा और (३) भगवान[4]। ब्रह्म ज्ञान गम्य है। परमात्मा शक्ति सिद्ध है। पर भगवान

---

१ भागवत-१/३/२८-'एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'
२ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी-'अवतारवाद' (मध्यकालीन धर्म साधना, पृ०-१२१)
३ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी-'अवतारवाद' ('मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० १२१)
४ भागवत-१/२/११-'वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
।ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।

भक्ति भावित हैं। ब्रह्म मे सत् का अश है, चित् और आनन्द का तिरोभाव है। परमात्मा में चिदश है, सत् और आनन्द का वहाँ अभाव है। किन्तु, भगवान त्रिगुणविशिष्ट पूर्णानद घन विग्रह हैं। उसम आन द का पूर्ण आविर्भाव है। कृष्ण आनन्द स्वरूप भगवान हैं। वह भक्तो के चरम आस्वाद्य हैं। भक्तो के आस्वादन के लिए ही वह नाना प्रकार की लीलाओं का प्रसार करते हैं। यह लीला प्रेम और आनन्द का हेतु है। यह आन द अलौकिक है। इसी अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हेतु भक्त स्वग अपवग की कामना का तिलाजलि दे देता है। अत ज्ञान कम की अपेक्षा भक्ति ही श्रेयस्कर है। भक्ति की महिमा गीता[1] और भागवत[2] म स्पष्टत उल्लिखित है। भक्ति के लिए भगवान पुरुषोत्तम की लीला, कथा आदि के रस के अन्तरतम म निषेवन का भागवत द्वारा सविधान हुआ है।[3] लीलावाद के पूर्ण प्रसार के लिए पुरुषोत्तम कृष्ण में पूर्णत्व की कल्पना हुई। यानी, कृष्ण पूर्ण सच्चिदानन्दघनविग्रह हैं। इसी पूर्णत्व की ससिद्धि के लिए उनके चरित्र मे विरुद्धधर्मिता तथा सवकर्तृत्व की क्षमता प्रदर्शित हुई। और, इसीलिए उनकी लीलाओ में उत्तान शृङ्गार तक का समावेश किया गया। स्थानभेद से इनके भी ३ वग हैं–वृ दावन लीला, (२) मथुरालीला और (१) द्वारका लीला। यह भक्ति साधको के निमल चित्त की गहन उदात्त वृत्ति के अभाव मे सवथा दुरवगाह है। इसे निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

ब्रह्म	परमात्मा	भगवान्
ज्ञान	कम	भक्ति
सत्	चित्	आन द
मथुरा	द्वारिका	वृ दावन

शकराचाय ने भक्ति उपासना की ५ विधियाँ बतायी थी। ज्ञानामृत सार मे इसकी सख्या स्मरण, कीतन व दन, पादसेवन, अचन और आत्मनिवेदन–ये छ हो गयी। भागवत मे

१ गीता–'तपस्विभ्योऽधिको योगी योगिनामपि श्रद्धावान्युक्ततमो मत ॥'

२ भागवत–'न साधयति मा योगो न साख्या धम उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिममोर्जिता ॥ ११/१४/२०

३ भागवत–१२/४/४०

आकर इसमे ३ और भाव बढ गये—श्रवण, दास्य और सख्य। इस प्रकार नवधा भक्ति का विकास समझना चाहिए। ऐकांतिक भक्ति इनका सार सर्वस्व है। मध्यकालीन काव्य मे भागवत के अवतारवाद और ऐकान्तिक भक्ति का ही अनेकविध प्रसार हुआ है।

आलवार—विष्णु के अवतार राम और कृष्ण की भावना तथा लीला-कल्पना का काव्य म प्रथम समावेश दक्षिण के आलवार भक्तों ने किया। उनकी भावावेशमयी गीतियों और भक्ति गाथाओ म भगवान कृष्ण की अवतार लीलाएँ उनकी बाल्य और किशोर छवियाँ प्रतिबिम्बित हुईं। इनमे पेरियाल्वार की वात्सल्य लीला और आण्डाल की माधुर्य भक्ति का अन्यतम महत्त्व है। कालान्तर म जब भक्ति का यह ज्वार उत्तर भारत की विभिन्न लोक भाषाओ मे उमडा तो १६ वी शती के सूर और मीरा ने वात्सल्य और माधुर्य भाव की कृष्ण भक्ति की सर्वोपरि महिमा और मादव प्रदान किया। आल्वारो की अवतार लीला की सर्वोपरि विशेषता है उनकी विष्णु धर्मिता। उन्होने राम और कृष्ण की लीलाओ का बिना किसी साम्प्रदायिक अन्तर्भेद के समान भाव से गान किया।

आचार्य—आल्वारो के उत्कट आत्म समर्पण, माधुर्य भक्ति, वात्सल्य भावना सबो को अपने भक्ति सिद्धान्तो मे गूथ कर वैष्णव दर्शन का ताना बाना बुनने वाले दक्षिण के आचार्यों की अध्यात्म साधना को कभी विस्मृत नही किया जा सकता। इन्ही आचार्यों ने दक्षिण की भक्ति भावना का उत्तरापथ मे प्रचार कर इसे एक व्यापक जन आन्दोलन का स्वरूप दे डाला। मध्ययुग की वैष्णव भक्ति का उद्बोधन स्वर इन्ही आचार्यों का है।[1] अत इस युग की समस्त काव्य सम्पदा और लोक जागरण पर इनका ऋण स्वीकार किया जा सकता है।

इन्होने शकर के अद्वैतवाद के स्थान पर लीलावाद और अवतारवाद का स्वरूप स्थिर किया। इनमे रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और निम्बार्क प्रसिद्ध हैं। इनम से कृष्णावतार की भावना को लेकर चलने वाले दो प्रमुख आचार्य हैं—निम्बार्क और वल्लभाचार्य। मध्वाचार्य का द्वैतवाद विष्णु लक्ष्मी के युगल अवतार से सम्बद्ध है।

निम्बार्क के द्वैताद्वैत म राधा-कृष्ण युगल स्वरूप की दर्शन मे प्रथम प्रतिष्ठा हुई है। यहाँ कृष्ण ही स्वय ब्रह्म हैं। यही परमात्मा अथवा परब्रह्म कहलाते हैं।

'असल मे दक्षिण का वैष्णव मतवाद ही भक्ति आन्दोलन का मूल प्रेरक है।'

वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद म भगवान कृष्ण परब्रह्म पुरुषोत्तम रूप मे पूजित हैं। वह परमानन्द स्वरूप हैं। तथा, श्रुतियो की प्रार्थना पर उनका अवतरण उन्ह आनन्द देने के लिए ही हुआ है। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग मे यद्यपि माधुर्य भक्ति का निषेध नही है तथापि उन्होंने बालकृष्ण का ही अपना उपास्य रूप घोषित किया। वल्लभ मत मे कृष्णावतार का सांगोपांग स्वरूप निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

---

१ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी–'हिन्दी साहित्य की भूमिका (पृ० ५३)–
'असल म दक्षिण का वैष्णव मतवाद ही भक्ति आदोलन का मूल प्रेरक है।'

परब्रह्म	अक्षर ब्रह्म	जगत ब्रह्म
ह्लादिनी शक्ति	सवित् शक्ति	सधिनी शक्ति
अगणितानन्द	गणितानन्द	जगदानन्द
गोलोक	ब्रह्माण्ड	विश्व

बगाल के चैतन्य देव ने अपने अचिन्त्य भेदाभेदवाद म राधा कृष्ण युगल मूर्ति की प्रतिष्ठा की। इनके राधा कृष्ण रसावतार हैं। ब्रज के अन्य सम्प्रदायो पर इन्ही युगल और रसावतारो का व्यापक प्रभाव पडा।

हिन्दी भक्ति काव्य तथा रीति शृङ्गार के कवियो मे राधा कृष्ण युगल माधुय का अन्यतम महत्त्व है। कृष्ण काव्य की इन रसात्मक सरणियो पर चैतन्य दव के युगलावतार की कल्पना का सुमधुर विनियोग निस्सकोच स्वीकार किया जा सकता है। वल्लभाचाय ने यद्यपि युगलावतार को दाशनिक प्रवेश नही दिया था किन्तु उनके सम्प्रदाय मे भी इस भावभूमि का सरस विन्यास सूर के साहित्य से ही होने लगा। वस्तुत युगल और रसावतार की कल्पना कृष्ण-काव्य की सावभौम दाशनिक पीठिका के रूप मे स्वीकृत है।

द्वितीय अनुच्छेद

पूर्णावतार श्रीकृष्ण

श्रीमद्भागवत के अनुसार ईश्वरावतार के प्रथमत ३ वर्ग हैं—(१) पुरुषावतार, (२) गुणावतार और (३) लीलावतार। पुरुषावतार सृष्टि-लीला का विषय है। गुणावतार मे त्रिदेवो की गणना होती है।

लीलावतार की कल्पना म ही युगलवाद का प्रश्रय मिला है। इसके ५ वर्ग हैं—(१) स्वरूपावतार और (२) आवेशावतार है। स्वरूपावतार के भी २ भेद हैं—(क) अंशावतार और (ख) पूर्णावतार। राम और कृष्ण इसी पूर्णावतार के दो लोक प्रसिद्ध स्वरूप हैं।

राम और कृष्ण अवतार भावना का विकास भगवान् विष्णु से हुआ है। भगवान् विष्णु वैदिक काल के अनन्तर पूर्ण देव पुरुष के रूप म मा य हो चले थे। उनका केन्द्र करके वामन आदि अवतार प्रसिद्ध हुए। आगे चलकर जब उनमे षोडश कलाओं का सयोग हुआ तब वह महाकाव्यों और पुराणों म विराट पुरुष के रूप मे सपूज्य हुए। रामायण, महाभारत तथा विष्णु आदि पुराणो मे उनका पूर्णावतार होना वर्णित है। राम और कृष्ण उन्हीं के अंश रूप मे अवतरित हुए हैं। अत वहाँ ये दोनो पूर्णावतार न होकर अंशावतार रूप म ही स्वीकृत हैं। कि तु उत्तरोत्तर विष्णु के स्थान पर कृष्ण भावना महत्त्व प्राप्त करती गयी। राम और कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय म आगे चलकर इसी वद्धमान महत्त्व के कारण राम और कृष्ण ही स्वय पूर्णावतार बन गये।[1]

सवप्रथम भागवतपुराण मे विष्णु के विभिन्न अवतारो म कृष्ण का पूर्णावतार होना ध्वनित होता है। इसके प्रथम स्क ध के तृतीय अध्याय के २८ वें सूत्र म कृष्ण को स्वय भगवान् तथा अ य अवतारों को उन्हीं का अंश या कला रूप स्वीकार किया गया है।

ब्रह्मवैवत मे पूर्णावतार कृष्ण की कल्पना बिल्कुल स्पष्ट है। यहा कृष्ण अवतारी है।

कृष्ण की पूर्णावतार कल्पना में दक्षिण म प्रचलित पाचरात्र मत का यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। पाचरात्र म अंशावतार को पूर्णावतार के दीप से प्रज्वलित दीप के समान कहा गया है।

मध्वाचाय ने भी विष्णु के पूर्ण या अंश रूपो का भेद नहीं माना। उनके अनुसार परमात्मा पूर्ण है। अत उनके विकसित रूप भी पूर्ण ही हैं।

निम्बार्कसम्प्रदाय म श्रीकृष्ण स्पष्टत पूर्णावतार के रूप म कथित न होकर भी 'स्वयरूप' हैं। पुरुषोत्तमाचाय ने दश श्लोकी के अपने भाष्य 'वेदान्त रत्न मजूषा' के

---

१ 'मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद' (पृ० ३६८) डा० कपिलदेव पाण्डेय

तृतीय कोष्ठ म सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण को स्वरूपावतार माना है। चतुर्थ कोष्ठ में तो इनकी भक्ति को परम रस भी कहा गया है।

वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग मे कृष्ण पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। यह सच्चिदानन्दमय हैं। इनका स्थायी निवास व्यापी वैकुण्ठ है। यही नित्य गोलोक है। इसकी स्थिति विष्णु के वैकुण्ठ से भी ऊपर है। यहाँ वह अपनी लीला सहचारियों के साथ नित्य विहार रत रहा करते हैं। यहाँ अवस्थित नित्य वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना आदि सब नित्य हैं। यहाँ उनके अवतरण का उद्देश्य नित्य लीला है। और इस लीला का उद्देश्य स्वयं लीला ही है और कुछ नहीं—

'नहि लीलाया किंचित् प्रयोजनमस्ति। लीलाया एव प्रयोजनत्वात्॥'

इसी भावना की पुष्टि चैतन्य मतावलम्बी सम्प्रदाय मे भी हुई है। रूपगोस्वामी के 'लघुभागवतामृत' के अनुसार राम और कृष्ण मे कृष्ण श्रेष्ठतम हैं। यद्यपि ये दोनों ही पूर्णावतार हैं तथापि कृष्ण स्वयं रूप हैं। ये अंशी अथवा अवतारी हैं, अन्य अवतार या अंश मात्र हैं।

'हरिभक्तिरसामृत सिन्धु' म भी पूर्ण ब्रह्म श्री कृष्ण को अवतारी माना गया है। दक्षिण विभाग के 'विभाव लहरी' शीर्षक प्रकरण म आलम्बन कृष्ण के ६४ गुणो मे से लक्ष्मीश (विष्णु) के ५ गुणो मे से ५८ वें गुण मे कृष्ण का अवतार बीज होना वर्णित है। इसके अनुसार कृष्ण समस्त अवतारो के बीज भूत हैं। इसके उदाहरण मे गीतगोविन्द का दशावतार वर्णन उद्धृत है। आगे कृष्ण के अवतारी स्वरूप म भी पूर्णत्व की कल्पना की गयी है। कृष्ण गोकुल लीला मे पूर्णतम है। जबकि मथुरा और द्वारिका म वे पूर्ण और पूर्णतर हैं।

'भक्ति रस तरंगिणी' के अनुसार रस के आलम्बन कृष्ण पूर्णावतार है।[1]

'उज्ज्वल नीलमणि' मे कृष्ण का स्वयंरूप सर्वातिशायी है। स्वयंरूप के अन्तर्गत ही प्रकाशरूप है जिसके मुख्य प्रकाश म कृष्ण की रासलीला आदि का संविधान होता है।

व्रजभाषा काव्य मे कृष्ण के पूर्ण ब्रह्म के साथ साथ उनके पूर्णावतार और रसावतार स्वरूप की मधुर झाँकी मिलती है।

सूर ने ब्रह्मा मोह भंग के अवसर पर उन्हें जिस कृष्ण के चरणों मे झुकाया है वह पूर्णावतार ही हैं। उनके शब्दों म—

'जानि जिय अवतार पूरन, पर्यो पाइनि धाइ।'—४८५

पूर्णावतार की भावना का, रूपक की शैली म, चन्द्र की १६ कलाओं के रूप मे अभिव्यक्त करने की भी परिपाटी है। कृष्ण चन्द्र हैं। उनके रूप, गुण, शील म चन्द्र कला का सा पूर्ण विकास प्रदर्शित है। इसी का प्रदर्शन महारास की पूर्ण चन्द्रिका मे पूर्णावतार कृष्ण करते हैं। 'सूरसारावली' मे इसी से यशोदा के गर्भ से प्रकट होने वाले शिशु कृष्ण को पूर्ण चन्द्र का प्रतीक माना गया है।[2]

नन्ददास के 'दशम स्कन्ध' म भी इस पूर्णावतार का उल्लेख हुआ है।

---

१ भ० र० त०–श्लोक–५ (पृ० ५६–६०) २ सू० सा०–पद स० ३८३

तृतीय अनुच्छेद

लीलावतार श्रीकृष्ण

लीलावतार अवतारवाद का प्रारम्भिक स्वरूप नहीं है वरन् वह अवतारवाद की किंचित् विकसित दशा का प्रतिरूप है। अवतारवाद के मूल प्रयोजन म रजन की भावना के सन्निवेश से लीलावतार का आविर्भाव हुआ।

उपनिषदो मे एक ओर जहाँ ईश्वर के निर्गुण और निराकार स्वरूप की चिन्तना है वहीं दूसरी ओर उसम सगुण और साकार रूप की भी सद्भावना हुई है। वहाँ ब्रह्म जहाँ 'नेति नेति' है वही 'रसो वै स' भी है। वस्तुत उक्त दोनो वृत्तियो मे बाह्यत भेद दीखकर भी तात्त्विक अन्तर्भेद नहीं है। वेदान्तियो ने इनमे सामजस्य बिठलाने के लिए ही 'लीला' तत्त्व का अनुसधान किया था। इस लीला मे रजन के साथ रक्षण अथवा सुन्दर के साथ शिव भी स्वयमेव समाहित है। शकराचार्य ने अपने शारीरक भाष्य म 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' की व्याख्या मे इसके अहैतुकी आनन्दवादी स्वरूप को स्पष्ट किया है।[1]

ब्रह्म की कामना की ३ वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं —(१) सिसृक्षा वृत्ति (सृष्टि की इच्छा) (२) युयुत्सा वृत्ति (युद्ध की इच्छा) और (३) रिरसा वृत्ति (आस्वादनेच्छा)। पर वस्तुत पूर्वोक्त दो वृत्तियाँ सापेक्ष हैं। रिरसा वृत्ति ही स्थायी वृत्ति है रिरसा अर्थात् रमणेच्छा। इसी रमणेच्छा वृत्ति से प्रेरित होकर ब्रह्म की सच्चिदानन्दमयी लीला का आविर्भाव होता है।[2] और इस नित्य लीला के लिए जो स्वय भगवान् प्रकट होते हैं वही उनका लीलावतार है। भगवान् का यह प्रकटन भक्तानुग्रह हेतु, लीला विस्तार हेतु होता है—[3]

> 'स्वलीला कीर्तिविस्तारात् लोकेष्वनुजिघृक्षया।
> अस्य जन्मादि लीलाना प्राकट्ये हेतुरुत्तम ॥

भागवत म 'लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को 'परब्रह्म' कहा गया है। तथा, उनका सृष्टिगत, समष्टिगत तथा व्यष्टिगत इन त्रिविध चेष्टाओ का लीलात्मक रूप प्रस्तुत किया गया। प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय म ही यह स्पष्ट कहा गया है कि कलिकाल म भगवान् के अवतरण का उत्तम हेतु लीलावतरण ही है। उनकी यह लीला कपट मानुषी या नटवत् होती है।[4]

---

1 शारीरक भाष्य ब्रह्मसूत्र—२ १, ३३
2 पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—प्रकट लीला या नर लीला', (पृ० ६३५) – आचार्य ह० प्र० द्विवेदी
3 लघुभागवतामृत—२८३ 4 भागवत—1/1/16–20

इस अहैतुकी आनन्दवादी लीलावतरण की विस्तृत समीक्षा श्रीमद्भागवत की वल्लभकृत 'सुबोधिनी टीका' में उपलब्ध होती है। तृतीय स्कन्ध की सुबोधिनी टीका में यह कहा गया है कि अन्तःकरण के पूर्णानन्द से कार्योत्पत्ति के सदृश कोई क्रिया उत्पन्न हो जाती है। यही भगवान् की लीला है। इस लीला का आनन्द के अतिरिक्त और कोई प्रयोजन नहीं।[१] लीलावतार के अहैतुकी आनन्दवादी स्वरूप की मध्ययुगीन समस्त वैष्णवसम्प्रदायों ने पुष्टि की है।[२] यही लीलामय श्रीकृष्ण वल्लभ मत में रस अथवा आनन्द-स्वरूप परब्रह्म कहलाते हैं। अक्षर ब्रह्म और जगत ब्रह्म इन्हीं की २ इतर कोटियाँ हैं।

परब्रह्म की लीला के २ वर्ग हैं—(१) नित्य और (२) अवतरित। इन्हें ही क्रमशः (१) अप्रकट और (२) प्रकट लीला भी कहते हैं।[३]

नित्य लीला गोलोक में होती है। यह देव लीला है। अतः यहाँ राधा-कृष्ण का नित्य संयोग है। यहाँ की सारी वस्तुएँ नित्य हैं। वृन्दावन नित्य है। यमुना नित्य है। गोपी नित्य हैं। और, आनन्द भी नित्य है। प्रकट या अवतरित लीला में यही नित्य गोलोक भूतल पर रमणीय भूमि वृन्दावन में उतर आता है। वृन्दावन गोलोक का ही माधुर्य प्रधान प्रकाश है। यह श्रेष्ठतम आनन्द लोक है। ऐश्वर्य, माधुर्य मिश्रित लोक मथुरा है। ऐश्वर्य प्रधान लोक द्वारिका है।

तत्वतः गोलोक और वृन्दावन एक और अभिन्न होते हुए भी वृन्दावन लीला विशिष्ट है। यह देवलीला नहीं, नर लीला है। अतः इसमें शरच्चन्द्रिका के समान संयोग सुख है तो पावस की मेघाच्छन्न निशा सी वियोग वेदना भी। भक्तों के लिए नित्य संयोग की अपेक्षा मिलनोत्कंठा से विगलित मिलन विरह जन्य वृन्दावन लीला कहीं अधिक आकर्षक और कमनीय है। यह सुख देवताओं, मुनियों और यहाँ तक कि भगवान् के वक्ष स्थल में नित्य निवासभूता लक्ष्मी के लिए भी दुर्लभ है। क्योंकि इसमें प्रेम तत्त्व की प्रगाढ़ आनन्दोपलब्धि है। नित्य लीला बहुत बड़ी उपलब्धि है। भगवान् का शाश्वत रूप और भूमा रूप निस्सन्देह बड़े महत्त्व के हैं लेकिन मानव रूप का माहात्म्य अधिक है, क्योंकि मनुष्य अपनी सीमाओं से बँधा है। सीमाएँ ही उसे वास्तविकता का अनुभव कराती हैं। इसीलिए भगवान् के मनुष्य निरपेक्ष नित्य रूप की अपेक्षा उनका वह रूप मनुष्य के लिए श्रेष्ठ है जिसे वह अपने प्राणों की व्याकुलता के भीतर से प्राप्त करता है। ब्रजलीला में इसी महासत्य की अभिव्यक्ति हुई है।[४]

लीलावतार श्रीकृष्ण का इस तरह ब्रज में प्रकट होना न तो गुणावतार है, न अंशावतार और न कलावतार। कृष्ण स्वयं भगवान् हैं। यहाँ उन्हें अवतारी भी कहा जाता है। रसावतार इसी की विकसित दशा है। इसका उल्लेख आगे किया जायगा। लीलावतार से भिन्न कृष्ण के मर्यादावतार का भी स्फुट संकेत वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों में

१ वल्लभाचार्य—'नहि लीलायां किंचित् प्रयोजनमस्ति। लीलाया एव प्रयोजनत्वात्॥'

२ लोकाचार्य— 'अस्य प्रयोजनं केवलं लीला।'—तत्त्वत्रय (पृ० ८६)

३ रूपगोस्वामी लघुभागवतामृत (पृ०, २२६, ३०–३१)

४ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—'प्रकट लीला या नर लीला' (पृ० ६२७)—आचार्य ह०प्र० द्विवेदी।

मिलता है। मथुरापति, द्वारिकाधीश कृष्ण मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। इसी रूप में उन्होंने ब्रज मे भी अनेक असुरो का संहार किया था। परन्तु नन्द, यशोदा, गोप और गोपी के प्रिय कृष्ण सदा रसेश्वर पुष्टि पुरुषोत्तम हैं।[1] यहाँ वह मातृ-हृदय के आह्लादकारक पुत्र हैं, पितृ स्नेह के उपलालक लाल हैं, पुरजन परिजन के आनन्ददाता हैं तथा सबसे बढ़कर ब्रज सुन्दरियो के प्रेमालम्बन पति हैं। यहाँ वह मानवीय भावो के सुमधुर आलम्बन हैं। यही कृष्ण का भावात्मक स्वरूप है। यह अपने पारमार्थिक २४ स्वरूपो में सर्वोपरि किन्तु सर्वाधिक विलक्षण भी है।

ब्रज के कृष्ण भक्त कवियो ने कृष्ण के उक्त लीला चरित का ही मुख्य गान किया है।[2] लीला के लिए कृष्ण–बाल, पौगण्ड, किशोर और यौवन इन ४ अवस्थाओं में विलास करते हैं। इनमें भी किशोर रूप उनका सर्वाधिक नित्य प्रिय रूप है।[3] यद्यपि पुष्टि मार्ग में उनका बाल रूप ही स्वीकृत है। तथापि सूरादि भक्तो ने उनके बाल के अतिरिक्त अन्य स्वरूपो की भी विपुल अभ्यर्थना की है। अष्टछाप के ८ कवि जो कृष्ण के अष्टसखा कहे जाते हैं, रात्रिकालीन कुन्जलीला में ८ सखी के रूप में हो जाते हैं।

चैतन्य सम्प्रदाय मे किशोर कृष्ण की मुख्य दो लीलाएँ हैं– (१) कुन्ज लीला और (२) निकुन्ज लीला। कुन्जलीला का स्थायी भाव कृष्ण रति है, आश्रय गोपियाँ हैं। गोपियाँ जार (उपपति) भाव से आलम्बन कृष्ण से प्रेम करती हैं। अत उनका प्रेम परकीया भाव का है। उनकी यह रति विरह प्रधान होती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय मे भी २ प्रकार की लीलाएँ स्वीकार की गयी हैं–(१) ब्रज लीला और (२) वृन्दावन लीला। इन्हीं क्रमश कुंज लीला और निकुन्ज लीला अवतार लीला और नित्य लीला भी कहते है। इनसे जिस आनन्द की उद्भावना होती है वह भी द्विविध है। ब्रज या कुञ्ज मे होने वाली अवतार कृष्ण की लीलाओ से जो आनन्द मिलता है उसे ब्रज रस या कुंज रस कहते है। वृन्दावन या निकुन्ज मे होने वाली अवतारी कृष्ण की लीलाओ में उद्रिक्त रस को वृन्दावन रस या निकुन्ज रस कहते हैं। यह लीला नित्य और गोपनीय है। इसमें कृष्ण राधा, वृन्दावन तथा सखियो के साथ निरन्तर प्रेम केलि में आत्मविभोर रहते हैं। यहाँ राधा स्वामिनी है। वह नित्य स्वकीया भी हैं। अत स्व पर से मुक्त नित्य मिलनसुख की भावना से ही यह लीला अप्रतिहत चलती रहती है। राधा भाव की प्रधानता के कारण यहाँ कृष्ण ही राधा रति के आश्रय और राधा ही आलम्बन है।

इन लीलाओ का विस्तृत उल्लेख पुराण अवतार तथा रसावतार प्रकरण मे किया जायगा।

---

१ डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा–हि० सा० को० (१)–'लीला' शीर्षक निबंध (पृ० ६८४)

२ सूरदास–बारम्बार विचारति जसुमति यह लीला अवतारा। –२८८/१००६

३ नन्ददास– शिशु कुमार पौगण्ड धर्म पुनि वलित ललित रस।
धर्मी नित्य किशोर नवल चितचोर एकरस ॥ –सिद्धान्त पचाध्यायी (नन्ददास ग्रन्थ पृ० ३८)

चतुर्थ अनुच्छेद

युगलावतार कृष्ण

रामावत सम्प्रदाय मे युगल अवतार सीता राम हैं तो कृष्णावत सम्प्रदाय में युगल अवतार राधा कृष्ण हैं। जसा कि पहले देख चुके हैं, युगल अवतार का स्वरूप गठन यद्यपि लोकभावना से सवलित तन्त्रो और पुराणो म ही हो चुका था किन्तु काव्य मे इसका प्रथम विनियोग गीतगोवि द और तत्प्रभावित पूर्वी अचल के साहित्यदशन मे शनै शनै हुआ।

राधा कृष्ण के युगल अवतार का श्री नारायण और विष्णु लक्ष्मी की युगल भावना से सीधा सम्बन्ध है।

विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु और लक्ष्मी का सवप्रथम सयोग समुद्र मथन के पौराणिक आख्यान म हुआ। यही लक्ष्मी कृष्णावतार मे रुक्मिणी और वृन्दावन लीला मे राधा के रूप में अवतरित हुई। रुक्मिणी कृष्ण का युगल रूप ऐश्वयप्रधान है। राधा कृष्ण का युगल रूप माधुयप्रधान है। मध्यकालीन काव्य मे रुक्मिणी कृष्ण के स्थान पर राधा कृष्ण युगल मूर्ति की ही विशेष प्रतिष्ठा हुई।

विष्णुपुराण और भागवत के रास प्रसङ्ग मे किसी धन्या गोपी विशेष को लेकर अन्तर्धान होने वाले कृष्ण का वणन है। विद्वान् 'विष्णुपुराण' के 'अभ्यर्चितो' को ही भागवत का 'आराधिता' मानते हैं। गौडीय व्याख्याकारो ने इसी आधार पर भागवत म राधा का परोक्ष पद चिह्न ढूढ लिया है। अत कहा जा सकता है कि भागवत के गोपी-वल्लभ कृष्ण में ही युगलत्व का क्षीण आभास प्राप्त होता है। आगे चलकर इस युगल भावना की सम्पुष्टि ब्रह्मवैवत पुराण मे विधिवत् हो गयी है।

ब्रह्मवैवत म परब्रह्म कृष्ण अवतारी हैं। गुणावतार उन्ही के अशभूत हैं। उधर राधा भी पचशक्तिया म सर्वोपरि हैं। इन दोनो से ही विभिन्न देवी देवताओ की अवतारणा हुई है। यहा राधा कृष्ण के कई स्वरूप हैं—जसे प्रकृति पुरुष, युगल स्वरूप, युगनद्ध स्वरूप, अद्वयरूप।

'श्रीकृष्णजन्म खण्ड' के छठे तथा पन्द्रहवें अध्याय म यह कहा गया है कि कृष्ण ही लीला के लिए राधा और कृष्ण दो रूपो म अवतीर्ण होते हैं। इस विवरण से इनका प्रकृति पुरुष का सा रूप परिलक्षित होता है जिसम अद्वय रूप भी प्रच्छन्न है। रास लीला इसी अद्वय तत्व का प्रकृति पुरुष रूप म द्वय स्वरूप प्राकट्य और विलास है।—[1]

> रास मण्डल मध्यस्था रासाधिष्ठातृदेवताम्।
> रासेश वक्ष स्थलस्थां रसिका रसिकप्रियाम् ॥ ८६

ब्रह्मवैवत म राधा भाव मुख्य और गोपी भाव गौण है। इसीलिए इसम राधा कृष्ण युगल मूर्ति की सुन्दर प्रतिष्ठा हुई है। राधा कृष्ण प्रथम मिलन, राधा कृष्ण विवाह,

1 श्री कृष्ण जन्म खण्ड-अध्याय-१६

सयाग, रास, अन्तर्धान, पुर्नमिलन, वन विहार, सिद्धाश्रम मे पुर्नमिलन तथा गोलोक से अवतरण और आरोहण-इन समस्त प्रसगो म युगल लीला का रम्य प्रदर्शन हुआ है।

किन्तु, इन सबो स विशिष्ट है उसका अर्द्धनारीश्वर रूप। यह सहज और तन्त्र मत का वैष्णव युगल वाद पर पडे प्रभाव का ही प्रतिरूप है। इसके अनुसार शक्ति और शिव की एक ही स्वरूप म मुद्रा अंकित रहती है। यहाँ राधा और कृष्ण का भी एक ही स्वरूप म सन्निवेश वर्णित है। स्वय राधा कहती है[१]—

तव देहार्द्धभागेन केन वाहं विनिर्म्मिता।
इदमेवावयोर्भेदो नास्त्यतस्त्वयि मे मन ॥ २०[२]

अर्थात् तुम्हारे शरीर के आधे भाग से किसने मेरा निर्माण किया। सचमुच हम दोनो म भेद है ही नही। यह रूप अतिशय भावनाप्रवण है।

काव्य मे इस युगल भावना का अत्यन्त व्यापक प्रभाव पडा है। यदि कुल मिलाकर राधा कृष्ण युगल की शृङ्गार वर्णन परम्परा पर ही इसकी शक्तिशाली प्रेरणा का असर माना जाय तो यह अत्युक्ति न होगी। जयदेव के गीत गोविन्द तथा विद्यापति की शृङ्गारिक पदावलियो म इसी युगललीला का रसात्मक अकन हुआ है। जयदेव के गीत गोविन्द का समसामयिक दक्षिण के लीलाशुक विल्वमगल कृत कृष्णकर्णामृत है। इसम गीतगोविन्द की ही भाँति राधा विराजमान हैं। लीलाशुक न कविवर जयदेव की भाव परम्परा म ही शेषशायी और राधा पयाधरोत्सगशायी विष्णु कृष्ण का समवेत वदना की है।[२] किन्तु गीतगोविन्द म मुख्यत राधा माधव का प्रणय लीला (रह केलि) का ही रम्य अकन है। जबकि कृष्णकर्णामृत म राधा कृष्ण और गोपी अवतार-लीलाओं क भी उल्लेख मिलते हैं।

जयदेव और विद्यापति की राधा कृष्ण युगल भावना पर भागवत की लीला-परम्परा से भिन्न ब्रह्मवैवर्त की पूरी छाप है। इसका एक सशक्त दृष्टान्त रास परम्परा भी है। भागवत म यह गोपी कृष्ण रास है तथा इसका मुहूर्त शरत्पूर्णिमा है। जब कि ब्रह्मवैवर्त म यह राधा-कृष्ण गोपी रास है। तथा इसका मुहूर्त माधवी शुक्ल त्रयोदशी की पूर्ण चन्द्रिका है।[३] जयदेव और विद्यापति[४] न इसी रास परम्परा का अनुगमन किया है।

इसके अतिरिक्त वियोगिनी नायिका का जो मार्मिक स्वरूप इस पुराण म अकित हुआ, वह परवर्ती देश्यभाषा काव्य में तो राधा कृष्ण शृङ्गार वर्णन का एक अनिवार्य अग ही बन गया है। ब्रज के रससिद्ध कवि सूरदास ने राधा कृष्ण युगलावतार के उक्त सभी

१ श्री कृष्णजन्म खण्ड-अध्याय-६।

२ कृष्णकर्णामृत-१ ७२

३ ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड अध्याय- ८, श्लोक-६/७-

एकदा श्री हरिस्तत्र वने वृन्दावने शुभे। शुभे पुराणयोरेषा पूर्णचन्द्रोदय मधौ ॥ ६
मुदिता माधवे शुक्ले मासे पूर्णे त्रयोदशी। वासिते कानने रम्ये मधुपानां मनोहरम् ॥ ७

४ गीतगोविन्द-प्रथमसर्ग-तृतीय गीत। विद्यापति पदावली (बेनीपुरीसम्पादित) पदसख्या -१८१, १८२ १८३

स्वरूपो को अपने सरस पदो म व्यजित किया है । राधा कृष्ण युगलावतार के **रमण सुख** का **उद्देश्य** बतलाते हुए सूर कहते हैं–

जा कारन वैकुण्ठ बिसारत, निज स्थल मन म नहिं भावत ।

राधा काह देह धरि पुनि पुनि, जा सुख कौं वृंदावन आवत ॥ २१८५/२८०३

ऐसे ही राधा कृष्ण के **अर्द्धनारीश्वर रूप** की झाँकी सूर के एक पद म मिलती है । राधा और कृष्ण एक ही शरीर के दो अर्द्धागों के सम्मिलित स्वरूप मे ब्रज मे अवतरित हुए हैं । उनके अग प्रत्यग मे रसमाती उमगें उच्छलित हो रही हैं । छवि के सम्भार से पुलकित युगल स्वरूप को देखकर रतिपति भी प्रकम्पित हो जाता है–

राधा हरि आधा आधा तनु एकै, द्वै द्वै ब्रज अवतरि ।

सूरस्याम रस भरी उमग अग, वह छवि देखि रह्यौ रतिपति डरि ॥ १९९३/२३११

अथवा,' राधा आधा देह स्याम की ।' १६०७/२५२५

उपर्युक्त अद्वय भावना की प्रेमपूर्ण भलक निम्न पक्ति से भी मिलती है ।

'राधा कान्ह कान्ह, राधा ब्रज ह्वै, रह्यौ अनिहिं लजाति ।'

इस प्रकार, कृष्ण भक्ति काव्य म अवतारवाद के अ य रूपो की अपेक्षा युगरूप की ही विस्तृत व्यजना हुई है । वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त निम्बार्क, चत य, हरिवशी और हरिदासी सम्प्रदाय म भी राधा कृष्ण की युगल केलि की सुमधुर झाँकी उपलब्ध होती है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कवि श्रीभट्ट ने अपने 'युगल शतक' (पृ० ३) मे युगल किशोर की वन्दना की है—

जनम जनम जिनके सदा, हम चाकर निशि भोर ।

त्रिभुवन पोषण सुधाकर, ठाकुर युगल किशोर ॥७

हरि व्यास देव की 'महावाणी' (पृ० २९) म भी कृष्ण स्वरूप राधा और राधा स्वरूप कृष्ण की युगल छवि का चित्रण मिलता है ।

युगलावतार का रसात्मक व्यजना का सर्वाधिक श्रेय, गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय और उसके प्रतिष्ठापक महाप्रभु चत यदेव का है । बगभूमि प्राचीन काल से ही शाक्तो की साधना भूमि रही है । अत शाक्त तत्र की शिव शक्ति के युगल स्वरूप का वैष्णव युगलवाद पर पर्याप्त प्रभाव पडा । उधर बौद्ध सहजिया मत के युगनद्ध स्वरूप का प्रभाव भी किसी न किसी रूप म इस पर पडा है । इसलिए राधा और कृष्ण के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के समस्त आवेश को लेकर स्वय चत यदेव अवतरित हुए । और उन्होने शैव, शाक्त बौद्ध आदि मतो के सहजपथ और युगलवाद के तत्त्वो से राधा और कृष्ण युगल स्वरूप का रसमय सविधान किया । राधा और कृष्ण इस मत मे रस और रति के प्रतीक रूप म चित्रित हैं । कालान्तर म इस अद्वय युगलवाद का म ययुग के कृष्णकाव्य पर इतना व्यापक प्रभाव पडा कि कृष्ण-काव्य अनिवार्यत राधा-कृष्ण काव्य बन गया । चत यमत को दर्शन के क्षेत्र में अचिन्त्य भेदाभेदवाद कहते हैं । चत यचरितामृत के अनुसार राधा और कृष्ण एक और अभिन्न हैं । किन्तु, पूर्णत एकमेव होकर भी ये दोनो लीलारस के आस्वादनार्थ राधा और कृष्ण युगल स्वरूप म अवतरित हुए हैं—

राधा कृष्ण आदि लीला हुई देह धरि।
म या म विलासे रस आस्वादन करि॥ १५

अथवा, 'राधा कृष्ण एक तत्त्व स्वरूप। लीला रस आस्वादिते धरे दुई रूप॥' १७

मत में लीला परस्पर भिन्न होकर भी अभिन्न और अभिन्न होकर भी भिन्न है। यही 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' है। इस युगल रायागी सिद्धान्त के रूप में समता पाई। इसी कारण यह कृष्ण मत में रसिक सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है। चैतन्य की समस्त, भावोपासना का आधार राधा कृष्ण युगल-माधुर्य है। उन्होंने जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास के प्रमगीतों को अपने मत का प्रधान शृंगाधार बनाया था। स्वभावतः इस रसमार्गी सिद्धान्त का परवर्ती काव्य पर ऐसा मधुर प्रभाव पड़ा जिसे हम अद्भुत सिद्धान्त कहा नहीं। आगे चलकर ब्रज के प्राय सभी प्रेमी भक्तों ने इस रसमार्गी युगलता को अपनाया। बंगभूमि में बौद्ध धर्म के परवर्ती सहज मार्ग के विकार रूपी रस मार्ग वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में फूट पड़ा। यहाँ घट घट में युगल रस अवधारणा हुई। राधा और कृष्ण मोहन और मादन, काम और रति के प्रतीक बन गये। पुरुष स्त्री में काम रतिपरक इस सहज अनुभव को ही राधा कृष्ण के प्रेम की ऊर्ध्व परिणति के रूप में स्वीकार किया गया।[1] यह साधना परम्परा बंगभूमि में अत्यन्त प्रचलित है। चण्डीदास इस परम्परा के आदि कवि माने जाते हैं।

ब्रजभूमि में बंगभूमि की यह आराध साधना इस रूप में प्रसार न हो सकी। वरन् यह विशुद्ध वैष्णव परम्परा के भावतीय आधार पर पल्लवित हुई। स्वामी हितहरिवंश का रसमार्गी सम्प्रदाय है। इनमें कुञ्ज और निकुञ्ज लीला के माध्यम से राधा कृष्ण युगलावतार के दर्शन होते हैं।

चैतन्य मत के रससिद्ध कवि सूरदास मदनमोहन ने कृष्ण के प्राकट्य का कारण राधा प्रेम बतलाया है। राधा कृष्ण और कृष्ण राधा परस्पर एक दूसरे में निवासभूत हैं। उनके इस सम्बन्ध को घन दामिनी, धूप छाँह, लीक कसौटी तथा ऐन मन आदि प्रतीकों में लक्षित किया गया है[2]—

घाम छाँह इत घन दामिनी, उत कसौटी लाव ज्यो लसत।
दृष्टि तिन ज्यो, स्वाँस बन ज्यो, ऐन मैन ज्यो गसत॥

ठीक उसी प्रकार राधा कृष्ण के परस्पर मिलन समागम के व रस तरंग का मार्मिक चित्रण निम्न पद में प्राप्त होता है—[3]

स्याम निकट सनमुख ह्व बैठो स्यामा कंचनमनि आभूषण पहिरें।
सावरे तन में प्रतिबिंबत हैं मानो स्नान करत बैठी जमुना जल में गहिरें
अंग अंग आभास तरंग गौर स्यामता सुन्दरता सोभा की लहरें।
'सूरदास मदनमोहन, मापे कही न आवति, मेरी दृष्टि न ठहरें॥ ८॥

---

१ आब्सक्योर रिलाजियस कल्ट, (पृ० १५५) डा० श० भू० दा० गुप्ता

२ सूर०मदन०-जी और पदा० (अग्रवाल प्रेस, मथुरा-पृ० ५३) श्री प्रभुदयाल मीतल।

३ ब्रजमाधुरी सार-पृ० १०४

राधावल्लभ-सम्प्रदाय की कुञ्जलीला म भी राधा कृष्ण युगलावतार का रसमय अकन हुआ है। राधा और कृष्ण परस्पर प्रेमातिरेक म इने कुञ्ज-द्वार पर ततिरस लूटने की ताक मे खडे हैं। पावस की बूदें टपक रही हैं कि‍न्तु उनकी अपेक्षा युगल-समागम की आद्र उत्कण्ठा कही अधिक है।[१]

दोऊ जन भीजत अटके बातन।
सघन कुञ्ज के द्वारे ठाढे अम्बर लपटे गातन॥
ललिता ललित रूप रस भीजी बूंद बचावत पातन।
हितहरिवश परस्पर प्रीतम मिलवत रति रस घातन॥

—स्फुटवाणी, पदसख्या–२३।

हित सेवक जी की वाणी मे भी श्यामा श्याम के नित्य स्वरूप की अभिव्यक्ति है। यहाँ वे 'एक प्राण दो देह' कहे गये हैं–[२]

श्रीहरिवश सुरीति सुनाऊँ श्यामा श्याम एक सँग गाऊ।
छिन इक कबहुँ न अन्तर होई, प्राण सु एक देह ह्वै दोई॥
राधा सङ्ग बिना नही श्याम, श्याम बिना नहिं राधा नाम।

—सेवक वाणी, प्रकरण–४, पदश०७–६

उक्त राधा-कृष्ण के युगल-स्वरूप की अद्वयता का आभास इस सम्प्रदाय के कवि हरिराम व्यास के पदो मे भी मिलता है। उन्होने भी राधा माधव को 'एक प्राण दो देह' कहा है–[३]

राधा माधव सहज सनेही।
सहज रूप गुन सहज लाडिले, एक प्रान द्व देही।

—व्यासवाणी (उत्तरार्द्ध)–पद स०–४, पृ०२०३

इ हान राधावल्लभ कृष्ण के नित्य स्वरूप के अतिरिक्त इनके नैमित्तिक या अवतरित स्वरूप का भी उल्लेख किया है।

हरिवश सम्प्रदाय की भाँति हरिदासी-सम्प्रदाय मे भी राधा कृष्ण के युगल स्वरूप का झिलमिल चित्र अकित है। इन्होने राधा कृष्ण के गौर श्यामल रूप को घन दामिनी की नाईं चित्रित किया है–

'माई री सहज जोरी प्रकट भई रग की गौर स्याम घन दामिनी जसे।'[४]

सखी-सम्प्रदाय के कुञ्ज विहारी कृष्ण और राधा के युगल सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिये उक्त 'घन दामिनी' पद जैसे रूढ प्रतीक बन गया है। कवियो ने इसी के द्वारा उनके नित्य सयोग की अवस्था का चित्रण किया है।

---

१ राधावल्लभ-सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य (पृ० ३२१) डॉ० विजयेन्द्र स्नातक।
२ वही (पृ० ३५६) वही
३ वही (पृ० ३८६) वही
४ केलिमाल–(पृ०६), पद स० १

पचम अनुच्छेद

रसावतार कृष्ण

रसावतार राधा कृष्ण युगल भावना की पूर्ण रसात्मक परिणति है। ध्यान से देखने पर अवतारवाद के मूल म ही मानवीय रागवृत्ति का सन्निवेश है। लीलावतार में आकर अवतारवाद का लोक-कल्याणपरक धार्मिक प्रयोजन लोकोत्तर आनन्द भावना म विलीन हो गया। ब्रह्म के विराट स्वरूप के स्थान पर रसमय रूप ('रसो व स') की उद्भावना हुई। और इस रस रूप आनन्द की उपलब्धि के लिए—('रस ह्येवाय लब्ध्वा नन्दी भवति') वह प्रकृति पुरुष के रूप म द्विधाविभक्त हुआ।[१] अवतारवाद के भीतर इसी प्रेरणा से विष्णु के अशावतारो म युगलभावना का प्रसार हुआ। फलत सीताराम के साथ साथ राधा कृष्ण युगल मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई। इस युगल मूर्ति म शैव शाक्त बौद्ध आदि मतो के मिथुन तत्व से पर्याप्त द्रव सयुक्त हुआ। बल पाकर मावुक पुराणकारो (पद्म ब्रह्म वैवर्त आदि) शृङ्गारी कवियो (जयदेव विद्यापति चण्डीदास) तथा भाव साधक भक्तो (चतन्यदेव) ने इस युगल तत्व म प्रेम, सौन्दय और शृङ्गार का आगार प्रस्तुत कर दिया। फलत मध्ययुगीन ब्रजभाषा काव्य म श्रीकृष्ण के रसात्मक रूप की सुमधुर व्यजना हुई। यह रूप मध्ययुगीन काव्य का औरसरूप है। इसके विकास मे उपनिषदो की रस कल्पना से लेकर पुराणो की भाव-कल्पना लोक मानस की प्रेम प्रवणता काम शास्त्र के कामाध्यात्म तन्त्रो के मिथुन तत्त्व और काव्य की शृङ्गार धारा का समवेत प्रतिफलन हुआ है। स्वभावत कृष्ण का रसावतार स्वरूप मध्ययुगीन काव्य का सार्वभौम प्रतीक बन गया है। रसावतार कल्पना के साथ कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप अ यो य भाव से सयुक्त है। अत इसका सागोपाग विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

रसावतार कृष्ण की कल्पना म तैत्तिरीय उपनिषद्, ब्रह्मानन्द वल्ली सूत्र–२/७ के परम प्रसिद्ध रस सूत्र– रसो वै स। रस ह्येवाय लब्ध्वानन्दी भवति। की अन्तवर्ती प्रेरणा परिलक्षित होती है। इसके अनुसार (सुकृत) ब्रह्म रसमय है। यह रस उपलब्ध करके ही आनन्दित होता है। इसी उपनिषद् म ब्रह्म को आनन्द का पर्याय कहा गया है–[२] आनन्दो ब्रह्म। ब्रह्म की इस आनन्द स्वरूपता म उसके सत् और चित् ये दो रूप पूर्णत निमग्न हो गये है। गोपाल तापिनी म सच्चिदानन्द के रसमय रूप की आनन्दस्वरूपता का स्पष्ट उल्लेख है–[३]

'विज्ञानघन आनन्दघन सच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठति'।

उक्त उद्धरणो से ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्म के रसानन्द स्वरूप का आविर्भाव वैदिक

---

१ तैत्तिरीय उपनिषद्–ब्रह्मानन्द वल्ली—२/७

२ तैत्तिरीय उपनिषद् भृगुवल्ली–२/६

३ गोपाल तापिनी–७९

काल से ही निरन्तर होता रहा है। वष्णव शास्त्रों म आकर इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कृष्ण चरित स हो गया। ब्रह्मसंहिता के प्रारम्भिक श्लोको म इसका प्रमाण उपलब्ध है-[1]

ईश्वर परम कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रह ।
अनादिरादिर्गोविन्द सर्वकारणकारणम् ॥

यहाँ स्पष्ट परमेश्वर कृष्ण को आनन्द का विग्रह प्रदान किया गया है। रस की इस आनन्द-स्वरूपता का सकेत चरक संहिता स भी होता है जहाँ उसे तत्व गुण के रूप म खोज कर छ ऐन्द्रिक स्वादो (षट्रस) म व्यक्त किया गया है।

उधर काव्य रस की भी तद्वत् स्थिति है। आचाय भरत के नाट्यशास्त्र मे रस के स्वरूप निर्माण म षट्रस सयोग तथा नाना भावो के उपगम का सकेत है। जैसे, गुणादि द्रव्यो से षटरस बनते ह वैसे ही नाना भावो से संयुक्त स्थायीभाव रस बनते हैं। ऋषि पूछते हैं- रस क्या (पदार्थ) है ?' उत्तर है- आस्वाद आना ही रस है।' वह फिर पूछते हैं- यह आस्वाद कैसे आता है ? आचाय आगे उत्तर देते हैं—

यथाहि नानाव्यञ्जनसंस्कृतमन्न भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति
सुमनस पुरुषा हर्षादींश्चाप्यधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनय व्यञ्जि
तान् वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनस प्रेक्षका ।[2]

अर्थात् जैसे भाँति भाति के व्यञ्जनो म पके हुए अन्न को खाते हुए सहृदय लोग रसो का आस्वाद लेते हैं और प्रसन्न होते हैं वैसे ही दशक नाना भावो के अभिनय से व्यजित स्थायी भावो का आस्वाद ग्रहण करते हैं।

निष्पन्न काव्यास्वाद (नाट्यरस) भी आनन्दमूलक होता है जिसकी अभिव्यजना ऐन्द्रिक रसो द्वारा करायी जाती है। इस कसौटी पर कृष्ण चरित और कृष्ण लीला की आनन्दवादी धारणा को परखते हुए इसके भावात्मक स्वरूप का भली भाँति हृदयगम किया जा सकता है।

भरत ने इसी प्रकरण म आगे चलकर रसो के वर्ण में सवप्रथम शृङ्गार रस को श्याम' तथा उसका देवता विष्णु माना है।[3] तथा उसके 'उज्ज्वलवेष' का उल्लसित उल्लेख किया है। इसी प्रसग मे शृङ्गार रस के सयोग वियोग य दो विभेद करते हुए सयोग के अन्तर्गत 'लीला' आदि विभावो (लीलादिभिर्विभावै) की चर्चा की गयी है।

उपर्युक्त सभी सन्दर्भों पर सूक्ष्म रूप से विचार करने पर ऐसा अनुमान होना अश्रद्धेय नहीं है कि भरत के नाट्य शास्त्र निरूपण-काल तक शृङ्गारदेव श्रीकृष्ण की लीलाओ का सूत्रपात हो चुका था। यद्यपि उस समय ये लीलाएँ परम सयत थी। इसका कारण सम्भवत यह था कि गोपाल कृष्ण की लीलाओ का विष्णु के भगवदैश्वर्य स भिन्न स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं बन पाया था। फिर भी शृङ्गार रसो मे सर्वोपरि मान्य हो चुका था। सम्भवत यह स्थिति कृष्ण चरित म-

१ ब्रह्मसंहिता श्लोक-१।

२ नाट्यशास्त्र-रस वर्णनम्-६/२६ से आगे का गद्य (चौखम्भा संस्कृत सिरीज संस्करण)

३ वही-६/४२ तथा ४४।

'गोपवेपस्य विष्णो' की रही हो। इसकी पुष्टि 'गोपालपूर्व तापिनी' की इस श्रुति से भी होती है[1]–

'गोपवेशमभ्राभ तरुण कल्पद्रुमाश्रितम्।'

इस तरह ब्रह्म व रसविग्रहत्व के साथ ही कृष्ण के गोपवेश की रसात्मता प्राप्त हुई। आगे चलकर अवतारवाद के आनन्दवादी प्रयोजन से कृष्ण की रसरूपता को यथेष्ट बल मिला। फलत विष्णु आदि प्राचीन पुराणों में उसकी तेजयुक्त (असुरवध) शृङ्गार लीलाओं का आविर्भाव हुआ। यहाँ उसे रसविग्रह और सच्चिदानन्द स्वरूप के साथ-साथ नर विग्रह भी प्राप्त हुआ—

यत्रावतीर्ण कृष्णाख्य पर ब्रह्म नराकृति।' (विष्णु पु०-अश-५)। निष्कर्षत कृष्ण रस-विग्रह हैं, रसात्मा हैं, रसावतार हैं, और रसिक हैं। उनके इसी स्वरूप की अवधारणा से पुराणो मे कृष्णलीला इतनी विलसित हुई। दूसरे शब्दो में—

'Rasa is the ingredient of the body of the Absolute, Rasa is His attribute, & He Himself is Rasa the Absolute as Bhagawan is also called the *enjoyer of Bliss–He is Rasik*, nay, He is the trans cendental Rasik because of the fullest realisation of the Bliss'[2]

रसावतार कृष्ण गोपाल हैं। इनका वर्ण श्याम है। यह चिर किशोर तथा मुरली मनोहर है। इनका रमण क्षेत्र वृन्दावन है। इनकी लीला सहचरी गोपियाँ हैं तथा इनकी ह्लादिनी शक्ति राधा नाम से अवतरित हुई हैं ये सब इनके काय व्यूह हैं। और इन सबो के सयोग से वृन्दावन लीला अप्रतिहत चला करती है। इस लीला का उद्देश्य रस प्राप्ति अथवा आनन्द है। इनमे राधा परवर्ती कल्पना है। इस पर आगे विचार किया जायगा। सम्प्रति देखना यह है कि कृष्ण के रसावतार म जहाँ ब्रह्मानन्द और काव्यानन्द की सूक्ष्म कल्पना है वहाँ शृङ्गार लीला के मासल चित्रण में विषयानन्द कसे समाविष्ट हो गया। विद्वान् इसका श्रेय बाउल पथ[3] को देते हैं। किन्तु हम बगाल के इस वैष्णव सहजिया मत के पूर्व ही ब्रह्म के रस विग्रहत्व मे इस मूर्त उपादान को बद्धमूल पाते हैं। भारत के रसास्वाद नियम मे भी ऐन्द्रिकता अस्तित्व शून्य नही हैं। प्रत्युत सम्पूर्ण वैष्णव दर्शन ही असीम और गुणातीत ब्रह्म का सीमा और गुण मे रसास्वादन है। काव्य और शिल्प मे यही आनन्द अपने सम्पूर्ण माधुर्य के साथ व्यक्त हुआ है।[4] हाँ मार्ग मे भले ही अनेकानेक साधना पद्धतियाँ इसम सिमट गयी हैं।

---

१ गो० पू० ता०–१२।

२ The Philosophy of Vaishnava Religion (P 71) Prof G N Mallik

३ डॉ० कपिलदेव पाण्डेय– मध्यकालीन साहित्य मे अवतारवाद' (पृ० ३९७)

४ And because in the Absolute there is the relation of difference and non-difference, between substance and attribute, between self and body, therefore the absolute Himself also is styled 'Rasa or Rasaghana in the scriptural texts'—Prof G N Mallik (P V R–71)

गोपाल तापिनी श्रुति मे गोपाल कृष्ण के घनश्याम, कमलनयन, पीताम्बर और वनमाली रूप की सुषमा का भव्य अकन हुआ है। कृष्ण गोपाल हैं। गोपाल का अर्थ है 'गोपालक'। किन्तु अन्य गोपालकों या गोचारकों की नाईं इनका विग्रह पाचभौतिक नहीं है। कृष्ण रस विग्रह हैं। अत इनके लीला वपु का निर्माण अनन्त आनन्द तत्त्व से हुआ है।

कृष्ण का वर्ण श्याम है। इस वर्ण की तुलना सदा श्याम घन से दी जाती है। अत कृष्णघनश्याम हैं। पडितो ने इस वर्ण के अनेक विश्लेषण किये हैं। सर्वप्रथम आल्वार भक्तों ने इस वर्ण की उपमा अतसी पुष्प से दी है।[१] इसके अतिरिक्त उन्होंने कृष्ण को समुद्रवर्ण भी कहा है। तत्पश्चात् जीवगोस्वामी ने (कृष्ण-सन्दर्भ) इस वर्ण को अतसी फूल के रग से तुलित करते हुए इसे ३ वर्णों का सगम माना। ये ३ वर्ण हैं श्वेत, पीत और हरित। किन्तु, इन पार्थिव वर्णों की अपेक्षा उनमे दीप्तिमन्त ऐश्वर्य है। उसमे अतीन्द्रिय सम्मोहन और लावण्य है। जैसा कि 'श्याम' वर्ण के वाचस्पत्य भाष्य मे मिलता है।' 'श्यामते गच्छति मनोऽस्मिन्निति श्याम'। अर्थात् वह वर्ण जिसकी ओर मन का आकर्षण हो। वह आकर्षण विशुद्ध आनन्द की ओर उन्मुख है।

मुरली मनमोहन कृष्ण की रसात्मक सत्ता की अद्भुत प्रतिध्वनि है। यह नाद-ब्रह्म की प्रतीक है। इसकी भुवनविमोहिनी तान मे प्राणो का आकर्षण है। यह कृष्ण लीला की सर्वसमर्थ सूत्रधारिणी है। किशोर और यौवन लीलाओं का समारभ इसी की विस्मयकारिणी ध्वनि से होता है। यह कृष्ण-लीलाओं मे परम गरिष्ठ महारास का मूल प्रेरक है। इससे नि सृत दिव्य नाद समस्त ब्रह्माण्ड को पुलकित कर देता है। फिर प्रणय स्वरूपा गोपियो की क्या हस्ती थी। इसका नि स्वन समस्त चराचर पर अपनी मोहिनी डालने वाला है। आल्वारो, पुराणकारो और कवियो ने इसकी अद्भुत महिमा का सर्वाधिक प्रभावशाली चित्र खींचा है।

परियाल्वार ने कृष्ण के वेणुनाद का मर्मस्पर्शी जीवन्त चित्र खींचा है। उनके अनुसार—मृदु ऊगलियां मुरली के छिद्रो पर चलने लगी। लाल कमल के समान नेत्र वक्र हो गये। मुख मे वायु भर गयी। पसीजी हुई भौंहे कुटिल हो गयी। ऐसी अवस्था मे जब श्रीकृष्ण ने वन मे मुरली बजायी तो उस ध्वनि को सुनकर पक्षिगण अपने नीड से बाहर निकल कर श्रीकृष्ण के समीप, काट कर गिराये हुए शस्य की भाँति रह गये। गौएँ सिर नीचा किये, परो को दृढ रख कर, कान हिलाना छोड स्तब्ध खडी हो गयी। हिरणों घास चरना भूल, चबाने के लिए मुख मे ली हुई घास को धीरे धीरे नीचे गिर जाने वाले 'कवल' पर भी ध्यान न देते हुए चित्र लिखित से अंगो को स्थिर किये स्तब्ध खडे रह गये।[२] वृक्ष पिघल कर मधु की धार बहाने लगे पुष्प झरने लगे। झाडियाँ झुकने लगी। मुरली के छिद्रों से बहती हुई अमृत की धारा अग जग मे प्रवाहित हो उठी।[३] जब जड पदार्थों पर उसका यह जादू था तो कोमलमना गोपियो की क्या गति होती। परियाल्वार ने इसका

---

१ पेरियाल्वार तिरुमोलि–२/५/२

२ पेरियाल्वार तिरुमोलि–३/६/८–९

३ वही –३/६/१०–११

चित्र देते हुए कहा है कि कुतूहल भरित स्तनों वाली गोपियाँ समस्त शरीर में एक अजीब शैथिल्य का अनुभव करती हुई सास, श्वशुर का लाँघ कर सूत्रबद्ध पुष्प की भाँति कृष्ण के चारों ओर लज्जावनत होकर आ खड़ी हुई।[१] गोविन्द अपने चिबुक के वाम भाग को वायें भुज की ओर झुकाकर दोनों हाथों को मुरली पर रख अपने भ्रुवों में एक विलक्षण आकुञ्चन डाल, हवा भरकर नीचे के होंठ को सकुचाकर वेणु बजाते रहे। हिरणी गोपियाँ द्रवित मन आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र शिथिल वस्त्र तथा केशपाश को लिये, एक हाथ से उन्हें सँभालती हुई स्तिमित-सी ठिठक गयीं।[२]

वेणु नाद के इस चराचरव्यापी प्रभाव का वर्णन श्रीमद्भागवत में भी हुआ है। वेणुगीत के विचित्र क्वणन से मत्त मयूर नाचने लगते हैं, मृगियाँ कृष्णसार मृगों सहित प्रणयकटाक्ष द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा में तन्मय हो जाती हैं, सुरांगनाओं के कबरी-पुष्प केशच्युत और नीवी बन्ध श्लथ हो जाते हैं, गौएँ कृष्ण मुख से निगत होने वाले वेणुगीत के अमृत को कर्णपुटों से पीने लगती हैं, बछड़े मुख से दूध के घूँट टपकाते हुए खड़े हो जाते हैं। विहग प्रवालपत्र से सुशोभित डालियों पर बैठ निर्निमेष दृष्टि से मुरलीधर को देखते रह जाते हैं। यहाँ तक कि नदी का आवर्त भी भग्नवेग हो जाता है।[३] संगीत की इसी विचित्र तान पर आगे चलकर गोपियाँ अपने तन, मन और कुल धर्म की सुधि छोड़ती दिखायी गयी हैं। रासलीला रचने वाले रसेश्वर कृष्ण को भागवतकार ने रासपंचाध्यायी के अन्त में 'शरत्काव्यकथारसाश्रय' कहा है।[४] ऐसी स्थिति में वंशी को इसका सूत्रधार मानना सर्वथा सत्य है।

महाकवि सूर ने इस वंशी माधुरी का यथावत प्रभाव वर्णन किया है।[५]—

> 'मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी। सुनि सिद्ध समाधि टरी।
> सुनि थके देव विमान। सुर बधू चित्र समान।
> ग्रह नखत तजत न रास। वाहन बँधे धुनि पास।
> चले थाके, अचल टरे। सुनि आनँद-उमँग भरे।
> चर अचर गति विपरीति। सुनि बेनु-कल्पित गीति।
> झरना न झरत पषान। गन्धर्व मोहे गान।
> सुनि खग मृग मौन धरे। फल तृन की सुधि बिसरे।
> सुनि धेनु धुनि थकि रहति। तृन दंतहू नहिं गहति।
> बछरा न पीव छीर। पछी न मन म धीर।

१ पेरियाल्वार तिरुमोलि–३/६/१
२ वही ३/६/२–३
३ भागवत–१०/२१/११– ५
४ वही– १०/३३/२६
सूरसागर—६२३/१२४१

बेलीद्रुम चपल । भये। सुनि पल्लव प्रगटि नए।
सुनि विटप चचल पात। अति निकट कों अकुलात।
आकुलित पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात।
सुनि चचल पौन थक्यौ। सरिता जल चलि न सक्यौ।
सुनि धुनि चली ब्रजनारि। सुत-गेह-देह बिसारि।
अति थक्ति भयो समीर। उलट्यो जु जमुना नीर।
मन मोह्यौ मदन गुपाल। तन स्याम, नैन विशाल।
नवनील तन - घन श्याम। नव पीत पट अभिराम।
नव मुकुट नव वन दाम। लावन्य कोटिक काम।
मनमोहन रूप धर्यो। तब गरब अनग हर्यौ।'

यह मदनमोहन कृष्ण चिर किशोर हैं। इनकी लीला सहचरी राधा अक्षय यौवना हैं। राधा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं।[1] गोपियाँ इनकी कायव्यूह हैं।[2] गौडीय गोस्वामियों ने कृष्ण प्रेयसी राधा को महाभावस्वरूपा माना है। रसावतार कृष्ण की कान्ताशिरोमणि की भाव कल्पना नैसर्गिक ही है। 'ब्रह्मसहिता' म रसावतार का रमणीय बिम्ब सागोपाग उभर कर प्रकट हुआ है—

> 'आनन्द चिन्मय रस प्रतिभाविताभि-
> स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभि ।
> गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
> गोविन्दमादि पुरुष तमह भजामि ॥'

रसावतार के मूल म अ य प्रेरक तत्त्वा का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) लीला कृष्ण की लीलाओ म उत्तरोत्तर शृङ्गारिकता के समावेश से रसात्मक तत्त्वों का विकास हुआ। लीला सामा यत अनेक रसयुक्त घटनाओ का (वात्सल्य, वीर, सख्य, मधुर आदि) विस्तृत विलास है। किन्तु रसावतार का सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रास लीला, निकुञ्ज लीला या युगल केलि से है। लीला के त्रिविध क्षेत्र व्रज, मथुरा और द्वारिका म वृन्दावन लीला ही सर्वोपरि है।

(२) राधा—राधा वदिक कृष्णचरित म भावात्मक तत्त्व-सवलित लीला-सहचरी का प्रेमपूर्ण सयोग है। उत्तरवर्ती पुराणो म जन मानस की यह प्रेम देवी कृष्ण की प्रेयसिया मे सवप्रधान पद की अधिकारिणी हो गयी है। इनके आश्रय म राधा कृष्ण युगल स्वरूप मे अतिशय रागात्मकता और सरसता सन्निविष्ट हो गयी है। बाद मे चलकर इसे धम दशन मे भी अपेक्षित महत्ता प्राप्त हो गयी। जैसे जैसे राधा भाव प्रमुखता प्राप्त

---

१ सवभावोद्गमोल्लासो मादनोऽय परात्पर ।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव य सदा । —उज्ज्वलनीलमणि (पृ० ४०६)
(बम्बई सस्करण)

२ आकार स्वाभावभेद ब्रजदेवी गण। कायव्यूह रूप तौर रसेर कारण ॥ —च० च०

करता गया कृष्ण का रसावतार रूप निखरता गया। स्कन्दपुराण में राधा को कृष्ण की आत्मा[1] माना गया है। इसके अनुसार श्रीकृष्ण इसी आत्मा में रमण करते हैं।

(३) रसास्वादन मुख्य होने के कारण राधा कृष्ण के इस युगल स्वरूप को रसावतार कहना समीचीन ही है। उत्तरवर्ती पुराणों में अवतरण प्रयोजन अनिवार्यत राधा रमण या रसास्वादन ही बन गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कृष्ण स्पष्टत राधा से कहते हैं कि 'वास्तव में कंस के भय का बहाना लेकर मैं तुम्हारे लिए ही गोकुल में जाऊँगा। कल्याणि! तुम वहाँ यशोदा के मंदिर में मुझ नन्दनन्दन को प्रतिदिन आनन्दपूर्वक देखोगी और हृदय से लगाओगी।'[2] राधा यहाँ रतिरूपा हैं। सुशीलादि ३३ सखियाँ सचारीवत् हैं।

(४) सृष्टि-सस्थापक विष्णु—स्कन्दपुराण में विष्णु धर्म सस्थापक देवता हैं और प्रेम लीला और रजन का सम्पूर्ण सुख सिमट कर अवतारी कृष्ण में पुंजीभूत हो गया है। यहाँ रसिकों के रसखान राधा कृष्ण व्यावहारिक रसावतार के रूप में अवतरित हुए हैं।[3] ब्रह्मवैवर्त में भी असंख्य विश्व को अपने रोमकूप में धारण करने वाले महाविष्णु (महाविराट) को श्री कृष्ण का एक अंश मात्र माना गया है। कृपानिधान विष्णु (लघुविराट) भी श्रीकृष्ण के ही भय से ससार का पालन करते दिखाये गये हैं।[4]

अत यहाँ कृष्ण का आनन्दवादी रसावतरण मुख्य है।

(५) भावात्मक कृष्ण—श्रीकृष्ण ज मखण्ड में राधा कृष्ण के आविर्भाव में जिन प्रेरक तत्वों का सकेत करती है उनसे कृष्ण के भावात्मक स्वरूप पर प्रकाश पडता है।[5] राधा कहती है—मेरे प्राणों से ही तुम्हारा शरीर निर्मित हुआ है। मेरे शरीर से ही तुम्हारी मुरली बनी है और मेरे मन से ही तुम्हारे चरणों का निर्माण हुआ है। तुम्हारे शरीर के अर्द्धांग से किसने मेरा निर्माण किया? हम दोनों में कोई भेद नहीं।[1] कृष्ण कहते हैं—'शरीर के बिना प्राण कहाँ? और प्राण के बिना शरीर कैसा? देवि! शरीर और आत्मा दोनों की प्रधानता है। तुम्हारा सग पाकर ही मैं चेष्टाशील हूँ।[6]

यहाँ राधा के सयोग से कृष्ण चरित्र की भावात्मकता इतनी प्रगाढ हो चली है कि कृष्ण राधा विहीन स्वय को श्रीहीन काला व्यक्ति कहते हैं और राधासयुक्त होकर वह अपने को श्री-सम्पन्न मानते है।[7] ब्रह्मवैवर्त के कृष्ण रसिकेश्वर हैं शृङ्गारकुशल हैं कामशास्त्रविद् हैं कलाकोविद हैं।

---

१ आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ। आत्मारामतया प्राज्ञै प्रोच्यते गूढवेदिभि ॥
—वैष्णवखड (२/१)

२ ब्रह्मवैवर्त—श्री कृष्णज मखण्ड अध्याय—६ श्लोक २२६ २३० २३१।

३ स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड—२ (३/३०)

४ ब्रह्मवैवर्त—श्री कृष्णज मखण्ड अध्याय—५५ श्लोक—८, ६।

५ ब्रह्मवैवर्त—श्री कृष्णज मखण्ड अध्याय—६ श्लोक—२००—२०२।

६ वही वही , —६ श्लोक—२१३—२१८

७ वही वही —१५, श्लोक—६२।

उक्त सन्दर्भों मे राधा कृष्ण चरित्र पर छा गयी है और कृष्ण वैदिक ऐश्वय त्याग कर भावजगत की लीला सहचरी राधा की कान्ता रति मे तन्मय हो गये हैं। यहाँ तक आते आते कृष्ण का स्वरूप कान्ता सम्मिलित कमनीयता से अतिरञ्जित हो उठा है।

'गीतगोविन्द' और 'कृष्णकर्णामृत' मे श्रीकृष्ण के रसात्मक रूपो का विस्तृत वर्णन हुआ है। रासलीला और कुञ्ज विहार का अतिशय शृङ्गारिक चित्रण करने वाले जयदेव ने गीतगोविन्द के कृष्ण का कमला के कुचमडल पर आश्रित रहने वाला कहा है।[1]

कृष्णकर्णामृत के कृष्ण शृङ्गाररस सर्वस्व हैं। उन्होने लीला रस के आस्वादन के लिए ही नराकार रूप धारण किया है—

शृगार रस सर्वस्वम् शिखिपिच्छविभूषणम्।
अगीकृत नराकारमाश्रये भुवनाश्रयम्॥[2]

इन रसात्मक रूपो का यथेष्ट प्रसार मध्यकाल के समस्त कृष्ण-सम्प्रदाय और साहित्य म हुआ। इन सम्प्रदायो के कवियो ने जितना बल उनकी रसात्मक लीलाओ के वर्णन पर दिया है उतना उनके अवतारवादी रस रूपात्मक प्रसङ्गो पर नही। रसात्मक लीला प्रकट या व्यावहारिक लीला है। यह रसिको के रजनार्थ प्राकृत वृन्दावन में होती है। यह गोलोक की नित्य लीला का ही अवतरित स्वरूप है। रसावतार मे कृष्ण गोलोक निवासी नित्य लीलारत परब्रह्म हैं। यह रसिको के उपास्य राधा कृष्ण या गोपीजनवल्लभ कृष्ण हैं।

वल्लभसम्प्रदाय के कवि सूरदास ने उक्त द्विविध स्वरूपो का मनोहर चित्रण किया है। राधा के कृष्णानुराग का चित्रण करते हुए उन्होने राधा को कृष्ण के 'स्यामरग' मे सराबोर हो जाने वाली कहा है।

'कृष्ण रस उमत्त नागरि, दुरत नहि परतापु।'[3]

इसके अनेक दृष्टान्त हैं—

(१) नवल निकुञ्ज नवल रस दोऊ, राजत हैं अतिमय रँगभीन।[4]

(२) जा कारन वैकुण्ठ बिसारत, निज स्थल मन म नहि भावत।
राधा कान्ह देह धरि पुनि पुनि, जा सुख को वृन्दावन आवत॥
बिछुरन मिलन विरह सयोग सुख नूतन दिन दिन प्रीति प्रकासत।
सूर स्याम स्यामा बिलास रस निगम नेति कहि कहि नित भाषत॥[5]

(३) नवेली सुनि नवल प्रिय नव निकुञ्ज है गी।
भावते लाल सा, भावती केलि करि, भावती भाव त रसिक रस लै री॥
कला चौसठि सगीत सिंगार रस, कोकविधि वद प्रगटि भेद सै सै री॥[6]

नन्ददास न ब्रह्म की सभी ज्योतियो को रसमय माना है। उनके अनुसार—

जो कोउ जोति ब्रह्ममय, रसमय सबही भाइ।
सो प्रगटित निज रूप करि, इहि तिसर अध्याइ॥[7]

---

१ गीतगोविन्द प्रथम सग, द्वितीय प्रब ध-१
२ कृष्ण कर्णामृत, (पृ० ४७)-१/६२
३ सूरसागर-१६२८/२५४६
४ सूरसागर—२१७६/२७९४
५ सूरसागर—२१८५/२८०३
६ वही—२४५३/३०७१
७ नन्ददास ग्र थावली भाषा दशम स्क ध, २३१-३।

अष्टछाप के अ य कवियों ने भी रसावतार कृष्ण की अर्चना में अपने पदों का पुष्पोपहार रखा है।

चैत य सम्प्रदाय रसावतार कृष्ण का सर्वाधिक भाव व्यजक सम्प्रदाय है। इसके प्राणप्रतिष्ठापक स्वय चैत य महाप्रभु को राधा कृष्ण का रसाविष्ट स्वरूप माना जाता है। चत यदेव युगल मूर्ति के साक्षात् रस विग्रह थे। उन्होंने एक ही जीवन में राधा की कृष्ण रति और कृष्ण क राधा प्रेम का सम्यक् रसास्वादन कर लिया था। इसलिए दोनों पक्षों की मनोदशा के अवधारण म वह निर तर भाव विभोर रहा करते थे। दक्षिण के प्रसिद्ध भक्त राय रामान द से हुई वष्णवी वार्ता के अ त म उन्होंने उ ह जो अपना छवि साक्षात्कार कराया था वह रसराज कृष्ण और महाभाव राधा की सम्मिलित प्रतिमूर्ति थी—

तबे हासि तारे प्रभु देखाल स्वरूप
रसराज महाभाव दुइ एकरूप ॥[1]

इनके कृष्ण प्रेम रस के पूर्ण सन्निधान हैं। इस रसात्मक स्वरूप के चत य चरितामृत में कई दृष्टा त हैं—

(१) किंवा प्रेमरसमय कृष्णेर स्वरूप।
तॉर शक्ति तॉर सह हय एकरूप ॥
(२) ताहार प्रथम वाछा करिए व्याख्यान।
कृष्ण कहे आमि हइ रसेर निधान ॥
पूर्णान न्दमय आमि चि मय पूर्णतत्व।
राधिकार प्रेम आमा कराय उ मत्त ॥

इनके अतिरिक्त रूप गोस्वामी ने अपने 'भक्ति रसामृत सि धु तथा उज्ज्वलनीलमणि' में कृष्ण को शृङ्गार रस राट का ही रूप दे डाला है। इनकी विस्तृत समीक्षा चत य सम्प्रदाय के काव्यानुशीलन-क्रम में स्वत त्र रूप से की जायगी। सम्प्रति कुछ प्रमुख कवियों के दृष्टा तों को उद्धृत कर इसे समाप्त किया जायगा।

१७ वीं शती के पूर्वार्द्ध म होने वाले चत य मत क रससिद्ध कवि रसिक मोहन राय न राधा माधव को शृङ्गार रस का निकेत कह कर उनकी व दना का है—

श्री राधा माधव सुखद, रस सिंगार निकेत।
वदौं तिन श्री माधवी, पद सुरेन्द्र सकेत ॥[2]

इसी सम्प्रदाय म १७ वीं शती के एक कवि श्री वल्लभरसिक न राधा और कृष्ण का रति और रस रूप म चित्रित किया है।

भानु दोऊ झूलत रति रस मानें।
ठाढ़े मचकें सखि, तरनि के गहि फन झूलत आनें ॥[3]

---

१ च० च०—मध्य अष्टम।
२ 'चत य मत और व्रज साहित्य' (पृ० १६०) पर उद्धृत लेखक, श्री प्रभुदयाल मीतल।
३ वही (पृ० २२१) वही वही

राधा वल्लभ सम्प्रदाय मे भी रसावतार कृष्ण की निकुञ्ज लीलाओं की विशद व्यंजना हुई है। इस मत के राधा-वल्लभ निकुञ्ज बिहारी कृष्ण स्वय रस रूपी ही हैं। रसास्वादन के निमित्त ही ये एक से दो हो गये हैं। राधा और कृष्ण इसी रस-ब्रह्म के दो अवतरित स्वरूप हैं।[१] इन दोनो का सयोग ही 'हित' तत्त्व है। इसे ही 'प्रेम या 'रस' कहते हैं। इनकी तुलना कामेश्वर तथा कामेश्वरी के 'सामरस्य' अथवा प्रज्ञा एव उपाय के युगनद्ध रूप से उत्पन्न 'महासुख' से की जा सकती है। इसी महासुख रस में तल्लीन हो जाना रस भक्ति है।[२] इस मत मे किशोरी राधा ही परम आराध्या हैं। किशोरी तत्त्व गौडीय वैष्णवो तथा सहजिया सम्प्रदाय के साधकों का भी ध्येय है। यह पूर्ण रसरूपा हैं। निकुञ्ज लीला मे स्वय इ ही का निभृत रसास्वादन करने वाले कृष्ण रसावतार कहलाते हैं। हित हरिवश कृत 'राधा सुधानिधि' के एक श्लोक से यह तथ्य पूर्णत स्पष्ट हो जाता है—

> किं च श्याम रति प्रवाह लहरी बीज न ये ता विदु—
> स्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दु पर प्राप्नुयु ॥७९

अर्थात्, श्यामसुन्दर के रति प्रवाह की लहरियों का बीज श्री राधा ही हैं। आश्चय है कि ऐसा नही जानने वाले अमृत सिन्धु मे से मात्र एक बूद ही प्राप्त कर पाते हैं।

हितहरिवश की युक्त वाणी पर गौडीय वैष्णवो के 'किशोरी' तत्त्व का अन्तरग प्रभाव जान पडता है। प्रमाणस्वरूप १४ वी शती के बगाली वैष्णव कवि चण्डीदास के एताद्विषयक पदों मे कृष्ण रसाश्रयभूता राधा की प्रेम महिमा व्यजित हुई है। कृष्ण गोकुल लीला का अन्तरग प्रयोजन बतलाते हुए स्वय कहते है—

> राइ, तुमि से आमार गति
> तोमार कारणे रस तत्त्व लागि
> गोकुल आमार स्थिति।

अत हरिवश जी के राधावल्लभ मत पर चण्डीदास आदि पूववर्ती भक्ति-साधको के मतो का अमिट प्रभाव लक्षित होता है।[३]

इस मत के राधा वल्लभ कृष्ण रसेश्वर हैं। इनकी नित्य लीला रस भूमि वृन्दावन है। यहाँ राधा और उनके वल्लभ युगल किशोर नित्य क्रीडा म सलग्न रहते हैं। 'रसिक मोहन कृष्ण इस रस केलि म राधा भी बन जाते हैं। यहाँ स्वय और पर, सयोग और वियोग का प्रश्न ही नहीं उठता।

---

१ राधिकोपनिषद्—कृष्णेन आरा यते इति राधा यस्य राधा यस्य कृष्णा रसाब्धिर्देहेनैक क्रीडार्थ द्विधाभूत।' 'हिन्दी सगुण काव्य की सास्कृतिक भूमिका' (पृ० १७७) डॉ० रामनरेश वर्मा।

२ 'हि० स० का० सा० भू०' (पृ० १७६)—डॉ० रा० न० वर्मा०

३ प० ब० उपाध्याय—भा० वा० श्री रा०' (पृ० १०२–१०३)

वृ दावन मे इनकी दो प्रकार की लीलाएँ प्रसिद्ध हैं—(१) कुञ्ज लीला और (२) निकुञ्ज लीला।

कुञ्जलीला सामान्य लीला है। यह मुख्यत गोपी कृष्ण लीला है। इसके विषय कृष्ण और आश्रय गोपियाँ हैं। इसका स्थायी भाव 'कृष्ण रति' है।

निकुञ्ज लीला अपेक्षाकृत अन्तरग लीला है। इसे मुख्यत राधा कृष्ण रति-लीला कह सकते हैं। इसके आश्रय कृष्ण तथा आलम्बन स्वय राधा हैं। इसका स्थायी भाव 'राधा रति' है।

कुञ्ज लीला कृष्ण रस प्रधान है और निकुञ्ज लीला राधा रस प्रधान। स्वामिनी भाव की प्रधानता इस मत की मुख्य विशेषता है। स्वय इस मत के सस्थापक स्वामी हित हरिवश ने अपनी 'राधा सुधानिधि' मे रसघन कृष्ण की वन्दना जिस रूप मे की है उससे इसकी चरितार्थता सिद्ध हो जाती है—

> रसघन मोहनमूर्ति विचित्रकेलि महोत्सवोल्लसितम्।
> राधाचरण विलोडितरुचिर शिखण्ड हरिं वन्दे॥ २००

'हितचौरासी' के एक सरस पद म इस रसावतार के प्राय समस्त उपकरणों का समावेश हो गया है—

> नागरि निकुञ्ज ऐन, किसलयदल रचित सैन,
> कोककला कुसल कु वरि अति उदार री।
> सुरत रग अग अग हाव भाव भृकुटि भग,
> माधुरी तरग मथत कोटि मार री॥
> लाडिली किशोर राज हस हसिनी समाज,
> सींचत हरिवस नैन सुरस सार री॥

इस मत मे नित्य लीलास्थली होने के कारण वृ दावन की महिमा गोलोक से भी बढकर है। इसलिए रसावतार की इस रसात्मक क्रीडाभूमि को भक्तो ने 'रस खेत' की उपाधि दी है।

व्रज के अन्य भक्ति सम्प्रदायो म जहाँ कृष्ण के वीर, वत्सल किशोर और यौवन रूप मान्य हैं वहाँ रसवादियो के बीच उनका वृ दावन विहारी रूप ही स्वीकृत है।

स्वामी हरिदास के हरिदासी या रसिक सम्प्रदाय म भी उक्त युगल रसावतार की लीला वर्णित है। इस नित्य लीला रस का आस्वादन सिद्ध सखियो के बिना असभव है। इसीलिए इसे सखी सम्प्रदाय भी कहा गया है। यह नित्य लीला कुञ्जा म अप्रतिहत चला करती है। इसीलिए इस टट्टी सम्प्रदाय भी कहते है। हरिवश सम्प्रदाय में कृष्ण वृ दावन को छोड एक कदम भी बाहर नहा देत। उसी प्रकार हरिदासी मत म कृष्ण कुञ्ज छोड कर कही नही जाते। इसीलिए वह कुञ्ज या निकुञ्ज विहारी भी कहलाते हैं।

वृन्दावन के घन निकुञ्जो म सखिया स परिसवित परस्पर कन्ध पर हाथ रखकर विहार करन वाले प्रेमोन्मत्त राधा-कृष्ण इस सम्प्रदाय के इष्ट हैं। सुरति केलि म तन्मय

राधा-कृष्ण की उपासना ही इनकी रसिकोपासना है। भगवतरसिक के शब्दो म कृष्ण 'प्रेमदेवता' हैं तथा 'इष्ट श्यामा महारानी' हैं। इस लीला मे सुरत व्यापार की भरमार है। इस सम्प्रदाय के सिद्ध कवियो ने रसिक विहारी कृष्ण की ग्रीवा मे नाना रस से विदग्ध केलि माला पहनाई है।

आगामी रीतियुग म यही रसावतार कृष्ण रसिक शृङ्गारी कृष्ण के रूप मे परिणत हो गये हैं। रीति के प्रथम आचार्य कवि केशव ने यद्यपि इन्हे नाना भाव समन्वित (यावदेव) रसदेव[१] के रूप मे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। किन्तु, जैसे जैसे काव्य मे शृङ्गार का अतिरेक और प्राधान्य होता गया, वैसे वैसे कृष्ण भी शृङ्गार देव के रूप मे पूजित होने लगे।[२] अनन्तर शृङ्गार देव की परिणति भी लौकिक शृङ्गार के आलम्बन रूप म हुई और कृष्ण नायक सामान्य रूप मे रूढ प्रतीक बन गये। इनका विस्तृत उल्लेख यथाप्रसग किया जायगा। सम्प्रति, रसावतार कृष्ण के शृङ्गारिक चरित्र की इस घोर ऐहिक परिणति को खेदमिश्रित विस्मय के साथ लक्षित करते हुए समाप्त किया जाता है।

---

१ रसिकप्रिया-१/२

२ देव-सुखसागर तरग छन्द-१०।

षष्ठ अध्याय

लोक-काव्य में शृंगार-देव श्रीकृष्ण

अनुच्छेद–१

★प्राकृत काव्य (गाथा सत्तसई) में कृष्ण

अनुच्छेद–२

★संस्कृत गीतिकाव्य में कृष्ण

अनुच्छेद–३

★अपभ्रंश काव्य में कृष्ण

अनुच्छेद–४

★विभिन्न देशभाषा काव्य में कृष्ण

प्रथम अनुच्छेद

प्राकृत काव्य (गाथा सत्तसई) में कृष्ण

कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप निर्माण मे शास्त्र काव्य (क्लासिकल लिटरेचर) की अपेक्षा लोक-काव्य (सेक्यूलर पोयेट्री) का महत्त्वपूर्ण योगदान है। शास्त्र काव्य की भाषा सस्कृत है। यह ब्राह्मण वर्ग की अधिकृत भाषा है। वेद, उपनिषद, इतिहास और प्राचीन पुराण इस वर्ग की बौद्धिक उपलब्धियां हैं। हजारों वर्षों की परम्परा मे इस वर्ग की कलम से अंकित वाङ्मय द्वारा जिस सस्कृति का विकास हुआ वह वैदिक या आर्य सस्कृति है। शास्त्र-काव्य इस सस्कृति की समस्त चिन्ताओ का सभ्रान्त प्रतीक है। वैष्णव भक्ति अध्यात्म के क्षेत्र म इस चिन्तन की रागात्मक अनुभूति है। भगवान् विष्णु इसकी सरस अभिव्यक्ति हैं।

इससे भिन्न और प्राय समानान्तर रूप मे लोक काव्य का विकास हुआ। यह सभ्रान्त समाज से इतर ग्रामीण जनपद की अन्तर्ध्वनि है। इसम लोक-मानस की निश्छल अभिव्यक्ति हुई। इसकी भाषा सस्कृतेतर देशभाषा है[१] इसमे देश (लोक) की सरस कोमल अनुभूतिया और राग विरागो को व्यापक रूप में प्रकट होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्राकृत भाषा इसकी प्राचीन सवाहिनी है। यह लोक म नाना प्रकार की जातियों और धर्मावलम्बियो की भाषा रही है। इसका अग्रिम स्वरूप अपभ्रंश भाषा मे प्रकट हुआ। वैष्णवभक्ति भावना मे ललित मधुर गोपाल कृष्ण के प्रवेश और लीला प्रसार का बहुत कुछ श्रेय इस लोक काव्य को दिया जा सकता है।

प्राकृत भाषा को साहित्य विकास की व्यापक पीठिका प्रदान करने मे आभीर जाति का अन्यतम योग रहा है। आभीर भारतीय थे या अभारतीय, इस विचिकित्सा मे पड़ना हमारा अभीष्ट नही। विद्वानों ने आभीरो की जातीय विशेषता का दोहन करते हुए यह बतलाया है कि भारत की आमुष्मिक सस्कृति म ऐहिकतामूलक सरस वृत्ति का समावेश आभीर सस्कृति की देन है। आभीर गोपालक थे और इनके देवता बाल गोपाल थे। भारत के उत्तरपश्चिम मे मथुरा (यमुनातटवर्ती व्रजमण्डल) से लेकर सुदूर गुजर देश (सिन्धु तटवर्ती द्वारिका) तक इनकी निवास भूमि थी। व्रज के गोपाल कृष्ण इन्हीं आभीरों के विकसित देवता हैं। दक्षिण देश मे यही आभीर 'आयर' नाम से प्रचलित हैं। उत्तर मे इनकी राजधानी मथुरा के तुक पर दक्षिण मे मदुरानगर भी है। साथ ही आयर कुल के देवता 'मायोन' हैं जो बाद मे कण्णन कहलाने लगे। यह भाव साम्य लक्षणीय है। आभीर उत्तर युग मे यादव कहलाने लगे। भागवत धर्म के आधार वासुदेव कृष्ण इसी यादव कुल से सम्बद्ध हैं।

इस वर्ग के महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थो मे आभीरों का सिन्धुतटवर्ती लुटेरों के रूप

१ कीथ-सस्कृत साहित्य का इतिहास (पृ० ३३)—अनुवादक—डॉ० मगलदेव शास्त्री।

मे उल्लेख मिलता है। किन्तु, धीरे-धीरे इन्होंने अपनी सरलता और सौम्यता से भारतीय साहित्य को रसमुग्ध कर दिया। आचार्य ह० प्र० द्विवेदी के अनुसार शुरू शुरू मे इन्हे भी हूणा की तरह अत्याचारी समझा गया था पर बहुत शीघ्र ही भारतवासियो ने इनके प्रति अपनी धारणा बदल ली। इन आभीरो का धममत भागवत धम के साथ मिलकर एक अभिनव वैष्णव मतवाद के प्रचार का कारण हुआ।'[1] इस धारणा म परिवर्त्तन के साथ ही आभीरो की सरस शृङ्गारिक वृत्तियो का साहित्य मे प्रतिफलन होना प्रारम्भ हो गया। इस साहित्यिक प्रतिफलन का काल सन् ईस्वी के आसपास है। और जैसा कि पहले कहा गया, प्राकृत भाषा के उदय का भी यही काल है। (देशी) लोक काव्य परम्परा का प्रथम प्राप्त ग्र थ हाल सातवाहन का 'गाथासत्तसई' है। यह महाराष्ट्री प्राकृत की परम्परा का मुक्तक गीतिसग्रह है।

इस काव्य की अ तध्वनि कोमल तथा मन को मधुर करने वाली है। इसमे सीधे सादे जीवन दृश्यो के बीच स्वच्छ द प्रेम चित्रित है जिसे ऋतुएँ और भी उद्दीप्त करती हैं।[2] इसमें ग्रामीण अचल के अकृत्रिम सौन्दय की अनेकानेक झाँकिया अकित हैं। इसकी रचना गत नवीनता और अतिरिक्त प्रेम प्रवणता की ओर लक्ष्य करते हुए आचाय ह० प्र० द्विवेदी ने लिखा है कि, प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमियो की रसमयी क्रीडाओ और उनका घात प्रतिघात इस ग्र थ में अतिशय जीवित रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनियों की प्रेम गाथाएँ, ग्राम वधूटियों की शृङ्गार चेष्टाएँ, चक्की पीसती हुई या पौधो को सींचती हुई सुन्दरिया के ममस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओ का भावोत्तेजन आदि बात इतनी जीवित इतनी सरस और इतनी हृदय-स्पर्शी हैं कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट होता है। यहाँ वह एक अभिनव जगत मे पदापण करता है जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नही है कुश और वेदिका का नाम नहीं सुनाई देता स्वग और अपवग की परवाह नही की जाती, इतिहास और पुराण की दुहाई नही दी जाती। और उन सब बातो को भुला दिया जाता है जिसे पूववर्ती साहित्य म महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[3] आचाय द्विवेदी ने हाल की गाथा सत्तसई की शृङ्गारिक प्रवृत्तिया के उद्घाटन म उपयुक्त जितनी बातें कही हैं वे सब की सब समस्त लोक-काव्य की अन्तवृ त्तियो के निरूपण मे शत प्रतिशत चरिताथ होती हैं। सत्तसई म सकलित रसाप्लुत गाथाओ ने संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी के लोक काव्य को यहाँ से वहाँ तक प्रभावित कर लिया है। गोवधन की आर्यासप्तशती मुञ्ज के दोहे और बिहारी की बिहारी सतसई क्रमश उक्त तथ्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस पुस्तक का मूल गाथा कोश' था। एक गाथा के अनुसार कवि वत्सल 'हाल' ने एक करोड गाथाओ में से चुनकर इन सात सौ पद्या का सग्रह किया था।[4] यह निश्चय

---

१ हिन्दी साहित्य की भूमिका–पृ० १२१
२ कीथ— संस्कृत साहित्य का इतिहास (पृ० २६९–२७०)
३ हि० सा० भू० (पृ० १२१)
४ आचाय ह० प्र० द्विवेदी– हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (पृ० ६०)

ही तत्कालीन लोकप्रचलित सर्वोत्तम पद्यो का मनोहर संकलन होगा। विभिन्न विद्वान् इसे एक संकलन ग्रन्थ ही मानते हैं।[1] किन्तु परवर्ती प्रक्षेपों को देखते हुए प्रो० कीथ इसके मूलत सुभाषित संग्रह होने मे सन्देह करते हैं।[2] हाल की गाथा—सत्तसई[3] में कृष्ण की ब्रज लीला से सम्बन्धित ४ पद मिलते हैं। प्रथम पद मे कृष्ण का राधा के प्रति अनन्यानुराग स्पष्टत व्यंजित है।

(१) मुहमारुएण त कण्ह गोरश्र राहिआएँ अवणेन्तो।
एताण वलवीण अण्णाण वि गारश्र हरसि ॥ १/८६

अर्थात्, हे कृष्ण तुम मुख मारुत के द्वारा राधिका के मुँह मे लगे गोरज का अपनयन करके इन वल्लभियों के तथा अन्यान्य नारियो के गौरव का अपहरण कर रहे हो।' उक्त गाथा मे 'गोरअ' पद मे यमक है। इसका एक अन्वय 'गौरव' से होता है तो दूसरा 'गोरज' अर्थात् धूलि से। राधा कृष्ण प्रेमविषयक यह सम्भवत प्रथम प्राप्त काव्योल्लेख है।

एक दूसरी गाथा मे कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओ की मृदुल सन्धि और तज्जन्य चापल्य का रसमय अंकन हुआ है—

अज्जवि बालो दामोअरोत्ति इअ जम्पिए जसोआए।
कह मुहपेसिअच्छ णिहुअ हसिअ वअबहूहिं ॥२/१२

उक्त पद का प्रसग (कृष्ण की माखन चोरी तथा) गोपी उपालम्भ है। कृष्ण की चंचलता पर गोपियाँ यशोदा के पास आकर उन्हें उपालम्भ देती हैं। यशोदा उनकी सफाई देती हुई कहती हैं कि 'मेरा दामोदर कृष्ण अभी तो बिल्कुल बालक है।' यशोदा जिस समय यह कह रही थी उस समय ब्रजवधुएँ कृष्ण के मुख की ओर निहार कर ओट में हँस रही थी। यहाँ कृष्ण के बाल्य काल मे चंचल किशोर वृत्ति का परिपाक कर उनके विरुद्ध धर्मत्व या नित्य लीलामय स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत की गई है। १६ वी शती के वैष्णवाचार्य स्वामी विट्ठल नाथ के 'शृगाररस ग्रन्थ' मे भी श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था मे ही नवतारुण्य की द्योतक शृगार लीलाओ के रसात्मक संकेत मिलते हैं। नमूने के कुछ श्लोक इस प्रकार हैं।[4]

अस्माभिरप्युपालम्भ इव देयस्तदर्थक।
मातृपादाञ्जनिकटे द्रुतयाभूत्वा तदापि च ॥ २२

टीकाकार श्री घनश्याम दास के अनुसार गोपी बालकृष्ण की चपलताओ का उल्लेख करते हुए कृष्ण से पहले ही यह कह देती हैं कि तुम्हारी चपलता पर हम झूठ मूठ उलाहना देने के लिए यशोदा जी के पास पहुँच जायेंगी। इसी बहाने तुम्हारे दर्शन तो हो जायेंगे।

---

१ डॉ० श० भू० दा० गुप्ता–श्री रा० क्र० वि० ' (पृ० ११७) तथा डा० शिव प्र० सिंह विद्यापति (पृ० १२२) २ कीथ–'स० सा० इ० ' (पृ० २६८)
३ निर्णय सागर (बम्बई)–सस्करण व चौखम्बा सस्करण
४ डॉ० रामनरेश वर्मा—'हिन्दी सगुण काव्य की सास्कृतिक भूमिका परिशिष्ट १ (पृ० ३३८) मे उद्धृत।

अत इसका तुम बुरा नहीं मानना। आगे के श्लोक म गुप्त रस का राज खोलती हुई गोपी कहती है—

'इत्थं निजगेहेऽपि कश्चित् करणतोऽतिबाल्यमौग्ध्य ते।
गत्वा स्नेहातिशयात्सर्वे त्वा लालयिष्यन्ति ॥ २५

अर्थात्–'यदि अपने घर मे भी कभी तुम (कृष्ण) कोई उत्सग लीला कर बैठोगे तो तुमको बालक जान कर सब स्नेह और दुलार ही देगे।' किन्तु विडम्बना यह कि यशोदा के पास जाकर उपालम्भ देन के समय वह प्रियतम कृष्ण को देख भावविभोर हो गया।[1] अगले श्लोक (स० ३०) मे गुसाईं जी कहते हैं कि उपालम्भ की वेला म जो प्रिय बालकृष्ण भाव सिन्धु के सदृश हो गये और प्रिय गोपी रस की ऊर्मि की भाँति उसमे तरगायित हो गयी, उस रस का वर्णन करना उनके लिए अशक्य है।[2] जो भक्ति गद्गद चित्त के लिए अशक्य है उसे ही गाथासत्तसई के उ मुक्त भाव साधक ने अपने एक ही पद मे अत्यन्त बारीकी से चित्रित कर दिया है। सूर आदि ने कृष्ण के इस बाल कैशोर का अनेकश अकन किया है। शृङ्गार म यह गोपनतत्त्व विहारी म भी अनेक बार झलक जाता है।

एक तीसरी गाथा म कोई कामविदग्धा गोपी कृष्ण का परोक्ष ढग से चुम्बन कर रही है। यह प्रसग गोपी कृष्ण की शृङ्गार लीला का उत्तान चित्र प्रस्तुत करता है। चित्रण इस प्रकार है—

णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसठिआ णिउणगोवी।
सरिसगोविआण चुम्बइ कवोलपडिमागअ कह्नम् ॥ २/१४

अर्थात्, नृत्य की प्रशसा के बहाने पास म खिसक कर आयी हुई कोई निपुण गोपी अपनी जैसी गोपियो के कपोल पर प्रतिबिम्बित गोपी कृष्ण की आकृति का चुम्बन कर रही है। शृङ्गार के चित्रो की यह परोक्ष भगिमा (डेवियसन) कवि की अनुपम विदग्धता का परिचायक है। इसकी विशेषमता बिहारी की कला म भलीभाँति निखरी है।

चौथे पद में कृष्ण की भ्रमर वृत्ति की ओर लक्ष्य करते हुए कोई गोपी कहती है—

जह भमसि भमसु एमेअ कह्न सोहग्गगव्विरो गोट्ठे।
महिलाण दोसगुणे विआरइउ जइ खमो सि ॥ ५/४७

अर्थात् हे कृष्ण यदि सौभाग्यगर्विता महिलाओ के गुण दोषो का विचार करने म तुम सक्षम हो तो जैसे भ्रमण करते हो वैसे ही इस गोष्ठ म भी भ्रमण करो।'

उक्त पद म वचनविदग्धा गोपी जिस चातुरी से कृष्ण का सुरत व्यापार के लिए निमन्त्रित करती है उसम कृष्ण के दक्षिण नायक होने का भी परोक्ष ध्वनि मिल जाती है। 'गोट्ठे' और 'भमसि' इन दो पदो के योग से कवि ने जिस समासोक्ति की व्यजना की है उससे अप्रस्तुत नरपुगव कृष्ण का सहज ही भान हो जाता है। राधा-कृष्ण प्रेम के सरस गीतकार विद्यापति न ऐसे कितने ही अलकारिक चमत्कार दिखलाये हैं। कृष्ण के लिए भ्रमर 'तमाल' आदि कितने ही उनके रूढ प्रतीक से हो गये हैं।

गाथासप्तशती म वर्णित अन्य कितने शृङ्गारिक प्रसग हैं जो संस्कृत, अपभ्रश के मुक्तको स होते हुए विद्यापति सूरदास और बिहारी आदि हिन्दी कवियों द्वारा यथावत्

१ डॉ० रामनरेश वर्मा–'हिन्दी सगुण काव्य की सास्कृतिक भूमिका' परिशिष्ट १(पृ० ३४०)
२ वही— तरगा इव भावा रेहिन्ता प्रियवामिय।
भावा वक्तुमशक्यान्म नेवास्तु तन्तुपहात ॥ ३०

अपना लिये गये हैं।[1] किन्तु, भाव भेद या परिवेश भिन्नता के कारण उन शृङ्गारिक पदों के आश्रय और आलम्बन बदल गये हैं। सतसई में इसके प्रति कोई व्यक्तिगत आग्रह नहीं है। वहां रसास्वादन ही कवि का लक्ष्य है। किन्तु जैसे-जैसे गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की शृङ्गार लीलाएँ प्रचलित होती गयी उक्त सभी शृङ्गारिक प्रसगों को कृष्ण लीला से सम्बद्ध कर लिया गया। कृष्ण प्रारम्भ से ही 'शृङ्गार रसाश्रय' बन गये थे। रसोद्विस्तार के प्रेरक चरित्र होने के कारण उक्त प्रसंगों को इनसे जुड़ने में विशेष धर्म संकट नहीं था। अतः मानवीय प्रेम की रसविचित्र लीलाओं का स्थापित करने में पुराणकारो, कवियों और आलंकारिकों के समक्ष सार्वभौम प्रेमालम्बन कृष्ण (शृङ्गार देव) ही भाव प्रतीक से बन गये।

पण्डितों का अनुमान है[2] कि छठी शती के बाद राधा कृष्ण का उपाख्यान प्रेमगीत और तुकबन्दियों के रूप में आभीर जाति की छोटी परिधि का अतिक्रमण करके विशाल भारत के विभिन्न अंचलों में फैल गया।

सतसई की कृष्ण लीला के सर्वेक्षण से हम जिन निष्कर्षों तक पहुँचते हैं वे ये हैं–

(१) हाल की गाथासतसई गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की शृङ्गार लीला का काव्य में प्राप्त प्रथम प्रामाणिक उल्लेख है।

(२) इसमें शास्त्रवाद की अपेक्षा जन भावना का कोमल संस्पर्श है।

(३) इसमें वर्णित कृष्ण लीला पुराण और तन्निरूपित प्रबन्धों के भक्ति दर्शन से सम्भ्रान्त न होकर शृङ्गार लीला से सहज पुलकित है।

(४) इसके नायक गोपाल कृष्ण हैं जिनके चरित्र की रेखाएँ आभीरों के चरवाही गीतों के आलम्बन प्रेमी गोपाल की लीलाओं से परिपुष्ट हुई।

(५) लोकभाषाओं के माध्यम से ये ही शृङ्गार लीलाएँ विभिन्न पुराणों और काव्यों में गृहीत होती गयी।

(६) उत्तरोत्तर इन्हीं लीलाओं पर वैष्णव भक्ति भावना की छाप पड़ती गयी।[3]

(७) फलतः हिन्दी काव्य में प्रेमदेव कृष्ण भक्तिदेव कृष्ण से समन्वित होकर प्रकट हुए। जयदेवोत्तर पदावली साहित्य तथा ब्रजभाषा काव्य इसके प्रमाण हैं।

प्राकृत काव्य की कृष्ण लीला अपने चारुत्व और सौन्दर्य भंगिमा के कारण संस्कृत के मुक्तक गीतकारों को भी प्रभावित करती है। और नाना ज्ञात अज्ञात कवि अपनी प्रेम-कविता में राधा कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं की मनोमुग्धकारी व्यंजना करते हैं। इनकी भाषा देववाणी होने पर भी इनमें जनभावना का संस्पर्श है। इनके कई कारण हैं, जैसे-हाल की गाथा सतसई की लोक प्रसिद्धि के कलात्मक रूप की स्पृहा, शृङ्गार रस वर्णन तथा इनके आश्रयालम्बन रूप में राधा कृष्ण अथवा गोपी कृष्ण की प्रेम कथाओं का चारु चित्रण। उक्त आदर्शों से प्रेरित होकर रचे गये मुक्तकों में गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती एक सुन्दर कृति है। हिन्दी गीतकाव्य पर भी इसका यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। रीतिकाल के रससिद्ध कवि बिहारी लाल की बिहारी 'सतसई' इससे पूर्णतः अनुप्राणित है। इसका विस्तृत उल्लेख अगले अनुच्छेद में किया जायगा।

●●●

१ डॉ० शिव प्र० सिंह–'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (पृ० ३०२)
२ डॉ० श० भू० दा० गुप्त–'श्री रा० क्र० वि० (पृ० १४०)
३ डॉ० श० भू० दा० गुप्त—श्री रा० क्र० वि० पृ० १ ८)

द्वितीय अनुच्छेद

संस्कृत गीतिकाव्य में कृष्ण

संस्कृत गीतिकाव्य में जनभावना का न्यूनाधिक संस्पर्श है। इसीलिए कृष्ण की प्रेम लीलाओं का समावेश इसके भीतर हो गया है। वैसे इसकी परम्परा भी अति प्राचीन सिद्ध की जा सकती है।[1] किन्तु प्राकृत काव्य के प्रभाव से कृष्ण लीला वर्णन की जो अन्तर्धारा चल पड़ी उसके प्रभाव में रचित होने वाले सरस गीतों तथा उनमें आये कृष्ण चरित का *अनुशीलन ही यहाँ अभीष्ट है।*

साहित्य – इस परम्परा में पाये जाने वाले कृष्ण लीलाविषयक ३ स्रोत हैं—

(१) अलंकार साहित्य (२) मुक्तक संग्रह और (३) प्रबन्ध गीति

अलंकार साहित्य में कृष्ण चरित का यह स्वरूप काव्यांगों के निरूपण क्रम में आये सरस उदाहरणों में परिलक्षित होता है। ध्वन्यालोक आदि में पाये जाने वाले श्लोक इसी के अन्तर्गत आयेंगे। मुक्तक इन शृङ्गार लीलाओं के स्फुट प्रसंगों का चुना हुआ स्तवक है। शृङ्गार देव श्रीकृष्ण यहाँ अपने सम्पूर्ण भावात्मक स्वरूप में विराजमान हैं। इन संग्रहों में आये सरस पदों की संख्या अपार है। कवीन्द्रवचनसमुच्चय, पद्यावली आदि ऐसे ही संग्रह ग्रन्थ हैं। और अन्त में वे काव्य आते हैं जिनमें कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं का *क्रमबद्ध चित्रण हुआ है। इससे सम्पूर्ण लीलाओं में कथात्मक अनुसंगति आ गयी है। यद्यपि* इनकी आत्मा गीतों की ही है किन्तु इनका शिल्प प्रबन्धित है। गीतगोविन्द की परम्परा *में हिन्दी में विद्यापति और सूर वर्णित कृष्ण चरित इसी कोटि का है। दोनों में जो मूलभूत* अन्तर है वह वस्तुतः युग बोध का ही है। सम्प्रति उक्त त्रिविध काव्य-धाराओं में कृष्णा नुशीलन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) अलंकार साहित्य – ईसा की नवीं शताब्दी में ध्वनि-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में कृष्ण के राधा प्रेम विषयक श्लोक मिलते हैं। इनमें से दो श्लोक प्रवासी कृष्ण के राधा वियोग से सम्बद्ध हैं।

प्रवासी कृष्ण वृन्दावन से लौट कर आये प्रिय सखा से पूछते हैं—[2] हे भद्र! *उन गोपवधुओं के विलास सहचर और राधा के गुप्त (प्रेम के) साक्षी कालिन्दी तटवर्ती लतागृह कुशल तो हैं न। कामशय्या सजाने के लिए उन पल्लवों को तोड़ने की आवश्यकता नहीं रहने के कारण लगता है मानो वे अब सूख कर विवर्ण हो रहे हैं।* इन श्लोकों का राधा के प्रसंग में पहले उद्धृत किया जा चुका है।[3]

---

१ काव्य—स० गा० इ० (पृ० ४०)

२ ध्वन्यालोक-द्वितीय उद्योत, कारिका-५

३ द्रष्टव्य प्रस्तुत प्रबन्ध (पृ० ९३)

उपर्युक्त वक्तव्य म कृष्ण के गोपी वियोग की धार्मिक झलक मिलती है। वियोग के ताप मे पिघल कर नायक का चित्त इतना संवेदनशील और व्यापक हो गया है कि वह सीताविश्लेषकातर राम की भाति लता और कुञ्जा से कुशल पूछकर साहचर्य प्रेम का अनूठा दृष्टान्त प्रस्तुत कर देता है। अत उक्त प्रसग कृष्ण प्रेम की भावुकता का साक्षी है।

दूसरे पद म राधा के कृष्ण वियोग की मार्मिक उद्‌गीति प्रकट हुई है। 'मधुरिपु कृष्ण क द्वारिका चले जाने पर उन्हीं वस्त्रो का शरीर म लपेट कर और यमुना तटवर्ती कुञ्ज लताओ से लिपट कर सोत्कण्ठा राधा ने जब रुधे कंठ और विगलित स्वर से गाना शुरू किया तो उससे उत्कंठित होकर यमुना के जलचर जीव भी करुण कूजन करने लगे'।[१]

इस श्लोक म प्रवासी प्रियतम कृष्ण के वियोग से कातर वियोगिनी राधा की चराचर व्यापी व्यथा का परिचय प्राप्त होता है। इसी राधा वियोग म कृष्ण का दारुण प्रणय रूप भी प्रच्छन्न है। विप्रलम्भ शृङ्गार का यह अन्यतम उदाहरण १० वी-११ वी शती के प्रसिद्ध आलकारिक कुन्तक के वक्रोक्तिजीवित म भी उद्धृत है।[२]

तीसरा श्लोक वह है जिसे आनन्दवर्धन ने ध्वनि और गुणीभूत काव्य के संयुक्त दृष्टान्त रूप मे प्रस्तुत किया है। राधा मान मोचन विषयक यह श्लोक इस प्रकार है—

दुराराधा राधा सुभग यदनेनापि मृजत-
स्तवैतत् प्रायेणाजघनवसनेनाश्रु पतितम्।
कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुपचारैर्विरम हे,
क्रियात् कल्याण वो हरिरनुनयेष्वेवमुदित[३] ॥

दक्षिणनायक कृष्ण अन्य किसी नायिका से विपरीत संभोगकर सुरतोत्तर काल मे भूल से उसी की साडी पहन कर मानिनी राधा को मनाने के लिए चले आते हैं। और, राधा के आंसुओ को उसी से पोछने लगते हैं। इस पर राधा कहती है। 'हे सुभग! किसी अन्य प्राणेश्वरा की भूल से धारण की हुई साडी मे मेरे आंसुओ को पाछने पर भी यह राधा तुमसे प्रसन्न होने वाली नही है। स्त्री का चित्त (सपत्नी समोग को नही सहने वाला) अत्यन्त कठोर होता है। इसलिए तुम्हारे द्वारा मान मोचन के ये सारे उपाय व्यर्थ हैं, इन्हें रहने दो। मानमोचन के समय राधा द्वारा ऐसे कहे जाने वाले कृष्ण तुम्हारा कल्याण करें।'

ध्वन्यालोक में गोपी कृष्ण के प्रेम पर आश्रित एक और श्लोक है जिसे शब्दशक्ति उद्भव ध्वनि की कारिका म उद्धृत किया गया है। यहाँ कृष्ण के कान्त भाव की अभ्यर्थना करते हुए कोई कामासक्त गोपी उनसे कहती है[४]—

१ द्रष्टव्य-प्रस्तुत प्रबन्ध (पृ० ६३)

२ डा० श० भू० दा० गुप्त ने अपने प्रबन्ध म ('श्री रा० क्र० वि०—पृ० ११६) राधाविषयक उक्त दो ही श्लोक 'ध्वन्यालोक' से उद्धृत किये हैं।

३ ध्वन्यालोक, उद्योत—३, कारिका—४१। प० बलदेव उपाध्याय ने ध्वन्यालोक के उक्त पद्य को अपने प्रबन्ध मे (भा० वा० श्री रा० पृ० ७) ध्वनि के दृष्टान्त के प्रसग मे उद्धृत बतलाया है किन्तु वस्तुत यहाँ ध्वनि और गुणीभूतव्यंग्य काव्य दोनो का योग है।

४ ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत कारिका—२१

दृष्ट्या केशव गोपरागहृतया किंचिन्न दृष्टं मया,
तेनैव स्खलितास्मि नाथ पतितां किन्नाम नालम्बसे ।
एकस्त्वं विषमेषु खिन्नमनसां सर्वाबलानां गतिः—
गोप्यैवं गदितः सलेशमवताद् गोष्ठे हरिर्वश्चिरम् ॥

अर्थात्, 'हे कृष्ण गायों की धूलि से दृष्टि झिलमिला जाने के कारण मैं ऊबड़ खाबड़ रास्ते को ठीक से देख नहीं सकी, इसलिए ठोकर खाकर गिर गयी हूँ । हे नाथ', मुझ गिरी हुई को आप अपने हाथों से क्यों नहीं उठाते हैं । विषम रास्ता में खिन्नमना जाने वाली अबलाओं के एकमात्र आधार आप ही हो । इस प्रकार गोष्ठ में गोपी द्वारा लेशपूर्वक कहे गये कृष्ण तुम्हारी रक्षा करें ।'

आनन्दवर्धन युग प्रवर्तकारी प्रतिभा सम्पन्न आलंकारिक थे । उन्होंने ध्वनि-काव्य की प्रतिष्ठा के प्रसंग में प्राचीन काव्य के रससिद्ध श्लोकों को उदाहरण रूप में उद्धृत कर (इन्हें) विलुप्त होने से बचाया । उपरि उद्धृत श्लोक ६ वीं शती के पूर्व कृष्ण की वृन्दावन लीला तथा इनके माध्यम से उनके प्रेमी चरित्र की ओर मधुर संकेत करते हैं । ये स्फुट श्लोकों में विकीर्ण हैं । आनन्द ने इनकी रसवत्ता को भलीभाँति परखा था । प्रबन्ध की तुलना में मुक्तकों की प्रशंसा और अमरुक कवि की रस प्रसिद्धि के वह कायल थे ।[1] उनकी इस गुणग्राहकता से संस्कृत में शृङ्गारी मुक्तकों को तत्काल बड़ी प्रेरणा मिली । तथा, राधा कृष्ण की प्रेम कथा को इसके माध्यम से पल्लवित और पुष्पित होने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ । उत्तरवर्ती राशि राशि मुक्तक संग्रह इसके प्रमाण हैं । इनमें शृङ्गारस्वेव कृष्ण के चरित्र का यथेष्ट संवर्धन हुआ ।

११ वीं शती के प्रसिद्ध आलंकारिक भोज ने अपने 'सरस्वती कंठाभरण' में भी राधा के कनक निकष की भाँति स्वच्छ पयोधर मण्डल पर अनुराग करने वाले कृष्ण का उल्लेख किया है । यह श्लोक कवीन्द्रवचनसमुच्चय आदि में भी उद्धृत हुआ है ।[2] ऐसा जान पड़ता है कि जो पद्य तत्काल अति प्रचलित होते थे आलंकारिक उन्हें अपने लक्षणों में उदाहरण रूप से संकलित कर लिया करते थे । यदि इन समस्त पद्यों का संकलन कर लिया जाय तो कृष्ण लीला सम्बन्धी यथेष्ट उपयोगी सामग्री प्राप्त हो जायेगी ।

गोपी कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं का उदाहरण रूप में स्फुट संकलन करने वाले अलंकार-सम्प्रदाय की परम्परा का रीतियुग में विशेष प्रसार हुआ । इस युग के कवियों की एक विशेषता यह रही कि इन्होंने उदाहरण भी स्वरचित रखे और उनमें शृङ्गार की सूक्ष्मातिसूक्ष्म लीलाओं का चित्रण किया । इसकी अपेक्षा इन दोनों में भाव-साम्य यह है कि जैसे संस्कृत आचार्यों ने भक्ति प्रेरित न होकर विशुद्ध शृङ्गार के घात प्रतिघात का अंकन करने वाले पद्य ही पिरोये, वैसे ही रीतियुग के आचार्य कवियों ने भक्ति शृङ्गार के द्वन्द्व से अपने को दूर तक विरत रखा । उनके राधा कृष्ण प्रेम में कवित्व का आग्रह है । इसकी विशेष समीक्षा रीतिकालीन विवेचना में होगी ।

---

१ ध्वन्यालोक, उद्योत–३ कारिका–७

२ द्रष्टव्य—डा० श० भू० दा० गुप्त—'श्री रा० क्र० वि०' (पृ० १२३)

(२) मुक्तक सग्रह—१० वीं शती का एक प्रसिद्ध मुक्तक ग्रथ है—'कवी द्र वचा-समुच्चय'। इस सग्रह मे राधा कृष्ण प्रेम विषयक कई पद्य सकलित हैं। इनके अनुशीलन से कृष्णचरित का ललित मधुर स्वरूप उभर कर प्रकट हो जाता है। एक पद्य मे कृष्ण का 'गोप स्त्री नयनोत्सव' रूप निखरा है। स ध्या की वेला है। कृष्ण वन से गौग्रो का चराकर सबके पीछे म द मधुर वशी बजाते हुए व्रज लौट रहे हैं। उनके सिर पर गो धूलि से धूमरित मयूरपुच्छ की चूडा है। गले म वनमाला। और, किंचित् शा त हाने पर भी वह रम्य है। कृष्ण के इस नयनाभिराम रूप सौ दय को देख गोपियाँ गद गद हो जाती हैं।[१] उक्त पद म गोपाल कृष्ण का रूप सौ दय वर्णित हुआ है। हि दी कृष्ण काव्य मे उस रूप-छवि का प्राय सर्वाधिक अकन हुआ है।

एक दूसरे श्लोक मे कृष्ण की गोष्ठ क्रीडा की बडी ही लाक्षणिक अभिव्यजना हुई है। चपल कृष्ण दुग्ध के लिए गोष्ठ म आयी अ य गापियो से कहते हैं कि गापियो, दुग्ध कलश लेकर घर को जाग्रो। जो गायें अभी दुही नही गयी उनके दूध लेकर राधा तुम लोगा के पीछे जायगी। अ य अभिप्राय को गुप्त रखकर गोष्ठ को निजन करने वाले न द न दन रूप म अवतरित भगवान कृष्ण तुम्हारा कल्याण करें।[२]

उपयुक्त पद म कृष्ण की गोष्ठलीला की अ तरग प्रेयसी राधा के प्रति अ य गोपिया की अपक्षा गा तर कृष्णानुराग व्यजित हुआ है।

कवी द्रवचन समुच्चय मे कृष्ण की गोवधन लीला भी राधा प्रणय कटाक्ष की तीक्ष्णता से अपनी अलौकिक महिमा त्याग प्रेम महिमा की प्रतीक बन गयी है। कृष्ण गोवधन पवत का अपनी हथेली पर उठाये हुए हैं। उनके इस गुरुभार का देख राधा की आँखें प्रिय गुण के कारण भर आयीं। सखिया को इस बात की चि ता है कि यदि कृष्ण ने अपनी इस प्राणप्रिया की मुखमुद्रा का किंचित् उद्विग्न देख लिया तो वह इस विराट पवत को धारण करने म कठिनाई का अनुभव अवश्य करेंगे।[३] यह श्लोक रूप गोस्वामी की 'पद्यावली' मे भी उद्धृत है।

इसके अ य उपलब्ध श्लोक रति लीला से सम्बद्ध हैं। इन लीलाग्रो के आश्रय कृष्ण शृङ्गार के धीरललित नायक है। नीचे के पदो म उनकी केलि चातुरी का प्रत्यक्ष-परोक्ष आभास मिलता है।

ो सखी आपस मे प्रश्नोत्तर कर रही हैं। वह सुरता त की दशा म है। सखी उसकी इस अस्तव्यस्त स्थिति को लक्षित करती हुई कहती है—[४]

---

१ कवी द्रवचन समुच्चय—२२

२ धेनुदुग्धकलशानादाय गोप्यो गृह
दुग्ध वष्कयिणी कुले पुनरिय राधा शनैर्यास्यति।
इत्य यव्यपदेशगुप्तहृदय कुर्वन् विविक्त व्रज
देव कारणन दसूनुरशिव कृष्ण स मुष्णातु व ॥

३ वही—४२

४ वही—५१२

ध्वस्त केन विलेपन कुचयुगे केनाञ्जन नेत्रयो
राग केन तवाधरे प्रमथित केशेषु केन स्रज ।
तेना (शेषज) नीपवस्मयमुषा नीलाब्जभासा सखि
किं कृष्णेन न यामुनेन पयसा कृष्णानुरागस्तव ॥

अर्थात्, 'कुच के विलेपन और नेत्र के अञ्जन को किसने पाछा ? तुम्हारे अधरों के राग और केश के फूलों को किसने प्रमथित किया ? सखी, जो सम्भवत राधा भी हो सकती है उत्तर देती है—'सखी ! यह अशेषजन स्रोत के पापनाशी नीलपद्म भास के द्वारा हुआ ।' अन्तिम पक्ति मे बात खुल सी जाती है । प्रगल्भा सखी फिर पूछती है—'तो, कृष्ण के द्वारा हुआ ? उत्तर मिला—नही, यमुना जल से हुआ ।' और, अन्त म चतुर सखी निष्कर्ष निकालते हुए कहती है—'तब तो काले (कृष्ण) के प्रति ही तुम्हारा अनुराग है ।

श्लेषकुशला सखी के उक्त परिसवाद म कृष्ण के लीलामय चरित्र का रतिमधुर मुस्कान प्रच्छन्न है । सुभाषितकार की प्रतिभा विलक्षण होती है । इसके शृङ्गार वर्णन की नाना अदाओ से कृष्णचरित्त म जिस वैदग्ध्य का सन्निवेश हुआ वह आगामी कवियो के लिए अत्यन्त प्रेरणादायक रहा है ।

एक और पद्य मे गोपी कृष्ण के प्रणयालाप का प्रश्नोत्तर की शैली मे निदर्शन हुआ है । *लीला बिहारी कृष्ण किसी रात अपनी प्रेयसी के द्वार पर जा पहुँचते हैं ।* आहट पाकर नायिका पूछती है—

कोऽयं द्वारि हरि प्रयाह्युपवन शाखामृगेनात्र किं
कृष्णोऽह दयिते बिभेमि सुतरा कृष्ण कथ वानर ।
मुग्धेऽह मधुसूदनो व्रजलता तामेव पुष्पासवा-
मित्थनिर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरि पातु व ॥

अर्थात् 'द्वार पर कौन है ?'
कृष्ण—'हरि (कृष्ण, बन्दर) ।'
गोपी—'उपवन म जाओ, बन्दर की यहाँ क्या जरूरत है !
कृष्ण—हे दयिते ! मै कृष्ण हूँ ।'
गोपी—'काला बन्दर, तब तो और भी डर है ।
कृष्ण—हे मुग्धे मैं मधुसूदन (मधुकर) हूँ ।
गोपी—'तब तो मकर दी पुष्पो पर जाओ ।

कवि इस श्लिष्ट वार्ता का घात प्रतिघात प्रस्तुत करते हुए अन्त म कहता है कि प्रिया के द्वारा इस तरह कुण्ठित कर दिये गये लज्जित कृष्ण हमारी रक्षा करें । यहाँ कृष्ण की अपेक्षा नायिका को अशेष प्रगल्भा बना कर उपस्थित किया गया है ।

हरिव्रज्या प्रकरण के एक श्लोक म खण्डित नायिका की एक दूती ने कृष्ण सन्धान के सिलसिले म उनके अनेकानेक रमणस्थलो का उल्लेख किया है । वह कहती है, 'सखी मैंने सारी रात उस धूत को यहाँ वहा ढूढा पर उसका कुछ पता न चला । अवश्य ही उसने किसी अन्य नायिका के साथ अभिसार किया होगा । कृष्ण न वटवृक्ष के तले थ और

न गोवर्धनगिरि की तलहटी में। वह न तो यमुना के किनारे मिले और न वेतस-कुंज में ही।' ठीक इसी तरह का चित्रण विद्यापति पदावली में भी आया है जहाँ दूती द्वारा उपरिवत् कृष्ण के मप्रसंग (डिटेल्ड) सन्धान का सन्देश मिलने पर राधा को उस केलि चतुरा दूती से ही सौतिया डाह होने लगता है।

रति, दूती और अभिसार के इन प्रसगों में आया 'कृष्ण' नाम शृङ्गार रस के नायक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण के इस नागर रूप का प्रतिबिम्ब जयदेव, विद्यापति आदि शृङ्गाररस के सिद्ध कवियों से होता हुआ रीतिकालीन कविता में वर्णित कृष्ण पर जा पड़ा है। उनकी इस विदग्धता का जहाँ कहीं अतिचार हुआ, वह शृङ्गारदेव से रतिलम्पट नागर या काम नायक बन गये हैं।

१२वीं शती की एक प्रसिद्ध सुभाषित कृति 'सदुक्ति कर्णामृत' अथवा 'सूक्तिकर्णामृत' है। इसके संग्रहकर्त्ता श्रीधरदास बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के सभासद् थे। इसमें ४४६ कवियों की उद्धृत कविताएँ हैं।[1] इनमें कृष्ण की व्रजलीला और राधाकृष्ण प्रेम से सम्बन्धित अनेक पद्य हैं। यहाँ लक्ष्मी या रुक्मिणी प्रेम के स्थान पर राधा प्रेम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। द्वारिकावासी कृष्ण रुक्मिणी द्वारा कण्ठाश्लिष्ट हो निद्रामग्न हैं। वह स्वप्न में जो कुछ भी बड़बड़ाते हैं, इससे उनके रुक्मिणीप्रेम की अपेक्षा राधा प्रेम, स्वीया प्रीति की अपेक्षा परकीया रति अथवा द्वारिका लीला की अपेक्षा वृन्दावन लीला की श्रेष्ठता सिद्ध होती है[2]—

> निर्मग्नेन मयाम्भसि प्रणयत पाली समालिंगिता
> केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा ताम्यसि।
> इत्युत्स्वप्नपरम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणो
> रुक्मिण्या शिथिलीकृतः सकपटं कण्ठग्रहः पातु वः॥

मानवती राधा को मनाने के लिए कृष्ण ने जब यह कहा—

'मैंने जल में गोता लगाकर एक युवती का प्रेमालिंगन कर लिया, यह झूठी बात तुझे किसने कह दी? हे राधे, तुम व्यर्थ रुष्ट हो। तो इस बात को सुनकर जिस गाढ़ा-लिंगनपाश को रुक्मिणी ने ढीला कर लिया, वह तुम्हारी रक्षा करे।' ठीक इसी तरह का भाव एक दूसरे पद्य में उतर आया है। श्री के साथ रमण करते हुए भी हरि के दिल से राधा रति की याद नहीं जाती।[3] १० वीं शती के आस पास स्फुट कविताओं के माध्यम से कृष्ण के पौराणिक स्वरूप के स्थान पर लोक स्वरूप प्रतिष्ठित होता जा रहा था। इसी-लिए उनकी शृङ्गार लीलाओं में रुक्मिणी आदि महिषियों के स्थान पर व्रज की गोपियों और गोपी श्रेष्ठ राधा के परकीया प्रेम को अधिकाधिक प्रश्रय मिलता गया। जयदेव का गीतगोविन्द इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। सदुक्तिकर्णामृत में इसीलिए रमालिंगित शेषशयन के

१ कीथ—'सं० सा० इ०' (पृ० २६६)

२ सदुक्तिकर्णामृत, कृष्णस्वप्नायित—५। यह रूपगोस्वामी की 'पद्यावली' में उमापतिधर नाम से उद्धृत है।

३ सदुक्तिकर्णामृत, उत्कंठा—४।

भी कृष्णावतार था ही, जिसम सहस्रो गोपियों के साथ उनका सगम-सुख मचित है, जयनाद किया गया है[१]—

'कृष्णावतारकृतगोपवधूसहस्र संगस्मृतिर्जयति ।'

इसी भाव की सपुष्टि जयदेव के समसामयिक उमापतिधर के एक पद्य से भी होती है। इसके अनुसार लक्ष्मी की अवतार रुक्मिणी को लेकर द्वारिकावासी कृष्ण गाढालिंगनबद्ध हैं। किन्तु, अपने विशाल भवन म रुक्मिणी सेवित होकर भी कृष्ण यमुना तटवर्ती वानीर कुञ्ज मे आभीर बालाओ के साथ अपने गुप्त चरित की याद कर मूर्च्छित हो रहे हैं।[२] शरण कवि का एक पद्य उपर्युक्त भाव का साक्षी है जिसम द्वारिकाधीश कृष्ण यमुनातटवर्ती कदम्बपुष्प से सज्जित क दरा म राधा के साथ किये गये प्रथम अभिसार की मीठी सुधियो मे तप रहे हैं।[३]

सामा य जन मन म दशन के स्थान पर मधुर भावनाओ का विशेष आग्रह होता है। कृष्णचरित के साथ यह लोक सिद्धा त पूणत घटित है। कृष्ण की द्वारिका लीला में जिस महिमा का वितान है लोक मन म उसके प्रति स्निग्ध रुझान नही है। यही कारण है कि द्वारिकावासी कृष्ण को अपनी सुधियों, कल्पनाओ के रसमधुर पाश मे बाँध कर ब्रजलीला म उतार दिया गया है। काव्य के अतिरिक्त का यप्रेरित परवर्ती पुराणो मे भी इसी भावना का आधिपत्य दिखाई पडता है। १२ वी शता दी और उसके बाद के पद साहित्य म गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की शृङ्गार लीला पूणत स्थायी भाव सी बन गयी है। और, विस्मय की बात तो यह है कि इन सहस्रो पदों का रचना के द्र भारत का पूर्वी अचल ही है। सदुक्ति कर्णामृत एक ऐसा सग्रह ग्र थ है जिसमे गीतगोवि द के यशस्वी प्रणेता कवि जयदेव के भी स्फुट पद्यो का दुलभ सकलन है।[४] इसम शा त, दास्य, वात्सल्य और मधुर विभिन्न भावो और रसो की रचनाएँ हैं। कृष्ण की कौमारलीला के कुछ पद परवर्ती गोष्ठ कविता के समान ही हैं। उदाहरणार्थ[५], कृष्णस्वप्नायितम्–१ के वात्सल्यरसपरक मयूर कवि क पदो की तुलना सूर के बाल लीला विषयक पदो से की जा सकती है।

हरिक्रीडा के प्रकरण म कृष्ण के रूप लावण्य की छटा, गोपी प्रीति, राधिका का विशिष्ट अनुराग किशोर कृष्ण की प्रणयभीरुता और उत्तरोत्तर कृष्ण क केलि चातुय का समवेत अकन हुआ है।

कृष्ण राधा को लकर एका त सभोग की इच्छा रखते हैं। कि तु ग्वाल सखाओ से घिर कर वह ऐसा नही कर सकते। ऐसे म, वह उनसे पिण्ड छुडाने के लिए कहते हैं कि तमाम लताएँ साँपो से भरी हुई हैं। वृ दावन ब दरो से भरा है। यमुना के जल म मगर

१ सदुक्तिकर्णामृत, उत्कठा–५।
२ वही –१।
३ सदुक्तिकर्णामृत–२।
४ वही, गोवधनोद्धार–५।
५ 'डॉ० श० भू० दा० गुप्त–श्री रा० क्र० वि० (पृ० १३१)

हैं। और गिरि कन्दराओं में भयंकर बाघ हैं। कवि कहता है कि ऐसा कह कर मनस्विया से राधा का रोकने वाले कृष्ण तुम्हारा कल्याण करें।[1]

वेणु के सम्मोहक नाद[2], कृष्ण के यौवनागम[3] और राधा कृष्ण समागम[4] के अनेकानेक चित्र सदुक्ति कर्णामृत मे भरे पड़े हैं। और, राधा कृष्ण के श्लेषात्मक प्रश्नोत्तर न जाने कितने हैं।[5]

सदुक्तिकर्णामृत मे 'गोपी सन्देश' नामांकित पद भी प्राप्त होते हैं। इन पदो मे प्रवासी (द्वारिकावासी) कृष्ण के प्रति गोपियों के अन्तमन की गम्भीर व्यथा व्यंजित हुई है। इसमे कृष्ण का 'द्वारवतीभुजग' तक कहा गया है।

सदुक्तिकर्णामृत के उपर्युक्त पदो का देखने से यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि यहाँ वर्णित होने वाली कृष्ण की शृङ्गार-लीलाओं म मानवीय प्रेम-रस का आग्रह है। कृष्णचरित अपनी दार्शनिक दीप्ति और ऐतिहासिक प्रखरता को त्याग कर लौकिक भावनाओं के घात प्रतिघात से पूर्णत सरस हो गया है। वह मटमैला होने पर भी मनोहरी है।

भावना के इसी स्तर पर 'पद्यावली' नामक मुक्तक ग्रंथ मे कृष्ण लीला विषयक सरस पद्यो की रचना हुई है। इसके संकलयिता १६ वीं शती के प्रसिद्ध गौडीय वैष्णवाचार्य श्री रूपगोस्वामी हैं। विद्वानो की धारणा म यह १२ वीं शतीय बंगेश लक्ष्मणसेन की सभा में जयदेव के समकालीन कवि रत्नो द्वारा लिखी गयी कृष्णप्रेम परक कविताओ का संग्रह है।[6] किन्तु, कुछ विद्वान् इसमे संकलित कुछ कविताओ का जयदेव युग से पूर्ववर्ती कृति मानते हैं।[7] इसमे पूर्वी प्रदेश के व्यापक भूभाग म रचित होने वाले प्रेम गीत संगृहीत हैं। और, इनके अनुशीलन से जहाँ जयदेव के गीतगोविन्द की व्यवस्थित शृङ्गारवृत्ति का परिचय मिलता है वहीं विद्यापति आदि कृष्ण प्रेमप्रपन्न कवियो के सौन्दर्य-बोध के साथ १६ वीं शती की राशि राशि शृङ्गार रसात्मक कविताओं की पूर्व पीठिका का सम्यक बोध भी हो जाता है। मध्ययुग म मध्यदेश की ब्रज कविता मे शृङ्गार देव श्रीकृष्ण के आगमन का वस्तुत यही प्रकृत का पथ है। अत कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप के निदर्शन के लिए इनका यत्किंचित् उल्लेख आवश्यक है।

पद्यावली मे संकलित कविताओ का देखने पर यह प्रत्यक्ष आभास मिल जाता है कि मानवीय प्रेम पर आधारित प्राचीन शृङ्गारिक कविताएँ ही (जयदेव-युग मे आकर) धीरे धीरे राधा कृष्ण आध्यात्मिक प्रेमपरक वैष्णव कविताओं म रूपान्तरित हो गयीं।

९ वीं शती के पूर्व क अमरुक कवि की विरह प्रेमजन्य कविताएँ, गोवर्धनाचार्य की गोपी-सन्देश-परक आर्याएँ, कवीन्द्रवचन समुच्चय और सदुक्तिकर्णामृत म वर्णित शृङ्गारिक लीलाएँ पद्यावली संग्रह म आकर राधा-कृष्ण प्रेम के संयोग वियोगमय प्रसंगो म परिणत हो गयी हैं। पार्थिव प्रेम प्रसंगो के आलम्बन बन जाने से श्रीकृष्ण की अलौकिक महिमा के

१ हरिक्रीडा-४ २ वेणुनाद -३ ३ कृष्ण यौवनम्-२

४ हरिक्रीडा-१ ५ प्रश्नोत्तरम्-१

६ कीथ-'सं० सा० इ०' (पृ० २६२)

७ डॉ० श० भू० दा० गुप्त-श्री रा० क्र० वि० (पृ० १३७)

स्थान पर उनकी लोकसरस वृत्तियों के संवर्धन का सुअवसर मिला। इस तथ्य के अनेक प्रमाण हैं। एक अति प्रसिद्ध पद्य नीचे दिया जाता है—

य कौमारहर स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चो मीलितमालतीसुरभय प्रौढा कदम्बानिला ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेत समुत्कण्ठते ॥

यही पद्य किंचित् पाठान्तर के साथ कवीन्द्रवचन समुच्चय और सदुक्तिकर्णामृत, पद्यावली और चैतन्यचरितामृत तथा जीवगोस्वामी के गोपालचम्पू' आदि अन्य ग्रंथों में पाया जाता है। अन्तर इतना ही है कि उपर्युक्त दो सुभाषित संग्रहों में जहाँ यह 'असतीव्रज्या' विषयक प्रसंग में उद्धृत हुआ वहाँ रूपगोस्वामी ने उक्त श्लोक के बाद ही उससे मिलता जुलता एक स्वरचित श्लोक रखा है—

प्रिय सोऽयं कृष्ण सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाऽहं सा राधा तदिदमुभयो संगमसुखम् ।
तथाप्यन्त खेलन्मधुरमुरलीपंचमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति ॥ १८७

अर्थात्, 'हे सखी, कुरुक्षेत्र में वही प्रिय कृष्ण मिले थे, मैं भी वही हूँ, हम दोनों का संगम सुख भी वही रहा, किन्तु जिस वन में मधुर मुरली के पंचम स्वर का खेल हुआ करता था, उसी कालिन्दी तटवर्ती वन के लिए मेरा मन ललच रहा है।' उपर्युक्त दोनों पद्यों में स्थान भेद के अतिरिक्त दक्षिणनायक कृष्ण की सुरतव्यापार लीला के प्रति गाढ़तर उत्कंठा ही अभिव्यंजित है। चैतन्य महाप्रभु उक्त श्लोक का स्मरण कर आत्मविभोर हो जाया करते थे। उन्होंने अपने भावावेशजन्य व्यक्तित्व से जिस भक्ति भावना का प्रवर्तन किया था, कृष्ण का यह जार भाव उसी का एक आध्यात्मिक आदर्श बन गया है। पूर्वराग और प्रेम, मान और मान भंग, मिलन और विरह के ऐसे कई प्रसंग हैं जिन्हें कृष्ण चरित के सन्दर्भ में रूपान्तरित कर संकलित कर लिया गया है।[1]

यहाँ कृष्ण का तेजस्वी रूप नहीं है, विशुद्ध प्रणयी रूप है। और इसका कदाचित् सबसे बड़ा कारण है इनके रचयिताओं का विशुद्ध कान्तात्मक प्रेम। यह भक्तों की भक्ति भावना से भिन्न आदर्श पर अवलम्बित है। इसीलिए पौराणिक कृष्णचरित की धारा से यह कान्तात्मक (ऐहिक या शृङ्गारिक) चरित मूलतः भिन्न है। इस भिन्नता को तीन रूपों में लक्षित किया जा सकता है। एक तो यह कि मुक्तक पदों के आलम्बन कृष्ण की शृङ्गारेतर वात्सल्य, वीर आदि अन्य लीलाएँ प्राय गायब हैं। इनके नायक कृष्ण नित्य किशोर, लीला विलासी और शृङ्गारस्वरूप हैं। अतः उनके चरित में अन्य स्वरूपों की झलक नहीं दिखाई देती। दूसरा सूक्ष्म अन्तर यह है कि यहाँ कृष्ण की शृङ्गार लीला भी कथा संवलित

[1] विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—'श्री रा० कृ० वि०' (पृ० १४८–१८८)–डॉ० शा० भू० दा० गुप्त तथा डॉ० सुशील कुमार डे द्वारा सम्पादित 'पद्यावली' की भूमिका (पृ० ६२)

याँ शृङ्खलाबद्ध न होकर स्फुट है। इसलिए शृङ्खलाबद्ध शृङ्गार लीला का जो चरम विकास ब्रज-लीला म रास के अन्तगत प्रतिष्ठित दिखायी पड़ता है यहाँ उसकी ओर विशेष रुझान नहा है। मुक्तक गीतियो म वर्णित शृङ्गारलीला राग प्रधान न होकर रस प्रधान ही है। इसे यदि चरितप्रधान न होकर भावप्रधान कह तो कह सकते हैं। इस काव्य रस की उद्भावना के लिए कृष्ण चरित मूल आलम्बन है। राधा या गोपी आश्रय है। इन दोनों का परस्पर प्रेम रति स्थायी है। तथा इस रति की पुष्टि के लिए पूर्वराग, मिलन, मान, सयोग और वियोग आदि भाव दशाएँ परिकल्पित की गयी हैं। समागप्रधानता इसकी तीसरी विलक्षणता है।

पद्यावली मे उपयुक्त सारे लीला प्रसग हैं। रूपगास्वामी ने भक्ति रसामृतसिन्धु में पद्यावली के १४-पद्य उद्धृत किय हैं। इनके अनुसार कृष्ण नायिका के साथ हुए प्रश्नोत्तर म परम श्लेपकुशल हैं।[१] मुरलीधर कृष्ण का वशी-सम्मोहन अद्भुत है।[२] ठीक उसी प्रकार उनके रूप सौन्दय तथा दृष्टि सम्मोहन का प्रभाव विलक्षण है।[३] नायिका इस सम्मोहन-पाश म फँस कर अपना सवस्व समर्पित कर देती है। इस समर्पण से उसके प्रेमिल अन्तर म मधुर क्रीडा का जन्म होता है। सखी उसके निवारण के लिए कृष्ण सयोग की सलाह देती है।[६] सयोग की घडी आती है और महामिलन के उस प्रेम पथ मे राधा और कृष्ण मिलकर एकाकार हो जाते हैं-[५]

परमानुरागपरयाऽथ राधया परिरम्भकौशलविकाशिभावया।
स तया सह रमरसमाजतोत्सव निरवाहयच्छिखिशिखण्डशेखर ॥

किन्तु सयोग के प्रगाढ आलिंगन से परिचित कवि वियोग का दारुण वेदना से जी नही चुराता। वह कृष्ण के प्रवास का भी चित्रण करता है। कृष्ण वियोग म अश्रुक्लुषा राधा की दुरवस्था हृदय विदारक है।[६] और इस दुःख का कोई आर अन्त नही है। क्योंकि मिलन की वला मे भी प्रेमातिरेक और भावुकता के कारण निश्चिन्त सभोग का आनन्द नहा मिलता। आनन्दाश्रु और प्रणय कम्प बाधक सिद्ध होते हैं—

आनन्दोद्गतबाष्पपूरपिहित चक्षु क्षम नेक्षितु
बाहू सीदत एव कम्पविधुरौ शक्तौ न कण्ठग्रहे।
वाणी सभ्रमगद्गदाक्षरपदा सक्षोभलोल मन
सत्य वल्लभसगमोऽपि सुचिराज्जातो वियोगायते ॥ १८४

उपर्युक्त श्लोक जहाँ मान भग के अनन्तर सभोग कुण्ठित नायिका वचन के रूप म उल्लिखित है वहाँ रूपगोस्वामी ने अपनी 'पद्यावली म इसे राधा कृष्ण कुरुक्षेत्र मिलन प्रसग में राधा

१ पद्यावली— हरिभक्तिरसामृतसिन्धु'—२७०।
२ वही वही —६०२ तथा ६०५
३ वही वही —६०८
४ वही वही —५५६
५ वही वही —६१३
६ पद्यावली—हरिभक्ति रसामृतसिन्धु-६११

चेष्टित कहकर उद्धृत किया है। अत हमारा निष्कर्ष है कि 'पद्मावली' के राधा कृष्ण पूर्ववर्ती लोक लोक का य (हाल की गाथासई आदि) मे वर्णित शृङ्गार के आश्रयालम्बन और तत्पश्चात् मुक्तक काव्य के नायिका नायक वे ही वैष्णवी रूपा तरण हैं।

(३) प्रब ध गीति—भाषाकाव्य मे कृष्णचरित से सम्बधित जो स्फुट शृङ्गार लीलाएँ सैकडो वर्षों से लोकप्रचलित थी उ ही का व्यवस्थित रूप प्रब ध गीति है। १२ वी शती म जयदेव आदि रससिद्ध कवियों ने अपने युग साहित्य मे प्रवाहित कृष्ण भावना का आलोडन किया था। उ होने जन भावना के स्तर पर व्याप्त कृष्णचरित को देववाणी मे इस विदग्धता से चित्रित किया कि उसकी समस्त सुकुमारता और सागीतिकता धूमिल होने के बजाय और निखर उठी। उनका 'गीतिगोवि द कृष्ण की शृंगार लाला का का य म सचित रस-कोश है।

जयदेव के गीतगोवि द के समाना तर दक्षिण मे पाया जाने वाला एक और लोक प्रसिद्ध गीतिका य है—लीलाशुक विल्वमगल ठाकुर का कृष्णकर्णामृत। इसकी लोकप्रसिद्धि और सरसता पर रीझ कर चत य महाप्रभु ने अपने दक्षिण भ्रमण मे उसकी टीका करवा लायी थी।[१] इसमे वर्णित कृष्णचरित अपनी सरसता और भावविदग्धता के कारण पर वर्ती देशभाषा का य का प्रेरक रहा है।

गीतगोवि द की नाई कृष्ण कर्णामृत की कृष्ण लीला म भी राधा का स्पष्ट समावेश है। दक्षिण के लिए राधा कृष्ण शृङ्गार लीला कोई अस्वाभाविक प्रसग नही है। हम आल्वारों के का य काल म ही 'निप्पन्नई' की प्रेम कथा का प्रचलन देख चुके हैं। अत गीतगोवि द या कृष्णकर्णामृत की राधा कृष्ण लीला कोई ऐकां तक आविष्कार नही है। ये तो उस सम्पूर्ण का य युग के भावात्मक प्रतीक-से हैं। जिस गीति युग का सम्पूर्ण काव्य बोध ही 'का ह विना गीत नही'[२] इस स्वीकृत सत्य से अनुप्राणित हो उसम का य के सावभौम प्रेमालम्बन के रूप म कृष्ण चरित का गुणगान विशेष विस्मय की बात नही। जयदेव या लीलाशुक की विशेषता उनके लौकिक अलौकिक स्वरूप समाहार म सनि हित है। मध्ययुग म कृष्ण का भागवत रूप जो पूर्णत भावगत बन गया, उसका आदि उद्गम इ ही कवियो की समाहार प्रतिभा मे परिलक्षित होता है। जयदव ने अपने गीत गोवि द की फलश्रुति मे ही 'हरिस्मरण के साथ 'विलास कला' को युक्त कर 'मधुर कोमल का त पदावली की प्रस्तावना की।[३] उसी प्रकार लीलाशुक ने भी कृष्णकर्णामृत मदनके रजक रूप के साथ तेजस्वी रूप का, 'राधा रमण रूप के साथ 'शेषशयन रूप का नमन किया है।[४]

कृष्णकर्णामृत म कृष्ण चरित का 'चरितामृत' कहा गया है। लीलाशुक उसकी सरसता का बखान करते हुए कहते हैं कि राधा का रास्ते म रोक कर छेडछाड करने वाला तुम्हारा जो शैशव चापल्य है या वेणुगान के क्षण तुम्हारे मुख कमल पर छाने वाला नाना

१ चत य चरितामृत-मध्यलीला-६।
२ डा० श० भू० दा० गुप्त-'श्री रा० क्र० वि०' (पृ० १८२)
३ गीतगोविन्द-१/३ ४ कृष्णकर्णामृत-१/७५

भावभावित जो लीलाएँ है वे धारावाहिक रूप से मेरे हृदय मे बहती रह।[1] यहाँ कृष्ण चरित के निरूपण म जयदेव और लीलाशुक की दृष्टि भगी प्राय एक सी है। किन्तु लीला शुक जहाँ इस चरितामृत के रस पान का श्रेय केवल पुण्यवानों को देना चाहते हैं वहा जयदेव अपनी भारती को सबके हृदय मे 'कामल कलावती रमणी' के रूप म रम जाने की कामना करते हैं।[2] निस्सन्देह लीलाशुक के कृष्ण मूलत ईश्वर हैं जबकि जयदेव के कृष्ण मानव ईश्वर। इसका एक प्रबल आधार यह है कि लीलाशुक ने सम्पूर्ण व्रज लीला के वृत्त मे कृष्ण के भावात्मक सभी स्वरूपो (बाल, कैशोर, पौगण्ड आदि) का आकलन प्रस्तुत किया जबकि गीतगोविन्द का प्रारम्भ ही कृष्ण की यौवनलीला म होता है।

गीतगोविन्द म १२ सग हैं। इन सर्गों के विशेषण युक्त नामा म इसमे वर्णित कृष्णचरित का ईषत् आभास मिलता है। ये इस प्रकार हैं—

(१) सामोद दामोदर (२) अक्लेश केशव (३ मुग्धमधुसूदन (४) स्निग्ध मधुसूदन (५) साकांक्ष पुण्डरीकाक्ष (६) धृष्ट वैकुण्ठ (७) नागर नारायण (८) विलक्षण लक्ष्मीपति (९) मुग्ध मुकुन्द (१०) चतुर चतुर्भुज (११) सानद दामोदर (१२)सुप्रीत पीताम्बर। इन सर्गों के अन्तर्गत प्रबन्धो की योजना है।[3]

जैसा कि ऊपर कहा गया, इस काव्य का आरभ ही बाल कृष्ण की किशोर लीला से होता है जिसका आभास ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय-१५ के ४थे श्लोक से मिलता है।[4]

श्यामघटाओ से आकाश घिरा था। श्यामल वन भूमि अन्धकाराच्छन्न हो गयी। नन्द बाल कृष्ण को लेकर वन म गोचारण के लिए आये हुए थे। वह इस घनान्धकार से मन-ही मन घबडा उठते हैं। सयानी राधा का पास देख वह उसे यशोदा के पास पहुँचा देने को कहते हैं। राधा कृष्ण को लेकर जब यमुनातटवर्ती घन वन प्रान्तों से होकर गुजरती है तो परस्पर उनके मन म कामोद्रेक हो आता है और राधा कृष्ण कुञ्ज म दर तक ठहर कर रमण क्रीडा करते हैं।

गीतगोविन्द म वर्णित राधा कृष्ण प्रेम की प्रारभिक भूमिका यही है। इसके अनन्तर दानो हृदयो में नित्यनूतन प्रेम का सचार होता है। किन्तु, इसी बीच कृष्ण का अन्य गोपियो से प्रेम सम्बन्ध बढ जाने के कारण राधा का ऐकान्तिक प्रेम सहसा उपेक्षित पड जाता है। यहाँ कृष्ण का चरित्र जार, मनहर किन्तु अविश्वसनीय है और राधा का खण्डित और विरह दग्ध। सखी जब विरहिणी राधिका के समक्ष ऋतुराज वसन्त का मादक वन मे अन्य गोपियो क साथ कृष्ण की रमण-केलि का बयान करती है तो राधा का विरह कातर एकान्त मन उन्मथित हो उठता है। इस विवरण म कृष्ण का वसन्त विलासी स्वरूप स्पष्ट है—

---

१ कृष्णकर्णामृत-१/१०६ २ गीतगोविन्द-७/१०

३ प्रत्येक गीत एक प्रबन्ध है और सम्पूर्ण काव्य म ऐसे २४ प्रबन्ध हैं। इसी से इसे 'प्रबन्धगीति' शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है।

४ यह प्रसग बाद में 'सूरसागर' म भी गृहीत हुआ-पद स० ६८४/१३०२ द्रष्टव्य।

'विहरति हरिरिह सरस वसन्ते ।
चन्दन चर्चित नील कलेवर पीत वसन वनमाली ।
केलि चलन्मणि कुण्डल मण्डित गण्डयुगस्मितशाली ।
हरिरिह मुग्धवधू निकरे विलासिनि विलसति कलि परे ॥ध्रु० १

अर्थात् हे राधे, चन्दनचर्चित नील वर्ण के शरीर वाले, पीताम्बरधारी वनमाली, विलास में हिलते हुए मणि कुण्डल से युक्त कपोलों पर मुस्कान धारण किये यहाँ क्रीड़ा करती हुई मुग्ध युवतियों के समूह में वसन्त विहारी कृष्ण विलास क्रीड़ा कर रहे हैं।' राधा अगणित गोपियों से घिरे कृष्ण के पास जाती है और उनके साथ नाना भाँति की प्रणय चेष्टाएँ प्रदर्शित करती है। किन्तु गोपी वल्लभ (दक्षिण नायक) कृष्ण के द्वारा कुञ्ज तक ले जाकर भी उसकी एक बार पुनः उपेक्षा हो जाती है। कृष्ण की इस दुहरी उपेक्षा से राधा को घोर विषाद होता है। उधर कृष्ण भी भीतर ही भीतर अप्रसन्न और क्षुब्ध रहते हैं। राधा विछोह की प्रबल उत्कंठा उनके मन में जाग्रत होती है। और वह अनुताप से आकुल होकर (तृतीय सर्ग में) स्वयं राधा संधान में प्रवृत्त होते हैं। इस पद्य पाठों में कृष्ण की विरह दशा तथा ७ वें प्रबन्ध में प्रेमगीत व्यंजित हैं। वह मन ही मन राधा से क्षमा भी माँगते हैं तथा प्रकट होने का आग्रह करते हैं। इसी बीच राधा की सखी आकर राधा विरह दशा का हाल सुनाती है। इससे कृष्ण और भी अधिक मिलनातुर हो उठते हैं। वह सखी से राधा को पास पहुँचा देने का आग्रह करते हैं। सखी राधा से अनुरोध करते हुए कृष्ण की काम बेकली का बयान करती है। भारतेन्दु के शब्दों में[1]—

'छोड़ि देह-सुख गेह बिसारी। गिरि बन वास करत गिरधारी॥
मुरछि धरनि लोटत बिलखाई। चौंकि रहत राधे रट लाई॥

जयदेव के निम्नस्वर में कृष्ण का मदन मनोहर रूप द्रष्टव्य है—

रति सुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहर वेषम्।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्।
धीर समीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली।
गोपी पीन पयोधरमर्दनचंचल कर-युगशाली ॥' ध्रु० १॥

इस पद्य के तीसरे चरण में नायक कृष्ण का वासकसज्जा रूप प्रत्यक्ष है—

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शंकित भवदुपयानम्।
रचयति शयन सचकित नयन पश्यति तव पन्थानम् ॥ धी० ३॥

आगे की लीला में राधा मानवती और कृष्ण धीरललितनायक के रूप में दर्शाये गये हैं। किन्तु, राधा को सतत् कृष्ण के बहुवल्लभत्व का भय सताता रहता है। वह कहती है—

'कापि चपला मधुरिपुणा विलसति युवतिरधिकगुणा ॥ ध्रु०
विचलदलक ललितानन चन्द्रा। तदधरपानरभस कृत तन्द्रा ॥ ३०'

सखी ने पहले भी कृष्ण के इस लक्षण की ओर संकेत करते हुए राधा के कठिन मान को कोसा था—[2]

---

१ गीतगोविन्दानन्द—२३ (भारतेन्दु ग्रन्थावली – पृ० ३१७)
२ भारतेन्दु—गीत गोविन्दानन्द—२४ (भारतेन्दु ग्रन्थावली—पृ० ३१८)

'हरिवल्लुनायक' यानो रैनहु जात चली सब बीती।
धगहि चलु करु पीय मनोरथ पालि प्रीति की रीती ॥

यह गीतगोविन्द के कृष्ण की अन्यतम विशेषता है। विद्यापति की शृङ्गारिक पदावली के नायक कृष्ण भी बहुवल्लभ हैं। और उनकी राधा को भी पग पग पर इसका भय बना रहता है। इसीलिए यहाँ भी सखियों की मध्यस्थता पुरजोर है।

दानो ओर से दूती व्यापार निष्फल सिद्ध होने पर नायक की ओर से मिलन चेष्टा बढती जाती है और जिस अनुपात मे यह सक्रियता बढती है, नायिका का मान उत्तरोत्तर गाढ़तर होता जाता है।

कृष्ण जब एक बार साहसपूर्वक राधा के पास पहुँचते हैं तो राधा उनके आनन पर के विलक्षण सभाग चिह्नों की ओर लक्ष्य कर वहीं वापस हो जाने को कहती है, जहा से सुरत समाप्त कर वह उसके पास गये थे। उसके अनुसार काले कृष्ण वनिताओं के वधिक शिकारी हैं।[१] इस तिरस्कार वचन को सुनकर कृष्ण वहा से खिसक जाते हैं। किन्तु वह अपने धीर लालित्य का परिचय देते हुए पुन राधा को मान शमन करने का आग्रह करते हैं। कृष्ण के द्वारा राधा का बताया गया जो प्रणय दण्ड विधान है उसम उनकी शृङ्गारिकता कूट कूट कर भर दी गयी है। वह कहते हैं—

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी देहि खरनखरशरघातम् ।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं येन वा भवति सुखजातम् ॥ २

अर्थात्, 'हे राधे ! यदि सचमुच तुम्हारा मुझपर प्रणय कोप है तो तू मुझे अपने नख रूपी वाणो से क्यो नही मार देती। कठोर भुज पाश मे बाँध कर तथा अधर दशन देकर अपना बदला क्या नहीं सधा लेती। १० वाँ सर्ग इसी प्रणय-दण्डविधान को लेकर इतना रम्य पशल है।[२] मैथिली के कवि उमापति के पारिजात हरण नाटक मे कृष्ण सत्यभामा का मान मोचन इसी पद्धति से करते हैं।[३] विद्यापति के कृष्ण भी अपना मानिनी राधा को मनाने के लिए ठीक वैसा ही कहते हैं।[४] अन्ततागत्वा राधा के पाद-सेवन से मान मोचन विधि की पराकाष्ठा हो जाती है और मान का पाषाण ढल जाता है। सखियाँ कृष्ण के कुन्ज म राधा का प्रवेश करने का आग्रह करती हैं। राधा अन्दर जाती है। प्रतीक्षातुर कृष्ण उससे कुछ आग्रह करते हैं। राधा मान जाती है और ज्यों ज्यो रात बीतती जाती है, वे दोनो प्रेमी युगल प्रमग सुख की अतल गहराइयों मे डूबते जाते हैं।

अन्त म जब काम ज्वर उतर जाता है, राधा कृष्ण से फिर उसका शृङ्गार कर देने का आग्रह करती है और 'प्रीत पीताम्बरोपि तथाकरोत्' अर्थात्, 'सुप्रीत पीताम्बर' वैसा ही करते हैं।

अत गीतगोविन्द की कृष्ण लीला मिलनान्त है। यह मूलत यमुनातटवर्ती केलि

---

१ गीतगोविन्दानन्द–३० (भारतेन्दु ग्रथवाली–पृ० ३२२)
२ गीतगोविन्द–१०/१२/१–३–७
३ जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भग–३, खण्ड–१, पृ० ४६ (डॉ० ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित 'परिजातहरण नाटक')
४ विद्यापति की पदावली–(रामवृक्ष बेनीपुरी)–पद स० १३७

कुन्जो मे निरन्तर चलने वाले गोपी-कृष्ण के प्रणय मान मनुहार तक वर्णित है। यहाँ कृष्ण मथुरा नही जाते।

इसमे वर्णित कृष्णचरित शृङ्गार हेतु होने के कारण कवि कल्पित अधिक है, पुराण वर्णित कम। इसके कृष्ण मुख्यत राधा कृष्ण हैं। राधा-कृष्ण के प्रेम मे अतिरिक्त गरिष्ठता लाने के लिए कवि ने कृष्ण को बहुवल्लभ रूप में वर्णित कर राधा के मनमे असूया, सापत्न्य और मान-वृत्ति का सुन्दर सन्निवेश किया है। इससे कथा के मध्य मे एक कृत्रिम मानसिक तनाव का अवगम होता है। किन्तु राधा और कृष्ण का परस्पर अनुकूलता अविच्छिन्न बनी रहती है। यही अनुकूलता गीतगोविन्द काव्य के शृङ्गार की अन्तर्धारा है। और इसके प्रबल संवाहक स्वयं कृष्ण हैं। उनकी काम दशा तथा वाग्वक्रता इसके प्रमाण हैं। नायक पक्ष की यह सक्रियता कृष्ण की भावात्मकता का नूतन मानदण्ड है।

यहाँ कृष्ण प्रेमी और कितव हैं। साथ ही, वह राधा रमण और बहुवल्लभ दोनों ही हैं। इन दोनो तत्वो के सम्मिश्रण से उनका चरित्र विलासी नागर और प्रियतम भगवान् का सम्मिलित प्रतिरूप बन गया है। वह मानव मन की समस्त कामनाओं के पुञ्जीभूत स्वरूप हैं। तथा उनकी शृङ्गार लीला म उन सभी भावावेगो के चित्रण हैं। यही कारण है कि जयदेव के गीतगोविन्द की कृष्णभक्ति की अपेक्षा उनकी 'विलास कला' अधिक आकर्षक और सत्य प्रतीत होती है। जयदेव काल के अनन्तर विभिन्न देश भाषाओं में कृष्ण के जिस स्वरूप का आवर्त्तन हुआ वह इसी भक्ति-शृङ्गार की सम्मिलित पीठिका पर। मैथिली मे विद्यापति की कृष्ण भावना पर उक्त प्रभाव सर्वाधिक प्रतिबिम्बित है। विद्यापति ने रूप और रंग आकृति और प्रकृति, आश्रय और आलम्बन इन दोनों दृष्टियो से गीत गोविन्द की काव्य परम्परा मे कृष्णचरित को अंगीकार किया। और उन्होने इस रसात्मक परम्परा को भक्ति काल के कतिपय रसिक भक्तो और कवियो के माध्यम से रीतिकाल तक प्रवाहित कर दिया। जयदेव युग के कृष्णचरित की निम्नलिखित विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं—

(१) सस्कृत गीति काव्य म कृष्ण शृङ्गाररस के नायक हैं।

(२) यह लौकिक प्रेम रस के अलौकिक आलम्बन हैं। अत इन्हे 'शृंगार-देव' कहना समीचीन है।

(३) जयदेव का गीतगोविन्द लोकप्रचलित राधा कृष्ण स्फुट शृङ्गार लीला का व्यवस्थित रूप है। यह देव वाणी म गुञ्जित लोक वाणी का ही सरस सगीत है।

(४) इसमे वर्णित कृष्ण लीला युवक कृष्ण की शृंगार लीला है जो मूलत वृन्दावन लीला से ही सम्बद्ध है।

(५) यह पुराण प्रेरित न होकर कवि कल्पित है। इसीलिए इसे रामायणी म कहकर रसायनी कहना अधिक श्रेयस्कर है।

(६) स्वभावत यहाँ कृष्ण का स्वरूप भागवत न होकर भावगत है।

(७) इसमे वर्णित रास वसन्त रास, राधिका परकीया नायिका और कृष्ण दक्षिण नायक हैं। वह बहु-वल्लभ होकर भी राधावल्लभ हैं।

(८) यह मिलन प्रधान काव्य धारा है, कृष्ण मथुरा नही जाते। विद्यापति और रीतिकाल के शृंगारिक कवि इससे प्रत्यक्षत तथा सूर आदि रसिक भक्त परोक्षत प्रभावित हैं।

तृतीय अनुच्छेद

अपभ्रंश काव्य में कृष्ण

हिन्दी काव्य में कृष्णचरित की सम्यक् समीक्षा के निमित्त अपभ्रंश काव्य में कृष्ण भावना का सन्धान नितान्त आवश्यक है। अपभ्रंश और विशेषत ब्रजभाषा की जननी शौरसेनी अपभ्रंश के पद साहित्य की नयी खोज से हिन्दी कृष्ण काव्य पर्याप्त आलोकित हुआ है। इस विषय में अनुसन्धाताओं के मतानुसार विद्यापति और सूर आदि भाषा कवियों की कृष्ण लीला पर श्रीमद्भागवत और गीतगोविन्द की व्यावहारिक प्रेरणा जो भी हो, किन्तु उन पर प्रत्यक्ष प्रभाव प्राचीन ब्रज काव्य (अपभ्रंश आदि) का पड़ा है।[1] अत यहाँ अपभ्रंश के प्रतिनिधि काव्यों में कृष्ण भावना का अन्वीक्षण करते हुए देशभाषा काव्य में विपुल परिमाण में व्यंजित कृष्णचरित की पीठिका प्रस्तुत की जाती है।

१२ वीं शती में जयदेव वर्णित कृष्णचरित का हिन्दी काव्य पर पड़े प्रभाव का संकेत ऊपर किया जा चुका है। किन्तु, यह विस्मय की बात है कि जयदेव से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व अपभ्रंश के यशस्वी कवि पुष्पदन्त के 'उत्तर पुराण' में हम कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं के मधुर अंकन पाते हैं। पुष्पदन्त १० वीं शती के एक जैन कवि थे। और जैनागमों में कृष्णचरित एक भिन्न आदर्श पर अंकित हुआ है।[2] किन्तु पुष्पदन्त ने अपने पुराण में श्रीमद्भागवत का आधार लेकर कृष्ण की वात्सल्य और शृङ्गार लीलाओं का सुमधुर चित्रण किया है। यह कृष्णचरित की तत्कालीन लोकप्रियता का साक्षी है।

यहाँ कृष्ण की बाल लीला में असुर वध से लेकर उनकी नटखट वृत्तियों तक के उल्लेख हैं। पूतना लीला,[3] उलूखल-बन्धन, गोवर्धनधारण,[4] कालिय दमन आदि लीलाएँ इसके अन्तर्गत आती हैं।

शृङ्गार लीलाओं में गोपी कृष्ण विहार[5] तथा रास वर्णन[6] मुख्य हैं। किन्तु, इन समस्त लीलाओं को 'नारायण बाल क्रीडा वर्णनम्' के अन्तर्गत ही परिगणित किया गया है। रास-वर्णन का प्रसंग परम मनोहारी है। इसमें गोपियों की प्रेम विह्वलता का अत्यन्त

१ डॉ० शिव प्रसाद सिंह 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' (पृ० २६०-२६१) तथा 'विद्यापति (पृ० १०४)

२ विशेष विवरण के द्रष्टव्य-'जैनागमों में श्रीकृष्ण'-श्री अगरचन्द नाहटा (विश्वभारती पत्रिका, अक्टूबर ४४)

३ उत्तरपुराण-६

४ वही -१६

५ वही -६४, ६५

६ वही -८५

स्वाभाविक वर्णन हुआ है। एक जैन कवि के अनासक्त चित्र में गोपी कृष्ण के 'क्रीडा रस' का 'हृदय हारी चित्र" निश्चय ही विस्मय की वस्तु है। कवि ने किसी गोपी के पाण्डुर वर्ण की चोली को 'धूलि धूसरित कृष्ण के श्याम तनु की छाया से काला पड़ते दिखलाया है। इसे शृङ्गार के श्याम वर्ण का उनके वैराग्य पाण्डुर वेश पर पड़े प्रतिबिम्ब की कलात्मक व्यंजना ही समझनी चाहिए। पुष्पदन्त के पुराण में वर्णित कृष्णचरित देवत्व के आतंक से भाराक्रान्त नहीं है। वह मानव मन की सहज वृत्तियों से विशेष अनुरंजित है। यहाँ भक्ति की अपेक्षा शृङ्गार का पक्ष प्रबल है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जैन कवियों ने कृष्ण को भगवान के रूप में चित्रित ही नहीं किया, जैसा कि कुछ विद्वान् मानते हैं।[1]

जैन कविता में भागवत प्रभाव, वामनावतार तथा 'तारक कृष्ण' सम्बन्धी स्तुतिपरक उल्लेख इसके प्रमाण हैं। जो हो, एतद्विषयक विवाद हमारा अभीष्ट नहीं।

१२ वीं शतीय हेमचन्द्र द्वारा संकलित अपभ्रंश के दोहों में कृष्ण चरित का उल्लेख है। इनमें एक दोहा स्तुतिपरक है किन्तु दूसरा राधा कृष्ण प्रेम से सम्बन्धित है।

हरि नचाविउ पगणहिं विम्हई पाडिउ लोउ।
एम्बइ राह पओहरह ज भावइ त होउ॥

अर्थात्, हरि को प्रांगण में नचाने वाले तथा लोगों को विस्मय में डालने वाले राधा के पयोधरों को जो भावे वही हो। उक्त दोहे से कृष्ण के राधा वशवर्ती प्रेमी चरित्र का भान होता है। यहाँ कृष्ण यौवनवती राधिका की मुट्ठियों में पूर्णतः आबद्ध हैं।

१४ वीं शती के पिंगल ग्रन्थ 'प्राकृत पंगलम्' में भी कृष्ण प्रेम सम्बन्धी कई छन्द मिलते हैं। इनमें से कुछ छन्द गीत गोविन्द के श्लोकों से भाव साम्य रखते हैं।[2] इनमें वर्णित गोपी या राधा कृष्ण प्रेम में भक्ति और शृङ्गार की मीठी धूपछाँह है। इसकी रागानी भावधारा का विद्यापति आदि समसामयिक भाषा कवियों की कृष्ण भावना से सीधा साम्य है।

प्राकृत पैंगलम् जैसे विशाल छन्दकोश में यों तो कृष्ण सम्बन्धी ९-१० छन्द हैं किन्तु कृष्ण के भावात्मक स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले ३ पद हैं। ये कृष्ण की वृन्दावन लीला से सम्बद्ध हैं।

प्रथम पद श्रीकृष्ण की नौका-लीला या दान-लीला से सम्बद्ध है—[3]

अरे रे वाहहि काण्ह णाव छाडि डगमग कुगतिण देहि।
तइ इत्थि णदिहि सतार दइ जो चाहइ सो लेहि॥

चंचल कृष्ण गोपी को नदी पार करते समय अपनी नाव इधर उधर डुला देते हैं। कृष्ण का इस धृष्टचेष्टा के भीतर छिपे मन्तव्य को भली भाँति समझती हुई, किन्तु बाहर

१ डॉ० शिव प्रसाद सिंह—'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (पृ० २६१)
२ तुलना के लिए द्रष्टव्य—सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (पृ० ६६) डॉ० शिव प्र० सिंह।
३ प्राकृतपैंगलम्—गाहा—१/६

से मिथ्या भय प्रकट करती हुई, गोपी अपनी मीठी सयोग स्वीकृति दे रही है। वह सेवा के रूप मे कृष्ण को मनोवाछित वर देने को तैयार है। अत यहाँ दानलीला भी आभासित है।

एक दूसरे छद मे व्रजेश्वर कृष्ण की बाल लीला, असुर वध लीला तथा यौवन-लीलाओ का समवेत अकन हुआ है।[१]

जिणि कस विणासिय किति पयासिअ
मुट्ठि अरिट्ठि विणास करे गिरि हत्य धरे
जमलज्जुण भजिय पय भर गजिय
कालिय कुल सहार करे जस भुवण भरे।
चाणूर विहडिअ, णिय कुल मडिअ
राहा मुख मह पान करे, जिमि भ्रमर वरे
सा तुम्ह णारायण विप्प परायण
चित्तह चितिय देउ वरा भयभीअ हरा॥

यहाँ कृष्ण का नारायण रूप म स्मरण करते हुए उनकी यमलार्जुनभग, कालिय दमन, गोवर्धन धारण और राधा के मुखमधु का भ्रमर की नाई पान करने वाली बाल और किशोर लीलाओ से लेकर कस वधादि लीलाएँ तक चित्रित हुई हैं।

तीसरा छन्द शिव कृष्ण समवेत स्तुति से सम्बद्ध है। इस छन्द के उत्तरार्द्ध में कृष्ण की गोवर्धनधारी, कस विनाशक, पीताम्बरधारी और सुस्मित मुख मुद्रा का अकन है। शिव कृष्ण समवेत स्तुति परवर्ती कवियो के लिए प्रेरणादायक है।

अन्य छद कृष्ण-स्तुतिमूलक हैं जिनमे उनके मनोहर रूप के साथ साथ दिव्य तेज का आभास मिलता है।

राधा के मुख मधु का पान करने वाले यही कृष्ण सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के शृङ्गारी मुक्तको और लोक गीतो म पल्लवित होते हुए देशभाषा काव्य में पुष्पित हुए। यहाँ तक आकर पुराणों की भक्ति और लोक कविता का शृङ्गार दोनो दूध में मिस्री की भाँति घुल मिल गये। भाषा-कवियो ने इस घुले मिले स्वरूप से अनुरजित भावात्मक कृष्ण का ही लीलागान किया। अत इनमे उक्त मूल्यो का पृथक्करण अस्वाभाविक है। कृष्ण लीला १५वी–१६वी शताब्दी के पद साहित्य की मुख्य उपजीव्य है। उस काल के प्राय समस्त साहित्य म कृष्ण सार्वभौम प्रेमालम्बन के रूप मे गृहीत हुए हैं। पूर्वी प्रदेश म विद्यापति, चण्डीदास, शकरदेव आदि तथा पश्चिम म मराठी सन्त एकनाथ और गुजराती भक्त नरसी मेहता इस सार्वभौम कृष्ण भावना के प्रबल सवाहक हैं। इनके सरस पदो में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप पूर्णरूपेण प्रस्फुटित हुआ। इनका विस्तृत उल्लेख अगले अनुच्छेद मे प्रस्तुत किया जाता है।

---

१ प्राकृतपैंगलम्–मन्मथगृह–१/२०७

चतुर्थ अनुच्छेद

विभिन्न देशभाषा काव्य में कृष्ण

१५वी १६वी शताब्दी का साहित्य विभिन्न देशभाषाओं की काव्य सम्पदाओं के उन्नयन का काल है। लोकभाषा के आश्रय म पनपने वाला साहित्य जन भावनाओं का प्रबल संवाहक होता है। उसके विचारो और अनुभूतियों म शताब्दियो से तरलित हो कर आने वाले लोक विश्वासो रीति नीति, पूजा पद्धति, देवी देवता और ध्यान मनन की अभिव्यक्ति होने का सुअवसर प्राप्त होता है। १४वी १५वी शताब्दी म जब कि सम्पूर्ण देश की भाषा म नव्यतर काव्य मूल्यो का प्रवत्तन हुआ, कृष्ण भावना के सन्निवेश और प्रसार का यथेष्ट सुअवसर प्राप्त हुआ। इसे हम सास्कृतिक जन जागरण का प्रतीक मान सकते हैं। मिथिला म विद्यापति, बगाल मे चण्डीदास, असम म शकरदेव, ब्रज म विष्णुदास, राजस्थान म मीरा, गुजरात म नरसी मेहता इसी जागरण के सन्देशवाहक हैं। इनम विद्यापति का कृष्ण प्रेम कदाचित सर्वाधिक लोक व्यापी है।

तत्कालीन भारत का पश्चिमी अचल बाह्य आक्रमणो से आक्रान्त था। अत चारण कवियो के वीरता व्यजक छन्दो म उस सघषपूर्ण सामन्तीय जीवन को स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली। लडाई भिडाई के उस युग म डिंगल कवियों के पास कृष्णचरित के लोकरजक पक्ष का अनुरजित करने का अवकाश कहाँ था। पूर्वी अचल इस सघष जजर स्थिति से किंचित् अछूता था। अत मैथिल कोकिल विद्यापति की सरस पदावली मे सवप्रथम कृष्णचरित का ललित पक्ष उजागर हुआ।

पूर्व मध्यकाल म शृङ्गार साहित्य की जो भी साधना हुई, राधा कृष्ण ही उसके प्राणाधार रहे। कृष्णचरित मे प्रारम्भ से ही भक्ति शृङ्गार का विविध प्रतिफलन हो गया था। कृष्ण पुराण कल्पना और लोक भावना दोनो ही के सरस प्रतीक रूप मे गृहीत हो चुके थ। राधा कृष्ण प्रेममूला सरस पदावलियो के रचयिता कवि एक ओर तो देव लीला के वर्णन से शान्ति प्राप्त करते थे और दूसरी ओर मानवीय प्रेम के आश्रय म नाना रगविचित्र लीलाओ के रूपायण का उन्हे अवकाश भी मिल जाता था। जयदेव का गीतगोविन्द इस दिशा म एक सफल प्रयोग था। अभिनव जयदेव विद्यापति ने भी मूलत मानवीय सौंदय के आग्रह से जनवाणी म इस काव्य परम्परा का प्रवत्तन किया। उन्होने अपनी पदावली म प्रतीक के रूप में कृष्णचरित को अगीकार कर शृङ्गार के आश्रय और आलम्बन राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओ के रस मधुर गीत गाये। इन सरस गीतों के प्रवाह म सम्पूर्ण उत्तरापथ सराबोर हो गया। विद्यापति के कृष्ण म गाथासप्तशती के राधा मुख मधुपायी, 'कन्ह' से लेकर गीतगोविन्द की कोमलकान्त पदावली मे विछलने वाले 'वनमाली और अपभ्रंश की ऊबड़खाबड़ पगडण्डी पर राधा के पयोधरो को देख डगमगा जाने वाले 'हरि' सम

त रूप से सम्मिलित हो गये है। किन्तु, इनमे लोकगीतो से छनकर आने वाली सरसता विद्यापति की अपनी उपलब्धि है।

यो तो विद्यापति ने सस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली—इन तीनो ही भाषाओ म काव्य रचना की। किन्तु मैथिली पदावली ही उनकी अक्षय कीर्ति की आधारशिला है। पूर्वोक्त दो भाषाओं म रचित काव्य जहाँ उनके पाण्डित्य के धरोहर है, वहाँ मैथिली गीत उनकी सरसता, सहृदयता और समस्त सौन्दर्य बोध के साक्षी हैं राधा कृष्ण ही उनके सौन्दर्य बोध के आधार है। मैथिली पदावली गीतकाव्य है। इन गीतो मे यद्यपि कृष्ण लीला के साथ साथ शिव की नचारियाँ, शिवजटालम्बिनी गगा की स्तुतियाँ भी गायी गयी हैं किन्तु इनकी सख्या कम है। यह मूलत कृष्ण काव्य है। कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप की सम्यक् अवधारणा यहीं से होती है।

विद्यापति की पदावली मे अभिव्यक्त कृष्ण भावना की सम्यक परीक्षा के लिए कवि के कृष्णावतार सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है। पदावली मे नायक कृष्ण की नायिका राधा के प्रेमिल साहचर्य में अनेकानेक शृङ्गारिक चेष्टाएँ और भाव भगिमाएँ व्यंजित हुई हैं। अत इन प्रेम चित्रो की गत्यात्मक 'सटिंग' मे कवि की कृष्णानुभूति को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त होने का अवसर नही मिला है। ऐसे मे कवि की अन्तरग सौन्दर्य-चेतना स्वत कविनिबद्ध पात्रो के चरित्र मे प्रतिफलित हो गयी है। और विद्यापति की पदावली मे यह केन्द्रीय चरित्र कृष्ण नही, राधा है। उसी की नख शिख छवि, उसी की वय सन्धि, उसी का मद स्नाता रूप, उसी की प्रेमचर्या, उसी की दूती, उसी की सखी-शिक्षा और समापण, उसी का अभिसार, उसी का मान, मिलन और विरह। कृष्ण तो मात्र आधेय रूप म राधा भावना पर अवलम्बित कर दिये गये हैं।

कृष्ण मूलत भक्ति देव थे। और, राधा थी शृङ्गार देवी। राधा के सयोग से ही कृष्णचरित मे भावात्मकता आयी। प्रारम्भ मे तो भक्ति और शृङ्गार दोनो समानान्तर रूप मे चलते हैं। किन्तु धीरे धीरे शृङ्गार भक्ति भावना को आच्छादित कर लेता है। और, आराध्य कृष्ण राधा भावना के प्रवाह म विलीन हो जाते हैं।[1] अत कृष्ण के स्थान पर राधा के प्रति कवि के अतिरिक्त अवधान और तज्जन्य राधा भाव के प्राधान्य से भी विद्यापति की पदावली में परिव्याप्त भक्ति या शृङ्गार भावना मे से किसी एक के अतिरेक का निर्णय भलि भाँति किया जा सकता है।

सम्प्रति, विद्यापति काव्य म भक्ति और शृङ्गार का निर्णय हमारा अभीष्ट नही। और न (कृष्ण की अपेक्षा) राधा के शील निरूपण का अतिरिक्त आयास देख हम पदावली के कार्योत्स्व को हिन्दी का प्रथम नायिकाभेद परक ग्रन्थ कह कर सीमित ही करना चाहते हैं। उपयुक्त वक्तव्य से यही अभिप्रेत है कि पदावली मे वर्णित कृष्ण शृङ्गार रस के नायक हैं। वह 'रस आगर नागर' है। वह 'रतिसुबिसारद' कन्त हैं। अत कृष्णावतार के सम्बन्ध म यदि कवि ने कोई अध्यात्मपरक उक्ति नही दी है, तो इससे

१ 'हिन्दी गीतिकाव्य का विकास'—'आलोचना' ५६ (पृ० १४)—श्री हसकुमार तिवारी।

उसकी निरच्छलता ही प्रकट होती है। हाँ, यह बात दूसरी है कि महाप्रभु चैतन्य उनकी पदावली को गा गाकर भक्ति विह्वल हो जाते थे। इसकी समीक्षा यथाप्रसंग की जायगी।

विद्यापति कृष्णावतार के सम्बन्ध में मौन रहे, ऐसी बात नहीं। उनकी अवहट्ट रचना कीर्तिपताका में प्रसङ्गवश यह उल्लेख आया है। कविवर अपने आश्रयदाता सम्राट से कहते हैं–[१]

> सीताविश्लेषदुःखादिव रघुतनयो लब्धकृष्णावतारः।
> पूर्वं कृष्णो यथाऽभूदरिकुलदमनः साम्प्रतं षोडशास्यम्॥
> तस्माद् भूपालमौले सुरसमपि सु (र) वा (देव) देवानुभूया।
> संसारे भोगसारे स्फुटमवनिभुजां श्रीफलं वा किमन्यत्॥

अर्थात्, सीता वियोग दुःख के कारण राम ने कृष्ण का अवतार लिया। पहले जब कृष्ण अरि-कुल दमन हो गये, वैसे अब तुम हो। अतः भूपाल श्रेष्ठ देव ! तुम सुरों से ही सुख का अनुभव करो। इस भोग वैशिष्ट्य संसार में भूपतियों की लक्ष्मी का फल स्पष्टतः भोग के अतिरिक्त और क्या है ?'

रामावतार में शृङ्गार लीला की पूर्ति का अवकाश नहीं मिल सका के कारण ही राम का द्वापर में कृष्णावतार हुआ। यह बात कृष्णोपनिषद्, पद्मपुराण आदि में भी कही गयी है।[२] कृष्ण का प्राचीन (महाभारतादि वर्णित) इतिवृत्त असुरवध से ही सम्बद्ध था। पौराणिक चरित में आकर लीला और रसरञ्जन की परिकल्पना हुई। इसी लीलारस प्रधान चरित से कवि विद्यापति अपने सम्राट को प्रेरणा देते हैं। अर्थात्, कृष्णचरित का शृङ्गारिक पक्ष यह भावात्मक स्वरूप ही कवि सम्राट् का अभीष्ट है। इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। अपनी भावनाओं में निरच्छल कवि ने सम्पूर्ण संसार को ही विस्तृत क्रीडा भूमि के रूप में स्वीकार किया है। भोग ही इसका सार सर्वस्व है।

उपर्युक्त विवरण में निर्दिष्ट कवि का निखिल सृष्टि के प्रति उद्दाम भोक्ता रूप उनकी पदावली में पल्लवित शृङ्गार का तथा शृङ्गार देव श्रीकृष्ण का सुन्दर स्मारक है। अतः उनके कृष्ण पर परमात्मा का आरोप विशेष बुद्धि ग्राह्य नहीं है।[३]

प्रेमी कृष्ण—जयदेव के गीतगोविन्द की भाँति ही विद्यापति के कृष्ण रमणी रमण हैं। उनका प्रथम अवतरण ही यमुना किनारे कदम्ब तलवर्ती संकेत गृह के पास प्रतीक्षातुर प्रियतम रूप में होता है जहाँ वह मन्द मन्द वंशी रव में अपनी प्रियतमा का नाम ले लेकर उसे टेर रहे हैं।[४] नायक के हृदय में उठने वाली प्रिया मिलन की उत्ताल तरंगों से यमुना

१ डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव–'अपभ्रंश भाषा का अध्ययन', परिशिष्ट–४, पृ०२९९ (कविराज विद्यापति का अपभ्रंश साहित्य शीर्षक निबन्ध से उद्धृत)।

२ देखिये–'रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना' (पृ० १०३-१०४) डॉ० भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'

३ डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव–'अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, परिशिष्ट–४ (पृ० २९५)

४ नामसमेतम् कृतसंकेतम् वादयते मृदुवेणुम्'—गी० गो०

भी विक्षुब्ध हो रही है। विकल वनमाली गोरस लेकर वेचने के लिए आने जाने वाली हर ग्वालिन से उसी के सम्बन्ध में पूछते हैं।

कवि, सुभाषितकारों की शैली मे अभिसारक कृष्ण की इस प्रतीक्षातुर और रमणीय मुद्रा की ही वन्दना करता है।[1]

कृष्ण की मुरली म नाम ध्वनि का सकेत जयदव और विद्यापति दानो ने किया है। यह परम्परा ब्रजभाषा काव्य के कृष्णचरित मे सवत्र परिव्याप्त है।[2]

प्रेमोदय—यहाँ राधा और कृष्ण का प्रेम बाल साहचय की स्वाभाविक परिणति के स्थान पर प्रथम मिलन-जन्य ('लव ऐट फस्ट साइट') है। राधा और कृष्ण का अचानक साक्षात्कार राजपथ पर राह चलते हो जाता है। दोनो चचल चितवन से एक दूसरे का निहारते हैं। दोनो के भीतर काम का सन्धान पूर्ण हो जाता है। दृष्टि विनिमय से दोनो की आन्तरिक भावनाओ को समाधान भी मिल जाता है जैसे, एक अरसे स एक दूसरे को इन्ही की खोज थी। देखते ही देखते दोनो अरुझा जात हैं।[3]

सूर ने यद्यपि राधा और कृष्ण का प्रणय विकास नैसर्गिक साहचय जन्य ही रखा किन्तु इस रोमानी प्रेम की आकस्मिक प्रेरणा के प्रदशन का मोह सवरण वह न कर सके। इसीलिए 'औचक ही देखी तहँ राधा', 'नैन-नैन की ही सब बात' और फिर 'नागरि मन गई अरुझाइ'। आदि की सुविस्तृत कल्पना की गयी जान पडती है। इन पर विद्यापति क उक्त कृष्ण प्रेम वर्णन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव परिलक्षित होता है।

विद्यापति के उक्त पद में 'राजपथ' के उल्लेख से नागर कृष्ण की सुन्दर व्यजना होती है।

पूर्वराग—इस रोमानी प्रेम का उदय नायक और नायिका दोना पक्षो म प्राय सम भाव से होता है। कृष्ण के मन मे नायिका के रति रूप का ऐसा इन्द्रजाल छा जाता कि वह अहर्निश उसी पूर्वराग की मादक पीडा मे घुनने लगते हैं। नायिका के चरण जावक उनके अन्तर मे पावक की तरह लहर उठते हैं। विद्यापति अपने विदग्ध 'जदुपति' का, जो सभवत उनके मिथिलापति भी हो सकते हैं, पुनर्मिलन की आशा जगाकर शान्त करते हैं।

नख शिख छवि—उधर राधा भी अत्यन्त उद्विग्न है। कृष्ण के 'अपरूप रूप की कुतुक छवि के क्षण दर्शन, उसके शब्दों मे जैसे स्वप्न स्वरूप ही थे। वह उक्त विस्मय विवधक रूप की अतिशयोक्तिपूर्ण व्यजना करती हुई कहती है—

---

१ विद्यापति की पदावली-(१)-बेनीपुरी सस्करण

२ सूरदास-सूरसागर-६४८/१ ६६, रसखान सुजान रसखान-४, घनानन्द पदावली-२०

३ विद्यापति-पदावली-(२७)-बेनीपुरी सस्करण

पथ गति नयन मिलल राधा कान। दुहु मन मनसिज पूरन सन्धान ॥ २ ॥
दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर। समय न बूझए अचतुर चोर ॥ ४ ॥
विदगधि सगिनी सब रस जान। कुटिल नयन कएलन्हि समधान ॥ ६ ॥
चलल राजपथ दुहु उरभाई। कह कवि सेखर दुहु चतुराई ॥ ८ ॥

कमल युगल पर चाँद क माला । ता पर उपजल तरुन तमाला ॥ ४ ॥
तापर वेढ़लि बिजुरी लता । कालिंदी तट धीरे चलि जाता ॥ ६ ॥
साखा सिखर सुधाकर पाँति । ताहि नव पल्लव अरुनक भाँति ॥ ८ ॥
विमल बिम्बफल जुगल बिकास । तापर कीर थीर कर बास ॥ १० ॥
तापर चचल खंजन जोर । तापर साँपिनि झापल मोर ॥ १२ ॥
ए सखि रंगिनि कहल निसान । हेरइत पुनि मोर हरल गियान ॥ १४ ॥
कवि विद्यापति एह रस भान । सुपुरुख मरम तुहू भल जान ॥ १६ ॥

उपर्युक्त पद मे कृष्ण की नखशिख छवि का, नायिका की छवि[१] के अनुरूप ही रूपायन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ रूपकातिशयोक्ति की सुविस्तृत योजना है। कृष्ण के चरण-कमल से संलग्न जो पद नख हैं व चाँद की माला हैं। उनकी देह तरुण तमाल है। और उनसे लिपटा पीताम्बर बिजली की लता है। बिजली म जो गति है उसकी पूर्ति यमुना के किनारे चलायमान कृष्ण से की गयी है। तमाल की शाखा के सदृश भुजाओं का उँगलियो के नख सुधाकर-पक्ति हैं। अरुण हथली रवि की भाँति दीपित हैं। ओष्ठ बिम्ब फल और कीर नासिका हैं। चचल नेत्र खंजन के जोडे हैं। अलकें नागिन हैं जिन्ह मोरमुकुट ने ढक लिया है।

यह अद्भुत रूप देखने वालो का सुधि बुधि हर लेने योग्य ही है। किन्तु विद्यापति को इस रूप रस का सम्यक ज्ञान है। वह प्रेम पुरुष व सौन्दर्य का मम भली भाँति जानते हैं और अन्यो को भी (जिनम अनिवार्यत नायिका सम्मिलित है) जानने का आग्रह करते हैं।

यहाँ कृष्ण की रूप छवि की रसात्मक व्यजना हुई है। ऊपर स वशी की मोहिनी तान उसके प्रभाव को और भी दुर्निवार और पीडाप्रद कर देती है। गोपाल कृष्ण[२] की इस सुन्दर छवि का अन्तरग प्रभाव आगामी शृङ्गार वर्णन पर निर्दिष्ट है।

माधव की वाणी परम मधुर है। उसका मधुरिमा कामोद्दीपक है। उसे बरबश सुनकर नायिका पानी पानी हो जाती है। उसे कम्प और स्वर-भग हो आता है। यहाँ तक कि कचुकी तडक उठती और चूडियाँ फूट जाती हैं।

उनकी काया कितनी कमनीय है। श्याम सुन्दर कृष्ण कमनीय काय है।[३] उनका इसी कान्ति के दुर्लभ दर्शन के निमित्त नायिका देवराज इन्द्र से लोचन और पक्षिराज गरुड से पख मागती है।[४]

कृष्ण वशी बजाते हैं। और, उनकी वशी-ध्वनि की वारुणी उनके मन प्राणो म घुल गयी है। लाज के बन्धन टूट जाते हैं। भाव तरगो मे नीवी बन्ध तक खिसक जाता है।

१ 'पल्लव राज चरन युग शोभित गति गजराज क भाने।' विद्यापति पदावली—१२
इसी पर आधारित सूर का एक रूप वर्णन है—अद्भुत एक अनुपम बाग।
विद्यापति ने उपर्युक्त राधा छवि वर्णन के ही अनुरूप कृष्ण छवि वर्णन भी किया है।

२ विद्यापति पदावली—२७
वही —१८ ४ विद्यापति पदावली —३६

नागर सम्राट इन स्वाभाविक सम्मोहनों के अतिरिक्त लीला चचल कृष्ण अनेकानेक प्रणय चेष्टाएँ भी करते हैं। कभी वह देख देखकर मुस्कुरा देते, कभी नाम धर धर कर बाँसुरी बजाते ता कभी बिल्कुल पास आकर अनेक प्रकार के हास परिहास करने लगते हैं। वह सचमुच नागर सम्राट हैं।[१]

दूती परम्परा गीत काव्य की शैलीगत विलक्षणता है। गीतगोविन्द इसी शैली का काव्य है। यह सवाद परक हो जाने के कारण शिल्प मे गीति नाट्य जसा हो गया है।[२] विद्यापति का काव्य भी मूलत इसी कोटि का है। यहा कृष्ण या राधा की प्रत्येक शृगार-चेष्टा दूती या सखी के माध्यम से व्यजित हुइ है।

प्रेमोदय और पूवराग के अनन्तर सयोग की पृष्ठभूमि म दूती-व्यापार नायक और नायिका दोनो पक्षो म चलने लगता है। कृष्ण की दूती राधा के पास जाकर कृष्ण की राधानुरक्ति, काम बकली, काम दशा, उनकी भ्रमर वृत्ति (बहु वल्लभत्व) आदि का रसात्मक चित्रण करते हुए उसकी कृष्ण मिलनोत्कठा को जाग्रत करती है। इनसे प्रेमी कृष्ण का सुदर परिचय मिल जाता है।

उसके अनुसार राधा का रमणी जीवन धन्य है जिसके लिए सवजनस्मरण कृष्ण आज 'भाव विभोर' हैं। उसका केश विन्यास, उसकी दशन छवि, मादक अँगडाई, मधुर आलिगन सब उनके हृदय मे चुभ-से गये हैं। इन समस्त अदाओ से चिन्तित कृष्ण के अन्त पट की क्रीडा पुत्तली आज उनसे विलग है। राधा के बिना कृष्ण आज सून कलेवर' भर हैं।[३]

कवि ने मानवीय प्रेम की समस्त दशाओ को कृष्ण प्रेम मे अभिव्यक्त किया है। वह राधा विरह म बेसुध हो अनवरत 'राधा राधा' पुकारते रहते ह। 'राधा' नाम सुनकर वह प्रेम विभोर हो जाते हैं। और फिर पुलक, कम्प, स्वेद अश्रु, गदगद कण्ठ और मरण तक की भाव दशाएँ उन्हे व्याप लेती हैं।[४] 'मदन भुजग के घातक दश से बेचन वह यमुना किनारे भूलुण्ठित हो रहे हैं।

कृष्ण बहुवल्लभ हैं। उनके मनुहार के लिए शत शत रमणियाँ हैं। किन्तु उनका रासिकास्वाद अन्यतम है। वह राधा के निगूढ प्रेम रस को हृदय में धारण कर अन्य व्रज सुन्दरियो का ध्यान ही हटा चुके हैं। कृष्ण का राधा प्रेम अनन्य है। कवि ने अन्योक्ति पद्धति से इसे ही भ्रमर का मालती प्रेम कहा है[५]—

> कटक माझ कुसुम परगास। भ्रमर विकल नहि पावए पास॥ २॥
> भमरा भेल घुरए मने ठाम। तोह विन मालति नहि विसराम॥ ४॥
> रसमति मालति पुनु पुनु देखि। पिबए चाह मधु जीव उपखि॥ ६॥

१ विद्यापति पदावली–४४
२ प० नलिन विलोचन शर्मा– जयदव और विद्यापति –साहित्य–जुलाई १९५१
३ विद्यापति पदावली –४५
४ वही –४६
५ वही –४७

उ मधुजीवी तो मधुरासि गासि । धरसि मधु मन न जानसि । ८ ॥
अपनेहु मने गुनि बुझ अवगाहि । तसु दूषन वध लागत काहि ॥१०॥
मनहि विद्यापति तो पय जीव । अधर सुधारस जौं पय पीव ॥१२॥

यहाँ कृष्ण के जीवन धारण की कसौटी ही राधाधर सुधापान है। और, इसका पान करते समय वह प्राणो की भी परवाह नहा रखता। अत वह सचमुच ही मधुजीवी है और उसकी राधा है 'मधुरासि'। कामचतुरा दूती नायिका को फँसा कर इस मधुलोभी नायक के पास पहुँचाने मे न जाने कितने बहाने बनाती है। नायिका पर नायक वध का दोष मढ़ना उनम से एक है। और यह सब तु अ कलि क ही निमित्त है।

कृष्ण का प्रेम उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता जाता है। अब वह 'केलि विलास स दूर अहर्निश आत्मविभोर होकर अपनी अनन्य प्रेयसी की प्रतीक्षा किया करता है। भुजंगिनि का यह दश पुन दश स ही शान्त हो सकता है। ये काम प्रतीक अत्यन्त सार्थक और मनोवैज्ञानिक हैं। परकीया नायिका के अभिसार प्रसग में कवि ने काम और प्रेम दोनो को एक माना है[१]।

'काम प्रेम दुह एक मत भए रहु कखने की न करावे ॥'

वैसे ही दक्षिण नायक कृष्ण के परकीया प्रेम को भी कवि ने 'मधुरापति के नाम स नामित किया है।[२] इन प्रतीको से भी कवि के राधा कृष्ण चरित्र की मनोवैज्ञानिक परीक्षा हो जाती है। और, उनके शृङ्गारिक स्वरूप के सम्बन्ध म कोई सन्देह नही रह जाता।

राधा का दूती भी कृष्ण की जो दशा देखती है, उसका बयान वह पुन राधा से जाकर करती है। उसके अनुसार कृष्ण को स्वप्न म भी चैन नही है। वह बारम्बार राधा का नाम लेकर उठ बैठते है। जिस ओर से यह कर्णप्रिय नाम सुन पड़ता है, उसी ओर अकुलाने लग जाते हैं। आशा म ही रात बीत जाती हैं। प्रिया वियोग ने उनके अन्तर को अपने ही रगो से अनुरजित कर दिया है। वह जिस किसी को भी देखते हैं, उसमे राधा का ही भान मिलता है। प्रिया रस की खोज मे मधुकर पूर्ण विभोर हो त्रिभुवन का भ्रमण कर आता है। किन्तु उसकी प्यास कही नही बुझती।[३] यह बहुवल्लभ कृष्ण के एकनिष्ठ प्रेम की अनोखी झाँकी है।

मिलन-केलि के अन्तर्गत कृष्ण का रति लम्पट रूप चित्रित हुआ है। कन्हैया गोप बालाओ के साथ छेड़खानी करते और राह बाट रोक कर रस लूटने का उपक्रम करते हैं। वह गोपियो का आचल पकड़ते हैं उसे एकान्त म रोक कर नग्न करते हैं। गोपी अँधेरी रात, बादलो मे मचलती हुई दामिनी आदि का देखती हुई कृष्ण की इस हठधर्मी पर पछताती है और कवि हरि का नाम लेकर उसे धीरज देता है।[४]

नौका लीला—इसी छेड़खानी का व्यवस्थित रूप कृष्ण की नौका लीला है। प्राकृत पैंगलम् मे इस नौका लीला स सम्बद्ध एक छ द मिलता है जिसे हम पहले देख चुके हैं।

१ विद्यापति पदावली–१२१
२ विद्यापति पदावली–१४०
३ वही –५७
४ वही –५६

समसामयिक कवि विद्यापति ही इस पुराणेतर[१] लोक श्रृङ्गार लीला के कुशल प्रयोक्ता हैं, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान नही गया है।

इस नौका लीला को विद्यापति की प्रगल्भा नायिका रति अभिसार के सुअवसर के रूप म उपयोग करती है। उसकी अनेकानेक लाक्षणिक उक्तियाँ इसके प्रमाण हैं। किन्तु, कृष्ण बोलते नही, केवल मौन कार्यकर्ता (साइलेन्ट वकर) की भाँति अपना काम चलाते हैं। यहाँ उनकी अचगरी क्रियाओ (ऐक्सन) द्वारा व्यक्त की गयी है।

कृष्ण एक चतुर नाविक हैं। उनकी प्रसिद्धि से ही नायिका उनका नाव पर चढती है। किन्तु कृष्ण बीच म ही हठ ठान देते हैं। अन्य गोपिया तो अच्छी तरह पार हो जाती हैं किन्तु यही बेचारी हठवश रह जाती है। वह कहती है—'अच्छा और बुरा, यश और अपयश दोनो एक ही साथ रहते हैं। मैं अबला होकर तुम्हे और क्या कहूँ। अवसर आने पर ही व्यक्ति के विवेक की परीक्षा होती है। तुम पर पुरुष हो और मैं परकीया हूँ। ऐसे में तुम्हारी रस लम्पट प्रकृति देख कर मेरी छाती धडक रही है।' नायिका नाविक कृष्ण की हठकामुक चेष्टा का जिस निगूढ व्यजना शैली मे सहमति दे रही है, उमसे उसकी रस-विदग्धता ही टपकती है।[२]

विद्यापति न कृष्ण की नौकालीला मे नाविक की अपेक्षा पार जाने वाली नायिका की प्रगल्भ चेष्टाओ का ही अधिक ध्यान रखा है। एक नायिका कन्हैया को हाथ पकड कर पार उतारने को कहती है। इसके लिए वह अपना हार तक दे देने को तैयार है। वह कहती है—सखियाँ भी उसे छोड गयी। न जान वे सब किस रास्ते पार हुईं। ऐ कृष्ण! मैं अब तुम्हारे पास नही आऊँगी। अब तो किसी 'औघट घाट' म ही जाना बेहतर है।[३] उसके 'औघट घाट' मे जहाँ बाह्यत नायक की उपेक्षा है, वहा भीतर भीतर एकान्त रमण स्थल की ओर चलने का मधुर आमन्त्रण भी।

तीसरा पद स्पष्टत नाविक कृष्ण की उच्छृङ्खल वृत्तियो का द्योतक है। कृष्ण यमुना की चचल धार मे नाव ले जाकर डगमँगाने लगते हैं। ग्वालिन बेहद घबडाती है। उसे जीवित तट पर पहुँचने की कोई आशा नही रह जाती। नाविक खेवे के रूप मे पैसा नहीं चाहता। वह हँस हँस कर—'तब क्या दोगी क्या दोगी ?' पूछता है जिससे ग्वालिन का हृदय धडकने लगता है। वह अपने आने का पश्चात्ताप करती है। पता नही उसके सर पर कौन सा पाप सवार हो गया था कि वह कृष्ण की नाव पर आयी। जिसके चलते वह

---

१ Prof S Sen–'A History of Braj Buli Literature' (P 475)–'Coming to the later non-puranic (Vernacular & Sanskrit) literature, the most Important additions to the amorous sports of Krishna appear to be the boating (Nauka) & the toll collecting (Dana) episodes'

२ विद्यापति पदावली–६०

३ वही –५८

दूसरी गोपी पर हँसा करती थी, आज उसी फंदे में वह स्वयं आ फँसी है। ऐसे में कविवर विद्यापति उसे किशोर कृष्ण (भगवान्) की याद दिलाते हैं, जिनकी प्रेरणा से ही बेड़ा पार लग सकता है।[१]

नाव डोलाव अहीरे जिबइत न पाओब तीरे गए नीरे लो।
खेवा न लेअए मोले हँसि हँसि की दहु बोले जिव डोले ला॥ २॥
किए बिके ऐलिहु आगे बेढ़लिहु मोहि बड़ गाने भारे पाप लो।
करितहुँ पर – उपहासे परिलिहुँ तहि विधि फाँस नहि भाग लो॥ ४॥
न बूझसि अबूझ गोआरी भजि रहु देव मुरारी नहि गारी लो।
कवि विद्यापति भाने नृप सिवसिंघ रस जाने नव कान्ह ला॥ ६॥

प्राकृतपैंगलम् के एक दोहे[२] से उपर्युक्त पद का प्रत्यक्ष भाव साम्य इस तथ्य का पोषक है कि कृष्ण की नौका लीला की उद्भावना १४ वीं शती तक पूर्ण हो चुकी थी। विद्यापति में आकर इस अस्फुट संकेत को पूर्ण वाणी प्राप्त हुई। परवर्ती कवियों (रूप गोस्वामी,[३] सूरदास आदि) ने इसका सुमधुर विन्यास किया है।

विषम प्रेमी युग्म– विद्यापति की राधा सुकुमारी है, कृष्ण चतुर सुजान हैं। अपनी कमसिन नायिका और रति प्रौढ़ नायक के इस द्वन्द्व का कवि ने 'काँच कमल भमरा झिक-झोर'[४] जैसे कमनीय प्रतीक द्वारा पूर्णतः प्रतिबिम्बित कर दिया है। इस विषम काम युग्म के लिए अनेक ऐसे ही प्रतीक दिये हैं। जैसे मत्त हाथी[५], नायिका रूपी अमृत सागर में विहरने वाला हाथी, रति केहरि,[६] हरि महावन पुञ्ज,[७] भूखल मधुकर[८] आदि। नायिका किशोरी किन्तु उसके नायक में उद्दाम यौवन वेग है अतः यह स्थिति मिलन समागम के पूर्व दोनों का काम कला की दीक्षा लेने को बाध्य करती है। काम कला विदग्ध कवि इसी हेतु सखी शिक्षा का आयोजन करता है। उपर्युक्त विशेषण इसी प्रसंग में प्रयुक्त हुए हैं। सखी नवोढ़ा नायिका को काम की कोमल अदाओं में दीक्षित कर रमणी समाज से छलकर नायक के पास पहुँचा देती है।[१०] नायक कृष्ण को काम दीक्षा नहीं लेनी पड़ती। वह तो जन्मजात रसिक हैं। हाँ, सखी उन्हें नवोढ़ा नायिका के साथ किये जाने वाले प्रथम समागम में विशेष मृदु बने रहने की सलाह अवश्य देती है।[११]

---

१ विद्यापति-पदावली-६१

२ अरे रे वाहहि कान्ह णाव छोडि डगमग कुगति ण देहि।
तइ इथि णइहि संतार देइ जो चाहहि सो लेहि॥–दोहा १/६

३ पद्यावली

४ विद्यापति-पदावली-७४/८

५ विद्यापति पदावली-७०

६ वही –६२

७ वही –६६

८ वही –६६

९ विद्यापति पदावली-६६

१० वही –७१

११ वही –७०

ये वर्णन पूर्ण उद्दाम और कामुकता पूर्ण हैं। इनमें प्राकृत नायक कृष्ण का रति विदग्ध रूप व्यंजित हुआ है। यह कृष्ण अनिवार्यत भगवान् कृष्ण ही नहीं हैं, वरन् कामुक सामन्त के पर्याय हैं। दरबारी विलासिता के शृङ्गार चित्रों को कवि न राधा कृष्ण के नाम पर चलता कर दिया है। आगामी सभाग प्रसग इसी के उद्दाम प्रतिफल हैं। रीतिकाल के कवियों ने विशेषत इसी दृष्टि से कृष्णचरित का चित्रण किया है।

काम दीक्षा के इस प्रसंग मे प्रेम वृत्ति की गभीरता का अभाव है। प्रेम की मानसिक अभि यक्ति के स्थान पर उभय पक्षा म दी गयी ऐं द्रिक उत्तेजनाएँ अपने आ तरिक प्रभाव मे शू य हैं तथा इनसे एक अस्वस्थ और कृत्रिम मनोवृत्ति का आभास मिलता है। उदाहरणार्थ, सखी के कामापदेश के प्रति नायिका के पवित्र मन की यह प्रतिक्रिया देखी जा सकती है–[१]

परिहर, ए सखी, तोह परनाम। हम नह जाएब से पिआ ठाम॥ २॥
बचन चातुरि हम किछु नहि जान। इंगित न बूझिए न जानिए मान॥ ४॥
सहचरि मिली बनावए भेस। बाँधए न जानिए अप्पन केस॥ ६॥
कभु नहि सुनिए सुरत क बात। कइसे मिलब हम माधव साथ॥ ८॥
से बर नागर रसिक सुजान। हम अबला अति अलप गेआन॥ १०॥
विद्यापति कह कि बोलब तोए। आजुक मीलल समुचित होए॥ १२॥

यह 'वर नागर रसिक सुजान वही कृष्ण हैं जि ह राजपथ पर नायिका से आँखें चार हुई थीं। और जो मथुरापति न होकर 'मधुरापति' थे। यह 'अबला अति अलप गेआन' वही रमणी है जिसे रमणी समाज से छल कर दूती ने छैना कृष्ण को दिया था। और, ज्ञान शिक्षा की जगह काम शिक्षा देने वाली सखी वही कुट्टिनी नायिका है जो कुमारियों को नाना प्रलोभन दे द कर राजाओं के अ त पुर म पहुँचाया करती थी। इन सबो को आत्मा, परमात्मा तथा गुरु स्थानीय[२] मानना डॉ० बाबूराम सक्सेना के शब्दों म[३] पद पदार्थ के प्रति अ याय है।

विषम समागम—राधा और कृष्ण का मिलन समागम प्राय परिणय संस्कार के अन तर पतिगृह प्रवेश के रूप मे सम्पन्न कराया गया है। इसस परकीया प्रेम म भी गाहस्थ भाव की यजना हो गयी है। कवि ने प्रथम समागम से लेकर युगल समागम तक का चित्रण किया है। यह सवत्र विषम है। इसीलिए विद्यापति ने नायिका के स्वीकृतिगभ निषेध ('नहीं नहीं) के अनेक चित्रण किये हैं।

इन समस्त प्रसगा म कृष्ण 'रति सुविसारद हैं 'नागर' हैं, 'रसिक सुजान' हैं।

अभिसार—अभिसार के प्रसग मे भी कृष्ण की विस्मयकारिणी वशी ध्वनि की भागवतीय प्रेरणा नहीं है। कहने को तो कृष्ण 'ब्रजमणि' हैं किन्तु वह मूलत नागर ही हैं। वह धुन के इतने पक्के हैं कि घनघोर पावस रात्रि मे भी सकेत कुञ्ज मे नायिका की

---

१ विद्यापति पदावली–६५
२ डॉ० ग्रियर्सन–'मैथिली क्रिस्टोमैथी'–पृ० ३२
३ कीर्तिलता की भूमिका–पृ० १०

प्रतीक्षा करते रह जाते हैं। नायिका 'पुरुषक वेम' बनाकर आती है। 'नागरराज कृष्ण' उसे देख द्वन्द्व म पड जाते हैं। अ ततोगत्वा स्पश आदि से द्वन्द्व शमन हो जाता है।[१] यहाँ नायक की अपेक्षा नायिका का विदग्धता सिद्ध हाती है।

जैसा कि पहले ही सकेत किया गया, विद्यापति की पदावली मे राधा चरित अपार' है।[२] कृष्ण उसी का आलम्बन पाकर मधुरपति हो गये है।[३] इसीलिए स्थान स्थान पर उनका चरित राधा चरित का अनुवर्ती भर है। राधा जब पुरुष वेश बनाकर कृष्ण के साथ अभिसार करती है तो कृष्ण भा युवती वेश बनाकर राधा के पास पहुँच जाते हैं। 'पर नारी प्रीति की यही रीति है।'[४] परकीया नायिका और धीर दक्षिण नायक क सभोग से अभिसार की समाप्ति होती है। नागर और नागरी अपने अपने घर का विदा होते हैं।

राधिका नागरी है, परकीया है। नायक नागर है रति लम्पट है। गोकुल नगर है। ये सब कृष्ण लीला के नाम पर कवि की दरबारी विलासिता को ढक नहीं सकते। कवि नाम बदल कर दरबारी प्रेम का उ मुक्त चित्रण करता है।

मान—मान के कृत्रिम प्रसगो द्वारा अखण्ड विलास की एकघुट्टता (मानाटॉनी) को ही कमाने की चेष्टा की गयी है। बहुवल्लभ कृष्ण परस्त्री सभोग चिह्नों से विभूषित राधा के पास पहुँच जाते हैं। राधा उसे देखते ही आगबबूला हो जाती है। वह जल भुन कर कहती है—

लोचन अरुन बुझल बड भेद। रयनि उजागर गरुअ निवेद। २॥
ततहि जाह हरि न करह लाथ। रयनि गमओलह जहि के साथ॥ ४॥
कुच कुकुम माखल हिय तोर। जनि अनुराग रागि कर गोर॥ ६॥
आनक भूषण तोर कलक, बड ओ भेद व द ओ परसग॥ ८॥
निटि गुड नुपडलि राडक पारि। लआले लाथ देकत भेल चोरि॥ १०॥
भनइ विद्यापति बजनहु बाद। बड अपराध मौन पए साध॥ १२॥

उक्त पद मे जयदेव के नायिका वचन का भावानुवाद है।[५]

मान मोचन—कृष्ण मानिनी राधा को प्रसन्न करने के लिए जा प्रणय दण्ड विधि बतलाते है वह अत्य त रमणीय और चित्ताकर्षक है—[६]

ए धनि माननि करह सजात। तुअ कुच हेम घट हार भुजगिनि तार उपर धर हात॥ २॥
तोहे छोडि जदि हम परसब कोय। तुअ हारनागिनि काटव मोय॥ ४॥
हमर वचन यदि नहि परतीत। बुझि करह साति जे होय उचीत॥ ६॥

---

१ विद्यापति पदावली—११६
२ वही —८६
३ वही।
४ विद्यापति पदावली—११८
५ गीतगोविन्द—'हरि हरि याहि माधव याहि माधव मा वद कैतववादम्। तामनुसर सरसीरुह लोचन, या तव हरति विषादम्।
६ विद्यापति-पदावली—१३७

भुज पास बाँधि जघन तर तारि । पयोधर पाथर हिय दह भारि ॥ ८ ॥
उर कारा बाँधि राख दिन राति । विद्यापति कह उचित इह साति ॥१०॥'

भुजाओं की जंजीर, सघन जघन और पीन पयोधर के दुवह भार, हृदय रूपी कारागार म अहर्निश बंधन–ये ही सारे नायक द्वारा निर्दिष्ट दण्ड विधान हैं।[1] इनसे नायिका का पाषाण हृदय कुछ कुछ पिघलता है। और जो कमी रह जाती है उसे कृष्ण उनकी सखी को गिड-गिडाकर, हाथ जोडकर,[2] काम दशाओं का प्रदर्शन कर[3] तथा अ त मे योगी[4] और नागरी[5] वेश धारण कर मान मोचन कर देते हैं। बीच मे वह राधा चरित्र का अनुकरण करते हुए स्वय भी अकारण मान कर बैठते हैं। एक ही सेज पर प्रवास की सी दूरी बढ जाती है। अ त में राधा के इस तर्क पर कि 'मान तो स्त्रियाँ करती हैं, पुरुष नहीं' कृष्ण लज्जित होकर मान त्याग देते हैं।[6] मान प्रसग में मानिनी राधा ने बहुवल्लभ कृष्ण को क्षोभवश क्या क्या नहीं कह दिया। जैसे–'गाआर', 'गमार', 'पीतल का कलई किया हुआ कगन'। और, यह सब कृष्ण के 'बहुवल्लभ' होने के ही मूल कारण से। किंतु उनके चरित्र पर लगने वाला जो सबसे बडा बट्टा है उनके रति रग की अनभिज्ञता। कवि ने इस भावना की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए एक खुभने वाली लोकोक्ति गढ़ी है—'ब दर मुख मे पान।'[7] रति विदग्धा नायिका कहती है–[8]

सखि हे बूझल का ह गोआर।
पितरक टाड काज दह कओन लह ऊपर चकमक सार ॥ २ ॥

पसुक सग हुन जनम गमाओल से कि बुझथि रतिरग।
मधु-जामिनि मोर आज विफल गेलि गोप गमारक सग ॥ ६ ॥

मान में भी और व्यग्य में भी, नायिका ने नायक कृष्ण को 'गमार गोप' कहकर उनकी विलास कला अनभिज्ञता की हँसी उडायी है। नायिका सखी से कहती है–[9]

गाए चराबए गोकुल बास गोपक सगम कर परिहास ॥ १ ॥
अपनहु गोप गरअ की काज गुपतहु बालमि मोहि बडि लाज ॥ २ ॥

---

१ यहाँ कवि जयदेव से प्रभावित है–१०/१२/१-२-७। उमापति के 'पारिजातहरण म भी सत्यभामा के मान प्रसग मे कृष्ण यही विधि प्रस्तावित करते हैं।

२ विद्यापति–पदावली–१३६
३ वही –१४१
४ वही –१६०–१६१
५ विद्यापति–पदावली–१६३
६ वही –१५९

७ जे किछु कभु नहि कला रस जान। नीर खीर दुहू करए समान ॥
तन्हि सौं कहाँ पिरीत रसाल। बानर कठ कि गोतिम माल ॥
भनइ विद्यापति इह रस जान। बानर मुँह की सोभए पान ॥ – ९७ – इस पर 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' का प्रभाव है। देखिये, प्रस्तुत प्रबन्ध–पृ० २६८

८ विद्यापति–पदावली–१४३

९ 'द सौंग्स ऑफ विद्यापति पद सख्या–१२३ (डॉ० सुभद्र झा)

साजनि सोलह सहस सखा मेलि आपन्ह सखा जनिना केलि ॥ ३ ॥
गामक बसते गोविन्द गमार नगरहु नागर कोलिम अगार ॥ ४ ॥
वन वधान आनि दुह गाए तनि की विलास नागरि पास ॥ ५ ॥

कृष्ण गोपाल हैं। गोचारण उनकी वृत्ति है। गोकुल उनकी विहारभूमि है। ग्वाल उनके सखा हैं। गोपियाँ उनकी केलि सखी हैं। वह 'बथान (गोष्ठ) में बसते हैं और गाय दुहते हैं। ऐसे में, भला ग्वेली नागरी उनके साथ विलास कैसे कर सकती है ! सखी उसका समाधान करते हुए कृष्ण की रस विदग्धता तथा काम कला निपुणता का विज्ञापन करती है–[1]

से मतिनागर सये गय सार पगरमा मखी पेम पगार।
जौवन नगरि पैगाहुन रूप तते सुनदर जत गरूप ॥ ध्रु० ।
साजनि रे हरि रस घनिचार गोप भर ग जनु बानह गमार।
विधिवसे प्रधिक परह जनु मान गोरस गहन गोपीपति थाह ॥
तोह हुनि उचित रहा नहि भेद मनमथ मधय करत परिपे।

और वस्तुत सोलह हजार गोपिकाओं के पति कृष्ण ग्रामीण गाय दुहने स निपट गवार ही नहीं रस के थोक व्यापारी हैं। इसका परिचय तो नायिका को तब मिलता है जब वह नाना छद्म लीलाओं द्वारा उसके घर म घुस कर उसकी सम्भोगेच्छा को तृप्त करने लगते हैं।

छद्म लीला—*कृष्ण 'जोगी बन बनकर आते हैं।* किन्तु उस *'नागर राज'* को कोई नहीं पहचान पाता। वह नायिका की कुशलता के लिए 'वन देव की दुहाई देते हैं और वन में ही 'पशुपति पूजन के निमित्त उसे बुलाकर आशा पूरी करते हैं। विद्यापति के *द्वारा यहाँ कृष्ण के विशेषण रूप म प्रयुक्त 'योगेश्वर' श द की भागवत के भगवान्* 'योगेश्वर पद से समस्त विडम्बना ही सिद्ध होती है।[2] वह प्रोषितपतिका वेश म नायिका से, उसकी सास के इच्छानुसार, मिलते हैं और एकान्त म ले जाकर उसके माथे पर सवार कामदेवता को उतार देते हैं।[3] ये ही वह नवयौवना विदेशिनी बनकर और सुमधुर बीन बजा-बजाकर राधा सुन्दरी का मान रतन (सर्वस्व) हर लेते हैं।

इस प्रकार, मान भग होते ही दोनो घोर विलास मे निमग्न हो जाते हैं। कृष्ण राधा का मधुर वेश विन्यास अपने हाथो रचते हैं। अन तर नाना भाँति से उसे प्रसन्न कर वह विपरीत रति करते हैं। उनकी रति विदग्धता पर नायिका को मानना पड़ता है कि–[4]

हम अबला सखि किये गुन जान से रसमय तनु रसिक सुजान ॥ २ ॥

ब्रज के रसिक भक्त कवियो ने (चाचा हित वृन्दावनदास आदि) छद्मलीला का विस्तृत उल्लेख किया है।

---

१ विद्यापति पदावली, पद सख्या–१११ (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् सस्करण)
२ विद्यापति पदावली–१६०–१६१।
३ वही –१६२
४ विद्यापति पदावली–१६५

वसन्त रास—कवि ने वसन्त रास का चित्रण गीतगोविन्द की रस रीति के ढग पर किया है। इस पौराणिक रास लीला की परिपाटी म नही समझना चाहिए।

विद्वानो ने पौराणिक रास से जयदेव विद्यापति वर्णित रास का पार्थक्य निर्देश करते हुए मूलत ऋतु भेद[1] (शरद् वसन्त) और गौणत पात्र भेद[2] (गोपी-कृष्ण राधा कृष्ण) की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। किन्तु विद्यापति के रास वर्णन पर सूक्ष्मता से दृष्टिपात करने पर एक और भेद दृष्टिगत होता है, और वह है–प्रसग भेद। विद्यापति पदावली मे रास किसी पूर्वापर लीला प्रसग के अनुरोध से आयोजित नही है। मूल प्रसग तो वहा वसन्त का है। उसी 'युवराज' के मधुर विलास के लिए प्रकृति ने जो रमायोजन किया है, कवि ने उसका नाम 'रास' दे डाला है। रास यानी मधु-पर्व। और, इस मधु-पर्व का केन्द्रीय चरित्र (मूल माधव) ऋतुराज है व्रजराज नही। इसका प्रमाण यह है कि रसिक विद्यापति के राधा कृष्ण नामाकित सैकडो शृङ्गारिक पदो मे कृष्ण जन्म की आनन्द बधाई का एक भी पद नही है, जबकि ऋतुराज वसन्त के जन्मोत्सव के उपलक्ष म कवि ने प्रकृति की मादकता मे अपने सरस अन्तर का समस्त राग रग उडेल दिया है। जयदेव के 'सरस वसन्त' की भाति ही विद्यापति का वसन्त जीवन्त है, कोई अमूत मुहूत नही। वह राधा की भाँति ही क्रमश वय प्रौढि को प्राप्त करता हुआ एक दिन 'रसिक रसराज' बन गया। अन्त म कवि ने अपने नायक को समान गुणधर्मी कृष्ण से एकाकार कर दिया है। फिर यहा भी वही व्यवहार।

विद्यापति का मूल उपजीव्य नायिका है, इसी को राधा कहा कहा गया। नायिका के राधा कह देने पर नायक कृष्ण कहना बिल्कुल स्वाभाविक है। और नायिका के रूप, गुण, शील, प्रणय, मान, अभिसार, मिलन और वियोग के आलम्बन रूप मे ही नायक कृष्ण की नखशिख छवि, दूती, मान, अभिसार, मिलन और वियोग के पूरक चित्र खीचे गये हैं। इसी पूरक अनुभावना के कारण रास कृष्ण रास न होकर मूलत वसन्त रास है। इसम वशी ध्वनि की अपेक्षा मदन दुदुभी अधिक मुखर है। शरद् की शीतल ज्योत्स्ना के स्थान पर वसन्त का मादक ताप है। इसे माधुय भक्ति के विमल विन्यास के स्थान पर शृङ्गार-वासना का विदग्ध विलास ही समझना चाहिए।

अन्त म रस विदग्ध कवि ने अत्यन्त बारीकी से कृष्ण और वसन्त को एक कर लिया है। इस एकत्व के लिए माधव शब्द परम साधक है। यह दोनो के सम्मिलन का व्यजक पद है। इसके अतिरिक्त, मधुमास म निखिल प्रकृति-तल पर परिव्याप्त मधुपो की भ्रमर वृत्ति मधुसूदन कृष्ण की अनन्य रमण वृत्ति के ही अनुकूल है। निम्न पद मे रासविहारी कृष्ण का वसन्त विलास वर्णित है[3]—

रितुपति राति रसिक रसराज। रसमय रास रभस रस माझ ॥ २ ॥
रसमति रमनि रतन धनि राहि। रास रसिक सह रस अवगाहि ॥ ४ ।

---

१ आचाय ह० प्र० द्विवेदी–'म० ध० सा०' (पृ० १४५)
२ डॉ० जगदीश गुप्त–'गु० ब० कृ० का० तु० अ०' (पृ० १३०)
३ विद्यापति पदावली–१८५

रंगिनि गन सब रंगहि नटई । रनरनि कंकन किंकिनि रटई ॥ ६ ॥
रहि रहि राग रचय रसवंत । रतिरत रागिनि रमन वसंत ॥ ८ ॥
रटति रबाब महति कपिनाग । राधारमन कर मुरलि विराग ॥ १० ॥
रसमय विद्यापति कवि भान । रूपनारायन भूपति जान ॥ १२ ॥

पदावली के कृष्ण स्पष्टतः मथुरा गमन करते नहीं दीखते और न तो मथुराधीश कंस उन्हें धनुष यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए अक्रूर को भेज बुलाता ही है। यहाँ उनका विदेश गमन वर्णित है। यह बात अचानक हो गयी है। कवि ने मिलन की त्वरगता को दूर करने के लिए औचक म ही यह कृत्रिम प्रवास रचा है। कृत्रिमता की यह बात कृष्ण के विदेश गमन सदंभ म कथित–'माधव, ताहेँ जनु जाह विदेश' आदि पद के ही अगले वक्तव्य–

एकहि नगर बसि पहु भेल परबस से गिद्ध हो जाती है। चलते समय वह नन्द यशोदा का चरण नहीं छूते, गोपियों से विदा नहीं लेते बल्कि नायिका के साथ एक शयन पर सुबह तक सोये-साथ पता नहीं कब निकल जाते हैं। फिर विदेश जाने के पीछे कोई गुरुतर उद्देश्य भी नहीं है। यदि कुछ है भी तो वह कवि को वियोग वर्णन का काव्यात्मक सुयोग प्रदान करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

आगे चलकर निस्सन्देह इस नायिका वियोग का कृष्ण के मथुरा प्रवास से जोड़ने की चेष्टा की गयी है। इसी प्रसंग में कुब्जा का नाम भी ले लिया गया है।[१]

कृष्ण ने नायिका के युगल कुच रूपी शम्भु का स्पर्श कर कहा था कि उसका माधव माधव मास (वैशाख) की माधव तिथि (एकादशी) को ही लौट आयगा। मगर यह बात झूठ साबित हुई।[२] सपने में संगम हुआ भी तो नींद नष्ट हो गयी। दिन लिखते लिखते नख घिस गये।[३] वह कृष्ण प्रेम में कुलीन से कुलटा बन गयी। कृष्ण रमणी चोर निकले।[४] अब गोकुल गिरधारी सपने में भी नहीं आते। नायिका अकेली कदम के नीचे उनकी प्रतीक्षा में सुबह से शाम कर देती, पर बेकार। उद्धव आते हैं। और वह उन्हें सीधे मधुपुर लौट कर चन्द्रवदनि की मरणासन्न दशा कृष्ण से सुनाने को कहती है।[५] किन्तु यह संकट कालीन सन्देश मथुरावासी कृष्ण तक नहीं पहुँचता। और, न उद्धव ही मथुरा वापस पहुँचते हैं। हाँ, दूती द्वारा नायक को नायिका सन्देश अवश्य मिल जाता है। अतः यह मथुरा नकली है 'परदेस' सच है। उद्धव रस्मी हैं, दूती विश्वसनीय है। और विश्वसनीय है नायिका का अनुभव सिद्ध विरह, जो उससे यह कहला देता है— कान्ह होअथि जबे राधा जानथि विरहक बाधा।

मथुरापति कृष्ण राधा की दूती से पूर्व प्रेम की तुलना में अपने प्रिया विशिष्टचित्त की मर्म व्यथा खोलते हैं—[६]

---

१ विद्यापति-पदावली–१९०
२ वही – ९२
३ वही –१९४–तुलनीय 'गाथा सप्तसई'–४/७
४ वही –२०२
५ वही –२०६
६ वही –२१९

'सजनी कोन परि जीवए कान।
राहि रहल दुर हम मथुरापुर एतहु सहए परान॥
अइसन नगर अइसन नव नागरि अइसन सम्पद मोर।
राधा बिनु सब बाधा मानिए नयनन तेहिए नोर॥
सोइ जमुना जल सोइ रमनीगन सुनइत चमकित चीत।'

एक अन्य पद म वह कहते हैं— मरा कलेवर मथुरा चला आया पर चित्त तो वहीं रह गया। अब न दिन में चैन है, न रात म नींद। कंचन और कामिनी से घिरा रह कर मैं सचमुच वैरागी हूँ।[१]

कृष्ण दूती से व्रज लौटने का वचन देते हैं। वह एक रात अचानक वहीं पहुँच भी जाते हैं जहाँ से नायिका को छोड गये थे, किन्तु सहसा वैरिन नींद भाग जाती है और नायिका 'गुनमय गोविन्द के अपरूप रूप का ठीक से देख भी नहीं पाती।[२] यह वर्णन कुछ-कुछ ब्रह्मवैवर्तपुराण के राधा कृष्ण स्वप्न मिलन पर आधारित है। ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि सूरदास ने स्वप्न मिलन और पथिक सन्देश दोनों को अंगीकार किया है।[३] मीरा ने भी अभिव्यक्ति के इन माध्यमों से अपने गिरिधर का सान्निध्य-लाभ किया है।

विद्यापति के नायक कृष्ण राधा के घर (ब्रज नहीं) लौट आते हैं। उसके आनंद का ओर छोर नहीं रहता। प्रियमुख को निहारते ही उसका दारुण दुख भाग जाता है। ईश्वर की कृपा से मन की सारी अभिलाषाएँ पूरी हो जाती हैं। (प्रेमौषधि) मीरा की भाँति माधव की प्रेमौषधि से ही उसकी व्याधि समाप्त हो जाती है—[४]

कि कहब हे सखि आनन्द ओर चिर दिने माधव मन्दिरे मोर
दारुन वसत यत दुख देल पिया मुख हेरइत सब दुख गल
यतहुँ अछल मोर हृदय क साध से सब पूरल हरि परसाद
रभस आलिंगने पुलकित भेल अधरक पाने विरह दूर गेल
भनहिं विद्यापति आर नहि आधि। समुचित औषधे ना रहे वेयाधि॥

यही वह पद है जिसे गा गाकर महाप्रभु चैतन्य भावावेश से मूर्च्छित हो जाते थे। चैतन्यदेव परम भावुक भक्त थे, किन्तु विद्यापति ऐसे नहीं थे। वह भक्त की अपेक्षा रसिक थे। इसलिए, जहाँ राधा कृष्ण का नाम सुन कर ही चैतन्य भाव विह्वल हो जाते थे वहाँ इस सौन्दर्योपासक कवि ने धैर्यपूर्वक इनके मानवीय स्वरूप का आकलन प्रस्तुत किया। इसका मूल कारण विद्यापति और चैतन्य के व्यक्तित्व का अन्तर है। और, यह अन्तर वस्तुत शृङ्गार और भक्ति का ही मूल अन्तर है। विद्यापति ने इस अन्तर को अपने जीवन

---

१ विद्यापति-पदावली-२१८
२ वही -२२१
३ वही वही -(पृ० १६५)
४ 'मध्यकालीन धर्म साधना (पृ० १८५)-आचार्य द्विवेदी।

के अन्तिम चरण में पहचान लिया था। जीवन्त पर्यन्त युवतियों पर लिखने वाले कवि ने जीवन की सन्ध्या में युवती भूषण कृष्ण से श्री चरणों की सेवकाई माँगने और तन्मय उनका चरण स्पर्श करते लज्जा का अनुभव किया है।[१]

जावत जनम नहि तुम्र पद सेविनु जुवति मति मय मन्दि।
अमृत तजि हलाहल किए पीअल सम्पद अपद्‌हि भेलि॥
भनइ विद्यापति नेह मने गनि कहल कि काज बाजे।
माँगव वरि सेवकाई मँगइत हरइत तुम्र पद लाजे॥

विद्यापति के केवल एक पद–'माधव हम परिनाम निराशा'—से उनके शृङ्गार का यह चित्रित कृष्ण का राज खुल जाता है। राधा कृष्ण का नायक नायिका मानकर लिखने वाले प्राय प्रत्यक रीति कवि की वाणी इसी निराशा से बोझिल है। यह निराशा न तो विद्यापति और न रीति शृङ्गार क कवियों के लिए ही भक्ति की नति कहला सकती है।

इतना कुछ होने पर भी विद्यापति की काव्य साधना खाली नहीं गयी है। मानवीय सौन्दर्य और विशेषत नारी-सौन्दर्य के सिन्धु में निरन्तर आलोडन करने वाले इस कवि ने प्रेम के नाना आवर्तों रूप तरगों और तन्मयता का अनुभव सिद्ध साक्षात्कार किया है। भावना की अतल समाधि में डूब कर उसने जिस मोहन रूप की रूप रेखा प्रस्तुत की है वह कृष्ण के भावात्मक स्वरूप को जैसे उभार कर रख देता है–[२]

सखि की पुछसि अनुभव मोय।
सेहो पिरीत अनुराग बखानिए तिले तिले नूतन होय॥ २॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधु बोल स्रवनहि सूनल स्रुति पथ परस न भेल॥ ४॥
कत मधु जामिनि रभस गमाओल न बूझल कइसन केल।
लाख लाख जुग हिय हिय राखल तइओ हि जुडल न भेल॥ ६॥
कत विदगध जन रस अनुमोदई अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुडाएत लाखे न मिलल एक॥ ८॥

काव्य में कृष्ण का यही रूप सर्वाधिक सगत है।

गौडीय आचार्य ने विद्यापति की पदावली से महान् स्फूर्ति प्राप्त की। मगर इसी कारण विद्यापति की तुलना सीधे चैतन्य से नहीं हो सकती। विद्यापति की तुलना सचमुच जयदेव के साथ ही साधक हो सकती है।

जयदेव का काव्य भी मिलनान्त है। विद्यापति की पदावली भी मिलनान्त काव्य है। दोनों ही लोक काव्य हैं। इन दोनों के नायक शृङ्गार देव श्रीकृष्ण हैं। भक्तिकाल के कवियों ने केवल इनका कथन लिया—'राधा कृष्ण' लिया। बल्कि उन्होंने अधिकांश में इनकी राधा ही ली, कृष्ण मूलत पुराणों से आयातित हुए। रीतिकाल के कवियों ने कथन के साथ-साथ कथ्य भी उठा लिया। राधा कृष्ण के साथ साथ नायक नायिका भी

---

१ विद्यापति पदावली–२५५
२ विद्यापति पदावली–२२८

ले लिये। इन दो शृङ्गार सरिताम्रो के बीच भक्तिकालीन ब्रजकाव्य महाद्वीप मे ऊपर उठे हुए कृष्ण मं दिर सा दिखायी पडता है।

विद्यापति के राधा कृष्ण शृगारपरक गीतो ने अपने सौकुमार्य और पद लालित्य के कारण तत्कालीन (१५ वी शती) भारत के सम्पूर्ण पूर्वी अचल को मत्र मुग्ध कर लिया। विद्यापति कालीन तिरहुत (तिरभुक्ति क्षेत्र—बगाल, बिहार, आसम, उडीसा) पूर्वी प्रदेश का विद्या केन्द्र था।[1] सुदूर देशा से आये हुए शिक्षार्थी जब शास्त्रीय-दीक्षा लेकर अपने अपने घर लौटते थे तो उनके कण्ठो म सस्कृत श्लोक और ओठो पर मैथिली के प्रेम गीत गूजा करते थे। ये गीत राधा कृष्ण प्रेम पर आधारित थे। इन गीतो ने बगाल म जाकर एक विशेष प्रकार की मिश्रित गीत शैली और भाषा को ज म दिया जिसे 'ब्रजबुली' कहते हैं।[2] इसम विद्यापति की गीत-भगिमा, मैथिली की मधुरिमा, ब्रजराज कृष्ण की प्रेम कहानी और बगला की भावुकता का समन्वय मिश्रण हो गया है। भाषा की दृष्टि से मैथिली इसका मूलभूत तत्व है। इसमे बगला और ब्रजभाषा के मिश्रण से ब्रजबुली का ज म हुआ।[3] चत यदेव के वैष्णव आदोलन और माधुर्य भक्ति के प्रभाव से १६ वी शती मे इस ब्रजबुली साहित्य की यथेष्ट श्रीसवर्द्धन तथा प्रचार प्रसार हुआ।

विद्यापति के राधा कृष्णपरक प्रेम काव्य पर ब्रह्मवैवत पुराण और गीतगोविन्द काव्य का सर्वाधिक प्रभाव पडा था। इसी से उनके गीतो मे मानवीय प्रेम का अशेष माधुर्य उतर सका। उनके गीत जब बगाल और आसाम पहुचे तब उ ह वैष्णव पदावली के रूप म स्वीकार किया गया। इसके पीछे इन ३ प्रदेशो के प्रसिद्ध वैष्णव भक्तो का व्यक्तित्व काम कर रहा था। आसाम मे शकरदेव, उत्कल मे राय रामानन्द तथा बगाल म चैतन्य महाप्रभु ऐसे ही भक्तो मे से थे। विद्यापति के समसामयिक बगाली कवि चण्डीदास हुए जिन्होने विद्यापति की पदावली के प्रभाव से बगाली वैष्णव पदावली का निर्माण किया। उनका 'कृष्ण कीर्तन' विद्यापति के राधा कृष्ण विषयक दृष्टिकोण से प्रभावित माना जाता है।[4] लोकभाषा काव्य पर पडे महाकवि विद्यापति के चतुर्दिक प्रभाव को देखकर विस्मय होता है। ब्रज के सूरदास आदि भक्त कवियो के पहले कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप विन्यास मे भाषाकाव्य की इस पृष्ठभूमि का निदर्शन नितान्त अपेक्षित है।

असम के शकरदेव—(सन् १४४९–१५५८) ने राधा कृष्ण प्रेमाख्यान पर आधारित अनेक गीत, काव्य और नाटक लिखे। इनके जीवन सर्वस्व थे कृष्ण, जिनकी लीला के कीर्तन के निमित्त इन्होने अनेक श्रव्य और दृश्य काव्यो का प्रणयन किया।[5] इनके काव्य

१ (क) प्रो० सुकुमार सेन—'ए हिस्ट्री ऑफ ब्रजबुली लिटरेचर' (पृ० १)
(ख) डॉ० जयकान्त मिश्र—'ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर' (पृ० १६७)

२ डॉ० ग्रियर्सन—मैथिली क्रिस्टोमैथी, (पृ० ३४)

३ प्रो० सुकुमार सेन—ए हिस्ट्री आफ ब्रजबुली लिटरेचर' (पृ० १–२)

४ बगाली लिटरेचर' (पृ० १५)—श्री रमेश चन्द्र दत्त।

५ प० बलदेव उपाध्याय—'भारतीय वाङ्मय मे श्री राधा' (पृ० ३२८)

गीतो को 'वरगीत' (भजन के पद) और नाट्य गीतो को 'प्रवेर गीत' (अंकिया नाट) कहते हैं। इनमे समग्रत कृष्ण की प्रेम कथा अंकित है। वरगीतो की भाषा म यद्यपि इतस्तत असमिया के प्रयोग हैं। किन्तु आधुनिक शोधकर्ता विद्वानो का यह स्पष्ट अभिमत है कि इसम ब्रजभाषा की मूल प्रवृत्ति आश्चर्यजनक रूप म सुरक्षित है।[१] असमिया–ब्रज्बुली पर बगला की अपेक्षा व्रज की विषय वस्तु का प्रत्यक्ष प्रभाव है।[२] यह विस्मयजनित भेद का विषय है कि हिंदी साहित्य के पाठक जहाँ विद्यापति के गीत और उमापति क 'पारिजात हरण' नाटक को हिन्दी के अध्ययन क्षेत्र म समझकर उसका रसास्वादन करते हैं वहाँ वे शकरदेव के वरगीत और पारिजातहरण नाटक को हिंदी क्षेत्र स बहिष्कृत समझकर उसकी उपेक्षा कर जाते हैं। इस दिशा म हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों तथा भाषा शास्त्रियो की अपेक्षया उदार दृष्टि आवश्यक है। पूर्वी प्रदेश के ये ब्रजबुली काव्य (वग, असम और उत्कल म प्रसिद्ध) केवल भाषा दृष्टि से ही नही वरन् कृष्ण भावना के विकास की दृष्टि से परम उपादेय हैं। यहाँ शकरदेव के वरगीत' से श्रीकृष्ण के मथुरा प्रवास के उपलक्ष मे एक गोपी विरह गीत उद्धृत किया जाता है—[३]

> *ध्रुव–गोविनी प्रान काहनो गयो रे गोविन्द।*
> हामु पापिनी पुनु पेखवो नाहि आर माहि वदन अरविंद॥
> पद–क्वन भाग्यवती, भयो रे सुपरभात आजु भेटन मुख धादा।
> उगत सूर दूर गयो रे गोविन्द भयो गोप वधु आन्धा॥
> आजु मथुरा पुरे मिलन महोत्सव माधव माधव मान।
> गोकुल के मगल दूर गयो नाहि बाजत वेनु विपान॥
> आजु जत नागरी करत नयन भरि मुख पकज मधुपाना।
> हमारि बन्ध विधि हाते हरल निधि कृष्ण किंकर रस भाना॥

महान् नाटककार शकरदेव के मैथिली नाटको म कालिय दमन, केलि गोपाल, पत्नी प्रसाद और पारिजात हरण उल्लेखनीय हैं। इन सबो के नायक ब्रजेश्वर कृष्ण हैं। प्रथम में कालिय-दमन लीला वर्णित है। यह लीला बगाल की यात्रा का आधार है।[४] केलि गोपाल गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की रास लीला पर आधारित है। इसकी गोपी लीला का आधार मूलत श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध है।[५] राधा का प्रसग सभवत ब्रह्मवैवत, गीतगोविन्द अथवा विद्यापति पदावली से गृहीत है। पत्नी प्रसाद श्री मद्भागवत स्कन्द–१०, अध्याय–२३ की यज्ञपत्नीनुग्रह लीला पर आधारित है। यह कथा शकरदेव का मौलिक आविष्कार नही है—जैसा कि कुछ विद्वान् पौराणिक अध्ययन के अभाव म भ्रमवश मान बैठे हैं।[६] इसमे याज्ञिक ब्राह्मणो की कर्मकाण्डी साधना पर कृष्ण की प्रेम साधना की

---

१ डॉ शिव प्र० सिंह–सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' (पृ० २२७)
२ डॉ० जयकान्त मिश्र–ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर' (पृ० १७७)
३ डॉ० शिव प्र० सिंह–सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' (पृ० २२७ पर उद्धृत)
४ डॉ जयकान्त मिश्र ए हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर (पृ० ३६४)
५ वही वही (पृ० ३६६)
६ देखिये—'ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर' (पृ० ३६७) डॉ० जयकान्त मिश्र।

विजय महिमा वर्णित है। आधुनिक कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने कृष्ण काव्य 'द्वापर के 'विधृता प्रसग' में इसका निदशन प्रस्तुत किया है। 'पारिजातहरण' उमापति के 'पारिजात हरण' से भिन्न और विशिष्ट है। उमापति का मूल विषय जहाँ कृष्ण की कनिष्ठा महिषी (सत्यभामा) का प्रणय कलह है वहा शकरदेव का मूल प्रतिपाद्य कृष्ण की गोपी-प्रेमोपलब्धि है।

सूरपूव कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप विकास म उक्त सन्दर्भों का अमित महत्त्व है।

उत्कल के राय रामानन्द—(सन् १५०८–१५३२) राधा कृष्ण माधुयभक्ति के प्राचीनतम उपासको मे से एक हैं। चतन्यदेव अपने दक्षिण भ्रमण काल मे (सभवत १६११-१२ मे) गोदावरी तीर पर इनसे मिलकर बडे प्रभावित हुए थे। उनके गीत उडिया ब्रजवुली काव्य के आद्य रूप हैं।[1] रामानन्द की कविता का एक अश यहा उद्धृत किया जाता है, जिसम राधा अपनी सखी से कृष्ण प्रेम की महिमा का विश्लेषण करते हुए कृष्ण के भावा त्मक स्वरूप का स्पष्ट करती है[2]—

पहिलहि राग नयन भग भेन। अनुदिन वाढल अवधि न गेल ॥
न सो रमण न हम रमणी। दुह मन मनोभव पेशल जनी ॥
ए सखि मो सव प्रेम कहानी। कानु ठामे कहबि बिछुरह जानी ॥
न खोजलौं दोति न खोजलौं आन। दुहुँक मिलने मध्यत पाच बाण ॥
अब सो विरागे तुहुँ भेलि दोति। सुपुरुख प्रेमक अछन रीति ॥

उक्त पद का द्वितीय चरण कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप का द्योतक है। इसके अतिरिक्त चतुथ चरण का उत्तराद्ध विद्यापति की एक कविता पर आधारित है जिसमे राधा कृष्ण के मिलन समागम म कामदेव की मध्यस्थता वर्णित है।

जिस समय पूर्वी प्रदश म ब्रजवुली के माध्यम से कृष्ण की मधुर लीलाओ का गुण गान हो रहा था उसी समय या उससे कुछ पूव ही मध्यदेश मे **ब्रजभाषा के आदि कवि विष्णुदास** (सन् १४३५) के काव्यो मे कृष्ण-लीला का व्यापक समावेश मिलता है। उनकी उपलब्ध कृतियो म स्नेह लीला कृष्ण की वृन्दावन लीला पर आधारित है। आधुनिक शोध के निष्कष स्वरूप, स्नह लीला, भ्रमर-गीत का पूवरूप है। कृष्ण को एक दिन अचानक ब्रज की याद आती है। प्रेम विह्वल कृष्ण उद्धव को गोपियों के लिए सन्देश देकर ब्रज भेजते हैं। ज्ञान गम्भीर उद्धव ब्रज की धूलि मे सारी निर्गुण गरिमा को लुटाकर वापस आते हैं।[3] विगलित ज्ञान उद्धव और भाव तरल कृष्ण का यह प्रेम-सवाद उल्लेखनीय है[4]—

नन्द जसोदा हत की कहिय कहा बनाय।
वे जानै तुम भने मो प कह्या न जाय ॥१११

---

१ प्रो० सुकुमार सेन–ए हिस्टी आफ ब्रजवुली लिटरेचर' (पृ० २५)
२ वही
३ डॉ० शि० प्र० सिं०–सू० पू० ब्र० उ० सा०' (पृ० १५१)
४ वही

अस गोपिन के प्रेम की महिमा कछू अनन्त ।
मैं पूछी षट मास लौं तऊ न पायो अन्त ॥११३
तब हरि ऊधो सो कह्यो हूँ जानत सब अग ।
हौं कबहूँ छाड्यो नही ब्रज वासिन्ह का सग ॥११७
ब्रज तजि अनत न जायहो मेरे तो या टेक ।
भूतल भार उतारहो धरिहौ रूप अनेक ॥ ११८

उक्त पद मे कृष्ण के वात्सल्य और मधुर स्वरूप के साथ साथ नित्य वृदावनविहारी और भवभयहारी रूप परिस्फुट हुए हैं। यहाँ राधा का उल्लेख नही है। कवि भागवत की भक्ति भावना से प्रभावित होकर कृष्ण लीला वर्णन म प्रवृत्त हुआ सा जान पडता है। यह अष्टछाप के कवियो की कृष्ण भावना की समथ पृष्ठभूमि है। ब्रज भक्ति के प्राण प्रतिष्ठापक स्वामी वल्लभाचाय के प्राय ८० वष पूव तथा ब्रज काव्य के प्राणाधार कवि सूरदास के प्राय ५० वष पूव विष्णुदास का कृष्ण काव्य ब्रजभाषा साहित्य की एक ऐतिहासिक उपलब्धि है।

पूव और मध्यदेश की भाँति ही भारत का पश्चिमी अचल कृष्ण चरितामृत से वचित नही है। महाराष्ट्र और गुजरात म सूर पूव कृष्ण भक्ति के अजस्र स्रोत प्रवाहित हुए हैं। इसका कारण है श्रीमद्भागवत का तद्देशीय प्रचार। भागवत के माहात्म्य कथन म भक्ति की द्राविड से वृदावन यात्रा वर्णित है।[१] माग मे महाराष्ट्र और गुजरात म क्रमश वृद्धि और जीणता के सकेत मिलते हैं। किन्तु इस जीणता (गुजरात म) से तात्पय 'चरम विकास की अवस्था' नही है जैसा कि कुछ लोग मानते हैं।[२] भक्ति दुर्बल भी वही हुई यह अगले श्लोक से स्पष्ट है।

महाराष्ट्र मे कृष्ण भक्ति 'विट्ठल भक्ति' मे रूपान्तरित हो गयी है। विट्ठल' विष्णु के ही विकसित रूप हैं। विट्ठल को विष्णु के कृष्णावतार का बाल रूप माना जाता है जो अपने भक्त पुण्डलीक को वर देने के लिए पढरपुर चलकर आये और उसी के सकेत पर बीट (इट) पर खडे हो गये और अभी तक खडे हैं।[३] इनके उपासक वारकरी सन्त कहलाते हैं। महाराष्ट्र का वारकरी सम्प्रदाय' भागवत सम्प्रदाय का ही एक रूप है। यद्यपि महा राष्ट्र के प्रख्यात सन्त नानदेव नाथपथ (नाथ पथ) म दीक्षित थे किन्तु उत्तरवर्ती सन्तो के अतरग मे कृष्ण भक्ति का अजस्र स्रोत फूटा और भगवान् कृष्ण के गुणमय रूप की उपा सना वारकरियो का हृदय हार बन गयी। ममामत विट्ठल कृष्ण के मराठी सस्करण हैं। उनके वामाग म रुक्मिणी देवी प्रतिष्ठित हैं। वैसे ही, महानुभाव पथी कवियो ने रुक्मिणी कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम को ही अपने शृङ्गार काव्य का विषय बनाया। फलत परवर्ती भक्ति काव्य म शृगार का अतिचार न हो सका। किन्तु इसका अथ यह नही कि मराठी म कृष्ण की ब्रज लीला का महत्त्व नही है। नानदेव नामदेव, एकनाथ, तुकाराम जनाबाई ने बाल कृष्ण,

---

१ श्रीमद्भागवत माहात्म्य–१/४८
२ डॉ० शि० प्र० सि०–सू० पू० ब्र० उ० सा ' (पृ० २३२)
३ हिन्दी को मराठी सन्तों की देन' (पृ० ७०)–डॉ० विनयमोहन शर्मा

गोपी-कृष्ण और राधा कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का सुमधुर अंकन किया है। इनकी शृङ्गार लीला यथेष्ट मर्यादित है।[१]

हिन्दी में इनके अनेकानेक लीला पदों का सन्धान हो चुका है।[२] नामदेव (सन् १२७०–१३५०) वारकरी मत के प्रमुख सन्त और हिन्दी में गीत शैली (राग रागिनियों में निबद्ध) के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं।[३] उनके शब्दों में—

'धनि धनि वन खण्ड बिंदावना। जहँ खेलै श्री नाराइना॥'

वैसे इस दिशा में ब्रज के संगीतकार कवियों का भी योगदान है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। गोपालनायक और बैजू बावरा के सांगीतिक पदों में कृष्ण-लीला के रमणीय प्रसंग मुखरित हुए हैं।[४]

नामदेव मराठी के पहले भक्त हैं जिनकी रचनाओं में राधा का वर्णन उपलब्ध होता है। राधा कृष्ण मिलन की अभिलाषा इनकी कविता में उल्लासपूर्वक वर्णित है।[५] इन्होंने कृष्ण की प्रेमोपासना कामिनी के रूप में की है।

कामी पुरुष कामिनी पियारी। ऐसी नामे प्रीति मुरारी॥

कृष्ण के साथ राम का स्मरण तमिल सन्तों के साथ मराठी सन्तों की भी विशेषता है। वैसे ही शिव कृष्ण समवेत स्तुति भी इनकी असाम्प्रदायिक उदारता का परिचायक है। सुदूर पूर्व के कवि विद्यापति और सुदूर पश्चिम के मराठी कवि इस दृष्टि से समान हैं।

भगवान् कृष्ण की लीलाभूमि ब्रजमण्डल से गुजर भूमि (द्वारका) तक प्रसरित है। ब्रज मण्डल की कृष्ण लीला सर्वाधिक प्रसिद्ध और स्मरणीय है। स्वभावतः आद्य ब्रज भाषा का ही सर्वाधिक प्रसार अन्य लीला क्षेत्रों में भी हुआ। गुजरात प्रारम्भ से ही कृष्ण भक्ति की उर्वर भूमि रहा है। वल्लभाचार्य और मीरा ने तो इसे ब्रजवत् सम्मानित कर दिया। किन्तु इसके पूर्व से ही यहाँ कृष्ण भक्ति का श्रीमद्भागवत की प्रेरणा से प्रचार प्रसार हो गया था।

पूर्वी प्रदेश की कृष्ण लीला पर सामान्यतः ब्रह्मवैवर्त पुराण का और पश्चिमी प्रदेश की कृष्ण लीला पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव माना जाता है।[६] इसके परिणाम-स्वरूप पूर्वी पद काव्यों में शृङ्गार और वसन्तरास का आधिपत्य है और पश्चिमी लीला काव्य पर भक्ति और शरद् रास का प्रामुख्य मान्य है। किन्तु जैसे जयदेव के पूर्व पश्चिमोत्तर भारत में

१ डा० र० श० केलकर–'मराठी हिन्दी कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ११२
२ वही–डॉ० वि० मा० शर्मा
३ हिन्दी को मराठी सन्तों की देन (पृ० १२८)–डॉ० विनयमोहन शर्मा
४ इन गीतों के लिए द्रष्टव्य– रागकल्पद्रुम'–कृष्णानन्द व्यास (बंगीय साहित्य परिषद् संस्करण) तथा 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएं' प० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी (साहित्य भवन प्रयाग)
५ प० बलदेव उपाध्याय–'भा० वा० श्री० रा०' (पृ० ३३६)
६ द्रष्टव्य मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (पृ०१०७) डॉ०र०श० केलकर

क्षेमेन्द्र (११ वीं शती) रचित गोपी वियोग विषयक कामशास्त्र पद्यावली का उदाहरण[1] पाते हैं उसी प्रकार गुजरात की एक प्राचीन कविता (सन् ११६२) में गोपी कृष्ण वसन्त रास का एक दृष्टान्त मिलता है। यह फागु रास और हिंडोल का पूर्ण मिश्रित रूप है—

फागु

आविय माग वसंत रात करह उभ्भार।
मलयानिल महि वायउ आयउ कामिणि दाह॥

रासक

वनवरि आविय प्रभु वानवउ नवरिंगइ रिमारी रे।
माधव माधव भेग्ने भावइ आविर देव मुरारी रे॥
धण भरि नमती तरणी वरणी धरणी चरण मवार रे।
चालइ चमरत भ्रमरा उर गेउर घटक विनार रे॥

आन्दोल

नाचइ गोपिय वृन्द वाजइ मधुर मृदंग।
मोडइ अंग सुरंग सारंगधर वाइसि महूमरि ए॥
कुलवण महूमरि ए॥
कर लिए पंकज नाल, मिलति फेरइ बाल।
छंदिहि वाजइ ताल, सारंग धर वाइइ महूमर ए॥
तारा महि जिमि चन्द, गोपिय माहि मुकुन्द॥
पणमइ सुर नर इंद, सारंगधरवाइति महूमरि ए।
कुलवण महूमरि ए॥
गोपी गोपति फागु कीडत हीडत वनह मझारि।
मारुत प्ररित वन भर नमइ मुरारि॥[2]

गुजरात मे भालण (१६ वी शती पूर्वार्द्ध) के दशम स्कन्ध' और केशव कायस्थ के कृष्ण क्रीडाकाव्य (सन् १४७२) में कृष्ण की ब्रजलीला के सुमधुर चित्रण हुए हैं। ये सूरपूर्व काव्य में कृष्णचरित के रमणीय विन्यास के द्योतक हैं।[3] इनके प्राप्य ब्रजभाषा

---

१ ललित विलास कला सुख खेलन ललना लोभन शोभन यौवन मानित नव मदने।
अलि कुल कोकिल कुवलय कज्जलकाल कलिन्दसुताविगलज्जल-कालिय कुल दमने।
केशिकिशोर महासुर मारण दारुण गोकुल दुरितविदारण गोवर्धनहरणे।
कस्य न नयनयुग रति सजे मज्जति मानसिजतरलतरंगे वररमणी रमणे।'
—आचार्य द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (पृ० ११७) से उद्धृत।

२ गुजराती साहित्य का इतिहास—श्री के० एम० मुंशी—सू०पू०ब्र०उ०सा०' (पृ०२३२ २३३)—डा० शि० प्र० सिं०, से उद्धृत।

३ विस्तृत समीक्षा के लिए द्रष्टव्य—गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन डॉ० जगदीश गुप्त।

पदो मे कृष्ण की बाल-लीला, माखनचोरी, सख्य लीला, गोपी लीला राधा प्रेम और मान, प्रिय प्रवास और प्रवासी कृष्ण की ब्रज सुधि के मार्मिक अकन मिलते हैं।[१]

कृष्णचरित के विकास की ये ही वे सरणिया हैं जिनसे होकर १६ वी शती के सूर आदि श्रेष्ठ ब्रज कवियो की पदावली मे इसके भावात्मक स्वरूप का विन्यास हुआ। आचार्य शुक्ल ने बाल कृष्ण और राधा कृष्ण की मधुर लीलाओ के विस्तृत विन्यास का देखते हुए सूरदास को इस भाषा परम्परा का प्रथम कवि नहीं माना था। उन्हे इसके पीछे देशभाषा काव्य की विशाल काव्य सम्पदा का जो अनुमान हुआ था, वह आधुनिक शोधो के आलोक मे पूर्णत सत्य सिद्ध हो चुका है। सूरदास का सूरसागर ब्रजभाषा मे कृष्णचरित का विशाल भावात्मक चित्रागार है। और उसमे सुदूर पूर्व के विद्यापति और शकर देव, चण्डीदास और रायरामान द, मध्यदेश के विष्णुदास और सगीतज्ञ कवि तथा पश्चिम के नामदेव और भालण की कृष्ण प्रेम साधना का ही भव्य रूपाकन हुआ है। इनमे परस्पर स्थूल अन्तर यदि है तो वह यह कि पूर्वी अचल के कवियों के कृष्ण मूलत शृङ्गारदेव हैं जबकि पश्चिमी अचल के कृष्ण भक्ति-देव हैं। पूर्वी कृष्णचरित भावुक्तापूर्ण है किन्तु पश्चिमी कवियो ने उनके चरित्र मे अपेक्षाकृत सयम और श्रद्धाबुद्धि का प्रदर्शन किया है। राधा-प्रेम, शृङ्गार-लीला, वसन्त रास आदि पूर्वी कवियो की देन है। गोपी प्रेम, वात्सल्य लीला, शरद् रास आदि पश्चिमी भक्तो की उपलब्धियाँ हैं। और, अतीव ममवत दोनो के पीछे उपजीव्य रूप मे जो पौराणिक प्रभाव पडा है, उसके अनुसार पूर्वी कृष्णचरित पर ब्रह्मवैवर्त और पश्चिमी कृष्णचरित पर श्रीमद्भागवत का प्रतिनिधि प्रभाव माना जा सकता है।

मध्ययुग के भक्ति आदोलन की ये ही पृष्ठभूमियाँ हैं।

---

१ उदाहरणार्थ द्रष्टव्य– सू० पू० ब्र० उ० मा०' (पृ० २३८–२३७)–डॉ० शि० प्र० सिंह

सप्तम अध्याय

दक्षिण के वैष्णव आचार्य और भक्ति-देव श्रीकृष्ण

अनुच्छेद–१

★आचार्यों का भक्ति आन्दोलन

अनुच्छेद–२

★वैष्णवाचार्यों के श्रीकृष्ण

अनुच्छेद–३

★विभिन्न लीलोपादानों की आध्यात्मिक व्याख्या

प्रथम अनुच्छेद

आचार्यों का भक्ति-आन्दोलन

ऐहिकता भावा का समतल पर सचरण है, आध्यात्मिकता ऊर्ध्व तल पर सचरण। भाव दोनो ही तलो में उभयनिष्ठ है। कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप मे भी यही सिद्धान्त चरिताथ होता है। लोक काव्यो में प्रतिफलित कृष्णचरित म ऐहिकता का समावेश है और यह भावना का समतल सचरण है। इसीलिए पूववर्ती अध्याय म कृष्ण को शृङ्गार देव के रूप म स्वरूपित किया गया। दक्षिण के वैष्णव आचार्यों ने आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इस चरित पर विचार किया है। उन्होने इस भावना को ऊर्ध्व तल पर प्रतिष्ठित किया। यद्यपि भाव या राग इसके भी अन्तरतम मे प्रतिष्ठित है। इसीलिए इस अध्याय म कृष्ण को भक्ति देव का आसन प्रदान किया गया है। हिन्दी भक्ति-काव्य लोक भाषा और लोक भावना का काव्य विकास है। साथ ही यह वैष्णवाचार्यों के भक्ति सिद्धान्तो से प्रभावित भी है। इसमे लोकभाषा का शृङ्गार और भक्ति की सुधा सम्मिलित है। इसीलिए भक्ति काल के कृष्णचरित मे शृङ्गारिकता और भक्ति भावना का सुमधुर विनियोग हो गया है। प्रस्तुत अध्याय म आचार्यों की भक्ति भावना का कृष्णचरित्र के भावात्मक स्वरूप विकास मे जो महत्त्वपूर्ण योगदान हुआ है, वही विचारणीय है।

भक्तिदेव श्रीकृष्ण के भाव विकास में मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का प्रबल स्वर है। इस आन्दोलन के सूत्रधार दक्षिण के वैष्णव आचाय हैं। इनका काल सामान्यत १२ वी से १६ वी शती के बीच माना जाता है।[१] भक्ति आन्दोलन का यह स्वर, पण्डितो की धारणा में हिन्दू धम के सुधार तथा निरीश्वरवादी धर्मों (बौद्ध, जैन आदि) के विरोध के लिए मुखरित हुआ। अत सुधार के रूप मे उसम कमकाण्ड के स्थान पर भाव प्रेममय भक्ति का आविर्भाव हुआ और विरोध के रूप म शाकर अद्वैतवाद और निर्गुणवाद का प्रत्याख्यान हुआ। फलत उसके अन्तरग मे भाव प्रेममय भक्ति और बहिरग म द्वैतवाद और सगुणवाद की विचार धाराओ का सगम हुआ।

शकराचाय (८ वी ९ वी शती) के अद्वैतवाद म ब्रह्म के अतिरिक्त जीव और जगत को स्वीकृति नही मिली। उन्होने जगत को मिथ्या कह कर माया का प्रबल निषेध किया। किन्तु, वैष्णव भक्तिवाद और पौराणिक लीलावाद म ब्रह्म के साथ साथ जीव और जगत का भी स्वीकृति मिली। यहाँ माया ही (कृष्ण) लीला की सूत्रधारिणी बन गयी।

आचार्यों म सवप्रथम रामानुज (११ वीं १२ वी शती) ने शाकर अद्वैतवाद का सैद्धान्तिक प्रतिवाद करते हुए वैष्णव भक्तिवाद की दाशनिक प्रतिष्ठा की। उन्होने ब्रह्म को

१ डॉ० ग्रियसन—'इस युग म धम ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।'
—हिन्दी साहित्य की भूमिका (पृ० ५१)—(आचाय द्विवेदी) से उद्धृत।

गुणविशिष्ट मानकर अद्वैतवाद के स्थान पर 'विशिष्टाद्वैतवाद' का प्रवर्त्तन किया। उनके उपास्यदेव-'लक्ष्मीनारायण' सौन्दर्य, लावण्य और सौकुमार्य आदि गुणों से विभूषित हैं।

शंकर के विरुद्ध रामानुज के भक्ति सिद्धान्त को तत्काल बड़ी लोकप्रियता मिली। इसके अनन्तर वैष्णव भक्ति मार्ग का जैसे द्वार ही खुल गया। १२ वीं, १३ वीं और १४ वीं शताब्दी में निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी जैसे प्रतिभाशाली वैष्णवाचार्यों का दक्षिण में उदय हुआ। इन्होंने अपने अपने सिद्धान्तों—द्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैतवाद द्वारा वैष्णव भक्तिवाद, अवतारवाद और लीलावाद को अधिकाधिक प्रश्रय दिया। इनमें रामानुज और मध्वाचार्य नारायण और विष्णु तक ही सीमित रहे। किन्तु निम्बार्क और विष्णुस्वामी ने, जिनके सम्प्रदाय में आगे चलकर वल्लभाचार्य हुए, अपने उपास्य रूप में श्रीकृष्ण को अंगीकार किया। इनसे श्रीकृष्ण के भाव विकास को बौद्धिक प्रेरणा मिली और कृष्ण चरित शास्त्रीय गरिमा से मण्डित हुआ।

समस्त वैष्णव सम्प्रदायों के परमाचार्य श्रीकृष्ण हैं। इन्हीं के उपदेश ४ शिष्यों—श्री, ब्रह्मा, रुद्र, सनक—के द्वारा प्रवर्तित होने पर ४ वैष्णव सम्प्रदायों का जन्म हुआ।[१] मध्य युग में इनका प्रसार ४ आचार्यों के भक्तिसिद्धान्तों द्वारा हुआ। वैष्णव सम्प्रदाय की ४ मुख्य शाखाओं को निम्न तालिका द्वारा व्यक्त किया जाता है—

सम्प्रदाय	संस्थापक	आचार्य	सिद्धान्त	उपास्य
(१) श्री सम्प्रदाय	श्री	रामानुज	विशिष्टाद्वैत	श्रीनारायण
(२) ब्रह्म-सम्प्रदाय	ब्रह्मा	मध्वाचार्य	द्वैतवाद	लक्ष्मीविष्णु
(३) हंस सम्प्रदाय	सनक	निम्बार्क	द्वैताद्वैत	राधाकृष्ण
(४) रुद्र सम्प्रदाय	रुद्र	विष्णुस्वामी	शुद्धाद्वैत	बालकृष्ण

यह कहा जा चुका है कि वैष्णवाचार्य दक्षिण के भक्ति भावित क्षेत्र में आविर्भूत हुए थे। अतः उनके व्यक्तित्व निर्माण में आलवार सन्तों के भक्ति-लीला और धार्मिक विश्वासों का योग होना स्वाभाविक है। पौराणिक कृष्ण-लीला में निम्नांकित क्रम में आलवारों की कृष्ण-

१ श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्॥ पद्मपुराण (भागवत सम्प्रदाय—पृ० २२१ ब० उपाध्याय)

भावना का सम्यक् अनुशीलन किया जा चुका है।[1] आल्वारों का 'दिव्य प्रबंधम्' तमिल भक्ति-युग की सार्वभौम कृति है। इसके पूर्व के संध्योत्तर काल की काव्यकृति में भी, विशेषतः कविवर इलंगो के 'शिलप्पधिकारम्' (नूपुर काव्य) में, कृष्ण का वृंदावन लीला के अनेक मर्मस्पर्शी दृश्य हैं। भक्तियुगीन 'प्रबंधम्' तो भारत की सभी भाषाओं में सर्वप्रथम कृष्ण भक्ति परक काव्य है। इसमें विष्णुचित्त जैसे वात्सल्यरस सम्पन्न कवि के पद और आण्डाल जैसी कृष्ण प्रेमिका साधिका के मार्मिक उद्गार व्यक्त हुए हैं।

आल्वारों के भक्ति गान के अनन्तर तमिल में वैष्णवाचार्यों का ही युग आता है। इन वैष्णवों में सर्वप्रथम नाथमुनि का नामोल्लेख किया जाता है। वस्तुतः नाथमुनि ही पहले आचार्य हैं जिन्होंने इन भक्तों के सुमधुर पदों का 'नालायिर दिव्य प्रबंधम्' नाम से संग्रह कर उन्हें श्रीरंगम् के मंदिर में नित्य कीर्तन के रूप में गाये जाने की व्यवस्था की। इनकी ३री पीढ़ी में श्री यामुनाचार्य हुए जो श्रीरंगम् के आचार्य पीठ के अधिकारी हुए। इनके उत्तराधिकारी रामानुज (१०१७-११३७ ई०) ही हुए। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य नामक प्रसिद्ध संस्कृत भाष्य लिखा। गोदा के गीत इनके प्रिय भजन थे।[2] श्रीरंगम् में इनकी साधना भूमि रही। यहीं उन्होंने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की। इन्होंने उत्तर भारत के प्रमुख वैष्णव तीर्थों का भ्रमण किया। इनकी प्रपत्ति भावना आल्वारों की 'शरणागति' का ही नामान्तर है। इनके भक्ति सिद्धान्तों में भावना और बुद्धि का सुंदर समन्वय है। भावना आल्वारों की देन है। रामानुज के आदर्शों को ही अपने ढंग पर उनके शिष्य रामानन्द ने उत्तर भारत में पूर्ण उजागर कर दिया। इनका विशेष प्रभाव रामभक्ति शाखा पर पड़ा। फिर भी, रामानुज का कृष्णभक्ति से आंतरिक अनुराग था, इसमें सन्देह नहीं।

दूसरे प्रमुख आचार्य **मध्वाचार्य** (सन् ११९९-१३०३ ई०) हैं। यह द्वैतवादी सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। इनका सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी साधना भूमि कर्नाटक प्रान्त है। यह शांकर मायावाद के प्रबल विरोधी और भक्तिवाद के मुख्य समर्थक हैं। इस मत का विशेष प्रचार दक्षिण में हुआ। बंगाल के गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय पर इसका प्रभाव बताया जाता है। किंतु, चैतन्योत्तर गौडीय वैष्णवों ने अपने स्वतन्त्र मत की स्थापना कर ली। इसका विशेष विवेचन चैतन्यमत की समीक्षा के प्रसंग में किया जायगा।

माध्वमत का मुख्य केन्द्र उडिपि है। यहाँ मध्वाचार्य ने समुद्रतल से निकाली गयी

---

१ देखिये-प्रस्तुत प्रबंध (पृ० १९८)

२ गोदा कृष्ण की मधुरोपासना गोपी भाव से करती थी। इसीलिये उसे 'रंगनायकी' भी कहा गया है। उसका मधुर काव्य है 'तिरुप्पावै'। श्री रामानुजाचार्य हमेशा इस दिव्य प्रबंध का ही अनुसंधान किये रहते थे जिससे इनका उपनाम 'तिरुप्पावै जीयर' हो गया। कहते हैं श्रीरंगम् के दैनिक मंगलाशासन में सर्वप्रथम 'तिरुप्पावै' की गाथाओं का कीर्तन गान इन्हीं के द्वारा प्रचलित हुआ। इस कारण कृष्ण की मधुरोपासना से इनका अंतरंग सम्बन्ध जान पड़ता है।

कृष्ण मूर्त्ति की स्थापना की थी। उडिपि म ाई कृष्ण मन्दिर इनके द्वारा स्थापित बताये जाते हैं, जिनम कृष्ण लीला से सम्बद्ध 'कालिय दमन' की मूर्ति उल्लेखनीय है।[1] मध्वाचाय बडे मेधावी विद्वान् थे। इन्होने अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमें 'भाष्य' (ब्रह्मसूत्र, गीता आदि) और 'तात्पय निर्णय (गीता, महाभारत, आदि) परक ग्रन्थ मुख्य हैं।

इस मत म भगवान् विष्णु केन्द्र स्थानीय हैं। कृष्ण भावना के विकास में इस मत का प्रत्यक्ष योग नहीं है।

अवान्तर दो आचाय—निम्बाक और विष्णुस्वामी अथवा वल्लभाचाय ही कृष्ण भक्ति परम्परा के समथ उन्नायक रहे।

स्वामी निम्बार्क (सन् ११६२–१,७२ ई०) इस सम्प्रदाय के प्रवत्तक हैं। भगवान हंसावतार के शिष्य सनत्कुमार, सनत्कुमार के शिष्य भक्त नारद और नारद के शिष्य स्वय निम्बाक माने जाते है। निम्बाक यद्यपि दक्षिण म उत्पन्न (बेलारी जिला) तैलग ब्राह्मण माने जाते हैं किन्तु इनके मत का कोई सम्बन्ध उस देश से नहीं मिलता। इनके द्वैताद्वैत मत—जिसमें राधा कृष्ण युगल मूर्ति की प्रतिष्ठा है—का मुख्य केन्द्र वृन्दावन है। गोवधन के समीप निम्ब ग्राम है। इनके नाम साम्य के कारण भी निम्बाक को इससे सम्बद्ध माना जाता है।[2] यह स्थल निम्बाक मतावलम्बी वैष्णवो और कृष्ण भक्तो का प्रधान गढ रहा है।

वृन्दावन के आश्रय म पनपने वाले कृष्णभक्तिपरक सम्प्रदायो म निम्बाक मत प्राचीन तम माना जा सकता है। निम्बाक कृत वेदान्त भाष्य 'वेदान्त परिजात सौरभ' के नाम से प्रसिद्ध है। इसम अत्यन्त सक्षेप म द्वताद्वैत मत की सिद्धि की गयी है। इसकी सक्षिप्तता इसकी प्रामाणिकता की द्योतक है।

इनके ग्रन्थो में 'दश श्लोकी' और 'श्री कृष्णस्तवराज' यहाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनम दूसरा ग्रन्थ स्तुतिपरक है। प्रथम ग्रन्थ भगवत् सिद्धान्त पर आधारित है इसे 'वेदान्त कामधेनु' भी कहते हैं। हरि व्यास देव इनके प्रसिद्ध टीकाकार है। निम्बाक मत के प्रसिद्ध आचाय पुरषोत्तम ने 'वेदान्त रत्न मजूषा' नाम से इसपर वृहद् भाष्य की रचना की।

दश श्लोकी के 'मजूषा भाष्य (पुरुषोत्तमाचाय रचित) म ४ कोष्ठ है। प्रथम कोष्ठ राधा कृष्ण युगलमूर्ति, तृतीय कोष्ठ मे प्रेम लक्षणाभक्ति और अन्तिम कोष्ठ भक्ति रस की चरमोत्कष सिद्धि की दृष्टि से हमारे लिए परम उपादेय हैं। प्रथम कोष्ठ का ५ वाँ श्लोक सहस्रो सखिया से परिसेवित राधा कृष्ण युगल मूर्ति से सम्बद्ध है। यह सम्प्रदायो म राधा कृष्ण का प्रथम प्रवेश है। इसके अनन्तर जयदेव ने अपने गीतगोविन्द म राधा कृष्ण की मधुर लीला का गान किया। वृन्दावन और बगाल मे निम्बाक मत का सर्वाधिक प्रसार हुआ। १६ वी शती के गौडीय वैष्णव चैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्य भेदाभेदवाद पर इस द्वताद्वत वाद का अन्तरग प्रभाव पडा। राधा कृष्ण युगल साधना दोनो की अन्तरात्मा है। जसे निम्बाक सम्प्रदाय युगल दशन के क्षेत्र म मध्ययुग का सवप्राचीन वैष्णव मतवाद है

---

१ 'भागवत सम्प्रदाय (पृ० २२२) प० ब० उपाध्याय।
का प्रत्यक्ष योग नहीं है।

२ 'भक्तमाल म निम्बग्राम म निम्बाक को जोडने वाली वह प्रसिद्ध कथा आती है।

वैसे ही निम्बार्क मतावलम्बी कवि (श्रीभट्ट, हरि व्यासदेव आदि) कृष्ण भक्ति शाखा के आदि कवि हैं। इनकी विस्तृत समीक्षा आगे की जायगी।

चतुः वैष्णव सम्प्रदायों में अन्तिम रुद्र-सम्प्रदाय है। इसके आद्य प्रवर्तक विष्णुस्वामी (१३ वीं शता) तथा मध्ययुगीन प्रतिनिधि स्वामी वल्लभाचार्य (सन् १४७८ ई०) हैं। दर्शन के क्षेत्र में यह मत शुद्धाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। बालकृष्ण इसके उपास्य देव हैं।

विष्णुस्वामी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचना अनुपलब्ध है। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार विष्णुस्वामी द्रविड देश के किसी ब्राह्मण के पुत्र थे। कहते हैं,[1] बचपन से ही इनमें भगवद्दर्शन की अदम्य स्पृहा जग रही थी। एक बार तो इन्होंने अन्न जल तक ग्रहण करना छोड दिया। सातवें दिन उन्हें किशोर मूर्ति वेणुवादन तत्पर शृङ्गार शिरोमणि श्री श्यामसुन्दर के दुर्लभ दर्शन हुए। बालकृष्ण ने उपदेश दिया कि 'दोनों ही रूप हमारे हैं। मैं निराकार रूप में भक्तों का रक्षण करता हूँ तो साकार रूप में लीला, रंजन और आस्वादन। मेरी प्राप्ति का सबसे सुगम मार्ग भक्ति है।' यही बालकृष्ण इनके आराध्य बन गये। इनके मत का विशेष प्रचार महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में हुआ। प्रसिद्ध वारकरी सन्त नामदेव आदि इसके सिद्धान्तों से प्रत्यक्षतः प्रभावित हुए।[2] किन्तु, वल्लभाचार्य के नेतृत्व में इस मत की सर्वाधिक श्री सवर्द्धना हुई। १६ वीं शती में आकर तो यह सम्प्रदाय ही वल्लभ सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित हो गया।

श्री वल्लभ लक्ष्मणभट्ट नामक तैलंग ब्राह्मण के पुत्र थे जो—आन्ध्र प्रदेश के काकरवाड नामक स्थान के निवासी थे। लक्ष्मणभट्ट अधिकतर काशी में ही रहे। अतः वल्लभ के समस्त संस्कार, शिक्षा दीक्षा आदि काशी में ही हुए। गोपाल कृष्ण इनके उपास्य कुल देवता थे।[3]

पिता के लोकान्तरण के पश्चात् वल्लभ ने सम्पूर्ण भारत की तीर्थ यात्रा की और अपने मत का प्रचार किया। वह दक्षिण भी गये। यह यात्रा विशेष गौरव प्रदायिनी रही। उन्होंने विजयनगर के सम्राट् कृष्णदेव राय की सभा में नास्तिकों को परास्त कर अपने शुद्धाद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा की। महाराज ने प्रसन्न होकर उनका कनकाभिषेक किया था।[4]

आचार्य ने अपनी यात्रा का अधिकांश कृष्ण क्षेत्र (व्रज, मथुरा और द्वारिका) में ही व्यतीत किया। उनकी प्रथम व्रज यात्रा के समय (सन् १४९१) गोवर्धन की गिरिराज पहाड़ी पर एक भगवद्स्वरूप का प्राकट्य हुआ था। व्रजवासी जन अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ उसे 'देव दमन' नाम से पूजते थे। अपनी दूसरी यात्रा में जब वे पुनः गोवर्धन पहुँचे तो व्रजवासियों ने उनको उक्त स्वरूप के दर्शन कराये। वल्लभाचार्य ने उक्त स्वरूप का नाम 'श्रीनाथ जी' या 'गोवर्धननाथ' रखा। उन्होंने भगवान् श्रीनाथ का पाटोत्सव किया और भगवान् की सेवा विधि स्थिर की। यहाँ उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया। अन्त में वे काशी आये और ५२ वर्ष की अवस्था में वहीं अपनी जीवनलीला समाप्त (सन् १५३० ई०) की।

१ प० ब० उपाध्याय– भागवत सम्प्रदाय –पृ० ३६६।

२ भक्तमाल में नामदेव को विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त माना गया है।

३ 'भागवत सम्प्रदाय' (पृ० ३७) प० ब० उपाध्याय।

४ प० ब० उपाध्याय—'भागवत सम्प्रदाय' (पृ० ३७३)

'वल्लभ दिग्विजय' के अनुसार इनके द्वारा प्रणीत ३५ ग्रंथ बताये जाते हैं। किन्तु अब तक कुल ३० ग्रंथ ही उपलब्ध हैं। इनमें कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—ब्रह्मसूत्र पर लिखा 'अणुभाष्य', पूर्वमीमांसा भाष्य, तत्त्वदीप निबन्ध, भागवत की सुबोधिनी व्याख्या आदि।

वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत मत में शंकराचार्य के 'जगन्मिथ्या' सिद्धान्त के प्रतिकूल ब्रह्म के साथ जगत की भी सत्यता प्रमाणित की है। इनके अनुसार जगत सत्य है क्योंकि लीलानायक भगवान् कृष्ण स्वयं जगत रूप में परिणत हुए हैं। ब्रह्म कारण है, जगत कार्य। जब कारण सत्य है तो कार्य मिथ्या कैसे हो सकता है! अतः जगत भी सत्य है। 'जगत्' में ही कृष्ण लीला की भी स्वीकृति है। ब्रह्म भी दो रूपों में है—अक्षर ब्रह्म और परब्रह्म। अक्षर ब्रह्म ज्ञानगम्य है, किन्तु परब्रह्म पुरुषोत्तम केवल अनन्य भक्ति से ही प्राप्य है। अक्षर ब्रह्म का आनन्द सीमित है वह 'गणितानन्द' है किन्तु, परब्रह्म अगणितानन्द है। वह पूर्ण सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम है।[1] वह रसस्वरूप तथा पूर्ण है। वह माया से अलिप्त अतः नितान्त शुद्ध है। इसलिए वह शुद्धाद्वैत है।[2]

सृष्टि ब्रह्म की आत्म कृति है। यह भगवान् के मन में रमणेच्छा उत्पन्न होने पर ही सृष्ट होती है। रमणेच्छा के जाग्रत होने पर सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम अपने आनन्दांश के अतिरिक्त सत् और चित् से क्रमशः जीव और जगत् को उत्पन्न करता है। इस व्यापार में लीला ही मुख्य हेतु है माया नहीं। यह लीला ब्रह्म द्वारा क्रीड़ा (विलास) करने की इच्छा का ही नाम है।[3] इसका कोई प्रयोजन नहीं, स्वयं लीला ही इसका प्रयोजन है।

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत दर्शन भक्ति साधना में 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है। पुष्टि का अर्थ है—भगवदनुग्रह।[4] जीव जब तक भगवान् का अनुग्रह प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। पुष्टिमार्गी भक्ति के ४ भेद हैं—(१) मर्यादा पुष्टि (२) प्रवाह पुष्टि (३) पुष्टि पुष्टि और (४) शुद्ध पुष्टि। शुद्ध पुष्टि भगवान् कृष्ण के साथ परम प्रेम पर ही निर्भर है। पुष्टि भक्ति ही रागात्मिका भक्ति है। यही प्रेमलक्षणा भक्ति है।

भगवदनुग्रह से जीव को भगवान् अच्छे लगने लगते हैं। तदुपरान्त वह भगवान् के स्वरूप परिचय के लिए ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् प्रेमाभक्ति का उदय होता है। इसकी ३ स्थितियाँ हैं—(१) प्रेम (२) आसक्ति (३) व्यसन। व्यसन प्रेम की परिपुष्ट दशा है। पुष्टिमार्गी भक्ति की विशेषता सर्वतोभावेन जीव का कृष्णार्पण है।—

श्रीकृष्ण शरणं मम—यही मूल मंत्र है।

पुष्टिभक्ति की इस माधुर्यमयी स्थिति तक पहुँचना भावना से ही सम्भव है। भावना के अभाव में बुद्धि द्वारा प्रभु स्मरण सध नहीं सकता। यह भावना श्री हरिराय जी के अनुसार ('स्वरूप निर्णय') ३ प्रकार की विख्यात है—[5]

१ तत्त्वदीप निबन्ध—सर्वनिर्णय प्रकरण श्लोक— १६ पर आधारित।

२ शुद्धाद्वैत मार्तण्ड—२८।

३ सुबोधिनी (भागवत, तृतीय स्कन्ध)

४ 'पोषणं तदनुग्रहः'—भागवत—२/१०

५ डा० श्यामनारायण पाण्डेय— हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना' (पृ० ६४–६५)

(१) स्वरूप भावना (२) लीलाभावना (३) भाव भावना । 'स्वरूप-भावना' के द्वारा भगवान् का हृदय में प्रत्यक्ष अथवा नाद के द्वारा प्रवेश होता है । 'लीला भावना' से भक्त भगवान् के लीलामय रूप को प्राप्त कर लेता है । और, 'भाव भावना' से तो अन्तःकरण भगवत्काम से युक्त हो जाता है । इस दशा में भक्त के सारे व्यापार अपने आराध्य देव के प्रति ही होते हैं । उसे देह की सुधि नहीं रहती और लौकिकता का पूर्ण रूपेण विनाश हो जाता है । अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास के शब्दों में–[१]

'जो कोइ भरता भाव हृदय धरि ध्याव,
नारि पुरुष कोउ होइ श्रुति ऋचा गति ना पावै ।'

अतः श्रीकृष्ण के प्रति शरणागति और अनन्य भक्ति ही वल्लभ सम्प्रदाय का चरम लक्ष्य है । 'समर्पण में इस मार्ग का प्रारम्भ होता है और पुरुषोत्तम भगवान् के स्वरूप का अनुभव और लीला सृष्टि में प्रवेश हो जाने पर अन्त ।'[२]

आसक्ति और आत्मार्पण विशुद्ध अन्तःकरण के भाव व्यापार हैं । इसी भाव व्यापार के बल पर वैष्णव भक्तों ने विभाव कृष्ण को भी (अपनी आन्तरिक भावुकता से रंजित कर) भावात्मक स्वरूप में रूपायित कर डाला है । इसके परिणाम स्वरूप जहाँ पुष्टिमार्गीय भक्ति में गोपियों की माधुर्यासक्ति का मधुर वितान हुआ वहाँ दूसरी ओर कृष्ण चरित का लोक रंजनकारी स्वरूप विन्यास हुआ । लीलागान की परम्परा तीव्र वेग से उमड़ पड़ी । और, अष्टछाप के भक्त कवियों ने भगवान् कृष्ण की अष्टकालीन लीलाओं के आधार पर नित्नूतन भजन कीर्तन रचकर ब्रजभाषाकाव्य के भाण्डार को भर दिया ।

वल्लभाचार्य के अनन्तर उनके कनिष्ठ पुत्र स्वामी विट्ठलनाथ (आचार्यपद सन् १५६३) जी के संरक्षण में इस सम्प्रदाय की पूरी श्री सवर्द्धना हुई । 'अष्टछाप' भक्ति परम्परा के पूर्ण संगठन का श्रेय इन्हीं को है । अष्टछाप के भीतर ८ भक्त कवि आते हैं जिनके ऊपर कृष्ण की अष्टकालीन लीलाओं (मंगलादर्शन, शृंगार, गोचारण, राजभोग, उत्थापन भोग, सन्ध्या शयन) के सम्पादन, सेवा और मण्डन का दायित्व है । नित्य कीर्तन ऋतूत्सव और वर्षोत्सव इस सेवा के प्रमुख उपलक्ष हैं । इन अष्टकवियों में क्रमशः कुम्भनदास, सूरदास, कृष्णदास (अधिकारी) और परमानन्ददास स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे । गोविन्ददास, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास श्री विट्ठलनाथ के शिष्य थे ।

विट्ठलनाथ जी ने इन आठों प्रतिभाशाली कवियों को अष्टछाप रूपी भक्ति माल में गूँथकर भगवान् कृष्ण की सलोनी ग्रीवा में डाल दिया । इनके गीतों द्वारा जहाँ सम्पूर्ण मध्यदेश में कृष्णभक्ति की लहर दौड़ गयी वहीं इनके भक्ति गदगद उद्गारों में कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप का कायाकल्प भी हुआ । इनमें सूर, नन्द और परमानन्द के गीत अष्टछाप की अष्टतन्त्री का मधुरतम झंकार हैं ।

स्वामी विट्ठलनाथ योग्य पिता के योग्य पुत्र थे । उन्होंने अपने पिता स्वामी वल्लभाचार्य के पाण्डित्य भागवत प्रेम शास्त्र प्रणयन और सम्प्रदाय संगठन की शक्ति को

१ सूरसागर–३६४ (वे० प्र०)
२ सूरदास–(पृ० १०१ १०२)–आचार्य रा० च० शुक्ल

पूर्णाहुति की। अष्टछाप की कवि गोष्ठी में चार चांद लगा दिया। 'अणुभाष्य' के अंतिम डेढ़ अध्यायों की पूर्ति की। 'शृङ्गार रस मण्डन' तथा 'स्वामी याष्टक' जैसे ग्रंथों का प्रणयन कर वल्लभ सम्प्रदाय को राधा कृष्ण की मधुरोपासना से रसरंजित किया। वल्लभाचार्य ने गोपी-कृष्ण प्रेम की अपेक्षा बालकृष्ण की भक्ति को ही मुख्यतः ग्रहण किया था। किन्तु समय के प्रभाव से उनके सुपुत्र विट्ठलनाथ ने गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण प्रेम को भी पूर्ण प्रोत्साहन दिया। फलतः अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में कृष्ण की बाल, किशोर और यौवनलीलाओं की त्रिवेणी प्रवाहित हुई।

१६ वीं शती की जन भावना के अनुरंजन का जैसा व्यापक अनुष्ठान इस सम्प्रदाय के आचार्य और कवियों ने किया, वैसा किसी और ने नहीं। राजनीतिक पराजय से उद्भूत उत्तरीभारत की जनता की कुंठित मनोवृत्ति भगवान् की अखण्ड आनन्द लीला में ऐसी आत्मलीन हो गयी कि लोक चित्त से उसका अस्तित्व तक मिट गया। स्वामी वल्लभाचार्य का 'कृष्णाश्रय' उस विगत युग बोध का साक्षी है। इसमें उन्होंने देश काल की विपरीत दशा को देखते हुए मर्यादामार्ग (वेद मार्ग) के अनुसरण को कठिन बतलाया है। इसे कठिन जान कर ही उन्होंने भागवत की प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रचार किया।[१] वल्लभाचार्य के अनुयायी सूरदास भी उस परिस्थिति से अनवगत न थे।[२] उन्होंने भी जनता की विकृत मनोवृत्ति के शोधन के लिए कृष्णाश्रय ग्रहण किया था। दक्षिण के वैष्णव आचार्यों के भक्ति प्रचार के लिए तत्कालीन परिस्थिति ने उर्वर क्षेत्र का काम किया। अतः १६ वीं शती के भक्ति आन्दोलन में उत्तर की सामयिक परिस्थिति और दक्षिण के भक्ति मतवाद दोनों को कारण कार्य सम्बन्ध रूप में स्वीकार किया जाता है। इनमें कृष्ण भावना का सर्वाधिक प्रसार सामयिक चेतना का ही मनोवैज्ञानिक संगति प्रदान करता है।

---

१ आचार्य रा० च० शु०—सूरदास

२ विस्तृत विवरण के लिए देखिए—'उस युग का समाज और सूरदास की साधना' सूर साहित्य (पृ० ९२)—आचार्य ह० प्र० द्विवेदी।

द्वितीय अनुच्छेद

'आचार्यों के श्रीकृष्ण'

(१) रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत में श्री लक्ष्मीनारायण उपास्य हैं। नारायण सुगंध, सौन्दर्य, सौकुमार्य, यौवनादि असंख्य गुणों के आगार हैं। यही वासुदेव हैं। इन्हें ही परब्रह्म रूप में अभिहित किया गया है। इस मत में गोपाल कृष्ण का नामोल्लेख नहीं हुआ है। किन्तु रामानुज श्रीरंगम् की भक्ति परम्परा के प्रतिनिधि आचार्य थे और यहाँ उन्होंने दैनिक मंगलाशासन में आण्डाल के भक्ति गीतों का प्रवेश भी कराया था। साथ ही इस बात के भी प्रमाण हैं कि भगवान् भाष्यकार रामानुज हमेशा आण्डालकृत 'तिरुप्पावै' के पदों का अनुसंधान (भावविभोर) किये रहते थे। इसी से उन्हें 'तिरुप्पावै जीयर' की उपाधि भी मिली थी।[१] उक्त कथन में 'भाष्यकार' पद ध्यातव्य है।

तिरुप्पावै की १८ वीं गाथा में मार्गशीर्ष व्रतधारिणी गोपी भावापन्न गोदादेवी (आण्डाल) लक्ष्मी स्वरूपा नीलादेवी ('नप्पिन्नै०– राधादेवी का दक्षिणी संस्करण) का उत्थापन करती है। इसकी टीका (हिंदी टीकाकार-संपत्कुमाराचार्य) में नीलादेवी के 'नप्पिन्नै' नाम पर विचार करते हुए कहा गया है कि[२]—

'इन नीलादेवी का द्राविडी नाम है नप्पिन्नै। वैकुण्ठे तु परे लोके श्री सहायो जनार्दन। उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवित परमेश्वर॥ इत्यादि प्रमाणों में एवं तदनुसार श्री रामानुजस्वामी जी की शरणागति गद्यस्य 'एवंभूत भूमि नीलानायक' इस श्री सूक्ति में उपवर्णित नीलादेवी के अंशतया अवतीर्ण होने से नप्पिन्न नीला कहलाती हैं। आप, यशोदा जी के भाई कुम्भ की पुत्री थीं। सात वृषभों का दमन कर श्रीकृष्ण ने उनसे परिणय किया।

उपर्युक्त उद्धरण के मध्य की रेखांकित पंक्तियों से सम्बद्ध रामानुज स्वामी के नाम को देखकर यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि इन्होंने 'तिरुप्पावै नामक (आण्डाल रचित) अपनी अति प्रिय पुस्तक का शरणागति' (गद्यत्रय का एक अंश) नाम से श्रीभाष्य भी किया होगा। अपनी इस धारणा की पुष्टि के लिए एक दूसरा बृहद् उद्धरण देना यहाँ नितान्त प्रासंगिक है। टीकाकार इसी के आगे कहता है[३]—

'सम्प्रदायवेत्ता इस गाथा का दो बार अनुसंधान करते हैं और कहते हैं कि श्री रामानुज स्वामी जी इसका बहुत आदर करते थे। आप भिक्षा मांगने जाने के वक्त इस तिरुप्पावै दिव्य प्रबंध का अनुसंधान करते थे। एक दिन ऐसे करते आप अपने गुरु श्री महापूर्ण स्वामी जी के घर पहुँच गये। घर का महाद्वार बन्द था। परन्तु गुरु पुत्री अत्तुलाय्

१ 'तिरुप्पावै–श्री व्रतप्रबन्ध भूमिकाभाग (पृ० ७) संपादक श्री मदण्णंगराचार्य (कांचीपुरम्)

२ वही–(पृ० ११४)

३ 'तिरुप्पावै–श्रीव्रत प्रबंध'–(पृ० ११७)–संपादक-श्रीमदण्णंगराचार्य (कांचीपुरम्)

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कुछ विद्वान् माध्व मत और चतन्य मत को एक मानते हैं, जो ठीक नहीं। इन दोनों में जो मूलभूत पार्थक्य है, वह है इन दोनों के आराध्यदेव और उपजीव्य ग्रन्थ का अन्तर। मध्वाचार्य के आराध्यदेव विष्णु हैं जब कि चैतन्य देव के श्रीकृष्ण। मध्वाचार्य का उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत है जब कि चैतन्य का श्रीमद्भागवत। चैतन्य मत मे श्रीकृष्ण के मधुर स्वरूप की आराधना होती है जब कि माध्व मत में भगवान् विष्णु के परमात्मस्वरूप (ऐश्वर्यस्वरूप) की सेवा की जाती है। इस दृष्टि से निम्बार्कमत चैतन्य मत के विशेष निकट है।

कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप संवर्द्धन में माध्व मत का उल्लेखनीय योग नहीं है। फिर भी मध्वाचार्य भगवान् कृष्ण की दुष्टदलनकारी लीलाओं के प्रति आस्थाशील थे। उन्होंने ऐसे कई मन्दिर बनवाये जिनमे कालियदमन कृष्ण की लीला मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।[१]

(३) निम्बार्क के द्वैताद्वैत मत मे सर्वप्रथम राधा कृष्ण को उपास्य रूप में प्रतिष्ठित किया गया। श्रीकृष्ण के भावात्मक स्वरूप की अन्यतम प्रेरक शक्ति श्रीराधा का कृष्ण के साथ प्रथम प्रथम सम्प्रदाय प्रवेश (दार्शनिक समावेश) इसी मत मे हुआ। अत यहाँ कृष्ण अकेले नहीं हैं। वह युगलरूप हैं। वृषभानु नन्दिनी राधा अपनी सहस्रों सखियों के साथ इनके वामांग मे विराजमान हैं।–[२]

अगे तु वामे वृषभानुजा मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखी सहस्रः परिसेवितां सदा स्मरेम देवी सकलेष्टकामदाम्॥ ५॥

अर्थात् वृषभानुनन्दिनी ह्लादिनी राधा श्रीकृष्ण के वामांग में विराजमान हैं। श्रीकृष्ण के अनुरूप ही उनका श्री सौभग है। वह सहस्रों सखियों द्वारा सदासेवित हैं तथा समस्त कामनाओं और इच्छाओं को फलप्रद करने वाली हैं।

राधा कृष्ण युगल-मूर्ति की यह प्रतिष्ठा वैष्णव साधना और साहित्य में विशिष्ट महत्त्व की अधिकारिणी है। निम्बार्क ने 'प्रातः स्मरणस्तोत्र' में राधा कृष्ण के सम्बन्ध मे लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'कृष्णाष्टक', 'राधाष्टक' आदि अष्टकों की भी रचना की थी।[३]

उनकी दश श्लोकी के क्रमश ४, ५, ८ और ९ सम्यक् ४ श्लोकों मे कृष्ण के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। इनका विवरण इस प्रकार है–

४ था श्लोक–शुद्ध अवयवों वाला सर्वगुण सम्पन्न कृष्ण
५ वाँ श्लोक–राधाकान्त कृष्ण
८ वाँ श्लोक–भक्तवत्सल कृष्ण
९ वाँ श्लोक–प्रेम वत्सल कृष्ण।

यह प्रेम स्वरूप ही इस मत के कृष्ण का अन्तरंग स्वरूप है। भक्ति रस का सूक्ष्म संकेत यद्यपि श्री मद्भागवत में भी है और आगे चलकर गौडीय वैष्णवों ने तो भगवान्

१ प० ब० उपाध्याय–'भागवत सम्प्रदाय' (पृ० २२२)
२ दश श्लोकी ('वेदान्त रत्न मंजूषा') प्रथम कोष्ठ।
३ 'श्री रा० क्र० वि०'–(पृ० १८२)–डॉ० श० भू० दा० गुप्त।

कृष्ण को भक्तिरस राज ही सिद्ध कर दिया है। किन्तु, इसका प्रामाणिक उल्लेख स्वयं निम्बार्क ने किया था। इसका संकेत दश श्लोकी' के अन्तिम (१०वाँ) श्लोक में मिलता है। यह चर्चा वेदान्त पारिजात' की सिद्धान्त-रत्नांजलि' टीका में भी मिलती है।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि निम्बार्क के कृष्ण 'युगल स्वरूप' और 'रस स्वरूप' इन दोनों ही रूपों में अवतरित हुए थे। उक्त दोनों रूपों का प्रबल प्रभाव काव्य के कृष्णचरित पर पड़ा। जयदेव से लेकर सूरदास तक सभी कृष्ण काव्य रसिक का पर पूर मधुरजा करते रहे। राधा कृष्ण की युगल भावना तो व्रजभूमि की भक्ति भावना, वैष्णव दर्शन और प्रेम काव्य की प्रेरणा शक्ति ही बन गयी। अतः कृष्ण भावना के चतुर्विध प्रसार में इस मत का दुर्लभ योगदान है।

दाम्पत्यस्वरूप—इसके पूर्व भावधारा में कृष्ण 'नचिन्त' मत में राधा कृष्ण रहा। कृष्ण भक्ति-काव्य का सर्वाधिक प्रेरक पुराण श्रीमद्भागवत के कृष्ण गोपी वल्लभ कृष्ण हैं। राधा वहाँ भी रहस्य के झीने आवरण को हटाकर प्रकट नहीं हो पाती। राधा-कृष्ण की केलि क्रीड़ा का सर्वाधिक उत्तान चित्रण करने वाले ब्रह्मवैवर्तपुराण की प्राचीनता सर्वथा पूर्ण नहीं है। फिर राधा माधव की रह केलि का सुललित विवरण प्रस्तुत करने वाला संस्कृत गीतिकाव्य 'गीतगोविन्द' भी १२वीं शती के अन्तिम चरण में प्रणीत है।[2] इसमें जयदेव कृत राधा कृष्ण प्रेम व्यंजना का मधुरिमा को देखकर विद्वानों को विस्मय होता है। किन्तु इससे अधिक विस्मय की बात यह है कि उनसे कुछ पूर्व ही[3] निम्बार्क के द्वैताद्वैत मत में राधा-कृष्ण अपने सम्पूर्ण माधुर्य में विराजमान हैं। यदि यह बात ठीक है कि जयदेव निम्बार्क के शिष्य थे[4] तो यह भी सत्य है कि निम्बार्क से ही सम्बल पाकर जयदेव ने गीत गोविन्द में राधा कृष्ण की श्रृङ्गार लीला का चित्रण किया। इससे कालान्तर में विद्यापति प्रभावित हुए, किन्तु निम्बार्क जिन राधा कृष्ण का वर्णन करते हैं वह पूर्णतः दाम्पत्य प्रेम की महिमा से मण्डित हैं। ऐसे में, उन्हें प्रकृतिपुरुष का रसमय विग्रह कहा जा सकता है। किन्तु, जयदेव और विद्यापति के राधा कृष्ण इस शास्त्रीय मर्यादा से स्वभावतः वंचित हैं। वे काव्य के नायक नायिका अधिक हैं। इस रूप में उनकी राधा परकीया नायिका है, कृष्ण दक्षिण ही नहीं, धृष्ट नायक भी हैं।

अतः पूर्वी कवियों के नायक कृष्ण की अपेक्षा व्रज भक्तों के (सूर आदि के) युगल पुरुष, कृष्ण निम्बार्क के कृष्ण के सच्चे प्रतिनिधि हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त कवियों के कृष्ण भी निम्बार्क की ही भाँति पूर्ण अनुकूल (स्वकीय) हैं।

परब्रह्म कृष्ण—इस सम्प्रदाय में ब्रह्म मूलतः सगुण हैं। फिर भी इनके २ रूप हैं— (१) निर्विकार रूप और (२) अखण्डानन्द रूप। अन्तिम रूप ही स्थायी है। इन द्विविध

---

१ डॉ० मलिक मुहम्मद—'त० प्रबन्धम् और हि० कृष्ण काव्य' (पृ० ७३)
२ प० ब० उपाध्याय—भा० वा० श्री रा'० (पृ० २४४)
३ डा० रामकुमार वर्मा—हि० सा० आ० इ०' (पृ० ७१६)
४ वही वही (पृ० २९९)

तत्त्वों के एकत्र सन्निवेश मे ही इस सम्प्रदाय मे परमात्मा का स्वरूप द्वताद्वत माना गया है। यही परमात्मा कृष्ण है। यही स्वय ब्रह्म हैं। और, शेष सब इन्ही के अग हैं। अगी होने के कारण इन्ह ही परब्रह्म, भगवान्, नारायण पुरुषोत्तम आदि नामा से अभिहित किया गया है। श्रीराधा इनकी अर्द्धागिनी और ह्लादिनी शक्ति हैं।

श्री निम्बार्क के शिष्यो म अन्यतम श्री औदुम्बराचार्य ने अपने मान्य ग्रन्थ, 'औदुम्बर सहिता' म राधा कृष्ण युगल-तत्त्व का सुविस्तृत विवेचन किया। उनके अनुसार राधा कृष्ण का यह युग्म नित्य वृन्दावन में नित्य विलास रत है। राधा गोविन्द दो रूपो में दीख पडने पर भी तत्त्वत एक और अभिन्न हैं। जैसे सरित्प्रवाह पर लोटती हुई ऊर्म्मिया बाह्यत भिन्न लगकर भी परस्पर अविच्छिन्न हैं, उसी प्रकार राधा और कृष्ण समभाव से भावित हो रहे हैं–[१]

जयति सतत माद्य राधिका कृष्ण युग्म।
अत सुकृत निदान यत् सदैविह्य मूलम्॥

राधा और कृष्ण की यह जोडी सदा नित्य वृन्दावन म नित्य विहार रत रहती है। यह सच्चिदानन्द रूप प्राय अगम्य है। विरले ही सुजन इसे जानते हैं। राधा कृष्ण कल्लोला की भाति समरूप हैं।

औदुम्बराचाय ने राधा कृष्ण नाम महिमा के साथ राधा-कृष्ण के समवेत पूजन पर भी विशेष जोर दिया। उनके अनुसार इन दोना के 'साहित्य पूजन' (एक साथ पूजन) से ही परम गति की प्राप्ति सम्भव है।

समासत निम्बार्क मत कृष्ण के युगलरूप म आस्थाशील है तथा कृष्ण की वामाग-विहारिणी राधा उनकी ह्लादिनी शक्ति हैं। इस सम्प्रदाय के हिन्दी कवियो म इनका यही स्वरूप चित्रित हुआ है।

(४) वल्लभाचाय के पुष्टिमाग मे श्रीकृष्ण को **पुरुषोत्तम** कहा गया है। यह स्वय भगवान् हैं। यह विष्णु के वकुण्ठ से भी ऊपर जो नित्य गोलोक है उसम अपनी नित्य लीला सहचरी के साथ लीला रत हैं। श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं, श्री राधिका स्वामिनी इनकी शक्ति हैं। जहाँ श्रीकृष्ण की सत्ता है, वही श्रीराधा भी विराजमान है। दोनो का पल भर भी वियोग नही होता। श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द हैं रस घन विग्रह हैं, स्वामिनी राधा जी के प्रिय पुरुषोत्तम हैं।

ब्रह्म के पूर्वोक्त ३ स्वरूपो म सवश्रेष्ठ परब्रह्म रूप है। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जो सब दिव्य गुणो से सम्पन्न होकर 'पुरुषोत्तम कहलाते हैं'।[२] ये गुण ३ हैं–सत्, चित्, और आनन्द। ब्रह्म इन तीनो का सदा आविर्भाव तिरोभाव करता रहता है। जड़ म सत् का आविर्भाव और चित् और आनन्द का तिरोभाव रहता है। जीव मे सत् और चित् का आविर्भाव और आनन्द का तिरोभाव रहता है। किन्तु ब्रह्म इन तीनो से सयुक्त पूर्ण

१ प० ब० उपाध्याय–'भा० धा० श्री रा०' (पृ० ७३) म उद्धृत।
२ आचाय रा० च० शु०–'हि० सा० इ०' (पृ० १५५)

सच्चिदानन्द स्वरूप होता है। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव होने के कारण ही ब्रह्म पुरुषोत्तम कहलाता है।[१] यही रूप सर्वश्रेष्ठ है। इस रूप का आविर्भाव ३ शक्तियों से होता है–संधिनी संवित और ह्लादिनी। संधिनी से सत् का, संवित से चित् का और ह्लादिनी से आनन्द का आविर्भाव होता है। अक्षर ब्रह्म म आनन्द किंचित तिरोधान रहता है। किन्तु, पुरुषोत्तम आनन्द परिपूर्ण हैं। इसी हेतु वे सभी प्रकार की लीलाएँ करने म समर्थ हैं। ये लीलाएँ नित्य गोलोक मे निरन्तर होती रहती हैं। इस गोलोक म यमुना, वृन्दावन, कुञ्ज आदि सब नित्य हैं। भक्ति मार्ग म यह पुरुषोत्तम रूप ही गृहीत हुआ है। उसी के आश्रय में वृन्दावन की लीलाओं का मधुर विन्यास हुआ है। अत वह लीला पुरुषोत्तम है। उपर्युक्त पुरुषोत्तम स्वरूप को एक तालिका द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

ब्रह्म	गुण	शक्ति	स्वरूप
जगत ब्रह्म	सत्	संधिनी	जड (जगत)
अक्षर ब्रह्म	चित्	संवित्	जीव (पुरुष)
परब्रह्म	आनन्द	ह्लादिनी	पुरुषोत्तम

वल्लभाचार्य ने 'श्रीकृष्ण प्रेमामृत' स्तोत्र मे पुरुषोत्तम का अनेकश स्मरण किया है तथा 'श्रीकृष्णाष्टक' मे श्री राधिका रमण, राधिका वल्लभ, आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। इन्हे देखते हुए यह अनुमानित होता है कि महाप्रभु राधारमण कृष्ण के भावात्मक स्वरूप से भलि भांति परिचित थे।

पुष्टिमार्ग साक्षात् पुरुषोत्तम के श्री विग्रह से निकला है। इसीलिए इसम लीला पुरुषोत्तम के मधुर स्वरूप और अवतार लीला का ही यशोगान किया जाता है। पुरुषोत्तम के दो रूप हैं—(१) लोक वेद प्रथित और (२) लोकवेदातीत। अन्तिम रूप ही पुष्टिमार्ग का प्राणाधार है। पुष्टि भक्ति मर्यादा भक्ति (वैदिक या वैधी) नहीं है। यह रागात्मिका भक्ति है। स्वभावत इसमे भगवान् भी रागात्मक हैं। इनम राग मार्ग और भाव की प्रधानता है। इनका मानवीय मधुर भावो से सीधा सम्बन्ध है। अत लीलापुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को भावात्मक कहना स्वाभाविक ही है।

श्रीकृष्ण—वल्लभ सम्प्रदाय म श्रीकृष्ण परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम अपनी आनन्दविधायिनी लीला का प्रसार करने के निमित्त ही श्रुतियों के प्रार्थनानुसार, कृष्ण रूप

१ प्रमेय रत्नार्णव' (पृ० ७९)

मे अवतरित हुए। श्रुतियाँ ही गोपी तथा अन्य लीला परिकर रूप मे ब्रज में आविर्भूत हुईं।[1] इस प्रकार लीला विस्तार के हेतु ही पुरुषोत्तम का नित्यगोलोक कृष्ण का ब्रज मण्डल बन कर भूतलपर अवतरित हुआ।

लीला कृष्ण की अन्तरग विशेषता है। इसीलिए उन्हे लीलापुरुषोत्तम अथवा लीला धाम भी कहा जाता है। *ये लीलाएँ मानवीय हैं।* ये श्रीकृष्ण के अवस्थानुसार बाल, किशोर और यौवन काल की सहज वृत्तियो से परिचालित हैं। बाल्यकाल मे वात्सल्य, किशोर म सख्य और यौवन म यौवन लीलाओ की प्रधानता हैं। किन्तु, कृष्ण सामान्य मानव न होकर भगवान् हैं। अत वे कभी-कभी अवस्था-सुलभ नियमो और आचरणो का अतिक्रमण भी कर जाते हैं, जैसे बाल्यकाल मे किशोर वृत्ति। यही उनका विरुद्ध धमत्व है।

कृष्ण की ब्रज लीला म पग पग पर इस विरुद्ध धमत्व के दशन होते हैं। इस दृष्टि से उनकी बाल लीला सर्वाधिक विलक्षण है। बाल लीला म भयकर असुरो के वध तथा गोपिया के साथ आँख मिचौनी (माखन चोरी प्रसग म) इसके दृष्टान्त हैं। वल्लभाचाय ने इसी बाल भाव को परम उपास्य माना है। किन्तु उनके सुपुत्र स्वामी विट्ठलनाथ ने उनके बाल रूप म भी मधुर भाव को ही अगीकार किया।[2]

भावो और रसो की दृष्टि से कृष्ण लीला को मुख्यत ३ वर्गों म विभक्त कर सकते हैं—वात्सल्यरस, सख्यरस और माधुयरस। पूर्वोक्त दो वल्लभ मत म विशेष ग्राह्य हैं। किन्तु, विट्ठलमत मे अन्तिम माधुयरस का ही चरम विन्यास हुआ है। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि वल्लभ सम्प्रदाय म भगवान कृष्ण के **लीलावतार** और तत्रापि **रसावतार** की मधुर स्वरूप प्रतिष्ठा हुई है।

गोपी कृष्ण—गोपिया कृष्ण लीला की आश्रयभूता हैं। वस्तुत यह गोपी भाव निखिल पुष्टिमार्गी भक्ति का ही प्राण है। अनन्य आत्म समपण या कृष्णापण इसका आधार-भूत भाव है। और यह गोपिया मे सर्वाधिक होने के कारण गोपियाँ इस भाव भक्ति की आधार शिला हैं। इसके अतिरिक्त इस भक्ति माग मे 'गोपी तत्त्व' लिंग प्रधान न होकर भाव प्रधान है। पुरुष भक्त भी सवतोभावेन कृष्णापण की भाव दशा म गोपी भाव को प्राप्त कर सकता है। यह दूसरी बात है कि पुरुष की पुरुष वृत्ति की अपेक्षा यह नारी की नम्र वृत्ति के अधिक अनुकूल है। *अन्यथा, भाव दृष्टि से दोनो ही समान हैं। इसीलिए अष्ट* छाप के अष्टसखा जब गोचारण आदि सख्य लीला स निवृत्त हो कृष्ण की शृङ्गार और भोग लीलाओ म प्रवृत्त होते थ तो वे ही अष्टसखियो के प्रतीक बन जाते जाते थे।[3] वल्लभ-मत म गोपी भाव मुख्य है, किन्तु विट्ठलमत म राधा भाव की चरम महिमा है। इसे हम आगे देखेंगे। सम्प्रति, गोपी भाव के स्वरूप का निदशन अपेक्षित है क्योंकि यह कृष्ण भावना का अन्तरग पक्ष है।

---

१ प० नन्ददुलारे वाजपेयी—'महाकवि सूरदास' (पृ० ५७)

२ उनका 'गुप्त रस ग्रन्थ' (नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा सगृहीत यानिक सग्रह, वेष्टन स० २६क/४३।।) द्रष्टव्य।

३ डॉ० दीनदयालु गुप्त—'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' (पृ० ५०६)

वल्लभाचार्य की 'सुबोधिनी' के अनुसार गोपियों के ३ वर्ग हैं—(१) अन्यपूर्वा (२) अनन्यपूर्वा और (३) सामान्या।

(१) अन्यपूर्वा—ये गोपियाँ विवाहित थी किन्तु, इनकी आसक्ति केवल कृष्ण में ही थी। इन्होंने अपने विवाहित पतियों को छोड़ 'जार' भावेन श्रीकृष्ण के साथ प्रेम किया था।

( ) अनन्यपूर्वा—(क) कुमारियाँ—इन्हे कृष्ण के साथ विवाह करने की साध हमेशा बनी रही। किन्तु ये जीवन भर कुमारियाँ ही रह गयी।

(ख) विवाहिता—इन्होने कृष्ण के साथ विवाह किया था। इसलिए ये 'ऊढ़ा' कहलायी। दोनो प्रकार की गोपियाँ 'स्वीया' हैं।

(३) सामान्या—ये यशोदा की भाँति कृष्ण के प्रति मातृ भाव रखती थीं। इन्हें महारास में प्रवेश न हो सका। उपर्युक्त दो प्रकार की गोपियाँ (अन्य और अनन्य) ही रास की अधिकारिणी हुई।

उपर्युक्त गोपियों की कृष्णोपासना में भी भाव दृष्टि से ३ स्तर हैं और इस आधार पर कृष्ण भावना के भी ३ स्तर हो जाते हैं—

(१) प्रथम भाव—जार भावेन कृष्णोपासना—यह भक्ति का उच्चतम सोपान माना गया है। इसके नायक वृन्दावन विहारी चितचोर कृष्ण हैं।

(२) द्वितीय भाव—मर्यादापूर्वक कृष्णोपासना—यह भक्ति का उच्चतर सोपान है। इसमें नायक पति कृष्ण हैं।

(३) तृतीय भाव वात्सल्यरतिपूर्वक कृष्णोपासना—यह भक्ति का उच्च सोपान है। इसके नायक बाल कृष्ण हैं।

यह प्रारम्भिक भाव है जहाँ से साधक पुष्टिभक्ति की प्राप्ति के लिए क्रमश अग्रसर होता है। यही कारण है कि आचार्य वल्लभ ने बाल कृष्ण की वात्सल्य लीला पर विशेष बल दिया। किन्तु, 'जार' भाव की कृष्णोपासना को भक्ति का उच्चतम सोपान सिद्ध करने वाले वल्लभाचार्य की श्रीकृष्ण के भावात्मक स्वरूप में कितनी व्यापक निष्ठा थी, यह तो अष्टछाप काव्य धारा के अनुशीलन से भलीभाँति विदित हो जाता है। इन भक्तों ने कृष्ण के प्रति रूपासक्ति, वात्सल्यासक्ति, सख्यासक्ति कान्तासक्ति और परमविरहासक्ति आदि सभी भाव दशाएँ व्यक्त की हैं। किन्तु इनमें रूपासक्ति, के व्यंजक पदों की प्रचुरता है। वृन्दावन के वेणु वादक कृष्ण के सम्बन्ध में गोपियों की रूपासक्ति सूर के इस पद में पूर्णत व्यक्त हुई है[१]—

सुन्दर मुख की बलि बलि जाउँ।
लावनि निधि गुन निधि सोभा निधि निरखि निरखि जीवत सब गाउँ।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावँहि ठाउँ।
तामें मृदु मुसुक्यानि मनोहर न्याइ कहत कवि मोहन नाउँ।

---

१ सूरसागर—६६३/१२८१

नन रीन दे दे सब हरत ता छबि पर बिनु मोल बिकाउँ।
सूरदास प्रभु मदनमोहन छबि सोभा की उपमा नहिं पाउँ॥

वल्लभ भक्त परमानन्द दास के शब्दों मे कृष्ण का रसिक शिरोमणि स्वरूप इस प्रकार ध्वजित हुआ है–[1]

रसिक सिरोमनि नदनदन।
रसमय रूप अनूप विराजित गोपवधु उरु शीतल चन्दन।
नैननि मे रस चितवनि म रस बातनि म रस ठगत मनुज पसु।
गावनि म रस मिलवनि म रस बेनु मधुर रस प्रकट पावन जग।
जिहि रसमत्त फिरत मुनि मधुकर सो रस सचित ब्रज वृन्दावन।
स्याम धाम रस रसिक उपासति प्रेम प्रवाह सुपरमानद मन॥४१॥

साराशत वल्लभ मत म माधुर्य भक्ति (गोपी प्रेम) की महिमा के कारण कृष्ण का ब्रजेश्वर रूप, मथुरावासी और द्वारिकावासी कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्त्वशाली है। यही वह पूर्णतम तथा परिपूर्ण रसरूप हैं। और, इसका कारण यह है कि इस रूप म भगवान् की लीलाएँ भक्तो के एकान्त आह्लाद के विशेष अनुकूल हैं। फिर भी वल्लभ मत म श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि भाव सख्य ही है जब कि विट्ठल मत मे यह भाव प्रतिनिधि रूप से कान्त या मधुर है। यह आगे द्रष्टव्य है।

राधा कृष्ण—वल्लभ मत म अन्य भावो की अपेक्षा कृष्ण का कान्त भाव या माधुर्य भाव गोपी प्रेम तक ही सीमित रहा। किन्तु, विट्ठलमत म यह भाव राधा प्रेम या स्वामिनी प्रेम के रूप मे पुजीभूत हो गया। विट्ठलनाथ जी की साधना और तत्प्रभावित साहित्य मे राधाकृष्ण अपनी पूरी महिमा में विराजमान हैं।

वल्लभाचार्य के नाम से प्रचलित स्तोत्र ('श्रीकृष्णप्रेमामृत') और अष्टक (श्री कृष्णाष्टक आदि) सग्रहो मे श्रीराधिकावल्लभ कृष्ण के फुटकर उल्लेख मिलते हैं।[2] किन्तु, इनकी प्रामाणिकता असदिग्ध नही है। इसके अतिरिक्त विद्वान् वल्लभाचार्य के किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार राधा का वर्णन नही पाते।[3] हाँ, वहा गोपी भाव के आश्रय से कान्ता सक्ति या माधुर्यभक्ति का स्पष्ट विधान अवश्य है। किन्तु विट्ठलनाथ के नेतृत्व म युगल-स्वरूप का समाराधन तथा पुरुषोत्तम कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति श्रीराधा का सविशेष अर्चन पुष्टिमार्गी साधना का एक अनिवार्य अग ही बन गया। उधर सूर, कुम्भन आदि प्राचीन अष्टछाप कवियो मे युगलवाद का पूर्ण विलास है। प्रश्न है कि राधा कृष्ण की युगलोपासना का इतना विपुल प्रचार इस मत म अचानक कैसे हो गया? क्या युगल-साधना का समावेश स्वामी विट्ठल नाथ ने किया? अथवा, क्या यह युगल भावना सूर आदि प्राचीन कवियों ने पहले पहल वृन्दावन के गौडीय स्रोत से प्राप्त कर ली जिसका पीछे सम्प्रदाय प्रवेश भी हो गया? वस्तुत इस प्रश्न का एक समाधान नही दीखता। क्योकि

---

१ परमानन्दसागर, पृ० ४५६
२ प० ब० उपाध्याय—'भा० वा० श्री रा०' (पृ० ८०)
३ डॉ० दीनदयालगुप्त—'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' (पृ० ५२७)

वृन्दावन के शिल्प और साधना में कृष्ण के साथ राधा बहुत बाद में संयुक्त हुई और काव्य में वह अपेक्षाकृत पहले ही संयुक्त हो चुकी थी।

अधिकांश विद्वान् इसे चैतन्य सम्प्रदाय की देन मानते हैं। इनमें प्रो० सुकुमार सेन,[1] डॉ० दीनदयाल गुप्त,[2] श्री प्रभुदयाल मीतल[3] आदि प्रमुख हैं।

बंगभक्ति आन्दोलन के नेता चैतन्यदेव ब्रज के वल्लभाचार्य के समसामयिक थे। इन दो महाप्रभुओं की वैष्णव साधना का सौभाग्य एक ही काल (१६ वीं शती) को उपलब्ध हुआ था। 'वल्लभ दिग्विजय' के अनुशीलन से ऐसा विदित होता है कि वल्लभाचार्य ने सन् १५१८ ई० (सं० १५७५) के आसपास अपनी पुरी यात्रा में महाप्रभु से साक्षात्कार किया था। और वह चैतन्य देव की कृष्णभक्ति भावना से प्रभावित भी हुए थे। चैतन्य की भक्ति से प्रभावित होकर उन्होंने उनके अनुयायी बंगाली ब्राह्मणों को श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त किया था। श्रीनाथ जी के सेवक एवं भक्त माधवेन्द्रपुरी माध्वी सम्प्रदाय के थे जो 'निजवार्ता' के अनुसार चैतन्य और विट्ठलनाथ दोनों के शिक्षागुरु रह चुके थे। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार वे अन्त में वल्लभ सम्प्रदायी हो गये थे। उनका भी सम्प्रदाय पर प्रभाव था। इस प्रकार विद्वानों की धारणा में मधुर भाव की भक्ति का समावेश आचार्य ने भागवत के अतिरिक्त चैतन्य से भी लेकर अपने मत में किया। हाँ, राधा की उपासना का समावेश इस सम्प्रदाय में विट्ठलनाथ जी ने ही किया।[4] किन्तु, उपर्युक्त स्थापना का आधार मात्र यह है कि 'वल्लभाचार्य के किसी भी ग्रन्थ में राधा का वर्णन नहीं है।[5] यदि उपर्युक्त वल्लभरचित स्तोत्र और अष्टक ग्रन्थों की प्रामाणिकता सर्वमान्य हो जाय तो उक्त स्थापना स्थायी तौर पर टिक नहीं सकती। तब हमें यह मानना होगा कि वल्लभाचार्य के समय में ही वल्लभ सम्प्रदाय में गोपी कृष्ण के साथ साथ राधा कृष्ण के मधुर स्वरूप की प्राणप्रतिष्ठा हो गयी थी। यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं है। चैतन्य मत के पूर्व ही वैष्णव साधना और साहित्य में निम्बार्क सम्प्रदाय द्वारा राधा कृष्ण की युगल भावना का समावेश और प्रसार हम देख रहे हैं। सुदूर पूर्व के जयदेव की संस्कृत गीतिका और विद्यापति की मैथिली पदावली सूरादि ब्रज कवियों के कान में न गूँजी हो किन्तु निम्बार्क मतावलम्बी श्रीभट्ट के 'जुगल सतक' का प्रभाव तो अवश्य ही पड़ना चाहिए, जिसे ब्रजभाषा की 'आदि वाणी' कहलाने का गर्व है।[6]

---

1 A History of Braj Bali Literature—(P 379) 'The Radhakrishna literature in Braj Bhasha can thus be looked upon as *an offshod* of the Neo-Vaishnava literature of Bengal'

२ 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय'—(पृ० ५२८)

३ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद'—(पृ० ४८)

४ डॉ० दी० द० गुप्त—'अ० व० सं०' (पृ० ५२७)

५ वही।

६ देखिये (क)—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ (पृ० ३७६)—श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के हिन्दी कवि, डॉ० सत्येन्द्र। (ख) 'युगल शतक' (भूमिका, पृ० १)

यहाँ चैतन्य मत के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा रहा। राधावाद चतन्यमत का अन्तरंग तत्व है, इसमें सन्देह नहीं। और, विट्ठल-मत की स्वामिनी तथा हित हरिवंश के राधा-वल्लभ मत की 'निकुञ्ज किशोरी' चतन्य मत की 'राधाठकुरानी' ही हैं। इसमें भी कोई सन्देह नहीं। किन्तु, हमारे कहने का यहाँ इतना ही अभिप्राय है कि वल्लभ मत में जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, राधा कृष्ण युगलोपासना के प्रत्यक्षत विहित होने का प्रमाण नहीं है। समय के प्रभाव से यह युगल भावना क्रमश गुप्त रूपेण आरोपित हो गयी है।

यह तो हुई शास्त्रीय दृष्टि। अब एक दूसरी दृष्टि से भी राधा कृष्ण युगल भावना पर विचार किया जा सकता है। राधावाद के आधुनिक शोध कर्ताओं की धारणा में यह युगलवाद भारतीय उपासना क्षेत्र में लोक विश्वासों में सवर्द्धित (राधा कृष्ण) दाम्पत्य प्रेम से सन्नभित होकर आया है। और, इस प्रकार लोक विश्वासों और जन गीतों में पनपने वाले दाम्पत्य प्रेम को चैतन्य आदि वैष्णवों ने शास्त्र सम्मत रूप दिया। 'ज्यों ही उसने एक बार शास्त्र का सहारा पाया त्यों ही विद्युत् की भाँति इस छोर से उस छोर तक फैल गया क्योंकि असल में उसके लिए क्षेत्र बहुत पहले से ही तैयार था। जब शास्त्र-सम्मत होकर इसने अपना पूरा प्रभाव विस्तार किया तो आलंकारिकों और रसाचार्यों ने भी उसको अपने शास्त्र का आलम्बन बनाया। जो गान का विषय है, वही भक्ति का और वही रस का।'[1] इनके स्वरूप निर्माण में शास्त्रीय बुद्धि ने लोक भावना को पूरी स्वीकृति द दी है।

फिर इनके पीछे युगल साधना की एक सुदृढ पीठिका भी थी। वल्लभ या गौडीय मत के पूर्व परवर्ती पुराणों (विशेषत पद्म और ब्रह्मवैवर्त आदि) और निम्बार्क सम्प्रदाय में तथा तत्सामयिक काव्य साहित्य में (गीतगोविन्द, कृष्ण कर्णामृत तथा अन्यान्य संस्कृत, प्राकृत तथा देश भाषा काव्यों में इस राधा कृष्ण माधुर्य लीला) का सुमधुर विन्यास हो चुका था। इसका विस्तृत निदर्शन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है।

वल्लभाचार्य के प्रभावशाली नेतृत्व में यह मत वृन्दावन का केन्द्रीय सम्प्रदाय बन गया था। उनके उत्तर जीवन काल में जब गौडीय वैष्णवों के राधावाद का प्रभावविस्तार हुआ तो उन्होंने अपने मत में इसे मर्यादित स्थान दिया। स्वामिनी प्रेम के सर्वोपरि महत्त्व को लेकर राधावल्लभ सम्प्रदाय की पृथक् शाखा फूटी है। तदनन्तर विट्ठलमत में यही स्वामिनी भाव श्रेयस्कर हुआ। यह राधा कृष्ण युगल भावना के चरम उत्कर्ष का काल सिद्ध हुआ। अष्टछाप काव्य में न तो भक्ति का आतंक है और न शृङ्गार की निर्लज्जता। उसमें इन दोनों अतिवादों से पृथक् भावों की पवित्रता और काव्यात्मक गरिमा है। स्वभावत अष्टकवियों के कृष्ण न केवल भक्तिदेव हैं और न शृङ्गारदेव। वे न केवल शास्त्र के भगवान् हैं और न काव्य के सामान्य नायक। वह इन दोनों के मध्यस्थ हैं। उनके इस मध्यस्थ रूप को 'भाव देव' कहना ही श्रेयस्कर है।

---

1 आचार्य ह० प्र० द्विवेदी—सूर साहित्य (पृ० ६०) 'उस युग की साधना और तत्कालीन समाज'।

वल्लभ मत की युगल भावना का चैतन्य मत से अन्तर —

पुष्टिमार्ग में कृष्ण प्रेयसी राधा स्वकीया है किन्तु चैतन्य मत में वह परकीया है। एक में प्रणय प्रधान है तो दूसरे में परिणय। पुष्टिमार्ग की इस स्वकीया राधा को देखने पर ऐसा लगता है कि वल्लभाचार्य ने बंगाल के चैतन्य देव के मतावतार से प्रभावित होकर अपने उपास्यदेव बाल कृष्ण का एकान्त राधा-कृष्ण में रूपान्तरित नहीं कर लिया। हाँ, जार भाव के प्रेम को वह भक्ति का उत्तम साधन अवश्य मानते रहे। वल्लभ-मतानुयायी कवियों ने भी राधा का कृष्ण की प्रणयाराध्य प्रेयसी के रूप में चित्रित तो किया ही मगर युगल प्रेम में भी मर्यादा का अवश्य ध्यान रखा। सूरदास ने रास-मध्य राधा-कृष्ण विवाह का चित्रण किया है।[1] यहाँ दाम्पत्य प्रेम का सामाजिक स्थिरता दाम्पत्य के मांगलिक संस्कारों द्वारा अनुमोदित है। अतः यहाँ वल्लभ मत की युगल भावना का प्रसार साम्प्रदायिक दायरे में ही अनुग्रहण है।

दूसरा सूक्ष्म अन्तर यह है कि गौड़ीय मत में राधा कृष्ण में पृथक् सत्ता मानकर दुग्ध भावना के जोर से युगल तत्त्व में लीला विचित्रता स्थापित की गई है। यही 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' है। किन्तु पुष्टिमार्ग राधा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं मानता। अलौकिक शृङ्गार के संयोग वियोग दोनों भेदों का ऐक्य तथा परमानन्द रस का पूर्ण परिपाक ही राधा कृष्ण युगल-तत्त्व है। इसमें लीला भावना के अतिरिक्त अन्य कोई स्वरूपात्मक भेद नहीं दोनों एकरूप हैं स्वतन्त्र हैं और एकात्म हैं। एक शब्द में, वल्लभ मत में अभेद मुख्य है, गौड़ीय मत में भेद प्रमुख रहा और द्वैत भाव का निर्वाह का ही परिणाम है—क्रमशः राधा का स्वकीया और परकीया होना तथा कृष्ण का पति और उपपति होना। परकीया भाव में रति की पराकाष्ठा है, पर स्वकीया भाव लोक मर्यादा से संयमित है। इसीलिए अष्टछाप के कवियों ने इस लोक मर्यादा को परिणय द्वारा सम्पन्न कर दिया है।

ध्यान देने योग्य तीसरी बात यह है कि वृन्दावन के मन्दिरों में राधा कृष्ण युगल मूर्ति की पूजा-प्रतिष्ठा का प्राथमिक श्रेय गौड़ीय वैष्णवों का ही है। यह बात डा० सुकुमार सेन के साक्ष्य पर आचार्य ह० प्र० द्विवेदी ने भी कही है।[3] किन्तु वल्लभ-सम्प्रदाय में युगल रूप की मान्यता होने पर भी इस सम्प्रदाय के किसी भी मन्दिर में युगल मूर्ति की पूजा नहीं होती।[4] हाँ यह बात दूसरी है कि विट्ठलनाथ के समय में आकर नवनीत-प्रिय श्री कृष्ण के साथ राधा जी 'नवनीत प्रिया' हो गई। इसके बाद वल्लभ सम्प्रदाय की सेवा

---

१ सूरसागर-१०७१/१६८९ 'जाको ब्यास बरनत रास।
है गन्धर्व विवाह चित दै, सुनो विविध विलास ॥

२ रूपगोस्वामी-'लघुभागवतामृत' एकत्व च पृथक्त्व च तथांशत्वमुतांशिता।
तस्मिन्नेकत्र नायुक्तम् अचिन्त्यानन्त शक्तित ॥ १/५० ॥

३ मध्यकालीन धर्म साधना पृ० १३१ ('गोपियाँ और श्री राधा' शीर्षक निबन्ध)

४ डॉ० दीनदयालु गुप्त- अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' (पृ० ५५७)

पद्धति म भी नाना प्रकार के भोग राग, वस्त्राभूषण और रास विलास की प्रचुर सामग्री का विधान हो गया ।[1]

साराशत वल्लभाचाय और चतन्यदेव दोनो समसामयिक कृष्ण भक्त थे ।[2] इन दोना महात्माओ का साक्षात्कार और भाव विनियोग हुआ था, यह बात 'निज वार्ता', 'वल्लभ दिग्विजय आदि ग्र थो स सिद्ध है । इनका परस्पर प्रेम सम्ब ध भी यथास्थान वर्णित है । अत वल्लभ मत पर चत य-मत का प्रभाव पडना अस्वाभाविक नही है । हाँ, विट्ठल नाथ का कोई साम्प्रदायिक आग्रह हो, ऐसी बात नही । किन्तु, उन्ही के सामने पुष्टिमाग के कवियो ने घडल्ले से युगल भावना की सुमधुर व्यजना की, यह असदिग्ध है । अत वल्लभ-कुल की कृष्ण साधना पर चतन्य मत और उसके आधारभूत पदावली साहित्य का प्रभाव सहज सभाव्य है । गौडीय मत का प्रभाव वल्लभ सम्प्रदाय की अपेक्षा राधा-वल्लभ-सम्प्रदाय पर अधिक पडा । किन्तु प्रभाव ग्रहण कर भी हित सम्प्रदाय मे ब्रज-सस्कृति की महिमा अक्षुण्ण रही, इसे हम यथास्थान देखेंगे ।

पुष्टिमाग के एक प्रख्यात आचाय हरिराय (सन् १५९०) ने अपने 'स्वरूप निर्णय' म कृष्ण के सयोग वियोगमय रसात्मक स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की । उन्होने कृष्ण के अनुशीलन के लिए राधा को माध्यम मानकर उनके कमनीय स्वरूप का चित्रण किया । श्रीकृष्ण स्वामिनी जी के हृदय सरोज म ही सवदा मधुपवत् विराजते हैं । उनके अनुसार राधा रानी के चिन्तन बिना कृष्ण के साक्षात्कार का स्वप्न अधूरा है । इस प्रकार, यहाँ भी युगल भाव की मधुर अभिव्यक्ति है । और, इस पर राधावल्लभ सम्प्रदाय का परोक्ष प्रभाव है ।

व्यूहवादी स्वरूप—अ त म कृष्ण के व्यूहवादी स्वरूप को भी देख लेना आवश्यक है । इस मत मे भगवान् कृष्ण को पूर्णावतार मानकर उनके ४ व्यूह माने हैं-वासुदेव, सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध । पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का अवतार दो जगहो म मान्य है—मथुरा म वसुदेव देवकी के यहा और ब्रज मे न द-यशोदा के यहा । दोनो जगह श्रीकृष्ण व्यूहसहित हैं । कही व्यूह काय से प्रकट है और कही स्वरूप से । मथुरा मे व्यूह स्वरूप और काय दोनो से प्रकट है और ब्रज मे केवल काय से । यहाँ (ब्रज) व्यूहों का स्वरूप भगवान ने छिपा रखा है । इसीलिए न दन दन द्विभुज कृष्ण हैं, देवकी या वसुदेवन दन चतुभुज कृष्ण । ब्रज के कृष्ण चिर किशोर हैं, मथुरा के कृष्ण प्रौढ सामन्त । ब्रज के किशोर कृष्ण ही श्रेष्ठ हैं । भक्त कवियो ने इन्हीं के स्वरूप और लीलाओ का यशोगान किया है ।

---

१ श्री प्रभुदयाल मीतल-'ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद' (पृ॰ ४६)

२ (क) वल्लभाचाय-ज म-१४७८ ई॰ अवसान-१५३० ई॰

(ख) चतन्य देव-'-१४८५ ई॰' अवसान-१५३३ ई॰

तृतीय अनुच्छेद

विभिन्न लीलोपादानों की आध्यात्मिक व्याख्या

आचार्यों के वैष्णव सिद्धांतों में भक्तिवाद और भगवान् कृष्ण के लीलामय चरित्र का दार्शनिक अनुमोदन है। इसके अनुसार कृष्ण चिर किशोर हैं। वृन्दावन उनकी नित्य क्रीडा भूमि है। उनके अवतरण का उद्देश्य एक मात्र लीला है। अवतारवाद का यह आनन्द-वादी स्वरूप है जो अपने भीतर कल्याणवादी लक्ष्य को भी समाहित किए हुए है। इस लीला की अन्तरंग सचारिणी राधा तथा अन्यान्य ब्रजदेवियाँ हैं। इस नित्य लीला धाम के सभी उपादान नित्य हैं। वंशी, वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना, पशु पक्षी, लता कुंज सब नित्य है। ये नित्य लीला परिकर हैं जो आधिदैविक रूप में प्रकट हुए हैं। इनका व्यापक उद्देश्य भक्तों का अनुरंजन है। इस रूप मे कृष्ण पूर्ण रसावतार हैं।

श्रीमद्भागवत में ही लीलापुरुषोत्तम भगवान कृष्ण की रसात्मक और आनन्दवादी चरित कल्पना की गयी मिलती है। परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों मे श्री मद्भागवत के इसी लक्ष्य का उपबृंहण हुआ है। स्वामी वल्लभाचार्य ने भी भागवत के इसी दृष्टिकोण का पोषण करते हुए अपने पुष्टिमार्ग के कृष्ण की रसमय कल्पना की। उन्होंने कृष्णावतार के चतुर्व्यूहात्मक और रसात्मक रूपों मे रस-ब्रह्म को ही श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है। किन्तु, चैतन्यमत में इसकी सुविस्तृत कल्पना की गयी मिलती है। चैतन्य के तीन शिष्यों—रूप गोस्वामी, जीवगोस्वामी और सनातन गोस्वामी ने अपने अपने वैष्णव रसशास्त्रों मे कृष्ण-लीला के मधुर उपकरणों को आध्यात्मिक संगति प्रदान की है।

राधा—निम्बार्क सम्प्रदाय मे कृष्ण की वामांग विहारिणी ह्लादिनी राधा के स्वरूप पर पहले ही विचार किया जा चुका है। विट्ठल मत में भी स्वामिनी प्रेम और सेवा की महिमा बतलाई जा चुकी है। किन्तु, इस तत्त्व की सर्वाधिक विशद व्याख्या चैतन्य मत में उपलब्ध होती है जिसे हम चैतन्य मत की समीक्षा के प्रसंग मे विस्तारपूर्वक देखेंगे। यहाँ प्रसंगवश इस सर्वश्रेष्ठ लीला परिकर के सम्बन्ध मे संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

१६ वी शती के प्रायः समस्त भक्ति सम्प्रदायों (निम्बार्क, चैतन्य, वल्लभ, राधा वल्लभ सम्प्रदाय तथा सखी सम्प्रदाय) में राधा सर्वश्रेष्ठ लीला परिकर के रूप में गृहीत हुई हैं। यह भगवान् कृष्ण की निज स्वरूपभूता, महाभावरूपा ह्लादिनी शक्ति हैं। इनका कृष्ण प्रेम अद्वितीय है। राधा और कृष्ण में कोई भेद नहीं है। स्थूलतः यदि कोई भेद है भी तो वह लीला और रसास्वादन के हेतु ही है। इनके रूप रंग शील स्नेह, वय और स्वभाव प्रायः एक ही हैं। ये निरंतर वृन्दावन के कुञ्जों में रमण मूर्ति किशोर कृष्ण के साथ केलि मग्न रहा करती हैं। इनकी यही नित्य केलि अखण्ड माधुर्यरस की संचारिणी है। समर्पण और कृष्णेन्द्रिय प्रीति इनकी सर्वातिशायी शक्ति है जिस कारण इनकी तुलना मे मथुरा और द्वारिका की १६ हजार महिषियों का प्रेम भी फीका है। अपने इस रूप मे

राधा अनन्य प्रेम की गरिष्ठतम प्रतिमा हैं। राधा का यह अनन्य प्रेम भागवतादि में भी ध्वनित है ब्रह्मवैवर्त में भी वर्णित है और इन्हीं आधारों पर वैष्णव मत में भी विवेचित हुआ है।

गोपियाँ—गोपियाँ इस ह्लादिनी शक्ति से ही उत्पन्न हुई हैं। अतः इन्हें राधा की कायव्यूहा भी कहते हैं। ये कुछ तो सखी रूप हैं और कुछ मंजरी रूप। ये भगवान् की निज स्वरूपभूता शक्ति से व्युत्पन्न होने के कारण राधा और कृष्ण की ही भाँति सच्चिदानन्द मयी और परम रसमयी हैं। ये श्रुति-स्वरूपा और मुनि स्वरूपा हैं। व्रजेश्वर कृष्ण के समस्त क्रीडा व्यापार में सर्वतोभावेन आत्म-समर्पण और उनके वियोग में परम व्याकुलता का प्रदर्शन—ये ही गोपियों की अन्तरंग विशेषताएँ हैं—महर्षि नारद की सम्मति में गोपियाँ कृष्ण भक्ति की चरमादर्शरूपा हैं। भागवत में दुर्जनगेह शृङ्खला को पूर्णतः तोड कर कृष्ण की सेवा में आने वाली इन गोपियों की भगवान् ने स्वयं मुक्त कंठ से स्तुति की। उन्होंने उन्हें अपनी आत्मा माना[1]—गोपियाँ राधा की ही भाँति कृष्णेन्द्रिय प्रीति की भावना से परिचालित होती हैं। उन्हें अपने सुख की तनिक भी चिन्ता नहीं होती। इसलिए उनके प्रेम में काम वासना की थोडी भी गन्ध नहीं होती। इस रूप में गोपियों का जीवन प्रेम का उज्ज्वल प्रतीक है।[2] श्रीकृष्ण का रस रूप इन रसात्मक शक्तियों के बिना अपूर्ण है। कृष्ण धर्मी हैं और गोपियाँ धर्म हैं। दोनों अभिन्न हैं।

गोपी शिरोमणि राधादेवी की ८ मुख्य सखियाँ हैं। सखियों के साथ ८ मंजरियाँ होती हैं। इन सखियों और मंजरियों के पृथक् पृथक यूथ होते हैं। इनमें सैकडा गोपियों की नियुक्ति है। अष्ट सखियाँ प्रत्येक यूथ की स्वामिनी होती हैं। इन्हें यूथेश्वरी कहा जाता है।[3]

सामान्यतः इन गोपियों के दो रूप हैं—(१) भगवान् की आनन्द रूपा शक्ति और (२) कान्त भक्ता की प्रतिरूपा।

कृष्णोपासक भक्तों में जब माधुर्य भक्ति का उद्रेक होता है तो वे सर्वप्रथम गोपी भाव की अन्तिम इकाई मंजरी का सहभाव प्राप्त कर गोपी (सखी) सेवा में संलग्न होते हैं। गोपी भाव को सन्तुष्ट कर फिर वे राधा भाव में तल्लीन होते हैं और जब राधा की कृपा होती है तो भाव साधक स्वरूप शक्ति में परिणति पाकर कृष्ण लीला में प्रवेश पाते हैं और फलतः लीला रस का आस्वादन करते हैं। वल्लभ, चैतन्य आदि मतावलम्बी सभी भक्त ऐसे ही भावसाधक हैं। अतः इस आध्यात्मिक व्याख्या का तात्पर्य है—गोपी भावना द्वारा कृष्ण भावना का अनुशीलन—आत्म-साक्षात्कार और मधुर रस का आस्वादन। वैष्णव सिद्धान्ता द्वारा कृष्ण लीला की आश्रयभूता सहचरियों (गोपियों) के प्रेम और समर्पण को एक आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान की गयी है। इससे कृष्ण चरित में अन्तर्व्याप्त शृङ्गारिक प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्वमुखी हो उठी हैं। यही वह दार्शनिक पीठिका है जिस पर प्रतिष्ठित कृष्ण का जार प्रेम भी महार्घ बन गया है।

---

१ भागवत—१०/४६/४—'वल्लव्यो मे मदात्मिका।'

२ भागवत सम्प्रदाय—(पृ० ६३६)—प० ब० उपाध्याय

३ 'श्री राधा माधव चिन्तन' (पृ० ६८८)—ह० प्र० पोद्दार। तथा 'रामभक्ति सा० में मधुर उपासना' (पृ० ८३) डॉ० माधव।

नित्य कैशोर—ऊपर कृष्ण लीला के आश्रय (आधार)-भूत उपादानों की चर्चा हुई। इनके आश्रय में ही आलम्बन कृष्ण का नित्य किशोर रूप निखर उठा है। यों तो आचार्यों ने भागवत तथा पद्मपुराण आदि के ही अनुरूप कृष्णचन्द्र के–बाल्य, पौगण्ड, कैशोर और यौवन रूपों का उल्लेख किया है किन्तु उनका प्रियतम रूप 'कैशोर' ही है। भागवत में इस नित्य 'कैशोर' का स्पष्ट समर्थन है[1]—यामुनाचार्य तथा रामानुजाचार्य[2] और रूपगोस्वामी[3] ने भी इसकी रमणीयता का समर्थन किया है। यह वय स्वतः माधुर्यमय है। और, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण में तो यह इतना विस्मय विवर्धक हो जाता है कि उनके इस रूप को एक बार देख लेने वाला उनकी इस मधुर विभूति का आजीवन अनुचर ही हो जाता है। अतः कृष्ण के नित्य कैशोर का विधायक दर्शन भी उसके भीतर प्रच्छन्न मधुर भाव या रमणवृत्ति का ही अनुचर कहा जा सकता है।

वंशी—कृष्ण लीला के रमणीय उपकरणों में वंशी माधुरी की अद्भुत महिमा सन्निविष्ट है। कृष्ण की समस्त किशोर और यौवन लीलाओं की यह प्रेरक शक्ति है। भागवतादि पुराणों में कृष्ण वंशी की इस सम्मोहिनी शक्ति का भव्य प्रदर्शन हुआ है। कृष्ण ने अपने चराचरव्यापी वेणुनाद द्वारा गोपियों के प्राणों का आकर्षण किया था। उन्होंने इस दिव्य नाद पर ही अपना घर बार, कुल धर्म सब त्याग दिया।

वल्लभाचार्य ने भागवत की सुबोधिनी टीका में कृष्ण की वंशी को भी आध्यात्मिक रूप दे दिया है। वहाँ यह कृष्ण की योगमाया शक्ति या नादब्रह्म की प्रतीक बन गयी है। वेणु से भगवान् का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यह ब्रह्म के–नाम और रूप—इन दो स्वरूपों में प्रथम नामात्मक स्वरूप का उद्बोधक है। इसमें भगवान् अपने निज लीला स्वरूप का समस्त चराचर को शब्दसाक्षात्कार कराते हैं।[4] इसके नाद से तुच्छ काम सुख का शोधन होता है और तदनन्तर आध्यात्मिक आनन्द का व्यापक वितान तन जाता है। रास लीला के पूर्व इसीलिए कृष्ण ने गोपियों में उद्भूत कामेच्छा का इस वेणु नाद द्वारा शोधन किया। जब उनमें जाग्रत स्थूल मनोगेच्छा वंशी-नाद से पूर्णतः विस्मय विमूढ़ हो गयी तब उन्होंने रास लीला द्वारा उनके रागशोधितमन में आध्यात्मिक आनन्द का संचार किया।

वैष्णव भक्तों ने इस विशुद्ध कलात्मक उपकरण की भी आध्यात्मिक व्याख्या करके इसे लोकोत्तर महिमा प्रदान की है। वैसे, विशुद्ध संगीत ही अपने आप में भुवनविमोहन और लोकोत्तर महिमा सम्पन्न होता है। किन्तु मनमोहन कृष्ण के हाथ में पड़कर इसकी दिव्यता का संवर्द्धन हो जाना स्वाभाविक ही है। मध्ययुग में भावसाधक कवियों ने इसकी महिमा खूब गायी है। इस स्वर्गीय संगीत की महिमा से पाश्चात्य जगत का सांस्कृतिक

---

१ भागवत–३/२८/१७– सन्त वयसि कैशोरं'

२ स्तोत्ररत्न– अचिन्त्य दिव्याद्भुत नित्य यौवनम्।

३ भक्तिरसामृतसिन्धु– प्राय किशोर एवाय सर्वभक्तेषु भासते।'

४ श्री कृष्णांक–कल्याण ३२ (वेणुगीत शीर्षक निबन्ध–प्रा० जेठालाल गोवर्धनदास शाह) —(पृ० ११६)

गगन भी गुंजित है।[१] ग्रीक साहित्य मे 'ओरफ्यूज' और 'पेन' का सगीत ऐसा ही दिव्य और आह्लादक है। 'पेन' भी प्रकृति देवता है। वशी उसका प्रिय वाद्य है। इसी वशी की लयकारिणी शक्ति का प्रदशन भागवतीय कृष्ण लीला मे भी हुआ है जिसमे समस्त सासारिकता का विलयन और आध्यात्मिकता का जागरण होता है। वशी प्रेरित रास इसी आध्यात्मिक सम्मिलन का महान् पव है। सम्पूर्ण वेणु गीत का स्वारस्य प्रभु म आसक्ति द्वारा निरोध सिद्ध करान के लिए है।[२]

वैष्णवाचार्यों के अनुसार वशी म सात छिद्र हैं। उनमे से छ भगवान् के ऐश्वय, वीय, यश, श्री, ज्ञान और वराग्य के द्योतक हैं और अतिम (७ वाँ) स्वय भगवान् को शब्द देह का बोधक है।

कृष्ण का मोहन रूप बहुत कुछ इसी पर निभर है। यह उनकी मोहिनी शक्ति है जो सदा उनसे अभिन्न रहती है। यह राधा और गोपियो की ईर्ष्या का कारण है। कृष्ण इसके नित्य और अनाहद नाद से सम्पूर्ण ब्रज मण्डल को प्रविल कर कृष्णा मुख कर लेते हैं। वह इस रस रूप नाद ब्रह्म से अणु परमाणुओं म परमान द भर देते है। इसीलिए जब ब्रजलीला का समापन कर वह मथुरा जाने लगत हैं तब सखा उन्ह उसी वेणुवादक रूप मे देखना और सुनना चाहते हैं। वे जब ब्रज छोड देते हैं तो उनकी सखियो को हमेशा उसी की याद आती है।

इस तरह कृष्ण लीला के अन्तरग परिकरो में मुरली स्वय लीला पुरुषोत्तम की प्रतीक बना कर उपस्थित की गयी है। इसका उपकरणमूलक महत्त्व न होकर भावमूलक स्वतन्त्र महत्त्व हो गया है।

वृन्दावन—'वृ दा' का अथ है भक्ति और 'वन' का अथ है 'प्रदेश'। इस प्रकार वृ दावन का आध्यात्मिक अथ है 'भक्ति का प्रदेश'। वल्लभाचाय की 'सुबोधिनी' टीका मे वेणु गीत के कुल २० श्लोकों म सबसे पहले उक्त वृ दावन की ही व्याख्या है। पहले श्लोक म भगवान् का वृ दावन प्रदेश वर्णित है। अपने रसमय स्वरूप से गोपियो को आसक्त करने के लिए भगवान् कृष्ण नाम और कम का छोड विशुद्ध भक्ति भावित भूमि मे पदापण करते हैं। वृ दावन प्रदेश का यही परमाथ है।

यह वृ दावन नित्य गोलोक का ही अवतरित स्वरूप है। अत जिस प्रकार नित्य गोलोक परब्रह्म पुरुषोत्तम की नित्य आन द केलि का अक्षर धाम है उसी प्रकार भक्त स्वरूप गोपियो के रजनाथ अवतरित होन वाल रस रूप श्रीकृष्ण का भी यह दिव्य लीला धाम है। यह वृ दावन मायाविरहित परम आन द लाक है। वल्लभ सम्प्रदाय में गोकुल की महिमा बैकुण्ठ स भी अधिक है।[३] इस सम्प्रदाय म ब्रजभूमि, कृष्ण रसवती रास लीलाओ के भिन्न भिन्न स्थान वहाँ के निवासी, वहाँ की भाषा, गो, ग्वाल, पक्षी तथा वृक्षादि की

१ श्रीकृष्णाक-कल्याण ३२ (वेणुगीत' शीषक निबन्ध-प्रो० जेठालाल गोवधन दास शाह)-पृ० ११६

२ वही वही वही

३ अणुभाष्य, अध्याय—४, पद-सूत्र-१५

बडी मान्यता है। अष्टछाप कवियो ने इसकी बहुत महिमा गाई है।[1] अत यह वृंदावन परब्रह्म कृष्ण की रस कल्पना की भाँति ही गोलोक की परिपत लीला भूमि है। किशोर कृष्ण और वृन्दावनेश्वरी राधा तथा उनकी सहस्रो सखियो का यहाँ रास विलास होता है। इन आचार्यों की धारणा मे रसेश्वर कृष्ण—'वृंदावन परित्यज्य पादमेक न गच्छति' अर्थात् वृंदावन को छोड एक पग भी कही अन्यत्र नही बढाते।

शृङ्गार लीला की दृष्टि से इस लीला धाम नित्य वृंदावन मे भी दो वर्ग हो गए हैं—कुञ्ज-लीला और निकुञ्ज लीला। कुञ्ज लीला सामान्य व्रज लीला है। यह कुञ्जो मे की गयी गोपी कृष्ण लीला है। इसका स्थायीभाव कृष्णरति है। श्रीकृष्ण इसके आलम्बन और गोपियाँ आश्रय हैं। कुञ्ज गोपी प्रधान है। निकुञ्ज लीला विशेष गोपनीय और अंतरंग है। यह राधा कृष्ण की निभृत निकुञ्ज केलि है। इसका स्थायी भाव राधा रति है। श्रीकृष्ण इसके आश्रय और राधा विषय है। निकुञ्ज राधा प्रधान है। राधा वल्लभीय आचार्य हित हरिवंश कुञ्ज लीला को व्रज रस और निकुञ्ज लीला को '**वृंदावन रस**' मानते हैं।

यमुना—*वृंदावन की भाँति ही वृंदावनवासिनी यमुना की भी धार्मिक महिमा* गायी गयी है। स्वामी वल्लभाचार्य ने इसकी प्रशंसा म 'यमुनाष्टक' लिखा है। इसके अनुसार यमुना कृष्ण के ही अनुगुण और समरूप है। यह 'मुकुंद रति वर्धिनी है।[2]

अंतत यहाँ भी वृंदावन की आध्यात्मिक व्याख्या स्थानपरक न होकर रसपरक हो गयी है। कृष्ण के भावात्मक स्वरूप विधान मे इन आध्यात्मिक व्याख्याओं के गंभीर महत्त्व को लक्षित करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत अनुच्छेद की अवतारणा की गयी है।

उपर्युक्त उपादानो की आध्यात्मिक व्याख्या के साथ ही कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं के भी आध्यात्मिक अर्थ किये गये हैं। और, इसके अनुसार 'चीर हरण लीला' आत्मा के सामने से वृत्तियो का आवरण हट जाना है।[3] गोपियां भक्तिसाधिका हैं। अनेक जन्मो के संचित पुण्योदय से व्रज मे कृष्ण के साथ उनका अवतरण हुआ। उनकी अहवृत्ति और सांसारिक मोह को छुडाने के लिए भगवान् ने यह लीला की। यह लीला जब विधिवत् सम्पन्न हो चुकी तब कृष्ण ने गोपियो को 'शरद्यामिनी' मे रास विहार का वचन दिया। भागवत के अनुसार—[4] 'तुम आगामी शरद की रात्रि मे मेरे साथ विहार करोगी, जिस उद्देश्य से तुमने यह व्रत और कात्यायनी देवी की पूजा की'।

१ सूरसागर, दशमस्कन्ध वें० प्रे० पृ० १५८

धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य ये व्रज के बासी,
धन्य यशोदा नन्द भक्ति वश किये अविनाशी।

वृंदावन व्रज को महतु कापै बरन्यो जाइ।
चतुरानन पग परसि कै लोक गयो सुख पाइ॥

२ यमुनाष्टक, षोडश ग्रन्थ, श्लोक—२ (भा० र० शर्मा)
'मुकुन्द रति वर्धिनी जयति पद्मबन्धो सुता।

३ श्रीराधा माधवचिंतन—('चीरहरण रहस्य') शीर्षक निबंध, पृ० ४७९—श्री हु० प्र० पोद्दार

४ भागवत—१०/२२/२७

आध्यात्मिक दृष्टि से वधी भक्ति को पार कर ही साधक रागात्मिका भक्ति में प्रवेश पाता है। रागात्मिका भक्ति की पराकाष्ठा रासासक्ति मे होती है, जहाँ सवतोभावेन कृष्णार्पण होता है। गोपियो ने कात्यायनी व्रत म वैधी भक्ति का अनुष्ठान पूर्ण किया। क्रमश चीरहरण मे चित्तशोधन हुआ। और अन्तत रास लीला मे आत्मा परमात्मा का पूर्ण सम्मिलन सभव हुआ। अत चीरहरण रास की आध्यात्मिक पीठिका है।

'रास' कृष्ण लीला का चूडान्त स्वरूप है। रास के कृष्ण रसेश्वर हैं। और, रसेश्वर कृष्ण का सम्बन्ध रस ब्रह्म से है जिसकी कल्पना श्रुतियो ने 'रसो वै स' रूप मे की थी। इसका आनन्द ब्रह्मानन्द से भी श्रेष्ठ बतलाया गया है।[१]

भगवान् कृष्ण ने आत्मरमण हेतु आत्म रूप व्रजागनाओं के साथ रास लीला की इच्छा की। योगमाया ने इसका आयोजन किया। उन्होने अपनी मायाशक्ति का स्वर सचार कर शरद् की शीतल चाँदनी से चमचम यमुना पुलिन पर गोपियो का आह्वान कर रासारभ किया। बीच मे अहकार ने सर उठाया। किन्तु, आत्माराम कृष्ण ने उसका तत्काल निरसन कर दिया। और, अन्तनोगत्वा उपाधियो के पूर्णत शमित होते ही आत्मा-परमात्मा के पूर्ण तादात्म्य की नाई रासलीला सम्पन्न हुई। अत 'जिस दिव्य क्रीडा मे अनेक रस एक ही रस म होकर अनन्त अनन्त रस का आस्वादन करें, एक रस ही रस समूह के रूप में प्रकट होकर स्वय आस्वाद्य, आस्वादक, लीलाधाम और विभिन्न आलम्बन एव उद्दीपन के रूप म क्रीडा करे, उसका नाम 'रास' है।[२]

वल्लभ मतानुसार इस रास के ३ रूप हैं—(१) नित्य, (२) नैमित्तिक और (३) अनुकरणात्मक। नित्य रास नित्य गोलोक मे निरन्तर होता रहता है। नैमित्तिक रास द्वापर मे रसात्मक रूप से अवतरित कृष्ण द्वारा इस भूतल पर अवस्थित वृन्दावन मे हुआ था और अनुकरणात्मक रास व्रज की भक्त मण्डली म होता है। भक्तो की मान्यता म रासानुभव से चित्तवृत्ति निरोध होता है। निरोध से प्रमोदय होता है और इसके फलस्वरूप 'रस **भावात्मक** प्रभु'[३] का नैरन्तर्य और उनके नित्य रास मे रमण का अवस्था प्राप्त होती है। इस रास रग की अनुभूति एकमात्र कृष्ण के मधुर स्वरूप म ही सन्निविष्ट है।

उक्त समस्त दार्शनिक व्याख्याओ की बौद्धिक परतो के भीतर से कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप प्रतिबिम्बित हुए बिना नहीं रहता। निष्कर्षत नित्य लीला के समस्त आयामों-देश, काल और पात्र से आवृत्त लीलापुरुष कृष्ण स्वय नित्य भावबोध के रमणीय प्रतीक बन गये हैं। मध्ययुगीन काव्य म इसी प्रतीक का गुणगान हुआ है।

---

१ डॉ० दी० द० गुप्त–अ० व० स०' (पृ० ४९७)

२ डॉ० हरवश लाल शर्मा—'सूर और उसका साहित्य (पृ० २०७) तथा श्री राधा माधव चिन्तन —पृ० ४८४।

३ डॉ० दी० द० गुप्त—अ० व० स०' (पृ० ४६८)

अष्टम अध्याय

भक्ति-सम्प्रदाय के कवि और मानदेव श्रीकृष्ण

अनुच्छेद—१

★निम्बार्क मतावलम्बी कवियों के कृष्ण

अनुच्छेद—२

★चैतन्य मत में कृष्ण

अनुच्छेद—३

★वल्लभ मतावलम्बी कवियों के कृष्ण

अनुच्छेद—४

★राधावल्लभ मत में कृष्ण

अनुच्छेद—५

★हरिदासी मत में कृष्ण

अनुच्छेद—६

★सम्प्रदाय मुक्त कवियों के कृष्ण

प्रथम अनुच्छेद

निम्बार्क-मतावलम्बी कवियों के कृष्ण

पृष्ठभूमि पिछले अध्याय मे शकराचार्य के अद्वैतवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप दक्षिण के ४ वैष्णव सम्प्रदायों की भक्ति-भावना और श्रीकृष्ण के स्वरूप का सक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। इन आचार्यों ने अपने भक्ति-सिद्धान्तों का प्रचार न केवल दक्षिण मे ही किया बल्कि उत्तर भारत मे विशेषत भगवान् कृष्ण की लीला भूमि (व्रज, मथुरा और द्वारका) म भी सम्पादित किया। स्वय स्वामी निम्बार्क कर्नाटक प्रान्त के तेलुगु ब्राह्मण थे। फिर भी इन्होंने अपने जीवन का अधिकाश भाग वृन्दावन में ही व्यतीत किया।

इन वैष्णव आचार्यों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर ईसा की १४ वी शती से लेकर १६ वी शती के अन्त तक उत्तर भारत में वग से लेकर व्रजभूमि तक अन्य या य समय वैष्णव-सम्प्रदाय पनपे। इनके द्वारा वैष्णव भक्ति का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ। ये सम्प्रदाय निस्सन्देह हिन्दी के शत शत कवियो के प्रेरणा के द्र सिद्ध हुए। इसी से इस अध्याय मे कवियो के कृष्ण का अनुशीलन 'भक्ति-सम्प्रदाय' शीर्षक के अन्तगत किया गया है।

मध्य युग मे अपनी मधुर भावुकतापूर्ण भक्तिपद्धति के कारण स्वभावत रामभक्ति की अपेक्षा कृष्ण भक्ति का स्वर विशेषत सबल रहा। इसका बहुत कुछ श्रेय कृष्ण-के मधुर स्वरूपोपासक इन वैष्णव आचार्यों को है। कृष्ण भक्ति के दो महान् उपासक वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने पूरब से पश्चिम तक समस्त उत्तरापथ के जन मानस मे कृष्ण प्रेम की धारा प्रवाहित कर दी। इन्होंने पुराण पुरुष कृष्ण का शास्त्र और कला की सुन्दर पीठिका प्रदान की। इसी भवत्यात्मक पीठिका पर अनेकानेक कवियों की भावुकता अग्रसर हुई। भक्ति भावना और कवित्व का सरस आधार पाकर कृष्णचरित जन गण का कठ हार बन गया।

कृष्णोपासना को अपनाने वाले पहले के आचार्यों के दृष्टिकोण म किंचित् भेद था। स्वभावत उनके कृष्ण स्वरूप म भी सूक्ष्म अन्तर दृष्टिगत होता है। मध्वाचार्य के कृष्ण भगवान् विष्णु थे। विष्णुस्वामी के कृष्ण गोपाल कृष्ण थे। निम्बार्क के कृष्ण राधा-कृष्ण थ। उत्तरोत्तर इसी आदर्श पर चलकर आगामी दो आचार्य वल्लभाचार्य और चैतन्य ने कृष्णभक्ति मे भावुकता की धारा बहायी। पूर्वोक्त कृष्णचरित म भावात्मक उपादान अस्फुट थे। उनमें विशेषत बौद्धिक तत्त्व दृष्टि का समावेश था। किन्तु इन दो आचार्यों न गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की स्वरूपोपासना द्वारा वैष्णव भक्ति मे नूतन शक्ति का सचार किया। और, इसे एक अत्यन्त व्यापक लोक धर्म की भाव भूमि प्रदान की।

इस काल म भावदेव श्रीकृष्ण की विभिन्न लीला भगियों पर बल देने के कारण निम्बार्क, वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदाय के अतिरिक्त २ अन्य कृष्ण भक्ति-सम्प्रदाय पनपे—

राधावल्लभ सम्प्रदाय और सखी सम्प्रदाय। इनकी साधना भूमि मुख्यतः वृन्दावन ही रही। भक्तिकाल के अधिकांश कृष्णभक्त कवि इन्हीं सम्प्रदायों की छत्रछाया में पल्लवित हुए। इनके अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन से उस युग में विभिन्न देश भाषाओं के आश्रय में अनेक ऐसे रस सिद्ध कवि हुए, जिन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष के कठघरे में डाल कर निरखना उनकी गंभीर भावोपासना का मूल्य सीमित करना है। उदाहरणार्थ, मीरा की प्रेम-साधना ली जा सकती है। इसी कारण यहाँ इन्हें सम्प्रदाय मुक्त कवियों में परिगणित किया गया है।

मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण काव्य विभिन्न साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से अनुप्राणित अवश्य रहा, किन्तु वह उनका सर्वथा अनुयायी ही नहीं है। यह मूलतः भावाश्रय और कवि के व्यक्तित्व की भिन्नता का स्वाभाविक परिणाम है। अधिकांश कवियों में उक्त मान्यताओं का आग्रह है। फिर भी इन समग्र कवियों की विचारधाराओं में बहुत कुछ साम्य है। इसे हम कृष्णचरित की समीक्षा के प्रसंग में देखेंगे।

१६ वीं शती के कृष्णभक्ति सम्प्रदाय और उनके प्रतिनिधि हिन्दी कवि निम्न लिखित हैं—

(१) निम्बार्क सम्प्रदाय श्रीभट्ट, हरिव्यास आदि।
(२) चैतन्य सम्प्रदाय—गदाधर भट्ट सूरदास मदन मोहन आदि।
(३) वल्लभ सम्प्रदाय—सूर परमानन्द तथा अष्टछाप के अन्य कवि।
(४) राधावल्लभ सम्प्रदाय—हितहरिवंश, हरिरामव्यास, ध्रुवदास आदि।
(५) हरिदासी सम्प्रदाय—स्वामी हरिदास तथा सखी सम्प्रदाय के अन्य कवि।
(६) सम्प्रदाय मुक्त कवि—मीरा, रसखान, तुलसी (रामभक्त कवि) आदि।

इस अनुच्छेद में सर्वप्रथम निम्बार्क मत के कवियों का कृष्ण भावना का अनुशीलन प्रस्तुत किया जाता है।

विषय प्रवेश—मध्ययुगीन कृष्ण प्रेमाश्रयी शाखा वाले वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्क-सम्प्रदाय प्राचीनतम माना जाता है। श्रीकृष्ण के भावात्मक स्वरूप की अन्तरंग विधायिनी राधा की प्रतिष्ठा सर्वप्रथम इसी मत में हुई। इस सम्प्रदाय में कृष्ण का युगल स्वरूप प्रतिबिम्बित है।

निम्बार्क मतावलम्बी कवि भी भगवान् कृष्ण और उनकी ह्लादिनी शक्ति राधा देवी की युगलोपासना के पक्षपाती हैं।

इस सम्प्रदाय के प्रथम हिन्दी कवि श्री भट्ट तथा उनके शिष्य श्री हरिव्यास देव ने अपनी-अपनी रचनाओं में राधा कृष्ण की मधुर लीलाओं का विशद चित्रण किया है।

श्री भट्ट काव्य और कृष्ण

श्री भट्ट इस सम्प्रदाय में ब्रजभाषा के आदि वाणीकार माने जाते हैं।[१] ये प्रसिद्ध आचार्य केशव कश्मीरी के शिष्य थे तथा अपने सम्प्रदाय की ३० वीं पीढ़ी के मान्य प्रतिष्ठाता थे। श्री वियोगी हरि के शब्दों में—'गुरुदेव यदि भगवान् के ऐश्वर्य के पूर्ण प्रतिपादक थे

१ 'पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ (पृ० ३७९)—(श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के हिन्दी कवि'— डॉ० सत्येन्द्र

तो भट्ट जी माधुय के सच्चे मधुव्रत।[1] इनका प्रख्यात ग्रन्थ 'युगल शतक' अपने नाम से ही राधावर श्रीकृष्ण के मधुर साहचय का द्योतक है। ब्रजभाषा मे रचित प्रथम रचना होने के कारण इसे ही 'आदि वाणी' भी कहा जाता है।[2]

विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ छ भागो म निबद्ध है, जिसमें राधा कृष्ण के अनुपम सौन्दय, प्रणय, रस, निकुञ्ज लीला, हिंडोल, राधा कृष्ण विवाह तथा व्रज के मोदमय वातावरण का अङ्कन मिलता है। एक पद में युगल जोडी की बाकी झाकी प्रस्तुत है—

दपन मे प्रतिबिम्ब ज्यों नैन जु नैननि माहि।
यो प्यारी पिय पलक हूँ टारे नहि दरमाहि।।
प्यारी तन स्याम, स्यामा तन प्यारो।
प्रतिबिम्बित तन अरसि परसि दोउ
एक पलक दिखियत नही न्यारो।।
ज्यो दपण मे नैन, नैन मे नैन सहित दपण दिखरावौं।
श्री भट नौट की अति छवि ऊपर तन मन धन न्योछावर डारौं।।

अर्थात् दपण और उसके प्रतिबिम्ब के समान राधा कृष्ण विग्रह हैं और श्रीकृष्ण राधा की मूर्ति। जैसे कोई पुरुष दपण मे अपना मुख देखता है ता उसे दपण मे अपना मुख मण्डल दिखलायी पडता है। उस व्यक्ति का नेत्र दपण म प्रतिबिम्बित होता है और उनके नेत्र की कनीनिका मे वह नेत्रसहित दपण प्रतिबिम्बित होकर दिखलाई पडता है। ठीक यही स्थिति राधा और कृष्ण की है।

इस नित्य युगल छवि-दशन के अनन्तर युगलविवाह का दृश्य देखिये—

श्री व्रजराज के युवराज, माना ब्याह वृन्दावन रच्यौ।
पुलिन वदी विराजैं दपति, देखि देखि क मन नच्यौ।।
है पुरोहित रिचा उचारत, वेलि तमाल मण्डल खच्यो।
जै 'श्रीभट' भाँवरी परत नटवर, अकमाल प्रिया सग नच्यौ।।

श्री भट्ट ने वशीधर की त्रिभगी मुद्रा का ऐसा ममस्पर्शी चित्र खींचा है कि मन बरबस 'हरि-रस-बस[3]' हो जाता है।

हरिव्यास देव काव्य और कृष्ण

ये श्री भट्ट के अन्तरग शिष्य थे। नाभादास के भक्तमाल और प्रियादास की टीका में इनकी उत्कृष्ट वैष्णवता और कृष्ण गुणगान म अपार प्रीति का वणन मिलता है।

हरिव्यास दव श्रीकृष्ण के मधुर स्वरूप के उपासक थे। निम्बाक मतावलम्बी होते हुए भी इन्होंने 'रसिक-सम्प्रदाय' नाम से एक अलग शाखा चलायी। इसके अन्तगत कृष्ण

---

१ 'ब्रज माधुरी सार'—पृ० १०८
२ 'युगल शतक'—भूमिका (पृ० १)
३ ब्रज माधुरीसार—श्री भट्ट—पदसंख्या—११

के शृङ्गारी रूप की उपासना व्यजित है। इस शाखा के लोग 'हरि व्यासी' के नाम से प्रसिद्ध हैं।[१]

इनकी एक मात्र हिन्दी रचना 'महावाणी' है। यह 'युगल शतक' के अनुकरण पर रचित है। इसमें कृष्ण के स्वरूप, लीला तथा विहार का मार्मिक चित्रण है। इसमें भक्ति का भावादेश है जो भगवान् के सान्निध्य का मानसिक साधन प्रदान करता है।

महावाणी में ५ सुख हैं –

(१) सेवा—इसमें नित्यविहारी राधा कृष्ण की अष्टयाम सेवा वर्णित है।

(२) उत्सव—इसमें नित्यविहारी के उत्सवों के आनन्द का गान है जिससे सखियों को नितनूतन आनन्द की अनुभूति हो।

(३) सुरत—यहाँ राधा और कृष्ण परस्पर एक दूसरे के सुख सागर में निमग्न रहने का वर्णन है।

(४) सहज—इसमें श्रीकृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधा रानी के साथ नित्य विहार का सुख वृन्दावन धाम में अनुभव करते हैं।

(५) सिद्धान्त—इसके अनुसार अपार माधुर्य की मूर्ति सौन्दर्य सिन्धु श्री सर्वेश्वर श्रीकृष्ण चन्द्र ही एक मात्र परात्पर तत्त्व हैं और निर्गुण ब्रह्म उनका लीला नागर के चिदंश मात्र हैं।

एक उदाहरण से इनके युगल स्वरूप की छवि का अंकन प्रस्तुत किया जाता है—

सहज सुख रंग की रुचिर जोरी।
अलिहि अद्भुत कहूँ नाँहि देखी सुनी सकल गुन कला कौशल विसारी ॥ १ ॥
एक ही द्व जु द्व एकहि दिपहि दिन कहि साँचे निपुनई करि सुठोरी ॥ २ ॥
श्री हरिप्रिया' दरस हित दोय तन दसवत एक तन एक मन एक दोरी ॥ ३ ॥

अर्थात्, श्याम सुन्दर राधा कृष्ण की जोड़ी सहज सुख से पूर्ण है। यह अद्भुत है–न कहीं देखा न सुना। ये दोनों किशोर तथा किशोरी सकल गुण आगर, कला कोविद हैं। एक ही ज्योति युगल रूपों में द्विधाविभक्त है। अत वस्तुत दोनों एक ही हैं। 'हरिप्रिया' कवि का साम्प्रदायिक उपनाम है।

यहाँ भी राधा श्याम सुन्दर की ह्लादिनी शक्ति के रूप में विराजमान हैं। श्याम सुन्दर आनन्दस्वरूप हैं राधा उस आनन्द का आह्लाद। फलत दोनों बीज वृक्ष की भाँति अन्योन्याश्रित हैं। राधा के बिना न तो कृष्ण की स्थिति है और न कृष्ण के बिना राधा का अस्तित्व ही–[२]

एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनन्द के अह्लादिनी स्यामा अह्लादिनी के आनद स्याम ॥
सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन बिलसत धाम।
श्री हरिप्रिया निरंतर नित प्रति काम रूप अद्भुत अभिराम ॥

---

१ पोद्दार अभिनन्दनग्रन्थ (पृ० ८०)–वही।
२ महावाणी सिद्धान्त—सुख–२६

यहा न केवल राधा कृष्ण की अद्वतता का मधुर वर्णन है वरन् कृष्ण की आनन्द स्वरूपता और राधा की आह्लादकता की भावात्मक व्यजना भी हुई है।

साराशतः महावाणी की अतिम साधना माधुर्य मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र का परात्परत्व और निर्गुण ब्रह्म को वृन्दावनविहारी कृष्ण का चिदश मात्र सिद्ध करना है।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों मे हरि व्यास देव जी का सम्मानपूर्ण स्थान है। और, निम्बाक मतावलम्बी कवियों मे तो इनका वही स्थान है जो वल्लभ मतावलम्बी कवियों म सूरदास का।[१] इस सम्प्रदाय की प्रथम शाखा का नाम ही इनके नाम पर 'हरिव्यासी सम्प्रदाय' हो गया। इस शाखा म परशुराम देव ने भी श्रीकृष्ण के युगल रस रूप की सुमधुर व्यजना की है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि निम्बाक मतावलम्बी कवियो ने श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण ब्रज-लीला का चित्रण न कर उनके शृङ्गारिक और रसमय युगलस्वरूप तक ही अपने को सीमित रखा है। शृङ्गार में भी वियोग तक को इसम कोई स्थान नही है।[२]

प्रसिद्ध सगीताचार्य स्वामी हरिदास इसी सम्प्रदाय के भक्त थे। किन्तु बाद मे 'सखी-सम्प्रदाय' करके इनका एक स्वतन्त्र मत प्रतिष्ठित हो गया। इसका विस्तृत उल्लेख 'हरिदासी सम्प्रदाय' नामक स्वतन्त्र अनुच्छेद म किया जायगा।

---

१ प० ब० उपाध्याय—'भागवत-सम्प्रदाय' (पृ० ३२९)

२ डा० सत्येन्द्र—'श्री निम्बाक सम्प्रदाय के हिन्दी कवि'—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ३७९

द्वितीय अनुच्छेद

चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण

पृष्ठभूमि—१६वी शती के वैष्णवाचार्यों मे माधुर्यभाव की दृष्टि से बगाल के महाप्रभु चैतन्यदेव का स्थान सर्वाधिक प्रोज्ज्वल है। वे भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेम माधुरी के उन्मत्त गायक और राधा माधव की शृङ्गारलीला के रमता सकीर्त्तनकार थे। यद्यपि उन्होने अपने नाम से किसी विशिष्ट पथ या सम्प्रदाय का सुचिन्तित प्रवर्त्तन नही किया किन्तु अपने चरित्र मे विलक्षण सम्मोहन रखने के कारण वह जिधर ही गये उनके चारों ओर वैष्णव भक्तो की भावुक मण्डली बनती गयी। महाप्रभु के जीवन काल मे ही उनकी भावुकतापूर्ण लीलाभक्ति को लेकर बगाल से लेकर वृन्दावन तक एक विशिष्ट सकीर्त्तनपथी सम्प्रदाय का व्यापक वितान तन गया। सैकडो भक्त उनके अनुयायी हो गये। इनमे रूप, जीव, सनातन गोस्वामी, नित्यानन्द, कृष्णदास कविराज, गोपाल भट्ट, गदाधर भट्ट आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमे रूपगोस्वामी ने प्रथम बार अपने दो ग्रन्थ 'भ० र० सि०' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' मे अपनी विलक्षण प्रतिभा से भक्ति रस को शास्त्रीय पृष्ठाधार प्रदान कर कृष्ण को रस राट सिद्ध कर दिया। श्रीकृष्णदास कविराज का 'चैतन्य चरितामृत जीवनी-साहित्य है। यह महाप्रभु के भ्रमणशील जीवन की सुमधुर झाकी प्रस्तुत करने में जितना ही उपादेय है उतना ही गौडीय वैष्णवो के भक्ति सिद्धान्तो के लिये तत्व-कल्पतरु भी है। चैतन्य मत के रस सिद्ध हिन्दी कवियो म गदाधर भट्ट का स्थान मूर्धन्य है। इस प्रकार, इन साधको की समस्त साधनोपलब्धि पर दृष्टिपात करने पर चरित्र, शास्त्रीयता और कवित्व इन त्रिविध आयामो पर माधुर्य मूर्ति श्रीकृष्ण की सर्वांगीण साधना का मजुल रूप प्रदर्शित होता है।

(क) व्यक्तित्व—चैतन्य के व्यक्तित्व के सम्बन्ध म विस्तार स विचार होगा क्योकि इनका कृष्णचरित स घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्री चैतन्य का जन्म सन् १४८५ म बगाल के नदिया जिले म शान्तिपुर नामक स्थान म हुआ था। ये वल्लभाचार्य के समकालीन थ। इनके जन्म का नाम विश्वम्भर था। किन्तु बाद म अपने अनुयायियो द्वारा कृष्ण चैतन्य नाम स प्रसिद्ध हुए। अत्यन्त गौरवर्ण के उज्ज्वल पुरुष होन क कारण इन्हें गौराग महाप्रभु के रूप में भी स्मरण किया जाता है। इन्होन १८ वर्ष की अवस्था म लक्ष्मीदेवी स विवाह कर गार्हस्थ्य जीवन म प्रवेश किया। इसी समय अपने स्वाध्याय और गम्भीर चिन्तन के बल पर इन्होन समस्त शास्त्रों म निपुणता प्राप्त कर ली। दुर्भाग्यवश लक्ष्मीदेवी क असामयिक निधन स इन्हें दूसरा विवाह करना पडा। किन्तु, लक्ष्मीवियोग स चिर दग्ध चित्त में ससारानुरक्ति का रिक्त पुन भर न सका। इसी वियुक्त अन्तर म जब वह पितृ क पिण्ड दान हेतु विष्णुपद गया गये थे तो 'ईश्वर पुरी' नामक एक प्रसिद्ध वैष्णव सन्त स

प्रभाव से उनके हृदय मे विरक्ति उत्पन्न हो गयी और घर छोड कर सन्यासी बन गये।[1] हरि नाम सकीर्तन ही इनके स यासी जीवन का एक मात्र आधार बन गया। और, ये जीवन पर्य त इसी सुमधुर सकीर्तन में सुधि बुधि खोकर रमण करते रहे। निरन्तर कृष्ण नाम का मधुर गान ही उनका पावन म त्र था।

भ्रमण—इन्होंने भारत के सभी प्रमुख तीर्थों का भ्रमण किया। इसमे दक्षिण देश की यात्रा का सविशेष महत्त्व है, क्योंकि, हम यह देख चुके हैं कि भारतीय भाषाओं म कदाचित् सर्वप्रथम तमिल साहित्य मे ही कृष्णभक्ति की वष्णवी साधना का प्रचार प्रसार हुआ। महाप्रभु तमिल प्रदेश के प्राय सभी वष्णव क्षेत्रो मे घूमे।[2] बहुत सम्भव है कि तमिल प्रदेश की अपनी यात्रा में वे भावुक भक्त कवि आलवारो की रचनाओं से परिचित और प्रभावित हुए हो।[3] इस यात्रा के अन तर उनके जीवन म एक विशेष उल्लास तथा स्फूर्ति दृष्टिगोचर होती है। इसी यात्रा म इन्हे उत्कल देश के प्रसिद्ध विद्वान् (तथा राज-मत्री) राय रामान द से साक्षात्कार हुआ था। गोदातट पर यह दो वैष्णव भक्तो का एक अद्भुत मिलन था। इसका विस्तृत विवरण कृष्णदास कविराज के 'चत यचरितामृत' 'मध्यलीला' म मिलता है। चत य महाप्रभु ने भक्तिशास्त्र के रहस्यों के विषय मे नाना प्रश्न किय, राय रामान द ने कही सक्षेप और कही विस्तार स उनके उत्तर दिये।

महाप्रभु ने पूछा—'हे विद्वन् ! तुम भक्ति किसे कहते हो ?'

राय रामान द—' स्वधर्माचरण ही भक्ति है।'

परन्तु, महाप्रभु को इससे शान्ति नही मिली। वह हर बार पूछते चल गये—'एहो बाह्य, आगे कह आर' (अर्थात्, यह भी बाह्य है, और आगे की बात कहो)। क्रमश कृष्णार्पण शरणागति, प्रेमा, दास्य, सख्य, का ता प्रेम के भी आगे प्रश्न करने पर राय रामान द राधा प्रेम को सर्वश्रेष्ठ बतला कर चुप हो गये—

प्रभु कहे—एक सा य.वधि सुनिश्चय कृपा करि कह यदि आगे किछु हय।

राय कहे—इहार आगे पुछे हेत जेने एतो दिन नाहि जानि आछये भुवने।

इहार मध्ये राधार प्रेम सा य शिरोमणि याहार महिमा सवशास्त्रेत बाखानि॥ ८/९६-९८

का ताभाव के आगे चत य की जिज्ञासा पर रामान द को विस्मय हुआ। इसके आगे पूछने वाला जन ससार म कोई है, ऐसा तो वे इतने दिनो से नही जानते थे। का ताप्रेम की साधना म राधा प्रेम ही चरम सा य है। इस पर महाप्रभु न गदगद चित्त से कहा—'हाँ राधाभाव ही श्रेष्ठ है, पर तु प्रमाण क्या है ? डॉ० द्विवदी के शब्दो म—[4] यह लक्ष्य करने की बात है कि महाप्रभु ने केवल अ तिम बात के लिए प्रमाण मागा था। पहले जितनी बातें बतायी गयी हैं वे अतिपरिचित हैं। प्रथम कहे हुए सभी मत श्रीमद्भगवद्गीता और

---

१ 'ए हिस्ट्री ऑफ ब्रजबुली लिटरेचर' (पृ० १२)—प्रो० सुकुमार सेन

२ मित्र० भिक्षु भक्ति प्रदीप सीध (पृ० ७९)

३ 'द लाइफ ऑफ श्री गौराग —(पृ० ४५)—डी० एन० गागुली

४ मध्यकालीन धम साधना, पृ० १४४–१४५

श्रीमद्भागवत महापुराण से सिद्ध हैं। परन्तु 'भागवत' या 'गीता' मे राधा भाव की कोई चर्चा नही है। राय रामानन्द ने इसके प्रमाण म 'गीतगोविन्द' का मत उद्धृत किया जिसम बताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा को हृदय म धारण करके अन्य व्रजसुन्दरियों को त्याग दिया था।[1]

अत यह इस बात का प्रमाण है कि कान्ताभाव मे भी राधा भाव ही सबसे श्रेष्ठ है।

इस प्रसङ्ग से स्पष्टत दो बातें सामने आती हैं। पहली यह कि राय रामानन्द को यदि राधा भाव की भक्ति का प्रथम व्याख्याता मान लिया जाय तो शायद यह अनुचित न होगा। दूसरी यह कि दक्षिण देश मे राधा भाव की उपासना पहले ही पनप चुकी थी, जो परवर्ती काल मे चतन्यादि मतो मे गृहीत और प्रचलित हुई।

उपर्युक्त बातो के अतिरिक्त चतन्यमत को प्रभावित करने वाले कुल निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

(१) महाप्रभु का दक्षिण के प्रसिद्ध आलवार भक्तो की सुमधुर कृतिया से परिचय।

(२) ११ वी–१२ वी शतीय लीलाशुक के 'कृष्णकर्णामृत'[2] और जयदेव के 'गीतगोविन्द' का चतन्य मत पर व्यापक प्रभाव।

(३) राय रामानन्द के राधा कृष्ण युगल प्रेम[3] का चतन्य मत पर प्रभाव।

(४) राय रामानन्द से मिलनोपरान्त महाप्रभु का लक्षणीय भावान्तर।

(५) निष्कपत दक्षिण की राधा कृष्ण माधुर्य भक्ति का रस सचार उत्तरापथ मे चतन्य महाप्रभु द्वारा उत्कल देश के माध्यम से हुआ, जहाँ के धार्मिक वातावरण मे (विशेषत जगन्नाथ मन्दिर मे) जयदेव के गीतगोविन्द का पवित्र स्वर पहले से गूज रहा था।[4] उनके दिव्य भावान्तर पर दाक्षिणात्य भ्रमण तथा वैष्णव गोष्ठियो का विशेष महत्व है। विशेषत राय रामानन्द से हुई गोष्ठी म इस राधा कृष्ण प्रेम विश्वास का पूर्ण प्रस्फुटन हो गया। वैसे, चतन्य भी इस युगलवाद से परिचित थे, ऐसा मानने के लिए हमारे पास प्रमाण है। राय रामानन्द ने इसी ओर लक्ष्य करते हुए चतन्य देव से स्पष्ट कहा था–

आमि नट तुमि सूत्रधार ये मत नाचाओ ते मत चाहि नाचिवार।

(च० च०, मध्यलीला)

---

१ गीतगोविन्द–३/१–कसारिरपि ससार वासनाबद्ध श्रृङ्खलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरी ॥

२ महाप्रभु दक्षिण से जिन दो पुस्तको की पाण्डुलिपि ले आये थे उनम से एक लीलाशुक का 'कृष्णकर्णामृत' भी है। इसम राधा कृष्ण प्रेम का उल्लेख पहले हो चुका है।

३ रामानन्द रचित राधाकृष्ण प्रेमविषयक सस्कृत नाटक जगन्नाथ वल्लभ'–विशेष विवरणार्थ द्रष्टव्य–डॉ० विमान विहारी मजुमदार कृत–'चतन्य चरितर उपादान' पृ० ५२२–कलकत्ता विश्वविद्यालय।

४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग–१८, अक–१ ('महाकवि जयदेव और उनका गीत गोविन्द –प० शिवदत्त शर्मा)

अंत महाप्रभु के नीलाचल (उत्कल) मे अवस्थान काल से पूव ही यह भाव धारा इस क्षेत्र में प्रवाहित हो रही थी। चतन्य देव ने पूर्वी और उत्तरी अचल मे इस प्रवाह को अपने मधुर व्यक्तित्व से और भी प्रखर वेग प्रदान कर दिया।

निराला सन्यासी—चतन्य देव का स यास भी निराला ही था। उसमे विधि निषेध और कमकाण्ड का कोई व्यवधान नही था। निरतर राधा भाव की महादशा म आत्म-प्रक्षेपण (सेल्फ प्रोजेक्शन) और हरि नाम सकीर्त्तन की दि य माधुरी से उनका बहिरतर पूरी तरह सराबोर हो चुका था।[१]

चैतन्य और वल्लभाचार्य—इन दोनो के मिलन की बात पहले कही जा चुकी है। कृष्ण प्रेम मे त मय भावा की एकलता, मुक्तता और खुलावा होने के कारण ही इनका स यासी सस्कार शकराचाय की तरह बौद्धिक और वल्लभाचाय की तरह साम्प्रदायिक न था। विशेषत वल्लभाचाय की वैष्णववादिता प्रव धात्मक थी। उसके मूल मे भागवत की भक्ति भावना कायरत थी। कि तु इनके प्रतिकूल चत यदेव का चरित्र था—पूण मुक्त और रसपेशल। उसके मूल में ब्रह्मववत पुराण और पदावली की तरलता काम करती थी। इन दो महान् विभूतियो का चारित्रिक अ तर मध्ययुग की कृष्ण भावना को समझने का सर्वाधिक विश्वस्त सास्कृतिक आधार है। वल्लभाचाय मूलत बालकृष्ण के उपासक भक्त थे। गोपियो की प्रेम लक्षणा भक्ति का समावेश उ होने भागवत के अतिरिक्त चतन्य चरित से भी ले कर किया, अधिकाश पण्डितो का ऐसा ही विश्वास है। इस तरह दक्षिण के विष्णु चित्त से मध्यदेश के वल्लभाचाय तक कृष्ण भक्ति का यात्रा वृत्त पूरा हो जाता है। इस यात्रा वृत के दो मार्गों की यदि कल्पना करें तो चैत यदेव ही पूर्वी (सचार) वृत्त के प्रबल सवाहक सिद्ध होते हैं। गोदा से मीरा तक-पश्चिम (सचार) वृत्त का उल्लेख स्वय भागवत-माहात्म्य के 'उत्पन्ना द्रविडे ' वाले सूत्र मे हो गया है। इसके साथ रामानुज का भी कुछ योग हो तो यह अनुमान बिल्कुल निस्सार नही।

चैत यावतार—चत य अपने अवतार रूप मे श्रीकृष्ण और उनकी लीला सहचरी श्रीराधा की समन्वित प्रतिमूर्ति थे। उनका अ तरग कृष्णमय और बहिरग राधामय था। गौडीय वष्णवो की मा यता मे 'वृ दावन नागर' कृष्ण ही 'नदिया नागर' चत य के रूप म अवतीर्ण हुए थे।[२] कृष्ण के रूप म ही उ होने कृष्ण प्रिया राधा की उज्ज्वल कान्ति पायी थी। इसीलिए उ ह 'अ त कृष्ण बहिर्गौरि' भी कहा जाता है। इस भावना का बीज

---

1 Prof S Sen-H B B L (P 14) 'That the Radha Krishna legend inspite of all its association of love & erotics is a grand imagery & a beautiful allegory of the highest truth, the eternal relation between man & God has been proved by the life of Chaitanya Deva himself'

२ श्री रा० व्र० वि० '(पृ० २४२)-डॉ० श० भू० दा० गुप्त।

स्वय भागवत मे ही मिल जाता है।[1] इसी भाव के आधार पर रूपगोस्वामी ने अपने 'कडचा' म 'राधाभावद्युति सवलित साक्षात् कृष्ण स्वरूपी चत य' की व दना की है।[2]

इस अवतरित स्वरूप की प्राप्ति के लिए उ हे चिर तन भाव योग करना पडा था। उनके इस योग के चारो ओर भागवत और ब्रह्मववत की मधुर लीला, लीलाशुक और जय देव के शृङ्गारिक श्लोक, कवी द्रवचन समुच्चय और सदुक्ति कर्णामृत के 'असती व्रज्या' के पद्य, विद्यापति और चण्डीदास की मिलन वियोग ज य पदावली पचाग्नि का काम दे रही थी। महाप्रभु के दिव्य चरित का निर्माण इ ही ताना बानो से हुआ था। यह कोई विस्मय की बात नही है। वष्णव भक्तो के विश्वास मे मध्ययुग का प्रत्येक आचार्य अवश्य ही कृष्ण या कृष्ण के किसी न किसी परिकर का अवतरित स्वरूप है।[3] सो, चत य भी राधा और कृष्ण के युगल अवतार थे।[4] राय रामान द को उ होने अपना यही युगल स्वरूप दर्शाया था—

तबे हासि तारे प्रभु देखाल स्वरूप।
रसराज महाभाव दुइ एकरूप॥ (मध्यलीला, अष्टम परिच्छेद)

बगाली विद्वानो ने उक्त धारणा मे अपना गम्भीर प्रत्यय प्रकट किया है।[5]

' The life-story of Gauranga (Chaitanya Deva) who was & is believed to be an incarnation of Radha & Krishna in Union'

युगलावतार स्वरूप विश्लेपण—चैत यावतार की कल्पना में राधा कृष्ण युगल अवतार की भावना स्वयमेव अ तर्निहित है। अत इस युगलावतार के स्वरूप की समीक्षा आवश्यक है। चत य के युगलावतार रूप म तत्कालीन बग सस्कृति और साधना का हाथ था। चत य पूव पूर्वी प्रदेश बौद्ध धम की तान्त्रिक प्रवृत्तियो से आच्छन्न था। इसमे शाक्त तन्त्र की साधना के समाना तर सहज मत म **युगनद्ध** (आलिंगनवद्ध स्त्री पुरुष) की कल्पना का विकास हुआ। बगाल म शिव और शक्ति के समाना तर राधा और कृष्ण की सम्मिलित प्रतिमूर्ति का प्रचार १२ वा से १४ वी शती के बीच शनै शनै होता दिखाई पडता है। ब्रह्मववत म राधा के साथ कृष्ण का प्रथम प्राकट्य इसी रूप म निर्दिष्ट है। विद्यापति म भी कुछ-कुछ इसी कल्पना के एक आध स्थल पर दशन होते हैं। चत य चरित म यही भाव

१ कृष्णवर्णं त्विषाकृष्ण सागोपागास्त्र पार्षदम्।
यज्ञै सकीतन प्रायर्यज ति हि सुमेधस ॥११/५/२६

२ चत याख्य प्रकटमधुना तद्द्वय चक्यमाप्त
राधाभाव द्युतिसुवलित नौमि कृष्ण-स्वरूपम्॥

३ वल्लभाचाय अग्नि + कृष्ण—'सम्प्रदाय प्रदीप—४६
विट्ठलनाथ-कृष्ण
गोपीनाथ बलराम } 'चौरासी वष्णवन की वार्ता' पृ० १६१, ४७८
हितहरिवश हित + वशी—हित चरित्र

४ चत य राधा + कृष्ण 'चैतन्यचरितामृत आदि लीला'

5 Prof S Sen—H B B L. (P 16)

प्रकट हुआ है। किन्तु, तीनो म भाव-साम्य के अतिरिक्त रूपगत सूक्ष्म अन्तर भी है। युग नद्ध रूप म स्त्री-पुरुष पूर्ण आलिंगन बद्ध हैं, अर्द्ध नारीश्वर रूप म दोनो आधे आध हैं, चतन्य स्वरूप मे ये दोना अन्तर्वाह्य हैं। युग्म की प्रेम अद्वैतता तीनो म अभीष्ट है। राधा कृष्ण युगल मूर्ति में भी यही अन्तरग सम्बन्ध है। अत चतन्य चरित मे राधा कृष्ण युगल चरित्र पूर्णत प्रतीक है। और, इसे देखते हुए यह निस्सकोच स्वीकार करना पडता है कि १६ वी शती की वष्णव साधना और कृष्ण भक्ति काव्य म युगलावतार के रमात्मक प्रवेश का श्रेय चतन्यावतार को ही है। यदि चतन्य का अवतरण न हुआ होता तो व्रजभाषा का कृष्णकाव्य राधा कृष्ण काव्य न होता।

मध्यदेश म भागवतीय कृष्ण भक्ति धारा के प्रवर्तक और उन्नायक वल्लभाचाय हुए। उनकी पुष्टि भक्ति के आश्रय भगवान् कृष्ण और विषय गोपिया हैं। उनका प्रतिपाद्य विषय सम्पूर्ण कृष्णचरित है, केवल कृष्ण-लीला नही। उनकी उपासना पचभावोपासना (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्यादि) है, केवल माधुर्योपासना नही। उन्होने भागवत की (पश्चिमी) धारा का अनुवत्तन किया, जिमम उक्त बातो के अतिरिक्त अपेक्षित गाभीय है।

दूसरी ओर, चत य देव न ब्रह्मवैवत की (पूर्वी) धारा का आश्रय ग्रहण किया है। (१) इनमे शृङ्गारिकता का प्रवल आधिपत्य है। (२) इनम पचभावोपासना के स्थान पर माधुर्योपासना व्यजित है।

(३) यहाँ राधा और कृष्ण क्रमश परकीया और उपपति (जार) हैं।

(४) यहाँ कृष्णावतार का लक्ष्य प्रेम लीला है।

(५) दोनो पर शाक्त तत्र का प्रभाव है।

(६) राधा प्रेम और राधा विरह दोनो के प्रिय विषय हैं।

(७) इनमे शास्त्र की अपेक्षा जन भावना के प्रति प्रबल आग्रह है।

इस पुराण में ऐसे ही कई तत्व हैं जिनका सामान्यत पूर्वी प्रदेश की कृष्णभावना के अतिरिक्त चैतन्य की युगलोपासना पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडा है। विद्वान् इसी कारण इसे पूर्वी प्रदेश मे रचित मानते हैं। जो हो, इससे इतना तो स्पष्ट है कि कृष्ण भावना को लेकर भागवतीय परम्परा स भिन्न पूर्वी अचल में राधा प्रधान ब्रह्मविवर्ती कृष्ण लीला का प्रति निधित्व रहा। जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास और चत यदेव इसी परम्परा के गायक और भक्त हैं।[१] इसका मुख्य प्रतिपाद्य कृष्ण लीला है सम्पूर्ण कृष्णचरित नही। वल्लभाचाय और चतन्य का सम्मिलन लगभग इन दो धाराओ (भागवत और ब्रह्मवैवत) का ही सगम है। इसमे शास्त्रीयता और लोक परम्परा, भक्ति और शृङ्गार भावना, प्रब ध और मुक्तक शैली सहित हो गयी है। मध्ययुग के कृष्ण-चरित में इसी भाव सहति की अभिव्यक्ति हुई है। ब्रज-कविया के कृष्ण मे जो माधुरी और महिमा है वह इन स्रोता के समाकरण का ही परिणाम है।[२] यहाँ पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सम्पूर्ण देश की रस-साधना बिल्कुल एकमेक हो गयी है।

१ डॉ० मुशीराम शर्मा—'भारतीय साधना और सूर-साहित्य' (पृ १७४)

२ आचाय ह० प्र० द्विवेदी—'मध्यकालीन धम साधना' (लीला और भक्ति' शीर्षक निबन्ध—पृ० १४५)

युगल साधना—ऊपर चैतन्यावतार पर युगल स्वरूप के आरोप की बात कही जा चुकी है। और, इसके साथ ही यह भी बतलाया जा चुका है कि इसका मूल कारण चैतन्य चरित को प्रभावित करने वाली तत्कालीन बंगभूमि की तान्त्रिक साधना है। इस सिद्धान्त के अंतर्गत विभिन्न वज्रयानी देवताओं को अपनी शक्तियों के साथ समागम करते हुए वर्णित किया गया है। इसी को 'प्रज्ञोपाय-साधना' भी कहते हैं। बंगाल में शिव और शक्ति के युगपत् भाव के समानान्तर राधा और कृष्ण को भी वैष्णव सहजियामत में सम्मिलित कर लिया गया है। चैतन्य चरित वैष्णव सहजिया मत की इस युगल साधना का मूर्त प्रतीक है। यह बात बाहर से देखने पर कुछ अजीब सी लगती है किन्तु राधा कृष्ण युगलमूर्ति की स्वरूप प्रतिष्ठा के संदर्भ में यह एक रहस्यपूर्ण तथ्य है।

प्रश्न है कि सगुण और निर्गुण का यह समन्वय कैसे हुआ ? चैतन्यदेव वैष्णव भक्ति और सहज साधना के सम्मिलन की स्वाभाविक परिणति हैं, यह बात उनकी गुरु परम्परा से भी चरितार्थ होती है। चैतन्य के गुरु ईश्वरपुरी और उनके गुरु माधवेन्द्र पुरी प्रेममार्गी अद्वैत सन्त थे। प्रो० सुकुमार सेन की धारणा में चैतन्य संभवतः माधवेन्द्रपुरी की प्रेमाद्वैत भाव धारा के ही 'जन्मान्तर प्रतीक' थे।[१]

इसके अतिरिक्त, चैतन्यदेव की युगल साधना की एक प्रेरणादायिनी पुस्तक 'कृष्ण कर्णामृत' भी है। और, इसके रचयिता दक्षिण देशीय लीलाशुक बिल्वमंगल ठाकुर पहले अद्वैत सन्त थे जो पीछे कृष्ण भक्त बन गये। यह बात स्वयं 'बिल्वमंगलस्तव' के इस श्लोक से सिद्ध है—[२]

> "अद्वैत वीथी पथिकैरुपास्याः स्वानन्दसिंहासन लब्ध दीक्षाः ।
> शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥ ३७२ ॥

अर्थात्, अद्वैतानुयायी योगियों के पूजनीय एवं आत्मानन्दी मुझको (लीलाशुक) भी गोपियों के किसी जार ने बरबस अपना दास बना लिया।

उपर्युक्त गुरु और कवि परम्परा की साधना परिणति को लक्ष्य करने पर यह भली भाँति कहा जा सकता है कि चैतन्य देव वैष्णव भक्ति के क्षेत्र में सहज और तन्त्र मत का बीज पड़ने से उत्पन्न हुए थे।

युगल-साधना के अतिरिक्त सहजमत की एक दूसरी विशेषता है—**आरोप साधना**। यह ससीम रस से सीमाहीन की उपलब्धि और आस्वादन पर जोर देना है। राधा और कृष्ण का युगल स्वरूप में देखने और रसास्वादन करने का श्रेय उत्तरकालीन वैष्णव सहजियों को ही है। चैतन्यावतार में इसी का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण है। आचार्य ह० प्र० द्विवेदी ने ब्रजभाषा काव्य की युगल मूर्ति (राधा-कृष्ण) के संविधान में इस सहजवाद के रहस्यात्मक महत्व पर विशेष ध्यान दिया। उनके अनुसार इस तन्त्र तत्त्ववाद का प्रवेश जब वैष्णव

---

१ 'ए हिस्ट्री आफ ब्रजबुली लिटरेचर' (पृ० १२)

२ रूपगोस्वामी कृत भक्ति रसामृत सिंधु, पश्चिम विभाग, शान्त लहरी—३७२ में उद्धृत।

भूमि म हुग्रा तब राधा-कृष्ण ही शिव शक्ति के स्थानापन्न हो गय।[१] ग्रत 'प्रत्यभिज्ञा दशन' मे जो शिव ग्रौर शक्ति हैं, त्रिपुरा सिद्धात मे वही कामेश्वर ग्रौर कामेश्वरी हैं ग्रौर गौडीय दशन म वही श्रीकृष्ण ग्रौर राधा हैं। शिव शक्ति, कामेश्वर-कामेश्वरी, कृष्ण राधा एक ग्रौर ग्रभिन्न हैं।[२] तन्त्र मे कृष्ण को काम बीजात्मक ग्रौर राधा को रति बीजात्मक कहा गया है।[३] कृष्ण ग्रौर राधा का यह रूप युगल भाव की माधुर्योपासना का ग्रन्यतम प्रेरक है। राधा ग्रौर कृष्ण का यह प्रेम माधुयभक्ति की सर्वोच्चता का प्रतिष्ठापक है। इसी कारण चैतन्य ने राधा कृष्ण प्रमपरक पदावली साहित्य (विद्यापति, चण्डीदास रचित) को ग्रपनी भाव धारा का मूल उपजीव्य बनाया था, जिसपर माधुय भक्ति की प्रतिष्ठा हो सकी।

इस माधुय के भी ग्राश्रय के स्वरूप भेद से दो भेद हो जाते हैं। दाम्पत्य प्रेम मे, जहाँ ग्राश्रय स्वकीया है, इसकी (प्रेम की) तीक्ष्णता सयमित रहती है। किन्तु, युगल प्रेम मे, जहाँ ग्राश्रय परकीया ग्रौर ग्रालम्बन परकीय, जार या विट है, कारण के कारण प्रेम में ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक तीक्ष्णता ग्रौर गरिष्ठता ग्रा जाती है। चैतन्य क राधा ग्रौर कृष्ण परकीया प्रेम के ही ग्राश्रयालम्बन हैं।[४]

इस परकीया प्रेम को भी हम सहज ग्रौर तत्रमत की तीसरी देन मान सकते हैं। तत्र म परकीया साधना को ग्रादश रूप प्रदान किया गया है। ग्रौर, इस मत के प्राय सभी साधको ने ग्रपनी साधना की सिद्धि के लिए परकीया नायिका का 'मुद्रा', महामुद्रा' ग्रथवा 'सहज सुन्दरी' के रूप मे उपयोग किया है। सहजिया वष्णवो ने भी इसी पद्धति का ग्रनुगमन किया। उनकी यह ग्रारोप-साधना परकीया-प्रेम के ग्राश्रय म ही ग्रग्रसर हुई। इसके प्रमाण म जयदेव, चण्डीदास, राय रामान द, चतन्य तथा उनके ग्रनुयायी षड्गोस्वामियों को भी किसी न किसी परकीया (मुद्रा) के साथ सम्बद्ध बताया जाता है।[५] ससार म परकीया प्रेम की उत्कठा ग्रौर प्रखरता ग्रद्भुत है।

वष्णव सहजियो ने राधा कृष्ण के ग्रादश प्रम के रसास्वादन मे इसी परकीया प्रेम को सोपान बनाकर इसे लोकोत्तर महिमा प्रदान की है। किन्तु यह परकीया प्रेम जहाँ बौद्ध मत मे ग्रात्मसुख का भी कारण है, वहा वष्णव मत म राधा ग्रौर कृष्ण की केलि' तटस्थ दशन की वस्तु है।[६] ग्रौर, इसका ग्रानन्द परकीया भावापन्न साधक ही निरन्तर ग्रपने

---

१ सूर साहित्य—('राधा कृष्ण का विकास' शीषक प्रबंध, पृ० १६ २१)

२ म० म० प० गोपीनाथ कविराज ('हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु' मे डॉ० विजयेन्द्र स्नातक द्वारा उद्धृत)

३ डॉ० विजयेन्द्र स्नातक—'हिन्दी भक्ति रसामृत सि धु' की भूमिका, पृ० ४

४ 'परकीया भावे ग्रति रसेर उल्लास।'—चैं० च०, ग्रादि लीला (चतुथ ग्रनुच्छेद)

५ विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य–'रामभक्ति साहित्य म मधुर उपासना' (पृ० ७१) डॉ० माधव

६ प० परशुराम चतुर्वेदी–'सहजिया सम्प्रदाय (हि० सा० को०–१, पृ० ८२६)

अन्तःकरण में अनुभव करता रहता है।[1] इस मत में निश्चय ही कृष्ण की अपेक्षा राधा की विशेष महिमा है। यहाँ राधा के बिना कृष्ण अपूर्ण हैं।

निष्कर्षतः चैतन्यावतार में राधा कृष्ण की युगलोपासना पूर्णतः प्रतिबिम्बित है। इस युगलोपासना के स्वरूप और परम्परा पर भली भाँति विचार करने पर चैतन्य के साथ साथ कृष्णचरित की विशेषताएँ भी प्रकाश में आ जाती हैं। चैतन्यदेव ने इस युगल स्वरूप का मध्ययुग (१६ वीं शती) के सार्वभौम प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया। इससे तत्कालीन सभी वैष्णव आचार्य, सम्प्रदाय और कवि प्रभावित हुए। आचार्य द्विवेदी ने इसी तथ्य को चमत्कारपूर्ण ढंग से हिन्दी जगत में यह कहकर उद्घाटित किया था—वल्लभाचार्य और सूरदास में सहजमतवाद का अस्तित्व है।[2] वस्तुतः चैतन्य की ही मध्यस्थता में यह युगलवाद इन भक्तों को उपलब्ध हुआ था।

कृष्ण—उपर्युक्त विवेचन से कृष्ण सम्बन्धी निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं—

(१) चैतन्य के कृष्ण मात्र कृष्ण नहीं राधा कृष्ण युगल स्वरूप में हैं।

(२) इस युगल मूर्ति के स्वरूप निर्माण में तन्त्र और सहजवाद के हर-गौरी और शृङ्गार काव्य के राधिका कान्ह पूर्णतः एकमेक हो गये हैं।

(३) राधा और कृष्ण क्रमशः रति और रस रूप हैं। ये दोनों एक और अभिन्न हैं। लीला रस के आस्वादन के लिए वही द्विधा विभक्त हो गये हैं।

(४) द्विधा विभक्त होने पर कृष्ण हैं उपपति नायक और रस विदग्ध नगर और राधा हैं परकीया नायिका और रति नागरी। कृष्ण हैं मधुकर और राधा हैं केलि चतुरा केतकी। बौद्ध मत की साधना भूमि में पल्लवित होने के कारण व्रज के वैष्णव सम्प्रदाय की तुलना में गौडीय मत का लीलावाद, परकीया रस की दृष्टि से, विशेष निर्भीक और उद्दाम है।

(५) अन्य वैष्णव सम्प्रदाय में (निम्बार्क, वल्लभ, हरिवंश आदि) राधा कृष्ण के भेद को केवल औपचारिक माना गया, किन्तु चैतन्य मत में अभेद में भेद ही सत्य है।

(६) भेद को सत्य मानने के कारण स्वभावतः विरह का पक्ष यहाँ विशेष घनीभूत हो उठा है। वस्तुतः चैतन्यमत वियोग में संयोग और संयोग में चिरवियोग की पद्धति पर अवस्थित है।

(७) शास्त्रीयता और लोक भावना को समान महत्त्व मिलने के कारण जो राधा कृष्ण स्वरूप गठन हुआ, उसमें काव्य का शृङ्गार और धर्म की भक्ति भावना का झिलमिल रूप प्रस्फुटित हुआ है।

(८) चैतन्य मत में कृष्णावतार का प्रयोजन लीलारस (प्रेम रस) का आस्वादन है। भू भारहरण की यहाँ आनुषंगिक चर्चा है। इसके प्रतिकूल वल्लभ मत की भागवतीय परम्परा में कृष्ण अवतार का मूल लक्ष्य प्रयोजनिक है वैसे, अहैतुकी या लीलावादी

---

१ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी—सूर-साहित्य ('स्त्री-पूजा और उसका वैष्णव रूप, पृ० २७)

२ वही—(पृ० २१)

(ग्रानन्दवादी) लक्ष्य भी इसमे सम्मिलित है। इस दृष्टि से कृष्ण भावना को इन सम्प्रदायो म दो रूपो मे प्रतिफलित किया गया है—

(क) चरितात्मक और (ख) लीलात्मक।

(क) चरितात्मक पक्ष कृष्ण के बाल से लेकर यौवन कालीन समग्र रूपो पर साग रूप से दृष्टिपात करने का समुत्सुक है। इसका चरम दृष्टान्त वल्लभ सम्प्रदाय की साहित्य साधना में प्रकट हुआ है। इसका भावपक्ष अत्यन्त व्यापक और उदात्त है। इसे ही भागवतीय परम्परा का स्वरूप कहेंगे।

(ख) लीलात्मक पक्ष के अन्तर्गत राधा कृष्ण की शृङ्गारलीला विशेष स्फूर्ति से व्यजित हुई है। चरित्र की दृष्टि से इसका भावपक्ष अपेक्षया सीमित है, जिसकी ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अत्यन्त व्यग्यपूर्ण ढग से लक्ष्य किया था। किन्तु जहाँ तक प्रेम की अन्तलता और पारदर्शिता का प्रश्न है राधा कृष्ण की लीला केलि अपने आप म अत्यन्त राग गरिष्ठ है। इसमें रमण और रसास्वादन की आनन्दवादी धारणा को पूर्ण ससिद्धि प्राप्त हुई है।[1] सूर तथा ब्रज के अन्य रससिद्ध कवियो ने कृष्ण भावना के उक्त चरितात्मक और लीलात्मक दोनो पक्षो का आत्मसात् कर लिया है। किन्तु, परवर्ती युग म उत्तरोत्तर लीला पक्ष (शृङ्गार लीला) का ही अतिरेक हो गया है।

राधा—इस लीलावाद की केन्द्र बिन्दु राधा ठकुरानी हैं। वह महाभावस्वरूपा, सवगुणसम्पन्ना और कृष्ण वल्लभाओ की चूडामणि हैं।

महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठाकुराणी। सवगुण खानि कृष्ण कान्ता शिरामणि॥ चै०च०

भगवान् कृष्ण ने प्रेमक्रीडा के विस्तार के लिए अपनी ह्लादिनी शक्ति का राधा रूप मे प्रेमावतरण किया है। कृष्ण बहुवल्लभ हैं। उनकी प्रेयसियाँ कई कोटि की है। इनम ३ मुख्य हैं-(१) लक्ष्मीगण, (२) महिषीगण और (३) ब्रजागनागण। इन त्रिविध कान्ताओ का कोटि विस्तार एक कान्ता शिरोमणि राधा को केन्द्र करके ही हुआ है। इनम परकीया के कारण और गोपन तत्त्व, प्रेमरस की पराकाष्ठा और समर्पण तथा कृष्णहेतु प्रीति के कारण राधा ही सभी महिषियो मे श्रेष्ठ हैं। आत्म सुख और परसुखहित आत्मविसर्जन दोनो क्रमश काम और प्रेम हैं। पहला स्वार्थ प्रधान होने के कारण चमत्कारशून्य है तो दूसरा परार्थ प्रधान होने के कारण महिमाशाली। एक है आत्मेन्द्रियप्रीति इच्छा तो दूसरी है कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा। लोक ललनाओ म कृष्णप्रेयसी कुब्जा अधम, रुक्मिणी आदि महिषिया मध्यम और गोपियाँ उत्तम रमणिया हैं। इसी को क्रमश साधारणी समजसा एव समर्था रति के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। गोपिया मे भी चन्द्रादि म आत्मप्रीति का अभिमान रहने के कारण अर्थात् कृष्ण मेरे है का मान रहने से उत्तम किन्तु राधादेवी म मैं कृष्ण की हूँ मात्र रहने के कारण वह उत्तमोत्तम अथवा श्रेष्ठतम प्रेयसी हैं—

सेइ गोपीगण मध्य उत्तमा राधिका। रूपे गुणे सौभाग्ये प्रेमे सर्वाधिका॥

---

१ चैतन्य मत का यह केन्द्रीय तत्त्व निम्न पद मे अभिव्यक्त हुआ है।

च०च०, आदि चतुर्थ परकीया भावे अति रसेर उल्लास ब्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास॥

ब्रजवधूगणेर एइ भाव निरवधि। तार मध्ये श्री राधार भावेर अवधि॥

अन्त करण म अनुभव करता रहता है ।[1] इस मत म निश्चय ही कृष्ण की अपेक्षा राधा की विशेष महिमा है । यहाँ राधा के बिना कृष्ण अपूर्ण हैं ।

निष्कर्षत चैतन्यावतार म राधा कृष्ण की युगलोपासना पूर्णत प्रतिबिम्बित है । इस युगलोपासना के स्वरूप और परम्परा पर भली भाँति विचार करने पर चैतन्य के साथ साथ कृष्णचरित की विशेषताएँ भी प्रकाश म आ जाती हैं । चैतन्य ने इस युगल स्वरूप को म ययुग (१६ वी शती) के सार्वभौम प्रतीक के रूप म प्रतिष्ठित किया । इससे तत्कालीन सभी वैष्णव आचार्य, सम्प्रदाय और कवि प्रभावित हुए । आचार्य द्विवेदी ने इसी तथ्य को चमत्कारपूर्ण ढग से हिन्दी जगत म यह कहकर उद्घाटित किया था —वल्लभाचार्य और सूरदास म सहजमतवाद का अस्तित्व है ।[2] वस्तुत चैतन्य की ही मध्यस्थता म यह युगलवाद इन भक्तों को उपलब्ध हुआ था ।

कृष्ण—उपर्युक्त विवेचन से कृष्ण सम्बन्धी निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं—

(१) चैतन्य के कृष्ण मात्र कृष्ण नही, राधा कृष्ण युगल स्वरूप म हैं ।

(२) इस युगल मूर्ति के स्वरूप निर्माण म तन्त्र और सहजवाद के हर गौरी और शृङ्गार काव्य के राधिका-माधव पूर्णत एकमेक हो गये हैं ।

(३) राधा और कृष्ण क्रमश रति और रस रूप हैं । ये दोनों एक और अभिन्न हैं । लीला रस के आस्वादन के लिए वही द्विधा विभक्त हो गये हैं ।

(४) द्विधा विभक्त होने पर कृष्ण हैं उपपति नायक और रस विदग्ध नगर और राधा हैं परकीया नायिका और रति नागरी । कृष्ण हैं मधुकर और राधा हैं केलि चतुरा केतकी । बौद्ध मत की साधना भूमि मे पल्लवित होने के कारण ब्रज के वैष्णव सम्प्रदाय की तुलना मे गौडीय मत का लीलावाद, परकीया रस की दृष्टि से, विशेष निर्भीक और उद्दाम है ।

(५) अन्य वैष्णव सम्प्रदाय मे (निम्बार्क, वल्लभ, हरिवंश आदि) राधा कृष्ण के भेद को केवल औपचारिक माना गया, किन्तु चैतन्य मत म अभेद मे भेद ही सत्य है ।

(६) भेद को सत्य मानने के कारण स्वभावत विरह का पक्ष यहाँ विशेष घनीभूत हो उठा है । वस्तुत चैतन्यमत वियोग म सयोग और सयोग मे चिरवियोग की पद्धति पर अवस्थित है ।

(७) शास्त्रीयता और लोक भावना को समान महत्त्व मिलने के कारण जो राधा कृष्ण स्वरूप गठन हुआ, उसमे काव्य का शृङ्गार और धर्म की भक्ति भावना का झिलमिल रूप प्रस्फुटित हुआ है ।

(८) चैतन्य मत मे कृष्णावतार का प्रयोजन लीलारस (प्रेम रस) का आस्वादन है । भू भारहरण की यहाँ आनुषगिक चर्चा है । इसके प्रतिकूल वल्लभ मत की भागवतीय परम्परा मे कृष्ण अवतार का मूल लक्ष्य प्रयोजनिक है वसे, अहैतुकी या लीलावादी

---

१ आचार्य ह० प्र० द्विवेदी—सूर साहित्य ('स्त्री-पूजा और उसका वैष्णव रूप, पृ० २७)

२ वही—(पृ० २१)

(आनन्दवादी) लक्ष्य भी इसमे सम्मिलित है। इस दृष्टि से कृष्ण भावना को इन सम्प्रदायो म दो रूपा म प्रतिफलित किया गया है—

(क) चरितात्मक और (ख) लीलात्मक।

(क) चरितात्मक पक्ष कृष्ण के बाल से लेकर यौवन कालीन समग्र रूपा पर साग रूप से दृष्टिपात करने को समुत्सुक है। इसका चरम दृष्टान्त वल्लभ सम्प्रदाय की साहित्य साधना में प्रकट हुआ है। इसका भावपक्ष अत्यन्त व्यापक और उदात्त है। इसे ही भागवतीय परम्परा का स्वरूप कहगे।

(ख) लीलात्मक पक्ष के अन्तगत राधा कृष्ण की शृङ्गारलीला विशेष स्फूर्ति से व्यजित हुई है। चरित्र की दृष्टि से इसका भावपक्ष अपेक्षया सीमित है, जिसकी ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अत्यन्त व्यग्यपूर्ण ढग से लक्ष्य किया था। किन्तु, जहाँ तक प्रेम की अन्त लता और पारदर्शिता का प्रश्न है राधा-कृष्ण की लीला-केलि अपने आप म अत्यन्त राग गरिष्ठ है। इसमें रमण और रसास्वादन की आनन्दवादी धारणा को पूर्ण ससिद्धि प्राप्त हुई है।[1] सूर तथा ब्रज के अन्य रससिद्ध कवियो ने कृष्ण भावना के उक्त चरितात्मक और लीलात्मक दोनो पक्षो का आत्मसात् कर लिया है। किन्तु, परवर्ती युग म उत्तरोत्तर लीला पक्ष (शृङ्गार लीला) का ही अतिरेक हो गया है।

राधा—इस लीलावाद की केन्द्र बिन्दु राधा ठकुरानी हैं। वह महाभावस्वरूपा, सवगुणसम्पन्ना और कृष्ण वल्लभाओ की चूडामणि हैं।

महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठाकुराणी। सवगुण खानि कृष्ण कान्ता शिरोमणि॥ चै०च०

भगवान् कृष्ण ने प्रेमक्रीडा के विस्तार के लिए अपनी ह्लादिनी शक्ति का राधा रूप मे प्रेमान्तरण किया है। कृष्ण बहुवल्लभ हैं। उनकी प्रेयसियाँ कई कोटि की हैं। इनम ३ मुख्य हैं-(१) लक्ष्मीगण, (२) महिषीगण और (३) व्रजागनागण। इन त्रिविध कान्ताओ का कोटि विस्तार एक कान्ता शिरोमणि राधा को केन्द्र करके ही हुआ है। इनम परकीया के कारण और गोपन तत्त्व प्रेमरस की पराकाष्ठा और समपण तथा कृष्णहेतु प्रीति के कारण राधा ही सभी महिषियो मे श्रेष्ठ हैं। आत्म सुख और परसुखहित आत्मविसजन दोना क्रमश काम और प्रेम हैं। पहला स्वार्थ प्रधान होने के कारण चमत्कारशून्य है तो दूसरा परार्थ प्रधान होने के कारण महिमाशाली। एक है आत्मेन्द्रियप्रीति इच्छा तो दूसरी है कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा। लोक ललनाओ म कृष्णप्रेयसी कुब्जा अधम, रुक्मिणी आदि महिषियाँ मध्यम और गोपियाँ उत्तम रमणियाँ हैं। इसी को क्रमश साधारणी, समजसा एव समर्था रति के अन्तगत परिगणित किया जाता है। गोपियो मे भी चन्द्रादि म आत्मप्रीति का अभिमान रहने के कारण अर्थात् कृष्ण मेरे हैं का भान रहने से उत्तम किन्तु राधादेवी मे मैं कृष्ण की हूँ मात्र रहने के कारण वह उत्तमोत्तम अथवा श्रेष्ठतम प्रेयसी हैं—

सेइ गोपागण मध्ये उत्तमा राधिका। रूपे गुणे सौभाग्ये प्रेम सर्वाधिका॥

---

१ चतन्य मत का यह केन्द्रीय तत्त्व निम्न पद मे अभिव्यक्त हुआ है।

च०च० आदि चतुथ परकीया भावे अति रसेर उल्लास ब्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास॥
व्रजवधूगणेर एइ भाव निरवधि। तार मध्ये श्री राधार भावेर अवधि॥

रूप, गुण, सौभाग्य, प्रेम में सर्वाधिका इस राधिका का कृष्ण प्रेम बनाता है। वह आपादमस्तक कृष्णमयी है। उनके नेत्रों में प्रेमरस के आगार कृष्ण निरंतर विराजमान हैं। उनके कृष्ण का स्वरूप परम प्रेममय है–

किवा प्रेमरसमय कृष्णेर स्वरूप। तॉर शक्ति तॉर सह हय एक रूप॥

उसकी एक ही साध है और वह है परम प्रेममय श्रीकृष्ण की प्राप्ति। और उसके लिए उसने गंभीर आराधना की। इतनी कि पुराणकारों ने उस आराधिका का नाम तक उसी के अनुरूप 'राधिका' रच डाला–

कृष्णवाञ्छा पूर्तिरूप करे आराधन। अतएव 'राधिका' नाम पुराणे वाखान॥

बड़ी तपस्या से राधादेवी ने श्रीकृष्ण का प्रेम प्राप्त किया था। और दोनों इस प्रेम सिन्धु में इस प्रकार निमग्न हुए कि बाद में यह कह सकना कठिन हो गया है कि राधा ने कृष्ण के लिए तपस्या की थी या कृष्ण ने राधा के लिए योग रमाया था। क्योंकि कविराज ने आगे जो कुछ भी कृष्ण के मुख से कहलाया है उससे तो राधा की ही प्रवणता सिद्ध हुई है। कुछ भी हो, इस रूप गुण सम्पन्ना राधा ने भुवनविमोहन कृष्ण को मोह तो लिया ही था और इस प्रकार वह उनके अंतरंग संग में इतनी ऊपर उठ गयी कि उन्हें परिचालित करने वाली हजारों रमणियों की पटरानी बन गयी।

राधा कृष्ण प्रेम–लीला रस के ये दो अनुपम प्रेमी युगल शक्ति और शक्तिमान्, एक और अभिन्न हैं। कविराज गोस्वामी के शब्दों में–

राधा पूर्ण शक्ति, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान्। दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्र परमाण।
मृगमद तार गंध यैछे अविच्छेद। अग्नि ज्वालाते यैछे कभु नहे भेद॥
राधाकृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप। लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥

कहते हैं इस अनंत विचित्र प्रेम से मण्डित राधा के साथ लीलारस का आस्वादन करके भी श्रीकृष्ण के कुछ लोभ अतृप्त रह गये थे, जिसके लिए उन्हें गौरावतार लेना पड़ा। वह लोभ क्या था ? कृष्ण नट थे राधा सूत्रधार, कृष्ण विषय थे, राधा आश्रय, कृष्ण वृत्त थे, राधा बिन्दु। किन्तु आज जब विषय का आश्रय बनने की प्यास जगी है तो उन्हें गौरांग अवतार लेना पड़ा। इस प्रकार कृष्ण के इस गौरावतार का कारण पारमार्थिक, दार्शनिक या तात्विक नहीं, कवित्व की रसोपलब्धि है।[1] यह रस ब्रह्मानन्द सहोदर ही नहीं 'रसो वै स' है। गौरावतार कृष्ण भी 'रसो वै स' ही हैं।[2] कविराज ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

श्रीकृष्ण रस बोध के ३ स्तर–

(१) **राधा प्रेम की महिमा**–कृष्णावतार की इस रस दशा के ३ स्तर हैं। प्रथम स्तर है–

---

१ डॉ० श० भू० दा० गुप्त–श्री रा० क्र० वि० (पृ० २३९)

२ महाप्रभु ने अपनी आराधना के हेतु श्रीकृष्ण के जिस स्वरूप को चुना वे भगवान् समस्त रसों की मूर्ति हैं।–डॉ० श्यामनारायण पाण्डेय (हि० कृ० का० माधुर्योपासना ४१)

कृष्ण कहे आमि हइ रसेर निधान ।
पूर्णानन्दमय आमि चिन्मय पूर्ण तत्त्व । राधिकार प्रेमे आमा कराय उन्मत्त ॥
ना जानि राधार प्रेमे आछे कत बल । जे बले आमारे करे सवदा विह्वल ॥
राधिकार प्रेमगुरु आमि शिष्य नट । सदा आमा नाना नृत्ये नाचाय उद्भट ॥
निज प्रेमास्वादे मोर हय जे आह्लाद । ताहा हैते कोटि गुण राधा प्रेमास्वाद ॥

आत्मानन्द कृष्ण की तुलना मे राधिका के कोटि गुण प्रेमास्वाद पर प्रेय को सगव विस्मय है। मिलन सुख के लिए जहा राधा-कृष्ण दोनो भागी हैं राधा वियोग के अनुभव के लिए तो कृष्ण को राधा का तप्त हृदय धारण करना ही होगा। विरह की आग म जलने वाली राधा ने विद्यापति के स्वरो म महाराज कृष्ण का अभिशाप दिया था—

काह्न हाअयि जवे राधा । जानथि विरहक बाधा । '

प्रेमी कृष्ण ने गौरावतार म इस बाधा को भी 'प्रेमानन्द अनुभव' कहकर पूरी तरह साध लिया है—

सेइ प्रेमार श्री राधिका परम आश्रय । सेइ प्रेमार आमि हइ केवल विषय ॥
विषय जातीय सुख आमार आस्वाद । आमा हैते कोटिगुण आश्रयेर आह्लाद ॥
आश्रय जातीय सुख पाइते मन धाय । यत्ने आस्वादिते नारि कि करि उपाय ॥
कभु यदि एइ प्रेमार हइये आश्रय । तबे एइ प्रेमानन्देर अनुभव हय ॥

इस प्रकार यहा आश्रय को विषय और विषय का आश्रय करके रसावतार कृष्ण की प्रेमानुभूति की व्यजना करायी गई है।

कृष्णावतार की रस दशा का दूसरा स्तर है।

(७) राधा आस्वादित कृष्ण की माधुर्य महिमा —

स्निग्ध प्रेम की अद्भुत मधुरिमा का रसास्वादन विषय स्वय नही कर पाता। श्री राधा के हृत् मुकुर म ही कृष्ण माधुय की चरम अभिव्यक्ति होती है। राधा प्रेम की गहराई और वैचित्र्य के द्वारा ही कृष्ण का सौन्दय माधुय उत्तरोत्तर विकसित होता आया है। और राधा रूप ग्रहण न करने से कृष्ण अपने मे निहित अनन्त माधुय का स्वय आस्वादन नही कर सकते थे। अत अपने मधुर स्वरूपोपलब्धि के लिए ही कृष्ण को राधिका की भाव कान्ति ग्रहण करनी पडी—

अद्भुत अनत पूर्ण मोर मधुरिमा । त्रिजगते इहार केहो नाहि पाय सीमा ॥
एइ प्रेमद्वारे नित्य राधिका एकलि । आमार माधुर्यामृत आस्वादे सकलि ॥
यद्यपि निमल राधार सत्प्रेम दपण । तथापि स्वच्छता तार बाढे क्षणे क्षण ॥
आमार माधुर्येर नाहि बाढिते अवकाशे । ए दपणेर आगे नवनव रूपे भासे ॥
म माधुय राधा प्रेम दाहे हाड करि । क्षणे क्षणे बाढे दाह केहो नाहि हारि ॥
आमार माधुय नित्य नव नव हय । स्व स्व प्रेम अनुरूप भक्ते आस्वादय ॥
दपणाद्ये देखि यदि आपन माधुरी । आस्वादिते लोभ हय आस्वादिते नारि ॥
विचार करिये यदि आस्वाद-उपाय । राधिका स्वरूप हइते तबे मन धाय ॥

इस तरह कृष्ण ने राधा भाव मे विभोर होकर निरतर निज माधुय का खुद ही आस्वादन किया है।

कृष्णवतार के रस दशा का तीसरा स्तर है—

(३) कृष्ण-सम्बन्धी प्रेम के आस्वादन काल में राधा के सुख का आस्वादन—

गोपी सौंदर्य को निरख कर कृष्ण प्रफुल्लित हो उठते हैं। उधर गोपी सोचती है कि मेरे सौंदर्य ने कृष्ण को मोह लिया है। और किसी रमणी के लिए उसके सौंदर्य का पुरस्कार इससे बढ़कर और क्या है। अत गोपी को इससे जो मानसिक आह्लाद हुआ उससे उसकी अंतरग छवि छटा निखर उठी। अगो म अनूप छवि का सभार लिए जिस समय गोपिका अपने अतमन म मनमोहन का छवि दशन कर रही थी, उसके अतर म पट पर कृष्ण उसकी गौरश्याम छवि का दुहरा रग पान करने लग—

गोपी शोभा देखि कृष्णशोभा बाड़े मन। कृष्णशोभा देखि शोभा बाड़े तत॥
एइ मत परस्पर पड़े हुडा हुडि। परस्पर बाड़े केह मुख नाहि मुडि॥

कृष्ण प्रेम रस के अवतार थे। राधा उनकी मोहिनी शक्ति था। स्वय कृष्ण कहते हैं—

मोर रूपे आप्यायित करे त्रिभुवन। राधार दशने मोर जुड़ाय नयन॥
मोर वशी गीते आकर्षये त्रिभुवन। राधार वचन हरे आमार श्रवण॥
यद्पि आमार गधे जगत सुगध। मोर चित्त प्राण हरे राधा अग गध॥
यद्पि आमार रसे जगत सुरस। राधार अधर रसे आमा करे वश॥
यद्पि आमार स्पर्श कोटीन्दु शीतल। राधिकार स्पर्श आमा करे सुशीतल॥

प्रकृति को आश्रय करके को गयी पुरुष की सारी क्रीडा चेष्टाएँ प्राकृत है। ऊपर इ ही पचत मात्राओं की ऐंद्रिक झकार प्रकट हुई है। रसावतार कृष्ण का यही अहेतुकी स्वरूप है—

रस आस्वादिते आमि कैल अवतार। प्रेमरस आस्वादित विविध प्रकार॥

अचिन्त्यभेदाभेदवाद —

चैतन्य मत के सिद्धात को 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' भी कहा जाता है। यहाँ इसे भलीभाँति समझ लेना चाहिए।

चैतन्यमत म परमतत्त्व स्वय श्रीकृष्ण हैं। यह तत्त्व सच्चिदानन्द स्वरूप तथा अनन्त शक्ति युक्त है। शक्ति और शक्तिमान म न तो परस्पर भेद है और न अभेद ही। इन दोनों का सम्बन्ध तर्कों के द्वारा अचिन्त्य है। अत यही 'अचिन्त्य भेदाभेद' कहलाता है। रूपगोस्वामी ने इसे ही अपने लघुभागवतामृत म यों कहा है।—

एकत्व च पृथक्त्व च तथा शत्वमुताशिता।
तस्मिन्नेकत्र नायुक्तम् अचिन्त्यानतशक्तित॥ १/२०॥

शक्ति के न्यूनाधिक प्रकाश के कारण पुरुषोत्तम के ३ रूप हैं—ब्रह्म परमात्मा और भगवान्।[१]

ब्रह्म ज्ञान गम्य है। परमात्मा योग साध्य है। किन्तु भगवान् भक्ति भावित हैं। यही परब्रह्म है, यही कृष्ण हैं, यही भगवान् है। यानी श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति जब

---

१ भागवत—१/२/११

प्रकट रहती है तब उसे भगवान् कहते हैं। भगवान् की ३ शक्तियाँ हैं–जीवशक्ति, माया शक्ति और स्वरूप शक्ति। उपर्युक्त दो प्रकृति के वशीभूत हैं किन्तु अन्तिम स्वरूप शक्ति अप्राकृत नित्य गोलोक मे प्रकट है। श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। अत उनके ३ गुणों के अनुरूप इनकी स्वरूप शक्ति के भी ३ स्वरूप हुए—संधिनी, संवित और ह्लादिनी। भगवान् जिसके द्वारा सत्ता धारण करते हैं वह संधिनी, जिसके द्वारा स्वय को जानते हैं वह संवित् और जिसके द्वारा आह्लादित होते हैं वह ह्लादिनी शक्ति है। इस ह्लादिनी के दो काम हैं भगवान् का आह्लादित करना और भक्त को आह्लादित करना–

सुख रूप कृष्ण करे सुख आस्वादन। भक्तगणे सुख दिते ह्लादिनी कारण। –मध्य ८ म भगवान् म ह्लादिनी रसरूपिणी है–भक्त-हृदय मे वही भक्ति रूपिणी है। स्वरूप शक्ति की सारभूता यह जो ह्लादिनी शक्ति है उसी की सारघनमूर्ति हैं–राधा नित्य प्रेम स्वरूप की ही नित्य प्रेम रूपिणी। इनमे ऐश्वर्य, कारुण्य के अतिरिक्त माधुर्य की चरम स्फूर्ति है। यह अधिरूढ महाभाव तक अन्तर्व्याप्त है। इन्ही के आश्रय से वृन्दावन सर्वोच्चधाम और व्रजेश्वर कृष्ण सवश्रेष्ठ हैं। इसके प्रकट और अप्रकट दो स्वरूप हैं। सर्वोच्चधाम मे ही द्विभुज मुरलीधारी गोपेश्वर कृष्ण की गोपेश्वरी राधा के साथ नित्य लीला होती है। प्रकट और अप्रकट दोनो मे ही उनके अन्य परिकर प्रकट और अप्रकट रूप मे वर्तमान रहते है। ये एक दूसरे के 'प्रकाश विशेष' हैं। अप्राकृत वृन्दावन का युगलविहार ही भक्तो का परमाराध्य है। इस नित्य वृन्दावन मे राधा और कृष्ण नित्य किशोर किशोरी हैं। ये दोनो एक होकर भी लीला के बहाने दो हैं—अभेद म भी भेद है। अचिन्त्य शक्ति के बल से ही इस अभेद मे लीलाविलास से भेद है। यही 'अचिन्त्य भेदाभेद' वाद है।

महाप्रभु चैतन्य ने अपने मत के स्थापनार्थ स्वय कुछ नही लिखा। वस्तुत सम्प्रदाय रूप म चैतन्य मत के प्रवर्त्तन का श्रेय उनके शिष्यो को ही दिया जा सकता है जो वृन्दावन के षडगोस्वामियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन छ गोस्वामियों के नाम हैं—सनातन, रूप, गोपालभट्ट, रघुनाथ दास, रघुनाथभट्ट और जीवगोस्वामी। इनम से प्रथम दो सनातन और रूपगोस्वामी को तो स्वय महाप्रभु ने अपने विचारो के प्रतिनिधि सवाहक और प्रचारक के रूप मे वृन्दावन भेजा था। इनमे सर्वाधिक प्रतिभाशाली आचार्य और कवि रूपगोस्वामी हैं। चैतन्यदेव की विचारधारा का जितनी गहराई से इन्होने समझा और प्रतिपादित किया वैसा कोई और शिष्य न कर सका। कृष्णभक्ति परम्परा को इनकी ३ बहुमूल्य देन हैं–

(१) भक्ति का रसात्मक निरूपण,
(२) पचभावोपासना का स्वरूप स्थापना,
और (३) राधा कृष्ण का विभावन।

उपर्युक्त दो तत्वो के लिए उनका 'हरिभक्ति रसामृत सिन्धु' और अन्तिम तत्त्व के लिए विशेषत 'उज्ज्वल नीलमणि' अद्वितीय रसग्रन्थ है। एक प्रकार से यह सम्पूर्ण ग्रथ ही राधा माधव की कमनीय केलि का शास्त्रीय निरूपण है। वैसे इनके अतिरिक्त इनकी लगभग एक दर्जन कृतियां हैं जिनमें कृष्णलीला का महिमाशाली चित्रण मिलता है। इनकी भाषा संस्कृत है। कहना न होगा कि मध्ययुगीन कृष्णभक्ति मे माधुर्य भाव का व्यापक समावेश इन्ही की साधना का प्रयास फल है। ब्रज के तत्कालीन कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय वल्लभ,

राधा वल्लभ तथा हरिदासी सबो पर इनका न्यूनाधिक प्रभाव माना जाता है। यहाँ संक्षेप मे श्री रूपगोस्वामी द्वारा प्रतिपादित प्रमाभक्ति के सन्दभ मे कृष्णभावना का उल्लेख किया जाता है।

(ख) माधुर्य भक्ति का स्वरूप —जिस प्रकार, कविवर जयदेव ने अपने गीत गोविन्द की प्रस्तावना म 'हरि स्मरण' और 'विलास कला' दोना के सामरस्य से प्रेमा भक्ति की सृष्टि की थी उसी प्रकार रूपगोस्वामी ने भक्ति को रस राट सिद्ध करने के लिए अपने ग्रन्थ की प्रस्तावना म 'जगमङ्गल और सुहृन्प्रमोद' का सामजस्य विधान किया।[1] दशन की भक्ति और काव्य के रस को जोडने के लिए जिस दिव्य तत्त्व की अपेक्षा हुई वह हैं लीलापुरुष श्रीकृष्ण प्रेम के देवता। अत भक्ति उ ही का अनुकूल भाव से मनसावाचा कमणा सेवन है। यह अन्य कामनाओ से मुक्त तथा ज्ञान कर्मादि जटिल बन्धनो से पूणत अनावृत्त है।[2] इस भक्ति के दो भेद हैं—वैधी और रागानुगा। वैधी विधिप्रधान है, रागानुगा रागकेन्द्रित। वैधी भक्ति उस पुरुषोत्तम की दीप्ति की पुजारी है रागानुगा भक्ति उसकी कमनीय कान्ति की मुग्ध दर्शिका। वैधी मे कुछ कुछ भय श्रद्धा या सभ्रम का बन्धन रहता है। किन्तु रागानुगा म धम कम, विधि निषेध सब छूट जाते हैं। वैधी मे पुरुषोत्तम प्रभु होते हैं किन्तु रागानुगा म वह प्रभु से वत्स, सखा या कान्त हो जाते हैं। कृष्ण इस रागमयी भक्ति के सवश्रेष्ठ देवता हैं। भक्त भी वे ही सवश्रेष्ठ हैं जिनका मन चितचोर ने पहले ही हरण कर लिया।

चितचोर कृष्ण और लक्ष्मीपति विष्णु मे सिद्धान्तत कोई अन्तर न रहने पर भी मार्मिक अन्तर यह है कि कृष्ण का स्वरूप विष्णु की अपेक्षा अत्यधिक रसमय है।[3]

भक्ति के भेद —भक्ति का वर्गीकरण सवप्रथम निम्नतालिका द्वारा व्यक्त किया जाता है।
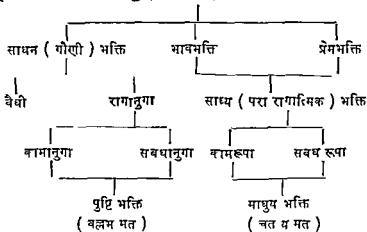
१ भक्तिरमस्य प्रस्तुतिरखिल जगन्मङ्गल प्रसस्य।
अनेनापि मयाऽस्य क्रियत सुहृदा प्रमोदाय ॥ ६ ॥ (—सामान्य भक्तिलहरी)

२ अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरुत्तमा ॥ १ —सामान्य भक्ति लहरी।

३ सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि कृष्णश्रीशस्वरूपया। रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थिति ॥१८

गौडीय मत मे कृष्ण भक्ति को शुद्ध या उत्तमा भक्ति कहते हैं। इसके प्रथमत दो वग हैं—(१) साधन भक्ति और (२) साध्य भक्ति। इन्ह ही क्रमश गोपी और परा-भक्ति भी कहते हैं। साध्य या परा भक्ति ही रागात्मका भक्ति कहलाती है।

शुद्ध भक्ति के ६ गुण हैं—क्लेशघ्नी, शुभदायिनी, मोक्षलघुताकृत, सुदुलभा, सान्द्रानन्द विशेषात्मा और भगवदाकर्षिणी।

साधन भक्ति के दो भेद हैं—(१) वैधी और (२) रागानुगा। वैधी विधिप्रधान और राग रहित है। किन्तु, रागानुगा म राग ही मुख्य है।

वस्तुत रागानुगा भक्ति ही मधुर भाव की मूलाधार है। जैसे विषयी पुरुषो का विषयो के प्रति आकषण होता है, उसी प्रकार भक्त का जब भगवान् के प्रति आकषण होता है तब उसे राग कहते हैं।

> 'तत्र विषयिण स्वाभाविको विषय ससर्गेच्छामय प्रेमा राग
> यथा चक्षुरादिना सौंदर्यादी तादृश एवात्र भक्तस्य श्री भगवत्यपि
> राग इत्युच्यते।'—जीवगोस्वामी—'भक्ति सदर्भ'

यह राग जहाँ प्रबल होता है वही रागात्मिका (भावरूपा साध्य) भक्ति है।

व्रजवासी जना मे इसकी पूण अभिव्यक्ति है। रागात्मिका की अनुसारिणी होने के कारण ही इसे 'रागानुगा' कहते हैं। इसी को पुष्टिमाग (वल्लभ सम्प्रदाय) मे 'पुष्टि माग' कहते हैं।

रागानुगा भक्ति की दशाएँ हैं—(१) प्रेमा, (२) परा और (३) प्रौढा।

(१) प्रेमा—जब भगवान् (कृष्ण) के प्रति हृदय म भाव उमड़े, तो उसे प्रेमा कहते हैं।

(२) परा—जब भगवान् के साथ किसी सम्बन्ध विशेष मे दृढता पूवक बँध जाने पर भाव म परिपक्वता आ जाय, तो उसे 'परा' कहते हैं। इसम रति स्थिर हो जाती है।

(३) प्रौढा—रसराज के मधुर स्वरूप का रसस्वादन करने पर तीव्र विरह की ज्वाला जल उठती है और इस ज्वाला म जब वृत्तियो का पूण निरोध हो जाता है तब परमात्मा का साक्षात्कार होता है। यही प्रौढा भक्ति है। इस मधुर रस भी कहते हैं। प्रेमा और में दास्य, सख्य वात्सल्यादि रस आते हैं किन्तु प्रौढा के अन्तगत केवल मधुर या शृङ्गार रस आता है।

रागानुगा और रागात्मिका—साधन भक्ति का दूसरा भेद 'रागानुगा भक्ति' है। उधर साध्य भक्ति जिसके २ भेद—भावभक्ति और प्रेमभक्ति हैं—उसे रागात्मिका भक्ति कहते हैं। अत यहा साधन भक्ति (गौणा) की 'रागानुगा और साध्य भक्ति (परा) की रागात्मिका' मे अन्तर समझ लेना चाहिए।

मूलत तो दोनो म क्रमश साधन और साध्य का अन्तर स्पष्ट ही है। अर्थात् 'राग' दोनो म उभयनिष्ठ है। किन्तु पहले म जहाँ वह साधन है वहा दूसरे मे साध्य।

दूसरे, रूपगोस्वामी ने रागानुगा भक्ति का स्वरूप लक्षण प्रस्तुत करने से पूव स्वय रागात्मिका भक्ति की ओर सकेत करते हुए लिखा—व्रज की गोपियो म स्पष्टत विराजमान

रागात्मिका (भाव, प्रेम साध्य) भक्ति का अनुकरण करने वाली जो भक्ति है वह 'रागानुगा भक्ति' कहलाती है। रागात्मिका के २ भेद हैं—(१) कामरूपा और (२) सम्बन्ध रूपा। उसी प्रकार रागानुगा के भी २ भेद हैं—(१) कामानुगा और (२) सम्बन्धानुगा।

(१) कामानुगा—यह कृष्ण के प्रति सम्बन्धाभिमान से युक्त मधुर काम प्रेममयी सेवा के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने की कामना की प्रवृत्ति है। व्रजलीला में इसके आश्रय हैं-मधुर भाव भाविता श्री व्रजसुन्दरियाँ। इनमें सम्बन्धाभिमान से भगवत्प्रेरणा नहीं जगती। मात्र एकान्तिक और एकनिष्ठ काम प्रेम ही उनकी भक्ति का प्रेरक है। यह काम वासना नहीं प्रत्युत स्वयं परम प्रेम ही है।[1]

इसके भी २ भेद हैं—(१) सम्भोगेच्छामयी (२) तत्तद्भावेच्छामयी। केलि सम्बन्धी अभिलाषा से युक्त भक्ति सम्भोगेच्छामयी और व्रजदेवियों के भावाभिलाषा वासनामयी भक्ति तत्तद्भावेच्छामयी है।

(२) सम्बन्धानुगा यह कृष्ण के प्रति पिता, माता, सखा, भ्राता, दास पुत्रादि—नाना सम्बन्धों के अभिमान से भावित होकर की जाती है। इसके आश्रय हैं—नंद यशोदादि ज्येष्ठ वर्ग सुबल श्रीदामादि सखावर्ग एवं रक्तक पत्रकादि दास वर्ग।

साधनलहरी के मत में रूपगोस्वामी ने स्पष्टतः कहा है कि—कृष्ण और उनके भक्तों की कृपा मात्र की प्राप्ति ही जिसका एकमात्र फल है। इस प्रकार की इस रागानुगा भक्ति को कुछ लोग 'पुष्टि मार्ग' कहते हैं।'[2] यहाँ इनका स्पष्ट लक्ष्य वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग की ओर है। पुष्टिमार्ग साधन भक्ति के रागानुगा मार्ग तक ही प्रेम में अग्रसर होता है। इस प्रेम की पराकाष्ठा जहाँ रागात्मिका भक्ति के अन्तर्गत प्रेमा आदि में होती है वहाँ राधा का महाभाव दशा तक इसकी अन्तर्व्याप्ति नहीं हो पाती। इसके प्रतिकूल गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय की साधना का तो यही मुख्य केन्द्र बिन्दु ही है।

रागात्मिका भक्ति—रागात्मिका भक्ति को साध्य भक्ति या पराभक्ति भी कहते हैं।

भाव—इसका आधार है—**भाव**। इसके रति, प्रेम, स्नेह आदि अनेक पर्याय है। भाव मन की विशुद्ध सत्त्व प्रधान अवस्था का उद्रेक है।[1] इस अवस्था में भक्त के कृष्णानुरागी चित्त में एक विशेष प्रकार की आर्द्रता उत्पन्न होती है। जब साधनमूला भक्ति के अभ्यास से भक्त का विशुद्ध अन्तःकरण सत्त्वोद्रेक से मसृण हो जाता है तब प्रेम रूपी सूर्य की किरणों के समान कान्त भावों का प्रस्फुटन होता है। यह प्रेमा की प्रथम अवस्था है। भाव का ही दूसरा नाम रति, प्रेमांकुर या प्रीत्यंकुर है। यही वृद्धि क्रम से स्नेह, मान प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव में परिणत हो जाता है। साथ ही, यही भावना क्रम से शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर स्वरूपों में भावित होकर क्रमशः तत्तत् रसों में पर्यवसित हो जाता है। यह भाव रति का समानार्थक है क्योंकि रूपगोस्वामी के अनुसार पुराण और नाट्यशास्त्र दोनों में वैसा ही है।

---

१ गौतमीयतन्त्र—प्रेमैव गोप रामाणां काम इत्यगमत प्रथाम।

२ भ० र सि०—कृष्णतद्भक्त कारुण्यमात्र लाभैक हेतुका ॥१०८॥
पुष्टिमार्गतया—कैश्चिदियं रागानुगोच्यते।

पुराणे नाट्यशास्त्रे च द्वयोस्तु रतिभावयो ।
समानार्थतया ह्यत्र द्वयमैक्येन लक्षितम् ॥८॥

अनुभाव—भावों के उदय के अनन्तर अनुभाव का प्रकटन होता है। इसे ही जातरति भक्तों का लक्षण कहा जाता है। ये ९ हैं—

(१) क्षान्ति (२) अव्ययकालत्व (३) विरक्ति (४) मानशून्यता (५) आशाबन्ध (६) समुत्कण्ठा (७) नामगान (८) गुण कथन और (९) निवास स्थान प्रीति। गुण कथन का उदाहरण जैसा कि कृष्णकर्णामृत में कहा है—[1]

माधुर्यादपि मधुरं मन्मथतातस्य किमपि कैशोरम् ।
चापल्यादपि चपलं चेतो बत हरति हन्त किं कुर्म ॥

अर्थात् 'ओह! कामदेव के जनक श्रीकृष्ण का माधुर्य से भी अधिक मधुर और चापल्य से भी अधिक चपल अनिर्वचनीय कैशोर बलात् मन को हरण किये जा रहा है। अरे, हम क्या करें?' यहाँ कृष्ण को कामदेव जनक कहना ध्यातव्य है।

भाव और प्रेम—भाव और प्रेम दोनों माध्यभूत हैं। भावभक्ति प्रारंभिक दशा है और प्रेमाभक्ति चरमदशा। प्रगाढ और प्रबल भाव का नाम ही प्रेम है। अन्तःकरण को अत्यन्त द्रवीभूत करा देने वाला और अत्यधिक ममता से युक्त मात्र भाव ही प्रेम कहलाता है।[2] इसमें भी महिमा ज्ञानयुक्त वैधी और केवल रागाश्रित प्रेम के दो स्वरूप निर्दिष्ट किये गये हैं। **प्रेमोदय का क्रम संकेत** इस प्रकार है—श्रद्धा, साधुसंग, भजन क्रिया, अनर्थ निवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव और प्रेम।

प्रेम की अन्तर्दशा—इस प्रेम की भी अनेक निगूढ और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दशाओं की कल्पना वैष्णवाचार्य ने की है। समग्र प्रेम ही प्रौढतर होते हुए अन्ततोगत्वा महाभाव-दशा में परिणत हो जाता है। रति अर्थात् भाव धीरे धीरे दृढ होकर प्रेम, स्नेह मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव बन जाते हैं। इनमें उत्तरोत्तर मधुरिमा बढ़ती जाती है। चैतन्य चरितामृत में रस वर्धित मधुरिमा का मनोरम दृष्टान्त प्रस्तुत है।

प्रेम क्रमे बाडि हय स्नेह, मान, प्रणय
१ २ ३ ४
राग अनुराग भाव महाभाव हय ॥
५ ६ ७ ८
यैछे बीज इक्षु रस गुड़ खण्डसार।
१ २ ३ ४
सकरा सिता मिछरि शुद्ध मिछरि आर ॥
५ ६ ७ ८
इहा तैछे क्रमे निर्मल क्रमे बाडे स्वाद।
रति प्रेमादि तैछे बाडये आस्वाद ॥ मध्य, २३॥

१ वही—भाव लहरी—२३०
२ सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कित ।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधे प्रेमा निगद्यते ॥ १ ॥ वही—प्रेमभक्तिलहरी

हृदय की मसृणता प्रेम है। प्रेम के दीपक से द्रवित चित्त में स्नेह उत्पन्न होता है। स्नेह सिक्त चित्त में माधुर्य के अतिरेक से जब मचलन या ऐंठन या गाँठ पड़ जाती है तब मान का पाषाण उठ आता है। किन्तु मान जब हृदय में अडिग विश्वास उत्पन्न कर देता उसे प्रणय कहते। और प्रणयोत्कर्ष में दुःख भी सुख बन जाता है। यही राग है। रागोत्पत्ति से चित्त में नव नव प्रेमानुभूतियों का जागरण होता है। यह अनुराग है। अनुराग जब स्व संवेद्यता को प्राप्त होता है तो उसे भाव दशा कहते हैं। इसके भी ३ स्तर हैं—'स्वसंवेद रूपत्व' 'श्रीकृष्णादिकमत्संवेदनरूपत्व' और संवेद्यरूपत्व। पहले में विशुद्ध प्रेमानन्दानुभव, दूसरे में प्रेम के विषय रूप कृष्ण का ज्ञान और तीसरे में प्रेम ज्ञान मिश्रण। इसे क्रमश प्रेमानुभूति, कृष्णानुभूति और उभयानुभूति भी कह सकते हैं। इन भावों में जो भाव व्रजदेवी में ही संभव हो उसी को महाभाव कहते हैं। यह भी २ हैं—रूढ़ और अधिरूढ़। रूढ़ में सात्विक भाव उदित होते हैं। इन अनुभावों की विशिष्टता से अधिरूढ़ महाभाव बनता है। अधिरूढ़ के भी २ रूप हैं—(१) मादन और (२) मादन। मादन हर्षवाचक है। मादन से रसोन्मत्तता उत्पन्न होती है। कृष्ण मिलन से जितने प्रकार का आनन्द वैचित्र्य उत्पन्न हो सकता है, मादन से वह सब उत्पन्न होता है। रूपगोस्वामी के अनुसार–जिससे कृष्ण भी क्षुभित हो जाते हैं, कान्ताशिरोमणि राधा ही इस मादन महादशा की अधिकारिणी हैं। इसे राधा महाभाव भी कहते हैं। यह ह्लादिनी का परम सुविलास है। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियों से घिरे हुए भी कुरुक्षेत्र के कृष्ण राधा दर्शन से मर्माहत और कुण्ठित हो गये थे। इसीलिए राधा कान्ताशिरोमणि' कही गयी हैं—

सर्वभावोद्गमोल्लासो मादनोऽयं परात्पर।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव य सदा॥–रूप गोस्वामी

भक्ति को रस मानने वाला साहित्यशास्त्र में कोई भी पृथक सम्प्रदाय नहीं था। अधिकांश काव्यशास्त्री इसे भाव मानकर रस रूप में खण्डन ही करते रहे। भक्ति रस की सृष्टि धार्मिक साहित्य में प्रथम बार वैष्णवाचार्य रूपगोस्वामी द्वारा की गयी। अत भक्ति रस और रसराज कृष्ण मध्ययुग के भक्तिवाद की इस युगान्तरकारी प्रतिभा के दो दिव्य मधुर उत्तरदान हैं। आरण्यक का रस सूत्र तथा भागवत माहात्म्य की निगम कल्पतरो वाली फल स्तुति प्रसिद्ध ही हैं। रूपगोस्वामी ने पूर्वनिर्दिष्ट पुराणों से माधुर्य भक्ति ली, *काव्यशास्त्र से रस लिया। और, काव्यशास्त्र की मध्यस्थता में कामशास्त्र से नायक नायिका* लेकर धूमधाम से भक्ति को रस और भगवान् को रसराज सिद्ध कर दिया। राधा और कृष्ण रति और काम के उज्ज्वल प्रतिनिधि बन गये। फलत अगाध असीम नित्य प्रेम-लीला के विस्तारक राधा कृष्ण के अन्दर प्रवाहित रस के आस्वादन के निमित्त शृङ्गार के आश्रय और आलम्बन तथा उनके मिलन वियोग चित्रित होने लगे। इस प्रकार साहित्यिक रसों की प्रक्रिया के अनुसार ही भक्ति रस को प्रदर्शित किया गया। मधुर रस के स्थायीभाव कृष्ण रति का आलम्बन करके विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव या सात्विक भावों के जो वर्णन हुए हैं वे उस पूर्व आलंकारिक पीठिका के ही अनुवर्ती हैं। हाँ, लक्षणों के नीरस

प्रेम म फिर पौराणिक और लोक काव्यों के असख्य उदाहरण उन उच्छल फुहारो के सदृश हैं जिनमें कृष्ण लीला के नव-नव चित्र विशाल और भव्य इन्द्रधनुष की तरह खिच गये हैं। सम्प्रति, भाव और विभाव के संक्षिप्त परिवेश मे कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का उद्घाटन कर पचभावोपासना या रसोपासना के विवेचन से इस प्रसग को समाप्त किया जायगा।

भाव विवेचन —रूपगोस्वामी ने रस सिद्धान्त की टेक पर भक्ति रस के प्रमुख तत्त्वो और सिद्धान्तो का सागोपाग विवेचन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार,

स्थायीभाव —विभाव, अनुभाव सात्त्विक भाव और व्यभिचारिभावो के द्वारा श्रवणादि (मनन) की सहायता से भक्तो के हृदय मे आस्वाद्यता को प्राप्त कृष्णरति (स्थायी भाव) ही भक्ति रस है।[१] भक्ति रस का स्थायी भाव कृष्ण रति है।

विभाव—रति आस्वाद के जो कारण हैं वे विभाव कहलाते हैं। विभाव के दो भेद हैं—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन के भी २ भेद हैं—आश्रय और विषय। कृष्ण रति के विषय हैं और भक्त-गण इसके आश्रय।

आलम्बन कृष्ण—भक्ति रस के आलम्बन विभाव कृष्ण हैं। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है—
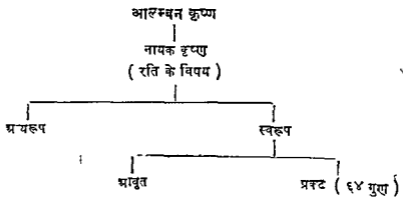
कृष्ण नायक शिरोमणि तथा स्वयं भगवान् हैं। और इस *नायकशिरोमणि कृष्ण* म साहित्यशास्त्रोक्त नायको के समस्त गुण नित्य रूप मे विराजमान हैं।[२]—

ये—स्वरूप और अन्य रूप से—दो प्रकार के माने गये हैं। स्वरूप के भी २ प्रकार हैं—(१) प्रकट और (२) आवृत। प्रकट तो प्रकट हा है किन्तु जब कृष्ण लीला विलास के

१ वही, विभाव लहरी ५-६—विभावरनुभावैश्च सात्त्विकै व्यभिचारिभि ॥
स्वाद्यत्व हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभि ।
एषा कृष्णरति स्थायिभावो भक्तिरसो भवेत् ॥

२ वही, १७—नायकाना शिरोरत्न कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महागुणा ॥
यह श्लोक अत्यन्त सारगर्भित है। रीति कवियो ने इससे 'नायकाना शिरोरत्न' लिया और भक्ति कवियो ने इससे 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

निमित्त स्त्रीवेश धारण करते हैं तब वह उनका आवृत्त स्वरूप कहलाता है। अन्यरूप दूसरो के द्वारा देखी जाने वाली कृष्ण की मनोरम कान्ति और तेजस्वी स्वरूप को कहते हैं।

गुण—कृष्ण मे ६४ कलाओ की नाईं ६४ गुणों का विस्तार से परिगणन है। इनमे ५० मुख्य, ५ गिरीश, ५ लक्ष्मीश और ४ गोविन्द के नामो से सम्बद्ध हैं। श्रीकृष्ण के भावमय चरित्र की दृष्टि से कुछ गुण ध्यातव्य हैं। जैसे—सुन्दराग, सुलक्षण, रुचिर, बलवान्, किशोर, प्रगल्भ, विदग्ध, प्रेमवश्य, नारीगण मनोहारी, नित्यनूतन, सच्चिदानन्द, लीला सिन्धु, मधुर प्रेम से प्रियमण्डल को मण्डित करने वाले, मुरलीवादक, चराचर को अपनी रूपश्री से विस्मयविमुग्ध करनेवाले आदि। इनमे अन्तिम ४ गोविन्द से सम्बद्ध हैं।

आयु—नायक कृष्ण की आयु के अनेक भेद होने पर भी किशोर कृष्ण ही नित्य नाना विलासो से युक्त सब प्रकार की भक्ति (दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर) के आश्रय हैं।[1]

रूपमाधुर्य—श्रीकृष्ण के रूपमाधुर्य के सम्बन्ध मे दशम स्कन्ध मे कहा है—

> का स्त्र्यग ते कलपदामृत वेणुगीत-
> सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्।
> त्रैलोक्यसौभगमिद च निरीक्ष्य रूप-
> यद् गोद्विजद्रुममृगा पुलकान्यबिभ्रन्॥ ३५१॥-विभावलहरी

अर्थात् 'हे कृष्ण ! तुम्हारे सुन्दर वचनामृत, वशी तथा गीत की ध्वनि से मोहित होकर तीनों लोको मे ऐसी कौन सी स्त्री है जो आर्यचरित से विचलित न हो जाय। जब कि त्रैलोक्य के सौन्दयभूत तुम्हारे इस रूप को देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और मृग आदि भी रोमाचित हो जाते हैं, तब स्त्रियो की तो कथा ही व्यर्थ है।'

इन कुछ उदाहरणो मे श्रीकृष्ण स्वरूप की रमणीयता ही नही, रसाचार्य रूप गोस्वामी की सुरुचिशालिता भी टपकती है।

गुण प्रकाश—इन गुणो के प्रकाशन की दृष्टि से कृष्ण के ३ रूप हो जाते हैं—(१) पूर्णतम (२) पूर्णतर और (३) पूर्ण। उपर्युक्त गुणो का जब सर्वाधिक प्रकाश फैलता है तब कृष्ण पूर्णतम कहलाते हैं। यह स्थान व्रज है। और जब गुणो का प्रकाश मध्यम या सम हो जाता है तब कृष्ण पूर्णतर और पूर्ण हो जाते हैं। ये स्थल द्वारिका और मथुरा हैं।

यहाँ एक बात ध्यातव्य है। चूँकि रति की उत्कृष्टता की दृष्टि से कृष्ण प्रेयसियो के ३ भेद किये गये हैं। अत उसी क्रमानुसार कृष्ण की भी व्रज मे पूर्णतम, द्वारिका मे पूर्णतर और मथुरा मे पूर्ण कहना रति-सगत है। इसे निम्नतालिका द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

---

१ भ० र० सि०—विभाव लहरी—

> वयसो विविधत्वे पि सर्वभक्तिरसाश्रय।
> धर्मी किशोर एवात्र नित्य नानाविलासवान्॥ ९१

रति	नायिका	स्थान	नायक
प्रौढा	गोपी	ब्रज	पूर्णतम
समजसा	रुक्मिणी	द्वारिका	पूर्णतर
साधारणी	कुब्जा	मथुरा	पूर्ण

मथुरा मे कृष्ण रति की आश्रयभूता कुब्जा है। और उसकी रति वैषयिक तथा स्वाथ प्रधान होने के कारण साधारणी कहलाती है। दूसरी ओर, द्वारिका में कृष्ण रति की आश्रयाभूता रुक्मिणी आदि महिषियाँ हैं। उनकी रति राजसी तथा आरम और कृष्ण-सुख की मध्यवर्ती होने के कारण समजसा कहलाती है। फिर भी वह पूर्वोक्त मथुरा की कुब्जा से प्रियतर है। इस तरह, महिषी नायक कृष्ण पूर्णतर तथा कुब्जा-नायक कृष्ण पूर्ण हैं। अतः द्वारिका के कृष्ण की अपेक्षा मथुरा के कृष्ण को पूर्णतर कहना युक्तिसगत नहीं।

धीरललित्य—राम धीरोदात्त और कृष्ण धीरललित नायक हैं। कृष्ण मे विशेषत धीरललितत्व स्पष्ट है। इस विषय म नाट्यशास्त्री प्राय कामदेव का कृष्ण के सदृश नामोल्लेख करते हैं।[1]

दोष-रहित गुणसहित—श्रीकृष्ण १८ दोषों से रहित तथा ८ गुणों से युक्त हैं। इन्हें 'मगलालकार रूप पुरुषनिष्ठा ८ सत्त्वभेद सद्गुण भी कहते हैं। ये हैं—शोभा, विलास, माधुर्य मागल्य, स्थैर्य, तेज, लालित्य तथा औदार्य। कस की सभा म प्रकट होने वाले कृष्ण, जो समुपस्थित व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न भावों द्वारा भावित होने से भिन्न भिन्न स्वरूपों मे एक ही समय देखे गये, तेजस्वी कृष्ण हैं।[2] लालित्य के अन्तगत कृष्ण की शृङ्गार

---

१ वही, विभाव लहरी—८५

गोविन्दे प्रकट धीरललितत्व प्रदश्यते। उदाहरन्ति नाट्यज्ञा प्रायोऽत्र मकरध्वजम्॥

२ तेज का उदाहरण जैसा कि दशमस्कन्ध म वर्णित है—

मल्लानामशनिर्नृणा नरवर स्त्रीणा स्मरो मूर्तिमान्
गोपाना स्वजनोऽसता क्षितिभुजा शास्ता स्वपित्रो शिशु॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषा तत्त्व पर योगिना
वृष्णीना परदेवतेति विदितो रग गत साग्रज॥ ७६॥ विभावलहरी

अर्थात् कस की सभा मे पहुँचने पर एक ही कृष्ण मल्ल वज्र, मनुष्य नररत्न, स्त्रियाँ—कामदेव गोप-स्वजन, राजा शासक, नन्दयशोदा शिशु कस-यमराज, अज्ञानी विराट, योगी परमतत्त्व और यादव इष्टदेव के भाव रूप में प्रतीत हुए।

चेष्टाएँ आती हैं।[१]

उद्दीपन कृष्ण—उद्दीपन कृष्ण के प्रति प्रेमोद्दीपक होता है। ये कृष्ण के गुण, चेष्टा व प्रसाधनादि के स्वरूप म ३ प्रकार के होते हैं।

गुण—गुण ३ हैं—कायिक, वाचिक, मानसिक। चेष्टा म रासलीला और दुष्टदमन लीला ये २ समग्र हैं। प्रसाधन के अन्तर्गत वस्त्र, आकल्प, मण्डनादि हैं।

उपयुक्त कायिक गुण ४ प्रकार के हैं—आयु रूप, रूप तथा मृदुतादि। यद्यपि ये कायिक गुण कृष्ण के स्वरूपभूत ही हैं फिर भी काल्पनिक भेद का स्वीकार कर यहाँ स्वरूप से भिन्न गुणरूप म इनकी चर्चा की गई है। ऐसा करने से ही य उद्दीपन विभाव हो सकते थे।[२]

कृष्ण के सुभग स्वरूप की तो आलम्बन रूपता ही हो सकती है और भूषणादि का केवल उद्दीपनत्व होता है। परन्तु उनके गुण आलम्बन और उद्दीपन दोनों का काम करते हैं। इनम आयु के ३ खण्ड हैं—कौमार, पौगण्ड और कैशोर। इनम प्रारम्भ से ५ वर्ष तक कौमार, १० वर्ष तक पौगण्ड और १६ वर्ष तक कैशोर रहता है। उससे आगे यौवनागम हो जाता है। **कैशोर कृष्ण की सर्वव्यापक अवस्था है।** इसम मुख्यत शृंगार और गौणत वात्सल्य, सख्य, दास्यादि समस्त भावानुवर्ती लीलाएँ हैं।[१]

इसके भी ३ खण्ड हैं—आद्य, मध्य और अन्त।

प्रथम कैशोर के आने पर वर्ण म कुछ उज्ज्वलता, नेत्रप्रान्तों म अरुणच्छवि और रोमावली प्रकट होने लगती है। इसम वैजन्ती माला, मोरमुकुटादि नटवर वेश, वंशी माधुरी और वस्त्रशोभा सहकारी हैं। भागवत, दशमस्कन्ध मे वृन्दावन लौटते हुए नटवर कृष्ण के स्वरूप मे इसी वय की व्यञ्जना है।[४]

इसके अनुसार नटवर कृष्ण के सिर पर मोरमुकुट, कानों म कनेर का फूल, कनकवर्णी पीताम्बर, पञ्चवर्णी आजानुलम्बिनी वैजन्तीमाला को धारण किये हुए वंशी छिद्रों को अपनी अधर-सुधा से परितृप्त करते हुए गीत-कीर्ति कृष्ण गोपवृन्दो के साथ धीरे पाँव वृन्दावन में प्रविष्ट हुए।

मध्यम कैशोर के आने पर दोनो जंघाओं बाहुओं और छाती मे अपूर्व सौन्दर्य आ जाता है और मूर्ति म मधुरिमा छा जाती है। आँखों म लीलाचाञ्चल्य और ओठो पर स्थिर मुस्कान और गीतध्वनि तीनो लोकों को मोह लेने वाली हो जाती है। शेषकैशोर के आने

१ जैसे—'रसिकशिरोमणि कृष्ण दाहिने हाथ से राधा के कुचों के ऊपर ध्यानमग्न होकर जल्दी जल्दी केलिमकरी बनाने मे व्यस्त हैं। इसी समय चार २ कौए के जोर जोर से बोलने से राधा कहीं डर न जाय यह समझकर रोमाचित होकर बाएँ हाथ से उन्हें परिकर में भर लेते हैं। ३७८।

२ भ० र० सि०—विभाव लहरी—११६,११७

३ वही —१२१

४ वही —३६३

पर तन की कान्ति और भी सु दर तथा त्रिवली आदि की अभिव्यक्ति होने लगती है। इसी को विद्वान् कृष्ण का **नवयौवन** कहते हैं और इसी अवस्था म गोकुलदवियो की समस्त कामनाएँ और भाव सर्वस्व की सम्पूर्ति होती है। काम-तन्त्र की सभा अभूतपूर्व रति लीलाएँ और शृङ्गारोत्सव इस अवस्था मे कृष्ण द्वारा (गोपियो के साथ) सम्पादित होती हैं।

आंगिक सौन्दर्य—कृष्ण का दूसरा कायिक गुण है। जैसे—हे कृष्ण! बडी बडी आखोवाला तुम्हारा मुख मरकतमणि की शिला के समान चौडा वक्ष, खम्भो के समान दृढ भुजाएँ, चिकने गोल पार्श्व, पतली कमर और मोटी लहरो के समान जघाएँ किस कमल-नयनी के हृदय का धारण नही कर लेती। ४०४

ऊपर उद्दीपन क तीसरे अग (१) गुण (२) चेष्टा के अनन्तर (३) प्रसाधन के वस्त्रादि ३ उपागो के विवरण हो चुके हैं। इसके ११ उद्दीपन ये हैं —(४) स्मित, (५) अग सौरभ (६) वश (७) शृङ्ग (८) नूपुर (९) कम्बु (१०) चरणचिह्न (११) क्षेत्र (१) तुलसी (१३) भक्त और (१४) कृष्णाष्टमी। यहाँ वश प्रभेद का जाल सा बिछ गया है। तो वशी के भेद, उनके नाम, उनकी लम्बाई चौडाई मुटाई और छिद्रो की सख्या परिगणन से हो सिद्ध होगा। इनका सागोपाग निरूपण अभीष्ट नही।

भक्तिशास्त्र म अनुभावो का प्रयोजन निरूपण साहित्यशास्त्र का सीधा अनुकरण है। अनुभाव भावो के द्योतक हैं। अनुभावों की कुल सख्या १३ है। इसके दो वग हैं—शीत और क्षेपण। इनम ५ शीत और ८ क्षेपण अनुभाव हैं। ९ वाँ लोकानपेक्षित अनुभाव द्रष्टव्य है।

सात्त्विक भाव—कृष्ण प्रेम से आक्रान्त चित्त सत्त्व कहलाता है। और, इस सत्त्व से जो भाव उत्पन्न होता है उसे सात्त्विक भाव कहते हैं।

सात्त्विकभाव प्रथमत ३ हैं—(१) स्निग्ध (२) दिग्ध और (३) रुक्ष। यह सवथा मौलिक वर्गीकरण है। इसकी कुल सख्या साहित्यशास्त्र के ही अनुसार स्तम्भ, स्वेद, रोमाचादि ८ है। इनके उदाहरणो म यथासम्भव कृष्ण की बाल लीलाओ का चित्रण है। भावों के क्रमागत विकास की दृष्टि से पुन इसके ४ वग होते हैं—(१) धूमायित (२) ज्वलित (३) दीप्त और (४) उद्दीप्त। (१) एक और अमिश्र भाव 'धूमायित' कहलाता है (२) जहाँ दो-तीन सात्त्विक मिलकर व्यक्त होते हैं वहाँ 'ज्वलित' होता है (३) तीन से पाँच तक के मिश्रित भाव 'दीप्त' कहलाते हैं। और (४) जब सभी भावों का सघ बन जाता है तब उसे 'उद्दीप्त' कहते हैं। ये उद्दीप्त 'महाभाव' की दशा म और भी अधिक सुदीप्त हो जाते हैं, जिससे सारे सात्त्विकभाव पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। इससे आगे भी ४ प्रकार के सात्त्विकाभासों की कल्पना की गयी है—

रत्याभासज सत्त्वाभासज, नि.सत्त्व और प्रतीप।

सचारीभाव—विशेष रूप से स्थायी भावों के प्रति अनुकूलता से सचरण करने वाले भाव सचारी या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। वाचिक आगिक तथा सात्त्विक रूप से इनकी सख्या शास्त्रानुसार ३३ है। इनके उदाहरणों में आधी वात्सल्य लीला और आधी शृङ्गार-लीला का उल्लेख है। दैन्य' म चीर हरण तथा 'त्रास' और आवेग' म वृषभासुर, बकासुर, पूतना, यमलार्जुन दावानल, तृणावर्त्त, गोवधन, यज्ञ, आदि बाल और असुर दमन सम्बन्धी लीलाओ के उल्लेख हैं। 'उन्माद मे कृष्णकर्णामृत से उद्धृत राधा स्तन को देखकर कृष्ण का बैल दूहने लग जाना वर्णित है। 'असूया' के लिए पद्यावली से

हैं, राधा लीलात्मक, । भाव इसका स्वरूप है और लीला (विलास) इसकी आत्मा । अत भावात्मक कृष्ण जिसके स्वरूप और लीलावती राधा जिसकी आत्मा हैं वह रति निर्विवाद रूप से परमोच्च रसहेतु है ।

यह (मजुल) रति कृष्ण (रति) को अपना विभाव बनाकर विभावनादि व्यापार को प्राप्त इनके ही द्वारा अपने आपको परिपुष्ट करती है। अत भाव या रति का यह अचिन्त्य प्रभाव है कि वह कृष्णादि को मधुर विभाव बनाकर रसरूपता को प्राप्त हो जाती है ।

काव्य रति और कृष्ण रति—काव्यानन्द की एक विशेषता यह है कि वह स्व पर की सुख दु खानुभूति से परे एक प्रबल आनन्दात्मक रसास्वाद को जन्म देता है। किन्तु, कृष्णरति की विशेषता यह है कि वह सयोग मे अत्य त सुखद किन्तु वियोग मे अत्यन्त आनन्दात्मक होते हुए भी उत्तरोत्तर तीव्र दु खाभास को प्रकाशित करती है ।[१]

रति या भावस्वरूप कृष्ण के दो रूप हैं—व्रजवासी कृष्ण और व्रजेतर (मथुरा, द्वारका के) कृष्ण । इनमे व्रजवासी कृष्ण से सम्बन्धित रति से जो अद्भुत आनन्द की उपलब्धि होती है वही परमानन्द स्वरूप तथा आनन्दानुभूति की चरमावधि है । इस आनन्द के सामने लक्ष्मीपति, रुक्मिणीपति या महाभारत के कृष्ण का कोई मूल्य नहीं । व्रजवासी कृष्ण विषयक रति से उत्पन्न आनन्द का तनिक सा लव स्पश उस अगस्त्य सा है जो व्रजेतर कृष्ण के अन्य स्वरूपो से उत्पन्न आनन्द को क्षण मे सुखा देता है ।[२]

यह रति परमानन्द से भिन्न है । इसलिए रस का स्वप्रकाशत्व तथा अखण्डत्व सिद्ध होता है ।[३]

भक्ति रस के भेद—इस भक्तिरस के २ भेद हैं—मुख्य तथा गौण । मुख्य भक्ति रस के ५ अग हैं—(१)शान्त, (२) प्रीति (दास्य), (३) प्रेम (सख्य), (४) वत्सल और (५) मधुर । किन्तु, वस्तुत य पचधा विभक्त रस एकनिष्ठ भाव से रति केन्द्रित ही हैं । इन पाँचो की क्रमश उत्कृष्टता समझनी चाहिए । कि तु ऐसा जान पडता है कि वैष्णवाचाय रूपगोस्वामी ने वल्लभ मत की वात्सल्य भक्ति पर चैतन्य मत की मधुर भक्ति की उत्कृष्टता की छाप छोडने के लिए ही एसा कह डाला । भावना के तारतम्य की दृष्टि से सख्य के बाद वात्सल्य तब मधुर की अपेक्षा सख्य के बाद सीधे मधुर का स्थान विशेष मनोवैज्ञानिक है । इसका वल्लभ सम्प्रदाय के प्रसग मे उल्लेख होगा । हिन्दी का भक्ति सम्प्रदाय कृष्ण मे भावात्मक स्वरूप पर ही आश्रित है । इसलिए कृष्ण की पचभावोपासना का सुविस्तृत निदशन वहीं होगा । इसके प्रतिकूल चतन्य मत श्रीकृष्ण के लीलात्मक पहलू पर विशेष केन्द्रित है । अत यहाँ सम्पूण कृष्ण चरित्र के स्थान पर युगल लीला है, लीला की अधिष्ठात्री राधा ठकुरानी हैं, उनका प्रेम और विरह है । किन्तु, वल्लभ मत की पचभावोपासना का विधिवत् निरूपण रसाचाय रूपगोस्वामी ने ही प्रस्तुत किया । अत कुछ लोग

१ वही—स्थायी भाव लहरी—८६, ९० ।
२ वही—९१—९२
३ वही—९३

चैतन्यमत में इस पंचभावोपासना की प्रसिद्धि का भ्रामक भी संकेत करते हैं। किन्तु, जहाँ वल्लभ मत भाव प्रधान है, वहाँ चैतन्य मत रस प्रधान। इसलिए वल्लभ मतावलम्बी कवि गण एकाधिक मनोरम भावों से रँग कर जहाँ अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण का शृङ्खलाबद्ध और सुविस्तृत चरित्राकण प्रस्तुत करते हैं वहाँ चैतन्य मतानुयायी कविगण एकनिष्ठ भाव से राधा माधव केलि क्रीडा की ही बहुविचित्र लीलात्मक झाँकी प्रस्तुत करते हैं। इस सम्बन्ध में श्रीराधा-तत्त्व के सुधी अन्वेषक एक गौड विद्वान् का कथन उद्धृत करते हैं।[1]

'बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय के अन्दर इस युगल उपासना और उसके साथ लीला वाद को जिस प्रकार सभी साध्य साधनों के मूलीभूत तत्त्व के रूप मे ग्रहण किया गया है, निम्बार्क सम्प्रदाय या वल्लभ सम्प्रदाय म लीलावाद की इतनी प्रधानता हम नहीं देखते हैं। वहाँ कृष्ण की लीला पर जितना जोर दिया गया है वह सब कुछ कान्ता प्रेम पर नही है, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि पर भी समभाव से जोर दिया गया है।'

अब मधुररस के **आलम्बन विभाव** कृष्ण और उनकी प्रेयसियों की स्वरूप स्थिति पर विचार करें। इस मधुररस के आलम्बन कृष्ण और उनकी प्रेयसिया हैं। आलम्बन कृष्ण सौन्दय और लीला मे अद्वितीय हैं। तथा वह विदग्धता के आगार हैं।

असमानोर्ध्वसौन्दर्य लीला वैदग्ध्य सम्पदाम् ॥१॥

आश्रयत्वेन मधुर हरिरालम्बनो मत।

कृष्ण की प्रेयसियों म राधा सवश्रेष्ठ हैं। प्रमाण यह है कि कृष्ण ने उनके उत्कृष्ट प्रेम का हृदय में धारण कर अन्य व्रज वनिताओ को भुला दिया।[2]

मुरली ध्वनि प्रबल उद्दीपन है। विस्मयविमुग्धकारिणी वंशी ध्वनि को सुनकर रोमाच, कम्पनादि शरीर की जो दशा होती है वही सात्त्विक भाव है। वैसे ही, निर्वेदादि सचारी भाव तथा मधुरारति स्थायी भाव हैं। राधा और कृष्ण मे परस्पर रति का यह भाव सदा अविच्छिन्न है।

मधुर भक्ति रस के २ भेद हैं—सभोग और विप्रलभ। विप्रलभ के पूवराग, मान, प्रवासादि कई भेद हैं। यहाँ वियोग का शब्दश उल्लेख नही है।

रूपगोस्वामी के उक्त रस ग्रन्थ से भक्तिकाल और रीतिकाल का साहित्य पूर्णत प्रभावित है। भक्तिकाल ने भाव लिया तो रीतिकाल ने विभाव। कथ्य लेने वाले भक्तों को भगवान् कृष्ण मिले और स्थापत्य लेने वाले कविया को नायक कृष्ण।

(ग) चैतन्य मत के प्रतिनिधि कवि

गदाधर भट्ट काव्य और कृष्ण

गदाधर भट्ट चैतन्य मत के प्रतिनिधि कवि और राधा कृष्ण युगल मूर्ति के अनन्य उपासक थे। इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध म विद्वान् एकमत नहीं हैं। अधिकाश विद्वान् उन्हें चैतन्य देव का समसामयिक भक्त मानते हैं किन्तु श्री प्रभुदयाल मीतल उन्हें गदाधर

---

१ डॉ० श० भू० दा० गुप्त—श्री रा० क्र० वि० (पृ० २८०)

२ गीतगोविन्द—३।१

पण्डित से भिन्न मानते हुए परवर्ती कवि मानते हैं।[1] नाभादास और 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास ने इनके कृष्णानुराग, प्रेमोन्माद, वृन्दावन वास आदि के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है।

इनकी रचनायें प्राय पदो मे निबद्ध हैं। ऐसा ही एक पद संग्रह है—'मोहिनी वाणी गदाधर भट्ट की।' इसमे संस्कृत छन्दो के अतिरिक्त वृन्दावन महिमा सम्बन्धी रोला छन्द मे लिखित 'योगपीठ' भी सम्मिलित है। इसकी छन्द सख्या लगभग ८० है। 'ब्रज माधुरी सार' मे इनके २५ पद सकलित हैं।

इनमे अधिकांश पद राधा कृष्ण के शृङ्गार रास, विलास, विवाह तथा मानादि प्रसगो पर रचित हैं। दो एक बार गोपी लीला का भी स्फुट प्रसग आया है। कहीं कहीं नन्द यशोदा के आश्रय से वात्सल्य के भी छिटफुट रूप मिलते हैं। इनके अतिरिक्त यमुना, वंशी, वर्षा, हिंडोल, वसन्त और होली आदि ऋतु विषयक पद भी सगृहीत हैं।

कृष्ण मूर्तिमन्त वसन्त—वसन्त राग मे निबद्ध एक पद में कुंजबिहारी कृष्ण का मूर्तिमन्त वसन्त रूप प्रस्तुत है—[2]

देखो प्यारी, कुंज बिहारी मूरतिवन्त बसन्त।
मौरी तरुनि तरनिजा तन में, मनसिज रस बरसन्त॥
अरुन अधर नव पल्लव सोभा, विहँसन कुसुम विकास।
फूले विमल कमल से लोचन, सूचत मन उल्लास॥
चलि चूरन कुन्तल अलिमाला, मुरली कोकिल नाद।
देखत गोपीजन बनराई मदन मुदित उनमाद॥
सहज सुवास स्वास मलयानिल, लागत परम सुहायो।
श्री राधा माधवी 'गदाधर' प्रभु परसत सचु पायो॥१२

उधर बौरी हुई यमुना, इधर काम रस मे उमगता हुआ प्रेम सिन्धु, उधर नव नव किसलय, इधर लाल-लाल अधर, उधर सुमनो का विकास तो इधर श्याम सलाने का उन्मद हास, उधर कमलों का दल पर दल खोलते जाना तो इधर यौवनावेग से लोचनों का वितान, उधर भौरों की भीर तो इधर श्याम की घुघराली अलकें, उधर मदनोन्माद तो इधर गोपियों के हृदय को मथने वाले वनराज और उधर कामियो को विचलित कर देने वाला दक्षिण पवन तो इधर प्रेम की तरंगों में लहराने वाली सुरभित साँस। भक्तवर गदाधर ऐसे राधा माधव की युगल जोडी का चरण स्पर्श पाकर न जानें कितने खुश हैं।

---

१ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य (पृ० १५६)—'ब्रज माधुरी सार तथा आचार्य रा० च० शुक्ल डॉ० रा० कु० वर्मा और डॉ० ह० प्र० द्विवेदी के इतिहास ग्रन्थो मे यह गलत बात बार-बार दुहराई गयी है कि गदाधर भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के समकालीन और उनके दीक्षा प्राप्त शिष्य थे। वास्तविक बात यह है कि चैतन्य महाप्रभु को भागवत की कथा सुनाने वाले गदाधर पण्डित गोस्वामी थे, जो गदाधर भट्ट से भिन्न महानुभाव थे।'

२ ब्र० मा० सा०—(पृ० ८१)

उपर्युक्त पद में कुन्जविहारी राधा कृष्ण की प्रणय माधुरी और वसन्त शोभा का मनोहर छवि अंकन हुआ है। कृष्ण का यह रूप अनेकश चित्रित है।

एक और ऐसे ही पद में उन्हें 'वनमाली' का आस्पद दिया गया है—[1]

आजु व्रजराज को कुवर वन ते बन्यो, देखि, आवतें मधुर अधर रजित बेनु।
मधुर कलगान निज नाम सुनि स्रवन पुट, परम प्रमुदित वदन फेरि हूकति धनु॥
मद विघूर्नित नैन मन्द विहसनी बैन, कुटिल अलकावली ललित गोपद रेनु।
ग्वाल बालनि जाल करत कोलाहलनि, सृङ्ग दल ताल धुनि रचत सचत चैनु॥
मुकुट की लटक, अरु चटक पट पीत की प्रकट अकुरित गोपी मनहिं मैनु।
कहि 'गदाधर' जु इहिं न्याय व्रज सुन्दरी विमल वनमाल के बीच चाहतु ऐनु॥ २१

व्रजराज कुँवर आज वन से बन ठन कर मधुर अधर पर वेणु धरे आ रहे हैं। वह उसमें हर गाय के अलग अलग नाम भर कर पुकारते हैं जिनके मीठे रव से गायें पीछे मुड़-मुड़ कर रमाती आती हैं। मद भरे नयन, ओठो पर मन्द मादक मुस्कान और मुस्कराहट से सने मीठे बैन, मुख पर डोलनेवाली टेढी अलकें और श्याम छवि पर गोधूलि का मनोहर राग रंग उनके सौन्दर्य में चार चाँद लगा देता है। ग्वालबालो का कोलाहल तथा शृङ्गी-नाद, मोर मुकुट के कुण्डलों की छटा और पीताम्बर की चटक से तो मानो गोपियो के मन मे कामाकुर फूट रहा है। इस बाँके वनमाली की माला में वे स्वय को पिरो देना चाहती हैं।

वृन्दावन विहारी कृष्ण का उक्त वनमाली रूप 'वनदेव' की दिव्य कल्पना का ही काव्यात्मक प्रतिरूप है। इसी स्वरूप की ओर लक्ष्य करते हुए हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहासकार ने लिखा था—[2] 'कृष्ण की ईश्वरीय सृष्टि सर्व प्रथम' 'वनदेव' की भावना में मानी जानी चाहिए। प्रकृति में वसन्त श्री से नवीन जीवन की सृष्टि होती है, नवीन पल्लवो मे सौन्दर्य फूट पडता है। इस नवीन जीवन को उत्पन्न करने वाली शक्ति के प्रति प्राचीनतम काल के असंस्कृत हृदय में भक्ति का उद्रेक होना स्वाभाविक है। 'वनदेव' के इस पूर्ण परिणत स्वरूप पर मध्यकाल का भक्त हृदय भी समान भाव से पुलकित है।

राधा-वल्लभ कृष्ण—इस कवि ने कृष्ण की अपेक्षा राधा भाव की रसवत्ता का अतिरिक्त बखान किया है। राधा के आश्रय से कुञ्ज लीला का विशद चित्रण मिलता है। कहीं 'गिरिराज धर तें अधिक विदित रसराय अद्भुत कला धारिनी' राधा की महिमा वर्णित है तो कहीं 'कृष्ण तनु लीन मनरूप की चातकी' कहकर उन्हें साध्यस्थानीया बना दिया है। यह राधा वल्लभ सम्प्रदाय की ओर प्रकट रुझान है। वस्तुत 'किशोरी' 'मंजरी' या 'सखी' तत्त्व कुछ ऐसे विशिष्ट लीलोपादान हैं जो दोनों मतों में सम्प्रयुक्त हुए हैं। इनमें सखी भाव की पराकाष्ठा हरिदासी सम्प्रदाय में हुई है। किन्तु कुञ्ज और किशोरी तत्त्व का अतिरेक हित सम्प्रदाय में अधिक है। इन दोनों की पराकाष्ठा क्रमश टट्टी सम्प्रदाय और 'किशोरी भजा सम्प्रदाय' मे हुई है।

---

१ ग्र० मा० सा०—(पृ० ८७)

१ डॉ० रा० कु वर्मा—' हि० सा० आ० इ० (पृ० ७११-७१२)

सूरदास मदनमोहन काव्य और कृष्ण

ये अकबर के शासन-काल में सडीले के अमीन नियुक्त थे। इनका असली नाम 'सूरध्वज' था। ये श्री मदनमोहन के परम भक्त थे। नाभादास के भक्तमाल के अनुसार इन्होने अपने इष्टदेव का नाम अपने नाम के साथ इस तरह जोड लिया था कि असली नाम छिप गया और ये सूरदास मदनमोहन के नाम से विख्यात हो गये—

'(श्री) मदनमोहन सूरदास की, नाम शृङ्खला जुरि अटल।'[1] 'सूरदास' नाम साद्दश्य के कारण तो इनकी बहुत सी रचनाएँ भी 'सूरसागर' म निमज्जित हो गयी हैं। एक ही पद इन दोनो के नाम के साथ चल पडे हैं। य जाति के ब्राह्मण और चैतन्य सम्प्रदाय के नैष्ठिक वैष्णव थे। कहते हैं य अनन्य साधु सेवी और भक्त थे। सम्राट् अकबर को १३ लाख की तहसील इन्होने साधुओं के सत्कार म उडा दी और राता रात वृन्दावन भाग गये।[2]

श्री वियोगी हरि के अनुसार– इनका रचना काल स० १५९० के लगभग जान पडता है।'[3] इनके स्फुट पदो का एक सग्रह 'सुहृत् वाणी श्री सूरदास मदनमोहन की' नाम से प्रकाशित है जिसम १०५ पद हैं।[4] श्रीराधाचरण गोस्वामी के अनुग्रह से श्री वियोगीहरि ने अपने ब्रज मा० सा० (पृ० १०१–१०७) म इनके १४ पद उद्धृत किये हैं। *डॉ० सरयू प्र० अग्रवाल ने अपने ग्रथ म इनके केवल १२ पद दिये हैं और उन्ही को प्रामा*णिक माना है। इनके अतिरिक्त बाबा कृष्णदास और श्री प्रभुदयाल मीतल के भी सस्करण हैं।

नाभादास ने अपने भक्त माल के एक प्रसिद्ध छप्पय मे इनकी सांगीतिक, शृङ्गार-प्रधान, प्रेम रहस्य से परिप्लावित और काव्य गुणो से मनोहारी सरस कृतियो की भूरिश प्रशसा की है। इससे ऐसा जान पडता है कि इन्होने नव रस मे शृगार को ही विविध भाँति से गाया है।[5] इनके रचित पदो में कृष्ण की बाल छवि नख शिख, (वशी प्रीति) रास विलास, मान, विवाह, खण्डिता होली, धमार, हिंडोल आदि सरस विषय वर्णित हैं।

---

१ भक्तमाल छप्पय–१२६

२ भक्ति रस बोधिनी टीका कवित्त सख्या ४९८, ५००।

> तेरह लाख सडीले उपजे, सब साधुन मिलि गटके।
> सूरदास मदनमोहन आधी राति को सटके॥

३ किन्तु श्री प्रभुदयाल मीतल उनका जन्म स० १५७० मानते हैं–देखिये, 'चैतन्य मत और ब्रज साहित्य,—१५०

४ डॉ० मलिक मुहम्मद–'वैष्णव धर्म और कृष्ण भक्ति काव्य' (पृ० १४४)

५ भक्तमाल सटीक–७२६–गान-काव्य गुन रासि सुहृद सहचरि अवतारी।

> राधा-कृष्ण उपासि, रहसि सुख के अधिकारी॥
> नवरस मुख्य सिंगार विविध भाँतिन करि गायौ।
> बदन उच्चरत वेर सहस पाँयन ह्वै धायौ॥

निम्न पद म नवल किशोर गोविन्द के चितचोर रूप की मनोहर झाँकी प्रस्तुत है–

गौर गोविन्द नवलकिसोर सखी चितचोर, ठाढे हैं द्रुम की छहियाँ।
अधर धरे मुरली ऊच सुर लीयें सुनि तोहि बुलावत हैं माई री, तू कत कहति नहियाँ।।
बिनही अजन खजन से नैना पिय मन रजन, रहैं तिरछी ह्वै पिय मन महियाँ।
'सूरदास मदनमोहन' के ध्यान तेरो निसिवासर सखी, कौन प्रकृति तो पहियाँ।।७।।
—प्र० मा० सा०—१०४

एक दूसरे पद मे श्याम सलोने कृष्ण के मधुकर रूप की अनुपम नखशिख छवि अकित है। उनके प्रातदर्शन के लिये 'सुर नर मुनि द्वार ठाढें' हैं।

मधु के मतवारे श्याम खालो प्यारे पलकें। सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकें।
सुर नर मुनि द्वार ठाढे दरस हेतु किलकें। नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललक।।
कटि पीताम्बर मुरली कर स्रवन कुण्डल भलक। 'सूरदास मदनमोहन' दरस देहौं
भल क।। १३।।—प्र० मा० सा०—१०७

कुछ ऐसे भी पद हैं जो दोना कवियो के नाम पर चल रहे हैं। इनका एक प्रबल कारण दोनो का भाव-साम्य और वर्णन साम्य भी है। अत इन रचनाओं की प्रामाणिकता पर स्वतन्त्र विचार अपेक्षित है।

मदनमोहन जी के कृष्ण प्रेम म भावना गत व्याप्ति और लीलागत अनेकता के दर्शन होते हैं। कृष्ण की बाल लीला, माखन चोरी, वशी प्रीति, गोपियो से नोक झोंक, राधा-जन्म-बधाई, राधा कृष्ण केलि आदि के अनेकानेक चित्रण मिलते हैं। युगल छवि का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव तो इनकी वाणियो का शृगार ही कर गया है।

वशी सम्मोहन–विषयक एक पद में कुञ्ज भवन में प्रतीक्षा करने वाले 'राधारमण' कृष्ण की एक आतुर मुद्रा अकित है—

तू सुनि कान दै री, मुरली तेरे गुन गाव स्याम कुञ्ज भवन।
सनमुख होइ करि ताहि को आखों भरि सा तन परसि आवे जो पवन।।
तेराई ध्यान धरत उर अतर नैन मूदि निकसत उर दरपत, तेरोई
आगम सुनि स्रवनन।
'सूरदास मदनमोहन' सो तू चलि मिलि ताहि तें पायो नाम राधारमन।। ६।।
—प्र० मा० सा० (१०५)

कृष्ण कुञ्ज भवन में बैठकर वशी मे राधा का नाम भर-भर कर टेर रहे हैं। वह नायिका के ध्यान मे तन्मय हैं। हर ममर में प्रिया की पग ध्वनि ही सुन पडती है। सखी रोम रोम से प्रतीक्षातुर नायक कृष्ण के समागम के हित नायिका को प्रेरित करती हुई कहती है कि एक मात्र तुम्हारे सग रमण करने से ही तो कृष्ण राधा रमण कहलाने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

मदनमोहन जी के यह कृष्ण विद्यापति के 'नन्दक नन्दन ' से हू बहू मिल जाते हैं।

युगल छवि विषयक एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत है—

स्याम निकट सनमुख ह्वै बैठी स्यामा कंचन मनि आभूषन पहिर ।
साँवरे तन में प्रतिबिम्बित हैं, मानो स्नान करत बैठी जमुना जल म गहिर ।
अंग अंग आभास तरंग गौर स्यामता सुन्दरता सोभा की लहरें ।
'सूरदास मदन मोहन' मोप कहि न आवति, मेरी दृष्टि न ठहरें ॥८॥

—व्र० मा० सा० (१०४)

यहाँ स्यामा स्याम की गौर स्याम छवि का वर्णन अभीष्ट है । गोरी राधा यमुना के श्याम जल में गहरे पैठ कर मानो स्नान कर रही है । यह नूतन उत्प्रेक्षा है । अंग अंग म आभा की तरंगें छिटक रही हैं । इस गौर श्याम छवि म जैसे सुन्दरता और शोभा की लहरें उठ रही हैं । उक्त पद मे राधा और कृष्ण क्रमश सुन्दरता और शोभा के पर्याय हैं । कवि की यह उत्प्रेक्षा भाव और विभाव दोनो ही क्षेत्रों म सार्थक है ।

निष्कर्षत सूरदास मदनमोहन के कृष्ण उपासना के क्षेत्र म 'मदनमोहन' और कवित्व के क्षेत्र म 'राधा रमण' कृष्ण हैं ।

इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवियो म माधवदास, रामराय, चन्द्र गोपाल आदि प्रसिद्ध कृष्ण भक्त हैं । ब्रजभाषा के सैकडो कवियों में माधवदास इस मत के प्रथम ब्रज कवि के रूप मे उल्लिखित हुए हैं ।[१] इन सबो ने अपनी अपनी रचनाओं में कृष्ण की भावोपासना उक्त दोनो ही रूपों मे की है ।

---

१ श्री प्रभुदयाल मीतल— चैतन्य मत और ब्रज साहित्य' (पृ० १३२)

तृतीय अनुच्छेद

वल्लभ-मतावलम्बी कवियों के कृष्ण

पृष्ठभूमि—वल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों के विवेचन क्रम मे वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, हरिराय आदि मा य आचार्यों के मतो की समीक्षा की जा चुकी है। इनके भक्ति सिद्धान्तो पर भागवत की नवधा भक्ति 'नारद पाचरात्र', 'नारद भक्तिसूत्र' आदि की प्रेम पद्धति की पूरी छाप है। सम्प्रदाय की छत्रछाया मे पल्लवित होने वाले अष्टछाप के कवियो की कृष्ण भक्ति भावना म इन सबो की सामूहिक अभिव्यक्ति हुई है। इनके साथ ही, इन कवियो ने तत्कालीन गौड़ीय मत की रागानुगा भक्ति को भी पूर्णत आत्मसात् किया था। और इस प्रेममूलक रागात्मिका भक्ति के केन्द्र मे भावमय कृष्ण प्रतिष्ठित हैं। इस तरह, अष्टछाप की निखिल रचनाओ मे प्रेमाभक्ति के प्रतिनिधि भाव (दास्य, वात्सल्य, सख्य और कान्त) सन्निविष्ट हैं। इन प्रतिनिधि भावो के आलम्बन कृष्ण (बाल कृष्ण, गोपी कृष्ण, राधा-कृष्ण) यहाँ भाव और विभाव दानो ही रूपो म अभिव्यञ्जित हुए हैं। अत भावदेव श्रीकृष्ण की भावोपासना के स्वरूप पर सवप्रथम विचार कर लेना आवश्यक है।

भावोपासना का स्वरूप—भावोपासना भक्ति भावना का ही एक अग है। इसमे भगवान की भक्ति भाव रूप मे की जाती है। रागात्मिका भक्ति का अर्थ ही है-भगवान् (कृष्ण) के साथ जीव का रागात्मक सम्बन्ध। यह रागात्मक सम्बन्ध ससार म वैयक्तिक सम्बन्ध के आदर्शों पर ही अवलम्बित है। ससार मे जसे माता पिता, मित्र और कान्ता के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध है, उसे उठाकर भगवान मे (कृष्ण मे) आरोपित कर देने पर रागात्मिका भक्ति की नीव पड जाती है। श्री मद्भागवत की नवधा भक्ति तथा 'नारद भक्तिसूत्र की प्रेमलक्षणा भक्ति म, इन सम्ब धा का स्फुट आभास मिलता है।

नवधा भक्ति-श्री मद्भागवत म भक्ति के ९ भेद मान गये हैं।[१] य हैं-(१) श्रवण, (२) कीतन, (३) स्मरण, (४) पाद सेवन, (५) अर्चन, (६) व दन, (७) दास्य, (८) सख्य और (९) आत्म निवेदन। यही नवधा भक्ति है।

इनमे से प्रथम ६ वैधी भक्ति और शेष ३ रागानुगा भक्ति के अग हैं। अतिम ३ तत्त्व भगवान् (कृष्ण) के साथ वैयक्तिक सम्बन्ध पर ही आश्रित हैं। यही भावोपासना है। इसमें भगवान् तत्तत् भावा के ही स्वरूप म प्रतिभासित होते हैं। इसम वात्सल्य का सन्निवेश नही है। अतिम 'आत्मनिवेदन' माधुय भक्ति का ही परिवर्तित स्वरूप है।

नारद भक्ति की ११ आसक्तियाँ—'नारद-भक्ति-सूत्र मे प्रेमरूपा भक्ति के सम्बन्ध म जिन ११ आसक्तियों के उल्लेख मिलते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं-(१) गुण

---

१ स्कन्ध-७, अध्याय-५, श्लोक-२३ 'श्रवण कीतन विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्॥'

माहात्म्यासक्ति, (२) रूपासक्ति, (३) पूजासक्ति, (४) स्मरणासक्ति, (५) दास्यासक्ति, (६) सख्यासक्ति, (७) कान्तासक्ति, (८) वात्सल्यासक्ति, (९) आत्म निवेदनासक्ति, (१०) तन्मयासक्ति और (११) परमविरहासक्ति ।

ये आसक्तियाँ एक ही प्रेम बीज से प्ररूढ़ भिन्न भिन्न वल्लरियाँ हैं जो उत्तरोत्तर प्रेम के विटप पर पूर्णत मण्डित होती जाती हैं । इनमे प्रथम ४ वे ही हैं जिनका नवधाभक्ति के अन्तर्गत वैधी भक्ति के अग रूप में परिगणन हुआ है । शेष ७ रागानुगाभक्ति के भावरूप मे परिगणित किये जा सकते हैं ।

तुलना—इनकी तुलना के लिए इन्हे क्रमश आमने सामने लिखा जाता है—

वैधी भक्ति		रागानुगा भक्ति	
भागवतीय	नारदीय	नारदीय	भागवतीय
(१) श्रवण	(१) गुण	(५) दास्य	(७) दास्य
(२) कीर्तन	(३)	(६) सख्य	(८) सख्य
(३) स्मरण	(४) स्मरण	(९) आत्मनिवेदन	(९) आत्मनिवेदन
(४) पाद सेवन	(२) रूप	(१०) तन्मय	(९)
(५) अर्चन	(३)	(७) कान्तासक्ति	(९)
(६) वन्दन–	(३)	(११) परमविरह	(९)
		(८) वात्सल्य	–

इनमे दास्य, वात्सल्य, सख्य और कान्तासक्ति क्रमश दास्य, वात्सल्य सख्य और मधुर भाव भक्ति ही हैं । शेष, ३ मे से आत्म निवेदनासक्ति नवधाभक्ति का ही चरम रूप (९वाँ) है । इसे तथा अन्तिम दो तन्मयासक्ति और परमविरहासक्ति को भी माधुर्य के दोनो पक्षो (सयोग और वियोग) मे समाविष्ट किया जा सकता है । अष्टछाप के कवियो की भाव साधना म यो तो इन सबो का स्थान है, किन्तु नवधाभक्ति के ३ अन्तिम तत्त्व और नारदभक्ति की अन्तिम ७ आसक्तियाँ ही विस्तार से इनकी भाव साधना के उपजीव्य विषय रहे हैं । तथापि माधुर्य भाव को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की गयी है जो सभी दृष्टियो से स्वाभाविक ही है । वैष्णव रसाचार्य रूपगोस्वामी ने इसे ही उज्ज्वल रस के रूप म अत्यन्त विस्तार से अपने ग्रन्थ उज्ज्वल नीलमणि' म चित्रित किया है ।

विषय प्रवेश—अष्टछाप के कवियो ने शुद्धाद्वैत मत के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट भक्ति सिद्धान्तो को काव्य का कमनीय कलेवर प्रदान किया । उन्होने रागानुगा भक्ति के आलम्बन कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं का गुणगान किया । ये कृष्ण के गोचारणादि लीलाओ म सखा और शृङ्गार लीलाओ मे सखी रूप हैं ।

रामानुगा भक्ति के शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और मधुर ये ५ वर्ग माने गये हैं। यहा उनमें अन्तिम ३ भावो की उत्तरोत्तर उत्कर्ष व्यंजना हुई है। वस्तुत रागो के प्रतिफलन का सर्वाधिक सुयोग क्रमश इन्ही भावा में मिल पाता है। यहाँ कृष्ण नन्द यशोदा के दुलारे पुत्र, सुबल और श्रीदाम के प्रिय सखा तथा राधा और गोपियों के चितचोर बनते हैं।

पंचभावोपासना—मनहर कृष्ण की भावोपासना मुख्यत इन पाँच प्रणालियो म अभिव्यक्त हुइ है। ये हैं—(१) शान्त, (२) दास्य, (३) वात्सल्य, (४) सख्य और (५) मधुर। इसे अष्टछाप के कवियो की पञ्च भावोपासना कह सकते हैं।

चतन्य मत के स दभ मे इन तत्त्वों की काव्य शास्त्रीय समीक्षा की जा चुकी है। श्रीकृष्ण के भावात्मक स्वरूप पर आलम्बित रहने के कारण ये सारे भाव एक और अभिन्न हैं। अर्थात् इन सबा का उत्स 'श्रीकृष्णरति' (स्थायी भाव) ही है। फिर भी एक ही भाव चित्त भेद या प्रकृति भेद से भिन्न भिन्न रूपो मे प्रतिभासित होते हैं।[१] और, भगवान भक्तो के तत्तत् भावो की पूर्ति के लिए निरन्तर 'विभाव' का रूप धारण करते रहते हैं।[२] और इस प्रकार यह प्रेम लीला चलती रहती है। यही लीला भक्ति है। यही पञ्च भावोपासना है।

अष्टछाप के रससिद्ध कवियो ने अपने भक्त चित्त में बसे-भगवान् कृष्ण की मनोहर मुद्रा को इन्ही मानवीय सम्बन्ध भावा मे व्यञ्जित किया है। कृष्ण का इन सम्बन्ध भावो मे आचरण ही इनके दर्शन का लक्ष्य है।

अब एक एक कर इन पाँचा भावा म कृष्ण का भावात्मक स्वरूप निरखना चाहिये।

(१) शान्त भक्ति भावना—इसका उदय 'शान्ति रति' से होता है। शान्ति का अर्थ है—शम। भागवत क अनुसार, भगवान् कृष्ण म निरन्तर अनुरक्ति ही शम है। भक्त का चित्त भगवान् मे अनुरक्त होते ही वह सासारिक प्रपञ्चा से विरक्त हो जाता है। अत इस रस के अनुयायी भक्तो का प्रधान लक्षण है-भगवान् मे चित्त का अव्याहत अनुराग। यहाँ न सुख है, न दुख, न द्वेष है और न मत्सरता। सभी प्राणियो के प्रति सम भाव म ही शान्त रस है।[३]

इसम कृष्ण प्रेम ममता ग ध शून्य तथा परमात्म बुद्धि से शमित होता है। सनक, सनन्दन आदि ऐसे भक्त हैं।

अष्टछाप के कृष्ण भक्त कवियो म विशेषत सूर और परमानन्द दास ने कृष्ण के प्रति अपनी शान्त भक्ति भावना प्रदर्शित की है। ऐसे भावपरक पदो की सख्या कम नही है।

सूरदास के एक पद मे अनित्य जग मे नित्य कृष्ण नाम की सार्थकता प्रकट हुई है-[४]

१ 'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन देखिय तैसी॥'—तुलसी।

२ आचार्य ह०प्र० द्विवेदी-चतन्यमत और ब्रज-साहित्य-(मीतल) की भूमिका, पृ० ३।

३ रूपगोस्वामी-भ० र० सि०, पश्चिम विभाग, प्रथम लहरी—६ ३०

४ ब्रज माधुरी सार, पृ० ४०-श्री वियोगी हरि।

सुम्रा, चलु वा वन को रसु लीज ।
जा बन कृष्ण [1]नाम अमरित रस, स्रवन पात्र भरि पीज ॥
को तेरो पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग मेरो ॥
काल-मजार लै जहै तोको तू कहै 'मेरो मेरो' ॥
हरि नाना रस मुकति छेत्र चलु तोको हौं दिखराऊँ ॥
'सूरदास साधुनि की सगति, बडे भाग्य जो पाऊँ ॥

यहाँ साधक कवि चित्त का उस गूढ अन्तदशा को सम्बोधित करता है जिसमे शब्द ब्रह्म के सदृश कृष्ण नाम के अमृत रस का वह निरन्तर पान करता रहता है। यहाँ सम्बन्धो की स्वीकृति नही है। 'अय निज परोवेति' के भाव झूठे हैं। इनसे ऊपर उठने पर ही नित्य गोलोक म नाना रस रूपी कृष्ण के मुक्ति क्षेत्र के दशन होग। और, यह सौभाग्य तो साधु सगति से ही प्राप्त हो सकता है।

उक्त पद मे कृष्ण की नाम रसात्मक किन्तु रूप रहित सत्ता का सकेत मिलता है।

एक ऐसे ही पद मे भगवान् के चरण सरोवर के सान्निध्य की कामना की गयी है। यह निर्विकार, प्रेम और वियोग से रहित, पूण निर्भ्रान्त और शान्तिदायक है।[2]

वह सदा एकरस एक और अखण्ड है। पुरुष, नारायण और विष्णु-सब उसी अविनाशी गोपाल कृष्ण के अश हैं। वह अशी युगल स्वरूप' नित्य विहार म निरत रहता है।[3]

सदा एक रस एक अखडित आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल स्वरूप ॥
सकल तत्व ब्रह्माड देव पुनि, माया सब विधि काल।
प्रकृतिरूप श्रीपति नारायण, सब हैं अस गोपाल ॥ ५७

शान्त भक्ति के देवता का यही स्वरूप है।

शान्ति भक्ति का भाव निर्णय—शान्त और दास्य परस्पर भिन्न भाव हैं। इन दोना की भक्ति भावात्मक (रागात्मक) कम और ज्ञानात्मक अधिक है। इस कारण ये परस्पर सापेक्ष से लगते हैं। किन्तु, ऐसी बात नही। शरणागति विषयक पदा को शान्त भाव की अपेक्षा दास्य के अधिक अनुकूल समझना चाहिये।

इसके अतिरिक्त शान्त भक्ति मे भावोपासना का तात्त्विक आधार—व्यक्तिगत सम्बन्धवाद—ज्ञानाच्छन्न रहता है। इसस कृष्ण का भावात्मक स्वरूप पूणत मूत्त नही हो पाता। इसलिए वैष्णव रस साधना क्रम म शान्त रस सबसे नीचे है। कतिपय पडितो ने तो इस भावोपासना के ४ ही अगो का प्रमुख उल्लख किया है।[4] भक्ति की ये मुख्य भावनाएँ मानव प्रेम के प्रमुख स्वरूपो की ही कृष्णोन्मुख परिणतियाँ हैं।

---

१ पठान्तर—'राम' सूरसागर ३४० (ना० प्र० स० सस्करण)

२ सूरसागर—३३७

३ ब्रजमाधुरी सार, पृ० ४२—श्री वियोगी हरि।

४ डा० दी० द० गुप्त का 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' (पृ० ५६८) द्रष्टव्य।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण—भाव का सम्बन्ध मनोराग से है। और, इसकी एक अनिवार्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है-सचरण। किन्तु, शान्त भक्ति में सचरण नहीं, शमन का महत्त्व है। और, 'शम' का अर्थ ही है 'निर्विकल्पता'। इसमें वृत्तियाँ स्वभावत तटस्थ हो जाती हैं। यह तटस्थता ज्ञानजनित है, भाव प्रेरित नहीं। इससे अनुराग का पक्ष गौण पड जाता है। और, अनुराग की न्यूनता में इसकी न्यूनता स्वाभाविक ही है।

दूसरे, इसके आलम्बन महिमाशाली चतुर्भुज कृष्ण हैं। रूपगोस्वामी ने इसे प्रीति आदि रति भेदों (सख्य, वात्सल्य, मधुर आदि) से भिन्नजातीय सिद्ध करने के लिए ही 'शुद्धा रति' के नाम से पृथक् कर दिया है।[१]

रस दृष्टि से देखने पर भी भावों की प्रखरता अन्य मानसिक व्यापारों की अपेक्षा अधिक है। शान्त रस में भाव बोध सयमित होता है। अन्य भावों में यह न्यून है।[२]

अत शान्त भक्ति के आलम्बन कृष्ण का स्वरूप भावात्मक न होने के कारण इस भाव (के कवियों) की समीक्षा यहीं समाप्त की जाती है।

(२) **दास्य भक्ति भावना**–इसका स्थायीभाव 'प्रीति' है। इसके आलम्बन कृष्ण तथा आश्रय दास-वर्ग हैं। आलम्बन कृष्ण के द्विभुज और चतुर्भुज दो रूप हैं। तेज, प्रताप और दाक्षिण्य इनके गुण हैं।

वल्लभाचार्य ने अपने ग्रथ 'कृष्णाश्रय' में दास्य भाव के साथ स्वदोष प्रकाशन, भगवान् के प्रति विनय, प्रार्थना तथा दैन्य के भाव प्रकट करते हुए उनकी शरण और रक्षा का आवाहन किया है। जैसा कि इसके शीर्षक से भी स्पष्ट है यह आचार्य जी की दास्यपरक रचना है। रूपगोस्वामी के अनुसार अनुग्रहगामी छोटे जनों की भगवान् कृष्ण के प्रति जो अनुरक्ति है वही 'प्रीति' कहलाती है।[३]

इस रस के अनुगामी भक्तों की यही कामना रहती है कि भगवान् सेव्य हैं और मैं उनका सेवक हूँ, भगवान् प्रभु हैं और मैं उनका दास हूँ, भगवान् अनुग्राहक हैं और मैं उनका अनुग्राह्य हूँ।

प्रीति २ प्रकार की होती है—

(१) सभ्रम प्रीति और (२) गौरव प्रीति।

(१) सभ्रम प्रीति वहाँ होती है जहाँ भक्त भगवान् से अपने को अत्यन्त दीन हीन समझता है और भगवान् की कृपा की अभिलाषा रखता है।

(२) गौरव प्रीति में भक्त भगवान् के द्वारा सदा अपनी रक्षा तथा पालन की कामना करता है।

दास्य का स्थायी है—सभ्रम प्रीति। यह प्रेमा, स्नेह और राग का रूप धारण कर उत्तरोत्तर बढती जाती है। सभ्रम प्रीति के अन्तिम रूप राग में भक्त श्रीकृष्ण के साक्षात्कार

---

१ स्थायी भाव लहरी–१५ (भक्ति रसामृत सिन्धु)

२ रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण–(२६३)–डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित।

३ भ० र० सि०–२/५/२३

से या कृपा लाभ से उनका अन्तरंग बन जाता है। तब, दुख भी सुख के रूप मे परिणत हो जाता है। उद्धव, भीष्म आदि ऐसे ही भक्त हैं।

सूरदास कहते हैं—[१]

मेरो तो गति पति तुम अर्ताह दुख पाऊं।
हौं कहाय तिहारो अब कौन को कहाऊँ॥
कामधेनु छांडि कहा अजा लै दुहाऊँ।
हय गयंद उतरि कहा गदभ चढि धाऊँ॥
कंचन मनि खोलि डारि काच गर बँधाऊँ।
कुंकुम को तिलक मेटि काजर मुख लाऊँ॥
पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊँ।
अंबाफल छाडि कहा सेंवर को धाऊं॥
सागर की लहर छांडि खार कत अन्हाऊँ।
'सूर' कूर आंधरो मैं द्वार पर्यो गाऊँ॥ २॥

उपर्युक्त पद में एक दीन भक्त की आकुल पुकार अपने करुणानिधान कृष्ण के प्रति पूरे आत्म समर्पण के साथ मुखरित है। इन वैष्णव भक्तों की मान्यता मे अन्तर्यामी भगवान् स्वयं भी भक्त की पुकार पर अपनी आन्तरिक संवेदना प्रकट करते हैं। क्योंकि, जैसे भक्त उनके हैं वैसे ही वे भी भक्तों के ही वशीभूत हैं। सूरदास के शब्दों मे—[२]

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुन अर्जुन, परितिग्या मेरी यह व्रत टरत न टारे॥
भक्तै काज लाज हिय धरिकै, पाइँ पयादे धाऊँ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ तहँ जाय छुडाऊँ॥
जो मम भक्त सौं वैर करत है, सो निज वैरी मेरो।
देखि विचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीतैं जीति भक्त अपने की, हारें हारि विचारों।
'सूरदास सुनि भक्त विरोधी, चक्र सुदर्शन धारों॥ ५॥

यहाँ शरणागत भक्तों की टेक पर बलि बलि जाने वाले कृपा सिंधु भगवान् का दास्य भावानुकूल स्वरूप व्यंजित हुआ है। दास्य भाव की भक्ति के अनुरूप कृष्ण का यह भक्त परायण स्वरूप विशेष महत्वपूर्ण है। यद्यपि विनय के पदों में कृष्ण की दास्यभावानुरूप भक्तपरायण मुद्रा का अंकन कम मिलता है, किन्तु कृष्ण के भावात्मक स्वरूप के निदर्शनार्थ इन चित्रों का भी विशेष महत्त्व है।

अधिकांश विद्वानों ने दास्य भक्ति के सन्दर्भ में इसके आश्रय भक्तों की दीनता विनयशीलता, आत्म भर्त्सना पर ही दृष्टि केन्द्रित रखी है। इसके आलम्बन भगवान् कृष्ण के दयालु चरित का स्वतन्त्र चित्रण विशेष नहीं किया है।

१ ब्र० मा० सा०—वियोगी हरि (पृ० १८)
२ ब्र० मा० मा०—(पृ० १९)

सूर की अधिकांश दास्यपरक रचनाएँ वल्लभाचार्य से साक्षात्कार के पूर्व की हैं।[1] कुछ विनयपरक पद बाद के भी हैं।[2]

सूर की भाँति ही परमानन्ददास ने भी विनय और दास्यपरक बहुश पदों की रचना की है। सूर की अपेक्षा इनमें रागात्मकता अधिक है। वह स्वामी कृष्ण से विनय करते हुए कहते हैं—[3]

> अपने चरन कमल को मधुकर मोहि काहे न करिहू जू,
> कृपावन्त भगवन्त गुसाईं, यह बिनती चित धरिहू जू।
> सीतल आतपत्र की छाया कर अबुज सुखकारी,
> पद्म प्रवाल नयन रतनारे कृपा कटाक्ष मुरारी।
> परमानन्द दास रस लोभी भाग्य बिना क्यों पावे,
> जाको द्रवत रमापति स्वामी सो तुम्हरे ढिग आवे।
>
> —(निजी सग्रह पद स० ३१३)

अर्थात्, हे कृपालु भगवन्त ! आप अपने चरण कमल का मधुप मुझे क्यों नहीं बना लेते। आपके कमलरूपी वरदहस्त की छाया कितनी शीतल और सुखदायी है। आपके रतनारे नेत्रों में कृपा दृष्टि भरी है। दास इसी कृपा रस का लोभी है। किसी सौभाग्यशाली पर ही यह द्रवित होता है। सौभाग्य के बिना यह दुर्लभ है।

अष्टछाप के अन्य कवियों की रचनाओं में ऐसी तलस्पर्शिनी दीनता का वर्णन नहीं मिलता।

दास्य भाव की भक्ति का जितना मार्मिक स्वरूप राम भक्त कवि तुलसी की कृतियों में मिलता है उतना सूर—नन्द या किसी अन्य कृष्णभक्त कवियों की रचनाओं में नहीं मिलता। इसका सबसे बड़ा कारण राम और कृष्ण के चरित्र का स्वरूपभूत अन्तर ही है। राम के स्वरूप में सौम्य शील का आवरण है किन्तु कृष्ण के स्वरूप में लीला विलास का बाँकपन। इसीलिए राम जहाँ अपने प्रताप और शील द्वारा भक्तों के अनुग्रहकामी दास्य भाव को जाग्रत करने में समर्थ सिद्ध होते हैं, वहाँ कृष्ण अपनी कमनीयता द्वारा समस्त चराचर पर मोहिनी डाल कर भाव साधक भक्तों के कान्त भावों को छोड़ देते हैं। इसी *कारण कृष्ण के दास में भी हठधर्मी या शेखी आ जाती है।* और वह अपनी पतितावस्था के निस्तार के लिए माधव से लड़ता है—[4]

> आजु हौं एक एक करि टरिहौं।
> कै हमही कै तुमही माधव अपुन भरोसे लरिहौं।

---

१ सूर ने वल्लभाचार्य को गऊघाट पर जब यह पद—'प्रभु हौं सब पतितन को टीको' सुनाया तो आचार्य ने उनसे कहा था—'जो सूर ह्वै के ऐसो घिघियात काहे को है'

२ डॉ० दी० द० गुप्त—'अ० व० स०' (पृ० ६०३)

३ वही—(पृ० ६०७)

४ सूरसागर-प्रथम स्कन्ध, वे० प्रे० संस्करण (पृ० १३)

हौं तो पतित सात पीढ़िन को पतितै ह्वै निस्तरिहौं,
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं।
कत अपनी परतीत नसावत मैं पायो हरि हीरा,
सूर पतित तबही लै उठिहै जब हँसि देहो बीडा।

यहाँ पहुँच कर दास्य भाव अतिशय रागात्मक हो जाता है। भावों के क्षेत्र म यही वह सीमा-रेखा है जहाँ से कृष्ण भक्ति की धारा सन्त काव्य और राम काव्य से किंचित् भिन्न सरणियों म वग से प्रवाहित हुई। वात्सल्य, सख्य और मधुर इन ३ भावों और रसों से कृष्ण चरित म पर्याप्त माधुर्य का विस्तार हुआ। और, भक्तों के कृपासिन्धु भगवान् भाव साधक कवियों के भाव-देव श्रीकृष्ण बन गये। इन ३ प्रमुख भावों के आलम्बन कृष्ण को के द्र म प्रतिष्ठित कर ब्रज के भक्त कवियों न मधुर भावों के अगणित चित्र खींचे हैं। ये हिन्दी काव्य की अनुपम निधि हैं।

(३) वात्सल्य भक्ति भावना—इसका स्थायीभाव 'महत्व' है। आधुनिक शोध कर्ता विद्वानों ने इसके स्थान पर रूपगोस्वामी द्वारा स्थापित 'वात्सल्य स्थायी' का ही युक्तिपूर्वक समर्थन किया है। उनके अनुसार 'वत्सल' शब्द में वत्स के प्रति मार्मिक आकर्षण व्यक्त होता है। विशुद्ध निःस्वार्थ प्रेम और बलिहारी जाने की जो स्पष्ट भावना 'वत्सल' म है, वह किसी और म नहीं।[1]

इसके आलम्बन बाल कृष्ण और आश्रय न द यशोदा, रोहिणी तथा अन्य ज्येष्ठ जन हैं। यशोदा इनम अ यतम हैं। ब्रजेतर आश्रय मे देवकी, वसुदेव आदि हैं। अष्टछाप के कवियों ने ब्रज के बालकृष्ण को विषय मान कर वात्सल्य रस की पावन धारा बहायी है।

बालकृष्ण मे विभूति और ऐश्वर्य ज्ञान नहीं उभरता। बीच बीच म असुरों का आगमन होता रहता है। और, प्रतापी कृष्ण उ ह वध करते जाते हैं। ऐसे मे क्षण भर को उद्दीप्त हुआ माहात्म्य बोध भी पुन उन्हीं की ममता धारा में लीन हो जाता है। यह ब्रज वासियों के भोलेपन का भी एक प्रमाण है।

अष्टछाप के कवियों मे सूर और परमान द दास इस भाव के अन य साधक हैं।[2] इन्होंने कृष्ण ज म से लेकर माखनचोरी लीला तक के बीच बाल कृष्ण का क्रम क्रम से विकसित होने वाली क्रीडा चेष्टाओं के अनगिन भाव चित्र खींचे हैं।

सूरदास ने माता यशोदा का आश्रय करके बालकृष्ण के मनमोहक रूप और भावों का सुविस्तृत और क्रमबद्ध अकन प्रस्तुत किया है। इनसे इनकी बाल मनोदशा की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और स्वभाव निरूपण की अद्भुत क्षमता पर प्रकाश पड़ता है। यह सूर के मातृहृदय की तन्मय वृत्ति का परिचायक है।

इस भाव के अन्तर्गत कृष्ण मुख्यत दो रूपों म व्यक्त हुए हैं—(१) लौकिक और (२) अलौकिक। (१) लौकिक रूप म उनके ज मोत्सव तथा बाल सस्कार, रूप सौन्दर्य तथा चपल क्रीडाएँ सलग्न हैं। और (२) अलौकिक रूप म कस द्वारा भेजे गये राक्षसों

---

१ डॉ० आ० प्र० दी०—'रस सिद्धान्त स्वरूप-विश्लेषण'—(पृ० २९५)

२ डॉ० दी० द० गुप्त—'अ० व० स०' (पृ० ६१७)

तथा अनेकानेक असुरों के वध किये गये हैं। किन्तु, इन दोनों ही रूपों में अनोखा सामंजस्य है। लौकिक रूप में जो सुकुमारता और चांचल्य है वह अलौकिक शक्ति और शौर्य के साथ पूर्णतः घुलमिल गया है। पालने में अंगूठा चूसने वाले कोमल कृष्ण में शिव और ब्रह्मा के साथ-साथ इन्द्र के प्रलयमेघ का प्रकम्पित करने वाली तथा शकट भंग करने वाली कठोरता विद्यमान है। उसी प्रकार, पूतना जैसी काल-सर्पिणी के संहारक कृष्ण परम कोमल स्तन्यपायी हैं। उन्हें ऐसा करते समय कहीं भी ऐसा कठोर स्वरूपावरण नहीं दिया गया है जिससे उनकी अन्तर्गत कोमलता और रमणीयता खण्डित होती हो।[१] अतः कृष्ण इन दोनों ही रूपों में नयनाभिराम और लोकललाम हैं।

अब इन सबों के एक एक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

भादों, कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण का जन्म होता है। नन्द गोकुल में आनन्द का ज्वार उमड़ने लगता है। नन्द-यशोदा अपने पुत्र जन्म की आनन्द बधाई में सर्वस्व लुटा देते हैं। सातवें दिन कोमल शिशु के अधर और चरण को रंजित कर सोने के रत्नजटित पालने में डाल दिया जाता है। यशोदा उसे झुलाते और गाते हुए कृष्ण को सुलाने का प्रयत्न करती हैं। किन्तु, सात दिन के ही कृष्ण कितने चपल हैं इसका एक मार्मिक दृष्टान्त इन पंक्तियों में प्रस्तुत है—[२]

हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुर गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै।।

माँ यशोदा की लोरी सुनकर आँखें मूंद लेने वाले हरि गाढ़ निद्रा में नहीं सो जाते। बल्कि ध्वनि मन्द पड़ते ही वह अचानक अकुला उठते हैं। और, माता उन्हें सुलाने के लिए पुनः मधुर स्वर में गाने लगती है। बालक के सोने का यह एक अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण है।

बालक की दुधमुँही दन्तहीन मुस्कान, स्तन पान घुटरुन चाल आदि को देखकर माता निहाल रहती है। जैसे निर्धनी को अमूल्य धन हाथ लग गया हो, यशोदा के कृष्ण ऐसे ही हैं। दूध के दाँत निकलने पर वह प्रेम विभोर हो जाती है। नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ कर्णछेदन आदि संस्कार होते हैं। कृष्ण नन्हें हाथों में नवनीत लिए, मुख में दधि लेपे और धूलि धूसरित होकर घुटरुन चाल चलते हैं तो वह गत्यात्मक चित्र देखते ही बनता है—[३]

१ डॉ॰ हरवंश लाल शर्मा—'सूर और उनका साहित्य' (पृ० १६३)
२ सूरसागर—४२/६६१ (सभा संस्करण)
३ सूरसागर—९६/७१७

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहि पिए।
कठुला कंठ, वज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए॥

ऐसे ही गत्यात्मक रूप चित्रों में एक प्रसिद्ध चित्र वह भी है जिसमे यशोदा कृष्ण को आँगन मे उँगली पकड कर चलना सिखाती हैं—[1]

सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया।

कवि ने उपर्युक्त रूप चित्रण के अतिरिक्त क्रमश प्रौढ होते हुए बाल कृष्ण की आन्तरिक मनोवृत्तियों की भी सूक्ष्म व्यंजना की है। बालकृष्ण में सामान्य बालकों की तरह ही स्पर्धा, हठ, क्षोभ, नटखटपन और अपने को निर्दोष सिद्ध करने की भोली वृत्तियों का सन्निवेश है। यह निम्नांकित उद्धरणो द्वारा स्पष्ट होगा।

स्पर्धा–[2] मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाबी मोटी।

हठ–[3] मैया, मैं तो चंद खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबही, तेरी गोद न ऐहौं।

क्षोभ–[4] सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहि आपु बलकि भए ठाढ़े अब तुम कहा रिसाने।
बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।
हारि जीत कछु नैंकु न समुझत, लरिकनि लखत पाप।
आपुन हारि सखन सो झगरत यह कहि दियो पठाइ।
सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाइ॥

कुछ बड़े होने पर कृष्ण हलधर, सुबल, श्रीदाम आदि ग्वाल सखाओ के साथ ब्रज की खोरियों मे खेलने निकलते हैं। चारयारी मे ही माखन चोरी का चस्का लगता है। और वह बड़े नटखट बन जाते हैं। माखनचोर कृष्ण सखाओं मे चतुरशिरोमणि हैं।

नटखटपन[5]—देखी ग्वालि जमुना जात।
जाइ देखे भवन भीतर, ग्वाल बालक दोइ।
भीर देखत अति डराने दुहुनि दी हो रोइ।
ग्वाल के काँध चढ़े तब, लिए छीके उतारि।
दह्यो माखन खात सब मिलि दूध दीन्हो डारि।

---

१ सूरसागर—११५/७३३ २ सूरसागर—१७५/७६३
३ वही—१६३/८११ ४ वही—२१४/८३२
५ सूरसागर—२८६/९०७

बहुत अचगरी करने वाले कृष्ण रंगे हाथ पकडे जाते हैं। वह अपनी प्रगल्भता के कारण यशोदा के हाथ की छडी से बरी हो जाते हैं। किन्तु लगर कृष्ण अपनी बान नहीं छोडते और फलत ऊखल बन्धन होता है।

इसके अनन्तर वृन्दावन लीला शुरू होती है और बाल कृष्ण की नटखट वृत्तियाँ उत्तरोत्तर किशोर क्रीडा मे परिणत हो जाती हैं।

यही अवस्था है जिसमे कृष्ण अपने ग्वाल-सखाओं के साथ साथ गोपियो के रम्य साहचय मे उत्तरोत्तर उलझते जाते हैं। नेत्रो म भोलेपन के स्थान पर एक विदग्ध भगिमा ओठों की मुस्कान मे एक बाँकपन और दधि-क्रीडा के स्थान पर वशी प्रीति-इस किशोर कृष्ण के मुख्य व्यसन हैं। ये स्वभावत उन्ह किशोर ग्वाल सखाओ के साथ ही किशोरी गोपियों के मधुर साहचर्य में खींच लाते हैं। वात्सल्य, सख्य मे और सख्य मधुर भाव के समक्ष उत्तरोत्तर आत्मसमपण करते जाते हैं। अत इस मनोवैज्ञानिक विकासपरम्परा का देखते हुए वात्सल्य के पौगण्ड और कैशोर भाव की तथा सख्य के कौमार तथा कैशोर भाव की कल्पना को अनावश्यक विस्तार ही समझना चाहिये। वात्सल्य मूलतः बालापन का अनुवर्ती है और वैसे ही सख्य पौगण्ड का तथा माधुय कैशोर का। कुल मिलाकर सूर के बालकृष्ण अपने आप मे पूर्ण और सुन्दर हैं।

माँ यशोदा इस लाडले की छवि के पारावार मे डूबती उतराती रहती है। फिर सूर जसे अन्धे भक्त को कौन कहे। वह तो उस छवि सिन्धु म अपनी सुधि बुधि खोकर बूद की भाँति निमग्न हो जाता है।

बाल सौन्दय का अन्तिम चित्र प्रस्तुत है -[१]

ललन हौं या छवि ऊपर वारी,
बाल गोपाल लगौ इन नैननि रोग बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।
मनहुँ कमल अलि सावक पगति उठत मधुप छबि भारी।
लोचन ललित कपोलनि काजर छबि उपजत अधिकारी।
सुख मे मुख औ छवि बाढति हँसत दै दै किलकारी।
अल्प दसन कलबल करि बोलनि बिधि नहिं परत बिचारी।
निकसति जोति अधरनि के बीच ह्वै मानो बिधु में बीजु उजारी।
सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी,
सूर सिन्धु की बूद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी।

इस वात्सल्य की स्वाभाविक तन्मयता, निष्कामता तथा प्रगाढता कृष्ण प्रवास के अवसर पर यशोदा की मर्मव्यथा में और भी मुखर हुई है। सूर के पदों में वात्सल्य का वियोग पक्ष भी अत्यन्त प्रभावशाली ढग से चित्रित है।

यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।

---

१ सूरसागर-६१/७०६

निसिबासर छतियाँ लै लाऊँ बालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि फिरि हैं मोहन मोद खवाऊँ।
बिदरत नहीं वज्र को हिरदय हरि वियोग क्यों सहिए।
सूरदास प्रभु कमलनैन बिनु कौने विधि ब्रज रहिए।

उधर आश्रय का वह हाल था तो इधर आलम्बन कृष्ण भी कम बेहाल नहीं थे। उद्धव को ब्रज भेजते समय उन्होंने जो सन्देश दिया, उससे उनकी वत्सलता का ठीक ठीक पता चल जाता है[1]—

हरि गोकुल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपंगसुत मोहिं न बिसरत, ब्रजबासी सुखदाई॥
यह चित होत जाउँ मैं अबही, इहाँ नहीं मन लागत।
गोपी ग्वाल गाइ बन चारन, अति दुख पायो त्यागत॥
कहँ माखन रोटी, कहँ जसुमति, जेंवहु कहि कहि प्रेम।
सूर स्याम के बचन हँसत सुनि, थापत अपनो नेम॥

सूर का वात्सल्य चित्रण उनकी कृष्ण भावना म चरम तल्लीनता का द्योतक है। बाल कृष्ण का ऐसा सरस विस्तृत, क्रमिक और मनोवैज्ञानिक चित्रण भारतीय भाषाओं मे किसी दूसरे कवि ने नहीं किया। तमिल के पेरियाल्वार कुछ कुछ ऐसे ही भावविदग्ध कवि थे।

अष्टछाप के कवियो मे परमानन्द दास इस भाव के दूसरे अनन्य चित्रकार हैं। इन्होंने कृष्ण के कठोर और अलौकिक स्वरूप (असुर वध सम्बन्धी) को सांगोपाग रूप में न लेकर बाल कृष्ण के कोमल मधुर स्वरूपो का ही मजुल दृश्य प्रदर्शित किया। इनके कृष्ण कुमार, पौगण्ड और किशोर, त्रिविध रूपो म सामने आते हैं। किन्तु कुमारावस्था के 'माखन चोर' ही इनके चित्त म विशेष रमते हैं। अबोध शिशु रूप की अपेक्षा छुटपन का नटखटपन इनके बाल स्नेही मन का विशेष खींचता है।

हरि की मीठी बोली, रुनझुन चाल, कज्जल, तिलक, पीताम्बर सब के सब नयनाभिराम और चित्ताकर्षक हैं[2]—

माई मीठे हरि के बोलना,
पाँय पजनियाँ रुनझुन बाजे आँगन आँगन डोलना।
कज्जर तिलक कठ कठुला मनि पीताम्बर को चोलना
परमानन्द दास का ठाकुर गोपी झुलावत मो ललना।

इसके अतिरिक्त बाल हठ, चन्द्र प्रस्ताव माँ की रीझ खीझ, बालक ब्याह की कामना, बाल क्रीडा, कलह और स्पर्द्धा के अनगिन चित्र परमानन्द ने सूर की भाँति अंकित किये हैं। ऐसे स्थलो पर इनकी सूक्ष्मदर्शिता निराली है।

इनके अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवियो म नन्ददास और चतुर्भुज दास ने बाल भाव के पद रचे हैं परन्तु इनम अन्तमन की मुग्धकारी व्यंजना का अभाव है।[3]

१ सूरसागर—३४२८/४०४२
२ परमानन्द दास पद संग्रह—डॉ० दी० द० गु०—'अ० व० स०' (पृ० ७०२)
३ डॉ० दी० द० गु०—अ० व० स०' (पृ० ६१७)

दास्य वात्सल्य का प्रतिलोम है और मधुर सख्य की चरम परिणति।

वात्सल्य में निष्काम प्रेम का भाव अधिक रहने के कारण यह सर्वाधिक शुद्ध भाव माना जाता है। स्वामी वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टिमार्ग में वात्सल्य भाव को सर्वश्रेष्ठ तथा बालकृष्ण को आराध्य मानकर इस भक्ति पर शास्त्रीयता की मुहर लगा दी। अष्टछाप के कवियों में सूर और परमानन्ददास ने वात्सल्यभक्ति की श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत कीं। डॉ० दी० द० गुप्त के शब्दों में–[1] 'मातृहृदय की जिस प्रकार की संयोग वियोगात्मक अनुभूतियाँ शिशु के संयोग वियोग में होती हैं और जितना रूपमाधुरी का सुख किसी सुन्दर, चंचल तथा क्रीडाशील बालक का देखकर दर्शक वृन्द लेता है उन सब का अनुभव सूर और परमानन्ददास के भक्ति भावुक हृदय प्रबलता के साथ करते थे।' सूरसागर की दो अनुपम नारी सृष्टि में मातृ हृदय के सहज ममत्व, पवित्र दुलार और कृष्ण वियोग की अपार वेदना को वाणी प्रदान करने के लिए सूर ने जिस यशोदा की सृष्टि की है, वह विश्व साहित्य में अतुलनीय है। यशोदा के आधार फलक पर चित्रित बाल कृष्ण की छवि इसीलिए निराली है।

(४) **सख्य भक्ति भावना**–इसका स्थायी भाव 'विश्रम्भ' है। 'विश्रम्भ'–किसी प्रकार के नियन्त्रण से रहित प्रगाढ विश्वास ही है। दो समान पुरुषों की सम्भ्रमरहित रति में सख्य भाव माना जाता है।[2] इसके आलम्बन कृष्ण और आश्रय सुबल, श्रीदाम आदि मित्रवर्ग हैं।

श्री मद्भागवत के अनुसार,[3] व्रज के निवासी वे नन्दादि गोप धन्य हैं जिनके मित्र परमानन्द पूर्ण सनातन ब्रह्म हैं। ब्रह्मा के उपर्युक्त कथन में भागवतकार का सख्य भक्ति-विषयक भाव स्पष्ट है।

इस सख्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपने प्रियपात्र से अपनी परम गोपनीय बातों को भी कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती। सखा आपस में हृदय खोलकर मिलते हैं बातें कहते और सुनते हैं। लाज की कोई अर्गला नहीं रहती। इसी कारण निःसंकोच हृदयों की यह सख्यासक्ति दास्यभाव से आगे की भाव दशा समझी जाती है। यहाँ आश्रय और विषय दोनों में भावात्मक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता। दोनों के मध्य पूर्ण समानता होती है। पूर्वोक्त दो भावदशाओं की अपेक्षा इसी भक्ति में आलम्बन कृष्ण को द्विभुजरूप माना गया है।

सख्य रस के २ वर्ग हैं–(१) व्रजस्थ और (२) पुरस्थ। व्रजसखा श्रीकृष्ण की रूप कल्पना में सुवेष सुलक्षण, परमवीर, चतुर दयालु, क्षमाशील, लोकप्रिय, क्रीडापटु, सदानन्द तथा श्रेष्ठ गुणशाली कृष्ण की चारित्रिक विशेषताएँ संलग्न हैं। यह तो सख्य के विषय हुए। उनके आश्रय उनके अभिन्न व्रजवासी गोपकुमारों में भी तद्वत् समान गुणों का सन्निवेश पाया जाता है। कृष्ण के ये गोपसखा समान गुणवान् और विश्वस्त हृदय वाले चित्रित किये गए हैं। मैत्री भाव की दृष्टि से कृष्ण के गोपसखाओं के भी ४ वर्ग हैं–

१ डॉ० दी० द० गु०–'अ० व० स०' (पृ० ६१७)

२ भ० र० सि०–पश्चिम विभाग, लहरी–३

३ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध–१०, अध्याय–१४, श्लोक–३२

(१) सुहृत्–श्रीकृष्ण से उम्र में कुछ बड़े वात्सल्ययुक्त रक्षक–जैसे–सुभद्र, बलभद्र आदि।

(२) सखा–श्रीकृष्ण से उम्र में कुछ छोटे सेवा सुखाकांक्षी जैसे देवप्रस्थ, मकरन्द आदि।

(३) प्रिय सखा–श्रीकृष्ण के उम्र में सम स्निग्ध भाव से खेलने वाले जैसे श्रीदाम सुदाम आदि।

(४) प्रिय नर्मसखा–श्रीकृष्ण की अन्तरंग लीलाओं के सहचर जैसे सुबल, उज्ज्वल, अर्जुन आदि।

अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में कृष्ण की बाल और पौगण्ड कालीन आमोद प्रमोदमय सख्य लीलाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। बाल जीवन के अनेक जटिल गमन क्षणों में, घर में, गांव में, गोचारण में, तथा लोकोत्तर केलि-क्रीड़ाओं में एक साथ घटने वाली मित्र-संगति का मनोरम चित्रण इन कवियों ने किया है। इनमें भी सूर के सख्य में सहजता और तन्मयता है। बाल, पौगण्ड और किशोर–इन त्रिविध अवस्थाओं में कृष्ण के अन्तरंग सहचरों में परस्पर प्रेम के अनूठे चित्र खींचे गए हैं। उनमें निष्काम प्रेम का विशुद्ध आनन्द छलक उठा है। कवियों ने इस अलौकिक क्रीड़ा में स्वयं अन्तरंग सखा बनकर हिस्सा लिया है। अष्टछाप के आठों कवि कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के भाव सहचर हैं। श्रीकृष्ण के नैसर्गिक जीवन में गोप-साहचर्य इस सख्य भक्ति का प्राण है। इसके बिना इसका सुमधुर स्वरूप खड़ा ही नहीं हो सकता। यह कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप की मौलिक अभिव्यक्ति है।

एक प्रकार से वृन्दावन लीला का प्रारम्भ ही सख्य प्रेम से होता है। मार्मिकता से भरा वृन्दावन का ऐसा ही एक नैसर्गिक सख्य दृश्य है। इसके अन्तर्गत गोचारण-लीला का सुख व्यक्त हुआ है।

> चरावत वृन्दावन हरि गाई।
> सखा लिये सँग सुबल श्रीदामा डोलत हैं सुखपाई।
> कीड़ा करत जहाँ तहाँ सब मिलि आनन्द बढ़ाई रढ़ाई।
> कगरि गईं गइयाँ बन बीथिनि देखी अति अकुलाई।
> कोऊ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोऊ गये बछरु लिवाइ।
> आपुहिं रहे अकेले बन में कहु हलधर रहे जाइ।
> बंसीबट सीतल जमुना तट अतिहिं परम सुखदाई।
> सूर स्याम तब बैठि बिचारत सखा कहाँ बिरमाई। –(सभा संस्करण)

वृन्दावन के कुंजों में, यमुना के कछारों में गोचारण प्रसंग में सहज सख्य की चाँदनी फैल जाती है।[1] इस बीच उनके रंग रंग में भंग करने के लिए बकासुर, अघासुर,

---

१ बन बन फिरत चारत धेनु।
स्याम हलधर संग संग बहु गोप बालक रेनु।
तृषित भए सब जानि मोहन, सखनि टेरत बेनु।
बोलि ल्यावहु सुरभि गन, सब चले जमुन जल देनु।
सुनत ही सब हाँकि ल्याए गाइ करि इक ठन।
हेरि दै दै ग्वाल बालक, कियो जमुना तट गैन॥ ४२७/१०४५

धेनुकासुर आदि कितने राक्षस आते हैं और कृष्ण अपने बाल सखाओं के साथ खेल-खेल मे ही उन्हें सद्गति देते जाते हैं। क्षणभर के कौतूहल के अनन्तर कृष्ण अपने चरवाहे मित्रों के नायक बन जाते हैं।

गोचारण प्रसग मे छाक और आँख मिचौनी के प्रसग अत्यन्त मार्मिक हैं। छाक का एक रमणीय पद उद्धृत है—

सखनि सग जेंवत हरि छाक।
प्रेम सहित मैया दै पठई, सब बनाई हैं इक ताक।
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, सब सँग भोजन रुचि करि खात।
ग्वालनि कर त कौर छुडावत, मुख लै मेलि सराहत जात।
जो सुख कान्ह करत वृंदावन सो सुख नहीं लोकहूँ सात।
सूर स्याम भक्तनि वस ऐसे ब्रह्म कहावत हैं नँद तात ॥ ४६६/१०८४

छाक के व्यजनों का सुबल, श्रीदाम आदि अन्तरग सखाओं के साथ हिलमिल कर पान कृष्ण के सख्य जीवन का एक चित्ताकर्षक पहलू है। किन्तु, इन व्यजनों को जब वह लूट पाट कर खाते हैं तब उसम षट रस के साथ-साथ हृदय रस भी सम्मिलित हो जाता है। कृष्ण भाव पुरुष हैं। वह भाव के भूखे हैं। इसीलिए सख्य रस से ओतप्रोत श्रीदाम के जूठे कौर, सुदामा के तण्डुल और विदुर के साग मे उन्हें विशेष अन्त रस प्राप्त होता है। कृष्ण के इस आत्मीयतापूर्ण चरित्र की झलक निम्न पद म मिलती है—[१]

ग्वालनि कर त कौर छुडावत।
जूठो लत सबनि के मुख को, अपन मुख लै नावत।
षटरस के पकवान धरे सब, तिनमें रुचि नहिं लावत।
हा हा करि करि माँगि लेत हैं कहत माहिं अति भावत।
यह महिमा यई प जानत, जातै आपु बँधावत।
सूर स्याम अपन नहिं दरसत, मुनि जन ध्यान लगावत ॥

सखा कृष्ण की प्रिय क्रीडाओं मे आँखमिचौनी, भँवरा चकडोर, कन्दुक क्रीडा आदि आती हैं। इन्हीं के साथ गोपियों की छेडखानी भी सम्मिलित हैं। इसी छेडखानी की परिणति राधा और गोपी प्रेम मे हो जाती है।

आँखमिचौनी का एक दृश्य प्रस्तुत है—[२]

हरि तबे आपनि आँखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छिपाने जहाँ तहाँ गए भगाई।
कान लागि कहेउ जननी जसोदा, वा घर में बलराम।
बलदाऊ को आवन दै हो, श्रीदामा सों हैं काम।
दौरि दौरि बालक सब आवत, छुवत महरि के गात।
सब आए, रहे सुबल श्रीदामा हारे अब के तात।

१ सूरसागर—४६८/१०८६ २ सूरसागर, स्कन्ध—१० (वें० प्रे०, पृ० १२९)

> सार पारि हरि सुतहिं खाए गह्यो श्री दामा नाइ ।
> देहैं साहु नन्द बबा की जानत पै सो भाइ ।
> हँसि हँसि तारी देत सखा सब भए श्रीदामा धार ।
> सूरदास हँसि कहति जसोदा जीत्यो है सुत मोर ।

भगवान की महिमा का ध्यान कदाचित् ही सुख आनन्द में पूर्णत निमग्न हो जाता है। कृष्ण का सखा रूप सूर के काव्य में अनुपम माधुर्य का सम्भरण है। यह सुन्दर सखा रूप यहाँ प्रस्तुत है[1]—

> सुन्दर स्याम, सखा सब सुन्दर, सुन्दर बेष धरे गोपाल ।
> सुन्दर पथ, सुन्दर गति आवन, सुन्दर मुरली-नाद रसाल ।
> सुन्दर लोग, सकल ब्रज सुन्दर, सुन्दर हलधर सुन्दर चाल ।
> सुन्दर बचन, बिलोकनि सुन्दर, सुन्दर गुन सुन्दर बनमाल ।
> सुन्दर गोप, गाइ अति सुन्दर, सुन्दरि गन सब करति बिचार ।
> सूर स्याम संग सब सुख सुन्दर, सुन्दर भक्त हेत अवतार ॥

सख्य भाव की परम उन्मुक्त दशा में कृष्ण ब्रज की खोरियों में मस्त डोलने वाली एक अपरूप सुन्दरी 'गोरी' से प्रथम सम्भाषण करते हुए देखे जाते हैं। यही राधा है। कृष्ण ने बात बात में ही इस राधा का सर्वस्व चुरा लिया था। सख्य के इसी धरातल पर उन्हें परम गोपनीय माधुर्य की मूर्ति लीलासहचरी राधा का अन्तरंग संग मिला था। वस्तुत इसी आधार पर सम्पूर्ण भागवत श्रीकृष्ण का चरित्र टिका हुआ है। यह तो इस सख्य का मधुर छोर है। इसका एक दूसरा छोर भी है जो सुदामा प्रसंग में व्यक्त हुआ है। यहाँ कृष्ण की दीनबन्धुता तथा सख्यवत्सलता प्रकट हुई है। द्वारिकाधीश कृष्ण अपने आसन पर लेटे हैं। राजराजेश्वरी लक्ष्मी स्वरूपा रुक्मिणी पार्श्व में चमर डुला रही हैं। अचानक प्रहरी आकर बाल सखा सुदामा का नाम सुनाता है। यह नाम सुनते ही सखा कृष्ण ऐश्वर्य के सारे बन्धन तोड़कर समुद्र की भाँति उमग कर आँखों में स्नेहाश्रु लिये स्वयं अगवानी करने पाँव पैदल द्वार तक दौड़े आते हैं—

> ऐसी प्रीति की बलि जाऊँ ।
> सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाऊँ ।
> सूर स्याम की कौन चलावै भक्तन कृपा अपार ।

तथा बालसखा सुदामा को गले से लगाकर उनका दारिद्र्य दूर कर देते हैं।

सख्य प्रेम से उमगते हुए कृष्ण की बालसुलभ क्रीडाओं माखन चोरी, आँखमिचौनी, भँवरा चकडोर, कन्दुक से लेकर गोपियों से छेड़खानी तक तथा गोचारण प्रसंगों के सुख सपद, मिलन समागम तथा प्रीतिभोजन आदि के मनोमुग्धकारी चित्रण में अष्टछाप के विशेषकर सूर और परमानन्द दास ने अपनी सहजानुभूति का अद्भुत परिचय दिया है।

जैसा कि ऊपर कहा गया, भाव पुरुष श्रीकृष्ण की इस पंचभावोपासना-क्रम में सख्य के बाद माधुर्य भक्ति का ही स्थान मनोवैज्ञानिक विकास की दृष्टि से आता है। सख्य मे

---

१ सूरसागर—४७४/१०१२ (सभा संस्करण)

आलम्बन और आश्रय का जहाँ मधुर सहभाव घटित होता है, माधुय मे वहाँ दोना का पूण तादात्म्य अभेदाध्यवसान हो जाता है। सख्य प्रेम द्वत है, माधुय प्रेम अद्वैत। सामान्यत यदि सख्य माधुय का प्रस्थान बिन्दु है ता माधुय सख्य की चरम परिणति। एक दूसरे की प्राय विकसित दशा है। अत सख्य तथा माधुय के बीच वात्सल्य की गणना किसी मनोवैज्ञानिक भाव दशा की क्रम परिणति नहीं मानी जा सकती, जैसा कि अधिकांश विद्वानो को मान्य है।

सख्य और माधुय मे एक अन्तर यह भी है कि सख्य में जहाँ सामूहिक मिलन-समागम का सकेत है, वहाँ माधुय म ऐकान्तिक मिलन कामना उत्कट है। अत रस दृष्टि से दोनों में मूलभूत अन्तर प्रेम की सघ भावना और रति की एकनिष्ठता का हो सकता है। प्रकृत्या सख्य पुरुष भाव है और माधुय नारी भावना। पर तु उक्त अन्तर के वावजूद ये दोनो धाराएँ एक ही दिशा को जाती हैं। इन दोनों के मध्य वात्सल्य की अवस्थिति अमनोवैज्ञानिक है। अत विद्वानो की यह मान्यता कि सख्य की परिणति वात्सल्य म और वात्सल्य की परिणति माधुय मे हो जाती है, युक्तियुक्त प्रतीत नही हाती। श्रीदाम का सख्य और नन्द यशोदा का स्नेह वैसे ही एक नहीं है जसे यशोदा का दुलार और राधा का प्यार।

अलौकिक दृष्टि से विचारने पर भी यही प्रतीत होता है कि प्रेम अपनी पूण विकसित दशा म माहात्म्य ज्ञान शून्य होकर सख्यासक्ति बन जाता है। यहाँ भक्त और भगवान् समान भावभूमि पर आ जाते हैं। और, चरम दशा मे आकर मिलन इतना प्रगाढ बन जाता है कि दो के स्थान पर एक की ही अनुभूति रह जाती है। निर्गुणी सन्त कबीर ने भी कहा है 'प्रेमगली अति साँकरी, ता मे दा न समाहिं', यहाँ भक्त और भगवान मिलकर एक हो जाते हैं। यही राधा कृष्ण दाम्पत्य रति है। सगुणोपासना यहाँ पहुँचकर अद्वत से भिन्न नही रह जाती। राधा और कृष्ण को इस परम अद्वत दशा तक पहुँचने के पूव दोना के बीच गोकुल मे परस्पर सख्य भाव का उद्रेक होता है, जो मनोवैज्ञानिक ही है। सुन्दर कृष्ण का वृन्दावन प्रवेश, वशी समोहन तथा चीर हरण प्रसग को सख्य और माधुय की मध्यवर्ती दशा के रूप म जाना जा सकता है।

(५) माधुर्य भक्ति भावना —इसका स्थायी भाव 'प्रियता' अथवा 'मधुरा रति' है। रूपगोस्वामी के अनुसार—

कृष्ण और राधा के परस्पर सम्भोग की प्रवत्तक (आदि कारण) रति 'प्रियता रति' कहलाती है। इसका दूसरा नाम 'मधुरा रति' भी है।[१] अपने अनुरूप विभावादिको के द्वारा सहृदयो (लोकोत्तर सस्कार सम्पन्न सहिशेष जन) के हृदय मे पुष्टि को प्राप्त यह मधुररति ही मधुर रस अथवा वैष्णव शब्दावली में माधुयभक्ति कहलाती है।

स्त्री पुरुष की परस्पर शृङ्गार और मधुर रति को शृङ्गाररस कहते हैं। इस रति का जब लोक से उठाकर अलौकिक युग्मों में प्रक्षेप किया जाता है तो 'मधुररस' का प्रवत-

१ भ० र० सि०—दक्षिण विभाग स्थायी लहरी—

मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च सम्भोगस्यादि कारणम् ॥३७
मधुरापरपर्याया प्रियताऽऽख्योदिता रति ।

रण होता है। शृङ्गाररस के आलम्बन लोकसामान्य नायक नायिका हैं किन्तु मधुररस के आलम्बन अलौकिक पुरुष प्रकृति हैं। एक शब्द मे शृङ्गाररस के आलम्बन 'दुष्यन्त शकुन्तला' हैं, मधुररस के आलम्बन 'राधा कृष्ण'। इस तरह लोकपक्ष में जो शृङ्गार रस है, भक्ति शास्त्र में वही 'मधुररस अथवा 'मधुरभक्तिरस' है।

दाम्पत्य प्रेम—ऊपर कहा जा चुका है कि वैष्णवभक्तिवाद का यह एक ठोस सिद्धान्त है कि लोक मे प्रेम के जितने भिन्न भिन्न सम्बन्ध हो सकते हैं या होते हैं उन्ही सम्बन्धों को लोक से उठाकर ईश्वर मे प्रतिष्ठित कर भाव साधना की जाती है। इन सम्बन्धों म कदाचित् सर्वाधिक उत्कट प्रेम-सम्बन्ध पति पत्नी-सम्बन्ध है। मधुरभक्ति के अन्तगत व्रजेश्वर कृष्ण और व्रजेश्वरी राधा का यही मजुल प्रेमसम्बन्ध मान्य है। कृष्ण और उनकी प्रणयिनी गोपियाँ-जिनकी सिरमौर श्री राधिका हैं, इस मधुर रस के आलम्बन हैं। तथा, वशी ध्वनि, सखा सखी आदि इसके उद्दीपन हैं। इनके अतिरिक्त शृङ्गाररस की जितनी भी अन्य सामग्री है सब मधुररस के अन्तगत तद्वत् आ जाती है। क्योंकि, रति भाव इन दोनो के केन्द्र मे प्रतिष्ठित है। भले ही इन दोनो मे सामान्य और विशेष का सूक्ष्म पार्थक्य हो प्रेमोदय की प्राय सभी अन्तदशाएँ क्या लोक और क्या परलोक दोनों अवस्थाओ में मनो वैज्ञानिक दृष्टि से सम हैं। हाँ, सस्कार भेद से विभिन्न सहृदयो म आस्वाद भिन्नता का अनुभव स्वाभाविक ही है।

शृङ्गार और भक्ति की भिन्न मनोदशाएँ-शृङ्गाररस जहाँ लोकसामान्य सहृदया के अन्तर म सहज ही उद्रिक्त हो सकता है वहाँ मधुररस के उद्रेक के लिए सहृदयो के अन्तरतम की उदात्त अवस्था अनिवाय है। अत यह कहना कि 'दोनो प्रकार के रसा के परिपाक के लिए जिस चित्तवृत्ति की आवश्यकता है, वह एक ही है –[1] सगत और मान्य नही है। मधुररस भक्ति चित्त के लिए भक्ति ही है, किन्तु विषयी चित्त के लिए शृङ्गार है। मधुररस यदि भक्तो के लिए लोकोत्तर शृङ्गार है तो सासारिको के लिऐ उत्तान वासना। अत दोनो म जो अन्तर है उसे श्रीमद्भागवत के रास लीला प्रसग के अन्त म उठायी गयी राजा परीक्षित की शकाओ और शुकदेव मुनि के समाधान के दो पक्षो के रूप म समझना चाहिए।

परीक्षित राजा हैं, सासारिक पुरुष हैं। अत उनका पक्ष स्वभावत सासारिका का है जो कृष्ण और गोपिया के द्वारा की गई रास लीला को सदेह की दृष्टि से देखते हैं। किन्तु मुनिवर शुकदेव लोक सस्कार मुक्त तथा भगवल्लीला के प्रति पूर्णत आश्वस्त हैं। उनका पक्ष लोकोत्तर चेतनासम्पन्न भक्तो का है। अत वह इस रास लीला की उदात्त रस-वत्ता से परीक्षित को अवगत कराते हैं।[2] और, इस प्रकार शृङ्गार और भक्ति के इस रूप कात्मक द्वन्द्व म भक्ति की विजय होती है। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि दोनो के उपा दान स्थूलत एक ही हैं।

---

१ डॉ० म० मु०-भा० भ० त० प्र० और हि० कृ० का०-(पृ० २८७)

२ ईश्वराणा वच सत्य तथैवाचरित क्वचित् ॥' १०/३४/३२

मधुरभक्ति के भी दो प्रकार हैं—सयोग और वियोग। पुन वियोग के ३ भेद हैं-पूर्व-राग, मान और प्रवास। इसके अतिरिक्त विषय पक्ष मे नायिकाभेद की दृष्टि से स्वकीया और परकीया तथा नायक भेद की दृष्टि से धीर, ललित, अनुकूल और दक्षिण आदि नायक-नायिकाएँ चित्रित हुई हैं। काव्यशास्त्र की परम्परा मे शृङ्गार का रसराज कहा गया है। उसी प्रकार भक्तिशास्त्रियो ने इसे 'भक्तिरस-राट' की पवित्र सज्ञा दी है। किन्तु, दोनो मे एक अन्तर यह भी है कि जहाँ शृङ्गार रसाभास शृङ्गाररस से बहिष्कृत है वहाँ शृङ्गाररस तथा शृङ्गार भाव (रसाभास) दोनो ही इस 'भक्तिरसराट' मधुररस में अन्तर्मुक्त हो जाते हैं।

समासत कान्ता भाव की प्रीति मे जैसे आत्म-समपरण और आत्म विसजन की उत्कट भावना रहती है वैसे ही भक्तो ने भी ईश्वर प्रीति मे आत्मनिवेदन और आत्मोत्सग के तेजस्वी भावो को अन्योक्तिपरक रूपको में ढाल कर व्यजित करने का सकल्प किया। भाव वही रहा, केवल विभाव बदल गया। रूपक शैली मे कहें तो कह सकते हैं कि इन साधको ने चमचक्षुओ म उँगली डालकर ज्ञान चक्षु को जगाने का उपक्रम किया है। और इस अनुष्ठान मे वह पूणत सफल हुए हैं। यही है काँटे से काँटा निकालने का सिद्धान्त। यही है वैष्णव कवि की माधुर्योपासना—यही है अष्टकवियो की पचभावोपासना की चरम परिणति।

ऊपर वल्लभाचाय के पूव माधुयभक्ति की विकास प्रतिष्ठा दिखाई जा चुकी है। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि राधा कृष्ण मधुर भक्ति का जा रूप हमें अष्ट कवियो की रचनाओ में सविस्तर उपलब्ध होता है वह विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों और धम भावनाओ का काव्यात्मक प्रतिबिम्ब है। इसके पूव उत्तरी भारत के मुख्यत पूर्वी क्षेत्रो मे राधा-कृष्ण शृङ्गार लीला का सरस गान क्षेत्रीय कवियो की पदावली में गूज चुका था।

राधा कृष्ण इतिहास या तत्ववाद से निकल कर सम्पूणत भाव जगत् की चीज हो गये थे। माधुय के अतिरिक्त उद्रेक से प्रेम और भक्ति का प्याला लबालब भर गया था।[1] इसी समय अष्टछाप के कवियो ने राधा-कृष्ण और गोपी कृष्ण की माधुय लीला का सुमधुर गान आरम्भ किया।

प्रभाव : वल्लभाचार्य और मीरा—यहाँ यह स्मरणीय है कि वल्लभाचाय के पुष्टि-माग म माधुय भक्ति शास्त्रीय मर्यादा के कठोर आवरण से पूणत आवेष्टित है। इसीलिए आलम्बन कृष्ण स पूण तादात्म्य चाहने वाली मीरा की स्वत सिद्ध गोपी भावना के प्रति वल्लभमत विशेष आदर का भाव न रख सका। और, मीरा, के गीत सुर, नन्द और परमानन्द दास आदि कवियों की अष्टतन्त्री म अपनी माधुय लहरी न बिखेर सके। अष्टछाप के भक्त कवि माधुय लीला के तटस्थ द्रष्टा मात्र हैं, लीला प्रवेश के अधिकारी नहीं।

प्रभाव चैतन्य और मीरा—किन्तु, जसा कि ऊपर निवेदन किया गया, चैतन्य और मीरा बाई की आत्मपरक माधुर्योपासना का प्रभाव अष्टछाप के कवियो पर भी आरोपित हुआ है और उन्होंने राधा माधव की मधुर लीलाओं की अत्यन्त उन्मुक्त और सरस

---

१ आचाय द्विवेदी—'सूर साहित्य' (पृ० १९)

व्यजना की है। फिर भी गोपी भाव यहाँ कितना प्रबल है, सूर और नन्ददास की प्रेम व्यजना का चूडान्त भ्रमरगीत इसका प्रमाण है।

मधुर रस के विषय (कृष्ण)--मधुर रस के विषय किशोर कृष्ण और आश्रय गोपियाँ हैं। नायिकाभेद की दृष्टि से गोपियो के दो वर्ग हैं-(१) कुमारिका और (२) विवाहिता। इस गोपी भाव के आधार पर कृष्ण भी दो रूपो में हमारे सामने आते हैं---(१) कुमार और (२) जार।

अष्टछाप के कवियो ने जार की अपेक्षा कुमार भाव को विशेष प्रश्रय दिया है। स्वकीया भावना की यहाँ विशेष प्रतिष्ठा है। यद्यपि कुछ गोपियो का उनसे विवाह सम्पन्न नही हुआ था। फिर भी वे लोक लाज तज कर बिल्कुल एकनिष्ठ भाव से कृष्ण मे आसक्त थी। ब्रह्मा द्वारा गो वत्स हरण के अनन्तर कृष्ण की माया शक्ति द्वारा विनिर्मित गोप गोपियाँ कृष्ण की प्रतिच्छाया ही थी। और, उनमे परस्पर जो विवाहादि सम्पन्न हुए थे उसके वास्तविक अधिकारी कृष्ण ही थे। प्रेम के मान और खण्डिता प्रसगो मे भी कृष्ण उनके प्राण वल्लभ ही रहे। इनके अतिरिक्त सूरदास ने राधा कृष्ण का विधिवत् विवाह भी करा दिया। इन सारी बातो से गोपी-कृष्ण और राधा कृष्ण की अन्तरग सगति का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। अपने पातिव्रत की अभिमानिनी गोपियाँ कृष्ण सखा उद्धव से कहती हैं—[1]

> हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ ॥
> मन, क्रम, वच हरि सो धरि पतिव्रत, प्रेम जोग तप साध्यौ ॥
> मातु पिता हित, प्रीति निगम पथ तजि, दुख सुख भ्रम नाख्यौ ॥
> मानापमान परम परितोषी, सुस्थल थिति मन राख्यौ ॥

अत गोपियो के कृष्ण प्रेम मे साहचर्य सख्य और रूप सौन्दर्य की प्रबल प्रेरणा काम करती है।

माधुर्य वर्णन—सूरदास कृष्ण के मधुर स्वरूप के अन्यतम चित्रकार हैं। यह माधुर्य सख्य रूप की ही स्वाभाविक परिणति है। सखा कृष्ण माखनचोर थे। माधुर्य भाव दशा मे वही चितचोर बन गये हैं। चीर हरण प्रसग मे कृष्ण के इस चितचोर स्वरूप के विकास की ओर गोपियो ने अत्यन्त लाक्षणिक सकेत किया है।[2]

> अबही देखे नवल किसोर।
> घर आवत ही तनक भए हैं, ऐसे तन के चोर।
> कुछ दिन करि दधि माखन-चोरी अब चोरत मन मोर।
> बिवस भई तन सुधि न सम्हारति, कहति बात भई भोर।
> यह बानी कहतही सजानी समुझ भई जिय ओर।
> सूर स्याम मुख निरखि चली घर, आनँद लोचन लोर ॥

अत यह सिद्ध है कि सखा रूप कृष्ण ही नवल किशोर रूप मे गोपियो के मधुर प्रेम के विषय बन गये। सखा कृष्ण गायों के पीछे लकुटिया लिये चलते थे। अब वह

१ ३५३१/४१४९ २ ७७६/१३६४

गोपियों के पीछे बाँसुरी लेकर मँडलाते हैं। उनके सखा पहले ग्वाल बाल थे। अब वे गोप कुमारियाँ हो गयी हैं।

रूप छवि—प्रलम्ब वध के अनन्तर जब वे सखा सहित बन ठन कर घर लौटते हैं तो उनके नट नागर रूप की मोहिनी समस्त गोपी मण्डली पर छा जाती है। गोपियों का विरह तिमिर कृष्ण के दर्शन मात्र से छँट जाता है। और, कृष्णचन्द्र की पूर्ण नागर ज्योत्स्ना ब्रज मण्डल पर छा जाती है।[1] गोपियों के नयन कुमुद पूर्ण प्रफुल्लित हो जाते हैं। गोपी प्रेम प्रेरक मनमोहन कृष्ण की साँवरी छवि का एक नमूना प्रस्तुत किया जाता है—[2]

साँवरो मनमोहन माई।
देखि सखी बन त ब्रज आवत, सुन्दर नन्दकुमार कन्हाई॥
मोर पंख सिर मुकुट बिराजत, मुख मुरली धुनि सुभग सुहाई।
कुण्डल लोल, कपोलनि की छबि, मधुरी बोलनि बरनि न जाई॥
लोचन ललित, ललाट भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई।
मनु मरजाद उलधि अधिक बल उमँगि चली अति सुन्दरताई॥
कुञ्चित केस सुदेस, कमल पर मनु मधुपनि माला पहिराई।
मंद मंद मुसक्यानि, मनौ घन, दामिनि दुरि दुरि देति दिखाई॥
सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई।
मनु सुक सुरँग बिलोकि बिंब फल चाखन कारन चोंच चलाई॥

रूप छवि के अन्तर्गत उनकी त्रिभंगी मुद्रा के रूप में अपार सौन्दर्य प्रतीकित है। वंशी-माधुरी, त्रिभंगी मुद्रा, नखशिख छवि के साथ कृष्ण चरित में अन्तरंग माधुर्य का सन्निवेश प्रदर्शित हुआ है। कृष्ण की रूप छवि के अन्तर्गत उनके अंग प्रत्यंग, रोम और रंगों की बारीकी को अत्यन्त विदग्धता से चित्रित करने में कवि ने वही सूक्ष्मदर्शिता दर्शायी है जो अपनी नायिका राधिका की वयःसंधि के चित्रण में कविवर विद्यापति ने प्रदर्शित की थी।

वंशीधर कृष्ण की वंशी के प्रति गोपियों की असूया वृत्ति इस बात की द्योतक है कि उसकी विमुग्धकारिणी ध्वनि उसके लिए परम उन्मादिनी सिद्ध हुई थी। इस अवस्था में कृष्ण की चंचल चितवन, मीठी मुस्कान भी कम प्रेमोद्दीपक नहीं सिद्ध होती। कृष्ण के रूप-लावण्य का यह चमत्कार उनके भावात्मक स्वरूप की क्रम परिणति है जो उत्तरोत्तर उन्हें गोपी तथा गोपेश्वरी राधा के प्रेम पाश में आबद्ध करती जाती है। और, उनका किशोर स्वप्न रूप की तन्वी राधा के मृदुल साहचर्य में परिणत होता जाता है।

राधा के साथ कृष्ण का प्रेम मिलन भी इसी भावनागत क्रम-परिणति का प्रतिफल है।

---

१ ६१८/१२३६—लज्जित मनमथ निरखि बिमल छबि, रसिक रंग भौंहनि की मटकनि।
मोहनलाल, छबीलो गिरधर, सूरदास बलि नागर नटकनि॥

२ ६१६/१२१४

राधा प्रेम—कृष्ण के मन मोहन रूप के साथ साथ उनकी प्रियतम प्रेयसी राधा को भी मोहिनी छवि प्रदान की गयी है। साँवरे कृष्ण को राधा की मन मोहिनी रूप छवि प्रथम दर्शन मे ही परस्पर मिलन की मादक लालसा से उद्वेलित कर देती है। भौंरा चकडोर हाथ म ही रह जाता है। कृष्ण भौचक ही राधा को देखकर उसके प्रेम की डोर मे आबद्ध हो जाते हैं–[१] सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगारी ।।

वस्तुत यह प्रथम दशन का प्रेम है जो एक स्फोट के साथ दोनो के सुकुमार अन्तर्भावो को छूकर सिहरा देता है।

कृष्ण अपने प्रथम सम्भाषण मे भी सहज सख्य का ही प्रदशन करते हैं जो क्रमश मधुर रस से आप्लुत होता जाता है कृष्ण की जिज्ञासा पर राधा परम लाक्षणिक उत्तर देती है—

'सुनत रहति स्रवननि नँद ढोटा, करत फिरत माखन दधि चोरी'

कृष्ण केवल बाल चोर ही नही, यौवन चोर भी हैं। वह माखन चोर ही नही चितचोर भी हैं। अपने इसी स्वभाव पर लाक्षणिक ढग से परदा डालते हुए वह कहते हैं–[२]

'तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलो सग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ।।

यह राधा-कृष्ण के छुटपन का प्रेम है। यह लाज, झिझक आदि के परदे मे गोपनीय भाव से अग्रसर होता है। इसमे नेत्रों की भाषा ही कारगर सिद्ध होती है। खेलने के लिए कृष्ण का यह मधुर आमन्त्रण उनके सख्य और सहभाव का द्योतक है। किन्तु यह अगले ही रोज किशोर प्रीति मे विकसित होने लगता है। जहाँ दोनो माधुय के निराले आन द लोक मे एक साथ पदापण करते हैं। जिसे विद्यापति ने राधा को लक्ष्य कर—'मनसिज पाठ पहिल अनुबन्ध कहा, उसे ही सूरदास ने अपनी जोडी को लक्ष्य कर यह कहा है–[३]

प्रथम सनेह दुहुनि मन जान्यो।
नैन सैन कीन्ही सब बातें गुप्त प्रीति सिसुता प्रगटायो ।।
सूर स्याम नागर, उत नागरि राधा दोउ मिलि गाय ।।

यहाँ कृष्ण नागर और राधा नागरी बन जाती हैं। बालापन की यही जोडी यौवन काल की जोडी बन जाती है। धीरे धीरे लरिकाई की सग 'गुप्त प्रीति' मे और 'नैनो की ठगोरी 'मन की मरुझाई' म बदल जाती है–[४]

नागरि मन गई अरुझाइ।
अति बिरह तनु भई ब्याकुल घर न नेकु सुहाइ ।।
स्याम सुन्दर मदन मोहन मोहिनी सी लाइ।
चित्त चचल कुँवरि राधा खान पान भुलाइ ।।

कृष्ण नागर हैं। और उनमे नागरोचित चातुय वत्तमान है। गारुडी प्रसग म इसका यथेष्ट निदर्शन होता है। गोपियों के साथ कृष्ण की शृङ्गारिक केलि क्रीडा यही से शुरू होती है।

१ सूरसागर—६७२/१२९०　　२ सूरसागर—६७३/१२९१
३ वही—६७२/१२९२　　४ वही—६७८/१२९६

कृष्ण ओझा बनकर राधा का काम गरल उतार कर अन्य गोपियों पर डाल देते हैं।[1] इससे गोप-तरुणियों के मन मे कृष्ण रति की लहर दौड जाती है।

चीरहरण लीला म इसी का सामूहिक उपचार किया जाता है। चीरहरण प्रसग के कृष्ण पूरे 'लगर' हैं। गोपियों के अनुसार–'चोरी, रही, छिनारो अब भयो।' किन्तु कृष्ण तो सवभाव से सेवनीय हैं।[2]

रास—इसके अनन्तर **रासपचाध्यायी** प्रारम्भ होता है। रास कृष्ण की माधुय लीला का चूडान्त रूप है।

शरद् पूनम की रात्रि को जब कि वृन्दावन के कुञ्जों म, यमुना की रजत रेती पर शरद् ऋतु की सम्पूर्ण सुषमा फैल रही थी, रासविहारी कृष्ण ने अपने अधरो पर वशी को रख कर तथा उसमे प्रत्येक गोपी का अलग अलग नाम भर कर उसे टेरना शुरू किया। गोपियो क प्राणों में पूरी मादकता छा गई। और वे अपने काम धाम का बिसार कर श्याम रूपी सिन्धु म सरिता के उन्मत्त प्रवाह की नाईं जा मिली।[3] सोलह हजार गोपियो मे प्रत्येक के साथ एक एक कृष्ण तथा सम्पूर्ण रासमण्डल के बीच राधाकृष्ण युगल मुद्रा का नृत्यनिरत स्वरूप यही कृष्ण की रास लीला का आयोजन क्रम है।[4] त्रिभुवननायक कृष्ण और सृष्टि-स्वरूपा गोपियों का यह मिलन समागम नित्य सयोग के रूप मे चित्रित है। **भावमय कृष्ण** गोपियो की कामना को पूर्णत सतुष्ट कर देते हैं।

सूर ने इस राम रस रीति के सम्बन्ध में जो बातें कही, उनसे कृष्णचरित की भावात्मक सत्ता ही उद्घाटित हुई है। उनके अनुसार[5]—

'राम रस रीति नही बरनि आवै।
भाव सौं भज, बिनु भाव मैं ये नहीं, भावही माहि ध्यानहि बमावै॥'
अथवा, 'भज जिहि भाव जो, मिलै हरि ताहि त्यों। भेन भेदा नही पुरुष नारी।
सूर प्रभु स्याम ब्रज बाम, आतुर काम, मिली बन धाम गिरिराजधारी॥

इसी बीच **राधा कृष्ण विवाह** का आयोजन कर दाम्पत्य प्रेम की महिमा बढायी गयी है।[6] किन्तु सवत्र इन्हे स्वीया न रखकर परकीया की नाइ चित्रित किया गया है। अत इस परिणय सूत्र को भी जीव ब्रह्म के सम्मिलन का एक मागलिक प्रतीक ही माना जा सकता है।

रास के अनन्तर पनघट और दानलीला मान और मान भग, युगल विहार और खडिता प्रसग झूलन और बसन्त आदि लीलाओं म कृष्ण का रसिक नागर रूप पराकाष्ठा पर चित्रित हुआ है। कवियों ने नायक कृष्ण के मधुर स्वरूप की रति के अनेक भावा मे व्यजना की है। इसे भक्ति या श्रृङ्गार का सृजन नही कहेंगे। यह अन्तरतम के कोमल मधुर भावा की निश्छल रूप सृष्टि है। 'कृष्ण पूर्णरूपेण भाव की प्रतिमा हैं। स्वय न वे

---

१ सूरसागर—७६८/१३८२
२ वही–७८७/१४०५–'कौनेहुँ भाव भजे कोउ हमकों, तिन तन पाप हरै री॥'
३ वही १०००/१६१८ ४ वही–१०५२/१६७० ५ वही १००६/१६२४
६ सूरसागर–१०७१/१६८९

बालक हैं, न तरुण, न प्रेमी हैं न प्रेम पात्र। उनकी मूर्ति एकमात्र भक्त की भावना और अनुभूति पर आश्रित है। सूरदास की भावना और अनुभूति के कृष्ण सुन्दर, सुकुमार, कोमल, मधुर, विनोदी, चंचल, रसिक और अद्भुत लीलाधारी हैं।[१]

गोपी कृष्ण मिलन-समागम की नाना स्थितियों के मनन तथा अपने व्यक्तित्व के गोपी भाव में आरोप तथा सहभाव द्वारा भक्तों ने कृष्ण के सान्निध्य की सुखद अनुभूति का उद्योग किया है। इस संयोग सुख के समक्ष मोक्षसुख व्यर्थ है।

प्रवास वियोग—माधुर्य के इस संयोग चित्रण के अनन्तर उस व्यापक वियोग का वर्णन भी आवश्यक ही है जिसने व्रजांगनाओं के नवनीत अन्तर का कृष्ण प्रयाण की दारुण ज्वाला में पिघला दिया। समस्त चराचर ही कृष्ण के प्रवास विरह में रो उठा है। कवि के अन्तर में भगवान् का विरह भी गहन रूप में फूट पड़ा है। और वह गोपियों के व्याज से अपने उच्छ्वास को इन शब्दों में प्रकट करता है—

> नाथ अनाथन की सुधि लीजै।
> गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब, दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै॥
> नैन सजल धारा बाढ़ी अति, बूड़त व्रज किन कर गहि लीजै।
> इतनी विनती सुनहु हमारी, बारक हूँ पतियाँ लिखि दीजै॥
> चरन कमल दरसन नव नौका करुनासिन्धु जगत जसु लीजै।
> 'सूरदास' प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन व्रज कीजै॥

इसी 'आस' पर राधा जीती रहीं। गोपियों और ग्वालों के प्राण अँटके रहे। भक्तों का ध्यान लगा रहा। और, कवियों के सन्देशे सन्देशे बनते रहे। किन्तु, सचाई यह है *कि कृष्ण गोपियों के लिए फिर कभी न लौटे।*

राधा कृष्ण माधुर्य लीला के वियोगपक्ष पर अष्टकवियों मे विशेषत सूर की अन्तवृत्ति विशेष टिकी थी। कृष्ण के वियोग में उन्होंने सैकड़ो पद कहे हैं। इस प्रियतम वियोग ने उनके भवत्यात्मक उद्गारो में मानो पंख जड़ दिये हो। उद्धव सन्देश हो या पथिक सन्देश, स्वप्न की सुधि हो या सुधि के चित्र रुक्मिणी प्रसंग हो या कुरुक्षेत्र प्रसंग सबों में उनके उदात्त चित्त की कृष्णानुरक्ति ही शत सहस्र वाग्धाराओ मे फूट बही है। क्या व्रज, क्या मथुरा और क्या द्वारका सबो के कृष्ण को इन कवियों ने इसी व्यापक उदात्त अनुराग रगों से अनुरंजित देखने की अभिलाषा की है। इन कवियो के बाल से लेकर प्रौढतम कृष्ण और व्रज से लेकर द्वारिकाधीश कृष्ण सब उस भाव की ही दिव्य मधुर मूर्त्ति हैं।

कुछ विद्वानो ने सूर के भावमय कृष्ण में सहृदयता का अभाव प्रदर्शित किया है तथा मथुरा और द्वारिका के कृष्ण को व्रज के काम नायक' क्लासिकल स्वरूप से परिवर्तित स्वरूप मे देखने दिखाने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार—कृष्ण अलौकिक शक्ति सम्पन्न नटनागर या यो कहिये कि जादूगर थे जो प्रत्येक प्रसग मे भिन्न भिन्न प्रणाली से, (*नई नई रीति से* ?) व्रज तरुणियो के 'काम द्वन्द्व' का शमन किया करते थे।

---

१ डॉ० व्रजेश्वर वर्मा—'सूर मीमांसा' ('भावातीत श्रीकृष्ण' पृ० १७६)

जब तक वे ब्रज मे रहे, उनका यही स्वाभाविक स्वरूप था। जब वे मथुरा वा द्वारिका चले गये, तब उनका स्वरूप परिवर्तित हो गया, किन्तु इस रूपान्तर के लिए सूर की प्रशसा वा विगर्हणा नही की जा सकती क्योकि उन्हें कृष्ण कथा के भागवत चित्रित स्वरूप का परिपालन था ही।"[1]

किन्तु, प्रवासी कृष्ण की मनोभावनाओ के सूक्ष्म अन्वीक्षण के बिना ही कृष्ण चरित मे यथातथ्य विरोधी रूपान्तरित स्वरूप की कल्पना अयुक्तिसगत है। और, यद्यपि सूर के कृष्ण की इस तथाकथित चारित्रिक सीमा का दायित्व सूरदास से हटा कर श्रीमद्भागवत के रचयिता व्यास के मत्थे मढ दिया गया है किन्तु प्रवासी कृष्ण की गोपी वियोग भावनाओं के स्पष्ट कथन मे सूरदास ने वस्तुत अपनी ही सहृदयता का अतिरिक्त परिचय दिया है। उदाहरणार्थ, भागवत के कृष्ण नान गुरु उद्धव से अपने गोपी वियोग के सम्बन्ध मे छूनेवाली उक्ति नही कहते जो सूर के कृष्ण अपने सन्देशवाहक सखा से इन भाव विह्वल स्वरो में निवेदित करते हैं—

> सुनहु ऊधौ मोहि ब्रज की, सुधि नही बिसराइ।।
> रनि सोवत, दिवस जागत, नाहिनै मन आन।
> नन्द जसुमति, नारि नर ब्रज तहौ मेरो प्रान।।
> कहत हरि सुनि उपँग सुत यह, कहत हौं रस रीति।
> सूर चित तैं टरत नाही, राधिका की प्रीति।।

किन्तु भावुक कृष्ण को सखा भी तो वसे ही 'भुरग' मिले थे। यह हस और काग की ही मैत्री थी। उद्धव जी भर प्रेम की बातें भी नही सुनते। और, उल्टे ऐसी बातें करते हैं जिनसे रस ही जल जाता है। अत उनकी मम व्यथा उनके मन मे उमड-घुमड कर रह जाती है—

> 'कहाँ जसोदा सी है मैया, कहाँ नन्द सम तात।।
> कहँ वृषभानु सुता सँग को सुख, वह वासर वह प्रात।
> सखी सखा सुख नहिं त्रिभुवन में, नहिं बैकुठ सुहात।।
> व बातैं कहिए किहि आगे, यह गुनि हरि पछितात।'

और फिर इसी भाँति भाव विह्वल कृष्ण के मुख से पचीसो पद कहलाये गये हैं जिनमें कृष्ण के ब्रजवासी स्वरूप की प्रेम प्रवणता अत्यन्त मार्मिक ढग से प्रकट हुई है। इस आधार पर कृष्ण के मथुरावासी स्वरूप को किसी भी भाँति ब्रज के प्रेम दैवत से विरत नही कहा जा सकता। यद्यपि यह सही है कि ब्रज जीवन कृष्ण मथुरा मे अपने कर्मी जीवन के गुरुतर दायित्व से घिर कर उतना समय अपने किशोर जीवन के प्रेम, रोमास के पुनरावर्त्तन के निमित्त गोपियो को देने म व्यावहारिक दृष्टि से असमर्थ हैं तथापि अपने भावमय स्वरूप में वह मथुरा के राज पद को भी ब्रज-सुख की तुलना म तुच्छ मानते हैं। उद्धव सन्देश म अपनी उलझनों की ओर वह स्पष्ट सकेत कर देते हैं—

> 'आइ तुमकों धाइ मिलिहैं, कछुक कारज और।——

१ डॉ० रमाशकर तिवारी–'सूर का शृङ्गार वर्णन'–अप्रकाशित शोधप्रबध (पृ० १९०)

किन्तु इस 'कारज' के प्रति कान्हे की रास-लीला को समर्पित करता था। कृष्ण के सम्बन्ध में जो काँटा चुभा है, उसकी चुभन कभी नहीं शान्त होगी। वह तो दूर कहीं टीसता ही रहती है—

> 'गोई, बेंत, बिषान, बाँसुरी, द्वार धरत गहर।
> ऐ जनि जाइ चुराइ राधिका, कछुक खिलौना मेर॥
> जा दिन तें हम तुमतें बिछुरे, काहु न कह्यौ कन्हैया॥'

वात्सल्य का मीठा नवनीत और राधिका की उपस्थिति—सूर के कृष्ण का चरित्र इन्हीं दो तत्त्वों से बना हुआ है। पर उसमें रसकार की सहृदयता का प्रभाव ढूँढना इस शान्त भाव चित्र को सूना करता है। रास की कथा पर लिख जाने वाली गोपियों के समक्ष कृष्ण की चतुराई परम आह्लादमय है। नायिका की बात से यदि कृष्ण के उस निषेधात्मक प्रयत्न को मान लिया जाय तो हम कह सकते हैं कि वह 'स्वीकृति गर्भित निषेध' ही है जिसका 'ना' 'हाँ' से भी अधिक मधुर होता है। फिर, उसमें गोपियों के कामोद्रेक के बीच से विशुद्ध अनासक्ति को दर्शाना भी व्यंजित है। इसी का प्रयोग दुबारे कृष्ण ने रास मध्य अन्तर्धान होकर भी किया है। माधुर्य भक्ति के उत्तुंग पद पर काम-प्रेम को उन्नीत करने के लिए कृष्णकाव्य में उस विरोधाभास (कॉन्ट्रास्ट) का कौशल विनियोग हुआ है। इससे रति में क्षणिक आवरण या लोपन के कारण, और भी तीक्ष्णता आ जाती है।

इसी विरोधाभास का प्रयोग कृष्ण ने ज्ञानी उद्धव को ब्रज मण्डल में भेज कर किया है। उद्धव की सारी हेकड़ी भूल गयी है। उस निराले प्रेम लोक की निश्छल प्रेम छटा में वह आकण्ठ डूब गए हैं —[1]

> 'सुनि गोपिनि को प्रेम, नेम ऊधो को भूल्यो।
> गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजनि में फूल्यो॥"

कृष्ण से विलग उद्धव छः मास तक ब्रज में रहे। किन्तु, वह नित्य बाल किशोर वपु में ब्रज के घर घर में कृष्ण को देखते रहे[2]। यह उद्धव के विगलित ज्ञान मन की वह भावदशा है जिसमें नित्य भाव देव श्रीकृष्ण की कमनीय मूर्ति प्रतिबिम्बित हो उठी है। भावुक भक्तों के चित्त में निरंतर विद्यमान कृष्ण भाव-देव ही हैं नाम रूपात्मक ऐतिहासिक सत्ता नहीं। उनका यह भाव देव दो रूपों में सर्वाधिक निखरा है—बाल और किशोर। और इन दोनों रूपों में भी किशोर रूप सर्वाधिक मनोहर है। उद्धव के शब्दों में—

> तुमही सों बालक किसोर बपु, मैं घर घर प्रति देख्यो।
> मुरलीधर घनश्याम मनोहर, अद्भुत नटवर पेख्यो॥

यह रूप कवि के उदात्त चित्त का सुन्दरतम भाव बिम्ब है। इसके लिए सूर ने दो फलक तैयार किये थे—एक है यशोदा और दूसरी है राधा। कृष्ण के भावात्मक स्वरूप निर्माण में

---

१ सूरसागर—४२७५/४८९३

२ वही— ४१५२/४७७०

कवि-श्रद्धा का कितना योग है, महाकवि सूरदास ने इसे गोपियों की उक्ति में (लाक्षणिक रूप में) चरितार्थ कर दिया है–[1]

कहा भयौ मधुपुरी अवतर गोपीनाथ कहायौ।
व्रजवधुअनि मिलि साट कटीली, कपि ज्यौं नाच नचायौ॥

द्वारिकावासी कृष्ण—मथुरापति कृष्ण की भाँति ही द्वारिका के महाराज कृष्ण भी अपने मूल रोमानी स्वरूप में अपरिवर्तनीय हैं। मथुरा में उन्होंने जो बातें उद्धव से कही हैं, द्वारिका में अपनी पट्टमहिषी के समक्ष निःसंकोच स्वीकार की हैं।–[2]

रुक्मिनि मोहिं व्रज बिसरत नाहीं।
वह क्रीडा वह केलि जमुन तट, सघन कदम की छाहीं॥
गाप बधुनि की भुजा कंध धरि, बिहरत कुंजनि माहीं।
और बिनोद कहा लगि बरनौं बरनत बरनि न जाहीं॥
जद्यपि सुख निधान द्वारावति गोकुल के सम नाहीं।
सूरदास घनस्याम मनोहर, सुमिरि सुमिरि पछिताहीं॥

अपने पूर्व प्रेम की गवाही में ऐसे बीसों पद कथित हुए हैं जिनमें वृन्दावन की रस-केलि को तीनों लोकों में दुर्लभ करार दिया गया है। इस कथन से द्वारावती की सुन्दरियों के दिल पर क्या बीतता होगा, इसे तो वे ही जानती होंगी। किन्तु, इस महान् और निःस्वार्थ प्रेम को स्वयं रुक्मिणी हृदयंगम कर और भी लोकोत्तर महिमा प्रदान करती है।

कृष्ण के कुरुक्षेत्र आगमन का हेतु भी पुण्य-स्नान न होकर इसी 'लरिकाई को प्रेम' है–[3]

'व्रज बासिनि को हेतु, हृदय में राखि मुरारी।
सब जादव सौं कह्यौ, बैठि के सभा मँझारी॥
बडौ परब रवि ग्रहन, कहा कहौं तासु बडाई।
चलौ सकल कुरुखेत, तहाँ मिलि न्हैये जाई॥

यहाँ भी उनकी प्रवृत्ति में वही बाँकपन है। और, सचमुच सीधगी—लीलामय चरित्र, रमणीय स्वरूप और रंजनकारिणी वृत्ति के लिए आवश्यक गुण नहीं है। सीधगी शीलवान् चरित्र का धर्म है। वह रामचरित का भूषण है। किन्तु कृष्ण के भाव विदग्ध चरित्र और रस विचित्र अन्तर के लिए इस भंगिमा का होना स्वाभाविक ही था। यही भंगिमा, यही बाँकपन, यही वैदग्ध्य कृष्ण के भावमय स्वरूप, लीलामय चरित्र और शृङ्गारी व्यक्तित्व की धुरी है जिसके चारों ओर अन्य अवान्तर तत्त्व चक्कर काटते हैं।

प्रभास में जब गोपियाँ कृष्ण के वेणुधर रूप के स्थान पर चक्रधर रूप और मोर मुकुट के स्थान पर राजमुकुट देखती हैं तो उनके हृदय में उद्दाम प्रेम की सरिता नहीं उमडती, उनका चित्त उनके प्रत्यक्ष दर्शन पर भी अभूतपूर्व विरह की ज्वाला में जलता

१ सूरसागर ३६५१/४२६६
२ सूरसागर—४२७२/४८९०
३ वही—४२७५/४८९३

रहता है। वे कृष्ण के राजराजेश्वर रूप म अपने उस प्रेमी को ढूँढती हैं जिसकी वशी ध्वनि पर उ होंने 'सुत गेह देह को बिसरा दिया था। जिसकी 'बाकी चितवन' ने उन पर मोहिनी डाली थी।' ब्रज में रहते हुए जिस विरह वदना का उ हे अनुभव था, उससे कही अधिक कष्टदायी प्रभास के मिलन का यह समीप विरह था।[1] अन्ततोगत्वा कृष्ण ने अपना वही भाव स्वरूप प्रदर्शित किया। तब जाकर उनके चित्त को किंचित् शान्ति मिली।

इस बीच रुक्मिणी को कृष्ण के 'बालापन की जोरी' देखने की बड़ी इच्छा होती है जिसके गुणो की माला जपते रुक्मिणी पति कभी नही थकते थे। रुक्मिणी इस प्रसग को छोडकर कृष्ण के किशोर प्रेम चरित का भण्डाफोड कर देती हैं।

'जाके गुनगनि ग्रथित माला, कबहुँ न उर तें छोरी।

कृष्ण पहचनवाते हैं—

'मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत-उत मोरी।
वह लखि जुवति वृ द मे ठाढी, नील वसन तन गोरी॥'

यह राधा जो कृष्ण प्रेम म इतनी पागल, इतनी चचल, इतनी हसोड और इतनी बातून थी, आज अ तस्थ प्रेम योगिनी बन गयी है। कृष्ण पहले रुक्मिणी को मिलाकर फिर उससे मिलते हैं—'राधा माधव, माधव राधा, कीट भृङ्ग गति ह्व जु गई॥ कृष्ण उसे अपना अभि न बतलाकर इस काल्पनिक प्रेम मिलन के दृश्य का पटाक्षेप करते हैं।

समासत अष्टछाप काव्य का प्रधान विषय कृष्ण का भावमय स्वरूप है। यह मुख्यत ब्रजेश्वर कृष्ण के रूप में प ल्लवित हुआ है। यो मथुरा और द्वारिका के कृष्ण से इसका कोई भाव विरोध नही है। यह कृष्णचरित्र भाव, रस या आन द का प्रतीक है जो राधा और गोपी भाव के आश्रय म व्यजित हुआ है। बाल लीला इसका आनुषगिक पक्ष और किशोर लीला प्रमुख पक्ष है। किशोर लीला के समस्त सौ दय और सौकुमार्य की के द्र बि दु राधा है।

सूरदास के का य म भाव देव श्रीकृष्ण अपने सम्पूर्ण स्वरूप म विराजमान हैं। इस दृष्टि से परमान द दास ही उनके समथ अनुयायी हैं। भावमय-स्वरूप की परिपूर्ण व्यजना अ य कवियो तथा इतर सम्प्रदायो म विरल है। मधुर रस की अनुरजनकारिणी वृत्तियो का जैसा निदर्शन इस सम्प्रदाय के कवियों ने किया, वैसा हि दी क किसी कवि ने नही। अष्टछाप के कुछ कवि तो कृष्ण के सखा भाव क प्रतीक ही बन गये थे। स्वय सूर का मधुर भाव साधारणीकृत चित्त की वह मध्यवर्ती धारा है जिसके दोनो कूल वात्सल्य और माधुर्य की प्रेम सुधा से अभिसिंचित होते रहते हैं।

---

१ डॉ० दी० द० गुप्त— अष्टछाप और वल्लभ–सम्प्रदाय' ('अष्टछाप प्रेम भक्ति के उपास्य देव' शीर्षक निबन्ध, पृ० ५५६)

चतुर्थ अनुच्छेद

राधावल्लभ-मत मे कृष्ण

१६ वीं शती के कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों में वृन्दावन के राधावल्लभ सम्प्रदाय का सविशेष महत्त्व है। इसके संस्थापक प्रसिद्ध रसचार्य गोसाईं हित हरिवंश हैं। ये श्रीकृष्ण की मुरली के अवतार माने जाते हैं। 'हित' इनका उपनाम है जिसका सम्प्रदाय के सैद्धान्तिक पक्ष से अन्तरंग सम्बन्ध है। इनके जन्म स० के विषय म मतभेद होते हुए भी साम्प्रदायिक मान्यतानुसार इनका जन्म स० १५५९ (१५०३ ई०) मान्य है। इसकी पुष्टि श्रीभगवतमुदित कृत "रसिकमाल" के हित चरित्र से होती है।

> पन्द्रह सै उनसठि सवत सर, बैसाखी सुदि ग्यास सोमवार।
> तहाँ प्रगटे हरिवस हित, रसिक मुकुट मनिमाल।
> कम ग्यान खडन करन, प्रेम भक्ति प्रतिपाल॥

ये पहले माध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे। बाद म निम्बार्क सम्प्रदाय मे सम्मिलित हो गए। कहते हैं, वृन्दावनेश्वरी श्री राधादेवी की प्रेरणा से ये अचानक घर (देवबन्द सहारनपुर) से वृन्दावन की ओर चल पडे। रास्ते में एक ब्राह्मण ने इन्हे अपनी दो कन्याएँ और एक कृष्ण मूर्ति भेंट की। वृन्दावन आकर इन्होंने राधा वल्लभ नाम से उस मूर्ति को सस्थापित किया और उस पर एक मन्दिर बनवा दिया। यह सब श्रीराधिका जी की स्वप्न प्रेरणा का ही प्रतिफल था। 'हितचरित्र' के अनुसार विक्रमी स० १५९१ (१५३५ ई०) मे श्री राधावल्लभ जी का पटमहोत्सव' सम्पन्न हुआ और तब से हरिवंश गोसाईं अपने सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति के प्रचार प्रसार म सलग्न हो गये। अपने शिष्य विट्ठलदास को लिखे गये अपने एक व्यक्तिगत पत्र[1] के अनुसार 'व्रजनव तरुणि कदम्ब चूडामणि श्री राधे ही इस मत की गुरुस्थानीया हैं। स्वभावत इस मार्ग में कृष्ण की अपेक्षा श्रीराधा का ही विशेष महत्त्व रहा। हित हरिवंश ने ५० वर्ष की आयु में स० १६०९ मे भगवान की अन्तरग लीला मे प्रवेश किया। ठेठ व्रज का यह कृष्णभक्ति सम्प्रदाय अपने प्रभाव और प्रसार में कदाचित् वल्लभ सम्प्रदाय के बाद ही आता है।

रसमार्गी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय का कोई दार्शनिक मतवाद प्रसिद्ध नहीं है। यह विशुद्ध रसमार्गी सिद्धान्त है जिसमे प्रेम ही परमार्थ के रूप म प्रतिष्ठित किया गया है। हित हरिवंश ने अपने इस सिद्धान्त को 'राधा सुधानिधि म स्पष्ट करते हुए कहा है—

'यत्किञ्चिद्दृश्यते सृष्टौ सव हितमय विदु —अर्थात्, 'सृष्टि म जो कुछ भी दिखाई देता है उसे सब हित' अर्थात् प्रेममय जानो।' इस प्रेम-तत्त्व के अतिरिक्त उन्हे कुछ भी नही दिखाई देता। निखिल सृष्टि मे वह अपनी एकमात्र आराध्या राधा के ही दर्शन पाते हैं—

> "सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिर्मम।"

---

१ 'राधावल्लभ-सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य', पृ०१०१ पर डॉ० विजयेन्द्र स्नातक द्वारा उद्धृत।

राधावल्लभ मत की उक्त मान्यता के प्रामाणिक आधार स्वरूप तीन ग्रन्थ हैं—
(१) राधा सुधानिधि (संस्कृत) (२) हित चौरासी (व्रजभाषा)
(३) स्फुट वाणी (व्रजभाषा)

स्वामी हित हरिवंश के अनुयायियों मे दामोदरदास (सेवक जी), हरिराम व्यास और ध्रुवदास अन्यतम हैं। इनमे सेवक जी हरिवंश जी की वाणी के निगूढ रहस्यों के उद्घाटनकर्त्ता रसिक भक्तो मे सर्वोपरि हैं। इनकी 'सेवक वाणी' इसी कारण 'हित चौरासी' की पूरक वाणी मानी जाती है।

राधा की प्रधानता—नाभादास के 'भक्तमाल' मे हितहरिवंश की भजन-पद्धति को परम निगूढ और विधि निषेध से परे माना गया है। इसके अनुसार, राधा चरण की वन्दना और राधा कृष्ण के केलि कुंज की चाकरी ही राधावल्लभीय साधकों का परम कर्त्तव्य है।[१] प्रियादास ने भी इस मत मे कृष्ण की अपेक्षा राधा की भक्ति की प्राथमिकता का उल्लेख किया है।

इस मत के कवियों ने राधा कृष्ण कुंज केलि का सुमधुर चित्रण किया है। यहाँ राधा कृष्ण का नित्य सयोग स्वीकृत है, वियोग का लेश मात्र भी अस्तित्व नही है। कृष्ण की राधा के साथ की गयी निकुंज केलि ही परम रस माधुरी है जिसका आनन्द मंजरी (परिचारिका) भाव मे नित्य युगल विहारी की सेवा द्वारा प्राप्त किया जाता है। अपनी इसी केन्द्रीय कामना का प्रकटीकरण हितहरिवंश जी ने इस श्लोक मे किया है।[२]

> सान्द्रानन्दोन्मद रसघनप्रेम-पीयूषमूर्त्तेः
> श्री राधाया अथ मधुपते सुप्तयो कुंजतल्पे।
> कुर्वाणाह मृदु मृदु पदाम्भोजसवाहनानि
> शय्यान्ते किं किमपि पतिता प्राप्ततन्द्रा भवेयम्॥

अर्थात् निविड आनन्दरस के घनत्व से प्रकट प्रेमामृतमूर्त्ति श्रीराधा और श्री मधुपति जब कुंज शय्या पर निद्रित हो जांय, तब उनके अत्यन्त कोमल पद कमलो का हौले हौले सवाहन करते करते क्या कभी मैं भावविभोर (तन्द्रालस) होकर उस सेज के चरण-तल पर ही लुढक पाऊँगी ?

राधावल्लभ भक्त (मजरी) के विशुद्ध हृदय की सेवा भावना की यह मजुल परिणति है।

सिद्धान्त पक्ष —पुष्टिमार्ग के 'पुष्टि' तत्त्व की भाँति ही इस सम्प्रदाय मे 'हित' तत्त्व की अन्तर्व्याप्ति है। इसका अर्थ है–परम प्रेम। यह प्रेम समस्त चराचर मे व्याप्त है। यह विश्व उसी का प्रकट स्वरूप है। इसका आनन्द रहस्य परमानन्द की भाँति ही प्राय अनिर्वचनीय है। अस्तु, 'हित' रूपी यह परम प्रेम अपने आप में परम रहस्यात्मक भी है।

> यन्नारदाजेशशुकैरगम्य, वृन्दावने वंजुलमंजुकुंजे।
> तत्कृष्ण चेतोहरणैकविज्ञम्, अत्रास्ति किंचित् परम् रहस्यम्॥

---

१ भक्तमाल, छप्पय—९०   २ रा० सु० नि०, श्लोक—२१२

अर्थात् वृन्दावन के मंजु वेतस कुंज के अद्भुत रहस्य का क्या कहना ? यह तो चितचोरी राधा और चितचोर कृष्ण के रमणीय चित्त को चुरा लेने में अत्यन्त प्रवीण है। और तो और, परमभागवत ब्रह्मा नारद तथा शुकदेव के लिए भी राधा कृष्ण की इस परमगोपनीय कुञ्ज लीला का रहस्य अगम्य है। यही गोपनीय हित या दिव्य प्रेम हरिवंशी सम्प्रदाय का तत्व बीज है। और, इसकी प्राप्ति ही इन साधकों की साधना का चरम लक्ष्य।

लाड़लीदास जी के शब्दों में—

'सबै चित्र हित मित्र के जहं लौं धामी धाम'

अर्थात्, जहाँ तक जीव है और जगत है, सब उसी "हित मित्र' (प्रेम देवता) के चित्र हैं। श्रीहित वृन्दावन दास के शब्दों मे—यही प्रेम दम्पती (युगलकिशोर) के हृदय मे है तथा वही मुनियों का मन मोहित करता है तथा स्थावरजंगम सबों में व्याप्त है। यही प्रेम नित्य विहार में ४ रूपों में प्रकट होता है—

(१) युगलरूप–राधा (२) युगलरूप–कृष्ण
(३) श्रीवृन्दावन (४) सहचरी गण

इनमें से उपर्युक्त दो अर्थात् राधा कृष्ण अद्वय तत्त्व प्रेमाद्वैत होकर भी लीलाद्वैत युगल रूप धारण करते हैं। वे इस प्रेम के कारण और कार्य दोनों हैं। प्रेम के कारण कार्य राधा-कृष्ण जल और तरंग की भाँति एक दूसरे में ओतप्रोत हैं। अर्थात् जिस तरह जल से तरंगों का पृथक्करण असम्भव है जैसे 'गिरा' से 'अर्थ' का भेद असम्भव है, वैसे ही राधा और कृष्ण मे 'कहियत भिन्न न भिन्न' की स्थिति है–[1]

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै,
भावै मोहि जोई, सोई सोई करै प्यारे॥
मोको तो भावतो ठौर प्यारे के नैनन मे,
प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारे॥
मेरे तन मन प्रानहूँ तें प्रीतम प्रिय आपने,
कोटिक प्रान - प्रीतम मोसों हारे।
(जै श्री) 'हितहरिवंश' हंस हंसिनी स्यामल गौर,
कहौ, कौन करै जल तरंगनि न्यारे॥

एक प्रकार से यह मानो राधा और कृष्ण का परस्पर प्रेमालाप ही है।

कृष्ण—प्यारी! तुम जो जो करती हो, वही सब मेरे मन को भाता है।

राधा—प्यारे! मुझे जो जो भाता है, आप वही सब तो करते हैं।

मुझे तो प्यारे के नैनों में ठौर पाना ही भाता है। चाहती हूँ कि घनश्याम नैनों मे ही बस जाऊँ।

कृष्ण—तो, मैं भी तो तुम्हारी आँखों का तारा बन जाना चाहता हूँ प्रिये!

राधा—प्रियतम! आप मेरे तन में, मन मे और प्राणों में रमते हैं। आप तो करोड़ों जान से मुझ पर न्योछावर हैं।

---

१ हित-चौरासी—१४

हरिवंश कहते हैं, श्यामल गौर की यह अपूर्व जोड़ी हंस हंसिनी के समान निरमयानामय है। इन्हें अलग अलग कथमपि नहीं किया जा सकता। भला तरंग को भी जल से कोई अलग कर सकता है।[1] दोनों तो एक ही 'हित' (प्रेम) तत्व के सम्मिलित रूप हैं। ध्रुवदास ने इस अनुपम अभिन्न जोड़ी का रसमय चित्रण किया है—

> प्रेमराशि दोउ रसिकवर, एक वय रंग एक।
> निमिष न छूटत संगसंग यहै दुहुन के टेक॥[2]
> अद्भुत रुचि सुचि प्रेम की सहज परस्पर होय।
> जैसे एकहि रंग सों भरियो सीसी दोय॥
> स्याम रंग श्यामा रंगी स्यामा के रंग स्याम।
> एक प्रान तन मन सहज कहिबे को दोउ नाम॥
> कबहु लाडिली होत पिय, लाल प्रिया ह्वै जात।
> नहिं जानत यह प्रेमरस निस दिन कहां बिहात॥
> —रसविहार

रंग एक ही है—प्रेमरस। सलोने कृष्ण में वह जहाँ श्यामल वर्ण में प्रकाशित होता है, राधा गोरी में वही परम समुज्ज्वल स्वरूप में प्रतिभासित होता है।

श्रीकृष्ण का स्वरूप —ऊपर इस रसिक सम्प्रदाय के ४ तत्वों–राधा, राधावल्लभ, वृन्दावन कुंज और सहचरिगण —का उल्लेख किया जा चुका है। इन तत्वों पर पृथक विवेचन करने से पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि हिन्दी के कृष्णभक्ति सम्प्रदाय मूलतः रागानुगा भक्ति के ही अनुवर्ती हैं। राग की भी अनेक अन्तर्भूमियाँ हैं जहाँ साधक शान्त भाव से चलकर कान्त भाव तक अर्थात् भगवान् के चरणामृत से लेकर अधरामृत तक के पान का अधिकारी हो जाता है। कान्त भाव की यह चरम अवस्था रति कहलाती है। यह अत्यन्त माधुर्य पूर्ण तथा परम गोपनीय दशा है।[3]

वल्लभ तथा राधा वल्लभ —ऊपर वल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत हम कृष्ण की पंच भावोपासना का दिग्दर्शन कर आये हैं। उन्हें हम रागात्मक या चरितात्मक कहें तो कह सकते हैं। किन्तु राधा वल्लभ सम्प्रदाय में मात्र राधा कृष्ण माधुर्य लीला का स्थान होने से उसे रसात्मक या लीलात्मक कहना ज्यादा उचित होगा। राग ही रति रूप में यहाँ केन्द्रीभूत

---

१ ब्रह्मवैवतपुराण, अध्याय–१५, राधा के प्रति कृष्ण का यह वचन तुलनीय—'जैसे दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध है उसी प्रकार तुममें मैं व्याप्त हूँ।

२ ब्रह्मवैवतपुराण, अध्याय–६, कृष्ण के प्रति राधा का यह वचन तुलनीय–'हरे ! मेरे प्राण से ही तुम्हारा शरीर निर्मित हुआ है–मेरे प्राण तुम्हारे श्री अंगों से विलग नहीं हैं। तुम्हारे शरीर के आधे भाग से किसने मेरा निर्माण किया ?'

३ 'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा—श्री हनुमत्संहिता ७/५

हा गया है। इसका सबसे बडा कारण श्रीकृष्ण की लीला सहचरी श्रीराधिका का यहाँ श्रेष्ठत्व है। पुराणो मे भागवत पुराण की कृष्ण लीला अधिक व्यापक है। राधा के अभाव मे वहाँ राग रति केन्द्रित होने से रह गया है। इसके अतिरिक्त उसके कृष्ण ब्रजवल्लभ ही नहा, मथुरावासी तथा द्वारिकाधीश कृष्ण भी हैं। इसी की सर्वाधिक प्रतिच्छवि वल्लभ सम्प्रदाय के भक्तो की रचनाओ पर विस्तार से अंकित है। वैसे, सूर आदि कुछ महान् भाव साधको ने कृष्ण की अन्य लीलाओ के साथ साथ राधा कृष्ण रति विषयक सैकडो पद गाये हैं। किन्तु व्यपदेश से वल्लभ-सम्प्रदाय की मधुरोपासना का राग व्याप्त मानें तो भ्रम गत न होगा। इसी निष्कर्ष पर हम इस सम्प्रदाय के कृष्ण को गोपी वल्लभ कृष्ण कह सकते हैं और यही राधा वल्लभ-सम्प्रदाय की माधुर्योपासना से इसका अन्तर स्पष्ट हो जाता है।[1]

'राधा वल्लभ' सम्प्रदाय का 'राधा वल्लभ' नाम अत्यन्त साभिप्राय है। 'वल्लभ-सम्प्रदाय'-इस नाम की अपेक्षा राधा वल्लभ सम्प्रदाय इसका विशेषीकृत स्वरूप है। यहाँ कृष्ण वल्लभ सामान्य ही नही हैं। यानी, ब्रजवल्लभ या गोपी वल्लभ ही नही गोपी चन्द्र-चूडामणि राधा वल्लभ हैं। वल्लभ के आश्रय होने के कारण राग दोनो में है किन्तु राधा वल्लभ मत मे कृष्ण गोपीरमण के बजाय राधारमण हो गये हैं। त्रिभुवननाथ कृष्ण वृन्दावन ही नही, यहाँ तो निभृत निकुंज में परिसीमित हो गये हैं। गरचे इसे ही कुछ आधुनिक शोधकर्त्ता विद्वानो ने श्रीकृष्ण चरित्र का उत्तरोत्तर सकोच क्रम माना है।[2] किन्तु उस अद्भुत चरित्र की रसवत्ता तत्त्वज्ञानियो के ज्ञानचक्षु की अपेक्षा सगुण भक्तों के हृदयचक्षु से देखने पर अधिक प्रतिभासित हो सकता है। इसे तो 'नेति नेति' के उद्घोषक ऋषियो की अपेक्षा रसखान जैसा प्रेमी भक्त ही जानता है।[3]

वैष्णव कवि की रूपोपासना का यही रहस्य है जिसका कारण है—अवतारवाद के अन्तर्गत सूक्ष्म मधुर लीला कल्पना। यह अवतारवाद, उस अव्यक्त, असीम और अनन्त परमेश्वर का व्यक्त, ससीम और सान्त स्वरूप ही तो है।

रस दृष्टि से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि भावो मे अनेकता और बाह्यता (सचारियो) की अपेक्षा एकनिष्ठता और आन्तरिकता (स्थायी भाव) रस का सम भावना और समीकरण के अधिक अनुकूल है।

---

१ स्वामी वल्लभाचार्य—"मधुराष्टकम्"—('श्री कृष्णस्तोत्रम्')

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ७॥

२ डॉ० कपिलदेव पाण्डेय–'मध्यकालीन साहित्य म अवतारवाद (पृ०५३०)—'महाभारत' से लेकर 'टट्टी सम्प्रदाय' तक श्रीकृष्ण के रूपो का अध्ययन करने पर पता चलता है कि सम्प्रदायीकरण होने के अनन्तर उपास्यरूप की दृष्टि से श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का विस्तार की अपेक्षा सकोच होता गया।

३ सारद से सुक व्यास रटे, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥३२ (सु०र०)

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वृत्तियों के वचिन्य की अपेक्षा उनका केन्द्रीकरण ही रस का हेतु है जिससे तज्जन्य आनन्द का सम्प्राप्ति होती है। और यह आनन्द कैसा है? श्रुति कहती है—'रसो वै स।' यही आनन्द ब्रह्म का स्वरूप है। यही भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द हैं। इस प्रकार, रस दृष्टि तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी विचार करने पर राधावल्लभ सम्प्रदाय के रसेश्वर कृष्ण के चरित्र को उत्तरोत्तर ह्रासशील परम्परा की निकसी कड़ी कहना तथ्यसम्मत नहीं। उल्टे, उसकी महिमा तो और भी निखर आती है।[1] अतः उक्त कथन की अपेक्षा यह उक्ति विशेष साधक है कि—'उसमें बाह्यपक्ष की अपेक्षा अन्तर पक्ष की प्रधानता होती गई है।'[2]

पौराणिक प्रभाव — ऊपर हमने वल्लभ सम्प्रदाय की कृष्ण लीला की रागात्मक व्याप्ति के प्रेरणा स्रोत-स्वरूप भागवतपुराण का उल्लेख किया। अब यहाँ उसी के समानान्तर राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा कृष्ण रति के ऐकान्तिक स्वरूप के प्रेरणा स्रोत के रूप में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के राधा कृष्ण की रति-केन्द्रित साधना का नामोल्लेख कर सकते हैं। यह युगल स्वरूप की शृंगार लीला पर मुख्यतः केन्द्रित है। पंच भावोपासना में अंतिम मधुरोपासना यहाँ विशेष प्रबल है। इसकी विस्तृत समीक्षा पुराण प्रकरण में की जा चुकी है। इसके अन्तर्गत गोपी लीला की अपेक्षा राधा कृष्ण रति क्रीड़ा ही भड़कीली है। इसके अतिरिक्त, राधा की प्रधानता, राधा कृष्ण की अभिन्नता, प्रणय केलि की उत्तानता सयोगान्त प्रेम रास के अनेकशः उल्लेख और सहचरियों की विद्यमानता आदि भाव स्रोतों के लिए हित सम्प्रदाय इस पुराण से अधिकाधिक अनुप्राणित जान पड़ता है।

लोक में जो क्षणिक सुख की पर्याय जड़ोन्मुख कामवृत्ति है उसे लोकोत्तर चरित्र में ढाल कर 'हित' का पवित्र आस्पद देने वाले हित हरिवंश में **राधावल्लभ का स्वरूप** देखिये—[3]

> तनहिं राखु सत्सग मे, मनहिं प्रेम रस भेव।
> सुख चाहत 'हरिवंस हित' कृष्ण कल्पतरु सेव॥ ६॥
> निकसि कुंज ठाढ़े भये भुजा परस्पर अंस।
> राधावल्लभ मुख कमल निरखत हित हरिवंस॥ १०॥
> सबसों हित निहकाम मन, वृन्दावन बिस्राम।
> राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान मुख नाम॥ ११॥

---

१ डॉ॰ रामनरेश वर्मा– हि॰ सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका (पृ॰३९५) 'रसवादी धारा (राधावल्लभीय) में परम तत्त्व की भाव पद्धति से सरस उपासना होती है। इसका चित्राधार और भी अधिक संक्षिप्त है। इसमें तो कृष्ण के मधुर रूप के अतिरिक्त उनके अन्य पार्श्वों की कल्पना नहीं की जाती। इसमें पुष्करिणी की विशालता भले ही न मिले पर सरस कूप की गंभीरता अवश्य देखी जाती है।

२ डॉ॰ कपिलदेव पाण्डेय–– मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद'।

३ स्फुटवाणी—श्र॰ मा॰ रा॰

रसना कटौ जु अन रटौ, निरखि अन फुटौं नैन।
स्रवन फुटौ जो अन सुनौ, बिनु राधा जसु बैन ॥ १२ ॥

राधा वल्लभ कृष्ण यहाँ प्रेय है। वह रस रूप ब्रह्म के अवतार हैं। और, उनके इस रसात्मक रूप का पूर्णत्व राधा के साथ मधुर केलि में ही प्रकट होता है।

राधा-वल्लभ का यह रसमय रूप दो प्रकार का होता है—(१) ब्रजरस और (२) निकुंज रस। (१) ब्रजरस में गोपियों का जार प्रेम प्रकट होता है। यह परकीया प्रेम के अन्तर्गत है। और, केवल कृष्ण की अवतार दशा में ही प्रकट होता है। अतः यह अनित्य है।

(२) इससे भिन्न निकुञ्ज रस है जो नित्य, अखण्ड और एकरस है। इसमें 'स्व' और 'पर' का कोई भेद नहीं। यह रस केवल वृन्दावन में दृष्टिगत होता है। इसे वृन्दावन-रस भी कहते हैं। वृन्दावन रति ही इसका स्थायीभाव है। इन भक्तों की धारणा में श्रीकृष्ण द्वारिका में पूर्ण, मथुरा में पूर्णतर तथा ब्रज में पूर्णतम माने जाते हैं। ब्रज ही कृष्ण लीला के अन्तर्गत रसोपासना का प्रधान केन्द्र है। इसमें भी राधा-कृष्ण की सुमधुर लीलाओं का प्रधानतम केन्द्र वृन्दावन है। इसीलिए इन साधकों को वृन्दावन इतना प्रिय है। इनका तो यहाँ तक विश्वास है कि इनके राधा वल्लभ श्रीकृष्ण—'वृन्दावन परित्यज्य पादमेकं न गच्छति'—वृन्दावन छोड़कर एक कदम भी कहीं नहीं बढ़ाते।[१]

परमतत्व रसरूप राधावल्लभ ही नित्य, सत्य और सच्चिदानन्दघन हैं। सौन्दर्य, माधुर्य, रस और आनन्द की वे पराकाष्ठा हैं। वे ही परब्रह्म–ब्रह्म के भी ब्रह्म हैं। वे अवतारी हैं, अवतार नहीं, अग्नि स्फुलिंगवत् सब अवतार उन्हीं से निःसृत होते हैं—सृष्टि, पालन और प्रलय से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि वे नित्य रस मग्न हुए निजरूपा स्वामिनी श्रीराधा के साथ नित्य आनन्द विहार करते रहते हैं। उनकी प्रकट लीला का लक्ष्य भी यही है। हित हरिवंश के अनुसार राधा, कृष्ण तथा उनके विहार के अन्य अङ्ग वृन्दावन और गोपियाँ—सब अभिन्न और उसी एक प्रेम तत्व के रूप हैं। श्रीकृष्ण, राधा और सखियों की भाँति वृन्दावन भी स्थूल सूक्ष्म के परे अनिर्वचनीय हित तत्व का अंश है। इस दिव्य केलि में विरह की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह नित्य निरन्तर नित्य वृन्दावन धाम के मंजुल कुन्ज में सखियों की देखरेख में होती रहती है। किशोर कृष्ण की किशोरी राधा के साथ दो प्रकार की लीलाएँ होती हैं—(१) कुन्ज लीला और (२) निकुंज लीला। प्रथम लीला बहिरंग है तथा दूसरी लीला नितान्त अन्तरंग। (१) कुंज लीला में मंजरी भाव से प्रवेश करने का अधिकार अन्य गोपियों को भी है। साधक भक्त इसी रूप में युगलकिशोर की कुंज लीला का आस्वादन कर सकता है किन्तु (२) निकुञ्ज लीला में प्रवेश की अधिकारिणी केवल प्रेमार्द्रा किशोरी जी हैं। इस किशोरी के चरणों में अपने सुन्दर मयूर पिच्छ को विलोडित करने की अभिलाषा से ही श्यामसुन्दर निकुञ्ज में प्रवेश करते हैं। यह लीला अत्यन्त गोपनीय मानी गयी है।

---

१ पद्म पुराण पाताल खण्ड—७७/६०

इसे इस तालिका से भी समझा जा सकता है—

लीला	स्थायी भाव	विभाव	रस	राधा वल्लभ
कुंज लीला	कृष्ण रति	विषय कृष्ण आश्रय गोपियाँ	व्रज रस	कृष्ण प्रधान
निकुंजलीला	राधा रति	विषय राधा आश्रय कृष्ण	निकुंज रस	राधा प्रधान

इस प्रकार हित-सम्प्रदाय मे राधा कृष्ण, गोपी और वृन्दावन का कोई स्थूल-स्थान गत या पात्रगत अस्तित्व नही है। सब उसी परम सूक्ष्म रति भाव के बीज से व्युत्पन्न हैं।

प्रकृति पुरुष—राधा और कृष्ण प्रकृति पुरुष स्वरूप हैं। नित्य विहारी श्रीकृष्ण एकमात्र पुरुष हैं तथा उनकी निजरूपा 'ह्लादिनी' प्रेमशक्ति राधा परम प्रकृति हैं। राधा ही जड और जीव दोनो प्रकार की प्रकृति मे सर्वत्र परिव्याप्त हैं। वे ही सखी हैं, वे ही गोपी हैं। वह वृन्दावननाथ श्री रासेश्वर की पटरानी होती हुई भी श्रीकृष्ण के द्वारा आराध्या तथा सेव्या हैं। समस्त जीव प्रेमरूपा गोपी ही हैं। निज स्वरूप के स्मरण-मात्र से वे इस दिव्य प्रेम को प्राप्त कर सकते हैं। इस निज स्वरूप की प्राप्ति दो प्रकार से सभव है—(१) साधन शरीर द्वारा और (२) सिद्ध शरीर द्वारा। परम सौन्दर्य और माधुर्य के आगार श्रीकृष्ण की अपार लावण्यमयी सखी के रूप के शारीरिक सौन्दर्य, मनोहर वस्त्राभरण तथा हार्दिक अनुराग का ध्यान करते हुए अपने ऊपर उसका पूर्णभाव से आरोप करने से ही यह सभव हो पाता है। अत राधा वल्लभी भक्ति पद्धति म इसी सखी भाव का सविधान किया गया है।[१] किशोरी-रूप मे अपने को कल्पित करने से ही युगल किशोर की रस भावना सभव है। भक्त स्वामिनी जी के पार्श्व मे पहुँचने के लिए उन्ही के समान स्वरूपानुसन्धान करता है और अपने को उनकी चतुर सुकुमारी किशोरी परिचारिका बनाकर धन्य मानता है। यही स्वरूपानुसन्धान भक्त का दिव्य शरीर है। इसी के आधार पर राधा वल्लभ लाल की रस लीला से पूर्ण साधर्म्य स्थापित हो सकता है। इसी रूप मे भक्त आकाक्षा करता है कि जो रस श्यामा श्याम म प्रवाहित होता है उसका एक कण मेरे हृदय में भी प्रस्फुटित हो जाय।

प्रेम का स्वरूप—जसा कि ऊपर कहा गया राधा वल्लभ सम्प्रदाय म वियोग मान्य नही है। उनके अनुसार स्वकीया और परकीया दोनो भाव अपूर्ण हैं। मधुर से मधुर पदार्थ की उपस्थिति म उसके लिए जब तक उत्कट पिपासा, एक अतृप्त भूख और एक

---

१ प० ब० उपाध्याय—'भारतीय वाङ्मय मे श्री राधा'—पृ० १०५
'व्रज की रसमयी पद्धति का आश्रयण अनेक वैष्णव सम्प्रदायो में दृष्टिगोचर होता है। निम्बार्क में सखी भाव की उपासना तो विशेष प्रचलित है। चैतन्य मत का यह सर्वस्व है। राधावल्लभी सम्प्रदाय म भी यह आदर्श है।'

अश्रुपूर्ण चाह नहीं बनी रहती तब तक उस मधुर के माधुर्य का आनन्द नहीं मिलता। और, मिलन के लिए उत्कट क्षणों में दूर रहकर भी वह माधुर्य आनन्द का हेतु नहीं बन पाता। नित्य मिलन और नित्य विरह दोनों में ही माधुर्य के आनन्द का अभाव रहता है। अतः ये दोनों ही भाव एकांगी हैं। हरिवंश ने सारस और चकई के परिसंवाद में इन दोनों भावों की न्यूनता प्रदर्शित की है।[१] उन्होंने नित्य मिलन में भी परम विरहासक्ति का निरूपण कर प्रेम पद्धति की विलक्षणता के साथ साथ अपनी मनोवैज्ञानिक सूझ का प्रमाण उपस्थित किया है।

इन दोनों के परिसंवाद का अभिप्राय यह कि चकई का प्रेम विरह प्रधान है। अतः उसमें सम्पूर्ण सम्मिलन की स्थिति नहीं है। और उधर सारसी का प्रेम मिलन प्रधान है तो उसमें विरहोत्कंठा का एकान्त अभाव है। अतः हरिवंश जी के विचारानुसार प्रेम की चरम प्रगाढ़ता--'प्रेम विरहा'[२] में ही है जहाँ गहन मिलन की स्थिति में भी परम विरह का मीठा दर्द जगा रहे। इस प्रकार हित हरिवंश जी की मान्यता में प्रेम की पूर्णता वह है जहाँ मिलनावस्था में भी विरह की उत्सुकता बनी रहे जिससे उस प्रेम में आकांक्षा और उमंगों की तरंगें उठती रहें। अवियुक्त मिलन में भी वियोग की मन्द मन्द लहर 'प्रेम विरहा' की स्थिति है। यह दो प्रकार का होता है--

(१) स्थूल विरह (२) सूक्ष्म विरह

स्थूल विरह--मिलन के अनन्तर होने वाली दशा है जिसमें स्थान पार्थक्य के कारण विरह का पार्थक्य बना रहता है। इस विरह की स्वीकृति राधावल्लभ सम्प्रदाय में नहीं है। सूक्ष्म विरह वह दशा है जिसमें प्रिया प्रिय के मिलन-समागम होने पर भी तन मन की पृथक्ता के कारण परस्पर मिलन की गाढ़ उत्कण्ठा बलवती बनी रहती है और दोनों पास रहकर भी विरह के उत्ताप से हृदय में सन्ताप का अनुभव करते रहते हैं।[३] रूपगोस्वामी ने इसे ही प्रेमवैचित्र्य कहा है।[४] हित हरिवंश ने नीचे के पद में इसका बड़ा ही सुन्दर दृष्टान्त उपस्थित किया है--[५]

कहा कहौं इन नैननि की बात।
ये अलि प्रिया बदन अम्बुज रस अटके अनत न जात॥
जब जब रुकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलात।
लम्पट लव निमेष अंतर तें अलप कलप सत सात॥

---

१ स्फुट वाणी, पद सं० ५ और ६

२ हित हरिवंश विचारि प्रेम विरहा विन या रस।
निकट कन्त नित रहत मरम यह जानै सारस॥ स्फुट वाणी--६

३ प० व० उपाध्याय--भा० वा० श्री रा० (पृ०९५)

४ उज्ज्वल नीलमणि--(पृ० ५४८--५४९)

५ हित चौरासी--पद--६०

> श्रुति पर कंज दृगञ्जन कुच बिच मृगमद ह्वै न समात।
> हित हरिवंश नाभि सर जलचर जाँचत साँवल गात॥

राधा कृष्ण के समक्ष बैठी हैं। परन्तु क्षणभर के लिए आँखों पर लट भी आ जाने पर दर्शन में बाधा होती है और उनके भीतर यह क्षणिक ओझलपन विरह का सन्ताप भर देता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जहाँ अन्य वैष्णव-सम्प्रदायों में कृष्ण ही परमतत्व और राधा उनकी शक्ति मानी गई हैं वहाँ इस सम्प्रदाय में राधा ही परम स्थानीया हैं।[1] अतः श्रीकृष्ण की अपेक्षा यहाँ श्रीराधा का विशेष उत्कर्षवर्द्धक स्थान है। इस सम्प्रदाय के दामोदर दास, हरिराम व्यास, ध्रुवदास आदि प्रसिद्ध कवियों ने इसी भाव से कृष्ण का चरित्रांकन किया है।

---

१ [illegible] पृ० ७८
[illegible] श्री हित हरिवंश [illegible] है।

पचम अनुच्छेद

हरिदासी-मत में कृष्ण

१६ वी शती के अन्त में श्रीकृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना को लेकर विकसित होने वाले व्रज के कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो में स्वामी हरिदास का 'सखी सम्प्रदाय' एक प्रसिद्ध रस सम्प्रदाय है।

निम्बार्की शाखा—कुछ विद्वानों के अनुसार स्वामी हरिदास पहले निम्बार्क मत के अनुयायी थे। कि तु कालान्तर में उ होने गोपी भाव को भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन मानकर गोपी भाव के अनुरूप सखी भाव की स्वतन्त्र साधना पद्धति की प्रतिष्ठा की।[१] यही साधना सखी सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित है।

स्वतन्त्र महत्व—परन्तु डॉ० विजयेन्द्र स्नातक सखी सम्प्रदाय का निम्बार्क सम्प्रदाय से सैद्धान्तिक स्तर पर भी प्रस्थान भेद सूचित करते हैं। उनके अनुसार सखी सम्प्रदाय की साधना पद्धति मे बड़ा मौलिक भेद है। सखी भाव से उपासना निम्बार्क सम्प्रदाय मे गृहीत नही। सखी सम्प्रदाय भेदाभेद सिद्धान्त का भी प्रत्यक्ष रूप से कही मण्डन नही करता। और फिर, टट्टी संस्थान (वृन्दावन) मे इस सम्प्रदाय की जो शिष्य परम्परा और साहित्य उपलब्ध होता है वह भी निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बद्ध प्रतीत नही होता।[२] अनन्तर उन्होंने इसके विशिष्ट स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि—'जुगल सरकार को आराध्य मानने पर भी सखीरूप से उनकी आराधना का विधान इस सम्प्रदाय में है जो रसोपासना की दार्शनिक गूढता स सवथा असम्पृक्त थी।'[३]

सखी भाव—व्रज के राधावल्लभ मत की भाँति यह मत भी किसी प्राचीन दार्शनिक मतवाद का अवलम्बन करके नही चलता। इसका तो एकमात्र उद्देश्य राधा कृष्ण की निकुञ्जलीला का सखी भाव से विस्तार करना है। भक्तमाल के अनुसार इस मत मे *साधक कृष्ण की लीलाओ का अवलोकन सखी भाव मे करता है।* कुञ्ज द्वार पर खडे होकर कुञ्जविहारी श्यामा और श्याम के केलि सुख के पोषण और दर्शन का अधिकार इन्ही सखियो

---

१ (क) श्री वियोगी हरि—'ब्र० मा० सा०' (पृ० ६२)
(ख) श्री प्रभुदयाल मीतल—'व्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद' (पृ० ५०)
(ग) डॉ० सत्येन्द्र—'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ (पृ० ८६)
(घ) डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित—'हि० सा० को०' (पृ०८०४)
(ङ) डॉ० रामकुमार वर्मा—हि० सा० आ० इ०' (पृ० ८४५)

२ 'राधावल्लभ-सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य —(पृ० ५१-५२)

३ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' (पृ० ५१ ५२)

की है। सखियों के रूप म कुन्ज द्वार पर आस लगाये ये ही केलिरसिक हरिदासी सम्प्रदाय के भावुक भक्त है।—

> जुगल नाम सो, नेम, जपत नित कुन्जविहारी।
> अवलोकत नित रहैं केलि-सुख के अधिकारी॥
> गान कला गन्धर्व स्याम स्यामा को तोषैं।
> उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं॥
> नित नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जास की।
> आस धीर उद्योतकर, 'रसिक' छाप हरिदास की॥—भक्तमाल

निष्कपत सखी सम्प्रदाय की उपासना माधुय प्रधान है। इसम प्रेम की गभीरता और मधुररस की विशेषता है। कृष्ण का समस्त विलास राधाहेतु और राधा की समस्त लीलाएँ कृष्णहेतु हैं। प्रिया प्रियतम एक प्राण, दो देह हैं। उनकी आनन्द केलि सखियों की प्रसन्नता का कारण है। अपने लिए इनका कोई सुख स्वाथ नही है। कृष्ण सुख ही इनका सार सवस्व है। तत्सुखी भाव ही इन सखियो की आनन्द साधना का चरम हेतु है।

कृष्ण—सखी सम्प्रदाय के कृष्ण निकुञ्जविहारी लाडली लाल हैं। लाडली लाल विशुद्ध प्रेमस्वरूप हैं जो अपनी राधा के साथ नित्य निकुञ्ज केलि मे सुरत होकर सखियो म रत्यानन्द का सचार करते हैं। उनकी यह रति काम से कोसो दूर है। कृष्ण कामवश नही, कामेश्वर हैं। श्यामा श्याम का यह प्रेम एकरस कितु सखियो से सचरित होने के कारण नित्यनूतन भी है। प्रिया प्रियतम निभृत निकुज मे पुष्पशय्या पर निरतर अपलक नेत्रो से एक दूसरे की रूपसुधा का पान कर रहे हैं। दोनो एकाकार न हो जायें, इसका भी वियोग भय है।

व्रजगोपियो का प्रेम सर्वोपरि है। कितु श्यामा श्याम का निकुञ्ज विहार उससे दुर्लभ है। ललितादि सखियाँ धन्य हैं क्योंकि वे नित्यकुञ्ज की चिर सहचरी हैं। निकुन्ज विहारी कृष्ण व्रज के नही हैं। व्रजविहारी निकुन्जविहारी के अशावतार हैं। वे स्वप्न मे भी नित्य विहार को छोडकर निकुञ्ज से बाहर नही जाते। वृन्दावन म ही यह नित्य निकुञ्ज है। अत अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार करने पर हरिदासी सम्प्रदाय हरिवशी सम्प्रदाय की कुन्जलीला का ही और भी रति केन्द्रित निभृत स्वरूप है।

हरिवश के अनुसार कृष्ण वृन्दावन छोडकर एक कदम भी बाहर नही रखते। हरिदास जी इनसे एक कदम और आगे बढकर कहते हैं कि वृन्दावन के नित्य निकुञ्ज विहारी कृष्ण निकुज छोडकर कभी बाहर नही निकलते। कहना न होगा कि यहाँ उत्तरोत्तर कृष्ण के रत्यात्मक स्वरूप का केन्द्रीकरण हो गया है। सखी भाव इस साधना का सवस्व है। सखी भाव का बीजारोपण यो तो निम्बार्क मत से ही हो गया था। कितु उसे पूर्णत रसपेशल बनाने का श्रेय चैतन्यमतावलम्बी गौडीय गोस्वामियो को है। व्रज के भक्ति सम्प्रदायो में वल्लभ, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों म इसका क्रमश पराकाष्ठा होती गयी। अत यहाँ इस सखी भाव की परम्परा का सिंहावलोकन कर लेना अनपेक्षित न होगा।

सखी साधना की परम्परा—निम्बार्क ने भगवान कृष्ण की वामागी राधा का स्मरण सहस्रो सखियो से परिसेवित रूप म किया है।[1]

यहाँ राधा कृष्ण की ह्लादिनी तथा प्राणेश्वरी हैं। इनकी शक्ति व ऐश्वय से गोपियाँ, महिषियाँ और लक्ष्मी तथा हजारो सखियाँ उत्पन्न होकर सेवा करती हैं। भक्तगण, पहले इसी सखी भाव को प्राप्त कर राधा का सान्निध्य प्राप्त करते हैं और राधा को प्रसन्न कर लेने पर कृष्ण आप ही आप प्रसन्न हो जाते हैं। अत गोपीभाव को प्राप्त कर ब्रजराज कृष्ण की उपासना ही भक्त का परम लक्ष्य है। गोपी भाव की प्राप्ति के लिए भक्तो को ११ बातो पर ध्यान रखना है—सम्बन्ध, वया, नाम, रूप, यूथ, वेश, आज्ञा, वास, सेवा, परा काष्ठा, श्वास और पाल्यदासी भाव।

सम्बन्ध सबो का आधार है। जिनकी श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रीत्वभाव से परकीया रस मे रुचि है वे वृन्दावनेश्वरी के अनुगत होकर रसास्वादन करते हैं। व मानते हैं कि मैं श्रीराधिका की परिचारिका हूँ। कृष्ण प्राणेश्वर और राधा प्राणेश्वरी हैं। कृष्ण का वय किशोर है। अत गोपिया नित्य किशोरी हैं। सहजिया कवि चण्डीदास न किशोरी रूप म ही राधा की केलि का चित्रण किया है। यही किशोरी मत व मत से होते हुए राधा वल्लभ सम्प्रदाय में (स्वामिनी जी या राधादेवी के रूप मे) गृहीत हुई हैं। इनकी ८ सखिया हैं—

श्री ललिता, विशाखा चित्रा इन्दुलेखा, चम्पकलता रगदेवी, तु गविद्या और सुदेवी। इनका अलग अलग यूथ है। राधा इन सबा की यूथेश्वरी हैं। इन अष्ट सखिया की सेविका ८ मजरियाँ होती हैं—रूप मजरी, जीवमजरी, अनग मजरी, रस मजरी, विलास मजरी, प्रेम मजरी रागमजरी, कस्तूरी मजरी। इनके नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा और सेवा का अलग अलग विधान किया गया है। इनके क्रम और नाम कहीं कहीं भिन्न हैं। 'मजरी साधक हृदय में नये नये भाव जाग्रत करती है। ये सखियो की अनुमति के अनुसार श्रीराधा माधव की सेवा म नियुक्त होती हैं और परमानन्द का अनुभव करती हैं। ब्रज का प्रत्येक भक्त अपने को इनम कोई न कोई सखी मान कर भाव साधना म अग्रसर होता है। चैतन्य मत मे होते हुए यह विश्वास उत्तरोत्तर ब्रज के वल्लभ, राधावल्लभ, हरिदासी आदि सभी सम्प्रदायो म गृहीत हुआ है। चैतन्य देव स्वय राधा के अवतार थे। रूपगोस्वामी विशाखा के, सूरदास चम्पकलता के हरिव्यासदेव हरिप्रिया के और हरिदास ललिता के अवतार थे।

राधावल्लभ मत स यह भक्ति राधा प्रधान हो गयी है। सखी सम्प्रदाय म आकर तो यह भावना इतनी घनीभूत हो उठी है कि भाव पुरुष कृष्ण भी इस स्त्रैण भाव धारा में पड़कर अपने विराट चरित्र की प्रखरता खो बैठे हैं।

सखी सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वामी हरिदास ललिता देवी के अवतार रूप म मान्य हैं। श्री ललितावतार स्वामी हरिदास जी श्यामा श्याम के इस नित्य विहार की अनन्य सहचरी हैं। स्वामी जी इस निकुञ्ज रस के उद्धारक हैं। उसकी प्राप्ति उनकी कृपा के बिना

[1] दश श्लोकी–५

असम्भव है। श्री निकुञ्जविहारी का प्रेम उनकी कृपा से ही प्राप्त होता है। उसके लिए साधक को 'सखी भाव' से राधा कृष्ण युगलमूर्ति की उपासना में तल्लीन रहना चाहिए।

हिन्दी कृष्ण काव्य को कृष्ण के निकुञ्जविहारी स्वरूप से रंजित करने वाले कवियों में स्वामी हरिदास का एक महत्वपूर्ण स्थान है। ये कृष्ण के रसिक स्वरूप के अनन्य भक्त और उनकी निकुञ्ज लीलाओं के श्रेष्ठ संगीतकार थे। कहते हैं, संगीतसम्राट् तानसेन इन्हीं के राग सिद्ध शिष्य थे। इनकी संगीत माधुरी के रसास्वादन के लिए सम्राट अकबर को वेश बदलकर आना पड़ा था। ये जैसे सुर साधक थे वैसे ही अनन्य रसिक भक्त भी। इनके शिष्यों में विटठल विपुलदेव, नरहरिदास, रसिकदेव, ललित किशोरी, ललित मोहिनी, चतुरदास, सखीशरण, भगवानदास आदि हैं। राधा कृष्ण की भावमयी अवतारणा में इन्होंने अपना भक्तिविह्वल हृदय उडेल दिया है।[१]

स्वामी हरिदास काव्य और कृष्ण

इनकी सभी रचनाएँ प्रायः पदों में मिलती हैं जिनकी शब्द संहति 'ऊबड खाबड' किन्तु सुर संयोजन संगीत की राग रागिनियों में निबद्ध हैं। प० रा० च० शुक्ल ने इनकी रचनाओं का उल्लेख किया है।[२]

(१) हरिदास जी को ग्रन्थ, (२) स्वामी हरिदास जी के पद तथा (३) हरिदास जी की बानी। इनमें दो ही रचनाएँ आज उपलब्ध हैं—(१) सिद्धान्त के पद और (२) केलिमाल। ये दोनों 'निम्बार्क माधुरी' में प्रकाशित हैं।[३] सिद्धान्त के पदों की संख्या १८ तथा शृंगार सम्बन्धी १०८ पद हैं।[४] किन्तु वियोगी हरि के अनुसार सैद्धान्तिक पद १६ और शृङ्गारिक पद १२० हैं।[५] ब्र० मा० सा० में इनके १६ पद संगृहीत हैं। केलिमाल में निकुञ्जविहारी कृष्ण का मनहर स्वरूप उनकी विविध लीला माधुर्य के माध्यम से परिस्फुट हुआ है। इसमें युगलरूप राधाकृष्ण के नित्य विहार, नखशिख, दान, मान, होली रास आदि विषय व्यंजित हैं।

निम्नपद में कृष्ण की त्रिभंगी छवि प्रस्तुत है—[६]

आजु तृन टूटत है री ललित त्रिभंगी पर।
चरन चरन पर मुरलि अधर पर चितवनि बंक छबीली भुव पर ॥
चलहु न बेगि राधिका पिय पै, जो भई चाहौ सर्वोपरि ॥
श्री हरिदास' समय जब नीको, हिलिमिलि केलि अटल रति भूपर ॥१२

अर्थात् ऐ सखी, आज इस ललित किशोर की त्रिभंगी छवि का क्या कहना। तृण टूक टूक हो रहा है। बायें पैर पर लिपटा हुआ दक्षिण चरण, दाहिने हाथ और अधर पर रखी हुई मुरली की ध्वनि एवं भौंहों पर टँगी हुई बांकी चितवन। सखि राधिके! तुम अपने प्रियतम के पास जल्दी जल्दी क्यों नहीं चलती। इतना सुन्दर

१ डॉ० सत्येन्द्र— पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ (निम्बार्क सम्प्रदाय के हिन्दी कवि, ०३६१
२ हि० सा० इ०—पृ० १८६। ३ डॉ० प० गु०—गु० ब्र० कृ० का० तु० अ०—पृ० ५८
४ डा० सत्येन्द्र—पो० अ० ग्र० '—पृ० ३९०   ५ 'ब्र० मा० सा०'—पृ० ३
६ वही—६७

क्षण क्या पानी की तरह बहा देने के लिए है ! जल्दी चल और हिलमिलकर अटल केलि करके सहज ही उसकी सर्वेश्वरी बन जा ! एक दूसरे पद में कुँवर किसोरी स्यामा स्याम का रास नृत्य वर्जित है।[1]

> अद्भुत गति उपजति, अति नाचत, दोऊ मंडल कुँवर किसोरी।
> सकल सुग ध अङ्ग भरि भोरी, पिय नृत्यति, मुसुकति मुख मोरी ॥
> ताल धर वनिता मृदग, चन्द्रा गति घात बज थोरी थोरी।
> मधुर भाव भापा विचित्र अति, ललित गीत गावैं चितचोरी ॥
> श्रीवृन्दावन फूलनि फूल्यो, पूरब ससि, समीर गति थोरी।
> गति बिलास, रस हास परस्पर, भूतल अद्भुत जोरी ॥
> श्री जमुना-जल थिथक्ति, पुहुपनि, छवि रतिपति डारत तृन तोरी।
> 'श्री हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी जू को रस रसना कहै को री ॥१३

सचमुच भूतल पर यह जोरी अद्भुत है जिसके सौंदर्य पर रतिपति निहाल हो रहे हैं। यमुना धार स्तंभित हो गयी है। समीर की चचल गति भी थिर पड गयी है। वस्तुत कुन्जविहारी और 'स्यामा जू' के इस रति रस की विचित्रता का बखान कौन जिह्वा क्या कर सकती है।

विट्ठलविपुलदेव काव्य और कृष्ण

विटठल विपुलदेव हरिदासी सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध भक्त और कवि हैं। हरिदासी परम्परा के एक प्रतिनिधि भक्त श्री सहचरिशरण जी ने इनके सम्बन्ध में कहा है।[2]

> बीठल विपुल सनाढ्य घन धम पताका।
> श्री गुरु अनुग अनन्य अनूपम जनु ससि राका ॥

इनके जीवन वृत्तान्त और रचनाओं के सम्बन्ध में अभी तक विशेष छानबीन नही हुई है। इनके कुछ पद राग कल्पद्रुम' में प्राप्त होते हैं। इनके कथित ४० पदों में ३९ पद निम्बार्क माधुरी में प्रकाशित हैं।[3] इन पदों में स्वामी हरिदास जी के 'केलिमाल' का सार निरूपित है। इनमें राधा कृष्ण के नित्य विहार, भूला, मान, दान, नोक भोक आदि विषय वर्णित हैं।

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त व्रज भक्तों के और भी परवर्ती धर्म सम्प्रदाय हैं जिनमें कृष्ण के रसात्मक व भावात्मक स्वरूप की झाकी मिलती है। इन्हें मोटे तौर पर सखी सम्प्रदाय की ही अनेक अन्तर्भूमियाँ मान सकते हैं। ये हैं—शुक अथवा चरणदासी सम्प्रदाय, धामी अथवा प्राणनाथी सम्प्रदाय, वशी अलि का ललित सम्प्रदाय आदि। उक्त सभी सम्प्रदायों में राधा व सखियों का प्राधान्य है। इन सम्प्रदायों में कृष्ण के नाम भिन्न भिन्न हैं। यथा, शुक सम्प्रदाय में कृष्ण 'लाल' हैं तो धामी सम्प्रदाय में 'राज और ललित सम्प्रदाय में पुन 'लाल'। सबों में कृष्ण का रसात्मक व नित्य विहारी स्वरूप मान्य है। इनका नित्य धाम वृन्दावन है। शुक सम्प्रदाय सगुण निर्गुण विशिष्ट है।[4]

---

१ व्र० मा० मा०—९८ २ भगवत रसिक की वाणी, पृ० १३१

३ डॉ० ज० गुप्त—'गु० व्र० कृ० का० तु० अ०', पृ० ३९

४ विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य व्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास श्री प्रभुदयाल मीतल

षष्ठ अनुच्छेद

सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के कृष्ण

पृष्ठभूमि—यों तो मध्य युग की प्राय समस्त काव्य साधना धार्मिक होने के कारण सम्प्रदाय बद्ध रही है। किन्तु कुछ एक भा भाव साधक भक्त कवि हुए जिन्होंने अपने को किसी सम्प्रदाय विशेष म गूंथे बिना अपनी आत्मनिष्ठ कृष्ण रति और तज्जन्य निगूढ भाव भगिमा प्रदर्शित की। अत इनकी रचनाएँ साम्प्रदायिक छाप से मुक्त हैं। इनकी भावुकता किसी विशेष दार्शनिक विचार से अनुशासित नहीं प्रत्युत सहज और आत्म परक (सब्जेक्टिव) है।

इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक भावधारा से भिन्न इनकी भावोपासना की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इन्होंने श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण ब्रज लीलाओं का स्पर्श नहीं किया है। इनके रमणीय विषय स्वयं मनहर कृष्ण हैं, कृष्ण लीला नहीं। अत कृष्ण के साथ इनका सम्पर्क सीधा है, लीला माध्यम से नहीं। वैसे भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी अनुरक्ति प्रकट करने के प्रसग म उनकी शक्ति (असुर वध परक), शील (वात्सल्य परक) या सौन्दर्य प्रधान (शृङ्गार लीला) लीलाओं का समन्वित प्रसग मिल जाना उस भक्ति युग म अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु, प्रधानत य भाव साधक कृष्णानुरागी ही हैं लीला विलासी नहीं। इनकी समस्त काव्य सम्पदा आत्मोक्ति परक है अन्योक्ति परक कम है।

भक्ति युग म मीरा और रसखान इस स्वच्छन्द भावोपासना के प्रतिनिधि कवि हैं।

कुछ विद्वान् रसखान को स्वामी विट्ठलनाथ द्वारा दीक्षित बतलाते हैं।[1] रसखान का गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा (स० १६७२ १६४२) वल्लभ सम्प्रदाय मे प्रवेश प्रसिद्ध है। श्री वियोगी हरि कवि के 'श्रीनाथ प्रेम' की प्रशंसा करते हैं।[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्री वियोगी हरि की उक्त स्थापना को ही आँख मूद कर दुहराया है।[3] किन्तु अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय के सुधी विद्वान् डा० दीनदयालु गुप्त इन्हे अष्टछाप कवियों के समकालीन भर मानते हैं।[4]

रसखान काव्य की वस्तु मुखी समीक्षा से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि कृष्ण भक्ति विषयक अनन्य उद्गारों पर सम्प्रदाय वाद की छाप सुस्पष्ट नहीं है।

कुल मिलाकर उपयुक्त दोनों कवि भक्तिकाल के भावुक भक्तों की माला के अनमोल रत्न हैं।

मीरा और आण्डाल—इनमें मीरा का व्यक्तित्व तो और भी निराला है। मीरा कृष्ण की अनन्य प्रेयसी हैं। कृष्ण से उनका दाम्पत्य प्रेम हिन्दी ससार मे अतुलनीय है।

---

१ व्र० मा० मा०—पृ० १४७

२ वही —पृ०१४८

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० १६१–१६२

४ 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय'—पृ० २२

तमिल मे एक प्रसिद्ध आलवार भक्तिन आण्डाल ऐसी ही थी। इनका काल ८ वी शती से आगे नही है। इन्हें 'दक्षिण की मीरा' भी कहते हैं। दोनो की भाव धारा दाम्पत्य प्रेम मूलक होने के कारण तुलना के योग्य है। राधा-कृष्ण, आण्डाल-कृष्ण और मीरा कृष्ण इसी भावधारा की मनोहर शृङ्खला हैं।

मीरा और रसखान—जैसे मीरा की काव्य साधना मे प्रियतम कृष्ण का भावात्मक स्वरूप निखर उठा है, वैसे ही रसिक भक्त रसखान के मधुर उद्गारो से कृष्ण का सख्य रूप उजागर हुआ। वह कृष्ण को 'प्रेम देव' की पवित्र उपाधि से विभूषित कर उनके साथ सख्य सुलभ सुखद साहचर्य की कामना करते हैं।[1] कहते हैं, वे भावावश म गोपाल कृष्ण के साथ गायें चराने जाते थे।[2] इस अन्तरग कल्पना के कारण उनम कृष्ण के प्रति सख्य भाव की पूरी उद्दामता ढिठाई और प्रगल्भता सुलभ हो गयी थी।

अन्तत इन दोनो का काव्य कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप का अन्यतम चित्रपट है। सम्प्रदायवाद की मुहर के बिना भी यह अपने आप म पूर्ण भास्वर है।

(क) मीराँ काव्य और कृष्ण

मीराँ की प्रेम साधना से श्रीकृष्ण के प्रियतम रूप की पूर्णाहुति होती है। इस दृष्टि से मीराँ की काव्य साधना का अन्यतम महत्व है।

मीरा का कृष्ण प्रेम—मीरा किसी सम्प्रदाय विशेष म अन्तर्मुक्त भक्त या कवि नही थी। इन्होने स्वतन्त्र वन विहगी की भाति अपने प्रियतम कृष्ण का गान गाया था। कृष्ण के साथ इन्होने शुरू से दाम्पत्य प्रेम का भाव सम्बन्ध जोड लिया था। यहाँ प्रेम के आश्रय और विषय के बीच रूपक की कोई परत नही हैं। नायक और नायिका की झिलमिल म दूतियों का आखमिचौनी नही है। और न भक्त और भगवान् की प्रणय लीला मे गोपियों सखियो और मजरियो की भीड।

यह राधा-कृष्ण की माधुर्य रति भी नही है। यह मीरा कृष्ण की दाम्पत्य रति है—कुछ वैसी ही दिव्य, मधुर, एकान्त और अनन्य। इसे वैयक्तिक भावानुभूति या निजी विरहानुभूति भी कह सकते हैं। मीरा के कृष्ण सर्वप्रथम मीराँ के ही कृष्ण हैं—व्रजवल्लभ, गोपी वल्लभ या राधा वल्लभ कृष्ण नही। यह मीरा कृष्ण हैं।

मीरा और चैतन्य—उनके समसामयिक भक्त चैतन्य देव ने अपने दिव्यावेश से जिस 'अन्त कृष्ण बहिर्गौर' स्वरूप का द्वन्द्वात्मक प्रकटन किया था मीराँ की भाव साधना का लक्ष्य यह द्वन्द्व भी नही है। इस द्वन्द्व मे अन्तत पुंस्त्व का ईषत् आभास है। वैसे गौराग महाप्रभु ने अपनी प्रकट लीलाओ मे आद्यन्त सहचरि सेवित राधा महाभाव की दिव्य भूमिका ही ग्रहण की। किन्तु, नारी होने के ही कारण प्रियतम कृष्ण के प्रति मीरा ने जिस सहजात दाम्पत्य प्रेम का निश्छल प्रदर्शन किया, वह तो नारी सुलभ सुकुमारता और आत्मार्पण की ही स्वाभाविक परिणति है। पुरुष भक्त के लिए जहाँ यह दाम्पत्य अभ्यास

---

१ स्वर्ण मंजूषा, (पृ० १०७)
२ ब्र० मा० सा०—वियोगी हरि (पृ० १४८)

तमिल म एक प्रसिद्ध आल्वार भक्तिन आण्डाल ऐसी ही थी। इनका काल ८ वी शती से आगे नही है। इन्हे 'दक्षिण की मीरा' भी कहते हैं। दोनो की भाव धारा दाम्पत्य प्रेम मूलक होने के कारण तुलना के योग्य है। राधा कृष्ण, आण्डाल कृष्ण और मीरा-कृष्ण इसी भावधारा की मनोहर शृङ्खला हैं।

मीरा और रसखान—जैसे मीरा की काव्य साधना मे प्रियतम कृष्ण का भावात्मक स्वरूप निखर उठा है, वैसे ही रसिक भक्त रसखान के मधुर उद्‌गारों से कृष्ण का सख्य रूप उजागर हुआ। वह कृष्ण को 'प्रेम देव' की पवित्र उपाधि से विभूषित कर उनके साथ सख्य सुलभ सुखद साहचर्य की कामना करते हैं।[1] कहते हैं, वे भावावेश मे गोपाल कृष्ण के साथ गायें चराने जाते थे।[2] इस अन्तरग कल्पना के कारण उनम कृष्ण के प्रति सख्य भाव का पूरी उद्दामता, ढिठाई और प्रगल्भता सुलभ हो गयी थी।

अन्तत इन दोनो का काव्य कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप का अन्यतम चित्रपट है। सम्प्रदायवाद की मुहर के बिना भी यह अपने आप म पूर्ण भास्वर है।

(क) मीराँ काव्य और कृष्ण

मीराँ का प्रेम साधना से श्रीकृष्ण के प्रियतम रूप की पूर्णाहुति होती है। इस दृष्टि से मीरा की काव्य साधना का अन्यतम महत्व है।

मीरा का कृष्ण प्रेम—मीरा किसी सम्प्रदाय विशेष म अन्तर्भुक्त भक्त या कवि नही थी। इन्होने स्वतन्त्र वन विहगी का भाति अपने प्रियतम कृष्ण का गान गाया था। कृष्ण के साथ इन्होने शुरू स दाम्पत्य प्रेम का भाव सम्बन्ध जोड लिया था। यहाँ इनके आश्रय और विषय के बीच रूपक की कोई परत नही हैं। नायक और नायिका की मिलन में दूतियों का आखमिचौनी नही है। और, न भक्त और भगवान् की प्रणय-लीला में गोपियों, सखियो और मजरियो की भीड।

यह राधा-कृष्ण की माधुर्य रति भी नही है। यह मीरा-कृष्ण की दाम्पत्य रति है—कुछ वैसी ही दिव्य, मधुर, एकान्त और अनन्य। इस वैयक्तिक भावानुभूति का निर्दिष्ट विरहानुभूति भी कह सकते हैं। मीरा के कृष्ण सर्वप्रथम मीरा के ही इष्ट हैं—उनके गोपी वल्लभ या राधा वल्लभ कृष्ण नही। यह मीरा-कृष्ण हैं।

सिद्ध है वहाँ मीराँ के लिए पूर्ण सहज। इसे मीराँ ने वृन्दावन में गौड़ीय वैष्णव जीव गोस्वामी से प्रथम मिलन में ही सिद्ध कर दिया था। भक्तमाल के अनुसार उन्होंने जीव गोस्वामी से यही कहा था कि मैं इस (जिस) वृन्दावन में कृष्ण के सिवा किसी को पुरुष नहीं मानती। सच तो यह है कि मीराँ के मानस की मधुर भूमिका पर ही कृष्ण प्रेम का गाढ़ा रंग चढ़ गया था। प्रौढ़ावस्था आते आते पर 'लोकलाज और कुलकानि' का भय छिन्न विच्छिन्न हो गया। और, कृष्ण प्रेम की यह दीवानी मोर मुकुटधारी उस नटवर को अपना पति मानकर अपने हृदय के प्रेमोद्गारों को प्रिय की लीलाभूमि-ब्रज, मथुरा और द्वारका में भावावेश के साथ गाती फिरी। उनके गीत राजस्थान के गिरतालाबों में फूट पड़ने वाली प्रेम की स्रोतस्विनी हैं। कृष्ण प्रेम में प्रवाहित होने वाली मीरा की यह तन्मयता, अनन्यता और निर्भीकता प्रेम साधना के इतिहास में एक उज्ज्वल पृष्ठ है।

जीवन वृत्त—भक्तिकाल के अन्य भक्तों के जीवनवृत्त की भाँति ही मीराँ का वृत्त भी अत्यन्त विवादग्रस्त रहा है। चूँकि मीराँ के रमण स्थल कृष्ण की विविध लीलाभूमि ब्रज, मथुरा और द्वारका में रहे इसलिए उनके कृष्ण प्रेम विषयक समस्त पदों के भाषावार ३ वर्ग हैं—

(क) ब्रजभाषा, (ख) राजस्थानी और (ग) गुजराती।

अब उनकी काव्य साधना के इन स्रोतों से उनके जीवन वृत्त सम्बद्ध मिलते हैं। इस प्रकार भक्तमाल तथा ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्ता में इनका स्तुतिपरक उल्लेख स्वाभाविक ही है। 'व्यास जी (हरिराम व्यास) नाभादास ध्रुवदास, (भक्त नामावली) जैसे भक्त लेखकों ने उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया है। प्रियादास एवं 'रूपकला' जी जैसे टीकाकारों ने उसे बहुत विस्तार भी दिया है।[1] उधर १६वी शती के मान्य कृष्ण भक्त और गुजराती कवि नरसी के अनेक पदों में मीरा का उल्लेख है।'[2]

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने अपनी खोजों के आधार पर मीराँ को महाराणा कुम्भ (मृत्यु सन् १४६८ ई०) की पत्नी माना। विल्सन आदि अंग्रेज विद्वानों ने इसी मान्यता का पोषण किया। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार शिव सिंह सेंगर तथा गुजराती साहित्य के इतिहासकार श्री जी० एम० त्रिपाठी और झावेरी आदि विद्वानों ने उक्त मान्यता का ही अनुमोदन किया।[3]

परन्तु मुंशी देवीप्रसाद, गौ० ही० ओझा आदि राजस्थानी लेखकों ने उपयुक्त मान्यता को पूर्णत भ्रमात्मक माना। इन्होंने मेडतणी कुल के आधार पर कर्नल टाड का खण्डन करते हुए मीराँ को महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज की विधवा युवराज्ञी सिद्ध किया।[4] आधुनिक इतिहासकारों ने इसका समर्थन और अन्य विद्वानों ने अनुसरण किया।[5] इस

१ श्री परशुराम चतुर्वेदी—'मीरा एक अध्ययन' की 'भूमिका (पृ०६)

२ डा० जगदीश गुप्त— गु० ब्र० कृ० का० तु० अ०-(पृ०१३)

३ परशुराम चतुर्वेदी-'मीराबाई की पदावली'—परिशिष्ट 'क' द्रष्टव्य।

४ मुन्शी देवी प्रसाद– मीराँबाई का जीवन चरित्र'।

५ पद्मावती 'शबनम'—मीराँ एक अध्ययन (पृ० २)

प्रकार मीरा का काल १६वी शती निश्चित हुआ। हि० सा० के प्रमुख इतिहासकारो का भी प्राय यही मत है।[1] प० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार मीरा का जीवनकाल स० १५५५ १६०३ और विवाह-काल १५७३ वि० है।

प्रसिद्ध है कि एक राजपरिवार म ज म लेकर मीरा का पारिवारिक जीवन अत्यन्त दु खमय बीता। उन्हे असमय ही वैधव्य का दारुण भार झेलना पड़ा—

'भूठा सुहाग जगत का री सजनी, होय होय मिट जाती,
मैं तो एक अविनासी वरूँगा, जाहे काल नहो खासी।'—मीरा माधुरी-३७

[2]पद्मावती 'शबनम' ने इस पक्ति का हवाला मीरां के वैधव्य के विरोध म दिया है जो युक्तियुक्त नहीं। इस तरह मीरां का ससार उजड गया। और इस उजडे हुए ससार पर ही उसके भाव राज्य का वह मनोहर लोक बस सका जिसमे श्याम सलोन कृष्ण क रूप म उन्हे अविनाशी प्रियतम मिला। यह मीरा का कोई नूतन स्वयवर नहीं था। इस 'गिरधर गोपाल' को वह बचपन से ही दूल्हा मानती आयी थी। मीरा और गिरिधर के बीच म कुछ काल के लिए मेवाड के राणा भोजराज माया की तरह आये और किसी अज्ञात आन्तरिक प्रेरणा से इस साधिका के विरह ज्वर को ज्वलित कर छाया की तरह हट गए। प्रियतम वियोग म पागल मीरा घर द्वार छोडकर बावरी बनी फिरी। साधु सगति बढती गयी। सत्सगति और नानापदश स हृदय का अन्धकार छुनता गया। लोक लाज और कुल कानि तिनके की तरह बह गयी। और, गिरधर नागर क समक्ष—'पग घुँघरू बाँधि मीरा नाची र।'

उनके देवर मेवाड के राणा विक्रमादित्य और ननद ऊदा बाई के सम्मिलित नेतृत्व मे मीरा पर आपत्तियो के पर्वत टूट पडे।—शायद देवर को ही पुन पति रूप मे स्वीकार करने की बात उठी हो जिसका मीरा द्वारा तिरस्कार करने पर उन्हे यातनाएँ भुगतनी पडी। जो हो, उन्हे विष के घूँट पीने पडे। फणियो की माला पहननी पडी। जीवन आसुओ का पारावार बन गया। किन्तु, उसी अविनासी प्रियतम' कृष्ण ने हर समय उसकी रक्षा की। अत उनके प्रति प्रेम की ऐसी लगन लगना स्वाभाविक ही था। प्रियतम से प्रेम का गठबन्धन और भी दृढतर होता जाता है। अब मीरा इस चिर तन प्रेम का मचल मचल कर बयान भी करने लगती है—

मेरा तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई।
दूसरो न कोई साधो, सकल लोक जोइ॥
भाई छोड्या, बन्धु छोड्या, छोड्या सगा सोई।
साधु सग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
भगत देखि राजी हुई जगति देख रोई।
अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बलि बोइ॥

---

१ (क) प० रा० च० शुक्ल—मीरा का जन्म स० १५७३
(ख) डा० रा० कु० वर्मा—, जीवनकाल—स० १५५५ १६३०

२ 'मीरा एक अध्ययन (पृ० ५७)—पद्मावती शबनम

नाचती फिरी। वैधव्य उसके करुण स्वरों में आजीवन हाहाकार करता रहा। किन्तु, कृष्ण की वह अखण्ड सुहागिनी जीवनभर गाती नाचती रही।

'साजि सिंगार बाँधि पग घुंघरु लोक लाज तजि नाची।'

'पिया बिना' उसकी सेज सूनी पड़ी रही लेकिन अन्तमन में वह अहर्निशि 'हरि आवन की आवाज' सुनती रही। 'कुसुम सुवास' में प्रीतम के श्वास' की गंध पीती रही। अपनी जलन को व्यक्त करने के लिए उसने गोपियों की ओट नहीं ली। मानवीय धरातल पर अपने प्रेम-देव को खींचकर अपने अन्तर की तपन बुझाती रही। वस्तुतः मीरा की प्रेमसाधना ने कृष्ण को मानवीय महिमा से मण्डित कर एक अपूर्व रूप प्रदान किया था। यह रूप उनके देवोपम स्वरूप की आराधना से भी कहीं अधिक कमनीय था। यह उनका भावात्मक स्वरूप था।

रचनाएँ—मीरा के जीवन वृत्तान्त की भाँति ही उनके ग्रंथों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। अब तक की खोजों से उनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं–[१]

(१) गीत गोविन्द की टीका
(२) नरसी जी का माहेरा
(३) राग सोरठ पद संग्रह या राग सोरठ का पद
(४) फुटकर पद
(५) राग गोविन्द[२]

व्रजभाषा में मीरा के स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं। इन पदों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।[३] इस दिशा में प० प० चतुर्वेदी और म० सिं० गहलौत के अतिरिक्त स्व० ल० प्र० शुक्ल और डॉ० ज० गुप्त मीरा के कुछ अप्रकाशित पदों को प्रकाश में लाने के कारण विशेष स्तुत्य हैं।

विषय की दृष्टि से प्राप्त पदों के मुख्यतः ३ वर्ग हैं—

(१) आत्मपरक पद, (२) परमात्मपरक पद और
(३) कृष्णपरक पद

वस्तुतः अन्तिम कृष्ण प्रेमपरक पद ही उनकी अविकल माधुर्य भक्ति के गौरवाधार हैं। प्रस्तुत आलोच्य विषय का प्रकृत आलोचना क्षेत्र वस्तुतः यही है। इनके अन्तर्गत मीरा का प्रेम, विरह, मिलन, मान और आत्मनिवेदन की मार्मिक अनुभूतियाँ प्रियतम कृष्ण को केन्द्र मानकर व्यंजित हुई हैं। इन सभी पदों में उनके भावपुरुष श्रीकृष्ण' सूत्रे मणिगणा इव—मणियों में सूत्र की भाँति अन्तर्व्याप्त हैं।

मीरा के कृष्ण—मीरा के कृष्ण उनके स्वानुभूत प्रेम के भावात्मक प्रतिबिम्ब हैं। सलोने कृष्ण के प्रति उनकी यह प्रेमानुरक्ति उनके सहजात मनोरागों पर आधारित है।

१ मुंशी देवीप्रसाद—'राजपुताना में हिन्दी पुस्तकों की खोज' (पृ० ५, ६, १२, १७)
२ आचार्य रा० च० शुक्ल—'हि० सा० इ०'—(पृ० १८४)
३ द्रष्टव्य (क) मीरा-स्मृति ग्रन्थ परिशिष्ट—ख, पृ० ५८
(ख) पद्मावती शबनम—'मीरा एक अध्ययन' (पृ० प्राप्त संग्रह'—पृ० २६०)

भागवतादि ग्रथो मे चीरहरण लीला गोपियो के कृष्णप्रेम की कठिन कसौटी के रूप मे चित्रित हुई है। लज्जा के अवगुण्ठन का सर्वथा परित्याग कर ही गोपियों ने सलोने कृष्ण का प्रेम साहचर्य प्राप्त किया था। दीवानी मीरा भी 'लोक लाज' और 'कुलकानि' के घूघट टार कर प्यार के गीत गाती हुई वृन्दावन का कुञ्ज गली म अपने 'गिरधर नागर' के पास नाचती हुई पहुँच गयी—बिलकुल वैसे ही जैसे कभी राधा कृष्ण वशी की पुकार पर उन्मत्त होकर यमुना-कूल की ओर चल पडी थी। प्रेम के इस बीहड पथ पर चलनेवाली नायिका को कितने विष घूट पीने पडे। इसे पीकर वह और भी अजर हो गयी। क्योंकि वह काई असाधारण प्रेमिका तो थी नही। वह तो भगवान कृष्ण की प्रेयसी थी।

मीरा के गिरिधर नागर—'गिरिधर नागर' सम्बोधन मे कृष्ण के दिव्य मधुर द्विविध स्वरूपो का—जो अनवरत अविच्छिन्न भाव से सम्बद्ध रहे हैं—मणि-काचन योग घटित हुआ है। सो, गिरिधर के प्रति उनके मन म अविचल भक्ति है। वह भक्त वत्सल हैं और उनका वह गोपाल रूप 'सतन सुखदाइ' है। किन्तु उससे किंचित पृथक् उनका एक नागर रूप भी है जिसके पाश म तो वह औचक ही 'फँस' गई। नटवर की इस बकट छवि से तो कामदेव भी ईर्ष्या कर सकते हैं'—[१]

निपट बकट छवि अटके। मेरे नैना निपट ०।
देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूखन मटके।
बारिज भवा अलक टेढी मना अति सुगध रस अटके॥
टेढी कटि टेढी करि मुरली टेढी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी गिरधर नागर नट के॥१८॥

जाहिर है—पहला रूप जहाँ शीतल है, वहाँ दूसरा उद्दीपक। पहले म भक्ति की सुधा है तो दूसरे में प्रेम की मदिरा। कही कही इस दूसरे रूप को लेकर चलने के कारण ही मीरा की प्रेमानुभूति अत्यधिक प्रेमोद्दीपक हो गयी है।[२] प्रथम रूप भगवान् कृष्ण का त्रैलोक्य मोहन रूप है। इसे वह 'भक्तवत्सल गोपाल', 'नन्दलाल' या 'गिरिधर लाल' कहती है। इस गिरिधर लाल के चरण कमल पर दासी मीरा तन, मन, धन से न्योछावर रही। किन्तु, दूसरा रूप उनकी कल्पना रजित तन्मात्राओ से निर्मित है। जिसके आश्रय म उनकी सासारिक प्रेम लालसा, मिलन कामना, उलाहना एव तज्जन्य निजी हठ, मचलन और जलन के गीत मुखर हुए हैं। पहले में कृष्ण का जो दिव्य स्वरूप व्यक्त हुआ है वह लीला विलास से परिपूर्ण अनन्त सौन्दर्य का समुद्र है। मीरा उस सार्वभौम प्रेमालम्बन के चरणो म समर्पण मूर्ति बन कर अवनत हैं। यहाँ वह राधा की सहधर्मिणी हैं, स्वय राधा नही—

१ मी० प्रे० सा०—प्रेमामृत, (पृ० १०)

२ डॉ० रा० कु० वर्मा–'हि० सा० आ० इ०' (पृ० ८३६)—ऐसे पदो मे कृष्ण का स्वरूप पौराणिक कथाओं के अनुरूप नही है। मीरा ने केवल व्यक्तिगत ईश्वर की भावना रखी है जिसमे रूप सौन्दर्य और प्रेमाभिव्यक्ति है।

हमरो प्रनाम बांके विहारी को।
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजै कुंडल अलका कारी को।
अधर मधुर पर बंसी बिराजै, रीझ रिझावै राधा प्यारी का।
यह छबि देख मगन भई मीराँ, मोहन गिरिवर धारी का।।

यहा उनकी भावना पौराणिक तल पर प्रतिष्ठित है। किंतु उनकी भावना का एक नितात निजी स्तर भी साफ देखा जा सकता है। यहाँ उनके कृष्ण का स्वरूप नितान्त मधुर है और केवल मधुर। इसी 'मधुर' को कभी आपने 'सावरे' कभी मोहन' और कभी 'पिव', 'रसिक' या प्रेमी' कह डाला है। सचमुच यही उनकी प्रेम-वेदना की अनाविल धारा है जहाँ वह राधा का नाम न लेकर स्वयं राधा बन गयी है। यहाँ वह राधा को अपदस्थ कर कृष्ण की अखण्ड सुहागिनी बन गयी हैं।[१] किन्तु, राधा की स्थानापन्नता ग्रहण कर इनने राधा प्रेम की महिमा खंडित नहीं की वरन् उसे नवल नेह के अश्रुजल से सींच डाला है। केवल इसी कारण मीरा अन्या य कृष्ण भक्तो से ऊपर उठ गयी हैं। जयदेव, विद्यापति, सूर या अन्य कवियो ने कृष्ण लीला का तटस्थ आस्वादन किया। इन कवियो के विभाव (राधा-कृष्ण) विषयक निजी भाव कवि निबद्ध पात्रो के चरित्र म आक्षिप्त हो गये हैं। इनकी भाव मग्नता निस्सन्देह अद्भुत है। किन्तु, इन्हें विभाव मग्न नहीं कह सकते। इनके आश्रय और विषय अलग अलग बिल्कुल साफ झलकते हैं। किन्तु मीरा की प्रेमानुभूति इस पौराणिक युगल के लीलावरण मे किंचित् मात्र भी नहीं ढक सकी है। अपनी पीडा को व्यक्त करने के लिए वह गोपियो की ओट नहीं लेती। यहा तो आश्रय (गोपी या राधा) का साधारणीकरण (एक प्रकार से निजीकरण) और आलम्बन (कृष्ण) के साथ तादात्म्य की मधुर प्रतिष्ठा द्वारा भक्ति भावना को रस साधना का रूप दे दिया गया है। मुक्तात्मा की भावदशा मुक्त हृदय की रस दशा मे परिणत हो गयी है—

मीरा गिरधर के रग राची, गिरिधर मीरा रग रई।'

अत यहाँ आश्रय का निगरण स्पष्ट है। मीरा के दु ख दर्द का यही कारण है। इसे सूफी सन्तों और फारसी कवियो का प्रभाव कह कर कहाँ तक थोपा जाय उन पर।[२]

मीरा का कृष्ण प्रेम उनका अपना प्रेम है अपने प्रियतम के लिए है। यह 'प्रीतम' उनके 'जनम जनम का साथी है। वह पतिप्राणा स्वीया की भाँति कहा से याद भी दिलाती हैं— मीरा के प्रभु गिरधर नागर बाँह गहे की लाज। यह एक मुक्त भोगिनी के हृदय के भगीकृत प्रेम की पुकार है।

यहाँ ऐतिहासिक कृष्ण ईश्वरता के दिव्यासन से उतर कर मानवीय धरातल पर आ गये हैं। मीरा के प्रेम और वेदना ने मिलकर कृष्ण को एक मानवीय विग्रह प्रदान किया है जो अद्भुत है। इसके पूर्व कृष्ण को मानवीय स्वरूप म देखने का यत्न अवश्य हुआ है, पर देवत्व और असाधारणत्व के योग से। उसे ईश्वर की नर लीला का नाम दिया जा सकता है। किन्तु मीरा के आँसुओं म उतरने वाले कृष्ण पूर्ण भाव प्रवण प्रेम

१ डॉ० ब्र० भू० दा० गुप्ता—'श्री रा० क० वि० (पृ० २८१)
२ द्रष्टव्य- 'घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा' (पृ० ३१६)–डॉ० मनोहर लाल गौड

पुरुष हैं। मीरा ने यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वरीय सत्ता को भी मानवीय उत्कंठा और हार्दिक व्याकुलता से प्यार किया जा सकता है।[1] वह मानवीय धरातल पर ही अपने प्रेम देवता को खींचकर दिल की तपन बुझाती है—

सूना गाव देस सब सूनो सूनी सेज अटारी।
सूनी विरहिन पिव बिन डोल तज दई पीव पियारी।
अब तो मेहर करो मुझ ऊपर, चित दे सुणो हमारी।
मीरा के प्रभु मिल ज्यो माधो जनम जनम की क्वारी।

रति धृष्ट कृष्ण—इस भाव ने मीरा के प्रेम में एक सहज ढिठाई भर दी है। यह उनके परस्पर अपनत्व का द्योतक है। इसी अभिन्नता के कारण उन्होंने अपने 'अविनासी वर' को 'लगर' तक कह डाला है—

छाडो लगर मोरी बहियां गहो ना।
मैं तो नार पराये घर की मेरे भरोसे गुपाल रहो ना।
जो तुम मेरी बहिया गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरो ना।

यहाँ उनके पुराण प्रसिद्ध प्रियतम कृष्ण काव्य के धृष्ट नायक बन गये हैं। यह उनका छैल छबीला नागर रूप है—[2]

मोहन छैल छबीले नागर सुरत ही डोरिया झुलत गावे।
दोउ सुभट रणखेल महारस नासत मदन ठौर नहिं पावे॥

प्रवासी कृष्ण—मिलन काल के चंचल, हँसोर और धृष्ट कृष्ण ही विरह-काल में कितने दारुण बन बैठे! प्रीति की यमुना में रति की नाव बहा दी और स्वयं 'मधुपुरी' जाकर बैठ गये। भला यह विरहिन अब किनारे भी लगेगी या नहीं!—

छाडि गया बिस्वास सँघाती नेह री नाव चढाय।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे रह मधुपुरी छाय।

यहां तक राधा और मीरा की वेदना समवर्ती है। अतः कृष्ण पौराणिक हैं। किंतु, नेह की नाव जब विरह के अथाह समुद्र में पैठ जाती है तब विरहिन उस 'बिस्वास संघाती' को इसके सिवा और कह ही क्या सकती थी।—

प्रभुजी थे कहां गया नेहड़ो लगाय।
छोड गया विस्वास संगाती प्रेम की बाती बराय।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे तुम बिन रह्या न जाय॥

---

१ वही-(पृ०३१४) 'मीरा के आलम्बन अलौकिक श्रीकृष्ण थे। भावानुभूति उनकी लौकिक है। वे प्रेयसी हैं, श्रीकृष्ण प्रियतम'।

२ 'मीरा स्मृति ग्रन्थ'-मीरा के कुछ अप्रकाशित पद (पृ० १४३)—श्री जगदीश गुप्त। उक्त पद १७ वीं शतीय कवयित्री ताज के इस पद से तुलनीय—

छैल जो छबीला सब रंग में रंगीला
बड़ा चित्त का अड़ीला कहूँ देवता से न्यारा है।'

—'हिंदी के मुसलमान कवियों का प्रेमकाव्य, (पृ० ८२)—गुरुदेव प्र० वर्मा।

ध्यातव्य है कि 'मीरा के प्रभु' यहा केवल मीरा के ही प्रभु हैं, और किसी के नहीं। सच मुच उनका प्रियतम एक दिन घर लौट आता है और— बहुत दिना की जोवती, विरहणि पिव आवा हो।' किन्तु मिलन के इस सकेत को कुरुक्षेत्र म राधा कृष्ण मिलन से तुलना करने की भूल नहीं की जा सकती। मीरा का वह सौभाग्य कहाँ था ! राधा ने तो कृष्ण के अधरामृत का पान किया था। किन्तु, मीरा उनके चरणामृत की साधिका ही बनी रही। अत 'मीरा की तुलना केवल राधा से ही जा सकती है।'[1] यह बात भी निस्सार प्रतीत होती है। यह और कुछ नहीं, भाव पुरुष कृष्ण के साथ भाव विह्वल मीरा का भावात्मक सम्मिलन ही है। अत इसकी महिमा से इन्कार नहीं किया जा सकता। यहाँ कृष्ण अपना पौराणिक अस्तित्व तज कर और प्रेम के साचे म ढल कर रस निष्ठा के प्रतीक बन गये हैं। प्रेम साधना की इससे ऊँची और चैतन्य स्थिति की कल्पना क्या हो सकती है जब ईश्वर अतरतम म रूप धरकर विराजमान हो जाय। मीरा कृष्ण की 'प्रेम दिवाणी' प्रेयसी थी और उनके अनिर्वचनीय दर्द को हरन वाला इस ससार मे सँवरिया वद्य को छोड दूसरा कोई न था।

अन्तत मीरा के कृष्ण की—उस मध्ययुगीन परिवेश मे—एक विलक्षण विशेषता जो दीख पड़ती है वह यह है कि उनके कृष्ण किसी एक दार्शनिक मन्तव्य के प्रतिरूप या साम्प्रदायिक 'मॉडिल' नहीं हैं। इसका कारण यह है कि उनके सस्कारों पर किसी एक ही सम्प्रदाय का प्रभाव नहीं था। अपने बाल्यकाल मे वल्लभाचार्य (१४७९-१५३१ई०) और चैतन्य (१४८६ १५३३ई०) की प्रौढावस्था म समकालीन थी। मीरा का कृष्णो पासना पर इन दो प्रबल स्तम्भों का प्रभाव अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गुजरात के नरसी महता ऐसे ही कृष्ण भक्तों मे से थ। किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय की साधना निष्ठा से वह कभी प्रभावित नहीं हुईं। फिर, उनके नटवर नागर वल्लभाचार्य के बालकृष्ण भी नहीं हैं। वस ही वह चैतन्यदेव की राधा भावना से पूर्णत आविष्ट और अनुप्राणित हैं किन्तु उनके लीला गान स किंचित् विरत। सूर म सहज सख्य है और नरसी म उन्मुक्त सखीभाव। किन्तु, मीरा कृष्ण की पागल प्रणयिनी हैं। सूर में दास्य दास्य है मधुर मधुर। नरसी म दास्य ही सख्य स माधुर्य बन गया है। मीरा म दास्य और माधुर्य दोनों म कोई अन्तर नहीं।

भावात्मक की दृष्टि से यदि विचार करें ता सूर म मनोमुग्धकारी सहजता है नरसी, म ऐन्द्रिकता। और मीरा तो प्रेम की जाग्रत दीपशिखा ही हैं।

दूसरा बार, उन्हें रैदास स 'अविनाशी प्रियतम' मिला और गूपियों से प्रम की पीर'। सब मिलाकर इस पतिविहीना, प्रममयोगिनी न जिस प्रम देवता की कल्पना की, वही उनका गिरिधर था। इसके पीछे वह जीवन भर नाचती गाती रही।

वस्तुत नाना मतों और उनकी साधना पद्धतियों, भक्ति-परिपाटी और उनका विकास-परम्परा के प्रभावों स उनका व्यक्तित्व निर्माण हुआ था। इसीलिए अपन आराध्य

---

१ श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' — मीरा की प्रेम-साधना (पृ०१०३)

के चरणो म उनने जो श्रद्धा सुमन चढाये उनम ग व ग धा का समारोह है। इस तथ्य को अनदेखा कर देने के कारण ही विद्वानो के समक्ष मीरा की प्रेम साधना एक अनबूझ पहेली बनी हुई है। *उनका नटवर नागर* सगुण निगु ण के मध्य म सस्थित है। उसमे सगुण का राग और निगु ण का ज्ञान दानो समन्वित हो गय है। जो कबीर का 'पुहुपबास ते पातरा साईं है, जो सूर के श्याम हैं, वही मीरा के 'गिरिधर नागर' हैं। अत सगुण और निगु ण भक्तिकाल के इन स्थूल वर्गों को मीरा के कृष्ण सबसे बडी चुनौती हैं।

मीरा के कृष्ण सबुद्धि की टेक पर अपने भावात्मक स्वरूप की अन्यतम परिणति हैं।

(ख) रसखान काव्य और कृष्ण

पृष्ठभूमि—भक्तिकाल का समस्त साहित्य आत्म साक्षात्कार और समन्वय साधना का प्रतिफल है। राम भक्ति शाखा का साहित्य मूलत प्रथम लक्ष्य पर आधृत है। किन्तु, भक्तिकाव्य का शेष तीन चौथाई अश दूसरे व्यापक उद्देश्य के प्रति ही समर्पित ह। कृष्ण काव्य की भी प्रधानत यही भूमिका रहा।

समानुभूति पूर्ण प्रेम के विना निष्पन्न नही होती। भक्तिकाल म प्रेम का यह प्रवाह दो स्रोतो मे प्रवाहित हुआ। एक लोक से उठकर अध्यात्म के ऊध्व तल पर प्रवाहित हुआ और दूसरा अध्यात्म तल से समतल पर उतरकर आनन्द के अनन्त स्रोता म पुरस्सर हुआ। उधर सूफियों के रत्नसेन सिंघल द्वीप पहुँच गये। इधर ब्रज ही नित्य गोलोक बन गया। सूफी सतो ने प्रेम की इस फुहार से हिन्दू जनता के दग्ध हृदय को प्रफुल्लित कर दिया। इधर कृष्ण प्रेम म तल्लीन भक्तो ने अपने सलोने श्याम की ऐसी झाँकी प्रस्तुत की कि उनकी एक छबीली मुस्कान को *विजातीय भी न सँभाल सके*।[1] *कृष्ण प्रेम के अनाविल स्रोत म* क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी सराबोर हो गये।[2] इस प्रकार, यह भलीभाँति कहा जा सकता है कि आत्म-साक्षात्कार और सम वय साधना भक्तिकाल की उपयुक्त दोनो प्रमुख प्रवृत्तियाँ कृष्ण प्रेम के आश्रय मे जितनी पल्लवित हुइ उतनी रामभक्ति के आश्रय म नहीं।

दोनो म स्वरूपभूत अन्तर भी इसका कारण है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के प्रति एक महान सभ्रम, एक विस्मयशील दुराव अनुभव होता है। किन्तु, लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण रसिको के चित्त को तत्काल विस्मय विमुग्ध कर लत हैं। अत भक्तो का

---

१ टेरी वहाँ सिगरे ब्रज लागान कालिह काऊ कितनो समुझैहै।
माई री, वा मुख की मुसुकानि, सँभारी न जैहै न जैहै न जहै ॥ १०—सुजान रसखान

२ तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी मान।
प्रमदेव की छबिहि लखि, भये मियाँ रसखान ॥—प्रेमवाटिका

यही दशा कृष्ण प्रमिका ताज (स० १६ ०–१६८०) की भी हुइ—
सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही बिकानी बदनामी हूँ सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी, मैं निवाज हू भुलानी, तजे कलमा कुरान, सारे गुनन रहूँगी मैं।
नद के कुमार कुरबान तेरी सूरत प ह्वौं ए नाल प्यारे, हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं॥
—प्रभुदयाल मीतल–भक्त कवयित्री ताज (सरस्वती, जुलाई–६५)

रसखान के कृष्ण—रसखान काव्य में ब्रजेश्वर कृष्ण का ग्रहण सामान्यतः विशुद्ध भाव के धरातल पर हुआ है। इनमें बौद्धिकता का तनिक भी आग्रह नहीं है। इस कारण कृष्ण अध्यात्म के दिव्यासन से उतर कर प्रेम की उन्नत मानवीय भावभूमि में रम गये हैं। यहाँ वह आराध्य से कहीं अधिक प्रेय हैं।[१] इनके निरूपण में शास्त्रीयता और दर्शन का आवरण न होने से भावुकता दूर तक अग्रसर हुई है। इस तरह लीला पुरुष के कमनीय स्वरूप को हृदय में धारण कर कवि ने उनके साथ सहज सख्य और कान्त भाव का सम्बन्ध स्थिर कर लिया है। इन सम्बन्धों में यह इस प्रकार तल्लीन हुआ है कि भक्त और भगवान के बीच की दूरी ही मिट गई है।

कृष्ण भावना का आधार—रसखान के द्वारा कृष्ण की विशुद्ध प्रेम की अनुभूति के रूप में निरूपित किये जाने के मूल में विद्वान् जिन कुछ आधारभूत तत्वों की ओर लक्ष्य करते हैं, वे ये हैं—

(१) फारसी का स्वच्छन्द सांसारिक प्रेम—उदाहरणार्थ, लैली प्रेम की श्रेष्ठता[२]

(२) सूफियों के लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना

तथा (३) 'रागानुगा' प्रेम में स्वच्छन्द प्रेम के दर्शन। किन्तु यह अंतिम तत्व बिलकुल गौण माना गया है। क्योंकि, इनके अनुसार[३]—

'फारसी के स्वच्छन्द सांसारिक प्रेम, जिसका एक छोर नाम मात्र के लिए ही रब सत्ता से लगा दिया जाता है, इनके परिचय में था। इसलिए लैली के प्रेम को इन्होंने श्रेष्ठ बताया है। सूफी प्रेम जिसकी अभिव्यक्ति लौकिक थी, अन्त में तात्पर्य अध्यात्म साधना का कर दिया जाता था—रसखान की दृष्टि में था। फलस्वरूप कृष्ण भक्ति का शास्त्रपक्ष इनकी स्वच्छन्द प्रतिभा को सीमित न कर सका। इन्होंने इसके "रागानुगा" रूप में स्वच्छन्द प्रेम के दर्शन किये। 'इस प्रेम का आदर्श जिस प्रकार लैला थी उसी प्रकार गोपिकाएँ थीं।'

कृष्ण महबूब नहीं—किन्तु, रसखान ने लैला और महबूब के प्रेम को गोपी और कृष्ण के जैसा कहीं भी नहीं लिखा। उन्होंने प्रेम के लौकिक और अलौकिक—इन दो आदर्शों का पृथक पृथक् उल्लेख किया है।[४]

दूसरे लैला प्रेम में मन के सम्मिलन के साथ साथ तन के सम्मिलन का भी स्पष्ट कथन है। किन्तु गोपी प्रेम में इस दैहिक सम्मिलन की वास्तविक स्थिति नहीं है।

तीसरे, रसखान ने अनन्यता की दृष्टि से लैला प्रेम की नहीं, गोपी प्रेम की महिमा का ही यशोगान किया है। यह प्रेम मात्र लैला या सूफी प्रेम की तुलना में ही श्रेष्ठ नहीं है बल्कि वात्सल्य, सख्य आदि रागात्मक भावों से भी बढ़कर है। इस मधुर प्रेम रस के

१ डॉ० मनोहर लाल गौड़—घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा (पृ० २६७)

२ प्रेमवाटिका—३३

३ डॉ० म० ला० गौड़ 'घ० स्व० का० धा०'—(पृ० २६६)

४ (क) लैला प्रेम—'प्रेमवाटिका'—३३

(ख) गोपी प्रेम— वही —३८

आलम्बन रसावतार कृष्ण हैं जिनके भावात्मक स्वरूप की मिठास का अनुभव ब्रज देवियों से मिलकर ज्ञानी उद्धव को भी हुआ था।[१]

अत रसखान के स्वच्छन्द प्रेम पर गोपियों के चितचोर कृष्ण के स्वच्छन्द चरित की छाप सर्वाधिक स्पष्ट है। उन पर कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का वही जादू है जिसकी एक झलक मीरा की प्रेम-साधना मे पहले ही देख चुके हैं। उनके गोपी कृष्ण लैला के महबूब नही हैं।

मीरा - कृष्ण से साम्य—मीरा ने कृष्ण के ब्रजचरित्र या उनकी सागोपाग लीलाओं का गान नहीं कर उनकी एकान्त भावोपासना की थी। उन्होंने भक्त और भगवान् के रूप में प्रेम के आश्रय और विषय को एक दूसरे के आमने सामने कर दोनो का सामान्यीकरण कर दिया था। रसखान ने भी तद्वत् ब्रज लीलाओं का स्थूल वर्णन न कर उनके सकेत मात्र से अपने 'प्रेम देव' के प्रति भाव भीनी श्रद्धाजलि अर्पित की। इन दोनो की साधना वैयक्तिक, स्वच्छन्द और देशज है। दोनों ने ही शास्त्रीयता के कगारो को अपने सशक्त भावोच्छ्वासो से झकझोरा है। बौद्धिक आवरण को टार कर इन्होंने दिल के देवता का अभिषेक किया है। यही देवता कृष्ण हैं।

कबीर के साईं से भेद—कवि को कृष्ण भावना की यह विरासत निर्गुणी सन्त कबीर से नहीं[२], कृष्ण प्रेयसी मीरा से मिली है। कबीर ने तो कृष्ण की मानवीय लीलाओं का आमूल निरसन किया था[३], मीरा ने उसी का नख शिख स्वीकरण। अत रसखान की यह 'अध्यात्म ज्योति' पुराणों के अधिदेवता लीला पुरुषोत्तम कृष्ण की ही विस्मयविमुग्धकारिणि रूप माधुरी है, कबीर का 'अनहद ढोल' नही। अधिक से अधिक इसे सूफिया की प्रेम-ज्योति (पद्मावती की रूप सुषमा) से उपमित किया जा सकता है।[४]

सन्त कबीर ने अरूप की आराधना की थी, मीरा और रसखान ने रूप की पूजा। शेष महेश ने जिसका स्मरण किया था वह अनादि, अनन्त, अखण्ड और अछेद अभेद ही बना रहा। उसके स्वरूप और स्वभाव का चित्र अन्त पट पर अकित न हो सका। भगवान् का गुणमय रूप और स्वभाव ज्ञान चक्षु गोचर नही हो सकता। वह भाव चक्षु -

---

१ प्रेमवाटिका-३६

२ डॉ० म० ला० गौड—'घ० स्व० का० धा०' (पृ० २६६)-'जिस तत्त्व का शेष, महेश स्मरण करते हैं वह अध्यात्म ज्योति है, पुराणों का अधिदेव परमेश्वर नही जो सूर तुलसी का अभिमत है। इस पक्ष मे रसखान कबीर से अधिक समता रखते हैं, सूर, तुलसी से कम',

३ नहिं देवकि के गर्भहि आय। नहीं यशोदा गोद खिलाय ॥
नहिं गोवर्धन कर धरिया। नही ग्वाल सग बन बन फिरिया ॥
—कबीर रचनावली (पृ० १६३)

४ 'रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती —जायसी
'मुरली कर मै अधरा मुसकानि तरग महाछवि छाजति है।'—रसखान

गोचर हुआ करता है। इसीलिए, रसखान के शब्दों मे ज्ञान चक्षु हार गये। वह रूप और स्वभाव सतत प्रेमी भक्तों को ही चाक्षुप प्रत्यक्ष हो सका—

> ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुराननि गाननि, वेद रिचा सुनि चौगुनी चायन।
> देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितू वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन॥
> टेरत हेरत हारि पर्यो रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
> देख्यौ, दुर्यो वह कुंज-कुटीर मे, बैठ्यो पलोटतु राधिका पायन॥
> —(सुजान रसखान–२८)

यही हैं ब्रज के भगवान् कृष्ण। ऐश्वर्य और ब्रह्मत्व इन सबो को अतिक्रान्त कर उनका मधुर स्वरूप विराजमान है। रसखान के प्रेमी कृष्ण का यह मधुर स्वरूप भगवान् के निर्गुण स्वरूप के उपासक सन्तो (कबीरादि) को नव चुनौती है।

निर्गुण नहीं, सगुण—रसखान के कृष्ण सगुण भगवान् हैं। ब्रजेश्वर ब्रह्म के गुणात्मक विग्रह हैं। अपने इस रूप म यह ब्रह्म से भी महान् परब्रह्म हैं। इनके रूप और गुण की कल्पना परम मनोहर है। इनका रूप मोहन है और गुण आनन्द क्रीडा। रूप और गुण से सज्जित कृष्ण लीला नायक हैं। उन्हे प्रेमी भक्त अहर्निशि अपने हृदय दपण म धारण किये रहता है नयनो म बसाये रहता है। नयना मे बसा लने पर वह उस मूत प्रेम की वारुणी को पीकर इतना बेसुध हो जाता है कि फिर आँखें भी नही खोलता। यह दर्शन-क्रम अप्रतिहत चलता रहता है—

> सोहत है चँदवा सिर मोर के, जैसिये सुन्दर पाग कसी है।
> तैसिये गोरज भाल बिराजति, जैसी हियें बनमाल लसी है॥
> 'रसखानि' बिलोकति बौरी भई, दग मूंदि कै ग्वारि पुकारि हँसी है।
> खोलि री घूंघट, खोलौ कहा वह मूरति ननि मांझ बसी है।
> —(सुजान रसखान–२१)

अन्तिम पक्ति के पूर्वार्द्ध मे कबीर के प्रति कटाक्ष है, तो उत्तरार्द्ध मे मीरा के प्रति सहमति। कबीर कहते हैं- घूंघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलगे। किन्तु, रसखान की गोपियो के लिए घूंघट पट खोलने न खोलने का अर्थ भी क्या है ? वह मूर्ति तो नयना म पहले ही बस गयी है।

जैसे मीरा के भाव मधुर कृष्ण के समक्ष उनका भक्तवत्सल रूप विमर्जित नही हुआ है वैसे ही रसखान के 'माखन चाखनहार' ही उनके राखनहार बन गय हैं–[1]

> द्रौपदि औ गनिका गज गीध अजामिल सो कियो सो न निहारो।
> गोतम गेहिनी कसे तरी, प्रहलाद को कसे हर्यो दुख भारो॥
> काहे को सोच कर रसखानि कहा करिहै रविनन्द विचारो।
> कौन की सक परी है जु माखन चाखन हारो है राखन हारो॥

[1] अ० मा० सा०–पृ० १५१—तुलना कीजिए—प्रभु तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुरत बढायो चीर
बूडतो गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दासी मीरा लाल गिरधर चरन कँवल प सीर॥'—मीरा

कवि की आस्था इस भव सागर मे विघूर्णित जनों के लिए एक तरी है जिसके खेवैया स्वय सलोने श्याम हैं।

उद्धारक कृष्ण के प्रति इसी प्रेमिल निश्चिन्तता के दर्शन घनानन्द के सवैये मे होते हैं।[1] मीरा मे इस निश्चिन्तता का किंचित् अभाव है। इसीलिए अधमोद्धार की भावना वहाँ बलवती है। किन्तु रसखान में उद्धारक रूप भी ललित मधुर गोपाल का ही एक अग बन गया है।

ऊपर मीरा के कृष्ण प्रेम मे हम देख चुके हैं कि वहाँ पौराणिक लीलाओ के शात जल तल पर मानवीय भावो की चचल लहरियाँ उच्छलित हो रही हैं। इसी से मनहर कृष्ण का स्वरूप पचतन्मात्राओ से समुक्त हो गया है। भावना प्रवण कवियो ने जब इनकी मधुर लीलाओ की झाँकी प्रस्तुत की तो उत्तरोत्तर कृष्ण का यह गत्यात्मक स्वरूप और भी प्रगल्भ चेष्टाओ के साथ प्रकट हुआ। रसखान के रसिक कृष्ण भी इसी से और भी अधिक भावगम्य और चित्ताकर्षक बन गये हैं। वह मानवीय सवेदनाओ और झकृतियो के सम्मोहक पुज हैं। इन विशेषताओ से सम्पन्न उनकी चेष्टाओ में एक सिद्धहस्त जादूगर का प्रभाव परिलक्षित होता है—[2]

> आयो हुतो नियरे रसखानि, कहा कहूँ तू न गई वह ठैया।
> या ब्रज में सिगरी बनिता, सब वारति प्राननि, लेति बलैया॥
> कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सो जु कयो जदुरैया।
> गाइगो तान, जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान, चराइगो गैया॥

यदुराई की यह जादूगरी दुर्निवार है।

पचतन्मात्राओं से सज्जित कृष्ण—तन्मात्राओ से निर्मित कृष्ण अपने सम्मोहन म अचूक हैं। गोपियाँ इस प्रभाव से पूर्णत अभिभूत हो जाती हैं। उनकी प्रेमासक्ति से भी मन मोहन कृष्ण के स्वरूप का आभास मिल जाता है—[3]

> कानन दै अँगुरी रहिबो, जबही मुरली धुनि मद बजैहै।
> मोहिनी ताननि सों रसखानि, अटा चढि गोधन गैहै तो गैहै॥
> टेरि कहौ सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझै है।
> माई री, वा मुख की मुसुकानि, सभारि न जैहै न जैहै न जैहै॥

शब्द, रूप, रस, गन्ध स्पर्श—इन ऐन्द्रिक वृत्तियो स सज्जित कृष्ण का मोहन रूप मन की समस्त निवृत्ति को झकझोर देने वाला है। यही ब्रजभाषा क मधुर कृष्ण हैं।

स्वरूप चित्रण—रसखान ने इस मधुर कृष्ण के अनेकश स्वरूपचित्र खीचे। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—[4]

---

१ काहे कों सोचि करै जियरा परी तोहि कहा विधि बातनि की है।
जाकी कृपा निन छाय रही दुख-ताप तें कौन बचाय ही ली है॥ १५—कृपाकद

२ सुजान रसखान—११ ३ सुजान रसखान—५६

४ वही —६५ तुलना कीजिये—तुलसीदास-कृष्णगीतावली, पद स०२० से-
गावत गोपाल लाल नीके राग नट हैं।
चलीरी आली देखन लोचन-लाहु पेखन ठाढ़े सुरतरु-तर तटिनी के तट हैं॥'

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैयां पाछें ग्वाल, गावै मृदु तान री।
तैसी धुनि बासुरी की मधुर मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंद मंद मुसकान री।।
कदम विटप के निकट तटिनी के तट,
अटा चढि देखु पीत पट फहरान री।
रस बरसावै तन-तपन बुझावै, नैन
प्राननि रिझावै वह आवै रसखान री।।

उक्त पद मे 'रसखान' विशेषण ही कृष्ण और कृष्ण प्रेमी कवि का पर्याय बन गया है। रसखान कृष्ण के नाम से 'सुजान रसखान' मे ६ पद मिलते हैं।

ध्यातव्य है कि रसखान ने कृष्ण के जिस रसात्मक स्वरूप का चित्र खीचा है वह तन की तपन भी बुझाता है और कोमल मन को आनंद मुग्ध भी करता है। उनकी दृष्टि मे जैसे जग वजन बेकार है वैसे ही तन ताडन भी निस्सार। रसखान के कृष्ण नितांत अतनु नही हैं। कवि दैहिक अस्तित्व की अनिवार्यता से भली भांति परिचित है। किंतु इसके चलते वह न तो शास्त्रीय तटस्थता की ओट लेता है और न उसका बौद्धिक निरास ही करता है।[१] बल्कि वह भावना के जोर से उसे (दैहिक अस्तित्व) निचोड कर कृष्ण के चरणो मे चढा देता है—[२]

बैन वही, उनकौं गुन गाइ, औ कान वही, उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।।
जान वही, उन प्रान के संग, औ मान वही, जु करै मनमानी।
त्यों 'रसखानि', वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी।।

यहाँ मानव और ईश्वर का पूर्ण सहभाव घटित हुआ है। यह तादात्म्य सगुण भगवान् की महिमा का द्योतक है। कवि कृष्णभावना के समाधि लोक से पुनः लौटना नही चाहता। वह अपने अस्तित्व की पखुडिया को तोड-तोड कर कृष्ण के स्वरूप मे तदाकार कर देता है—[३]

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहुँ सिद्ध नवो निधि कौ सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।।

हिन्दी म कृष्ण के साहचर्य-प्रेम का यह अनूठा दृष्टान्त है।

प्रवासी कृष्ण—माधुर्य भक्ति के उपासको की दृष्टि मे कृष्ण मथुरा म पूर्ण, द्वारिका म पूर्णतर और व्रज में पूर्णतम हैं। सूर ने सूरसागर के कृष्ण म इस तथ्य का सुंदर प्रति

---

१ भागवत—१०/३४/३२—'ईश्वराणां वच सत्य तथवाचरित क्वचित्।'

२ सुजान—रसखान—१३०

३ सुजान रसखान—२ तुलना कीजिये- मुरली कर लकुटी लीए पीताम्बर धारै।
काछ धरै गोप वेश गोधन बन चारै।।
—मीरा स्मृति ग्रंथ श्रीजगदीशगुप्त।

पादन किया है। रसखान ने अपने द्वारिकावासी कृष्ण के मुख से इसे ही चरिताय कराया है। द्वारिका के वृद्धि वृद्ध कृष्ण ब्रज प्रेम की विह्वलकारिणी सुधियो मे अपनी भाव प्रवणता ही सिद्ध करते हैं—[1]

ग्वालन के सग जबो, ऐबो भौ चरैबो गाय,
हरि तान गैबो सोचि नैन फरकत हैं।
ह्याँ की गज मोती माल वारौं गुज मालन पै,
कुज सुधि आयें हाय प्रान धरकत हैं।
गोबर क गारौं सुतौ मोहि लगै प्यारो, नहिं—
भाव ये महल जे जटित मरकत हैं।
मदर तै ऊचे कहा मन्दिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खरक मेरे हिये खरकत हैं॥

रसखान के गोपी कृष्ण म गोष्ठ सस्कार की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। अपनी 'प्रेम वाटिका' म कवि ने कृष्ण को 'रसखानि', 'प्रेम देव', 'प्रेम-स्वरूप' आदि आस्पद दिये हैं।

'प्रेम वाटिका' जिसम कवि का प्रेम दशन प्रकटित है, उसके समपण परक दोहे मे राधा और कृष्ण को 'माली मालिन द्वन्द्व' रूप मे चित्रित किया गया है।[2]

प्रेम अयनि श्री राधिका, प्रेम वरन नँदनद।
'प्रेम वाटिका' के दोऊ माली मालिन द्वद॥

प्रेम-स्वरूप—उसने कृष्ण को प्रेम स्वरूप और प्रेम को कृष्ण स्वरूप मानकर दोनो का अगागिभाव चित्रण किया है—[3]

प्रेम हरी को रूप है, त्यो हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै म लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥

निष्कपत रसखान के कृष्ण 'प्रेमदेव है। उनका स्वरूप निर्माण पौराणिक और वयक्तिक धारणाओ के सम्मिश्रण से हुआ है। लीला दृष्टि से उनकी ब्रज लीला ही चित्रित हुई है। इन लीलाओ मे मत्य और मधुर मुख्य हैं। इनके आश्रय रूप म राधा, गोपी तथा स्वय कवि के निजी सस्कार सम्मिलित हो गये हैं। इस दृष्टि से कृष्ण राधेश है, गोपेश हैं, रस खान हैं। रसखान का कृष्ण प्रम प्रेमी और प्रेय के चिरन्तन मिलन का मनोरम दृष्टान्त है।

(ग) तुलसी दास काव्य और कृष्ण

पृष्ठभूमि —तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। किन्तु इन्होने कृष्ण के भावात्मक स्वरूप से प्रभावित होकर उनकी ललित लीलाओ का गुणगान किया है। अत सम्प्रदायवाद से मुक्त कवियो की अन्तिम शृखला मे इनकी कृष्ण भावना का उल्लेख किया जाता है।

---

१ अ०मा०ना० (पृ० १५३)
२ प्रेम वाटिका—१
३ वही —२४

मध्यकालीन कृष्णभक्ति आंदोलन के उत्तर में ३ प्रबल स्तम्भ हुए—चैतन्य, वल्लभ और मीरा। इनके मन मंदिर और काव्य साधना में भाव देव श्रीकृष्ण पहले ही प्रतिष्ठित हो चुके थे। अष्टछाप के सूर्य सूरदास की व्यापक कृष्ण लीला सम्पूर्ण ब्रजमंडल में फैल चुकी थी। इतना ही नहीं मनहर कृष्ण के सम्मोहक स्वरूप पर रीझ कर रहीम और रसखान जैसे मुसलमान कवि भी भगवान् कृष्ण की क्रीडा भूमि वृंदावन को ही अपना स्थायी प्रेम निकेतन बना रहे थे। इस प्रकार, १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में जब सम्पूर्ण जन जीवन लीला पुरुष श्रीकृष्ण के रूप लावण्य और केलि क्रीडाओं में आलोडित विलोडित हो रहा था, गोस्वामी तुलसीदास ने 'नाना पुराण निगमागम' के पृष्ठों को उलट पुलट कर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की मंगलमयी मूर्ति गढ़ी थी। उस युग की सर्वव्यापी कृष्ण भावना को निरखते हुए तुलसी का 'रामचरितमानस' अपने आप में एक विस्मय कारिणी कृति है।

'मानस' के राम देश काल के अनुसार काव्य के धीरोदात्त नायक हैं। उनमें भगवान् की ३ विभूतियों में विशेषतः शक्ति और शील का चरम सन्निवेश हुआ है। पर साथ ही वह सुंदर भी हैं। फिर उपासना के क्षेत्र में भी ईश्वर में माधुर्य का आरोप अपेक्षित ही है। भगवदैश्वर्य में सौंदर्य सर्वोपरि मान्य है। भक्ति शास्त्रों के अनुसार 'माधुर्य ज्ञान के बिना पूरी भक्ति हो नहीं सकती।'[१] कृष्णोपनिषद् में तो ऐसी कथा ही गढ़ी गयी है कि जब सुंदर राम पर दण्डकारण्य के मुनिगण मोहित हो गए तब उन्होंने कृष्णावतार में गोपी स्वरूपा मुनियों को ही परितृप्त किया।[२] जनकपुर वासियों का भी कुछ वैसा ही भावान्तरण हुआ है। अतः राम और कृष्ण का चारित्रिक स्वरूप बाहर से भिन्न लगने पर भी भीतर से अभिन्न है।

फिर भी भगवान् की उन्मुक्त केलि क्रीडा और आनन्दवादी अवतरण कल्पना के अनुरूप जितना प्रकृत कृष्णचरित्र है, उतना राम का चरित नहीं। दूसरे, मध्ययुग के भक्तों ने कृष्ण के भागवत वर्णित ललित चरित्र को ही अपने भावों का आलम्बन बनाया। फलतः उनके लोकसंग्रहकारी पक्ष के स्थान पर लोकरंजनकारी पक्ष ही अधिक व्यापक हुआ। काव्य दृष्टि से भी ललित मधुर गोपाल का ब्रजेश्वर रूप ही विशेष ग्राह्य था। अतः उस युग के सार्वदेशिक साहित्य में चरित स्थायी रति के रूप में सहज ही अन्तर्व्याप्त हो गया।

गोस्वामी तुलसीदास के जैसा प्रतिभाशाली कवि इस युग धर्म की अवहेलना नहीं कर सकता था। अतः उन्होंने भगवान् राम के रम्य रूप के साथ साथ कृष्ण के रुचिर स्वरूप को भी अपनी वाणी में अभिव्यंजित किया। कथ्य ही नहीं, कथन तक में यह प्रतिक्रान्ति हुई। प्रबन्ध काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि ने प्रेम के स्फुट गीत लिखे।

रामचरित पर कृष्ण चरित का प्रभाव—इस सुभग स्वरूप के प्रभाव से उनके धीर गंभीर राम भी नख से शिख तक सराबोर हो गये हैं। मानस के राम इनके अपवाद नहीं हैं।

---

१ शिव-संहिता २ कृष्णोपनिषद्—१

उनकी 'गीतावली' के राम 'कृष्ण गीतावली' के कृष्ण के ही रूपान्तरण हैं। गीतावली की रचना सूरदास के अनुकरण पर हुई है। तुलसी काव्य के ममज्ञ आलोचक आचार्य रा०च० शुक्ल ने स्वीकार किया है—[1] बाल लीला के कई पद ज्यों के त्यों सूरसागर में भी मिलते हैं। केवल 'राम', 'श्याम' का अन्तर है।[2] उत्तर काण्ड मे जाकर कृष्ण-लीला के अतिशय अनुकरण के कारण राम का गभीर व्यक्तित्व तिरोहित सा हो गया है। जिस रूप मे राम अन्यत्र उल्लिखित हुए, इसका भी ध्यान कवि को नहीं रहा। 'सूरसागर' के गोपी-कृष्ण की भाँति ही यहाँ राम झूला झूलते हैं, होली खेलते हैं। राम की नखशिख शोभा भी कृष्ण की ही भाँति अत्यन्त अलकृत है।

'कवितावली' के राम 'लोचनाभिराम घनस्याम' (पद १२) हैं। 'राम' और 'रमा-रमण' (पद १६) राम की जोड़ी त्रिभुवन में अद्भुत है। कवि ने इस 'जुगल जोरी' के रूप लावण्य का परम रम्य चित्रण किया है—

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माही।
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाही।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाही ॥ १७ ॥

यह तो बालकाण्ड का प्रसग हुआ। इसके उत्तरकाण्ड के १३३ से लेकर १३५ तक के ३ कवित्त र [illegible]ओं मे कृष्ण लीला का 'भ्रमर गीत प्रसग' व्यजित हुआ है।

'बरवै रामायण' म भगवान् राम का स्वरूपाकण इन शब्दो में किया गया है—

'काम रूप सम तुलसी राम सरूप।
को कवि समसरि करै परै भवकूप ? ११॥'

रामलला नहछू—म कवि ने लोक सस्कार से चचित राम चरित्र का मनोहर पक्ष प्रस्तुत किया। राजा राम के सामन्तीय जीवन का यह एक लोकरजक पहलू है। यहा तुलसी के राम लला एक 'अहिरिनि' के 'उबरनजोवनु' को देखकर मुग्ध हैं। यह दृश्य दान लीला के कृष्ण का स्मारक है। किन्तु, ब्रज के लोक जीवन की निश्छलता का यहा अभाव है। दृश्य मादक है, मोहन नही।

साराश यह कि १६ वी शतीय साधना और साहित्य में कृष्ण की मधुरोपासना का जो ज्वार उमड रहा था, तुलसी के राम भी उससे रजित हो गए हैं।[3] तुलसी ग्रन्थावली के उक्त सर्वेक्षण से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। तुलसी की ईश्वर भावना मे शक्ति, शील के साथ सौदर्य माधुर्य का तत्व रिक्त नही है। तुलसी ने भगवान् राम और सलोने श्याम दोनो की मधुर लीलाओं के प्रति अपनी रुचि प्रकट की है। आगे उनकी कृष्ण लीला का उल्लेख किया जायगा।

---

१ हि० सा०इ०—पृ०१३५ १३६

२ उदाहरणार्थ—सूरसागर, दशम स्कन्ध (ना० प्र० स०), पद-सख्या—१०९, ११७, १५१ की तुलना गीतावली, बालकाण्ड (ना०प्र०स०), पद सख्या-२४, २८, ३० से कीजिए—शब्द शब्द समान हैं।

३ डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' रामभक्ति साहित्य म मधुर उपासना' (पृ० ११५)

कृष्ण गीतावली—गीतावली और कवितावली के राम पर श्याम की सलोनी छवि की परछाई है, तो कृष्ण गीतावली पर कृष्ण का सदेह लीलावतरण।

सभी कृष्णभक्त कवियों की भाँति ही तुलसी ने भी भागवत के कृष्ण को ही अपने काव्य का विषय बनाया। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यदि लोक संग्रह वृत्ति का दबाव होता तो वह भलीभाँति मथुरा और द्वारिका वासी कृष्ण का कर्ममय या बौद्धिक चरित्र लेते। किन्तु वह कृष्ण प्रेम के खरतर प्रवाह का उल्लघन न कर सके। श्याम का सौम्य रूप अन्तत उनके मर्यादावादी शील संस्कार पर जादू डाल ही गया। प्रबन्धकार कवि की यह मुक्तक रचना (कृष्ण गीतावली) कृष्ण प्रेमाश्रयी कवियों को एक भेंट है।[१] इसमें कृष्ण का भावात्मक स्वरूप अपने आप मे परिपूर्ण और कवि की सौन्दय प्रियता का साक्षी है।

कृष्ण गीतावली में कुल ६१ पद हैं। इसके अन्तगत विभिन्न राग रागिनियों का आश्रय लेकर कृष्ण की बाल लीला, रूप माधुरी, गोपी प्रेम और भ्रमरगीत आदि के मनो रम चित्र अकित हैं। इन स्फुट पदो मे इतिवृत्त के निर्वाह के विना कृष्ण के रजक रूप का भावात्मक निरूपण हुआ है। इनम बाल और किशोर भाव वृत्तियाँ उल्लेखनीय हैं। पहले बाल वृत्ति को ही लें।

बाल लीला—कवि बाल प्रकृति का सूक्ष्म द्रष्टा और जीवन्त चितेरा है। पहल ही पद म बालक कृष्ण माँ यशोदा से तोतली बोली मे अपनी भोली जिज्ञासा व्यक्त करते हैं—

पूछत तुतरात बात, मातहि जदुराई।
अतिसै सुख काम ताहि मोहि कहो माई॥
देखत तव बदन कमल, मन अनद होई।
कहै कौन, रसना मौन, जानै कोइ कोई।
सुन्दर मुख निति दिखाउ, इच्छा यै मोरें।
मम समान पुन पुज नाही केहु ओरें॥
'तुलसी' प्रभु प्रेम विवस, मनुज रूप धारी।
बाल-केलि लीला रस, ब्रज जन हितकारी॥

तुलसी की दृष्टि म बाल कृष्ण की यह लीला केलि प्रम के वशीभूत होकर हा ब्रजवासियों के समक्ष प्रदर्शित है। इस अनिर्वचनीय बाल छवि म भी जन कल्याण की भावना सन्निहित है।

तुलसी के बालक राम और कृष्ण म अन्तर है। एक सीधे सादे राजकुमार हैं तो दूसरे नटखट गोपाल। यह नटखटपन तुलसी की धीर गभीर प्रकृति के प्रतिकूल सूर का लेखनी की पकड में अधिक है।

माखनचोर—माखनचोर कृष्ण एक ग्वालिन के घर म घुसकर दूध दही की मटकी

१ अत लेखक डॉ० कामिल बुल्के के इस कथन से सहमत नहीं है कि 'गोस्वामी तुलसी दास की समस्त रचनायें उनके इष्टदेव राम से सबध रखती है,'

(द्रष्टव्य 'रामकथा'—पृ० २८८)

ढुँढ़का आते हैं। ग्वालिन उनके इस 'ललित चरित' का बखान करती हुई यशोदा के पास दौड़ आती है और नाना प्रकार से उलाहना देती है। प्रगल्भ कृष्ण सफाई देते हुए कहते हैं—

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
मया इन्हहिं थानि पर घर की नाना जुगति बनावहिं॥
इन्हके लिए खेलिबो छाड्यो तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस दन उरहनो आवहिं॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि उठि धावहिं।
करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरचि हरावहिं॥
मेरी टेव बूझि हलधर को, सतत संग खिलावहिं।
जे अयाउ करहिं काहू को ते सिसु मोहिं न भावहिं॥

अंतिम पंक्ति का अर्थ डॉ॰ भगीरथ मिश्र ने—'यदि मैं नटखट होता तो वे मुझे स्वयं ही अच्छे नहीं लगते'—यह किया है, जो ठीक नहीं।[१] कृष्ण के तर्क में अपने प्रति जो सफाई या नीतिप्रियता प्रकट हुई है, वह सूर की तुलना में, बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से किंचित् अस्वाभाविक है। इसकी क्षतिपूर्ति एक स्वाभाविक रूप चित्र से हो जाती है।—

हरि को ललित बदन निहारु।
निपट ही डाटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु॥
मंजु अंजन सहित जल-कन चुवत लोचन चारु।

गोवर्धन धारण—अनन्तर इन्द्र दमन का दृश्य है। घनघोर वर्षा से गो, गोकुल, गोपी, ग्वाल सबके सब आकुल व्याकुल हो जाते हैं। नन्दनन्दन कृष्ण गोवर्धन धारण कर इन्द्र का मद चूर्ण कर देते हैं।

किशोर छवि—इसके अन्तर्गत कृष्ण का मोहन रूप, नटवरवेश, त्रिभंगी मुद्रा आदि का अंकन हुआ है। यहाँ कृष्ण गोपियों के चितचोर हैं—

गावत गोपाल लाल नीके राग नट हैं।
चलि री आली देखन लोचन लाहु पेखन ठाढे सुरतरु तर तटिनी के तट हैं॥
मोर चंदा चारु सिर मंजु गुंजा पुंज धरे बनि बन धातु तन ओढे पीत पट हैं।
मुरली तान-तरंग मोहें कुरंग विहग, जो हैं मूरति त्रिभंग निपट निकट हैं॥
अम्बर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्हके ठट हैं।
तुलसी प्रभु निहारि जहाँ तहाँ ब्रज नारि ठगी ठाढ़ी मग लिये रीते भरे घट हैं॥२०॥

उपयुक्त पद में चितचोर कृष्ण की किशोर छवि का साग चित्र प्रस्तुत हुआ है।[२] ऐसे अनेक पद हैं जिनमें कृष्ण की रूप माधुरी पर ग्वालिनों को पिता, पति और पुत्र आदि तक छोड़ते दिखलाया गया है। गोपियाँ कृष्ण के रूप पर पूर्णतः आसक्त हैं। किन्तु फिर भी तुलसी द्वारा गोपी-कृष्ण प्रणय बेलि का कुञ्ज पथ उन्मुक्त न हो सका।

---

१ 'तुलसीदल', (पृ० ६८) तुलसी स्मृति विशेषांक, सितम्बर—१९६२।
२ तुलनीय-सुजान रसखान, पद सं०६५— गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल

प्रवास वियोग—कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। 'कृष्णगीतावली' के १३ वें पद से गोपी उद्धव संवाद रूप में उनका विरह गान हुआ है। कृष्ण विरह में तुलसी का गोपियाँ सूर की गोपियों की नाइ कभी अपनी आँखों को कोसती हैं तो कभी कृष्ण के मर्म पर प्रहार करती हैं। यहाँ विरह का चरम उन्माद है किन्तु कहीं भी ऊहा का स्पर्श नहीं है। गोपियाँ मधुकर को—'नाहिन राग रंगिण रंग चारयो'—कह कर उभय पक्षों में यह कुंठा व्यक्त कर देती हैं। तुलसी ने अपने कृष्ण का रास रचाने का अवसर नहीं दिया।

कुब्जा प्रसंग—इसके ३७ वें पद से कुब्जा प्रसंग प्रारंभ होता है। गोपियाँ कुब्जा द्वारा कृष्ण के ठगे जाने का बयान कर मन की जलन शान्त करती हैं।

अंतिम दो पदों में (सं० ६०, ६१) कवि ने द्रौपदी चीर हरण प्रसंग का चित्रण कर रजक कृष्ण के लोक मंगलकारी स्वरूप का भली भाँति संकेत कर दिया है।

कवि भाव विदग्ध है किन्तु अंततः कृष्ण प्रेम उसके निजी संस्कारों का प्रकृत रमण स्थल नहीं।[1] यही कारण है कि उसका कृष्ण प्रेम भावों की चरम तन्मयता का उत्तरदान न बन सका। यह अंततः उनके कवि कर्म का औपचारिक पहलू या 'बाइ प्रोडक्ट' बन कर रह गया है।

हिन्दी साहित्य की सुदीर्घ परम्परा का तीन चौथाई अंश—काव्य और कलागत दोनों ही दृष्टियों से—कृष्ण काव्य है। इतना होने पर भी, तुलसी का राम-काव्य भावुकता की आँधी में पर्वत की भाँति खड़ा है। 'रामचरित मानस' निश्चय ही 'स्वान्तः सुखाय' लिखा गया होगा। किन्तु, गीतावली 'युगान्तः सुखाय' लिखित है। युग के प्रभाव से ही धीर गंभीर राम धनुष बाण छोड़ बाँसुरी पकड़ते हैं।—[2]

> खेलत बसन्त राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर समाज॥
> सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ। झोलिन्ह अबीर पिचकारी हाथ॥
> बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु। छिरकैं सुगंध भरे मलय रेनु॥
> नर नारि परसपर गारि देत। सुनि हँसत राम भाइन समेत॥

आगे चलकर राममक्ति की जो रसिक साधना चली उसमें राम के नाम पर कृष्ण की शृङ्गार लीला का ही सन्निवेश हुआ। रसिक साधना के आधार ग्रन्थ—शिव संहिता, हनुमत्संहिता, बृहत्कोशल खंड, महारासोत्सव सटीक आदि हैं। इनमें सर्वत्र ही कृष्ण-लीला की प्रतिध्वनि है।

'शिव-संहिता' के आधारभूत तत्वों पर यह भावना द्रष्टव्य है—(१) राम एक मात्र पुरुष, शेष सब स्त्री (२) माधुर्य के बिना पूरी भक्ति असंभव (३) भगवान् में रमणवृत्ति का संचार और सौन्दर्य माधुर्य की कल्पना (४) राधा कृष्ण की भाँति ही सीता राम रस विग्रह तथा लीलार्थ द्विधाविभक्त (५) राम 'रमण' के पर्याय (६) राम शृङ्गार रसावतार। 'लोमश संहिता' में कृष्ण लीला के ही अनुरूप राम लीला के

---

१ माध्यम, फरवरी—१९६६-'तुलसी के कृष्ण और सूर के राम' (पृ० ८७)—श्रीकृष्णकुमार कौशिक

२ गीतावली, उत्तरकाण्ड—२२

निमित्त सखी वर्ग की कल्पना है। श्री हनुमत्संहिता के रसिक राम 'उज्ज्वल नीलमणि' के कृष्ण हैं। इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। 'कोशल खण्ड' की राम-लीला कृष्ण-लीला की प्रतीक है।[1] इसके अनुसार रास लीला तो वास्तव में राम ने की थी। रामावतार म ९९ रास हो चुके थे। एक ही शेष था जिसके लिए उन्हें कृष्ण रूप म अवतार लेना पड़ा।[2] चित्रकूट की भावना वृंदावन म परिणत हो गई और वहाँ के कुंज भी ब्रज के क्रीड़ा कुंज मान लिए गये।

साराश यह कि राम भक्ति शाखा की साधना और साहित्य मे भी मर्यादा का प्रकृत क्षेत्र तिरस्कृत हो गया। आगे चल कर कृष्ण-लीला और उसकी रमण वृत्ति ही यहा आदर्श रूप मे गृहीत हुई। फलत आरम्भिक कठोर नैतिकता ने विद्रोह किया। और इस मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के परिणाम-स्वरूप रामावत सम्प्रदाय रसिक सम्प्रदाय में आकर कृष्ण प्रेम धारा का नूतन संस्करण ही बन गया।

उत्तर युग म कृष्ण के कमनीय स्वरूप ने राम के शालीन स्वरूप को और कृष्ण काव्य के लीला गान ने राम-काव्य के शील निरूपण को पूर्णत आच्छादित कर लिया। समय के प्रभाव से इनके महिमामंडित स्वरूप पर लौकिक शृगार का गोरज छा गया। रीतिकाल के कवियो ने जहाँ कृष्ण को सामान्य नायक बना दिया वही राम भी अपनी लोकोत्तर महिमा खो बैठे।[3] अब वे रसिको की काम वृत्ति के अनुरूप लीला के रति वर्द्धक उपकरणो म सज कर "रसिक लाल" के नाम से प्रस्तुत होने लगे। शक्ति, शील और संयम के इस उतार को देखते हुए (कृष्ण की अपेक्षा) रामचरित अपेक्षाकृत अधिक निस्तेज प्रतीत होता है। इस पथ के अनुसंधाताओ ने[4] कारण तो और भी दिये हैं किन्तु इतना निर्विवाद है कि राम-काव्य की सरणियों का नियमन जितना कृष्ण काव्य ने किया और रामचरित्र के वर्तमान स्वरूप पर जितना प्रभाव कृष्णचरित का रहा उतना किसी और पथ का नही। यह कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप की एक बड़ी विजय है। किन्तु, काव्य में केवल कृष्ण ने ही राम को प्रभावित किया, ऐसी बात नही, खड़ी बोली काव्य म गुप्तजी के रामाश्रयी संस्कार से 'द्वापर' के कृष्ण अनुरंजित हैं। इसकी समीक्षा यथा स्थान होगी।

---

१ डॉ० भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'—रा० भ० सा० म० उ० (पृ० ११४)

२ आचार्य रा० च० शुक्ल—'हि० सा० इ०'—(पृ० १५३)

३ 'रीतिकालीन कविता और शृङ्गार रस का विवेचन' (पृ० १६९)
—डॉ० ब्रजेश्वर चतुर्वेदी

४ डॉ० भु० मि० 'माधव'—'रा० भ० सा० म० उ०' (पृ० ११८)

नवम अध्याय

रीतिकाल की भूमिका मे कृष्ण

अनुच्छेद–१

★शृंगारिक प्रवृत्ति, काव्य धारा और कृष्ण

अनुच्छेद–२

★भक्ति शृंगार के कवि और कृष्ण

अनुच्छेद–३

★स्वच्छन्द शृंगार के कवि और कृष्ण

अनुच्छेद–४

★रीति शृंगार के कवि और कृष्ण

प्रथम अनुच्छेद

शृंगारिक प्रवृत्ति, काव्य-धारा और कृष्ण

भक्तिकाल की अतिशय शृङ्गारिक प्रवृत्तियों का उत्तरदान—

भक्तिकाल सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से भारतीय मध्ययुग का स्वर्णकाल था। सांस्कृतिक आंदोलन के इस युग मे कला के सभी ललित पक्षो का समुचित विकास हुआ। सूक्ष्मता से विचार करने पर यह प्रमाणित हुए बिना नही रहता कि कलाओ के इस सर्वांगीण श्री-सवर्धन म अन्य अवतारो की अपेक्षा लीलापुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का भाव-मधुर चरित्र सर्वाधिक सम्प्रेरक रहा।

भक्ति आंदोलन से नि सृत हि० सगुण भक्ति के अधिकाश वैष्णव सम्प्रदाय कृष्णाश्रित हैं। चतु सम्प्रदायों मे रामानुज का केवल श्रीसम्प्रदाय रामाश्रयी है। इसके अतिरिक्त निम्बार्क सम्प्रदाय के राधा स्वामी कृष्ण, चैतन्य सम्प्रदाय के राधा कृष्ण, वल्लभ सम्प्रदाय के गोपी वल्लभ कृष्ण और बालकृष्ण, हरिवंश सम्प्रदाय के राधा वल्लभ कृष्ण तथा हरिदासी सम्प्रदाय के सखी-परिसेवित कुञ्जविहारी कृष्ण मानवीय मधुर भावनाओ के सार्वभौम प्रतीक हैं। मधुर भावों के उद्रेचक और मानवीय भावो के उद्भावक होने के ही कारण वे इस युग मे सर्वजनसंवेद्य बन बैठे थे। उनके व्यक्तित्व का ठास ऐतिहासिक पहलू हजारो वर्षों के अन्तराल मे इतना भाव तरल हो चुका था कि भावुक भक्तो और सहृदय जना के अन्तमन म वह नानमूर्ति या देवमूर्ति नहीं वरन् प्रेम मूर्ति बनकर मूर्द्धाभिषिक्त हो चुके थे। एक प्रकार से उनके समस्त पौराणिक चरित्र का साधारणीकरण ही मानवीय मनोरागो में हो गया था। यही कारण है कि मध्य युग के लीला नायक ही प्रकारान्तर से कला नायक भी बन गये हैं। ब्रह्मवैवत और श्रीमद्भागवत कृष्णचरित्र के भावात्मक स्वरूप के साधारणीकृत रम काश हैं। इन्ही दो ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी भक्त कवियों को बाल कृष्ण, गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण के कमनीय स्वरूपो को स्वर देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हिंदी भक्ति काव्य श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी, प्रेम लीला और वशी-ध्वनि से अनुगुंजित है। काव्य कला की इस रागात्मक प्रेरणा से समानान्तर रूप मे राधा कृष्ण की प्रेमलीला का मधुर अकन अनगढ पाषाण खण्डो में, मृण्मय मूर्तियों मे, चित्र फलको में तथा नृत्य सगीतादि मे ओत प्रोत हो उठा। कृष्ण की मधुर भावात्मक सत्ता और रागात्मक चरित्र की सार्वभौमिकता के प्रमाण उस युग की सम्पूर्ण सस्कृति-काव्य, सगीत, चित्र, नृत्य, नाट्य आदि रूप हैं। वल्लभ, राधावल्लभादि सम्प्रदाय से सम्बद्ध हिंदी काव्य, रजक स्वरस छन्दयुक्त भावतरल सगीत पद्धति, गीतितत्त्वयुक्त, 'वैणिक' चित्र शैली, मधुर कोमल गीतिनाट्य रास एव ललित सुरभित पुष्पाभरण आदि उसी मोहन कृष्ण के कमनीय चरित्र की मधुर झंकृतियाँ हैं। कला की विराट पट्टभूमि पर दिव्य

सौन्दर्य (कृष्ण) का यह अद्भुत प्रकटन है। हिन्दी काव्य को इस गौरव शीर्ष पर पहुँचाने का श्रेय श्रीकृष्ण चरित्र के इस भावात्मक स्वरूप को ही है। अतः भक्तिकाल श्रीकृष्ण चरित्र के भावात्मक स्वरूप का भी स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इसके अनन्तर इस चरित्र की महिमा की निगति स्वाभाविक ही है। आगे चलकर हम इस सकोच को भली भाँति लक्ष्य कर सकेंगे।

भक्तिकाल की साहित्येतिहासिक सीमा सं० १३७५ से १७०० तक है। इसके बाद सं० १७०० से १९०० की मध्यान्तरित काव्यावधि का ऐतिहासिकों ने रीतिकाल या शृंगार काल की संज्ञा दी है। ऊपर भक्तियुग मे हमने जिन कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की माधुर्यभक्ति का उल्लेख किया, उनमे अनिवार्यत राधा कृष्ण की दाम्पत्यलीला या शृङ्गार क्रीड़ा की ललित व्यंजना बहुलांश मे मिलती है। यद्यपि इस शृङ्गार लीला के मूल म भक्तकवियों की अलौकिक भावनाओं और आध्यात्मिक दृष्टिकोण का अनुशासन है। किन्तु, अपने पारमार्थिक वर्ण्य विषय की व्यंजना के लिए उन्होने जिस लौकिक और स्थूल काम वर्णन प्रणाली (नायिका भेद, परकीयाप्रेम, सभोगादि) का आश्रय ग्रहण किया वह काम नव दुर्विध परवर्ती कवियों के चित्त म तत्तत् नैतिक पृष्ठभूमि का आरोप नहीं कर सका। भक्तिकवियों ने राधा कृष्ण की मधुर लीलाओं का चित्रण भक्तिभाव से किया था। इसे ही उन्होंने मधुर रस या उज्ज्वल रस की संज्ञा दी थी। इस रस के आलम्बन विभाव देवयुग्म राधा और कृष्ण थे। रीतियुग के परिवर्तित ऐहिक वातावरण म भक्ति भाव ही निरस्त हो गया। इस भाव का स्थान रतिभाव ने ले लिया। विभाव वही राधा कृष्ण ही रहे। किन्तु भाव के ही बदल जाने से कवियों ने जिस राधा कृष्ण की प्रेम व्यंजना की, वह अलौकिक प्रेम-नायक न होकर लौकिक काम नायक बन गये। इस प्रकार भाव के बदल जाने से विभाव में भी स्वरूपान्तर हो जाना स्वाभाविक ही था। और, इसके परिणाम स्वरूप जिस रस की उद्रिक्ति हुई वह लौकिक शृङ्गार रस हो गया। उसम भक्तिरस की गम्भीरता दुर्लभ थी।

भक्तों के रूपकावरण को कवियों न हटा दिया या उसे लक्ष्य न कर सके। नन्ददास ने अपनी 'रूपमंजरी' म इसी रूपकावरण की ओर सकेत किया है।[1] विचार करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि गौड, वल्लभ या सखी सम्प्रदाय म वर्णन के रूप म जिस शृङ्गार भावना का ग्रहण किया गया था, उसी को वर्ण्य रूप म आगे के कवियों ने अंगीकार कर लिया। इस प्रकार भक्तिकाल की अलौकिक शृङ्गार-धारा रीति (शृङ्गार) काल मे लौकिक शृङ्गार धारा से सयुक्त हो गई। इस सयोग का परिणाम इतना तो अवश्य हुआ कि राधा कृष्ण शृङ्गार लीला म वर्णना-नैपुण्य या लीला विलास की ऐहिक विचित्रता बिना किसी संकोच भाव के नाना स्वरूपों म चित्रित हुई। किन्तु, नैतिक स्फूर्ति की प्राण धारा ही सूख गई। 'राधिका कन्हाई सुमिरन का बहानो बन गये। इस प्रकार दिव्य भक्ति

१ रूमन में जो उपपतिरस आही। रस की अवधि कहत कवि ताही॥
सो रस जो या कुँवरिन होई। तौ हौं निरखि सुख सोई॥
परम अमृत इकत करि राखे। भिन्न भिन्न करि विरह चाखे॥—नंद दास

के दुदमनीय वेग म जो सचाई थी वह इन बहुवर्णी रूपो मे लक्षित हो गई। भक्ति काल की शृङ्गारिक भक्ति वा शृङ्गार विकास यहा भलीभांति लक्षित भी होता है तो वही वर्णन-प्रणाली के अ तरतम मे वण्य विषय की गरिमा कु ठित और निर्वीय प्रतीत हुए बिना नही रहती। रीतिकाल का काव्य साहित्य ऊपर ऊपर तो कृष्ण काव्य ही प्रतीत होता है किन्तु प्रेम के वे दिव्य युगल सामा य नायक नायिका के पर्याय मात्र बन कर रह गये हैं। यहा राधा और कृष्ण भक्त और भगवान् के रसमय प्रतीक नही हैं। बल्कि वे शृङ्गार रस के आश्रयालम्बन नायक और नायिका हैं।

आधुनिक शोधकर्ताओ ने[१] मध्ययुगीन सास्कृतिक विकास की सरणियो के उद्घाटन क्रम मे जिन ३ ४ प्रवृत्तियों का दोहन किया है उसमे कुछ मुख्य ये हैं—(१) नरात्यवाद, (२) दिव्यजीवन की ओर आकर्षण, (३) कोमल मधुर भावो की प्रचुरता, (४) रुढि-परता तथा शृङ्गारिकता। इनमे उपयुक्त ४ तत्व भक्तिकाल के प्रतिनिधि सास्कृतिक तत्व हैं। शेष एक यानी शृङ्गारिकता की प्रवृत्ति उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल की प्रधानतम प्रवृत्ति है। वैसे रूढिप्रियता भी उसमे कम नही है। किन्तु उसमे औपचारिकता और अश्लीलता की चरम अभिव्यक्ति हुई है। यह शृङ्गारिकता ऐहिक कृतिया मे ही नही, भक्तिमूलक कृतियो म भी परिव्याप्त है। इसी कारण भक्ति काल के कृष्ण यहाँ शृङ्गार के कामनायक बन गये हैं। कहना न होगा कि शृङ्गारिकता की इस सवग्रासिनी प्रवृत्ति का आधार तत्कालीन ह्रासशील साम तवादी समाज व्यवस्था है। इसी साम तवाद का एक प्रबल अर्द्धांश मुगल दरबार और मुसलमानी प्रेम पद्धति भी है। कि तु, दूसरी ओर ब्रज सस्कृति का भक्त्यात्मक महत्त्व अक्षुण्ण है। और ब्रज की देवालयीय परम्परा में आनेवाले भक्तों ने कृष्ण के पूर्णस्वरूप को यथाशक्य, अक्षुण्ण भी रखा है। इस तरह रीतिकालीन शृङ्गारिकता के आधारभूत ३ तत्त्व हम उपलब्ध होत हैं—

(१) भक्ति शृङ्गार, (२) स्वच्छ द प्रेम शृङ्गार, और (३) रीति शृङ्गार।

शृङ्गारिकता की इन त्रिविध प्रवृत्तियों को आत्मसात् कर चलने वाले कवियो के स्वभावत ३ वग हो जाते हैं। प्रथम वर्ग उन कवियो का है जिन्होंने राजनीतिक सामाजिक विषम परिस्थितियो के आवर्त्तों म भी राधा कृष्ण युगल सरकार के प्रेम दरबार को नही छोडा। इन्होंने नित्य निर तर वृ दावन, मथुरादि कृष्ण की लीलाभूमि मे प्रतिष्ठित म दिरों और देवालयीय परम्परा को जीवित रखा। उनकी शृङ्गार लीलाओ मे से अधिकाश मे सखीभाव से कुञ्जलीलाओ आदि का रसात्मक चित्रण प्रस्तुत हुआ। विभि न झाँकियो और ऋतूत्सवो के आयोजन से ब्रज काव्य का श्री सवद्धन हुआ। यह भक्तिकालीन वैष्णव परम्परा का ही एक अनुवा त है। काल की दृष्टि से ये भक्तिपरक समस्त रचनाएँ रीतिकाल के भाभोग म आ जाती हैं। गुण और परिमाण—दोना दृष्टियो से इस परम्परा के सास्कृतिक उत्तरदान और साहित्यिक मूल्य को लक्ष्या तर नही किया जा सकता। रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृत्ति और उसके विभि न स्रोतो म इन कवियो की राशिभूत रचनाओं का अघोर महत्व है। अधिकाश पडितों ने इसके प्रवृत्तिमूलक स्वत त्र महत्त्व की उपेक्षा की है।

१ हि० सा० सा० भू०—डॉ० रा० न० वर्मा—(पृ० १२)

रीतिकाल की सीमा में शृङ्गार और रीति के साथ साथ 'भक्ति शृङ्गार' की प्रवृत्ति का निरपेक्ष स्थान है। आगे इसकी विधिवत् समीक्षा होगी।

हाँ, रीतियुग की विलासी प्रवृत्तियों ने इस 'भक्ति शृङ्गार' की भावना को कितना आक्रान्त किया, यह एक प्रश्न है जिसका हल उनके काव्य में वर्णित कृष्ण के चरित्रानुशीलन से ही स्पष्ट होगा। विलासिता की प्रवृत्ति का अतिरेक चूँकि उस काल का युग धर्म बन गया था इसलिए उसका निवारण कठिन था। अतः भगवान् कृष्ण की अष्टकालीन लीलाओं में उनका कुञ्ज विहार और सखी भाव भावित अन्य रस्यात्मक लीलाएँ इसकी द्योतक हैं। युग के प्रभाव से धर्म भावना की गंभीरता और अध्यात्म-चिन्तन की सूक्ष्मता उत्तरोत्तर निश्शेष होती गई और नैतिक मूल्यों के स्थान पर बाह्य विधि विधानों, अलंकारों, राग और भोगों की प्रचुरता होती गई, यह असंदिग्ध है। इसलिए कृष्णचरित में क्रमशः शृङ्गारिकता और रसिकता की प्रचुरता होती गई। कृष्ण शृङ्गार देव बन गये। शृङ्गार के साथ विलास का गठन हुआ। और वह नाना भोगों ऐश्वर्यों की परिधि में घिर गये। यही कारण है कि इन कवियों के उद्गारों में मानवीय मनोबल को स्फूर्ति और चित्त को प्रशान्ति प्रदान करने की विशेष क्षमता नहीं है। इनका प्रेम जगत् से न्यारा और पूर्णतः एकान्तिक होता गया है। भक्तिकाल के कवियों ने जिस माधुर्य की भाषा में भगवान् की आराधना की, वह भाषा ही यहाँ भाव बन गई है। यही इसकी सबसे बड़ी सीमा है। यह बात इन कवियों की रचनाओं से सिद्ध है।

भक्ति सम्प्रदाय की इस विलासोन्मुख प्रवृत्ति का जन समुदाय पर बहुत स्वस्थ प्रभाव कैसे पड़ सकता था? शेष दो वर्ग-स्वच्छन्द मार्गी और रीतिमार्गी कवि-भी इस जडोन्मुख भक्ति भावना से आक्रान्त हुए बिना न रहे। भगवान् की लीलास्थली में ही जब इतने भोग विलास भड़क उठे तब सामान्य जनता पर उसके प्रभाव की कल्पना सहज है। अतः भक्त कवियों की ऐश्वर्यपरक औसत शिथिलता का चतुर्दिक प्रसार हुआ। साधना की कठोरता में इस शैथिल्य के कारण स्वच्छन्दमार्गी प्रेमी कवियों के लिए यह विशेष आकर्षक और शरणभूमि का काम कर सका। इन कवियों को व्रजाश्रित या कृष्णाश्रित कवि कह सकते हैं। इनके सम्प्रदाय गौडीय राधावल्लभ, सखी या टट्टी सम्प्रदाय हैं। इन्हें मोटे तौर पर सखी भाव प्रधान रसिक सम्प्रदाय भी कह सकते हैं।[१] इनमें वल्लभ सम्प्रदाय के कवि नगण्य हैं। ये या तो कोई प्रिया, नागरी वृन्दावन, लाडली या किशोरी दास हैं या फिर चन्द्रसखी, रूपसखी, ललित किशोरी, ललित मोहिनी, ललित माधुरी, अनन्य अली, सखी अली या अलबेलि अली। सामानुपात कृष्ण की स्वरूप शृङ्गार साधना का स्फुट आभास इन स्त्रीवाची रचनाओं से भी मिल सकता है। मधुरोपासना के लिए प्रत्येक भक्त भगवान् के साथ सखी भाव का आरोप करके अग्रसर होता है। इसी भाव का आरोप रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय में हम देख चुके हैं। संक्षेप में राधाचरण प्रधान भक्ति, कुञ्ज लीला, सखी भाव आदि इस सम्प्रदाय के मूलभूत मर्म हैं। इन वर्ग के प्रमुख कवि नागरीदास, अलबलि अली, चाचा हित वृन्दावनदास भगवतरसिक हरी जी, सहचरिशरण आदि हैं।

१ डॉ० हिन्दी-हिन्दी साहित्य (पृ० २१२)

दूसरे वर्ग के अंतर्गत वे कवि हैं जो या तो व्यक्तिगत या सामाजिक परिस्थितिवश न तो राज्याश्रित ही रह सके और न प्रजाश्रित ही। इनकी राजदरबार और कृष्ण दरबार के बीच द्वंद्वात्मक स्थिति है। इनमे अधिकांश ने अपने जीवन के अंतिम चरण मे कृष्ण दरबार का पल्ला पकड लिया। ये मूलत प्रेममार्गी स्वच्छंद कवि हैं। इन्होने भारतीय कृष्णमार्गी प्रेम धारा और मुहम्मदी प्रेम धारा जिसके सूफी (अलौकिक) और फारसी (लौकिक) दो रूप हैं-- का सुंदर सम्मिश्रण कर अपना स्वच्छंद प्रेम पथ प्रतिष्ठित किया है। वस्तुत ये अधिकांश मे राज दरबार से चलकर कृष्ण दरबार तक आनेवाले प्रेम पथिक हैं। इन्होंने अपनी कृतियां म दरबारी प्रेम को कृष्णप्रेम मे परिणत कर लिया है। इसी से इनका लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेमपयवसायी बन गया है। इसे फारसी प्रेम का हिंदी (कृष्णाश्रयी सगुण भक्ति) प्रेम मे विलय भी कह सकते हैं।

इनका कृष्ण प्रेम अनूठा और अनन्य है। आत्मानुभूति की प्रबलता, प्रेम की प्रवणता और भावना की प्रखरता के कारण इनके कृष्ण प्रेम में 'प्रेम की पीर' का पक्ष प्रबल हो उठा है। इन्होंने कृष्ण के भावात्मक स्वरूप को दूर तक सुरक्षित ही नही रखा, कही कही पल्लवित और पुष्पित भी किया है। कृष्ण का विभावात्मक चित्रण यहाँ प्राय गौण है। विभाव चित्रण गौण होने के कारण इन कवियो को कृष्ण की व्रज लीला के क्रमबद्ध चित्रण का चाव नही रहा। रसखान इस धारा के आदिपुरुष हैं और घनानंद इसके प्रतिनिधि कवि।

भक्तिकाल के सम्प्रदाय मुक्त कवियो म रसखान का विस्तृत उल्लेख हो चुका है। किंतु, रीतिकालीन स्वच्छंद प्रेम मूलक रचयिताओ के अग्रणी रूप म भी उनका साम्प्रतिक उल्लेख अपेक्षित है। रसखान हिन्दी के ऐसे कृष्णभक्त कवि हैं जिन्हे भक्ति काल और रीति काल की मध्यवर्ती शृङ्खला के रूप म स्मरण किया जा सकता है। कृष्णभक्ति की माधुर्य भावना को लेकर जहाँ वह मीरा के समकक्ष पहुँच जाते हैं वही अपने स्वच्छंद प्रेमोमग और भावुकता के कारण घनानंदादि स्वच्छंद मार्गी प्रतिनिधि कवियो के अग्रणी भी बन जाते हैं। व्रजेश की स्फुट लीलाओ, व्रज भूमि के प्रति असीम ममत्व और राधा प्रेम की महिमा के यशोगान म वह उच्च कोटि के भक्त कवि हैं और नायिकाओ की अदाओं, खण्डिताओ की ऐहिक उक्तियां विपरीत रति की उद्दामताओ और प्रेम मे मन के साथ साथ तन सयोग की निबंध स्वीकृति के कारण उनपर रीति प्रवृत्ति की स्पष्ट छाप भी देखी जा सकती है। वे केवल भक्त ही नही, प्रेमी भी हैं। उन्हे असल मे प्रेमी भक्त ही कहा जा सकता है। अत उन्हें भक्तिकाल और रीतिकाल का विष्कम्भक कवि मानना ज्यादा समीचीन प्रतीत होता है। रीतिकाल के स्वच्छंद मार्गी कवियो के अगुआ के रूप मे उन्हे परिसीमित कर देना उचित नही। उनका युगांतरकारी ही नहीं, युगान्तकारी महत्त्व भी है। कृष्ण के 'सुंदर','जान', छैल और 'लला' आदि पर्याय उस परवर्ती दृष्टिकोण के परिचायक है। फिर, कृष्ण लीला वर्णन म पदो के स्थान पर 'कवित्त सवैया' का प्रयोग भक्त कवियों स उनका प्रस्थान भेद सूचित करता है। उनके 'जान' का घनानंद के 'सुजान' (कृष्ण-सम्बोधन) से सीधा सम्बन्ध है।

इस वर्ग के अन्य कवियों में आलम, ठाकुर, बोधा आदि आते हैं। इनमें कृष्ण प्रेम देव रूप में चित्रित हुए हैं।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत रीतिकाल के राज्याश्रित कवि हैं। इन दरबारी कवियों में शृङ्गार सम्बन्धी प्रवृत्यठ दृष्टिकोण की भाँति ही कृष्ण के सम्बन्ध में भी कोई सम्भ्रमात्मक दृष्टिकोण नहीं है। कृष्ण उनके शृङ्गार नायक हैं। कहीं कहीं तो उनकी स्थिति इससे भी घटिया तक हो गई है जब उन्हें कवियों के आश्रयदाता कामुक सामन्तों के पर्याय रूप में उल्लिखित किया गया है। आगे के सुकवियों की रीझ उनके कवित्व की प्रथम कसौटी है। इस कसौटी पर शृंगार की वाग्धारा के पिघल जाने पर राधा या कृष्ण 'सुमिरन को बहानो' बना लिये गये हैं। यहाँ भगवान् का नाम स्मरण उनके विशुद्ध अन्त करण की गहन वृत्ति नहीं है, परिपाटी परिवहन मात्र है। परम्परा का स्मरण दो रूपों में किया जाता है—परिपाटी परिवहन के निमित्त और विगत के आधार पर आगत के पदचाप-श्रवण और मार्गनिर्धारण के निमित्त। पहली शवसाधना है, दूसरी शिव साधना। कहना न होगा कि रीति कवियों की कृष्ण साधना शव साधना है भक्तिकालीन कवियों की शिव साधना नहीं।

रीतिकवियों के राधा कृष्ण लौकिक रतिभाव के आश्रय और विषय—नायक और

नायिका माने गये हैं। अधिकांश विद्वानों ने उनके कृष्ण वर्णन का सामान्य शृंगार का आलम्बन विभाव माना है। किन्तु ध्यान से देखने पर ऐसा लगता है कि उन्होंने कृष्ण या कृष्ण लीला के अन्य अनेक रति वर्द्धक उपकरणों का प्रयोग केवल रूढि के रूप में कर प्राकृत नायक की चेष्टाओं को उद्दीप्त भर किया है। उनके कृष्ण और उनकी कृष्ण लीला, रति स्थायी के एक रूढ उद्दीपन एवं मानसिक अनुभाव या अधिक से अधिक एक चिर प्रचलित सचारी हैं। उनके कामनायकों की ऐहिक चेष्टाओं या सभोग क्रीडाओं पर इनके नाम या लीला स्मरण से पौराणिकता की मुहर मार दी गई है। बस! इससे अधिक उसका और कोई आन्तरिक प्रयोजन नहीं है। इसे ही डॉ० नगेन्द्र ने उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता का नाम दिया है। हाँ, व्यापक जन समुदाय का आश्वस्त करने के लिए इसे एक 'सामाजिक कवच भी कह सकते हैं। इसकी परम्परा विद्यापति, चण्डीदास तथा राधा प्रधान अन्य सम्प्रदायों की शृंगार साधना, परकीया प्रेम और नायिकाभेद की परिपाटी में सुरक्षित है। रीतिकाल प्राकृत काव्य काल है। अत उसकी प्रणालियों में बहने वाली शृङ्गार की वरुणा का जल भी प्राकृत जन काव्य से हो सचित होकर आया है। सैकडों वर्षों के जन काव्य और शृंगारी मुक्तक इसके उद्दाम उद्गम स्रोत हैं। इन्होंने इन्हीं मुक्तकों को संस्कृत रीतिशास्त्र के लक्षणों की क्यारियों में उदाहरण रूप में रोप दिया है। हाँ, इन शृङ्गारी रूपों का भी अपना अलग महत्त्व है। इस धारा के प्रतिनिधि कवि केशव, बिहारी, मतिराम, सेनापति, पद्माकर और ग्वाल हैं।

ऊपर शृङ्गारिकता के ३ स्वरूपों के आधार पर जिन तीन प्रवृत्तियों, साहित्यिक रचनाओं और उनके रचयिताओं के वर्गों का निर्देश किया गया, इसी के आधार पर उनकी प्रेरक परिस्थितियों और साहित्यिक परम्पराओं का आकलन किया जा सकता है। उपर्युक्त

वर्ग निर्देश कृष्णचरित्र के भावात्मक स्वरूप को ध्यान म रखकर ही किया गया है। इसका मक्षिप्त क्रम सकेत पुन कर देना आवश्यक है।

उत्तर मध्यकाल (स० १७००-१९००) को रीतिकाल या शृङ्गार काल कहा गया है। दोनो मे विशेष अन्तर न होने पर भी जहाँ 'रीति' मूलत काव्य निर्माण प्रक्रिया का बोधक है, वहा 'शृगार' उसके स्थापत्य म प्रवहमान उत्तर मध्ययुग की मवमा य साहित्यिक प्रवृत्ति है। किन्तु, माथ ही भक्ति शृङ्गार के रूप म उसके सास्कृतिक मूल्य को भी लक्ष्या तर नहीं किया जा सकता।

इस काल में की गई रचनाओ के परिमाण और उनमे अन्तर्निविष्ट विशेषताओ के सूक्ष्म आकलन के परिणामस्वरूप उनके ३ वग किये गये हैं—(१) भक्ति शृङ्गार, (२) स्वच्छन्द प्रेम शृङ्गार और (३) रीतिबद्ध शृङ्गार। रचनागत विविधता और उनके बाह्य लक्षणो की दृष्टि से भक्ति, स्वच्छन्दता और रीति बद्धता ये ३ पृथक् तत्त्व हैं किन्तु, सबों म शृङ्गार की प्राण धारा का सचार हो रहा है। यहाँ शृङ्गार कैसा है अर्थात् किस कोटि का है, इसके अन्वीक्षण और परीक्षण के सदभ मे ही कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप स्पष्ट होता जायगा।

इस वर्गीकरण के क्रम को देखने पर ही यह आभास मिल जाता है कि भक्तिकाल की उत्तर सीमा से लगने वाली रीतिकाल की पूर्वी सीमा के आदि चरण मे भक्ति की शृङ्गारिक प्रवृत्तियो की छाप सर्वाधिक है। और उसके शृङ्गार वणन पर भक्तिकालीन शृङ्गार वणन का प्रभूत प्रभाव है। स्वभावत इसी से प्रथम प्रवृत्ति के अन्तगत भक्ति-शृङ्गार को ग्रहण किया गया है। इस परम्परा की रचनाओ पर उत्तर भक्तियुग की रमात्मक साम्प्रदायिक कृतियो की छाप है।

इस धारा मे कृष्ण का स्वरूप सखी परिसेवित कुञ्जविहारी कृष्ण का है। यहाँ कृष्ण साम्प्रदायिक भक्ति भावना के आलम्बन और सखीभाव से आराध्य हैं। दूसर खण्ड मे कृष्ण का प्रेमदेव, भावदेव स्वरूप प्रकट हुआ है। यहा वह साम्प्रदायिक परम्परा से पूणत मुक्त आदश प्रेम के आधार हैं। यह अलौकिक लौकिक भावो का मिलन बिन्दु है। और, तीसरे खण्ड म उनका मानवीकरण कर दिया गया है। वह सामान्य शृङ्गार के नायक बन गये हैं। पहली धारा के कृष्ण रसिका (भक्तो) के कृष्ण हैं, दूसरी धारा मे वह प्रेमियो के कृष्ण हैं और तीसरी धारा म कवियो के कृष्ण। रसिका के कृष्ण लीलैश्वय मण्डित भगवान् हैं। प्रेमियों के कृष्ण आदश प्रेम के विशुद्ध भावात्मक प्रतीक हैं। और, कवियो के कृष्ण रति, कामादि के भोक्ता नायक हैं। अपने भगवान् रूप म वह माधुय के अलौकिक स्वरूप के आस्वादक हैं, प्रेय रूप मे विशुद्ध प्रेम के भाव और नायक रूप म मामल सौन्दय के भोक्ता।

द्वितीय अनुच्छेद

भक्ति-शृंगार के कवि और कृष्ण

पृष्ठभूमि—रीतिकाल के भक्त कवियों के कृष्ण-स्वरूप के विश्लेषण के लिए सर्वप्रथम उनके पौराणिक विश्वास, प्रेमिक दृष्टिकोण और साम्प्रदायिक मान्यताओं पर विचार कर लेना आवश्यक है। इस काल की परिधि में अन्तर्भुक्त होने वाले प्रमुख भक्त कवियों के मूलतः ३ ही वैष्णव सम्प्रदाय हैं—(१) चैतन्य सम्प्रदाय (२) राधावल्लभ सम्प्रदाय और (३) हरिदासी अथवा टट्टी सम्प्रदाय। इसके अतिरिक्त, फुटकल रूप से निम्बार्क सम्प्रदाय तथा वल्लभ सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त किये जाने योग्य कुछ कवि भी हैं। किन्तु, इन सभी सम्प्रदायों में उत्तरोत्तर सखी भावना की प्रमुखता हो जाने के कारण सखी भाव प्रधान सम्प्रदाय ही साम्प्रतिक विवेचन के मुख्य आधार हैं। अतः निम्बार्क और वल्लभ मतान्तर्गत पड़ने वाले कवियों की कृष्ण विषयक मनोभूमियाँ भी उक्त साम्प्रदायिक मतों के सिंहावलोकन क्रम में स्वयमेव उद्घाटित हो जायेंगी।

ऊपर, भक्तिकाल के वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण स्वरूप के उद्घाटन क्रम में उक्त मतों और तद्मतावलम्बी कवियों की रचनाओं के दृष्टान्त बहुश: प्रस्तुत हो चुके हैं। अतः यहाँ अति संक्षेप में भक्ति शृङ्गार के प्रेरक तत्त्वों पर पुनः प्रकाश डाला जाता है।

१६ वीं शतीय कृष्णभक्ति के आन्दोलन में निम्बार्क, विष्णुस्वामी, चैतन्य, वल्लभ, हरिवंश आदि आचार्यों ने गोपी-कृष्ण और राधा कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं के आश्रय में ही अपने पुराणानुमोदित दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिष्ठापन किये थे। मूल भावधारा राधा कृष्ण प्रेम-व्यंजना ही थी किन्तु आचार्यों के सैद्धान्तिक ऊहापोह से उसमें दर्शन का ज्योतिमय दीप्ति आ गया। इन आचार्यों ने कृष्ण के भावात्मक स्वरूप के लिए जहाँ भागवत, ब्रह्मवैवर्तादि पुराणों का आधार लिया वहाँ राधा भावना की पूर्ण स्फूर्ति उन्हें जयदेव, विद्यापति, चण्डीदासादि भाषा कवियों की राधा कृष्ण शृङ्गार परक रचनाओं से मिली। इस पौराणिक भक्ति और काव्यगत शृङ्गार को इन्होंने अपनी प्रतिभा के योग से रस शास्त्रीय व्याख्या प्रदान कर पूर्ण रसात्मक कर लिया। इस उनके रागात्मिका भक्ति विषयक साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के स्थापन में पुराणों की भावप्रवणता और कवियों की शृङ्गारिकता का मणिकांचन संयोग है। तद्विषयक स्थापनाओं की विस्तृत समीक्षा भक्तिकाल के प्रसंग में हो चुकी है। अतः यहाँ कुछ मूलभूत भावधाराओं का संकेत ही पर्याप्त होगा। नीचे (क) पौराणिक भक्ति शृङ्गार (ख) काव्यगत भक्ति-शृङ्गार और (ग) रसशास्त्रीय भक्ति-शृङ्गार की प्रेरक परम्परायें द्रष्टव्य हैं।

(क) पौराणिक भक्ति शृंगार—गोपी-कृष्ण शृङ्गार धारा के आदि उद्गम पुराण हैं। इन अष्टादश पुराणों में हरिवंश, विष्णु, भागवत, पद्म और ब्रह्मवैवर्त पुराण मुख्य हैं। इनमें राधा-कृष्ण की शृङ्गार-क्रीड़ा की पुष्कल कथायें व्यंजित हैं। विभिन्न पुराणों में

वर्णित कृष्ण और गोपियो के शृङ्गारिक प्रसग पुराण प्रकरण म विस्तार से विवेचित हो चुके हैं। इन प्रसगो का भक्ति-शृङ्गार के कवियों पर पूरा प्रभाव पडा। हिन्दी कृष्ण-काव्य की राधा कृष्ण और गापीकृष्ण लीलाओ मे शृङ्गारी वर्णनो की प्रचुरता है, तथापि जितनी नग्नता और निलज्जता हरिवश में मिलती है, उतनी उन वर्णनो म नहीं मिलती। हरिवश मे श्रीकृष्ण को विष्णु अवतार कहन के अतिरिक्त उसमे किसी प्रकार की अलौकिकता की व्यजना नहा की गई, वरन् उनके समस्त क्रिया कलाप सवथा पार्थिव और घोर ऐन्द्रिय रूप मे उपस्थित किये गय हैं सूरदास की खण्डिता गोपियो के दक्षिण नायक कृष्ण का किंचित् रूप यहाँ मिल जाता है, परन्तु हरिवश के कृष्ण के इस काय को सूरदास के दक्षिण नायक कृष्ण की भाति भक्तिपरक आध्यात्मिक व्याख्या नहीं की जा सकती।[1]

अ य पुराणो मे भी उत्तरोत्तर शृङ्गारिकता की उत्तान वृत्ति पल्लवित हुई है।[2] उक्त विवरण से सिद्ध है कि पुराणकारो न कृष्ण गोपी और राधा को लेकर उनके परस्पर सयोग वियोग, स्वीयत्व परकीयत्व, कुञ्ज लीला और रास लीला से सम्बद्ध अनेकानेक शृङ्गारिक प्रसगो की विस्तृत उद्भावनाएँ की। परवर्ती युग की कृष्ण विषयक भाव धारा पर इनका व्यापक प्रभाव पडा। राधा और कृष्ण का जन जीवन की प्रेमभक्ति का आलम्बन बनाने वाले निम्बाक, चैतन्य वल्लभ आदि आचार्यों ने कृष्ण की व्रज लीला और उनके भावात्मक स्वरूप के आश्रित अ य लीलोपादानो को अपने मत मे नित्य स्वरूप में सम्मान प्रतिष्ठापित किया। इन्होने भगवान् के प्रेम और नित्य 'गालोक' मे निर तर हो रही उनकी शृङ्गार लीलाओ के तटस्थ आस्वादन को ही परम भक्ति का पुनीत लक्ष्य निश्चित किया। फलत सखीभाव की उपासना को प्रोत्साहन मिला और कृष्णभक्ति के नैष्ठिक तत्वों में इसका शनै शनै प्रवेश होता गया। आगे चलकर मात्राधिक्य से इमम शृङ्गार के अतिचार का अशेष प्रसार हुआ। और कृष्ण की व्रजलीलाएँ उत्तरोत्तर सकुचित होती हुई कुञ्ज से निकुञ्जो तक मे परिसीमित हो गयी। रीतिकाल के भक्त कवियो ने इसी पृष्ठभूमि पर भगवान् कृष्ण की स्मरण शृङ्गार लीलाओ का रसात्मक चित्रण प्रस्तुत किया। इमम सखियो की भीड बढ गयी और लीलापुरुषोत्तम का वह दिव्य स्वरूप ओझल हो गया। लीलापुरुषोत्तम कृष्ण राधा ठकुरानी के अनुहार मनुहार मे ही अतिव्यस्त देखे जाने लगे। कवियो ने भी राधा पदचिह्न पथानुसारी कृष्ण का ही केलि कीर्तन और अभिवन्दन किया।

(ख) काव्यगत भक्ति-शृंगार—उधर पुराकाल से जन जीवन मे पल्लवित-पुष्पित होने वाली कृष्ण भक्ति से प्रेरणा लेकर अनेक सिद्ध वाणी के कवियो ने राधा और कृष्ण के पौराणिक व्यक्तित्व को मनोरम स्वरूप मे ढाल कर अपने गीतो मे प्रस्तुत किया।

---

१ डा० व्रजेश्वर वर्मा पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ-('हरिवश और हिन्दी वैष्णव काव्य'—(पृ० २६०–२६१)

२ द्रष्टव्य-हि० भक्ति शृङ्गार का स्वरूप (पृ० ४२–४३)-डॉ० मिथिलेश कान्ति।

उनकी कल्पना और भावुकता के योग से राधा कृष्ण की शृङ्गार लीला में अनेक नवीन एवं ममस्पर्शी प्रसंगों, केलियों और परिस्थितियों की उद्भावनाएँ हुई और इस प्रकार कृष्ण के शृङ्गारिक व्यक्तित्व और भावात्मक स्वरूप को नवस्फूर्ति तथा व्याप्ति मिली।

११ वीं–१२ वीं शती में दक्षिण देशीय लीलाशुक बिल्वमंगल ठाकुर और पूर्वी प्रदेश के महाकवि जयदेव ने अपने अपने काव्यों में राधा कृष्ण की विलास कथा के सजीव दृश्य अंकित किये। इन्होंने हरि स्मरण के व्याज से वस्तुतः नागर मन की विलासकला के कुतूहल को ही उद्दीप्त किया और रति की अनेकानेक कामशास्त्रीय विधियों के दृष्टान्त प्रस्तुत किये। जयदेव के 'हरि स्मरणे' और रीति कवियों के 'राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो' में परिवेशभिन्नता के अतिरिक्त और अन्तर ही क्या है! इसकी मध्यवर्ती कड़ी के रूप में रूपगोस्वामीकृत 'भक्ति रसामृत सिन्धु' के उस प्रस्तावना श्लोक को याद किया जा सकता है जिसमें उन्होंने 'जगन्मंगल' और 'सुहृदा प्रमोद' की समवेत कामना की है।[१]

गीतगोविन्द की शृंगारकेलि और गीतिमाधुर्य से स्फूर्ति प्राप्त कर १४ वीं शतीय जनवाणी के सरस कवि विद्यापति और चण्डीदास ने कृष्ण के भावात्मक चरित्र की प्रबल सहधर्मिणी राधा की प्रेमोन्मद प्रतिमा गढ़ी और विरह मिलन के छाया प्रकाशी रंगों में राधा कृष्ण प्रेम को जीवन्त, गत्वर और मांसल भंगिमाएँ प्रदान की। किन्तु इन मांसल भंगिमाओं से व्रजेश्वरी राधा दूर तक अछूती रही। व्रज के सिद्धवाक कवि सूर ने राधा कृष्ण प्रेम में आन्तरिक गभीरता, सहजता और स्वकीयत्व का सुखद संयोग किया। और, इस प्रकार व्रज की वैष्णवी साधना ने अपनी प्रेमजनित निश्छल गभीरता और गौडदेश की चैतन्य साधना ने अपनी प्रेम विचित्रता के संयोग से राधा कृष्ण शृङ्गार के अन्तरंग और बहिरंग का पूर्ण निर्माण किया जिससे भक्ति और प्रेम का सम्पूर्ण परिपाक हुआ। इस सम्पूर्ण परिपाक का परिणाम ही राधा कृष्ण लीला और उसकी प्रेम लक्षणा भक्ति, परकीया प्रेम और दाम्पत्य रति सब एक साथ हैं। उत्तरवर्ती काल में जिस सखी सम्प्रदाय का प्रभुत्व बढ़ा उसमें स्वामिनीभाव और सहचरी भाव के रूप में उपयुक्त दोनों परकीयाभाव और दाम्पत्यभाव की—साधनाओं का मणिकांचन स्वरूप आसानी से लक्ष्य किया जा सकता है।

(ग) रसशास्त्रीय भक्ति शृंगार—उपयुक्त कृष्ण केलि की पौराणिक शृङ्गार-धारा और काव्य शृङ्गार धारा को कामशास्त्रीय नायिकाभेद और काव्यशास्त्रीय रसधारा से संयुक्त करने का स्तुत्य प्रयत्न गौडीय वैष्णवाचार्यों में श्री रूपगोस्वामी ने अपने 'भक्ति रसामृत सिन्धु' और उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थों में किया। स्थूलतः भक्तिरसामृतसिन्धु' काव्य शास्त्रीय रस ग्रन्थ और उज्ज्वलनीलमणि कामशास्त्रीय नायिकाभेद विषयक ग्रन्थ है। प्रथम में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर की भक्ति रस के अन्तर्गत स्थापना करते हुए मधुर या शृङ्गार को रसराट् की सत्ता से विभूषित किया गया है। दूसरे ग्रन्थ का विषय शृङ्गार है जिसे उज्ज्वल रस कहा गया है। इसी शृङ्गार के विभावपक्ष में आलम्बन के अन्तर्गत आश्रय और विषयरूप नायक नायिका भेद का सुविस्तृत अंकन मिलता है। यही

१ रूपगोस्वामी—'भक्तिरसामृत सिन्धु'—सामान्यभक्तिलहरी—६

यहीं प्रथम बार कृष्ण नायक और राधा तथा गोपियाँ नायिका के रूप में चित्रित की गई। यद्यपि 'उज्ज्वल नीलमणि' से प्रत्यक्ष प्रभावित तत्काल किसी नायिकाभेद परक ग्रन्थ के प्रणयन की सूचना नहीं मिलती है किन्तु ब्रजभाषा के उदात्त नायिका भेद परक छिटफुट ग्रन्थों के प्रणयन का यही काल पड़ता है। जिन ग्रन्थों पर यह परोक्ष प्रभाव संभावित है उनमें सूर की 'साहित्यलहरी', नन्ददास की 'रसमंजरी' और 'रूप मंजरी', केशवदास की 'रसिक प्रिया' ली जा सकती हैं।

उज्ज्वल नीलमणि में २ प्रकार के आलम्बन हैं—पतिकृष्ण और उपपति कृष्ण। इनमें तत्तत् आश्रयों के संयोग से परकीया और स्वकीया रति की विवेचना कर उपपति विषया परकीया की प्रियता रति से निष्पन्न शृंगार या माधुर्य रस में ही आह्लादजनित रस की परमोच्च अवधि स्वीकृत की गयी है। इसकी लोकविरुद्धता और हेयता का परिहार कृष्ण और गोपियों के अलौकिकत्व से कर दिया गया है। तथा कृष्ण के रसावतरण के तथ्य रूप में भक्तजनों का आनन्दरस का पान कराने वाले हेतु का उल्लेख किया गया है।

श्रीकृष्ण विषयक इस उपपति भाव की सर्वोपरि महत्ता नन्ददास ने स्वीकार की। उन्होंने अपनी 'रूपमंजरी' में इसे—'परम प्रेमपद्धति'-(प० २, पृ० ११७) की संज्ञा दी। साथ ही उन्होंने चेतावनी दे दी—'गरल अमृत इकग करि राखे। भिन्न भिन्न करि बिरलै चाखे।' (प० १६) अर्थात्, इस जार भाव की भगवद्रति में गरल अमृत एकत्र हैं। बिरले ही इसका तात्विक आनन्द लाभ कर सकते हैं। यहाँ स्पष्टतः उनका संकेत 'सखी भाव' की ओर है। नन्ददास के इस सिद्धान्त में गौडीय वैष्णवों का परकीया प्रेम और रसवादियों की सखी-साधना समन्वित हो गई हैं। किन्तु, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया, गौडीय वैष्णवों के अतिरिक्त ब्रज के परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों में सखी साधना को सर्वोपरि महत्त्व देते हुए परकीया प्रेम को स्वामिनी प्रेम में अन्तर्लीन कर लिया गया है। वल्लभ सम्प्रदाय में बाल भाव के अतिरिक्त भगवान् कृष्ण के अन्य भावात्मक स्वरूपों के साथ तादात्म्य सम्बन्ध से भक्ति करने का विधान था। विट्ठलनाथ के आचार्यत्व में इसमें गौडीय वैष्णवों के माधुर्यभाव, जारभाव और सखीभाव का पर्याप्त समावेश हुआ। कृष्ण के भावात्मक स्वरूप की लीलाभूमि व्रजमण्डल या गोकुल तक सीमित कर दी गई। किशोर वय कृष्ण ही पूर्ण आलम्बन हुए। उनकी किशोर लीलाएँ उद्दीपन हैं। सखा, सखी आदि आश्रय हैं। उनकी काम चेष्टाएँ अनुभाव हैं। भक्तहृदय की स्वच्छा रति स्थायी है। यही कृष्णविषया रति परिपुष्ट होकर शृङ्गार रस राट बन जाती है। इस प्रकार, उत्तरवर्ती युग में भक्ति-शृङ्गार की रस शास्त्रीय भूमिका परिपुष्ट होकर प्रकट हुई।

रीतिकाल के प्रतिनिधि आचार्य कवि केशवदास ने नायिकाओं का वर्णन जगनायक श्रीकृष्ण की नायिकाओं के रूप में किया—'जगनायक की नायिका बरनो केसवदास।' 'रसिकप्रिया' हिन्दी अथवा व्रजभाषा का पहला ग्रन्थ है जिसपर 'उज्ज्वल नीलमणि' के समन्वित दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। रूप गोस्वामी का 'उज्ज्वल नीलमणि' वास्तव में एक साम्प्रदायिक ग्रंथ है। अतएव साहित्यिक ग्रन्थों पर उसका प्रभाव केवल एक सीमा तक ही पड़ सकता था। और, वह सीमा इसके अतिरिक्त और क्या हो सकती थी

कि नायिका भेद के शास्त्रीय ढाँचे में कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं का समावेश हो गया। केशव के परवर्ती कवियों ने इसी रूप में इसके प्रभाव को ग्रहण किया।[1]

यह कहना न होगा कि इस रसशास्त्रीय परिपाटी के प्रवेश का प्रभाव न केवल रीतिकालीन भक्त कवियों पर अपरिमित रूप में पड़ा वरन् उससे रीतिबद्ध कवियों को भी सीधी प्रेरणा मिली।

कृष्णभक्त कवियों ने भगवान् की प्रेम-लीला को ही अपने काव्य का विषय बनाया। प्रेम लीला की प्रधानता से भगवान् की प्रेमिकाओं के रूप, गुण, शील, वय आदि अनेक प्रवृत्तियों की कल्पना हुई। और उन्हें रिझाने के लिए भगवान् कृष्ण को भी बिसातिन, मनिहारिन, जोगिन, तमोलिन, मालिन, वैद्य आदि बहुरूपिया बनाना पड़ा। चाचा हित वृन्दावन दास की 'छद्मलीला', गुणमंजरीदास का 'युगल छद्म' आदि कृष्ण के बहुरूपियापन के प्रमाण हैं। इनका विस्तृत निर्देश आगे किया जायगा।

इन विविध भावधाराओं के संगम पर माधुर्य भक्ति के जो रसवादी सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुए, वे हैं—(१) चैतन्य सम्प्रदाय, (२) राधावल्लभ सम्प्रदाय और (३) हरिदासी सखी अथवा टट्टी सम्प्रदाय। उत्तर मध्यकालीन ब्रजभाषा काव्य में इन्हीं सम्प्रदायों का विकास हुआ। अतः इन सम्प्रदायों की रचनाओं के आधार पर कृष्णचरित के भावात्मक स्वरूप के निरूपण से पूर्व इनकी साम्प्रदायिक मान्यताओं का एक बार पुनः स्पष्टीकरण अपेक्षित है।

(१) चैतन्य सम्प्रदाय—संक्षेप में, गौड़ीय मत की ये विशेषताएँ हैं—(१) राधा-कृष्ण युगल मूर्ति और उनकी रति रस-स्वरूपोपासना, (२) राधा कृष्ण शृङ्गार-लीला की विस्तारिणी गोपियों की सहचरी रूप में साधना, (३) परकीया प्रेम की महिमा, (४) ह्लादिनी राधा की महाभाव स्वरूपता में परम प्रेम की चरमावधि, (५) रसेश्वर कृष्ण की लीलाभूमि व्रज की अलोकसामान्य महिमा तथा (६) अन्य अवान्तर भावों और रसों की अपेक्षा लीला रस की प्रधानता।

आवधुओं के आश्रय में नित्य निरन्तर चलने वाली वृन्दावन की राधा कृष्ण लीला के २ रूप हैं—प्रकट और अप्रकट। द्विभुज मुरलीधर कृष्ण की राधा के साथ नित्य लीला होती है। उनके अन्य परिकर प्रकट अप्रकट रूप में वर्तमान रहते हैं। संक्षेप में, चैतन्यमत के ये ही कुछ प्रमुख लीलातत्त्व हैं जिनके आदर्श पर चैतन्यमतावलम्बी ब्रजभाषा के माधव दास, रामराय, सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट आदि भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण की माधुर्य लीला का सुमधुर अंकन प्रस्तुत किया।

इस मत के रीतिकवियों ने सखीभाव से युक्त होकर निकुंज में निरन्तर केलि करने वाले राधा कृष्ण युगल को अपना इष्ट बनाया और सिद्ध सखियों की भावना कर युगल किशोर की शृङ्गार लीला का रसात्मक प्रसार किया। इन मधुररसोपासक कवियों में श्री वल्लभरसिक, वृन्दावनचन्द्र, मनोहरराय, रामहरि, हरिदेव, गुणमंजरीदास, किशोरी दास आदि उल्लेखनीय हैं।

---

१ डॉ० राकेश गुप्त—'ब्रजभाषा का नायिका भेद' (पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—पृ० ४०७)

(२) राधावल्लभ-सम्प्रदाय—यह सम्प्रदाय राधा कृष्ण माधुर्यभक्ति के क्षेत्र मे व्रज का विशुद्ध रस सम्प्रदाय है। राधा और कृष्ण रसास्वादन के निमित्त ही ब्रह्म के २ आविर्भूत स्वरूप हैं। इनकी नित्य लीला वृदावन में निकुंज मे हुआ करती है। किशोर कृष्ण इस लीला के विषय और राधा आश्रय हैं। इनका पारम्परिक सम्बन्ध ही 'हित' अर्थात् 'प्रेम' है। इस महाहित मे तल्लीन होना ही रस भक्ति है। इस रससाधना मे साधक या सखी भी किशोरी ही है।

किशोरी रूप की इस साधना मे स्वभावत राधा श्रेष्ठत्व की अधिकारिणी हैं। रसेश्वर कृष्ण की प्रवणता कुंजलीला तक ही सीमित है जिसमे सखियो का सयोग है। किन्तु, उससे भी निभृत निकुन्ज लीला जिसमे राधा और कृष्ण को छोड दूसरी किसी सखी का भी प्रवेश निषिद्ध है राधा चरण प्रधान है। सक्षेप मे, राधा चरण प्रधानता, निकुन्ज केलि, सखियों द्वारा दम्पति की खवासी, महाप्रसाद की उपलब्धि, विधि निषेध की अस्वीकृति ये ही इस सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धात हैं। यह मत शुद्ध भावात्मक है, बौद्धिकता को यहाँ प्रश्रय नही। इस मधुरोपासना के अनुरागी भक्त सवप्रथम राधाचरण में अनुराग करते हुए उनके उस अद्भुत रूप की झाँकी की कामना करते हैं जिसमें प्रेम, रस, सौंदय, लावण्य और केलि की मधुरिमा विद्यमान है। राधा के प्रति साधक मे इस प्रकार के अनुराग से कृष्ण प्रसन्न होते हैं और बदले में कृपापूवक अपनी प्रियतमा का प्रिय जानकर उनका प्रेमालिंगन करते हैं। इस प्रकार, इस सम्प्रदाय में मधुररस का आस्वादन करने के लिए सखीभाव को प्रधान माना गया है। सखी या सहचरि को स्वयरति की कामना नही रहती वरन् राधा माधव की रति केलि दशन की भावना ही होती है। इस कुन्ज केलि में प्रयुक्त सभी उपादान नित्य और रसमय हैं।[१]

इस सम्प्रदाय के प्रतिनिधि भक्त हित हरिवश, ध्रुवदास, दामोदर दास, हरिराम व्यास आदि हैं। इन्होने राधा कृष्ण कुंज लीला के वर्णन से माधुर्यभक्ति को रस निभर बनाया।

इस मत के रीति कवियों ने कुन्ज विहारी राधावल्लभ कृष्ण की शृङ्गार लीलाओं का भरपूर चित्रण प्रस्तुत किया। यद्यपि इस मत मे कृष्ण की पूर्ण स्वीकृति है किन्तु आगे चलकर कृष्ण भावना मे गौणता और स्त्रैणता का समावेश होता गया। इन कवियों ने सवत्र कृष्ण को प्रसन्न करने के निमित्त ही राधा का आँचल पकडा हो, ऐसा नही कहा जा सकता। राधा की कमनीय केलि ही कही-कही इनका आत्यं तक लक्ष्य लक्षित किया जा सकता है। इस सम्प्रदाय के रीतिकालीन कवियो मे हितरूप जी रसिकदेव जी, अनन्य अली, चाचा हित वृदावन दास, हठीजी, लाडलीदास आदि प्रमुख हैं।

(३) हरिदासी सम्प्रदाय—हरिदासी या सखी सम्प्रदाय निम्बार्क मत की ही

---

१ ध्रुवदास—नित्य किशोरी, नित्य किशोर, नित्य वृदावन नित निशिभोर।
नित्य सहचरी नित्य विनोद, नित आनन्द बरसत चहुँओर।
—बयालीस लीला।

एक अवान्तर शाखा है। किन्तु, युगल सरकार को आराध्य मानने पर भी सखी रूप से उनकी आराधना और रस विस्तार के पक्ष पर विशेष बल दिये जाने के कारण कालान्तर मे यह पृथक् मत के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ। आगे चलकर 'ललित किशोरदेव' जी के समय से इसे 'टट्टी सम्प्रदाय' भी कहा जाने लगा।[१] जो हो, व्रज के रसवर्ती सम्प्रदायो में स्वामी हरिदास के इस सम्प्रदाय मे राधा कृष्ण शृङ्गार की चरम तन्मयता दृष्टिगत होती है।

राधा कृष्ण कुन्जकेलि का सखा रूप में दर्शन इस सम्प्रदाय का अनिवार्य अग है। अत रसरूप 'युगलोपासना' यहाँ भी स्वीकृत है। वृन्दावन म परस्पर कधे पर हाथ रखकर कुन्जो मे विहार करने वाले श्री राधा कृष्ण कुन्जविहारी ही इस सम्प्रदाय के इष्ट हैं। यहाँ साधक जिस शृङ्गार मूर्ति को हृदय मे धारण करता है वह है—निकुन्जविहारी परम प्रियतम श्रीकृष्ण से आलिंगित, सुरत रग से सुशोभित, कोटियो कामदेव को पराजित करने वाली, बायें कपोल पर वाम भुजा को रखने वाली तथा श्रीकृष्ण के नाभि कमल में अपनी नाभि को मिलाने वाली छवि-पुन्ज श्री राधाविलासिनी राधा की यह मूर्ति सखीभावापन्न साधक के शुद्ध प्रेमार्द्र अन्त करण मे ही प्रतिबिम्बित होती है। इसके अनुसार भक्त श्रीकृष्ण की किसी प्रिय गोपी की लीला, वेश और स्वभाव के अनुसार आचरण करता है। भगवतरसिक के अनुसार—

> 'आचारज ललिता सखी रसिक हमारी छाप।
> नित्य किशोर उपासना युगलमन्त्र को जाप॥
> युगल मन्त्र का जाप वेद रसिकन की बानी।
> श्रीवृन्दावनधाम इष्ट श्यामा महारानी॥
> प्रेम देवता मिले बिना सिधि होय न कारज।
> 'भगवत' सब सुखदान प्रकट भय रसिकाचारज॥'

यहाँ, राधा 'इष्ट श्यामा महारानी' और कृष्ण 'प्रेमदेवता' हैं। नीचे सक्षेप मे उपर्युक्त रसवर्ती सम्प्रदायो म परस्पर साम्य और वैषम्य मूलक तत्त्वो की ओर सूक्ष्म सकेत किया जाता है।

साम्य—(१) श्रीकृष्ण की व्रजलीलाओ म मुख्यत यौवनलीलाओ का प्राधान्य, (२) युगललीला और राधाभाव के माधुर्य का प्राधान्य, (३) युगल लीला म गोपियो का सखी रूप में अनिवार्य योग (४) उत्तरोत्तर लीलाविस्तारी सखी भाव पर बल (५) शृङ्गार लीला म वियोग की अपेक्षा सयोग पक्ष का अतिरेक, (६) अन्य शृङ्गार लीलाओं—चीरहरण, रास, दान आदि का युगल केलि म अन्तर्भाव, (७) राधा और गोपियों के भागवतीय प्रेम पर विलास रस का आच्छादन और अन्त (८) वृन्दावन विहारी कृष्ण का निकुन्ज विहारी रूप में केन्द्रीकरण।

उपर्युक्त साम्यमूलक विशेषताओ से व्रज के परवर्ती सभी सम्प्रदाय अनुप्राणित हैं।

---

१ डॉ० सत्येन्द्र—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ (निम्बार्क सम्प्रदाय के हिन्दी कवि)

वैषम्य—वैषम्य मूलक विशेषताएँ निम्न तालिका से स्पष्ट हैं—

सम्प्रदाय	कृष्ण	लीला	भाव (प्राधान्य)	सखी	नायिका	रस
चैतन्यमत	राधाकृष्ण	वृन्दावन लीला	युगलमहिमा	किशोरी	परकीया	वियोग
राधावल्लभमत	राधावल्लभ	कुञ्जलीला	राधामहिमा	सहचरी	स्वकीया	सयोग वियोग
सखी मत	कुञ्जविहारी	निकुञ्जलीला	ललितामहिमा	सखी	स्वकीया	नित्य सयोग

स्वरूप-विश्लेषण

(क) रूप वर्णन—रीतियुग के भक्तों ने अपनी माधुर्योपासना के आलम्बन श्री कृष्ण के रसमधुर रूप का अनिवार्य रूप से चित्रण किया है। यह रूप वर्णन कहीं तो एकल और कहीं युगल छवि से ओतप्रोत है। ध्यान रहे कि सखी भाव भावित कृष्णोपासना बिना लीलासहचरी के अभिन्न योग के कतई संभव नहीं। अस्तु, इन सम्प्रदायों की सभी लीलाओं में युगल छवि का रम्य अंकन है। वैसे कृष्ण छवि के कुछेक एकल दृश्य भी हैं जिन्हें उरहने की भरपूर चेष्टा इन कवियों में मिलती है। इसी के अन्तर्गत नखशिख छवि वर्णन भी आता है। नीचे रूप-वर्णन के इन द्विविध पक्षों के दृष्टान्त दिये जाते हैं।

एकल छवि—चैतन्य मतावलम्बी कवि श्री वल्लभरसिक ने नटनागर कृष्ण की छवि का एक ऐसा ही अंकन प्रस्तुत किया है जिसे देखते ही कामिनियों का चित्त चंचल हो उठता है। ताम्बूल रस से सिक्त अधर और उनसे निःसृत होने वाली रसीली तान के विस्मयकारी प्रभाव से उनकी मति गति यदि विचलित हो जाती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या —

अटकी मूरति नागर नटकी।
मन सैन नैननि हँसि मटकनि, लटकनि मोर मुकुट की॥
कुंतल कुण्डल चिलक तिलक, केसरि बेसरि ढरि लटकी।
अंग अंग आभरन हरनि मन, मनमथ गति उद्‌भट की॥
चटक मटक पग धरत धरनि पर, छुट चटकीले पटकी।
पान भरे आनन तानन लै, तिय मति गति अति हटकी॥
तितहीं चलि चलि जुरति जिते हित, चितवनि चित में खटकी।
सखि लखि आनँद चोट सहित मति 'वल्लभ रसिक' सुभट की॥

कामबाणों से सज्जित चंचल कटाक्ष, लीला-कुटिल मुस्कान, आभरण से भरे अंग, ताम्बूल रस रंजित मुख और उस मुख पर मीठी तान कृष्ण के उस आकर्षण रूप (हेमिंग

प्रेम) का प्रतीक है जिससे नागर—कृष्ण के स्वरूपांकन की प्रेरणा मिली। रसखान ने भी कृष्ण के गले म 'वनमाला' के स्थान पर 'मनिहार' डाल कर इसी विलक्षणता का परिचय दिया था—

दोउ कानन कुडल मोर पखा सिर सोहै दुकूल नयो चटको।
मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको।
सुभ काछनी बैजनी पजनी पामन आमन मै न लगै भटको।
वह सु दर को रसखानि अली जु गलीन मैं आइ अबे अँटको॥ ३४॥

पैजनी पामन मे जो स्वर्णरूप है वह दरबारी सस्कृति का ही असर है। कृष्ण का 'सुदर' विशेषण भाव परक है। ब्रजेश कृष्ण की एकल छवि का अकन नागरीदास ने भी किया है जिसम ब्रज के मुरलीधर कृष्ण की अपेक्षा मथुरा और द्वारिकावासी कृष्ण की विभिन्नता सिद्ध की गयी है—

हमारे मुरली वारो स्याम।
बिनु मुरली बनमाल चन्द्रिका नहिं पहिचानत नाम॥
गोप रूप वृदावन चारी, ब्रजजन पूरन काम।
'नागरिदास द्वारिका मथुरा, इनसो कसो काम॥—ब्र० मा० सा० १९३

त्रिभगी छवि—कृष्ण की त्रिभगी छवि सखी सम्प्रदाय के सहचरिशरण जी ने प्रस्तुत की है जो अपनी सहजता म ही अत्यन्त जीवन्त और मोहक है—

कटि किंकिन, सिर मोर मुकुट बर, उर बनमाल परी है।
करि मुसक्यान चकाचौधी, चित चितवनि रगभरी है॥
सहचरि सरन, सु बिस्वबिमोहनि, मुरली अधर धरी है।
ललित त्रिभगी सजल मेघ तनु मूरति मजु खरी है॥

इन रूप वर्णना मे यो तो एक सहज अनुक्रम है किन्तु कृष्ण की अपेक्षा राधा के नखशिख की छविच्छटा का सविशेष अकन किया गया है। भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास जी का 'नखशिख वर्णन'[१] एक ऐसी ही कृति है।

युगल छवि—चैतन्य मतावलम्बी श्रीमनोहर राय ने अपने 'राधारमण रस सागर' म रसराज कृष्ण और रतिरूपा राधारानी की युगल छवि का सुमधुर चित्रण किया है—

श्री राधारमण रसिकवर नागर वृन्दाविपिन विहारी।
आनन्दघन ब्रजराज लाडिले मिलि वृषभानुदुलारी॥
कीरति कुँवरी कुँवर जसुमति के ललितादिक सुखकारी।
रास-रसासव मत्त परस्पर अनुपम प्रीतम प्यारी॥
नवल किसोर किसोरी सोहन भौंह नैन धनु चारी।
गोर स्याम तन बसन आभरन भगमग उनहारी।
उज्ज्वल सागर नव विधि आगर प्रेमामृत विस्तारी।
निसि-बासर अनुराग रँगमग मद सात्त्विक सचारी॥ (पृ० ३)

१ हस्तलिखित प्रति चैतन्य पुस्तकालय गायघाट (पटना)

राधा और कृष्ण प्रिया और प्रियतम किशोर और किशोरी की यह युगल छवि माधुर्य-भाव के रसिक भक्तों का प्राणाधार है। एक तो कृष्ण का मधुर रूप ही उनके भावात्मक स्वरूप का सर्वस्व है, ऊपर से सौंदर्य माधुर्य की सम्पूर्ण समष्टि राधा के साथ संयुक्त हो जाने पर तो इस वृन्दावनचन्द्र में ही चार चाँद लग जाता है। फिर, लीलाकेलि की अनंत स्फूर्तियों का संचार क्या न हो! अतः यह युगल छवि माधुर्य लीला का प्रस्थान बिन्दु है। यही कारण है कि व्रज के भक्त कवियों ने सौंदर्य की राशि राशि सम्पदाओं और ऐश्वर्यों से राधा कृष्ण युगल मूर्ति की रूप कल्पना की है। सैकड़ों वर्षों से वैष्णवी मानस ने एक एक रेखा खींचकर उस अनंत रूपराशि का सृजन किया। यह अपनी दिव्यता और मधुरता में निस्सन्देह अप्रतिम है। रसखान का काव्य इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी है। घनानन्द ने भी इस दिशा में भरपूर प्रयास किया है और उन्हें यथेष्ट सफलता भी मिली है। उनकी 'कृष्ण कौमुदी' मोहन माधुर्य की रुचिर चित्रपटी है। इसमें कृष्ण की नखशिख छवि, गोपाल छवि, युगल छवि और स्वरूप छवि आदि की अनेक रूपों में सांगोपांग व्यंजना हुई है।

कृष्ण के भावात्मक स्वरूप प्रतिष्ठापन में इस रूप छवि की अलौकिक महिमा असंदिग्ध है—

मोहन मादक रूप सखि, छके रहत व्रज लोग।
अपने अपने भाव सों, चहत भावतो भोग॥ ६१॥

व्रजमोहन कृष्ण के अंग प्रत्यङ्ग की इस रुचिर छवि से व्रजमंडल में ही रूप का समुद्र नहीं उमगा, प्रत्युत कवि के सांगोपांग रूप चित्रण से उसके इस रूप काव्य में भी उत्ताल तरंगें उठ आयी हैं। अब एक एक कर कृष्ण की नाना मुद्राएँ प्रस्तुत हैं—

नखशिख छवि—भाल भौंह दृग नासिका, मृदुल कपोल सुठौन।
सॉवल छबि मधुमै अधर, देखि रहि सक कौन॥ ३०

यौवनागम का रूपचित्र कालपरक ही नहीं है, प्रकृतिपरक भी है—

लहलहानि जोबन उदै, व्रजमोहन अँग अंग।
महा रूप सागर उमगि, उठति अगाध तरंग॥ ३२
जानु जंघ रमढरे सुभायनि। चायनि दृग न्यौछावर पायनि॥४८
धरन-माधुरी अति रस सार। राधा के मन को न्यौहार॥४६

गोपाल छवि—गोचारी गोरज धरन, व्रजजन उत्सव रूप।
गोपीवल्लभ गोपधन, गोपकिमार अनूप॥१६

युगल छवि—राधा जीवन विपुल धन, राधा सखा सुरूप।
राधा रसलंपट सदा, राधारसिक अनूप॥२०
परमप्रेम परिपूरन दंपति। राधा मोहन रसना संपति॥२४
अंग इकरंग स्याम रँग रच्यौ। सब मचाय या आगे नच्यौ॥५५

स्वभाव छवि—रास बिलासी रसिकवर, चिंतामनि चैतन्य।
चटुल चतुर चुबक चपल, उद्धत अद्भुत धन्य॥१७

रमिया रसिकराय रसस्वामी, रसिकसिरोमनि नायक नामी ॥८६

श्री राधारमन छबीले छैन।
अंग अनंग तरंग भरे हैं, प्रगटत जोवन फैल ॥—गल्लूजी

श्री राधा माधव रँगे सुरति रंग रस लीन।
प्यारी प्रिय के प्रेमवस, प्रिय प्यारी आधीन ॥—प्रिया सखी हरिलीला पृ०—३

इस प्रकार रूप की इन विविध मुद्राओं के अंकन में कवि के रुचि वैचित्र्य का परिचय तो मिलता है किन्तु अंततोगत्वा इसकी परिणति युगल छवि और युगल छवि की परिणति युगल लीला में करके वह अपनी रति केन्द्रित मनोवृत्ति का ही प्रमाण देता है। इस राधा कृष्ण युगल छवि का सुविस्तृत अङ्कन वृन्दावनचन्द्र के 'अष्टयाम', वृन्दावनदास की 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका', नन्दकिशोर के 'स्फुट पद', गल्लूजी के 'युगलछद्म', घनानन्द के 'भावना प्रकाश तथा वृन्दावनदेव, नागरीदास और अलबेली अली आदि की सरस रचनाओं में द्रष्टव्य है।

इसी प्रसंग में राधा द्वारा कृष्ण रूप धारण के कुछ अद्भुत दृश्य भी द्रष्टव्य हैं। इस काल में हित सम्प्रदाय के हठी जी और चैतन्य सम्प्रदाय के हरिदेव जी ने इस प्रतीप छवि—अंकन में विशेष रुचि दिखलाई है—

हठी जी— मोर पखा गरे गुंज की माल किए नव बेस बड़ी छवि छाई।
पीत पटी दुपटी लपटी कटि में लकुटी हठी मो मन भाई॥
छूटी लटैं डुलैं कुंडल कान बजै मुरली धुनि मंद सुहाई।
कोटिन काम गुलाम भये जब कान्ह ह्वै भानुलली बनि आई॥

रूप का यह वैपरीत्य विस्मयविवर्धक ही नहीं, करोड़ों कामदेवों के लिए हृदयहारी भी है।

हरिदेव—कटि पीतपटी फहरात मनोहर, औ लकुटी कर चारु लिये।
सिर मोरपखा मुरली धुन बाजत, राजत है बनमाल हिये॥
'हरिदेव मनोज तरंगन सो, तन चन्दन चित्र विचित्र दिये।
यमुनातट श्री वृषभानुसुता, बिहरै मनमोहन रूप किये॥
—छन्दपयोनिधि।

प्रस्तुत छन्द में राधा के कृष्ण रूप धारण में रूपोपकरण प्राय उपरिवत् ही प्रयुक्त हुए हैं। रेखाङ्कित पदों पर ध्यान दीजिये मोरपखा मोरपखा, पीतपटी पीतपटी, लकुटी-लकुटी, गुञ्ज की माल बनमाल, मुरली मुरली। किन्तु, हठी जी के कुण्डल के स्थान पर हरिदेव जी ने चन्दन की चर्चा की है। राधा के मधुगुने उजले सुचिक्कन तन पर चन्दन की चर्चा रूप वर्द्धक ही नहीं, रति-वर्द्धक भी हो गयी है। अत चन्दन की 'मनोज तरंग' से दी गयी हरिदेव जी की उपमा अत्यन्त सार्थक है। इतनी कि अन्तिम पंक्ति में हठी जी द्वारा काम को दी गयी मनोहरता भी पूरी नहीं पड़ती। किन्तु ध्यातव्य है कि हरिदेव परवर्ती हैं और उनकी कृतियों में रीतिकालीन कलात्मकता वर्तमान है। प्रसिद्ध रीति कवि ग्वाल के प्रति स्पर्द्धी हरिदेव जी ने अपने नायिकाभेद रस भंडारक ग्रंथ 'रसचन्द्रिका' में रूपसी राधिका का

जो उदाहरण प्रस्तुत किया है उससे उनकी आधुनिक मनोवृत्ति का राज खुल जाता है। राधा की रूप छवि हमारा प्रतिपाद्य नहीं किन्तु जैसे राधा ने कृष्ण की रूपछवि का सफल और मार्मिक अनुकरण किया वैसे ही कृष्ण ने भी नाना छद्म मुद्राओं मे उन्हें वशीभूत करने का अनेक प्रयत्न किया था। यह भी युगल लीला का ही एक कुतूहलवर्द्धक अंग है। और इसका अनेकशः अंकन विद्यापति, चण्डीदास, सूरादि अनेक मध्ययुगीन साधकों ने भी किया है। अतः प्रो० सुकुमार सेन का यह कहना कि राधा से कृष्ण को युवती वेश म मिलाने का श्रेय रूप गोस्वामी को ही है ठीक नहीं।[१] रीति कवियों म देव और बेनी प्रवीन के (नव रसतरंग) कृष्ण की मालिनवेश मे छद्मलीला का वर्णन किया है। छद्मलीला के रचयिताओं म चाचा हितवृन्दावन दास और युगलछद्मकार चैतन्य मतानुयायी गल्लू जी विशेष स्मरणीय हैं।

चाचा हित वृन्दावनदास ने निम्न पद म मनिहारिन रूपी श्रीकृष्ण का यथातथ्य चित्रण किया है—

> 'मिठ बोलनी नवल मनिहारी।
> भौहैं गोल गरुर हैं, याके नयन चुटीले भारी॥
> चूरी लखि मुख तें कहै, घूंघट मे मुसकाति।
> ससि मनु बदरी ओट तें, दुरि दरसत यहि भाँति॥
> चूरो बडो है मोल को, नगर न गाहक कोय।
> मो फेरी खाली परी, आई सब घर टोय॥'—मनिहारी लीला।

प्रस्तुत चित्र में कवि की रूप व्यापार योजना उसकी कल्पनाशक्ति की ही परिचायिका नहीं, स्वयं कितव कृष्ण के लीला चाचल्य और रूप स्फूर्ति का अनूठा दृष्टान्त है। चाचा जी न इसी प्रकार गौनेवारी, चितेरिन, सुनारिन, वीणावारी, योगिनी—और न जानें कितने रूपो मे कृष्ण को साज कर स्वर्ण भावभूमि म प्रस्तुत किया है। यह कवि के कृष्ण-लीला व्यंजक पौराणिक सस्कार पर पडे लोक प्रभाव का सरस प्रतीक है। कृष्ण के इस बहुरूपियेपन को देखते हुए उनके प्रति चिरसंचित (पाठकों की) श्रद्धाभावना को तो ठेस पहुँचती ही है, मन का यह एहसास भी हो जाता है कि नायिका को सदेह प्राप्त कर लेने के लिए उनके कामाद्र चरित्र को किसी भी प्रकार के साँचे में ढाल दिया जा सकता था। यह एक ओर जहा कृष्ण चरित्र के रोमानी और स्वच्छन्द पहलु पर प्रकाश निक्षेप करता है वहीं इन तथाकथित साम्प्रदायिक भक्तो की भक्ति-भावना और लीला कल्पना के प्रति सन्देह का सृजन भी करता है। यह छद्मलीला रीतिबद्ध कवियो के उन काम नायकों की याद दिलाती है जिनके आतंक से मध्यवर्गीय समाज की कुल ललनाएँ काँपती रहती थी। ऐसे ही जार और रतिलम्पट कृष्ण से एक नवेली नायिका को सावधान कराते हुए कविवर रसखान कह गये थे—

> अरी अनोखी वाम, तू आई गौने नई।
> बाहर धरसि न पाम, है छलिया तुव ताक मै॥ ५१—सुजान रसखान

१ 'ए हिस्ट्री ऑफ ब्रजबुली लिटरेचर'—पृ० ४७७

(ग) लीला वर्णन—भगवान् कृष्ण की लीला नित्य और चिन्मय है। कृष्ण लीला के उपकरणों में—वंशी, शृंगार, वृन्दावन और गोपियों का परिकर रूप में समावेश है। इन चारों से संयुक्त होकर ही कृष्ण लीला प्रचलित करते हैं। इस की प्रगाढ़ता का ध्यान में रखकर इन वैष्णव सम्प्रदायों ने वृन्दावन लीला को २ वर्गों में बाँट दिया है—प्रकट लीला और अप्रकट लीला। इन्हें ही सखीभाव से अन्तरंग लीला और बहिरंग लीला तथा कुन्ज-लीला और निकुन्ज लीला भी कहते हैं। अर्थात्, कुन्ज-लीला में अन्तर्गत आनेवाली प्रथम कृष्ण की सभी समूह लीलाएँ—चीरहरण, पनघट, दान, रास, दधि, हिन्डोल आदि लीलाएँ परिगणित होती हैं। किन्तु, निकुन्ज-लीला में अन्तर्गत राधा कृष्ण युगलकेलि मात्र का सविधान है। इस दृष्टि से यह परम निगूढ़ और परम आह्लादजनक है। इसे हितहरिवंश जी ने 'निकुन्ज रस' कहा है जिसमें वियोग की कल्पना भी असह्य है। इस प्रकार, विचार पूर्वक देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती काल में कृष्ण की समूह लीलाओं में उत्तरोत्तर संकोच होता गया और इसका युगलकेलि में ही केन्द्रीकरण हो गया। यदि ऐसा न होता तो सखी सम्प्रदाय में अन्य अनेक (कृष्णलीला में) गोपी पात्रों को तटस्थ द्रष्टा मात्र न बना दिया जाता। ब्रज की विस्तृत लीलाभूमि में नाना भाँति की क्रीड़ाओं में निमग्न सूरादि की गोपियाँ सखी भावसम्पन्न निकुन्ज लीला में टट्टी के द्वार पर निश्चेष्ट सखी एकरस केलि के दर्शन में नियुक्त कर दी गयी हैं। तारीफ तो यह कि इस केलि को देखकर उनके पाषाण हृदय में तत्तत् भावों का तूफान भी नहीं उठता, न ही उठा देने की इजाजत है। इस तरह, इस कुंज लीला में जहाँ राधारमण कृष्ण को अश्रान्त केलि चतुर शृङ्गार देव के रूप में प्रतिष्ठित किया गया, वहीं उनमें गोपियों और सखियों की सम्पूर्ण रमणेच्छा को अपहृत कर पुंजीभूत कर दिया गया है। यही कारण है कि इन लीलाओं में स्फूर्तिशील क्रीडा वैचित्र्य या कल्पना प्रवण लीला विलास के स्थान पर एक प्रकार की एकाधीकृत एक रसता (मोनोपोलाइज्ड रोवगुम्रन मोनोटॉनी) विराजती है। इसका सबसे सबल प्रमाण कृष्ण की चरम आनन्द विधायिनी समूह लीला रास है जिसे इन कवियों ने युगल विलास में रूपान्तरित कर दिया है। समस्त चराचर पर मोहिनी डाल देने वाली वृन्दावन की रास लीला यहाँ दम्पति विलास बनकर रह गयी है। कृष्ण की अष्टकालीन लीला का भी यही हाल है। यहाँ तक कि समस्त लोकव्यापी पर्व त्योहार, ऋतु उत्सवों आदि को भी युगल लीला का ही अंग मानकर वर्णन किया गया है। अतः स्थान भेद से इन समस्त लीलाओं को २ वर्गों में बाँट सकते हैं—(१) वृन्दावन-लीला और (२) निकुन्ज लीला। पात्र भेद से इसे ही क्रमशः (१) गोपी-कृष्ण लीला और (२) राधा कृष्ण लीला कह सकते हैं।

वृन्दावन लीला—कृष्ण की वृन्दावन लीला मध्ययुग के भक्त हृदय की एक उदात्त कल्पना है। यह अध्यात्म का राग के धरातल पर प्रत्यक्षीकरण है। कृष्ण हैं परम-पुरुष और गोपियाँ हैं प्रकृति स्वरूपा। इन दोनों का प्रेम मिलन ही वृन्दावन लीला का सार-सर्वस्व है। इसीलिए इसे भक्ति शृङ्गार भी कहा गया है क्योंकि इसका मानवीय रागबोध से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। एक शब्द में, यह हमारी मूल वृत्ति काम का ऊर्ध्व तरण और भगवदैश्वर्य का अवतरण है। युग की भावधारा के प्रभाव से जहाँ काम वृत्ति का

ऊर्ध्व प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है वहाँ 'भक्ति शृङ्गार' में से भक्ति तिरोहित हो जाती है और उत्तरोत्तर उत्तर पक्ष का—शृङ्गार का—प्रवाह उमड़ आता है। हिन्दी काव्य में भी कृष्ण भक्ति के अनन्तर शृङ्गार का अनाविल प्रवाह उमड़ चला, यह सर्वविदित है। स्वभावत: इस काल का समग्र साहित्य इस प्रवृत्ति से न्यूनाधिक रूप में प्रभावित हुए बिना न रहा। रीतिकालीन कृष्ण-काव्य इसका अपवाद नहीं है। अत: इस पर भी इस भावधारा का प्रभाव पड़ा है। कृष्ण लीला के प्राय: सभी उपकरण इस परिवर्तित दृष्टिकोण से प्रभावित हैं।

वंशी-माधुरी—महाकवि सूर ने गोपियों के ईर्ष्यालु चित्त पर इसके सापत्न्य भाव की मार्मिक व्यंजना की है। कविवर रसखान ने इसके शृंगारिक स्वरूप को पराकाष्ठा पर पहुँचा कर इसे कुल धर्म का घातक करार दिया है। उनकी कृष्ण-वंशी अपने भिन्न भिन्न सुरों में अलग अलग गोपियों को बुला लेने में पटु है। कविवर घनानन्द के 'मुरलिकामोद' में वंशी की भागवती महिमा, सूर रसखान वर्णित सापत्न्य भाव, चातक—घन आनन्द के रूपकात्मक सम्बन्ध आदि द्वारा मुरली ध्वनि के चराचरव्यापी प्रभाव की सुन्दर व्यंजना हुई है। रीतिकवियों में बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर आदि ने तो इसे अभिसार का संकेत बना दिया है। कृष्ण कामवश बाँसुरी बजाते हुए देखे गये।[1] किन्तु, रीतिकालीन कृष्ण भक्तों ने अपने को इस अतिरेक से बचाया है। चैतन्य मतवादी गल्लू जी ने कृष्ण की मुरली से राधा का नाम संकेत सुनाकर उनकी वादन-कला विदग्धता का परिचय दिया है—

श्री राधारमन मुरलिया बजावै।
कर कमलन धर अधर परसि कें, अद्भुत छवि सरसावै॥
एक एक रंध्रन में न्यारे-न्यारे सुर दरसावै।
'गुनमंजरी' गोपाल रूप हरि, राधे राधे गावै॥ २॥

घनानन्द की 'पदावली' में २० वाँ पद हूबहू इसी भाव का द्योतक है।

कैशोर—इसमें रूप सौन्दर्य अपने सम्पूर्ण वैभव के निखार पर होता है। रसवर्ती सभी वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण की इस अवस्था की स्वीकृति है। कामशास्त्र, साहित्य शास्त्र और मनोविज्ञान भी शृङ्गार लीला की दृष्टि से नायक के इसी चढ़ते वयस का समर्थन करते हैं। महाकवि सूर ने इसी को ध्यान में रखकर कहा—'कुञ्ज में विहरत नवल किशोर'। श्री अलबेली अलि ने सखी भावापन्न होकर 'नवल किशोर' की किशोर माधुरी का रूप शृङ्गार किया है—

भोरहिं उठि अलिरूप विचारूँ।
अद्भुत नवल किसोर माधुरी, रूप अनूप निहारूँ॥
करि अस्नान उबटि अँग अंगनि, नाना भांति सिंगारूँ।
भूषन बसन प्रसादी स्वामिनी पुलकि पुलकि उर धारूँ॥ समय प्रबन्ध।

वृन्दावन—राधा-कृष्ण की वह लीलाभूमि, व्रजमण्डल का वह निराला प्रेम लोक जिसे छोड़ कर भगवान् कृष्ण एक पग भी आगे नहीं जाते, वृन्दावन की वह पुण्यभूमि

१ साँझ समय मतिराम काम बस बंसीधर बंसीवट तट पै बजाई जाय बाँसुरी।'
—रसराज, छन्द-९२

निश्चय ही माधुर्य और रस की खानि है। छोटे ब्रह्मगोपाल जी ने अपने 'वृन्दावन विलास' में इसकी मधुरिमा पर सविस्तर प्रकाश डाला है—

> हमारी श्री वृन्दावन सुख रासी।
> आदि अनादि परात्पर सोहनि, रस में सुर अभिलासी॥
> मिलत भाग अनुराग भरे सनि, सुख की निधि जमुना सी।
> वंसीवट तट रास रचत हैं रसिक किसोर सुधा सी॥
> रमा उमा इन्द्रानी से से, करत गोहनी खासी।
> 'ब्रह्म' विराजत श्री राधा माधव, सघन घटा चपला सी॥ ३॥

उपर्युक्त पद में वृन्दावन की सम्पूर्ण महिमा अंकित हो गयी है। वृन्दावन मानो एक रस ग्रंथ है। लीला उसके पृष्ठ हैं। यमुना, वंशीवट आदि उनकी पंक्तियाँ हैं। राधा माधव उनके शब्द हैं। रास उसका अर्थ है और परमानन्द उसका रस है। कवि का इस बात का गर्व है कि जो बिहारी उसके प्राण हैं वे वृन्दावन विहारी ही हैं—

> हमारे प्रान बिहारी प्यारे।
> राधा माधव रसिक सब्य निधि, मेरे नैनन तारे।
> 'ब्रह्म विलोकत छनकी छाईं, 'वृन्दाविपिन विहारे'॥ ४॥

सूर ने युगल लीला की दृष्टि से 'वृन्दावन' को 'राधानी' की संज्ञा दी थी। ब्रह्मगोपाल जी ने इसे दोहराया है—प्रिया जू की श्री वृन्दावन राधानी।

> माधव लाल बने बनमाली, आली सब सुख खानी॥

गोपी—कृष्ण लीला से गोपियों का घनिष्ठतम सम्बन्ध है। गोपियाँ पौराणिक कृष्ण लीला की अधिष्ठात्री हैं। परवर्तीयुग में जहाँ कृष्ण लीला में युगल लीला की महिमा हुई, वहीं सखीभाव का प्रभाव बढ़ा और वहीं गोपियाँ सखी रूप में रूपान्तरित हो गयीं। अन्तत गोपीभाव का सखी भाव में अन्तर्भाव हो गया।

रीतिकालीन कृष्ण भक्तों में गोपीभाव के महिमागान की ओर विशेष रुझान प्रकट नहीं होता। रसखान और घनानन्द ने गोपीभाव की अनन्यता का अवश्य ही उल्लेख किया है। यहाँ उनके स्वीयात्व परकीयात्व का विशेष झमेला नहीं दीखता। यदि इनमें से वे कुछ हैं तो राधा कृष्णवत सुखहेतु स्वकीया ही हैं। गोपियाँ भक्त सखी की स्थानापन्न हैं जिन्हें युगलकेलि के रसविस्तार और खवासी में ही चरम आनन्द की अनुभूति होती है। इसके अतिरिक्त विशेष सचेष्टता साधना विरुद्ध मानी जाती है।

इन कवियों ने चीरहरण का उल्लेख प्राय नहीं किया है। इसका कारण सम्भवत गोपी लीला पर युगल-लीला का बढ़ता हुआ प्रभुत्व हो। जिन लीलाओं का प्राधान्य है, वे हैं—युगललीला, कुंज लीला, दान लीला रास लीला, अष्टकालीन लीला, हिंडोल लीला, उत्सव, होली, धमार तथा छद्म लीला आदि। इनमें प्रथम दो का स्वरूप प्राय एक ही है। शेष, समूह लीलाओं में भी युगल लीला का ही प्राधान्य है। अत इसी के अन्तर्गत अन्य सभी अंगभूत लीलाएँ व्यंजित हैं।

चैतन्य मतावलम्बी वृन्दावनचन्द्र के शब्दो मे—'उन्ही के पद रज धरी सिर मे जु आन, लीला घडी घडी बरनू हु वे निलज्ज है।'

वृन्दावनचन्द्र (स० १७४०–१८१०) से प्राय सौ वर्ष पहले रीतिकवि केशवदास (स० १६१२–१६७४) ने राधा कृष्ण शृङ्गार वर्णन करते हुए मर्यादा का अतिक्रमण किया था और फलत उन्होंने इसे अपनी ढिठाई मानकर क्षमायाचना भी की थी—'ढिठई केशवदास की, क्षमियो कवि कविराव' ॥ (रसिक प्रिया–६/७७) और वृन्दावनचन्द्र के प्राय सौ वर्ष बाद के रीति कवि ग्वाल ने राधा कृष्ण के 'रसाल चरित्र' को 'रसिको' के 'रसरग' के लिये खोलकर रख तो दिया किन्तु अन्तत उन्हे भी इसके लिए क्षमा मॉगनी पडी—

श्री राधा पद पदुम का प्रनमि प्रनमि कवि ग्वार।
छमवत है अपराध को, किया जु वर्णन रसाल ॥—रसरग।

अत केशवदास से लेकर ग्वाल तक की सुविस्तृत रीति परम्परा मे राधा-कृष्ण शृङ्गार वर्णन की उत्तानता प्रत्यक्ष है।

युगल लीला—युगल लीला इस काल की प्रतिनिधि कृष्ण लीला है। भक्त कवि घनानन्द ने निम्न पद में राधा कृष्ण युगलविहार का एक सुन्दर दृश्य अकित किया है—

अति सुगन्ध मलयज घनसार मिलाय, कुसुम जल सो छिरकाय।
उसीर सदन बैठे मदन मोहन सग लै राधा प्रानप्यारी रति रंगनि
जमुनातीर बानीरकुज,[1] मजु त्रिविध पवनसुख पुज।
परसि रोमाच होत छबीले अगनि ॥
वृन्दावन सम्पति दम्पति बिलसत हुलसत ऐसें अपनी भरि भरि उमगनि।
आनन्दघन अभिलाष भरे भीजे सगम रससागर की अतुल तरगनि ॥ १४५ ॥
—पदावली

इस दम्पत्ति विलास को कवि ने रससागर की अतुल तरगों का सगम माना है। वल्लभ रसिक ने इस युगल लीला के आश्रय विषय राधा और कृष्ण को रति और रस का सगम कहा है। यह इस काल की प्रवृत्ति व्यापिनी लीला है जिसमे प्राय सभी कवियो ने योग दिया है।

दान लीला—यह श्रीकृष्ण की एक प्रसिद्ध लीला है। इसमे वह मथुरा की ओर दूध दही लेकर जाने वाली जवान गोपियो को घाट बाट मे छेडते और मनोनुकूल दान प्राप्त करते हैं। यह लीला लोक परम्परा की प्रतिध्वनि लिए है। इसके अन्तर्गत कृष्ण की भूमिका एक अल्हड ग्रामीण किशोर की हो गयी है। कहीं कहीं पर इससे उनके सामन्तवादी सस्कार की भी झलक मिलती है। वृन्दावनचन्द्र के शब्दों मे—

रूप को पियासो मिस गोरस के दान माँग, खोर साँकरी मे भोर रूप चोप हेरे सों।
राधा अति रूप भरी छवि की मरोर आगे, सँभर सक्यो न उझ्यो चाह के उजेरे सों॥
प्यारी पग धर जितै, तितै लकुटी लै अरे, मोहन सो भोहै भिरें नेह तेह घेरे सो।
तिरछे चितै कै नैन, तीर सी चलाय गई, दान भो चुकायो हसि प्रेम पन फेरे सो॥
—अष्टयाम–२६

यह 'गोरस का दान' कया है, इसे सो—'गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस काहू जु नेकु न पहौ।' के रचयिता रसखान भी जानते थे, उनके अनुयायी घनानन्द भी—'गोरस जो चाहौ तो लीजिए जो रस चाहै सो वा दियो कया जाइ (पदावली–८१६) और रीति कवि बिहारी भी—'गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाहिं॥ (१२६)। किन्तु, इसे केवल वृन्दावनचन्द्र ने ही ब्याज सहित चुकाया है। घनानन्द ने इस विषय पर एक स्वतन्त्र गीत प्रबन्ध 'दानघटा' लिखा। उनकी पदावली में दानलीला विषयक अनेक पद हैं। निम्बार्क सम्प्रदायी श्री कृष्णदास (१८५३) ने भी इसी प्रकार 'दानलीला' लिखी।[1]

सखी-लीला—इसका एक सुन्दर उदाहरण नीचे प्रस्तुत है—

चरन चापत नाना चाह सो रसमंजरी, जुगसोभा देखि गुनमंजरी लोभात है।
उत्सवमंजरी बीन बजावत सरसात, रति मंजरी जु घलि-घलैया कों जात है।
इहि विधि सब सेवा करें, अपनी स्वामिनि जानि।
ललितादिक सब सखिन सँग, निज निज भाग्य जु मानि॥

—वृन्दावनचन्द्र-अष्टयाम

इस रचना की प्रांजल ब्रजभाषा और कवित्त सवैया छन्दों में अलंकारपूर्ण सरस कथन इसे रीतिकालीन गौरव प्रदान करता है।[2]

अष्टकालीन लीला—इस युग के कवियों ने अपने समय प्रबन्धों में और कुछ ने स्वतन्त्र रूप से राधा के अष्टयाम विहार का वर्णन किया है। इसकी पौराणिक परम्परा से भिन्न कामशास्त्रीय नागरक परम्परा भी है जिससे संयुक्त होकर यह देव के 'अष्टयाम' में प्रकट हुआ है। वैसे ही रीतियुगीन कृष्णभक्तों ने अपनी कृतियों में इसकी पौराणिक परम्परा अक्षुण्ण रखी है। इस दिशा में वृन्दावनचन्द्र का अष्टयाम, चाचा हित वृन्दावन का अष्टयाम, अलबेली अलि की 'समय प्रबन्ध पदावली', रसिक गोविन्द का 'समय प्रबन्ध', ललित किशोरी का अष्टयाम आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

इस काल की अष्टकालीन लीलाओं में प्रायः अलंकरण, सखी शृङ्गार, गोचारण वंशी-सम्मोहन आदि प्रसंग चित्रित हुए हैं।

रास लीला—जैसा कि ऊपर कहा गया, इन कवियों की रासलीला मण्डलीकृत नृत्य गीतोत्सव न होकर राधा कृष्ण विलास के ही सामान्य अंग हैं। अलबेली अलि के अनुसार—

खेलत रास रसीले। दंपति छैल छबीले।
दंपति रंग रँगी सजनी महिमण्डल पर डोलें।
बीच बीच नव नागरि सुन्दरि तत्ता थेइ थेइ बोलें।

इनके रास वर्णन की दूसरी लक्षणीय विशेषता यह है कि इन्होंने ऋतु वर्णन प्रसंग में भी रास का वर्णन कर दिया है। वल्लभ रसिक की 'मांझ', मनोहरराय का बिहार वर्णन ('श्रीराधारमण रससागर'), गुणमंजरीदास की 'राधारमणपदमंजरी', किशोरीदास की

१ हस्तलिखित प्रति–नागरी प्रचारिणी सभा (काशी)–संग्रहालय।
२ प्रभुदयाल मीतल–चैतन्य मत और व्रज साहित्य–पृ० २५४

'बानी' आदि सभी ऋतुपरक कृतियाँ हैं जिनमे प्रसंगवश रास का भी उल्लेख कर दिया गया है। इस तरह रास का अन्तर्भाव इस युग मे कुञ्ज लीला मे ही हो गया है। यह इनकी श्रृङ्गारिक मनोवृत्ति का सूचक है। इन्ही ऋतूत्सवो म सावन के हिंडोल और फागुन के फाग का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

हिंडोल—आजु दोऊ झूलत रति रस मानें।
ठाढ़े मचकें लचकि, तरुनि के गहि फल फूलन आनें॥
सूहे पट पहिरें, ह्वै पटुलो बैठ सामल गोरी।
अलिन रगीली तिय पद अगुली, पिय डोरी सो जारी॥
स्याम काम बस भूलि भूलि पग, भूलनि झुलिनि बढाही।
कामिनि चरन तामरस छुटि, अलि काम लूटि मचि जाही॥
जीवन मधि जोबन मद भूलए भूलनि फदनि जानें।
'वल्लभरसिक' सखी के नैना, एही झुननि झुमानें॥

उक्त भूलन पद म 'स्याम कामबस भूलि भूलि पग' से मतिराम के 'साझ समै 'मतिराम' कामवस बसीधर बसीबट तट पै बजाई जाय बाँसुरी' की तो याद आती है, पद्माकर की हिंडोला विषयक यह पक्ति भी कौंधे बिना नही रहती—

'काम झूले उर मे उरोजन म श्राम झूले,
स्याम झूले प्यारी की अन्यारी अँखियान में॥ फुटकल पद—३०

होली—वल्लभरसिक कृत होली का एक दृश्य देखिये—
श्री नवल वधू रग भीनी प्रीतम सग खेलैं।
झूमि झूमि रस तानन गाव रिझई छैल नवेल॥
लाल रगीली पिचकनि रग भरि भरि उरजनि ऊपर मेलैं।
मुरि मुरि वदन दुरावनि म मनभावन को रस झेलै॥

कुञ्जलीला—इसका एक सुन्दर चित्र मनोहर राय के 'राधारमण रस सागर' से प्रस्तुत है—

कुसुमित कुज अलि पुज गुज माधुरी।
दोऊ बागे उज्ज्वल सिंगार रचि बैठे सेज,
बिछौना रहे हैं खुलि मानो मन माधुरी॥
हास परिहास पगे लाल प्रति रहस की,
कहे तें चितवें प्यारी नैनन के आ धरी।
राधिकारमन 'मनोहर' उत्तर न देत,
दुहुँन के मन भयो आनन्द अगाध री॥ ३१

अन्य लीलाओ मे पनघट लीला, गोदोहन, वनविहार, गोचारण आदि का चित्रण घनानन्द की पदावली में अनेकश मिलता है। अपने 'व्रजव्यवहार' मे कवि ने कुछ स्फुट बाल लीला विषयक चौपाइयाँ भी कही हैं। कृष्ण की वात्सल्य मिश्रित बाललीला का गान इस काल की गौण प्रवृत्ति है। किन्तु, फिर भी इसके छिट फुट उदाहरण मिल ही जाते हैं—

ब्रज म बसत सुरति घन घन मे। सब की भाव सबन मे मा मैं॥ ६६
उरझ्यो गोरी प्रेम को ब्रजमोहन के भाव।
सब ब्रज मैं उपनात हैं, मनमोहन के भाव॥ ३७

इसी प्रकार ब्रजेतर कृष्ण के भावात्मक निरूपण म भ्रमर गीत का गोपियों के प्रेमपत्र द्वारा प्रवेश कराया गया है। घनानन्द की 'प्रेमपत्रिका', रामहरि की 'प्रेमपत्री,' मन्नूजी की 'उरा हनो लीला' उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त, कुरुक्षेत्र म गोपी-कृष्ण महामिलन प्रसग को लेकर लिखे गये गीति खण्डो म रघुराय कृत 'कृष्णामोदिका' (ना० प्र० सभा—'खोज विव रणिका, १९०६ १९०८, स० १९९८—रचनाकाल स० १७४१) और रतन कुँवरि के 'प्रेम रत्न' (स० १८४४) म, विशेषत अन्तिम कृति का विशेष महत्व है। यह भावपुरुष श्रीकृष्ण और प्रेममूर्ति ब्रजवासियो के कुरुक्षेत्र मिलन का रसमय आख्यान है। इसके अनेक प्रसगो मे विशेषत कृष्ण के कुरुक्षेत्र आगमन के हेतु, रुक्मिणी कृष्ण ब्रजप्रेम विषयक वार्ता, गोपी-कृष्ण मिलन की मनोवैज्ञानिक भावभूमि, राधा व अन्तर्भावा म प्रेमी कृष्ण की झाँकी, राधा सत्यभामा विवाद प्रसग में परकीया प्रेम की मार्मिक व्यजना व माध्यम से प्रेममूर्ति कृष्ण का अत्यन्त रसमय अकन हुआ है। अन्त मे, राधा मान के रक्षाथ कृष्ण का नटवर वेश में वृन्दावन लौटना जहाँ उनकी अतिशय भावुकता और प्रेम प्रवणता का परिचायक है वही वह रसविदग्ध कवयित्री की पुराण बहुज्ञता का सूचक भी है। उसकी इस आख्यान कल्पना के मूल में ब्रह्मवैवर्त की कृष्ण लीला के रसवर्ती आख्यान काम करते हैं। कुल मिला कर, माधुर्यपर्यवसायी कुरुक्षेत्र की इस वात्सल्य, सख्य और श्रृङ्गार लीला को चित्रकूट के राम भरत मिलन प्रसग से तुलित नही किया जा सकता।[१]

(ग) रति लीला—यह राधा कृष्ण श्रृङ्गार वर्णन की परमोच्च अवधि है। मधुर रसोपासक भक्तो की दृष्टि म राधा कृष्ण का यह केलि माधुर्य अखण्ड और नित्य है। इसम सयोग ही सयोग है। वियोग कल्पना मिथ्या है। वह केवल सयोग की एकपुष्टता को भग करने के लिए वियोग का आभास मात्र है। सचमुच जो कृष्ण निकुञ्ज छोड़कर कही जाते तक नही, राधा जिनकी ह्लादिनी शक्ति है उनका वियोग कैसा? फिर भी रति रस वश श्यामा श्याम अपनी केलि क्रीडाओ मे वैचित्र्य का पुट देने के लिए कुञ्ज की ओट ले लेते हैं अथवा पलकें गिरा लेते हैं और वही एक क्षण का वियोग दूसरे के लिए दुरतिक्रम हो जाता है। इसी प्रकार कृष्ण ब्रज के घने निकुञ्ज में नितनूतन क्रीडा केलि, रति विलास करते है और इस विलास रस का उपभोग स्वय ही नही करते, नित्य सहचरियो को भी कराते हैं। सखी उस लीला की दिव्य झाँकी प्राप्त कर पूर्ण परितृप्त हो जाती है। विभिन्न प्रकार के कामोत्तेजक हास विनोद से परस्पर प्रसन्न चित्त राधा माधव कुञ्ज के मध्य घँस कर गभीर केलि करते हैं और उसकी झाँकी से सखियाँ प्रसन्न होती हैं। दोनो म प्रेमगर्व समान है। अत दोना अत्यन्त उमग के साथ परस्पर आलिगन, चुम्बन और रति का एक दूसरे

१ द्रष्टव्य—ना०प्र० पत्रिका, वर्ष-७०, अक—१ ('प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री'—डॉ० पूर्णमासी राय)

को आनन्द प्रदान करते हैं। कोमल लताओं से सज्जित सुमन सेज पर दोनो विराजते हैं और फिर, अधरो से अधर वक्ष से वक्ष, कटि से कटि और परस्पर कठोर भुजपाश मे आबद्ध हो मस्त हो जाते हैं। कोई सखी विशेष उनके इस घनघोर रति-श्रम के परिहाराय हौले हौले व्यजन करती है—

पौढे ललित लतान तरे।
सुमन सेज सुवराशि सनेही अधरनि अधर धरैं।
उरजनि उरज जोरि कटि सो कटि लपटि भुजानि भरैं।
यह रस मत्त मगन मन सोभे भगवत व्यजन करैं॥

—अनन्य निश्चयात्मक प्रबध, (पृ० ४३)

सयोग- राधा कृष्ण की ह्लादिनी हैं। अत कृष्ण अपनी ह्लादिनी से कथमपि वियुक्त नही होते। वह सवदा राधा छवि मे डूबकर उनका रसास्वादन करते रहते हैं।

रग महल मे ललन विहारी।
वैठ अति उमग रति बाढ ढिग लै प्रान पियारी।
सेज वसनि छवि धमी हिये मैं लटकि रही उजियारी।
आनदघन वृदावन रस झर जमुन पुलिन सरसारी॥ ६८४ घ० ग्र०, पृ० ४६३

इस प्रसग का पाकर कवियों ने सुरति विहार के वर्णना का अम्बार खडा कर दिया है। साम्प्रदायिक आवरण के भीतर भी हाने वाली यह सुरत-व्यापार व्यजना अपनी ग्राम्यता और अश्लीलता का वारण नही करती। कवियो ने इन वर्णना के पीछे निश्चय ही कृष्ण चरित्र की पौराणिकता का ताख पर रख ही दिया है, साहित्यिक मर्यादा भी गँवाई है। एक तो देवी देवता के रति वर्णन म यह निलज्ज आसक्ति, दूसरे सखियों का इसे देख देख कर आँखें सेंकना—न तो मनोविज्ञान सम्मत है, न काम सम्मत और न धमसम्मत। ठीक वैसे ही, रति लम्पट कृष्ण निरतर कुन्जो म सहचरी और सखियो के बीच घिरे रहकर अपनी प्रखरता और धीरता खो बैठे हैं। कामोद्रेक से प्रेमावेश में कमी आ जाना स्वाभाविक ही है। इसलिए स्त्रैण कृष्ण कभी ता अपनी प्रिया के श्रृङ्गार म कभी मान मनुहार मे, कभी उनके तलवे सहलाने और एँडी मीडने मे ही मशगूल दीख पडते हैं। पर उनके चचल चित्त को कभी तृप्ति नही मिलती। इस चेष्टा को रतिशास्त्रीय शब्दावली में जहाँ औत्सुक्यादि सचारी कहा जाता है वहा साधी सादी ठेठ भाषा मे यह नायक के स्खलन का सूचक है—

राधिका को पमत ही विहारी बिवस भये,
कपित करा टेढो तिलक बनायो है।
फूलन की माला पहिराय न सकत चित,
चकृत भये हैं मन चेटक सो पायो है।
सकल कला निधान सुदर सुजान काह,
प्यारी को सिगार चारु करन न पायो है॥ २६॥

—'ब्रजनिधि ग्रथावली'—ब्रज-श्रृङ्गार, पृ० १४८

वियोग—प्रीत्यकुर के उगते ही कृष्ण काम के बाणा की मीठी पीडा से मर्माहत हो राधा रति के लिए पुन वरात हा जाते हैं। पूर्वराग उन्ह विह्वल किये देता है। वह

प्रेयसी की उन्मद मुस्कान की याद कर बेसुध हो जाते हैं । और, चेतना लौटने पर पुन हाहाकार कर उठते हैं—किन्तु अपने पीताम्बर मे प्रिया की अंगद्युति को देखकर उन्हे क्षण भर का परितोष मिल जाता है । वह उसे उठाकर पलकों से लगा लेते हैं । और निरंतर ओढे चलते हैं । इस प्रकार राधा वियोग की अनेकानेक चेष्टाओ का कृष्ण पक्ष मे सन्निवेश कर इन कवियो ने सम प्रेम प्रतिष्ठापन की चेष्टा की है । कोई सखी राधा से जाकर प्रतीक्षातुर (वासक सज्जा) कृष्ण की वेकली का बयान कर उन्हे कुंज पथ की ओर अग्रसर कर देती है । कृष्ण का यह वासकसज्जा रूप देखने योग्य है—

चलि री मग जोवत हैं स्याम ।
निज कर फूलन सेज सँवारी बिया बडी हिय काम ।
बसी अधर धरी तेरो हो गावत राधा नाम ।
ब्रजनिधि सुनत बचन सजनी के चली कुंज अभिराम ॥ २ ॥

—ब्रजनिधि ग्रंथावली, पृ० १५६

इस प्रकार वियोग का अभिनय समाप्त हो जाता है कृष्ण को रति लीला की इन भूमिकाओ को देखने पर ऐसा नही लगता कि रीतिकालीन भक्त कवियो ने ससार से विरक्त होकर कृष्ण शरण की कामना की थी और वह उन्ही के आजीवन शरणापन्न बने रहे । उनकी कुन्ज लीला से कृष्ण रीतिबद्ध कवियो के काम नायको से विशेष समीप हैं । और कुन्ज उनके सहेट स्थलो से भिन्न नही हैं । कृष्ण चरित्र का यहाँ रति भाव से पूर्ण तादात्म्य हो गया है । यह रति निस्सन्देह गौडीय गोस्वामियो द्वारा वर्णित उज्ज्वल रस का कारण अलौकिक कृष्ण रति नही है वरन् लौकिक रति ही है जिससे अमिश्र शृङ्गार रस का परिपाक होता है । रति वर्णन के इस उच्छल प्रवाह से रीतिकाल के कूल कुलावे सरा बोर हो गये हैं । जहाँ मन्दिरो का पवित्र वातावरण था, वहाँ कुन्ज केलिरत कृष्ण अपनी अष्टकालीन लीलाओ म सलग्न दिखाये गये । जहाँ राजदरबार का विलासी वातावरण था, वहाँ वह मात्र नाम रूप में अपनी ऐहिक लीला मे निमग्न दिखाये गये । इस युग के कृष्ण दरबार राज दरबार के निकट आ गये थे । दासो और गोस्वामियो का सम्पर्क सम्राटो और श्रीमन्तों से बढ गया था । राजसी ठाठ बाट का प्रभाव पडना स्वाभाविक था । फलत इससे भक्ति म स्वस्थ चिन्तन और तत्त्व दर्शन का पक्ष दब गया । उसके स्थान पर सेवाओ म राग भोग की ऐहिक विधियो का प्रचलन हो गया । भक्त से ही भगवान् बनते हैं । अब जब भक्त ही भोग विलासी बन गये थे तो उनके भगवान का क्या अंजाम होता [1]?

वस्तुत तत्कालीन विलासिता के दो प्रमुख अंग-कनक और कामिनी से इनका पिण्ड नहीं छूटा था । कृष्ण-दरबार का राजसी ऐश्वय इसका कनक पक्ष है और सन्निवेशित युगल विहार इसका कामिनी पक्ष है । सच तो यह है कि तत्कालीन वृन्दावन के गोस्वामियो का जीवन ससार विरक्त साधु का जीवन ही नहीं था और न आज ही है । वह तो सदा से गृहस्थ भक्त रहे हैं । एक ही युग में भक्ति की धारा और शृङ्गार की धारा बिना एक दूसरे के कूल किनारा का स्पर्श किये कसे बहती ! भक्ति ने शृङ्गार पर कृष्ण पर्यायी नामों का आरोप किया और शृङ्गार ने भक्ति पर रति-सीमाओं और नानाविध काम चेष्टाओं की

१ डॉ० नगेन्द्र-'रीति काव्य की भूमिका', पृ० १६

रंगसाजी की। यह एक मनोवैज्ञानिक दिग्भ्रम[१] है जिससे कृष्ण का स्वरूप गठित हुआ। 'इन कवियों ने भक्ति की शृङ्गारमयी रचना का भक्तिवाला अंश त्याग दिया। आवरण के रूप मे भक्ति रह गयी, ।'[२]

भक्ति शृङ्गार के जिन कवियो ने श्रीकृष्ण लीला वर्णन की (मध्यकालीन) रूढियों का त्याग कर रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ग्रहण और प्रदर्शन किया उनमे निम्बार्क-मतावलम्बी कविवर घनानन्द और रसिक गोविन्द, चैतन्य मतावलम्बी श्री रामहरि और हरिदेव, हितमतावलम्बी चाचा हित वृन्दावनदास और सम्प्रदायमुक्त श्रीगोकुल नाथ जी उल्लेखनीय हैं। घनानन्द और कहीं कहीं उनके मित्र नागरीदास की कृष्ण-लीला पर उनके निजी स्वच्छन्द प्रेम और फारसी प्रेम का सम्मिश्रण है। यहां उनके कृष्ण 'कान्ह महबूब' (इश्कलता) बन गये हैं। वह इस कारण लीला वर्णन के इस नैरन्तर्य की विलक्षण कडी के रूप म अलग से स्मरण किये जाते हैं। स्वच्छन्द प्रेम शृङ्गार वाले अगले अनुच्छेद में उनकी मण्डली सहित इस विलक्षणता की समीक्षा होगी। इनके अतिरिक्त, रामहरि की 'सतहसी' राधा कृष्ण सखी सवादपरक आलकारिक रचना है। 'रसिक गोविन्द' भी आलकारिक रचना है। इनका उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन है। पुन नायिका भेद परक कृतियों मे रामहरि की 'रस पचीसी, हरिदेव की 'रसचन्द्रिका', चाचा की 'छद्म लीला', गोकुलनाथ का 'राधाकृष्ण विलास', रसिकगोविन्द का 'रसिकगोविन्दानन्दघन' आदि द्रष्टव्य हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों मे—गोकुलनाथ का राधाकृष्ण विलास रस सम्बन्धी ग्रन्थ है और जगद्विनोद के बराबर है।[३] वैसे ही रसिकगोविन्द कृत 'रसिकगोविन्दानन्दघन' भारी रीति ग्रन्थ है।[४] इन कृतियों के नायक शृङ्गारदेव श्रीकृष्ण हैं। आचार्य शुक्ल के इतिहास म 'अन्तिम रीतिग्रन्थकार कवि' यही हैं। इन कई दृष्टियो से रीतिकाल म भक्ति शृङ्गार का स्वतन्त्र महत्त्व है।

निष्कर्ष—रीतिकाल मे भक्तिशृङ्गार का सांस्कृतिक मूल्य, स्वच्छन्द शृङ्गार के प्रेमभाव और रीति शृङ्गार की कला चेतना की भाँति ही सत्य और नित्य है। इस युग की कृतियो में इनमें से किसी का भी महत्त्व एक दूसरे से घट कर नही है। किन्तु इस युग से सम्बन्धित आलोचना की भूमिकाओ मे उपलब्ध कृतियो के परिशीलन और मूल्य विवेचन का जैसा पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन हुआ है, शायद वैसे ही व्यापक और सर्वांगीण मूल्यो का निदर्शन न हो सका। यही कारण है कि जहाँ 'रीति शृङ्गार' को रीति शास्त्र के व्यापक पृष्ठाधार पर तोलने के क्रम मे स्वच्छन्द शृङ्गार और भक्ति शृङ्गार अन्तर्हित हो गये, वहाँ रीतिशृङ्गार में से स्वच्छन्द शृङ्गार का दोहन करते समय 'भक्ति शृङ्गार' अन्तर्लीन हो गया। उक्त कथन के प्रमाणस्वरूप 'रीति काव्य की भूमिका[५]' के शृङ्गारिकता (पृ० १५८) और 'भक्ति का स्वरूप (पृ० १६५) शीर्षक प्रखण्ड तथा 'बिहारी[६]' के 'शृङ्गारकाल के' 'विभाजन (पृ० १४) तथा 'विशेषताएँ (पृ० ३६) उपशीर्षक द्रष्टव्य हैं। इनमे बिहारी

१ डॉ० बच्चन सिंह—'रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यजना'—(पृ० ४१)
२ प० विश्वनाथ प्र० मिश्र–बिहारी–'शृङ्गारकाल' (पृ० २२), ३ हि सा० इ०–पृ० ३६१
४ हि० सा० इ०, पृ० २६६, ५ डॉ० नगेन्द्र, ६ प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

की भूमिका मे तो शृङ्गार की–रीतिबद्ध और रीतिमुक्त नाम से—दो अन्तर्वृत्तियो की कल्पना की है, जिसम रीतिमुक्त शृङ्गार में विवेचन-क्रम म भक्ति शृङ्गार को आधार रूप म स्वीकार भी किया गया, किन्तु 'रीतिकाव्य की भूमिका' म अन्य दो अन्तर्वृत्तियो को गतार्थ कर दिया गया है। वस्तुत इसका बहुत कुछ दायित्व आचार्य शुक्ल को है। शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे रीतिग्रन्थकार कवियों को प्राथमिकता देते हुए घनानन्द, आलम, ठाकुर–जिनके पुरोधा रसखान माने गये हैं—इन प्रेमो मत्त स्वच्छन्द कवियों को 'रीतिकाल के अन्य कवि' शीर्षक फुटकल खाते मे डाल दिया। इससे भी अधिक दयनीय स्थिति भक्ति शृङ्गार के कवियो की हुई है जिनके सम्बन्ध म इन्होने मात्र इतना लिखा–'छठा वर्ग कुछ भक्त कवियो का है जिन्होने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तो के ढग पर गाये हैं।' इस सूत्र कथन को देखते हुए प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा स्वच्छन्द शृगार-धारा की प्रेरक पृष्ठभूमि के रूप म किया गया 'भक्ति शृङ्गार' का विवेचन कही अधिक उदार और व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। 'भक्ति शृङ्गार' के स्वतन्त्र और निरपेक्ष महत्त्व को अस्वीकृत कर उसे रीतिबद्ध धारा मे ही गतार्थ कर लेने का सबसे बडा प्रमाण निम्बार्क मतानुयायी सर्वेश्वरशरणदेव के शिष्य वृन्दावनवासी रसिकगोविन्द हैं जिन्हें आचार्य शुक्ल ने अन्तिम 'रीतिग्रन्थकार कवि' माना है।

अस्तु, यदि कृष्ण के भावात्मक स्वरूप को ही मानदण्ड बना लिया जाय तो इन तीन पृथक शृङ्गारी भाव धाराओ का निरपेक्ष महत्त्व स्पष्ट हो जायेगा। इसके साथ २–१ भ्रान्तियो का भी परिहार हो जायगा। एक तो यह कि रीतिकालीन 'भक्तिशृङ्गार' को भक्तिकालीन कृष्ण धारा का सीधा विकास मानकर भी उसकी विलक्षणताओ और विशेषताओ के आकलन के प्रति हमारी दृष्टि सजग होगी और इन राशिभूत काव्य-सम्पदाओ को स्वतन्त्र महत्त्व प्राप्त होगा। इस धारा के कवियो और उनकी रचनाओं मे व्यक्त कृष्ण भावना के अनुशीलन के लिए 'परिशिष्ट १' द्रष्टव्य है।

दूसरे भक्ति शृङ्गार के नायक कृष्ण के प्रति हमारी उन भावनाओ की—जो मात्र रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों के कृष्ण को देखने पर होती थी—उपेक्षा न होगी। इसके साथ ही, इस काल के एक ही कवि की अनेक कृतियो म उपलब्ध कृष्ण सम्बन्धी अनेक दृष्टिकोणो और भावनाओं के विषम स्वरूपो को पृथक पृथक परखने का अवकाश मिल जायेगा। उदाहरणार्थ घनानन्द का काव्य द्रष्टव्य है। घनानन्द और रसखान की कृतियो म कृष्ण दो रूपों में आते हैं। भक्ति शृगार के कृष्ण शृङ्गार देव हैं जब कि स्वच्छन्द शृङ्गार के कृष्ण प्रेमदेव। घनानन्द की 'वियोगवेलि या इश्कलता मे वर्णित 'बाहू महबूब' या 'श्याम-सुजान' वही नहीं हैं जो 'कृपाकन्द या 'कृष्ण कौमुदी' के 'राधा रसिक' 'रसस्वामी' कृष्ण हैं। एक प्रेम सवेदन के प्रतिफल है तो दूसरे भक्ति सवेदन के प्रतिफल। अत इन दोनो म यदि कुछ भी अन्तर मान लिया जाय तो 'भक्ति शृङ्गार' और 'स्वच्छन्द शृङ्गार' का स्वरूप-पार्थक्य स्वयमेव हुआ समझना चाहिए। आगे इसी स्वच्छन्द भावधारा के परिप्रेक्ष्य मे कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप का अकन प्रस्तुत किया जाता है।।

तृतीय अनुच्छेद

स्वच्छन्द शृङ्गार के कवि और कृष्ण

रीतिकाल की परिधि म आने वाले उन कवियो को, जिन्होने रीतिवद्ध काव्य-परिपाटी से पृथक स्वच्छ द प्रेमोमग के भावतरल और रस मिक्त उद्गार प्रकट किये, स्वच्छ द भावधारा के रीतिमुक्त कवियो में परिगणित किया गया है।

आचाय शुक्ल ने इस भावधारा का सूक्ष्म प्रवृत्ति सकेत करते हुए कहा था[1]—'बात यह है कि इन्हे कोई बन्धन नही था। जिस भाव की कविता जिस समय सूझी य लिख गये। अधिकाश म ये भी शृङ्गारी कवि हैं और इन्होन भी शृङ्गार रस के फुटकल पद्य कहे हैं। ऐसे कवियो में घनानन्द सवश्रेष्ठ हुए हैं। रसखान, घनानन्द, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुए हैं उनम किसी ने लक्षणबद्ध रचना नही की है।' इस सुदृढ विचार भूमि पर रीतिवद्ध कवियो से भिन्न किसी 'बन्धन' मुक्त या रीतिमुक्त कवि वग की कल्पना कितनी सहज है, यह कहने की आवश्यकता नही। इन तथाकथित सहज, रीतिमुक्त कवियों की दीर्घा म केवल प्रेमोन्मत्तता के आधार पर कविवर रसखान को परिगणित कर लेना एक निर्भीक किन्तु मौलिक प्रयत्न था। यह केवल शुक्ल जी ही कर सकते थे। उन्होने अन्यत्र रसखान, आनन्द, घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि सभी कवियों की समीक्षा के प्रसग म स्वच्छन्दतावाद का नामकरण और उसकी प्रवृत्तियो का सुस्पष्ट निवचन किया। रसखान से लेकर ठाकुर तक इन प्रवृत्तिया के जो छिटपुट सकेत मिलते हैं इनके आधार पर स्वच्छ दतावाद की निम्न प्रवृत्तिया आकलित की जा सकती हैं—

(१) बडे प्रेमी जीव (२) वही प्रेम अत्यन्त गूढ भगवद्भक्ति म परिणत (३) कृष्णभक्तो के समान 'गीतकाव्य' का आश्रय न लेकर कवित्त सवयों म अपने सच्चे प्रेम की व्यजना-(४) 'प्रेम की पीर' या 'इश्क का दद' (५) सुजान शृङ्गार मे नायक के लिए और भक्ति-भाव म कृष्ण भगवान् के लिए प्रयुक्त (६) अधिकाश कविता भक्ति काव्य की कोटि म नही, शृङ्गार की ही (७) कविता भावपक्ष प्रधान, कार विभावपक्ष का चित्रण कम (८) हृदय या प्रेम का आधिपत्य और बुद्धि का अधीन पद–'रीझ सुजान सची पटरानी, बची बुधा बापुरी ह्व करि दासी। (९) प्रेम की अनिवचनीयता (१०) वियोग शृ गार की प्रधानता (११) रगोन्मत्तता फक्कडपन, भावुकता (१२/ राधाकृष्ण प्रम का विभिन्न ऋतूत्सवो के माध्यम से वणन—बसती, फाग, वसत, होली, हिंडोल। शुक्ल जी के शब्दो मे—'ऐसा स्वच्छन्द कवि किसी क्रम से बद्ध होकर कविता करना भला कहाँ

१ हि० सा० इ०—'रीतिकाल के अन्य कवि' शीषक प्रकरण (पृ० ३२२)

प्रसन्द करता ?'[१] इन कवियो के सम्बन्ध में ब्रजनाथ की निम्न उक्ति प्रवृत्ति बोधिनी मानी गई है—

> नेही महा, ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरताहु के भेद को जानै।
> योग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै॥
> चाह के रंग मे भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
> भाषा प्रवीन, सुछन्द सदा रहै सो घन जू के कवित्त बखानै॥

उक्त विचार बिन्दुओ मे स्वच्छन्द शृङ्गार की प्राय सभी विशेषतायें समाहित हो गयी हैं। स्वच्छन्दतावाद के व्याख्याता पण्डितो ने प्राय इन्ही प्रवृत्तियो का उल्लेख किया है।[२]

(१) व्यक्तिगत प्रेम—सूक्ष्मता से विचार करने पर स्वच्छन्द शृङ्गार के कवियों की भावधारा का नियामक तत्व उनका जीवनगत लौकिक प्रेम प्रतीत होता है। यही प्रेम जो परिस्थिति वश जीवन की असफलाओ से चोट खाकर अन्तमुख हो गया था, काल पाकर कृष्ण प्रेम मे फूट पडा। रसखान, आलम, घनानन्द, बोधा, ठाकुर—सबके सब प्रेमी थे। यदि इस परम्परा को और भी पहले ले जाना चाहे तो मीरा के कृष्ण प्रेम मे भी इसकी झलक मिल सकती है। मीरा, रसखान, घनानन्द और बोधा सबा ने व्यक्तिगत जीवन म प्रेम का गरल पान किया था। निजी प्रेमजन्य कुण्ठा और फलत जीवन के प्रति वैमष्य बोध ही उनके उदात्त प्रेम की मनोवैज्ञानिक व्याख्या है। उनकी तप्त जीवनानुभूति ने ही उनकी काव्यानुभूति का बाना पहना था।

मीरा—जो मैं ऐसा जाणती प्रीति किये दुख होय
नगर ढिढोरा पीटती प्रीति करो जनि कोय।'

रसखान—जो कोउ चाहै भलो अपनो तौ सनेह न काहू सो कीजियो भाई॥८०॥

घनानन्द—या मरिय भरियै कहि क्यों सु परी जिन कोऊ सनेह की फाँसी॥'

ठाकुर—'जानतो जौ इतनी परतीत तौ प्रीति की रीति को नाम न लेतो॥'

बोधा—'बिष खाइ मरै कि गिरै गिरि ते दगादार ते यारी कभी न करै॥' इश्कनामा

कालान्तर में जब इस प्रेम का पर्यवसान कृष्ण प्रेम मे हुआ तो इन कवियो ने कृष्ण प्रेम की गहरी चलती धारा में अपने दिल की करुण रागणी को घोल दिया—

> प्रेम को महोदधि, अपार हेरिकै बिचार
> बापुरो हहरि बार ही ते फिरि आयो है।
> ताही एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ
> नेही हरि-राधा जिन्हैं देखे सरसायो है।
> सोई घन आनन्द सुजान लागि हेत होत
> ऐसे मथि मन प स्वरूप ठहरायो है॥

एक शब्द मे, इनके कृष्ण प्रेम का आधार 'सुजान' प्रेम है। इसका आदि लौकिक और अन्त अलौकिक है। इसे ही लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम म लय या इश्क हकीकी म इश्कमजाजी की परिणति कहते हैं। रसखान, घनानन्द बोधा आदि ने इसका स्पष्ट सकेत किया है।

---

१ हि० सा०इ०-पृ० ३८३। २ प०वि०प्र० मिश्र-बिहारी और घनानन्द की भूमिकाएँ।

रसखान—'वै यह विषयानन्द वै ब्रह्मानन्द बखान ।।'
घनानन्द–'सोई घनआनद सुजान लागि हेत होत '
बोधा—'इश्क मजाजी मैं जहाँ इश्कहकीकी खूब ।–'

उनकी लौकिक प्रेमानुभूति म जा सूक्ष्मता और मार्मिकता है वह रीतिबद्ध कवियो के मासल प्रेम मे नही । यह गूढ और ऐकान्तिक प्रेम नायिका भेद के नीरस फ्रेम म फिट नही बैठता । दूसरी ओर वह भक्ति-श्रृङ्गार की साम्प्रदायिक रूढियो का कायल भी नही । भक्ति श्रृङ्गार के कृष्ण लीला पुरुष हैं । रीति के कृष्ण काम नायक हैं । किन्तु, स्वच्छन्द श्रृङ्गार के क्षेत्र में वह विशुद्ध प्रेम पुरुष हैं । यहाँ उनका सारा माहात्म्य नान भाव तरल होकर वह गया है । राधा और कृष्ण यहाँ विशुद्ध मानवीय प्रेम के प्रतीक बनाकर लाये गये हैं । उनका बाह्य विग्रह मन्दिर के देवता का भले ही हो किन्तु उनके अन्तर में प्रेम की धडकन है । प्रेम को लौकिक क्षेत्र से उठाकर अलौकिक सत्ता से जोड लेने म इन कविया को सूफी 'प्रेम की पीर' से भी प्रेरणा मिली । यह बात उनके द्वारा गृहीत सूफी दर्शन और फारसी शब्दावली के प्रचुर प्रयोग से ही सिद्ध नही होती वरन् कृष्ण के नाम रूप तथा उनके प्रति प्रकट किये गये इनके विषय प्रेम से भी सिद्ध होती है । इस दृष्टि से भारतीय साहित्य को मुसलमानी सस्कृति से प्रभावित समझना चाहिय । इसके परिणाम-स्वरूप उत्तर मध्यकालीन शृगार और रहस्यवादी कविताओ में एक नई तडप पैदा हुई । विरह वेदना का सातत्य बढा और आश्रय की चेष्टाओ के अनुपात मे प्रेमालम्बन की निश्चेष्टता म विषम प्रेम की रूप रेखा देखी गयी । विषम प्रेम की व्यजना मे श्रीकृष्ण चरित म कठोरता का समावेश हुआ । यद्यपि भक्तिकाल की कृष्णलीला के अन्तगत प्रवास और उद्धव प्रसग म भी हम कृष्ण चरित्र म गोपियो द्वारा कठोरता का आरोप लगाते देखते हैं । किन्तु यहाँ इस भावना का फारसी काव्य के प्रभाव से और अतिरेक हो गया । यही क्यो, बल्कि इस प्रभाव से कृष्ण के बहिरन्तर रजित हो गये । पीताम्बरधारी को 'जरद दुमाला ओढाया गया । सक्षेप मे स्वच्छन्द कवियो ने सूफी प्रेम को कृष्ण-प्रेम मे डुबो दिया है । अत इस प्रभाव को 'दोषरहित दूषन सहित' ही कहना चाहिय ।

(२) भावात्मकता—रजन के देवता और मासल प्रेम के भोक्ता कृष्ण के बीच प्रेम मूर्ति कृष्ण की स्थिति अतिशय भावात्मक है । इसीलिए स्वच्छन्द श्रृङ्गार के अन्तगत भावपक्ष की प्रबलता घोषित की गयी है । स्वच्छन्द काव्य भावभावित है, बुद्धि बोधित नही ।[१] यही भावप्रवणता स्वच्छन्द कवियों का अन्तरतम है । इसी अन्तरतम मे भाव पुरुष श्रीकृष्ण विराजते हैं । कवियों की सूक्ष्म कोमल प्रेमानुभूति ही कृष्ण मूर्ति बन कर प्रकट हुई है ।

भावो की व्याप्ति महान् है । यह एक अत्यन्त व्यापक पद है । कलाशास्त्र मे यही 'राग' है कामशास्त्र मे 'काम और काव्य शास्त्र म 'रति । श्रुतियो और पुराणों मे यही ,रस' है, अध्यात्म जगत् म यह भक्ति है और वस्तुजगत् मे प्रेम । मध्ययुग के प्राय, सभी

१ प० वि० प्र० मिश्र—घनानन्द ग्रथावली—वाङ्मुख, पृ० ५

भक्तो ने कृष्ण के इस भावात्मक स्वरूप की ओर सकेत किया है। सूर के शब्दो म—

भाव सों भजे बिन भाव मे ये नही भाव ही माँहि भाव यह बगावे।

रसखान—अँखियाँ अँखियाँ सो सवाय मिलाय हिलाय रिभाय हियो भरिवा।

बतिया चितचोरन चेटक सी रस चारु चरित्रन ऊचरिबो॥ २३

वल्लभ-रसिक—ग्राजु दोऊ झूलत रति रस मानें।

रसखान ने इस भावात्मक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रेमवाटिका म प्रेम को कृष्ण-रूप और कृष्ण को प्रेमस्वरूप कहा है—

प्रेम हरी को रूप है, त्यो हरि प्रेमसरूप।

एक होइ द्व यो लसै, ज्यौं सूरज अरु धूप॥२४

फिर समस्त विधि विधान, क्रिया कलाप, जागतिक अनुष्ठान उसी क मनोभावा के वशवर्ती हैं। स्वय भाव भी तो उसी मनभावन को लेकर साधक और आराध्य त हैं—

प्रान वही जु रहैं रिझि वापर रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।

और कहाँ लौं कहो रसखानि री भाव वही जु वही मनभायो॥ १०२

घनानन्द ने भी हरि को अपनी आत्मा मे प्रतिष्ठित किया है—

कोऊ कहा हमारो करिहै। उर में अर्यो भावतो हरि है॥३५ —मुरलिकामोद

भावात्मक कृष्ण की चराचर मोहिनी सत्ता का ज्वार उमड रहा है। ब्रजवासी जन ब्रज मोहन के इस अनोखे भाव सि धु मे सराबोर हैं—

उरभ अनोखी प्रेम की, ब्रजमोहन के चाव।

सब ब्रज मैं उफनात हैं, ब्रजमोहन के भाव॥ ३७॥ ब्रज ब्यवहार

ब्रज प्रेम के इस उफनते सि धु को ज्ञान या बुद्धि द्वारा विचारपूर्वक पार नही किया जा सकता। उसम प्रेम विवश राधा कृष्ण निरन्तर अवगाहन करते रहते हैं। यह ज्वार वृन्दावनचन्द्र को देखकर और उमडता जाता है। उस विलोडित तरग राशि से विच्छुरित एक कण मात्र इस समस्त सृष्टि के जागतिक प्रेम का आधार है। जगत् के सारे प्रेम *उसी के अगभूत हैं। घनानन्द और सुजान का प्रेम भी उसी एक कण का अशमात्र हैं।* प्रेम के इस स्वरूप की कल्पना मन को मथ कर की गई है। उक्त व्यजना मे भक्ति-शृङ्गार की प्रेम साधना का मधुर छटा है। भक्त भावात्मक या प्रेमात्मक सत्ता को ही परम भाव मानते हैं। इस परमभाव के वशवर्ती होकर ही भावात्मक कृष्ण की उदात्त कल्पना काव्य *क्षेत्र म प्रतिबिम्बित हुई है। यह परमभाव ज्ञान से भी ऊपर है। यही रग साधना है—*

ज्ञान हूँ तें आगें जाकी पदवी परम ऊँची

रस उपजावै तामें भोगी भोग जात ग्वै।

यह राग भी वह अत्युच्च मनोभूमि है जहाँ प्रेमी अपने लौकिक प्रेम का परित्याग कर *महाभाव-स्वरूप श्रीकृष्ण के उदात्त प्रेम म तल्लीन हो जाता है।* इसी तल्लीनता की उप लब्धि के लिए इन भाव-साधको न अपने कृष्ण को भावो का ही विग्रह प्रदान किया है। भगवान् के भावात्मक स्वरूप-ग्रहण के बिना भक्तो का भावुक मन उनसे एकतान नही हो सकता। भारतीय सगुण भक्ति की यह एक अद्भुत उपलब्धि है। स्वच्छन्दमार्गी कवियो ने

इस भाव-साधना को अपने स्वानुभूत 'प्रेम की पीर' से अत्यन्त उच्छ्वासपूर्ण और अश्रु तरल बना डाला है। घनानन्द के शब्दों मे—

ताहि सब गाव एक ता ही को बतावै बेद
पाव फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जलथल व्यापी सदा अतरयामी-उदार
जगत म नावै जानराय रह्यो परि रे।

रीतिकालीन काम साधना के युग म यह प्रेम साधना विरल है। यह स्थूल प्रेमाचार से ऊपर उठे हुए नेही चित्त की व्याकुल मनोदशा है।

भक्त कवियों न एक मार्मिक प्रसग ढूढा है जिनमे मथुरा और द्वारिकावासी कृष्ण के मुख से व्रज-सुधि की भावभीनी उक्तियाँ कहलाई गयी हैं। इसे कमलोक और नान लोक का निराले प्रेम लोक की ओर मधुर दृष्टिपात ही समझना चाहिए। इस कल्पना का चरम विकास गोपी कृष्ण कुरुक्षेत्र मिलन में हुआ है। मध्ययुग के लीला गायको ने कृष्ण के इन सभी प्रसगों पर अपने हृदय के अनन्त उद्गार प्रकट किये हैं। स्वच्छन्द शृङ्गार के कवियों ने भी इन मर्मस्पर्शी प्रसगों से आप्लुत अपने अपने भावों को व्यजित किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि इनकी प्रेम व्यजना की पद्धति विभाव पक्ष प्रधान न होकर भावपक्ष प्रधान है। प्रेम की एकनिष्ठता और विभावपक्ष के स्थान पर भावपक्ष प्रधानता के कारण इनके करुण स्वरो म 'दरददीवानी' मीरा की प्रेमतन्मयता झाँक झाँक जाती है।

गोपी प्रेम—इस प्रसग में कुछ ऐसे भी भाव हैं जिनको रसखान और घनानन्द ने एक-सा प्रकट किया है—

रसखान—ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाँछ पै नाच नचावैं॥ ३२
घनानन्द—जाकी माया जगत नचावै। सो नटनायक इन्हें रिझावै॥ ११६
रसखान—लोक बेद मरजाद सब, लाज काज, सदेह।
देत बहाए प्रेम करि, बिधि निषेध का नेह॥ ७
घनानन्द—त्रिभुवनमई मुकुटमनि गोपी। लोकलाज मरजादा लोपी॥ १६२
पदवी परम प्रेमनिधि पाइ। इनकी महिमा बेदनि गाई॥ १६३
रसखान—हरि के सब आधीन, पै, हरि प्रेम आधीन।
घनानन्द—जीतति अजित अपनपौ हारति॥ १७५

कृष्ण प्रेम की तन्मयता का चरम निदर्शन वहाँ होता है जहा ग्वालिन वृन्दावन की कुन्ज गलियों म दही की जगह घर घर मे मनमोहन कृष्ण को बेचती फिरती है।

मीरा—या ब्रज मे कछू देख्या री टोना।
ले मटुकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा नद जी के छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी ले लेहु री कोई श्याम सलोना।'

घनानन्द—एक डोलै बेचति गुपालहि दर्हहि धरें,
नैननि समान्यो सोई बैननि जनात है।
गोकुल बधूनि की बिकानि पै बिकाय रहै,
गोरस ह्वै गली गली मोहन बिकात है॥ ३९॥—प्रेमपत्रिका।

मीरा जहाँ इस लीला प्रसंग से कृष्ण के रूप का प्रभाव व्यंजित करना चाहती हैं वहाँ घना-नन्द उस मधुर छवि से आगे बढ़कर कृष्ण के उस भावात्मक स्वरूप का वर्णन करते हैं– जो सुहृद के साँचे में ढलकर अपनी द्रवणशीलता का परिचय देता है।

वंशी महिमा—जहाँ रीति शृंगार के कवियों के कृष्ण सामान्य वंशी बजाते और उससे अभिसार संकेत का काम लेते हैं वहाँ स्वच्छन्द शृङ्गार के कवि कृष्ण वंशी की विरह रागिणी सुनकर कातर हो उठते हैं। महामिलन के इस सुर-सम्मेलन में भी इन गोपियों को आसन्न व्यथा की करुण पुकार सुन पड़ती है—

मनमोहन की बँसुरिया, बँसुरिया बाजे बिरह भरी।
सुनि व्याकुल प्रान होत हमारे रह्यो न परत घर एक घरी ॥ ७ (पदा०)

जैसा कि ऊपर कहा गया, इन कवियों ने भक्तिकाल के कृष्ण-लीला-वर्णन की रूढ़ प्रणाली का परित्याग कर केवल भावपूर्ण, प्रधान रचनाएँ की हैं। अतः उक्त विभावात्मक प्रसंगों के स्थान पर वियोग की आत्मनिवेदनात्मक उक्तियों का ही अधिक प्रसार मिलता है।

हित मूर्ति कृष्ण—कवि हितमूर्ति की आरती उतारते हुए कहता है—

नेह सों मोय संजोग धरी हिय दीप दशा जु भरी अति आरती।
रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि और निहारनि।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि वियोग निवारति।
भावना थार हुलास के हाथनि यों हित मूरति हेरि उतारति ॥ ५०७ (सु० हि०)

यहाँ जो आरती उतारी गई है उसमे हृदय ही दीपक है। नेह तेल है, वियोग बाती है और मोहन रूप उसकी ज्वाला है। यह आरती जिस थाल मे उतारी जा रही है वह भावना की है और हर्षोल्लास के रोम-करों से हित (प्रेम) मूर्ति कृष्ण को अपलक निहारते हुए हृदय का यह समारोह सम्पन्न हुआ है। यहाँ 'हित मूरति' शब्द प्रेम मूर्ति कृष्ण के लिए आया है। प्रसंगवश 'हित तत्त्व' पर विचार कर लेना चाहिए।

हित अर्थात् प्रेम। यह हित शब्द हित हरिवंश सम्प्रदाय का 'तत्त्व बीज' है। घना नन्द के उद्धृत पद का भी यही गूढ़ाशय है—

गोई घनआनँद सुजान लागि हेतु होत
ऐसे मथि मन पै स्वरूप ठहरायो है ॥

इस प्रकार, हितमूर्ति कृष्ण सम्बन्धी धारणा और प्राय प्रत्येक पद मे हिततत्त्व की छाप कवि के वैष्णवी मानस पर पड़े हित सम्प्रदाय के प्रभाव को प्रमाणित करती है। इन कोमल उपादानों से कवि की भावुकता और कृष्ण की भावात्मक सत्ता का पता एक ही साथ चल जाता है।

हिन्दी कृष्ण काव्य की रस धारा मे इन दर्दैदिल कवियों का 'प्रेम की पीर' को ले कर अनूठा स्थान है। सम्प्रति, इसी विरहानुभूति की पट्टभूमि पर कृष्ण चरित के स्वरूपा कन का प्रयास किया जायगा।

'प्रेम की पीर'—स्वच्छन्द प्रेम साधना का नित्य लक्षण है-विरह। वास्तव मे इन विरही कवियों के जीवनगत जिस लौकिक प्रेम की कृष्ण प्रेम मे परिणति हुई थी, वही

विरह प्रधान प्रेम था। विरह प्रेम की परिणति जब कृष्ण प्रेम में हुई तो विरह-प्रधान गोपी प्रेम से उनकी इस उदात्तीकृत भावना का तादात्म्य स्थिर होना स्वाभाविक ही था।[1] प्रश्न हो सकता है कि प्रेम से भक्ति अथवा राग से विराग की ओर उन्मुख होने पर अन्य प्रेम साधनाओं की अपेक्षा कृष्ण प्रेम साधना ही इन्हें विशेष रुचिकर क्यों प्रतीत हुई? उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है कि इन प्रेम साधकों ने लौकिक प्रेम के विफल होने पर भी भाव को छोड़ बुद्धिवाद या राग को छोड़ विराग का पल्ला कभी नहीं पकड़ा। कृष्ण प्रेम की विशेषता ही यह है कि इसमें राग का वारण नहीं, शोधन या उदात्तीकरण हो जाता है।[2] इसलिए प्रेमी अपनी समस्त भावुकता, विरह वेदना, रागात्मकता को साथ लिए इसमें सुगमता से तल्लीन होते हैं। केवल, लौकिक प्रेम मिलन के स्थान पर यहाँ काल्पनिक प्रेम लीला का परोक्ष विधान रहता है। अनित्य संसार के अनित्य प्रेम को नित्य प्रेम में परिणति देने के लिए कृष्ण चरित का यह भावात्मक पक्ष अत्यन्त सम्मोहक, रमणीय और प्रेरणादायक रहा है। इसीलिए दरदीवानी मीरा ने जीवन पर्यन्त अपने दग्ध हृदय को श्याम सलोने नटवर के चरणों में समर्पित कर वैधव्य की वेदना को अन्तर्हित कर डाला। रसखान ने 'मानिनि' और 'मोहिनी' के अहंकार को प्रेमदेव की महाछवि में विसर्जित कर दिया। तद्वत् घनानन्द और बोधा ने भी सुजान और सुभान के प्रेम को 'प्रेम की महोदधि' में अवगाहन करने वाले 'नेही राधा कृष्ण' की तरंगों में तदाकार कर दिया। प्रेम के इन दीवानों को इस अनोखे खड्ग पथ पर बड़ा ही गर्व है—

जान 'घनानन्द' अनोखो यह प्रेमपथ
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै। —२६६ (सु० हि०)

विचार करने पर इनके प्रेम के दो मानसिक स्तर प्रतीत होते हैं—(१) पहली अवस्था में लौकिक प्रेम के आलम्बन सुजान, सुभान आदि का कृष्ण के साथ सहभाव रहता है। यह अवस्था लोक में विशुद्ध प्रेम का चरमादर्श है। प्रेमालम्बन की एकनिष्ठता और प्रेम मिलन की प्रत्यक्ष दशा सघटित न हो सकने के कारण इसकी स्थिति लौकिक होने पर भी अत्यन्त सूक्ष्म, गंभीर और मानसिक है। यह लोक में लैला का तन्मय प्रेम है जिसकी लोकोत्तर झलकियाँ प्रेम के मानसिक धरातल का स्पर्श करती हैं। यहाँ तन के सम्मिलन की गवाही भी है और मानस समग की रमणीयता भी।[3] विद्वान् स्वच्छन्दमार्गी कवियों के इसी प्रेम पक्ष पर फारसी प्रेम का प्रभाव परिलक्षित करते हैं। यहाँ प्रेमालम्बन की स्थिति 'सुजान कृष्ण' के मध्य बहुत कुछ द्वन्द्वात्मक है। 'सुजान हित' इसी मन स्थिति की कृति है। श्रीकृष्ण का 'सुजान', 'जान' या 'जानराय' आदि पर्याय देकर उनकी प्रेम लीला के व्याज से अपने सुजान विरह की व्यंजना की गई है। सच्चे अर्थों में कृष्ण-लीला के माध्यम से इन्होंने अपनी आत्मानुभूति को ही अभिव्यक्ति दी है। स्वभावतः आगे चल कर कृष्ण 'महबूब' बन गये हैं—

---

१ प० वि० प्र० मिश्र—घनानन्द ग्रन्थावली—'वाङ्मुख', पृ० ४१

२ डॉ० बचन सिंह—री० क० प्रे० व्य०, पृ० ३१

३ रसखान प्रेमवाटिका—३३-३४।

'सो साँचो ब्रजराज है जो मेरा महबूब ।' —बोधा (विरहवारीश)

स्वच्छन्द मार्गी कवियों में रसखान, घनानन्द और बोधा में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक परिलक्षित होती है। घनानन्द की 'इश्कलता' और 'वियोग बेलि' तथा समसामयिक भक्त नागरीदास के 'इश्कचमन' और बोधा के 'इश्कनामा' में प्रेम की यह इश्तरफा चीख-पुकार अधिक सुन पड़ती है। इस विषम प्रेम के चित्रण में पूर्वराग, उपालम्भ, प्रेम की निष्ठुरता और तज्जन्य दैन्य और निराशा के उच्छ्वास सम्मिलित हैं। यहाँ प्रेमालम्बन 'माशूक महबूब' हैं जो अपने स्वभाव में अत्यन्त कठोर और निर्मम, रूप और गुण में अत्यन्त बेपीर और बेदर्द हैं। उनके परन्तु सन्तापर और संवेदनात्मक स्वरूप का यहाँ पूर्ण निषेध है। यह बात कृष्ण-स्वरूप की महान् विभूति 'भृत्यानुग्रह कातरम्' को देखते हुए अत्यन्त अस्वाभाविक प्रतीत होती है। किन्तु, जैसा कि ऊपर कहा गया, यह फारसी प्रेम वैषम्य का कटु प्रभाव है जिसमें आनन्दकन्द भगवान् कृष्ण को सामान्य मानव बनाकर उनका 'महबूबीकरण' कर दिया गया। पीछे महबूब की सारी नागर चेष्टाओं से संयुक्त इस व्यक्ति को महबूबा की हाय तोबा भी सुननी पड़ी। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होगी—

(१) पल पल प्रीति बढाय हुआ बेदरद है। आसिक-उर पर जान चलाई करद है। ७
(२) क्यो चित चोर किसोर हुआ बेपीर है। भौंह कमाने तान चलाया तीर है। ८
(३) ओढे जरद दुसाला यारा केसर की सी क्यारी है। १४

किसी विजातीय रंग से सांस्कृतिक चित्र में कितनी विरूपता आ जाती है, उपर्युक्त उदाहरण इसके प्रमाण हैं। 'सोहत ओढे पीत पट' के ढंग पर 'ओढे जरद दुसाला' या फिर 'हुस्न सराबी' आदि पंक्तियाँ तो शराब में गर्क होकर ही लिखी जा सकती हैं। फिर लीला पुरुषोत्तम यदि 'मजनूं' और 'महबूब' बन जायँ तो आश्चर्य क्या !

(२) दूसरा स्तर अलौकिक प्रेम का है जहाँ सुजान, जान या जानराय आदि प्रेम के लौकिक आलम्बनों का अलौकिक आलम्बन श्रीकृष्ण के स्वरूप में पूर्ण विलयन हो गया है। यहाँ 'सुजान' आदि व्यक्ति बोधक नाम गुण बोधक या भाव बोधक हो गये हैं। यह स्थिति इनके सुजान प्रेम की कृष्ण प्रेम में परिणति की परिचायिका है। यहाँ प्रेमालम्बन की सत्ता बहुत कुछ अतिशयोक्ति मूलक है, जहाँ उपमान द्वारा उपमेय का पूर्णत निगरण हो जाता है। श्रीकृष्ण के प्रति प्रकट की गई अनुरक्ति विशुद्ध और तात्त्विक है। इसका प्रवर्ती आधार सुजान के लौकिक प्रेम की मर्म व्यथा भले ही हो किन्तु इसकी परमावधि गोपी विरह में और प्रकारान्तर से कृष्ण प्रेम में ही हुई। यह बहुत कुछ आत्मगोपन की सी अवस्था है। जिसमें रहस्य की झलक भर मिलती है। साथ ही इसमें सूफी प्रेम की पुकार भी सुनी गयी है।[२]

---

१ रसखान—मन लीना प्यारे चितै, प छटांक नहिं देत।
यहै कहा पाटी पढ़ी, दल को पीछो लेत ॥ ४६
घनानन्द—तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो कहो मन लेहु प देहु छटांक नहीं ॥ ८४

२ प० वि० प्र० मिश्र—बिहारी, (पृ० ३५)

सूफी प्रेम बनाम कृष्ण प्रेम—इन कवियो की विरहानुभूति, रहस्यवाद, प्रेम पद्धति तथा व्यजना प्रणाली इन सभी पक्षो पर विचार करने पर इनपर सूफियो का विशेष प्रभाव परिलक्षित नही होता।

(१) गोपियो की विरहानुभूति में इतनी व्याप्ति है कि उसमे लीन होने का इन्हे पूरा अवकाश था। भगवान् कृष्ण के गुणमय रूप की आसक्ति और आनन्दघन से द्रवित होने वाले रस कण इन प्यासे पछी को कृष्ण प्रेम में पूरी तरह सराबोर करते हैं।

(२) सूफियों का विरह सुखान्त है, दुखान्त नही। किन्तु, कृष्ण प्रेमी घनानन्द चिरन्तन विरह की व्याकुल पुकार लेकर काव्यक्षेत्र मे अवतरित हुए। (३) विरह के कारुणिक प्रसगो मे वीभत्सता का वैसा समावेश भ नही है बल्कि उसके स्थान पर मानसिक वेदना की ममस्पर्शी उक्तियो से समस्त काव्य महिमाशाली हो गया है। यहाँ कवि की तुलना मीरा की विरहिणी आत्मा से ही हो सकती है जिनके कृष्ण विरह मे समस्त प्रकृति रोई थी—

मीरा—बरसै बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
घनानन्द—सावन आवन हेरि सखी। मनभावन आवन चोप बिसेखी।

हाँ, उनकी 'उघरो जग छाय रहे घनआनद चातकि ज्यो तकियै अब तौ'—आदि पक्तियो म उस रहस्यमय प्रेम की झलक अवश्य मिलती है जो ससार की आखो से हट जाने पर चारो ओर आनन्द घन रूप मे छा जाती है। किन्तु (४) घन चातक की प्रतीक योजना भी मूलत वैष्णव भक्ति की साधना का अग है। कृष्ण के आनन्दघन विग्रह रूप की रस-कल्पना 'गोपाल तापिनी' आदि म बहुत पहले हो चुकी थी। भागवतादि शास्त्रो में भी उसकी अनेकश व्यजना मिलती है। उसी प्रकार चातक भी वैष्णव भक्तो (सूर, तुलसी) के पर्याय प्रतीक रहे हैं। अत घनानन्द और चातक के ये प्रेम प्रतीक सूफी रहस्यवाद से गृहीत न होकर वैष्णव भक्तिवाद से प्रत्यक्षत आयातित हैं। (५) इसी से सूफियो की भाँति रहस्यदर्शिता के व्याख्यान की व्यापक वृत्ति इनमें नही रह गई। निर्गुण को त्याग कर सगुण की ओर प्रवृत्ति हो जाने से इनम रहस्य की वृत्ति विस्तार न पा सकी। इस तरह दार्शनिक सिद्धान्तो की दृष्टि स आनन्दघन सूफियो से भिन्न हैं।[1]

साराशत इनके प्रेम की पीर मे एक तात्त्विक विलक्षणता झलक मारती है। वह है-हितमूर्ति कृष्ण के आनन्दघन विग्रह का चातक रूप में रसपान करने की बलवती आकांक्षा, रसपान कर लेने के अनन्तर भी अलौकिक चित्त की प्रेम पिपासा का अनवुझ बना रहना, अलौकिक प्रेमी म फारसी प्रेम वैषम्य के कठोर नायक की अपेक्षा सरसता, उदारता आदि का सन्निवेश। यह अन्ततोगत्वा सूफी प्रेम की पीर का वैष्णव रस-साधना म पर्यवसान हो सिद्ध करता है।[2] यह प्रेम-सवेदन स आगे कवि की भक्ति सवेदनात्मक मनोभूमि की परिचायिका है। यहाँ निर्गुण का मान सगुण के रूप सम्मोहन, स्वरूप-

१ डॉ॰ मनोहर लाल गौड़—'घनानन्द और स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा' पृ० १६२
२ प० वि॰ प्र॰ मिश्र-बिहारी (पृ० ३५)

साक्षात्कार की स्पृहा, पूर्वराग, मान, मिलन और वियोग, कृपा और दैन्य की नाना अनुभूतियों में विलीन हो जाता है। मीरा और रसखान इस भाव धारा के अग्रदूत हैं। वैसे, घनानन्द की काव्य चेतना पर यदि किसी अन्य कवि का सार्वभौम प्रभाव स्वीकार किया जाय तो वह स्वयं रसखान ही होंगे। उनकी और अनुभूतियों में कवि का भाव साम्य ही नहीं दीखता, पदानुकरण भी प्रकट होता है।

हित मूर्ति कृष्ण—पदावली के स्फुट पदों को छोड़ 'सुजानहित' कवि की दूसरी प्रतिनिधि रचना है। भावों की दृष्टि से इसे कवि मानस की सक्रान्ति की कविता कह सकते हैं। इसमें सुजान और हितमूर्ति कृष्ण के प्रेम का धूप छांह दिखाई पड़ती है। यहीं सुजान प्रेम का कृष्ण हित में उत्तरोत्तर रूपान्तरण भी देखा जा सकता है। एक ओर तो कवि की माशूका-'केलि की कलानिधान सुन्दरि महा सुजान' है जिसकी अग कान्ति 'लगी है गुराई में कैसी सलाई' के रूप में लौकिक सौन्दर्य का सम्पूर्ण शृगार है और दूसरी ओर 'स्याम सुजान' की सलोनी मूर्ति का प्रकाश है। सौन्दर्य की यह नित्य नूतन सुषमा अपने प्रभाव में कवि हृदय के लिए चिर नव सचारिणी रही है। विद्यापति के शब्दों में—से हो पिरित अनुराग बखानियित तिले तिले नूतन होय।' घनानन्द के शब्दों में—'रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियें।' अन्तत कवि का लोह चित्त स्याम सलोने के हित चुम्बक के प्रभाव में आ ही जाता है, जिसके फलस्वरूप-'उर आवत यों छवि छांह ज्यौं हौं ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं।' फिर तो रूप गुण शील का ऐसा वशीकरण होता है कि कवि का सम्पूर्ण अस्तित्व ही उस सम्मोहन पाश में आबद्ध हो जाता और अनुक्षण उसके चातक प्राण 'हित निधान प्रीतम' के वियोग में तड़पते रहते हैं—

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,
कैसें रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
बिरह नसाय दया हिये में बसाय आय,
हाय कब आनद को घन बरसाय हौ ॥ २४

जब यमुना तट के कुन्जों में अनवरत हो रही गोपी कृष्ण-लीला के रूप में आनन्द के घन छाते और हित के रस पुज बरसते हैं तब कहीं प्रेम पिपासु इस पछी की प्यास बुझती है—

गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यो तब लौं मन गुजन।
नीरस की रसिकाई कहा सब ही बिधि है सठ रे सठ भुजन।
प्रेम पिकीन की प्यास भर्‌यौ घनआनद छायो जहां हित पुजन।
सीरी सुदेस सदा सुखमैन बसे जमुना तट की बन कुजन ॥ ४७६ ॥

अन्ततोगत्वा राधा कृष्ण युगल केलि के महारस में ही कवि की जड़ीभूत कारिणी सयोग वियोगजन्य धारणायें निमज्जित हो जाती हैं—

हरिराधा जहीं जहीं राजत हैं वह ठौर जथारुचि रजन है।
सु संजोग वियोग महारस रूप तिहीं तित ही मन मंजन दे।
न मिलै बिछुरैं कतहूँ न कहूँ घनआनँद यौं भ्रम भजन ज।
लखि लै सुख सपति दपति मैं ब्रज की रज आँखिन अजन क ॥ ४८० ॥

कवि ने इसी 'हित मूर्ति' कृष्ण की भाव भीनी आरती अ त मे उतारी है।

आनन्दघन कृष्ण—साधक कवि की विरहिणी आत्मा घनश्याम कृष्ण के आनन्द-रस मे ही परितृप्त होती है। घन मे जैसे लोक मगल की भावना रहती है वैसे ही आनद घन कृष्ण के प्रेमानुराग को भी कवि कृपा वृष्टि ही समझता है। इससे उसके लोक व्यापी वियोग की अमर वेलि हरीभरी हो जाती है। फिर इसके बाद उसके तृप्त चित्त म कोई चाह नही जगती। वह पूर्णकाम बन जाता है। 'कृपाकन्द' में जिस आनन्द कन्द कृष्ण का अवतरण हुआ है, उसका स्वरूप पूर्ण 'आनन्दघन' का ही है।—

चाहियै न कछू ताकी चाह जातें फल पायौ,
यातें वाही बन के सरूप नैन कीनौ घर।
ज्हा राधा–केलि–वेलि कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कून कालिंदी सुदेस पर।
महा घनआनँद फुहार सुखसार सीचे,
हित–उतसविनि लगाय रग भरयौ झर।
प्रेमरस–मूल–फूल मूरति बिराजौ मेरे,
मन आलबाल कृष्ण–कृपा को कलपतर ॥१३॥

उपयु क्त पदो म लगातार हितमूर्ति की भावोपासना युगल दम्पत्ति की कुन्ज केलि, सयोग-वियोग के परे महासुख की स्थिति कल्पना, 'राधा केलि बेलि' मे राधा पद की कारण रूपता तथा 'घनआनद फुहार' मे कृष्ण पद की काय रूपता तथा सबसे बढकर इसे 'हित-उत्सव' की सज्ञा देना हित सम्प्रदाय की ओर कवि की रुझान के द्योतक हैं। सम्प्रति, हित मूर्ति कृष्ण के आनन्दघन स्वरूप को अन्य उदाहरणो से स्पष्ट किया जाता है—

(१) आनद के घन झूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत–लता पोप जू ॥३३॥कृ० क०

कृष्ण हैं 'आनदघन', घनानन्द हैं 'हेत लता'। इसे सखीभाव के अन्तगत प्रेम लता भी समझ सकते हैं।

(२) रसिक रँगीले भली भातिनि छबीले,
घनआनद रसीले भरे महा सुखमार हैं।
कृपा धनधाम स्यामसुन्दर सुजान मोद—
मूरति सनेही बिना बूझें रिझवार हैं।
चाह–आलबाल औ अचाह कै कलपतरु,
कीरति–मयक प्रेम–सागर अपार हैं।
नित हित सगी मनमोहन त्रिभगी मेरे,
प्राननि अधार नदनदन उदार हैं ॥३६॥ घ०क० (सु०हि०–४२७)

उपयु क्त पद म प्रेमी कृष्ण के—रसिक, रगीले, छवील, घनआनद, रसीले, स्यामसुदर, सुजान, मोदमूर्ति, स्नेही आदि अनेक स्वरूपो की व्यजना की गयी है।

(३) इन सबों की पराकाष्ठा कवि की उस निविड़ अनुभूति में होती है जहाँ वह दैन्य और समर्पण की अंजलि कृष्ण के चरणों में बिखेर देता है—

रोवनि आंसू न नैननि देतैऽव मौन मैं व्याकुल प्रान पुकार।
ऐसी दसा जग छायो अंधेर बिना हित-मूरति मौन गहार।

अपने अस्तित्व को मिटाकर कृष्ण में तदाकार हो जाने की दशा भाट ने ही रसखान को 'रसखान' और घनानन्द को 'घनानन्द' बनाया है। वस्तुतः ये दोनों ही नाम कृष्ण के भावात्मक प्रतीक हैं।

'मिलन बिछोह'—स्वच्छन्द कवि की मिलन वियोग जन्य धारणाएँ कुछ अनूठी हैं। यहाँ वियोग दशा का सातत्य तो है ही, संयोग की दशा में भी उसकी स्थिति बनी हुई है। यहाँ संयोग में भी वियोग पीछा नहीं छोड़ता। स्थूलतः वेदना के प्रतिरेक और उसके अहर्निशि मानस मन्थन का ही यह मनोवैज्ञानिक परिणाम है। यह अनोखा अनुभव है—

मोहन अनूप रूप सुन्दर सुजान जू को, ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हि लग देया बिछुरे तो मिल्यो चाहै, मिले हू मैं मारै जोरै खरक
बिछोह की। २७६ (सु० हि०)

वियोग में संयोग प्राप्त करने की इच्छा तो स्वाभाविक भी है परन्तु विडम्बना यह है कि मिलन काल में भी बिछोह की खटक बनी रहती है। प्रिय केवल कृपानन्द ही नहीं आश्चर्य निधान भी हैं—अचिरजनिधि है—

अचिरजनिधि है तिहारी सब बिधि प्यारे
कृपा होति पलित ललित लता छोह तैं।
मिलन तैं ज्यौं ही बिछुरन करि डार्यो, तारी
त्यौं ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तें ॥३५८॥—सु० हि०

इन स्वच्छन्द प्रेमियों का मिलन वियोग उभयविध सम है—

सु था पति मग न जानति है, घनआनद जान बिछोह की गाढ़ै।
वियोग मैं बैरिनि बाढति जैसी, कछु न घटै, जु सजोग हूँ बाढ ॥३६०

इसी भाँति इनकी मार्मिक उक्तियों में मिलन वियोग के घात प्रतिघात अनेकश चित्रित हैं—

घनानन्द—घन-आनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै।
अमिले रहिबे लै मिले तें कहा, यह पीर मिलाप मे धीर गिलै ॥४१४॥
(सु० हि०)

आलम— सुखी तुम कान्ह हो जु आन की न चिन्ता
हम देखे हू दुखित अनदेखे हू दुखित हैं॥ आलमकेलि (६/१८५)

जो पीर प्रिय मिलन काल में भी धैर्य का निगरण कर जाती है वह कवि हृदय की चिरन्तन प्रेम पिपासा का साक्षी है। यह अधैर्य, यह असन्तोष, यह तड़प और यह बेचैनी ही सच्चे प्रेम का स्थायी स्मारक है। प्रेम मार्ग के प्रवीण पथिक और रसज्ञाता कवियों ने प्रारंभ से ही मिलन वियोग के घात प्रतिघात का संकेत किया है। विद्यापति के शब्दों में—'जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल'। चण्डीदास के अनुसार—'दुहुँ क्रोडे दुहुँ

कादे विच्छेद भाविया'। यही नहीं, कवि अन्तरघृत इस 'प्रेमवैचित्र्य' का रसमय निरूपण प्राय सभी वष्णव कवियो ने किया। सूरदास के शब्दों मे—

राधेहि मिलेहु प्रतीति न आवति।
यदपि नाथ विधु वदन विलोकति दरसन को सुख पावति॥
विरह विकल मति दृष्टि दुहूँ दिसि सचि सरधा ज्यो धावति॥—सू० सा०

हित सम्प्रदायी स्वामी हितहरिवंश ने भी इस भाव का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

कहा कहौं इन नैननि की बात।
जब जब रुकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलात।
लम्पट लव निमेष अन्तर ते अलप कलप सत मात॥६०॥ हि० चौ०

राधा कृष्ण के बीच पल भर की दृष्टि बाधा से उनके मन मे अपार वेदना का अनुभव होता है। कैसी यह वेदना? इस जिज्ञासा के समाधान के लिए हितहरिवंश ने सारस और चकई की प्रणय पद्धति की बड़ी ही मार्मिक व्यंजना की है। हितहरिवंश चकई के प्रेम की पीर और सारस के मिलन माधुर्य की एकाग्रता को भली भाँति परखते हैं। उनकी दृष्टि मे प्रेम का सच्चा मम है—'प्रेमविरहा' अर्थात् मिलन में भी विरह की सत्ता का भान। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कुछ विद्वानो की यह मान्यता कि—'युगल किशोर श्री राधावल्लभ लाल के नित्य मिलन मे वियोग की कल्पना तक नहीं है,'[१]—पूर्णत सत्य नही। हित हरिवंशियो ने राधा के मान और कृष्ण के विरह का बड़ी ही निपुणता से चित्रण किया है। इस आधार पर स्वच्छन्द कवियो के 'मिलन विछोह' को भली भाँति परखा जा सकता है।

अब देखना यह है कि कविवर घनानन्द ने मीन और पतंग की प्रेम पद्धति के व्याज से अपने 'हित' के सम्बन्ध मे क्या कहा है? और, क्या वह हित सम्प्रदाय के 'हित-तत्त्व' से प्रभावित है?

मीन जीवन वियोगप्रधान है और पतंग जीवन मिलन प्रधान। मीन के वियोग की सिद्धि जल से विलग होते ही हो जाती है और वैसे ही पतंग का मिलन सुख शमा से मिलते ही हो जाता है। किन्तु, इनके मिलन वियोग की ये दोनो ही दशाएँ आदर्श प्रेम की पीर का स्पर्श नही कर सकती। घनानन्द के शब्दो मे—

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीनतज्यौ तरसै।
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै॥
बिछुरें मिलें मीन पतंग दसा कहा मा जिय की गति को परसै॥

मीन जल से अलग होते ही चिर विश्रान्ति का लाभ करता है किन्तु, यहाँ तो मित्र के वियुक्त होने पर प्राण तिल तिल तरसते हैं। पतिंग शमा की रूप-छटा को सम्हाल न सकने के कारण उसमे कूद प्राण विसर्जित कर देते हैं। किन्तु, यहाँ तो प्रिय के रूप तेज में प्राण तिल तिल जलते भी हैं और जलकर भस्म होन के बजाय पानी बन कर बरसते हैं। अत मीन के वियोगान्त और पतंग के मिलनान्त से ऊपर उठी हुई कवि हृदय की प्रेम पीर

१ प० व० उपाध्याय—'भागवत सम्प्रदाय' (पृ० ४४०)

कहीं अधिक विलक्षण और भास्वर है। वह न तो मीन की भांति कायर है और न कीट की भांति अधीर चचल। वह तो मिलन वियोग से परे निविड मन की वह अतर्कित दशा है जहाँ वियोग मे मिलन का ज्वार उमड़ता है और मिलन म भी वियोग की लपटें उठती हैं—

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलै अनमिले कछू करि न सकों तरक ।।४४४।।—सु०हि० (कृ०क०३६)

यही 'प्रेम बिरहा' की काव्यात्मक व्याख्या है। घनानन्द ने अन्तत अपने इस अनूठे 'मिलन विछोह' का चरम पयवसान राधा-कृष्ण की नित्य केलि में ही किया है—

हरि राधा जहीं जहीं राजत हैं वह ठौर जथारुचि रजन है।
सु सँजोग वियोग महारस रूप तिहीं तित ही मन मजन दे।
न मिले बिछुरे कतहूँ न कहूँ घनआनँद यों भ्रम भजन जे।
लखि लै सुख सम्पति दम्पति मैं ब्रज की रज आंसिन अजन कै ।। ४८० (सु०हि०)

वस्तुत घनान द का 'मिलन विछोह' हित-सम्प्रदाय के 'प्रेम विरहा' से अनेकश प्रभावित है। कि तु, मध्ययुग का यह रस दशन घनान द तक आते आते कान्यात्मक अनुभूति से सयुक्त हो गया है। फिर-दोनों म साहित्यिक परिवेश का अन्तर भी है। पहले म जहाँ साम्प्रदायिक कृष्णभक्ति की गुह्यता है, वहाँ दूसरे मे स्वच्छन्द प्रेम की मादक सुरभि। हाँ जहाँ घनानद अपने सुजान प्रेम की पार्थिव वेदना को कृष्ण प्रेम मे ढाल कर उसे 'मिलन विछोह' की अतीन्द्रिय भूमिका तक पहुँचा देते हैं वहाँ वह रीति कालीन अपने अन्य सह धर्मियो के पास से खिसक कर भक्तिकालीन रसमार्गी दीर्घा म पहुँच जाते हैं। और, उनके अन्तर से नि सृत इन शब्दो-'ताहि एकरस ह्वै विवस अवगाहैं दोऊ नेही हरि राधिका जिन्ह सरसायो है।'—का हितहरिवशादि रस रसिक वैष्णवो के उद्गारो से कोई तात्विक अन्तर नहीं रह जाता।

शृगार वर्णन—स्वच्छ द शृङ्गार के कवियो का प्रेम उनके अन्तरतम की पुकार है। उसमे बाह्य रूप-व्यापारो का कृत्रिम समावेश नहीं है। उनके प्रेम को निरखने के लिए उनके जीवन को परखना आवश्यक है। अपने लौकिक जीवन म इस कोटि के प्राय सभी कवियों को देखने से एसा लगता है कि उन्होंने दरबारी सीमा का अतिक्रमण कर निबन्ध भाव से जीवन भोगा था—एक ऐसा जीवन जिसमे प्रेमोभग का ही सर्वोपरि महत्व हो। राजदरबार की अपेक्षा इनम कृष्ण दरबार की ओर अधिक आकर्षण था। स्वभावत इनका जीवनादर्श जिस साँचे म ढल कर गठित हुआ उसम नित्य उमग और परम प्रेम के आदर्श को प्रतिष्ठित कर चलने वाले कृष्ण और गोपियो के जीवनानुकरण की लालसा थी।[1] अत शृङ्गार वणन के क्षेत्र मे भी जहाँ इन्होंने राधा कृष्ण प्रेम का चित्रण किया है वहा आत्मानुभूति के विनियोग से एक रूढ़ि मुक्त स्वच्छन्द पद्धति का सकेत मिलता है। उसमे न तो भक्तिकाल की कृष्ण-लीला का सागोपाग चित्रण है और न बाह्य रूपाकारो की स्थूलता। कल्पना और भावुकता के धनी रीतिकाल मे अकेले घनानन्द की राशिभूत कृतिया

१ प० वि० प्र० मिश्र—घनान द ग्रन्थावली-'वाङ्मुख' (पृ० २७)

मे—भक्ति-शृगार, स्वच्छन्द शृङ्गार और रीति शृङ्गार की त्रिविध प्रवृत्तियाँ वर्तमान हैं। किन्तु, उनका औरस रूप स्वच्छन्द प्रेम में सुरक्षित है और आनुषंगिक रूप भक्ति-शृङ्गार म। इनके शृङ्गार वर्णन का आधार राधा कृष्ण का सौन्दर्य है और इस सौन्दर्य का आलम्बन स्थूल अगो में घिरा घिसा घिसाया काम नायक नहीं, वरन् आदर्श प्रेम का आश्रय कृष्ण हृदय है। इसी कृष्ण हृदय को अपने 'मूड' के अनुसार इन कवियों ने—जान, सुजान, सुमान मोहन, लाल, कान्ह, श्याम आदि भिन्न भिन्न नाम दे दिये हैं। सौ बात की एक बात यह कि इनका इश्क हकीकत है, 'सुमिरन को बहानो' नहीं। इनका सयोग भी वियोग की आशका से अश्रु-प्रोक्षन और वियोग तो 'घरनी म धँसों कि अकासहिं चीरौं' के हाहाकार से मूर्च्छित ही है। आचार्य शुक्ल के अनुसार[1]—'इन्होंने अपनी कविताओं मे बराबर 'सुजान' को सम्बोधित किया है जो शृगार में नायक के लिए और भक्तिभाव मे कृष्ण भगवान् के लिए प्रयुक्त मानना चाहिए।' इन्हीं पक्तियों का समीकरण करते हुए रीतिकाल के एक विद्वान् ने कह डाला है कि[2]—'कृष्ण और नायक का एकीकरण समय की माँग थी, जिसे इन्होंने भली प्रकार पूरा किया।'

किन्तु, कृष्ण और नायक का स्वच्छन्द कवियों ने उसी रूप और अर्थ में एकीकरण नहीं किया जिस अर्थ मे अन्य रीति शृगार के कवियों ने किया था।—

घनानन्द—रसिया रसिकराय रसस्वामी, रसिक सिरोमनि नायक नामी ॥२६॥ कृष्णकौमुदी

—यहा कृष्ण ही मुख्य हैं।

केशव—सबको केशवदास हरि, नाइक है शृङ्गार ॥—रसिकप्रिया, (छन्द-१)

ग्वाल—सा सिंगार रस के प्रभु, हैं श्रीकृष्ण रसाल ॥—रसरग, (छन्द-५)

—यहाँ कृष्ण और नायक का सम्बन्ध शृङ्गार के माध्यम से है। यहाँ शृङ्गार मुख्य है, कृष्ण गौण।

रीतिबद्ध कवियों को इस एकीकरण के लिए बाद में माफी भी माँगनी पड़ी थी किन्तु स्वच्छन्द कवियों को तो इस पर नाज है। इनका प्रेम बहाना नहीं है। इसमे अनुभव का बल है। इसी के सहजोर पर वह इठलाते हुए कहते हैं—

> कवि ठाकुर प्रीति करी है गुपाल सों, टेरि कहौं सुनो ऊँचे गले।
> हमैं नीकी लगी सो करी हमने, तुम्हैं नीकी लगै न लगै तो भले।

रीतिबद्ध कवियों के नायक कृष्ण से स्वच्छन्द शृङ्गार के कृष्ण भिन्न हैं, इसी को प्रतिष्ठित करने के लिए उपयुक्त शृङ्गार पीठिका प्रस्तुत की गयी। आगे शृङ्गार वर्णन के कुछ मनोरम प्रसग प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे कृष्ण के प्रति इनकी विलक्षण धारणाओं का संकेत मिल सकेगा।

स्वरूप सम्मोहन—मिलन प्रसग में इन स्वच्छन्द कवियों ने कृष्ण के स्वरूप-सम्मोहन के तडित प्रभाव और उसकी मानसिक प्रतिक्रिया का हृदयहारी चित्रण किया है। यह शब्द, रूप और रस से वशीभूत अधिक है। गन्ध और स्पर्श का यहाँ विशेष चित्रण नहीं। किंतु,

१ हि० सा० इ०—(पृ० ३३८)

२ डॉ० रा० प्र० चतुर्वेदी—रौ० क० शृ० र० वि०, (पृ० ३८६)

ग ध और स्पर्श का प्रकृत चित्रण रीतिबद्ध कवियों ने विशेष किया है। रूप रस का समवेत प्रभाव इतना मार्मिक है कि प्रतिपक्षी का मन कचोट उठता है और हृदय मे टीस लिए पूर्वराग उत्पन्न होता है—

> जा दिन तें निरख्यो नँदनन्दन कानि तजी घर बन्धन छूट्यो।
> चारु विलोकनि की निसि मार सम्हार गई मन मार ने लूट्यो ॥
> सागर कों सरिता जिमि धावत रोकि रहे कुल को पुल टूट्यो।
> मत्त भयो मन सग फिरै रसखानि स्वरूप सुधारस छूटयो ॥ २४

रसखान ने कृष्ण की वशी, चितवन और मुस्कान के प्रतिस्पर्द्धी चित्रण मे १६ १६ सवैये कहे है जिनमे चेटक प्रभाव से युक्त ७ पृथक् छन्द हैं। घनानन्दादि ने भी इस चेटक प्रभाव का उल्लेख किया है—

> चेटकरूप रसीले सुजान! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
> कौंध में चौंध भरे चख हाय! कहा कहौं हेरनि ऐसी हिराई ॥ ३५३

> ठाकुर—ठाकुर हौं न सकौं कहिकै अब का कहिए हरि सौं यह चुरन।
> देखि उ हे न दिखाई पर्‍यौ ब्रज पूरि रह्यो चहुँ ओर चहूँकन ॥

वशी के घातक प्रभाव का चित्रण इन कवियो ने विदग्धता से किया है—

> रसखान—वजी है बजी रसखानि बजी सुनिकै अब गोपकुमारि न जीहै।
> सजी है तो मेरो कहा बस है सु तौ वैरिनी बासुरी फेरि बजी है ॥५४

> घनानन्द—मोहन मुरलिया बजी है, हौं कहा करिहौं मोरी दैया।
> मनहिं घुमावै मति बौरावै री वैरहिं लेन सजी है।
> आनदघन रस आसनि प्यासनि अब काऊ अबला न जीहै ॥६८॥ (पदावली)

मुरली द्वारा किसी अनन्यप्रीता गापी का नामगान गुणगान भी इन कवियो ने कराया है। यह कृष्ण के वशी वादन की विलक्षण कला का परिचायक है।

> रसखान—एक समै मुरली धुनि मैं रसखानि लियो कहूँ नाम हमारो।
> ता दिन तें परी बैरी बिसासिनी झांकन देति नही है दुवारो ॥

> घनानन्द—ब्रजमोहन की प्यारी तेरो भाग बडो।
> मुरली मैं तेरे गुन गावत जाकी धुनि मोहे जगम जड़ो। २० (पदावली)

यहा कृष्ण वशी वादक ही नही, गायक भी हैं। रसखान ने विशेष रूप से कृष्ण क गोधन गान का उल्लेख किया है जो उनकी गोष्ठ सस्कृति की ममज्ञता का पोषक है। घनानन्द के गायक मोहन तो 'राग रग' के जानकार ही हैं।

> रसखान—वह गोधन गावत गोधन मैं जबतें इहि मारग ह्वै निकस्यो।
> कोउ पीर न जानत जानत सो तिनके हिय मैं रसखानि बस्यो ॥६६

> घनानन्द—साँच सुरति गावत माहन राग रग विनानी।
> धुनि प्रकास तैसो सुख बिलास रस सुहल चटक सरसानी।

यही है कृष्ण के रम्य रूप का रुचिर स्वरूप जिसके प्रति इन स्वच्छन्द प्रेमियों का अनुराग हुआ था और उन्होंने जी भर उसका बखान भी किया था। किन्तु रीति कवियो की तरह इन्होंने शृङ्गार-वर्णन के अनन्तर माफी नहीं माँगी। अपने प्रेम के मर्म पर प्रकाश डालते

हुए वह रसखान की ही तरह कहते हैं कि वियोग को वही जानता है जिसके हृदय में सदा उनका आना जाना बना होता है—

ठाकुर—'पर बीर मिले बिछुरे की बिथा मिलकै बिछुरै सोइ जानतु है ॥'

संयोग वर्णन—इन कवियों के शृङ्गार वर्णन में रति क्रीड़ा का सोल्लास चित्रण नहीं मिलता। हाँ, प्रेम कौतुक का एकाध दृश्य अवश्य मिलता है।

घनानन्द-दाँव तकै, रस रूप छकै, बिथकै मति पै अति चापनि धावै।
घूँघट ओट चितै घनआनँद चोट बितै अँगुठाहि दिखावै।

छैला रसवश होकर नायिका को अवबद्ध करना चाहता है। छबीली अपनी चौकन्नी अदाओं से नायक को छलती जाती है। वह अँगूठा भी दिखा देती है। रसिया उसे अपनी आँखों में अंजन की तरह आँज लेता है। अँगूठा दिखाने का इससे भी अधिक विदग्ध चित्रण रसखान ने किया है—

मोहन के मन भाइ गयो इक भाई सो ग्वालिन गोधन गायो।
नैन नचाइ चितै मुसिकाइ सु ओट ह्वै जाइ अँगूठा दिखायो ॥ ८६

'नैन नचाइ चितै मुसिकाइ' में पद्माकर की नायिका द्वारा नायक कृष्ण को फिर होली खेलने आने के निमन्त्रण की याद आती है। बिहारी के शृङ्गार वर्णन में इस हाव भाव का विशेष प्रदर्शन हुआ है। लाल के 'बतरस' के लालच वश किसी गोपी ने उनकी मुरली को लुका कर इसी अदा का परिचय दिया है। ये चित्र अत्यन्त रति वर्द्धक हैं। इनमें दानलीला के अनेक रसात्मक चित्र उपलब्ध होते हैं जिनका अर्थ काम लीला है। रसखान आदि ने इसी प्रसंग में 'गोरस' का अर्थ काम रस किया है। यह भक्तों की रुचि से प्रस्थानभेद सूचित करता है। स्वच्छन्द शृङ्गार के कवियों ने भी इसका अनेकशः उल्लेख किया।

स्वच्छन्द कवियों ने ऋतुचर्या में विशेषतः चाचर और होली के माध्यम से इस नोंक झोंक का प्रदर्शन किया—

रसखान—आवत लाल गुलाल लिए मग सूने मिली इक नार नवीनी।
मारी फटी सुकुमारी हटी अँगिया दरकी सरकी रँग भीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ के अंक रिझाइ बिदा करि दीनी ॥ १२१

घनानन्द—रस चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रूपि बिकानी थकी जु चकी।
समुहाय तहीं हरि भामिनि त्यों पिचकी भरि ताक तकी कुच की।
उत मूठि गुलाल उठै उकसैं सु लगैं पहिलैं छतिया दुचकी।

ठाकुर ने इसी फाग चित्रण के बहाने गोपियों के अनोखे कृष्ण प्रेम का एक सुन्दर चित्र दिया है—

दृग मूँदि कै अंचल सों कहतो पिचकारी हमारी सखी गहियो।
मेरी आँखिन माँझ गुलाल गयो अब लाल इहाँ रहियो रहियो ॥

इनका संयोग-वर्णन केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक भी है। अपनी रोमानी प्रवृत्ति के कारण ठाकुर ने मानस संयोग के द्वारा पावस का एक परम मनोहारी उद्दीपनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें रंग संवेदना का हृदयावर्जक प्रभाव द्रष्टव्य है—

अपने अपने निज गेहन में, चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री।
अगनान में भीजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जाँव पै री ॥

कह ठाकुर दोउन की रुचि सो रँग ह्वै उमडे दाउ ठाँव प री।
सखि कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नदगाँव प री॥

राधा और कृष्ण अपने अपने आँगन मे स्नेह नाव पै चढ़े प्रेम फुहार म भीग रहे हैं। श्याम के ध्यान में राधा की गोरी छवि और राधा के मन मे श्याम की सलोनी कान्ति छाई है। दोनो के मानसाकाश मे अलग अलग उमडने वाले ये उजले काले मेघ दो जगहो की घटाओं मे परिणत हो जाते हैं–बरसाने में श्याम घटा और नदगाँव पै गोरी घटा। प्रेम की एक तानता का यह सुदर मानस बिम्ब है।

वियोग वर्णन—वियोग इनका प्रकृत क्षेत्र है। वियोग की स्मृति दशा का मार्मिक चित्र इन कवियो ने खीचा है। यहा रीतिबद्ध कवियो की भाँति विविध भोग दशा का चित्रण नही मिलता। बल्कि प्रिय के अभाव मे प्रिय साहचय म आने वाले अनेक प्रेमोपादानो के स्मरण से चित्त की विह्वलकारी दशा का सकेत मिलता है। इस दृष्टि से आलम का यह सवैया अत्यत प्रसिद्ध है—

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सो करी बहु बात सु ता रसना सो चरित्र गुन्यो करैं।
आलम जौन से कु जन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन मे जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करै॥

इन्हें देखते ही वृदावन के कुजों म लिपटी हुई सारी मधुर स्मृतियाँ सहज भाव से आँखों के समक्ष साकार हो जाती हैं।

घनानद—वेई कु ज पु ज जिनतरे तन बाढत हो,
वही जमुना, प हेली! वह पानी बहिगो।

यहाँ सुधि के दशन और भी अधिक भाव तरल होकर–जैसे जैसे यमुना का पानी बहता जाता है–प्राणो मे विष की भाँति फैलते जाते हैं। उन आँखों का तो और भी बुरा हाल है जिन्होने एक बार नही, अनत बार उनकी छवि को निकट से निहारा था। रीतिकवि पद्माकर ने भी श्याम वियोग मे मन की विह्वलकारिणी दशा का एक ऐसा ही मार्मिक विवरण दिया है—

'मनमोहन के बिछुरे सजनी, अजहूँ तो नही दिन ह्वै गये हैं।
सखि वै, तुम वै, हम वै ही रही, पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं॥

पर ऐसे चित्र वहाँ अनेक नही हैं। अत स्वच्छदमार्गी कवियों के शृगार वर्णन को देखने पर कहा जा सकता है कि उन्होंने कृष्ण का मुख्यत भावात्मक चित्रण किया है। कृष्ण उनकी रोमानी प्रकृति के अनुरूप अमांसल और मानसिक हैं। इस मानसिक स्वरूप पर केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह यदि कृष्ण प्रेमी न होते तो छायावादी हो जाते। किन्तु छायावादी प्रेम की अपेक्षा वह अधिक प्रकाशवान है। चूकि वायवीय प्रेम की अपेक्षा उनके कृष्ण अधिक रूपवान् हैं। वैसे ही वे कृष्णभक्तों से भी भिन्न हैं। क्योंकि, वैष्णव सम्प्रदाय के प्रति आस्था रखकर भी वे साम्प्रदायिक और रूढ़ि बद्ध नही वरन् स्वच्छद हैं। अत उनके कृष्ण भी स्वच्छद हैं।

चतुर्थ अनुच्छेद

रीति-शृङ्गार के कवि और कृष्ण

रीतिकाल की ३ प्रवृत्तियों मे भक्ति और स्वच्छन्द शृङ्गार के कवि रसिक और प्रेमी हैं तो रीति शृङ्गार के कवि कला कोविद हैं। पहले का सम्बन्ध कृष्ण-दरबार से है। दूसरे सम्प्रदायमुक्त और स्वच्छन्द हैं। किन्तु, तीसरे का निश्चित सम्बन्ध राज दरबार से है। इन्हे क्रमश प्रजाश्रित, प्रेमाश्रित और राज्याश्रित भी कह सकते हैं। ऐसा कहने मे इन कवियो का सस्कार भेद सूचित होता है। किन्तु, परिवेश और प्रवृत्तिगत भिन्नताओ के बावजूद जिस एक बात में ये सभी कवि समान हैं—वह है इनका कृष्णप्रेम। इस युग की समस्त काव्य कृतियों म यह कृष्ण प्रेम मणियों म सूत्र की भांति पिरोया है। अत वण्य विषय की एकरूपता का देखते हुए इन्हे कृष्णाश्रित कहने म कोई आपत्ति नहीं।

प्रेरक पृष्ठभूमि—किसी भी युग की काव्यगत प्रवृत्ति का उदभव उस युग की पृष्ठभूमि में पनपने वाले सास्कृतिक मूल्यो के कारण होता है उसी प्रकार विभिन्न युगो की भाव धारा पर भी इन मूल्यो का निश्चित प्रभाव पडता है। और, इसके फलस्वरूप इन भाव धाराओं मे प्लावित मूर्ति, मन्दिरो आदि कला के श्रेष्ठ उपादानो, देवता, दर्शन आदि भाव प्रतीको और विचार सरणियों पर भी उसकी निश्चित प्रतिक्रिया होती है। परम्परा और प्रयोग के इसी घात प्रतिघात से सस्कृति और साहित्य मे भी पुरातन के साथ साथ नूतन का समावेश होता है। साहित्यालोचन का यही नियम है जिसके आधार पर विभिन्न युगों से विकसित होकर आनेवाले श्रीकृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप को इस रीतिकालीन परिणति को निरखा और परखा जा सकता है।

भक्तिकाल का साहित्य सास्कृतिक जन जागरण का प्रतिफल है। इसीलिए, उस युग की कृष्ण भावना मे समस्त लोक जीवन की सरसता और सौकुमार्य, करुणा और विश्वास, ममता और दैन्य, श्रद्धा और प्रीति प्रतिबिम्बित हो उठे हैं। रीतिकाल का साहित्य अपेक्षाकृत नागर मन की कला सजग अभिव्यक्ति है। इनम किन्ही अशो म कृष्ण दरबारी रसिको और स्वच्छन्द प्रेमियो को भी सम्मिलित समझना चाहिए। कवि कलाकारों की इस नागरिकता और सजगता का प्रबल आधार राज्याश्रय है। यह राज्याश्रय पतनशील मुगल दरबार की स्त्रैण और विलासी सभ्यता का केन्द्रबिन्दु है। और इस विलासी सभ्यता में पलने वाले कवियो की मनोवृत्ति पर इसका जो असर हुआ उसका निश्चित परिणाम है इनकी रसिकता। इस रसिक मनोवृत्ति के ही कारण इनकी अभिरुचि ऐहिक शृङ्गार वर्णन में अति प्रवृत्त हुई। अत इस युग की कृष्ण भावना पर भी इस स्त्रैण और विलासी नागर चेतना का प्रतिबिम्ब पडना स्वाभाविक ही है। इसके फलस्वरूप भक्ति की प्रस्तावना भी काम की कविता बन गई है —

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे स्याम हरित दुति होय॥ ५२८ (बिहारी)

रीतिकालीन कविता पर पड़े अन्य प्रभावों में काव्य, काव्य शास्त्रीय और काम शास्त्रीय प्रभाव भी हैं जो दरबारी विलासिता के ही अनुगामी हैं। अतः रीतिबद्ध शृङ्गार के कृष्णस्वरूप को भलीभाँति लक्ष्य कर सकने के लिए अन्य अवान्तर प्रभावों के अतिरिक्त उनकी दरबारी विलासिता की पृष्ठभूमि का परीक्षण अनिवार्य है।

दरबारी विलासिता—रीतिकाल का प्रारम्भ मुगल वंश के सबसे शौकीन बादशाह शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तिम चरण में होता है और उसका अन्त मुगलों के पतन और अंग्रेजी राज की क्रमशः प्रतिष्ठा से होता है। शाहजहाँ के समय तक मुगल वैभव अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। इस वैभव का भरपूर उपयोग कला के चरम विकास में किया गया। ताजमहल जहाँ शाहजहाँ के प्रिय वियोग का प्रतीक है वहाँ मयूरासन उसकी विलासिता का प्रतीक। इस रंगीन रुचि की प्रतिक्रिया औरंगजेब में हुई और उसने हिन्दू नरेशों के दमन के सिलसिले में काशीविश्वनाथ के साथ साथ मथुरास्थित केशवदेव के मन्दिर को भी ध्वस्त कर दिया। किन्तु उसके बाद किसी योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में मुगलों का साम्राज्य सूरज धीरे धीरे डूबने लगा। जैसे जैसे ये राजे निर्वीय और निस्तेज होते गए, वैभव और विलास का रंग उनपर जमता गया। मुगल दरबार अमीरों और अधिकारियों की स्वेच्छाचारिता का रंगस्थल हो गया था।[1] उनकी अकमर्ण्यता और विलासिता से लाभ उठाकर प्रायः सभी हिन्दू नरेश स्वतन्त्र हो गये। किन्तु, केन्द्रीय संगठन के अभाव में यह मुगल मयूरासन को टाट की तरह नहीं उलट सके। ये आजीवन मुगलों की विलासिता से ही स्पर्द्धा करते रहे। ये तीन हिन्दू राजवंश अवध, बुन्देलखण्ड और राजस्थान में थे। इनके महलों में भी शृङ्गारिकता का नग्न नृत्य होता था। इन्दर सभा और रास लीलाएँ रची जाती थी। ये विलास की सामग्रियों से लैस अपने जगमगाते शीशमहल में रहते जहाँ विभिन्न ऋतूत्सवों में शोभा और श्री की बहार छा जाती थी। ये कन्हैया बन कर रास रचाते, रंगीले बनकर रमणियों पर रंग उड़ेलते। इनके अधीनस्थ कवि कलावन्तों पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता था।

रीतिकाल के अधिकांश कवि इन्हीं दरबारों की शोभा बढ़ाते थे। ये संस्कार से तो निम्न मध्यवित्त परिवार के थे किन्तु साहचर्य से उच्चवर्गीय राजपरिवार से संबद्ध रहे। केशवदास ओरछानरेश के सभासद् थे। बिहारी जयपुरनरेश के दरबारी थे। मतिराम बूँदी नरेश के यहाँ रहते थे। देव का लगाव भी आजमशाह के यहाँ (औरंगजेब के बड़े पुत्र) था। पद्माकर जयपुर नरेश से सम्बद्ध थे। इस क्षेत्र के अन्तिम कवि ग्वाल जमुना कृष्ण दरबारी होकर भी राजदरबारी ही रहे। और तो और, अपने स्वच्छन्द प्रेम के अभिमानी आनन्द बोधा, ठाकुर आदि प्रेमाश्रित कवि भी राज्याश्रय का मोह संवरण न कर सके। दरबारी विलासिता की वारुणी इनकी नसों में पैठकर बहती रही। सामान्यतः इनकी

---

१ डॉ० नगेन्द्र—रीतिकाव्य की भूमिका (पृ० ६-१२)

रचनाएँ हुवमी होती थी। उनमे निजी अन्तस का आवेग दुलभ था। फिर, परिस्थिति का आग्रह भी कुछ ऐसा था जिससे इन्ह उत्तान शृगार चित्रण की ही प्रेरणा मिलती। अत उत्तरोत्तर इन कवियो के सस्कार पर भी इस वासना वासित प्रमत्तता का असर होता गया। इनकी रचनाओं के अन्तरग बहिरग इसके साक्षी हैं। उधर भक्ति-श्रृङ्गार के क्षेत्र म राधा कृष्ण की प्रेमचर्या का व्यापक वितान तन गया था। उसकी देखा-देखी इन शृ गारी कवियो ने भी अपने विलासी आश्रयदाताओ की दिनचर्या का राधा-कृष्ण के स्वच्छन्द प्रेम विहार मे अनुरजित कर उनकी सस्तुति प्रारभ कर दी। इसके उदाहरणस्वरूप देवकवि कृत 'अष्ट याम को प्रतिनिधि रूप में रखा जा सकता है। देव का 'अष्टयाम इन कामुक सामन्तों की विलासी वृत्ति, नागर चेष्टा और सूफियाना रग ढग की जीती जागती तस्वीर है। साथ ही कृष्ण के बहाने तत्कालीन राजसी जीवन के कामाचार को चित्रित करने के लिए 'कृष्ण नाम को किस प्रकार घसीटा जाता था, उसका ज्वलन्त प्रमाण भी है। इस काव्य म वर्णित प्रेम-दम्पति मूलत कामशास्त्र की नागरक नागरिका हैं। इन्हें ही राधा कृष्ण युगलदम्पति का नाम देकर काव्य की नायक नायिका के रूपों म अवतरित किया गया है। पुस्तक के प्रारभ मे क्रमश ये तीनो ही तत्त्व उल्लिखित हुए हैं—

(क) 'जि हैं लखि लाजत हैं रति मार ।
(ख) 'सदा दुलही वृषभानसुता दिन दूलह श्री वृजराजकुमार ॥ १॥
(ग) 'दपति नीके देव कवि बरनत बिबिधि विलास ।
आठ पहर चौंसठि घरी पूरन प्रेम प्रकास ॥ २ ॥

यह निश्चित रूप से राधा-कृष्ण विलास नही है, दरबारी नायक-नायिका का विलास है। यहाँ, साराशत इन साम तों की अहर्निश काम चर्या को ही अष्टकालीन कृष्ण-लीला की साम्प्रदायिक प्रणाली में प्रवाहित कर दिया गया है। सक्षेप मे, कृष्ण इन कामुक सामन्ता के पर्याय बन गये हैं। ऐसे प्रसगो म कृष्ण, कन्हैया, लाल आदि को साम तो का छद्मनाम ही समझना चाहिए। कि तु, जैसा कि ऊपर कहा गया, राज-स्तुति और अनुरजन के प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त ही कवियो द्वारा अपने विलासी सामन्तो और उनकी कामचर्या मे कृष्ण और उनकी कृष्ण लीला का प्रक्षेप किया गया है। अत इन्ह तात्त्विक अर्थ मे कृष्ण और कृष्ण लीला मानने की भूल कथमपि नही की जा सकती। वैसे ही, बिहारी के राधा कृष्ण केवल कुञ्जो म ही रास नही रचाते वरन् आगरा और जयपुर की गलियों मे भी परस्पर छेड़छाड करते हैं। रीझ इनकी 'कविताई की कसौटी है और दान राजाओ की कसौटी। दान दे देने पर तो यही कृष्ण हैं और कवि सुदामा—

मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौं जगत सिंह
तेरे जान तेरो वह विप्र हौं सुदामा हौं।।—पद्माकर।

या नहा तो फिर 'राधिका कन्हाई, सुमिरन का बहानो है। इस प्रकार 'तन्त्रीनाद सब अग ही जिस युग का युगधम बन गया हो उसम दरबार, दरबारी कवि और उनके कृष्ण जो उसी मे आकठ डूब गय तो यह आश्चय की बात नही।

शृगार-काव्य की परम्परा—अपनी श्रृङ्गारी वृत्ति के अनुरूप ही रीतिकवियो ने

राधा-कृष्ण शृङ्गार-वर्णन की सुदीर्घ परम्परा का अनुसरण किया। उसके पूर्व भक्तिकाल की कृष्ण लीला में अतिशय माधुर्य और अन्यतम लालित्य का समावेश है। यद्यपि यह सत्य है कि भक्तिकालीन कृष्ण के भावात्मक स्वरूप को वैष्णव कवियों ने अध्यात्म के स्वर्ण तन्तु में लपेट कर प्रस्तुत किया। किन्तु, आगे चलकर दर्शन की यह झीनी झिल्ली हटती गयी और रीतिकाल में आ कर राधा-कृष्ण की अलौकिक माधुर्य लीला लौकिक शृङ्गार में परिणत हो गई। इन्होंने भक्तिकाल के राधा-कृष्ण के शृङ्गारी रूपकों में प्रच्छन्न लीला भक्ति का अंश त्याग दिया। और, राधा कृष्ण की अन्तरग युगल लीला में ऊपर से दीखने वाला स्त्री पुरुष का प्रेम-पक्ष लेकर उठ बैठे। अतः भक्ति की गंभीर मनोदशा के अभाव में इनका राधा-कृष्ण प्रेम नायक-नायिका का शृङ्गार सिद्ध हुआ और फलतः राधा कृष्ण सामान्य नायक-नायिका के पर्याय बन गये।

वस्तुतः इस सम्पूर्ण प्रतिपत्ति का आधार इस मान्यता में सन्निहित है कि राधा कृष्ण का रीतिकालीन शृङ्गार वर्णन भक्तिकालीन लीला का ही प्रत्यक्ष उत्तरदान है। किन्तु, सूक्ष्मता से विचार करने पर यह मत पूर्णतः श्रद्धेय नहीं लगता। इसका सम्यक् विवेचन 'शृंगार और भक्ति की तात्त्विक परीक्षा' के प्रसंग में ही किया जायगा। किन्तु, यहाँ यह संकेत कर देना आवश्यक है कि काव्य परिवेश और प्रयोजन आदि कई कारणों से इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध भक्तिकाल के कृष्णभक्तों से न होकर भक्तिपूर्व उन गीतकार कवियों से है जिन्होंने प्राकृत अपभ्रंशादि मुक्तकों की स्फुट परम्परा में तरलित होने वाले राधा-कृष्ण के शृङ्गार को अभिनव सौन्दर्य माधुर्य से मण्डित कर सरस कवित्व का आधार बनाया। यहाँ हमारा अभिप्राय जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि कवियों से है। और, हम यह विश्वासपूर्वक कहना चाहते हैं कि रीतिकाल का शृङ्गार साहित्य जो राधा-कृष्ण का नाम लेकर शताब्दियों तक रचित हुआ, वह सूर, नन्दादि भक्तों के लीला गान की अपेक्षा उक्त शृङ्गारी कविता का सीधा विकास है। भक्तिकाल के राधा-कृष्ण भक्त और भगवान् के सरस प्रतीक हैं। शृङ्गारी कवियों के राधा-कृष्ण शृङ्गार के आश्रय आलम्बन हैं। रीतिकाल के कवियों ने इन्हें ही नायक नायिका रूपों में व्यंजित किया। और स्पष्टता से कहें तो विद्यापति के कृष्ण शृंगारदेव ही हैं आराध्यदेव नहीं। वैसे ही रीतिकाल के कवियों ने इन दोनों में स्पष्ट भेद बनाये रखा। केशव, सेनापति और पद्माकर रामभक्त कवि थे किन्तु राधा-कृष्ण शृंगार की मनोमुग्धकारी पंक्तियाँ इन्होंने ही लिखी थी। भक्ति के प्रभाव से गोपी-कृष्ण का चरम विलास रास में प्रकट हुआ, जो अन्ततः सामूहिक नृत्य है। किन्तु, कवित्व के आग्रह से राधा कृष्ण की एकान्त विचित्र केलि क्रीडा की उद्‌भावना हुई। ध्यातव्य है कि पहला रास प्रधान है तो दूसरा रस रीतिप्रधान। उत्तरोत्तर रासान्वयी कृष्ण रसान्वयी होते गये हैं। इसे दूर तक दोनों की विभाजक रेखा मान सकते हैं। अतः इनकी पीठिका के रूप में शृङ्गार काव्य की परम्परा का उल्लेख ही अधिक समीचीन है।[१]

विद्वानों ने हाल की 'गाथासतसई' को इस परम्परा का प्रथम प्रभावशाली ग्रन्थ

१ विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य—प्रस्तुत प्रबन्ध—छठा अध्याय (लोककाव्य में शृङ्गारदेव कृष्ण)

मीना है। सतसई के इस कृष्णप्रेम-वर्णन का व्यापक प्रभाव संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शृङ्गारी मुक्तकों पर पडा। संस्कृत काव्य शास्त्र के पण्डितो ने इन पदों को अपने लक्षण ग्रन्थों में अनूठे उदाहरणों म सजाया। इनके अलकरण और नायिका भेद वर्णन पर कामशास्त्र का प्रभाव है। इसका उल्लेख यथास्थान होगा। यहाँ वे स्तोत्र ग्रथ भी अविस्मरणीय हैं जिनमे शिव-दुर्गा, विष्णु लक्ष्मी आदि देवी-देवताओ के साथ साथ राधा-कृष्ण की शृङ्गार लीलाएँ उत्तरोत्तर अधिक प्रवणता से चित्रित हुई हैं। इस प्रकार, भाषा काव्य में शृङ्गारी मुक्तकों से लेकर वैष्णव स्तोत्रों और काव्य शास्त्र की चिन्ताधारा से काम शास्त्र की काम धारा तक पर राधा-कृष्ण का प्रेम शृङ्गार फैला हुआ है।

काव्य मे इस ढंग का व्यवस्थित प्रयत्न लीलाशुक का कृष्णकर्णामृत और जयदेव का गीतगोविन्द है। राधा-कृष्ण के प्रेम शृङ्गार को सगीत के सरस पदो मे नियोजित कर जयदेव ने अपने गीतगोविन्द को जिस ऊँचाई पर पहुँचा दिया वह भाषाकाव्य का चूडान्त है। राधा-कृष्ण के रसात्मकरूप के साथ-साथ राग और रति का यह सामजस्य अनूठा है। कदाचित् इसी कारण इससे हिन्दी के विद्यापति, सूरदास आदि गीतकार कवियो को सर्वाधिक प्रेरणा मिली है। इसम भागवत-परम्परा के शरद् रास से भिन्न वसन्त विलास का सकेत है। सखी-क्रम, नायिकाभेद और परकीया प्रेम का स्फुट समावेश है। यहा कृष्ण वियोग के स्थान पर कल्पनाप्रवण पुनर्मिलन की स्वीकृति तथा कृष्ण प्रवासजन्य चिर-वियोग की अवहेलना है। विद्यापति की परम्परा म रीतिकाल के कवियो ने भी इसी भाव से कृष्ण-लीला को अपनाया। विद्यापति ने राधा-कृष्ण मिलन प्रसग को लेकर वय सन्धि, दूती, मान भग, अभिसार मिलन, वियोग आदि नायिका भेद और शृगार की विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन किया है। उनके काव्य मे रीतिकाल के नायिकाभेद और शृगार वर्णन का प्रारंभिक किन्तु प्रौढ रसपुष्ट स्वरूप प्रकट हुआ है। इस कवि की पदावली में काम के बाणो की मीठी पीडा है। इनके कृष्ण मे मिट्टी की गन्ध और राधा म वासना की सुरभि है। इनमे उनका भक्त हृदय पूरी तरह छिप गया है। किन्तु विचित्रता यह है कि एक ही कवि की इस कृति के रसास्वादन मे जहाँ चैतन्यदेव भक्ति विह्वल हो गये थे वहाँ रीति-कवि काम विह्वल होकर शृगार-वर्णन में प्रवृत्त हो गये हैं। यह तो व्यक्तिगत रुचि का परिणाम है। चैतन्य ने इन कवियो की प्रेम कविता से राधावाद सखीभाव और परकीया प्रेम लिये। बाद में चैतन्य मतावलम्बी गौडीय वैष्णवो ने भक्ति को शृङ्गार-रसात्मक परिणति दी तथा गोपी-कृष्ण शृङ्गार लीला को नायिकाभेद के साँचे मे ढाल दिया। रीतिकाल के आचार्य कवियो पर इसका निर्विवाद रूप से प्रभाव पडा।

रीति शृगार का काव्य शास्त्रीय आधार—रीतिकाल के आचार्य कवियो ने अपने लक्षणों मे कृष्ण को रसराज शृङ्गार का देवता माना है। इसके साथ ही उन्होने राधा कृष्ण की लीलाओ को रस के आश्रय आलम्बन नायक-नायिका की शृङ्गार चेष्टाओं मे परिणत कर दिया है। प्रसगवश कृष्ण लीला का स्फुट समावेश इनके उदाहरणो में हो गया है। उसी प्रकार नायक-नायिका की अवस्थाओं और प्रकृतियो, स्वकीया-परकीया विषयक धारणाओं, शील और वयादि का भी यथाविधि विभाजन और विवेचन किया गया है। कृष्ण

लीला का हाव के भीतर समावेश इसी आचार्यत्व का एक अंग है। कहना न होगा कि उपर्युक्त सभी प्रकार के लक्षणो और वर्णनों पर इनके पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रियो की प्रतिभा की पूरी छाप है। जसे भक्ति शृङ्गार के कवि भक्तिकाल के वैष्णवो के ऋणी हैं वसे ही रीति शृङ्गार के कवि भी काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुवर्ती है। हाँ, इनकी मौलिकता इनके उदाहरणो म प्रत्यक्ष है। किन्तु इसे भुलाया नहीं जा सकता कि कृष्ण प्रेम वर्णना की ये मणियाँ मूलत लक्षणो की नत्थी भर हैं। कृष्ण का भावात्मक स्वरूप यहाँ उ मुक्त भाव से व्यजित न होकर बुद्धि के शासन मे आबद्ध है। कृष्ण कहीं तो भाव मे हैं, कहीं विभाव मे, कहीं हाव म हैं तो कहीं अनुभाव म, कहीं रस म हैं तो कहीं रीति या अलकार मे, कहीं अनुकूल मे तो कहीं विपरीत म। अत इनकी वास्तविक स्वरूपानुभूति लक्षणो की चट्टान को टाले बिना नहीं होती।

सवप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र मे शृ गार का देवता विष्णु और रग श्याम माने गये हैं। इससे ऐसा लगता है कि भरत के समय (१ ली सदी) कृष्ण लीला का विशेष प्रसार नहीं था। अथवा, शृङ्गारदेव के रूप म कृष्ण विष्णु से पृथक् न हो सके थे। जो हो, आगे चलकर काव्य शास्त्र के शृ गार देव के रूप मे कृष्ण प्रतिष्ठित हो गये। रीतिकाल के कवियो ने भी शृङ्गार का देवता कृष्ण और रग श्याम एक स्वर से घोषित किया। शृ गार तो यहा रसराज ही बन गया है।

८वीं शतीय वामन के का यालकार में कृष्ण प्रेम का वणन किया जा चुका है। इस परम्परा में आन दवधन के ध्व यालोक, कु तक के वक्रोक्ति-जीवित, हेमच द्र के काव्या नुशासन, भोज के सरस्वती-कठाभरण, शारदातनय के भाव प्रकाशन, कवि कर्णपूर के अल कार-कौस्तुभ, सागर न दी के नाटक लक्षण रत्न कोश, प्राकृतपैंगलम् आदि लक्षण-ग्र थो मे फल्गु के अन्त स्रोत की भाँति राधा-कृष्ण की प्रेमचर्या मिलती है। यहीं हि दी के रीति ग्र थो म आकर उद्दाम वेग से प्रवाहित हुई है। इनमें ऊपर ऊपर भक्ति कि तु भीतर भीतर प्रेम शृ गार की धारा बहती है। सभवत यही से प्रेरणा ग्रहण कर प्राय प्रत्येक रीति कवि ने अपनी कृति के आदि और अ त म धम-बुद्धि जगाते हुए कृष्ण को 'जगनायक' और राधा का 'जगदीश्वरी' कहा कि तु मध्य में उनका उत्तान शृङ्गार चित्रण कर दिया है। इस मजमून क पाछे दरबारी विलासिता और शृ गार-वणन की परम्परा काम कर रही थी। इ होने राधा-कृष्ण को लेकर इनके समक्ष आत्म-समपण किया है। इसीलिए यहाँ राधा-कृष्ण के बाह्य रूप-नाम ही उतर सके, अन्तरात्मा व्यजित होते होते रह गयी। अत इनके राधा-कृष्ण प्रेम म सच्ची निष्ठा का एका त अभाव है। इ होंने स्पष्ट कहा है—

> 'रीझि हैं सुकवि जों तो जानो कविताई,
> न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है। —दास

बाद में यही प्रवृत्ति रीति कवियों की का य-परिपाटी बन गयी जिसम प्राथमिकता कवि पथ को और गौणता राधा-कृष्ण-स्मरण को मिली।

इनके अतिरिक्त वैष्णव रसशास्त्र का प्रभाव भी इनके भक्ति शृङ्गार सम्ब धी दृष्टिकोण, नायक-नायिका भेद और परकीया प्रेम पर परोक्ष रूप म पडा। रूपगोस्वामी के

भक्ति रसामृतसिन्धु म शृ गार को रसराज और कृष्ण को रतिस्थायी का सवश्रेष्ठ आलम्बन माना गया। उज्ज्वलनीलमणि के अ तगत, नायकभेद,नायकसहाय भेद, हरिवल्लभा, राधा, नायिका भेद, दूती भेद, सखी वणन, आलम्बन, उद्दीपन आदि विषय हैं जिसमे नायकभेद, नायिकाभेद, दूतीभेद आदि विशेष रूप से अनुकरणीय हैं। रीतिकालीन कविया ने कृष्ण के उपपति और राधा के परकीया स्वरूप को ही विशेषत अगीकार किया है। इन कवियो ने नायक नायिका के शृङ्गार-वणन में लोक विरुद्धता के परिशमन के निमित्त यहीं से प्रेरणा ली हो तो आश्चय नही। रसिकप्रिया हिन्दी अथवा ब्रजभाषा का पहला ग्र थ है जिसपर उज्ज्वल-नीलमणि का प्रभाव दिखाई देता है। केशव ने नायिकाओ का वणन जग नायक श्रीकृष्ण की नायिकाओं के रूप में किया है। केशव के परवर्ती कवियों ने इसी रूप में कृष्ण को ग्रहण किया। देवादि ने भी रसो का सार शृङ्गार और शृ गार का सार 'किशोर किशोरी' माना। किन्तु वैष्णवाचार्यों के कृष्ण रति राटय का सिद्धा तत स्वीकार कर भी व्यवहारत रीति-कवि उनको आध्यात्मिक ऊँचाई का स्पश न कर सके। इसका कारण बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक है। शृङ्गार और भक्ति के सगम पर वैष्णवो ने जिस मधुर रस का सविधान किया, ब्रजभाषा के परवर्ती भक्त कवियो ने अपनी वाणियो मे उसे कुञ्ज-केलि के घोर वासनात्मक चित्रो से लौकिक शृ गार मे बदल दिया। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार १७वी–१८वी शती तक उत्तर दक्षिण, पूव पश्चिम मे सवत्र ही मधुरा भक्ति की धारा ऐसे उद्दाम वेग से प्रवाहित हुई कि हृदय रस और काव्य के बीच मे स्थित व्यजना का झीना आवरण छिन्न भिन्न होकर बह गया। उधर सस्कृत के आचार्यों ने शृङ्गार की रसराज-रूप मे जो सैद्धान्तिक कल्पना की थी उसे भ। इ ही कविया ने भक्ति-चर्चित शृ गार की अबाध सजना द्वारा सत्य सिद्ध किया।[१]

इस प्रकार, वैष्णवाचार्यों के मधुर रस और वैष्णव रसिकों के कृष्ण रस को काव्य-शास्त्रियो के शृङ्गार रस म घाल कर रीतिकवियो ने कृष्ण-लीला का ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया जिससे वह पूणत काम रस ही सिद्ध हुआ। अत कृष्ण चरित्र मे स्खलन का रहस्य रसराज के अपने उज्ज्वल पद स च्युत हो का यादश से भी नीचे विषय वासना के गत म गिर जाने तक के इतिहास मे स्वत सं निहित है।

काम शास्त्र की अ त प्रेरणा—विद्वानों न शृङ्गारी कविया के नायिका भेद वणन पर का य शास्त्र के साथ-साथ कामशास्त्र का प्रभाव भी स्वीकार किया है। इनका आद्य स्वरूप वात्स्यायन के 'कामसूत्र' म उपलब्ध होता है। इसका प्रणयन भी नाट्यशास्त्र और गाथासतसई के आसपास ही अनुमानित होता है। इसके अ तगत नागरक-नागरिकाओ की अनेकविध सयोग चेष्टाओ का ही वणन नही हुआ वरन् उनके रहन-सहन के ढग, सुरुचि, शृङ्गार चेष्टाओ, आहार विहार, आमोद प्रमोद आदि का भी निश्चित सकेत किया गया है। नायिका भेद के अ तगत नायक नायिकाओ के वर्गीकरण के अनन्तर उनके परस्पर प्रेमाचार, कथोपकथन, शृङ्गारचेष्टा, दैनिक क्रिया-कलाप आदि व्यावहारिक विषयो पर काम

१ 'रस सिद्धान्त'—पृ० ७०

शास्त्र में इसी पक्ष का प्रभाव है। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि देव में 'अष्टयाम' में नागरक नागरिकाओं के इन्हीं कामाचारों का अष्ट-कालीन विवरण है जिसे राधा-कृष्ण के अष्टयाम के नाम पर चला दिया गया है। किन्तु इसका विस्तृत पाठ, इसमें वर्णित चौंसठ घड़ी और आठों याम में बिल्कुल कामनिर्मुक्त भाव से होने वाली इस नागर-चेष्टा को राधा-कृष्ण लीला के भ्रम में नजरअन्दाज नहीं कर सकता। कामशास्त्र के देवी-देवता रति और मार हैं, नायक-नायिका प्रेम दम्पति नागरक और नागरिका हैं। अहर्निश भोग और विलास ही इसकी प्रेम-चेष्टा है। ये वैभव से जगमगाते शीशमहल में सुखपूर्वक विहरते हैं। इनका पानदान पन्ना आदि बहुमूल्य रत्नों का होता है। इत्र, गुलाब, मोती, मणिमाल, हीरा आदि इनके अलंकरण प्रसाधन हैं। वीणा आदि की संगीत ध्वनि इन महलों में गूंजती रहती है। ये धारागृह से प्रक्षालित मणिकुट्टिम फर्श पर रेशमी गद्दों पर दोपहर में चौपर और पासे पसरते हैं। चित्र घरों में रति की नाना मुद्राओं में अंकित काम चित्र दर्शनार्थ टंगे रहते हैं। फिर पक्षीभवन में नाना पक्षीगण दर्शनार्थ पाले जाते हैं। तीतर और पतंग लड़ाये जाते हैं। और इसी कामोद्दीपक वातावरण में ये छप्पन प्रकार के भोग और ३४ व्यंजन का भक्षण कर तथा आसव पी पीकर अपने यौवन मद को और भी मदन मथित कर विपरीत आदि नाना विधियों से काम के सिन्धु का अवगाहन करते हैं। कामशास्त्रोक्त उपर्युक्त सारे विवरण देव के अष्टयाम में मौजूद हैं। कृष्ण यहाँ कामनायक के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। अतः ऐसे विवरणों का कृष्ण वर्णन की पौराणिक रूढ़ि के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है।

शृंगार वर्णन में कृष्ण स्वरूप : शृंगार रसराज कृष्ण

रीतिकवियों ने अपने पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रियों और वैष्णवाचार्यों की भाँति शृङ्गार का रसराजत्व स्वीकार करते हुए कृष्ण का शृङ्गार रसात्मक चित्रण प्रस्तुत किया। किन्तु प्रारम्भ में कुछ ऐसे आचार्य कवि भी हैं जो श्रीकृष्ण को भावात्मक स्वरूप में देखते हैं और उनके इस सहृदय संवेद्य भाव रूप में काव्य के नवरसों को अन्तर्भुक्त कर देते हैं। यह वृत्ति सर्वप्रथम भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' में मिलती है जो रीति-रचना की गोमुखी समझी जाती है। इसके प्रथम स्तुति श्लोक में ही ऐसे विष्णु कृष्ण की वन्दना की गयी है जो मूल रतिस्थायीभाव से नाना रसमय हो गये हैं।[1]

भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' शृङ्गाररस प्रधान ग्रन्थ है जिसके प्रभाव से 'रसिक प्रिया' आदि ग्रन्थों की रचना केशवदास तथा उनके अनुयायी देवादि अन्य रीति कवियों ने की। 'रसिकप्रिया' के प्रारंभ में भानुदत्त के उक्त श्लोक की छाया लेकर केशवदास ने कृष्ण के इस सर्वातिशायी भावात्मक स्वरूप को स्पष्ट किया है—

---

१ तक्ष्मीमालोक्य लुम्पर्न नगममुपहसन् शोचयन्नाजन्तून्
क्षत्त शोणाक्षि पश्य समिति दशमुख वाक्य रोमाञ्चमञ्चन्।
हृत्वा हैयङ्गवीनं चकितमपसरन् म्लेच्छरक्तैर्दिगन्तान्
सिंचन्दन्तेन भूमिं तिलमिव तुलयन्पातु व पीतवासा ॥ र० त० १/१

श्री वृषभानुकुमारि हेतु 'श्रृङ्गार' रूप मय।
वास 'हास' रस हरे, मात व धन करुणामय ॥
केशी प्रति अति 'रौद्र', 'वीर' मारो वत्सासुर।
'भय' दावानलपान, पिया 'वीभत्स' बकी उर ॥
अति 'अद्भुत' बच विरंचि मति 'शान्त' सतते शोच चित।
कहि केशव सेवहु रसिक जन नवरस में ब्रजराज नित ॥—र० प्रि०–१/२

उपर्युक्त स्तुति-छन्द में कवि ने नवरसों का कृष्ण के भावात्मक स्वरूप में सन्निवेश कर अपने रस सिद्धान्त-सम्बन्धी व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। यहाँ कृष्ण के भावात्मक स्वरूप के आदर्श पर ही रसादर्श की स्थापना की गई है। क्योंकि जब कृष्ण श्रृङ्गार मय होकर भी नौ रसों में परिव्याप्त हो सकते हैं तो श्रृङ्गार भी नौ रसों में क्यों नहीं अन्त व्याप्ति पा सकता है? अतः कवि ने स्पष्ट शब्दों में काव्य रसिकों को नौ रस-व्यापी रसराज कृष्ण की नित्य सेवा करने की प्रस्तावना की है। अतः निम्न दोहे में वर्णित नौ रस-व्यापी श्रृङ्गार रसराट् को ही कवि का सिद्धान्त-सूत्र समझना चाहिए—

नवहू रस को भाव बहु, तिनके भिन्न बिचार।
सबको केशवदास हरि, नायक है श्रृङ्गार ॥

यहाँ श्रृङ्गार को रस का नायक और कृष्ण को श्रृङ्गार का नायक कहा गया है। आगे के कवियों ने केशव के इसी सूत्र को आधार मानकर सभी रसों को छोड़ श्रृङ्गार का चित्रण किया और श्रृङ्गार के अन्तर्गत कृष्ण को नायक रूप में प्रतिष्ठित किया। रीतिकवियों के श्रृङ्गार-वर्णन में जो काव्यशास्त्र के नायक-नायिका, काम शास्त्र के नागरक नागरिका और वैष्णवरसिकों के किशोर किशोरी तत्त्व को अपदस्थ कर श्रृङ्गार के आश्रय आलम्बन स्वयं राधा-कृष्ण बन गये, वह इसी सैद्धान्तिक प्रस्तावना के कारण। किन्तु सूक्ष्मता से देखने पर इसका आधार पौराणिक ही प्रतीत होता है। ऊपर के उदाहरण में केशव ने कृष्ण के जिस भावात्मक स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत की है उसका संकेत श्रीमद्भागवत[1], भक्ति रसामृत सिंधु[2], सूरसागर[3] आदि में ही मिल जाता है। इसके अनुसार, मथुरा के रंगस्थल में एक ही समय नाना सम्बन्धियों को नाना स्वरूपों में दृष्टिगत होते हैं।

इस प्रकार, अपने सिद्धान्त निरूपण में यद्यपि केशव ने पौराणिक आधार को स्वीकार किया है किन्तु अपने युग धर्म की अवहेलना वह नहीं कर सके। अतः परवर्ती कविता में कृष्ण को नायक मानकर श्रृङ्गार और वासना के विपुल चित्र खड़ा करने का समस्त श्रेय और दोष इन्हीं का है।

कवि देव की दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक शास्त्रीय रही। उन्होंने मुख्य रसों में वीर और शान्त को श्रृङ्गार के अन्तर्गत गताथ करते हुए श्रृङ्गार-देव के रूप में राधा-कृष्ण का स्मरण किया। इन्हें ही कवि ने किशोर किशोरी आदि भी कहा है—

१ स्कन्ध–१०, अध्याय–४३, श्लोक–१७
२ नायक कृष्ण के मंगलालवारों में तेज के उदाहरणस्वरूप भागवत से उद्धृत, श्लोक–३७६
३ पद–सं० ३०५९/३६७७

बानी को सार बखानो सिंगार।
सिंगार को सार किशोर किशोरी ॥ —सुखसागर तरंग (१०)

इनके अतिरिक्त सेनापति, बिहारी, मतिराम, पद्माकर और ग्वाल—इन सभी श्रेष्ठ रीति कवियों ने शृङ्गार को रसराज और कृष्ण को शृङ्गार का नायक मानकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। इनमें सेनापति अपेक्षया अधिक प्रेम-लीन कवि हैं। राधा कृष्ण शृङ्गार-वर्णन में इनका मूल स्वर वही है जो सूर, मीरा या रसखान आदि प्रेमी भक्तों का है।

बिहारी ने अपनी सतसई में अत्यन्त बारीकी से अनुराग के अन्तरंग का उद्घाटन करते हुए राधा-कृष्ण शृंगार के उज्ज्वल पक्ष की ओर श्लिष्ट संकेत किया है—

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्याम रँग त्यौं-त्यौं उज्ज्वल होय॥

उधर मतिराम के 'रसराज' के छन्द सं० १, २, ३ को यदि प्रामाणिक मान लिया जाय तो उन्होंने भी कृष्ण और राधा को कवि परम्परानुसार नायक-नायिका मान कर ही शृङ्गार रस का वर्णन किया—

बरनि नायका नायकनि, रच्यो ग्रंथ मतिराम।
लीला राधारमन की, सुंदर जस अभिराम॥ –३

इस प्रकार, यह एक रूढ़ पद्धति हो गयी। पद्माकर ने भी अपने रस ग्रन्थ में इस रूढ़ि का पालन किया है—

उन्मादित संचरत तहँ, संचारी हैं भाव।
कृष्ण देवता स्याम सँग सो सिंगार रसराव॥ —जग० ६१३

रीतिकाल के अन्तिम कवि ग्वाल हैं। इन्होंने अपने 'रसरंग' में नव रस-व्यापी राधा-कृष्ण का (शृङ्गार) रसराजत्व सिद्ध किया। रसरंग के मंगलाचरण में उन्होंने लीला-पुरुष श्रीकृष्ण और उनकी परमप्रिया राधिका का पद वन्दन कर पुनः रसिकों के रसरंग के लिए इनका उत्तान शृंगार चित्र प्रस्तुत कर दिया है—

नवरस मैं सिंगार की, पदवी राज बिसाल।
सो सिंगार रस के प्रभू हैं श्रीकृष्ण रसाल॥
वृंदावन तें मधुपुरी, किय सुखबास प्रमानि।
बिदित बिप्र बंदी बिमद, नाम ग्वाल कवि जानि॥
मोहू रस के भेद सब, बरनत सहित उमंग।
राधाकृष्णचरित्रमय रसिकन को रसरंग॥ –रसरंग १/४६

साराशत रीतिकाल के आरंभ में ही राधा और कृष्ण शृङ्गार के नायक-नायिका रूपों में जो गृहीत हुए तो इस युग के प्रायः सभी कवियों ने इन्हें इसी रूप में अपनी समग्र कृतियों में व्यंजित किया। कृतियों के मंगलाचरण और स्तुति में जिस विशुद्ध पौराणिक रस दृष्टि का प्रतिपादन था उसका काव्यात्मक निरूपण घोर वासनात्मक और कलुषित हो गया। इन वर्णनों में इनके रसराज कृष्ण कामराज बन गये हैं।

तुल्यानुराग—रीतिकवियो ने राधा कृष्ण के विषम प्रेम को नायक-नायिका के चौखटे मे समप्रेम बना कर उपस्थित किया है। कृष्ण प्रेम की पौराणिक परम्परा में नायक पक्ष की सक्रियता का सविधान नही है। भागवत के कृष्ण रास-लीला जैसे शृंगारिक प्रसगो मे भी योगिराज ही बने रहे। किन्तु उत्तरवर्ती शृङ्गारिक कवियो ने प्रेम मे नायक पक्ष की सक्रियता का भी सकेत किया है। जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, सूर, रसखान आदि का कृष्ण प्रेम उभयपक्ष, प्रधान है। हिन्दी के रीतिमुक्त कवि ने फारसी प्रेम के अतिशय प्रभाव मे नायक कृष्ण को अत्य त चेष्टाहीन बना दिया। उधर दूसरी ओर राधिका को इतनी प्रगल्भ कि सारी रचना ही उपालभ से भर गयी किन्तु रीति कवियो ने शृङ्गार वर्णन में यह चोखा अवसर हाथ से जाने नहीं दिया।

उन्होने दोनो के समानुराग मे शृङ्गार का सुन्दर विन्यास किया है। यह कही तो मानसिक सयोग जन्य है और कही रति चेष्टाओं मे व्यक्त है।

मानसिक सयोग—

नैनन के तारन म राखो प्यारे पूतरी कै, मुरली ज्यो लाय राखो दसन बसन मे।
राखो गुज बीच बनमाला करि चन्दन ज्यों चतुर चढाय राखो तन मे।
केशोराय कलकठ राखो बलि कठुला कै, करम करम क्यों हू आनी है भवन मे।
चपक कली सी बाल सूघि सूघि देवता सी, लेहु प्यारे लाल इन्हें मेलि राखो मन में।

देव—'मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय राधामन मोहि मोहि मोहन मई मई।

तुल्यानुगरा का यह प्रक्षेप वर्णों और वस्त्रो में देखिये—

देव—ताते स्याम रग अग स्यामा पै हे स्याम सारी।
स्यामा रग स्याम पटपीत पहिरति है॥ ३/१२—अष्टयाम

पद्माकर—मोहनी को मन मोहन मे वस्या मोहन को मन मोहिनी माही।

अथवा, राधामयी भई स्याम की सूरत स्याममयी भई राधिका डोलै। —जग०

यही अनुराग उत्तरोत्तर कृष्ण के अतिचार मे विकसित होता गया है।

प्रेमातिचार—केशव ने कृष्ण के जल विहार के प्रसग मे इस अतिचार का अश्लील प्रदर्शन किया है—

ऋतु ग्रीषम की प्रतिवासर केशव खेलत हैं जमुना जल में।
इन गोपसुता वहि पार गुपाल विराजत गोपन के दल मे॥
अति बूडत हैं गति मीनन की मिलि जाइ उठै अपने थल मे।
इहि भाँति मनोरथ पूरि दुवो जन दूरि रहैं छवि सो छल मे॥१५, ३८

इस तरह नायक पक्ष म उस धूर्तता का समावेश हो गया है जिससे कृष्ण के 'छैल, 'छिनार आदि उपनाम सार्थक प्रतीत होते हैं।

दानलीला के हठकामुक चित्रण भी कुछ इसी ढग के हैं। बिहारी, सेनापति और मतिराम सभी ने इसका चित्रण किया है।

बिहारी—'गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाहिं॥ १२६

कितव कृष्ण की इन साहसिक चेष्टाओं का पर्दाफाश सेनापति की नायिका ने किया है—

'झूठे काज कौ बनाइ, मिस ही सौं घर आइ,
सेनापति स्याम बतियान उपरत हौ।
यहौ एती चतुराई, पढ़ी आप जदुराई,
आँगुरी पकरि पहुँचा कौ पकरत हौ। –क० र० २/३०

मतिराम मे आकर उनकी चपलता सिद्धि-लाभ कर लेती है—

बैठी एक सेज पै सलोनी मृगनैनी दोऊ, आय तहाँ प्रीतम गुपा समूह बरसै।
दरप सो भरी वह दरपन देख्यौ जौ लौं, तौं प्रान प्यारी के उरोज हरि परसै –रसराज

मतिराम ने आँख मिचौनी के खेल मे 'खिलार' कृष्ण की चपल चेष्टाओ का कामोत्तेजक वर्णन किया है—

मनमोहन आए गए तिन ही, जिते खेलति बाल सखी जन मे।
तहँ आपु ही मूँदे सलोनी के लोचन, चोर मिहीचनि खेलन मे॥
दुरिबे कौं गई सगरी सखियाँ, मतिराम कहै इतने छन मे।
मुसकाय के राधिके कंठ लगाय, छिप्यौ कहूँ जाय निकुंजन मे॥ –ल० ल० १८३

क्रीडा की एक ऐसी ही भूमिका मे सरोवर मे नगी स्नान करनेवाली गोपियो से कृष्ण हाथ उठाकर रवि वंदन करने को कहते हैं—

रवि बन्दौ कर जोरि, ए सुनत स्याम के बैन।
भए हँसौहैं सबनु के, अति अनखौहैं नैन। –बिहारी–५८६

इसी चेष्टा का एक स्मरण अंग कृष्ण की छद्मलीला है जिसका अधिकारपूर्ण प्रयोग भक्ति शृङ्गार के कवि चाचा हित वृन्दावनदास ने किया था। इसकी एक सुदीर्घ परम्परा रही है जो विद्यापति, चण्डीदास आदि से लेकर इन कवियो तक प्रसरित है। यह अपने अन्तिम लक्ष्य मे काम लीला ही है।

देव—मालिनि ह्वै हरि माल गुहै चितवे मुख चेरी भयो चित चाइन
प्रेम पगी पिय पीत पिछौरी सौं प्यारी के पोंछि पिछौरी से पाइन॥

बेनी प्रवीन—मालिनि ह्वै हरवा गुहि देन, चुरी पहिरावें बनैं चुरिहरी।
नन्दकिसोर सदा वृषभान की पौरि पै ठाढ़े बिके बने चेरी॥—नवरसतरंग

कृष्ण लीला का शृंगारीकरण—रीतिकालीन कवियो ने कृष्ण के साथ ही कृष्ण लीला के प्रतीकात्मक उपकरणों—वृंदावन, वशी कुंज, राधा, लीला, अष्टयाम आदि का अत्यन्त लौकिक अर्थ ग्रहण किया है। कृष्ण लीला में वृन्दावन नित्य लीलाधाम है। रीति कवियो ने आगरा और मथुरा की राजसी गलियो और अटारियो से वृंदावन का काम लिया है। वंशी वैष्णव कवियो के लिए महारास की अवतरणिका है। रीति कवियो ने कृष्ण की वंशी को काम सकेत का सूचक उपकरण बना दिया है। वैसे ही, कुंज यहाँ सहेट स्थल है, राधा नागरी है, लीला हाव और अष्टयाम नायक नायिकाओं की काम दग्ध दिनचर्या। इन समस्त उपकरणो का रति वर्द्धन के निमित्त उद्दीपनात्मक चित्रण हुआ है। प्राकृत नायकों के शृङ्गार के लिए अप्राकृत नाम रूपों का यह प्रयोग कृष्ण की मानवता ही नहीं, मानव की कामुकता भी सिद्ध करता है। प्राणिजगत् मे काम की सत्ता अमोघ है।

किन्तु जीवन और साहित्य की साधना मे भी जहाँ काम काम्य बन जाता है, वहाँ उसमें विकृति आ जाती है। साहित्य में राग शोधित काम ही उत्कृष्ट शृङ्गार का आसन ग्रहण करता है। रीति कवियो का शृङ्गार राग-शोधित न होने के कारण काम चित्रण हो गया है। रीति-कवियो की अद्यावधि आलोचना का मूल लक्ष्य यही है।

शृंगार वर्णन—राधा कृष्ण का प्रेम कही प्रत्यक्ष सयोगजन्य, कही स्वप्न सयोग-जन्य और कही वशी सम्मोहन-जन्य चित्रित है।

प्रत्यक्ष सयोग जन्य प्रेम—'कहि केशव श्री वृषभानु कुमारी शृगार शृगार सबै सरसे।
सविलास चितै हरि नायक त्यो रतिनायक सायक से बरसै।

मतिराम—जबते सिर मोर पखानि धरे, चित चोरि चितै इत और हँस्यो।
तबतें दुरि भाजि ने लाज गई,अब लालचु नैननि आनि बस्यो ॥ —म० ल० २६८

स्वप्न सयोगजन्य प्रेम—मतिराम ने इसका सुन्दर चित्रण इस सवैये में किया है—
ओठनि को रस लैन कौं मोहन, मेरी गही कर कपत ठोडी।
और भट्ट न भई कछु बात, गई इतने ही म नींद निगोडी ॥ —म० ल०–३११

स्वप्न सयोग के उत्तान चित्रकारो मे ग्वाल मुख्य हैं।

वशी-सम्मोहन—विहारी आदि ने गोकुल वधुओं के कुल किनारो को छिन्न भिन्न करने वाली मुरली के मादक सुरों का बखान सूर, रसखान आदि के ही ढग पर किया। किन्तु मतिराम और देव ने इसमें कामध्वनि और अभिसार सकेत की व्यजना की है, यह इनकी रीतिकालीन मन स्थिति की उद्भावना है। इनसे नायिका के मन मे कामदशा का सचार होता है। प्रणयातिरेक मे वह चाहती कुछ और, और करने कुछ और लगती है—

'साँझ समैं 'मतिराम' कामवस बशोधर, बसीवट तट पैं बजाई जाय बाँसुरी।
सुमिरि सहेट वृषभानु की कुमारी उरदुख अधिकानो भयो सुख को बिनासु री।

यौवन की अठखेलियो का प्रभाव नायक कृष्ण पर पडता है और वह भी पूवराग की मादक लहर से बेहाल हो जाते हैं—

कहा लडैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल ॥ सतसई, १५४

कृष्ण का पूर्वानुराग चित्रण सूर और सुन्दर दास ने भी किया था। उपर्युक्त पक्ति पर सूर का सीधा प्रभाव है- कहु मुरली, कहुँ लकुट मनोहर (३३५७)। पूवराग की दाहक स्थितियों को पार कर काम के रस में पूर्णत सराबोर हो जाने का उपक्रम शुरू होता है। और कविगण राधा कृष्ण की अतीन्द्रिय महिमा को ताख पर रख कर काम के सिन्धु मे पैठ जाते हैं। वह सभोग की नाना भगिमाओ से अपने शृङ्गार-काव्य को भर देते हैं। केशव ने सयोग वियोग के प्रच्छन्न तथा प्रकाश विभेद किय हैं। तथा, राधा-कृष्ण की शृगार-चेष्टाओ को १३ 'हाव विधान' के अन्दर रखा है। सभोग के अतगत विपरीत रति के उल्लेख हुए हैं जो उस विलासितापूर्ण वातावरण की प्रतिच्छाया हैं।

केशव—वन म वृषभानु कुमारि मुरारि रमे रुचि सों रस रूप पिये।
कल कूजत पूजत कामकला विपरीत रची रति केलि हिये ॥
मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनों शनि अक लिये ॥ १/२०

बिहारी—बिहारी और ग्वाल राधा भक्त कवि माने गये हैं। किन्तु उनकी प्रसिद्ध राधा स्तुति म प्रच्छन्न कामुकता का संकेत ऊपर किया जा चुका है। नीचे विपरीत रतिविषयक एक दोहा उद्धृत है—

राधा हरि, हरि राधिका बनि आए संकेत।

दपति रति विपरीत-सुख सहज सुरत हूँ लेत ॥ सतसई-१८१

अभिसार विषयक ऐसे कितने ही दोहे सतसई के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। यहाँ तो यहाँ हो गयी है जहाँ मजाक ही मजाक में राधा कृष्ण की चोरी का कामसुख गा गुप्त कहकर उनपर विलासी कामना के प्रणत छींटे गये हैं—

चिरजीवी जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।

को घटि, ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥ १८२

चाँचर हो या होली, राग हो या कुञ्जविहार, चीरहरण या दोला विलास सबका इसी ऐन्द्रिक सभोग का चित्रण हुआ है। देव और पद्माकर ने होली का एक प्रकार से मासलविकारपूर्ण वर्णन किया है।

पद्माकर—ऊधम ऐसो मचो ब्रज में सब रंग तरङ्ग उमंगनि सींचैं।

एक ही सङ्ग इहाँ रपटे सखी ये भए ऊपर हौं भई नीचैं ॥ पद्माकर पद्मामृत-१८३

अथवा, केसरि कपोलनि पै मुख में तमोल भरि, भाल म गुलाल नदलाल प्रतिमनम-५०१० २७१

हिंडोला वर्णन का एक पद इससे काफी मिलता जुलता है—

काम भूले उर म उरोजन म काम भूले, स्याम भूले प्यारी की म भारी अँखियान म-फुटकर, ३०

इनकी कलुषित मनोवृत्ति का उदाहरण बालवर्णन मे भी काम वर्णन की पुनरुक्ति है—

मोहिं लखि सोवत बिथोरिगो हिय को हार छोरिगो सुगैया को।

चोरिगोविलासी आज लाज ही की नैया को।

बूझिहैं चवैया तब कहौं कहा, देया, इत पारिगो को मैया मेरी सेज प क हैया को-पद्माकर

सयोग के इस चित्रण म नायक नायिकाओ के साथ साथ दूतियो, सखियों और कुट्टनियों का सहयोग और दौर दौरा रहा है। किन्तु वियोग चित्रण मे वैसी रुझान नहीं। इनमे प्रवास की अपेक्षा मान का पक्ष प्रबल है। पद्माकर के शब्दों में—

हे हरि तुम बिन राधिका सेज परी अकुलाति।

तरफराति तमकति नचति, सुसकति आवति जाति ॥ –पद्माभरण–१६४

मान और खण्डिता के प्रकरण रीतिकवियो के प्रिय विषय रहे हैं। सूरादि कृष्ण भक्त तथा रसखान आदि भक्ति शृगार के कवियो ने इनके अनेकश उल्लेख किय हैं। खण्डिता प्रसग म कृष्ण का दक्षिण नायक रूप प्रकट हुआ है। दूती की प्रबल भूमिका म यह विषय रीतिकाल मे खूब निखरा है। वैसे कृष्ण इतने चतुर हैं कि अपन लीला चापल्य से ही मान के पाषाण को टार कर कामिनी के काम का पान कर लेते हैं।

काहू पै चलाइ चख प्रथम रिझावैं फेरि,

बाँसुरी बजाइ कै रिझाइ लेत राधा को।—जगद्विनोद

कृष्ण ने ललिता का नाम लेकर वशी बजाई। राधा रूठ गयी। कृष्ण ने वशी बजाकर रिझा तो लिया कि तु सखी भविष्य के लिए ताड़न देती जाती है—

आजु की घरी तें लै भूमुलिहू भलै ही श्याम
ललिता वो लै नाम बाँसुरी बजैयो जिन ॥–जगविनोद–६३३

प्रवास वियोग—रीतिकवियों के उथले मानस म कृष्ण प्रवासजन्य वियोग की गभीर अन्तदशा स्थान न पा सकी। इसीलिए अधिकाश कवियो ने देव की तरह 'सपने महँ स्याम विदेश चले' कह कर छुट्टी पा ली है। इससे उनके कृष्ण लीला वणन के इस मार्मिक पक्ष के प्रति कृत्रिम दृष्टिकोण का पता चल जाता है। कइयो ने तो कृत्रिम प्रवास की कल्पना से प्रिया प्रिय के आलिंगन पाश को दृढ़तर करने का बहाना ही ढूँढ निकाला है। सच तो यह है कि इनके नायक का राधिका से वास्तविक वियोग कभी हुआ ही नही। अत कृष्ण लीला के इस सर्वाधिक मार्मिक पक्ष की ओर इनकी दृष्टि न होना स्वाभाविक ही है। वस्तुत इन कवियो का कामाचार अष्टयाम कोटिक ही है, प्रवास कोटिक नही। इसीलिए रस वणन के आग्रह से जहाँ इ होने वियोग का चित्रण भी किया है वहाँ अधिकाश मे, नायिका का शिशिरोपचार ऊहा आदि कामदशा या अधिक से अधिक पथिक सवाद की काल्पनिक योजनाओ मे ही इसे निरस्त कर दिया। फलत कृष्णचरित्र का पक्ष दब गया है। कृष्ण प्रवास के अनन्तर कुब्जा प्रसग, उद्धव सन्देश, भ्रमरगीत, द्वारकावास और ब्रज सुधि तथा कुरुक्षेत्र मिलन के प्रसग कृष्ण के भावात्मक स्वरूप के अनाविल स्रोत हैं जो रीति की लक्ष्मणरेखा में सूख गये हैं। वैसे, सेनापति मतिराम, देव और पद्माकर जैसे रससिद्ध कवियों की कृतियो म ये प्रसग अछूते नहीं हैं किन्तु इनम सेनापति का विगलित स्वर सबसे अनूठा है। इनकी कृतियो मे कृष्ण प्रेम के मार्मिक प्रसगो का अ तर स्पश है। अपने ऊहात्मक उपचार वणन मे भी उनकी पीर मीरा की पीर के सन्निकट है जहाँ वह कहते हैं—सेनापति जदुबीर मिलें ही मिटगी पीर–(क० र० २।३६)। विरह की बरसात उमड कर आती है और 'प्रीतम की पतियाँ' 'सुहागिन की छोहभरी छतियाँ' को धडकाने लगती हैं। ऐसे मे कवि कचोटकर कहता है—

'बीती औधि आवन की लाल मनभावन की
डग भई बावन की सावन की रतियाँ।–क० र०—२/२८

यह उपमा रूपक का चमत्कार नही, हृदय की धडकनो का प्रसाद है। विरह व्यथा के चित्रण म कवि ने वितक और विषाद की उन्ही लेखनी और मसी का प्रयोग किया है जिनसे मध्ययुग में मीरा और आधुनिक कविता म 'कनुप्रिया' का ज म हुआ। वह कहता है—

कौने बिरमाए कित छाए अजहूँ न आए कैसे सुधि पाई पीरे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वैहैं, जा दिन वदन छवि देखौं नन्दलाल की॥

'सेनापति जीवन अधार गिरिधर बिन' मे तो वियोगिनी मीरा का विगलित कठ स्वर ही फूट पडा है। श्याम का प्रेम और केवल प्रेम ही यहाँ काम्य है जिसके ताने बाने मे विरहिणी ब्रजागनाओ का सम्पूर्ण अस्तित्व कल्पित हुआ। इस प्रेम के प्रति घनानन्द में भी वही तडप है–'पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं' किन्तु, यह इकतरफा चीख-पुकार नही है। उधर कृष्ण भी कम बेचन नहीं हैं–द्वारकापुरी के ऐश्वर्य-भोग म घिरे रहकर भी ब्रज-कुञ्ज की सेज उनके कलेजे म दिनरात खटकती रहती है—

लोल हैं कलोल पारावार के अपार तऊ,
जमुना लहरि मेरे हिय मों हरति है।
कचन अटा पर जराऊ परजक तऊ, कुब्जा की सेजें ये करेजे सरकति हैं।

उक्त कवित्त म कृष्ण चरित्र का भावात्मक स्वरूप पूरी तरह व्यक्त हुआ है। इसपर रसखान के एक कवित्त की छाप स्पष्ट है—

ह्यां की गज मोती माल वारौं गु ज मालन पै,
कुञ्ज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं॥
मन्दर ते ऊँचे यहा मन्दिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खरक मेरे हिये खरकत हैं॥ १६

सेनापति रसखान से प्रभावित हो सकते हैं किन्तु जहां तक राधा-सुधि का प्रश्न है वह सूर के निकट पहुँच जाते हैं। सेनापति भाव के ही धनी नहीं, विभावो के भी ज्ञाता हैं। भ्रमर-गीत के इस प्रसग में वह कुब्जा प्रेमी कृष्ण के प्रेम का कच्चा चिटठा खोल कर रख देते हैं—

कूबरी यौं कल पैहैं हम इहां कल पैहैं, सेनापति स्यामैं समझैयो परवीने हैं॥
हम वे समान ऊधो कहो कौन कारन त, उन सुख माने हम दुख मानि लीने हैं॥
—क० र०, ३/६६

अत सेनापति रीतिकाल में उन प्रेममग्न कवियो के सिरमौर हैं जिन्होंने कृष्ण के भावात्मक पक्ष को भाव और विभाव दोनो ही दृष्टियों से निखारकर कृष्ण लीला को रीतिबद्ध शृङ्गार-वर्णन से मुक्ति दिलाई है। इस दिशा म क्रम से मतिराम, पद्माकर और देवचरित्र के रचयिता देव भी वन्दना के पात्र हैं।

शृगार और भक्ति की तात्त्विक परीक्षा—रीतिकाल के कवियो ने राधा कृष्ण शृङ्गार वर्णन के साथ साथ कुछ कृष्ण भक्ति-परक रचनाएँ भी की हैं। जिस युग के कवियों को भक्तिभावित कृष्णचरित्र की प्राय दो शताब्दियो की स्वर्णिम काव्य परम्परा उत्तराधिकार के रूप मे मिली हो, उनके लिए यह अस्वाभाविक नही है। विद्वानो ने भक्ति को इस युग की 'मनोवैज्ञानिक आवश्यकता' करार देते हुए यह स्पष्ट घोषणा की है कि–[१]

'रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नही है, हो ही नही सकता था इस मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की प्रतिपत्ति के लिए जिन दो कारणो का उल्लेख किया गया है उनमे एक आत्मनिष्ठ और दूसरा वस्तुनिष्ठ हैं। अर्थात्, एक कवि की व्यक्तिगत मनोभूमि से सम्बद्ध है और दूसरा उस युग की सामाजिक चेतना से। जहां तक कवि की व्यक्तिगत मनोभूमि का सम्बन्ध है इस विषय मे सन्देह की गुञ्जाइश नही कि जीवनपयन्त शृङ्गार वासना के पनाले में डुबकी लगाने वाले इन रसिकों के मन मे अन्तत उसके प्रति निर्गति और विषाद के लक्षण उभर आये थे जो स्वाभाविक ही है।

बिहारी—या भव पारावार को उलँघि पार का जाय।
तिय छवि छायाग्राहिनी गहै बीच ही आय॥ ५५२

१ री० का० भू०—पृ० १६५

देव—ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ, पाँव तेरे तोरतो।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे ते बाँधि,
राधाबर बिरद के बारिधि मे बोरतो।
—देव और उनकी कविता (पृ०१११) डॉ० नगेन्द्र

क्रिया के अनन्तर प्रतिक्रिया, चरम विकास के अनन्तर निगति, यह मनोविज्ञान का एक नित्य सिद्धान्त है जो मानव चेतना से सम्बद्ध अन्य कला शास्त्रो पर भी लागू होता है। रीति काल के प्राय सभी कवियो मे अन्तत भौतिकता के प्रति विद्रोह और अवसाद की छाया मिलती है। यौवन वय के ढलान पर अपन राधा कृष्ण के शृङ्गारी हाव भाव पर सेनापति और मतिराम को छोड प्रत्येक कवि को पछतावा हुआ है और उसने लीला पुरुष कृष्ण से करबद्ध क्षमा मागी है।

बिहारी—तौ लगु या मन सदन मे हरि आवै किहि बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट खुलै न कपट कपाट॥ २९४

ग्वाल—श्री राधापद पदुम को प्रनमि प्रनमि कवि ग्वाल।
छमवत है अपराध कौं, कियो जु कथन रसाल॥

यह तथाकथित भक्त्यात्मक उद्गार उनके स्वस्थ मन की आत्म स्फूर्ति और व दना न होकर विगत के अपने किये पर आत्म परिताप की प्रतिध्वनि है।

बिहारी—हरि कीजति तुम सौं यही बिनती बार हजार।
जिहि तिहि भाँति डरयौ रह्यौ परयौ रहौं दरबार॥ ६९९

ऐसी कृतियो मे कृष्णचरित्र के भावात्मक स्वरूप का उ मीलन असभव था। इन्होने कृष्ण चरित्र को सावजनिक सम्पत्ति के रूप म ग्रहण किया और सवसामा य के ढग पर उसका का य मे प्रयोग कर छुट्टी पा ली है। इसीलिए कृष्ण का लोकरजनकारी स्वरूप चित्रित होते होते रह गया। अत जीवन के दाव हारे हुओ मे भक्ति का अनिवाय आभास मात्र इस आधार पर मान लेना कि इन्होने नायक और नायिका के लिए बार बार 'हरि और 'राधिका शब्दो का प्रयोग किया, बहुत तर्क सगत नही। वह तो भक्ति का मुलम्माभर है। जिसकी ओर दास ने बिल्कुल स्पष्ट भाव से सकेत कर दिया था —

रीझिहैं सुकवि जौंतो जानो कविताई,
न तु राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

रीतिकाल के कवि अपने युग की सामाजिक चेतना के कितने कायल थे, यह जग जाहिर है। रीतिकवि पर निम्नमध्यवित्त परिवार का सस्कार तो था किन्तु वह दरबारी विलासिता के प्रगाढ़ रङ्गों में रँग चुका था। उसका समाज बहुत कुछ यह विलासी साम त-समाज ही था। और उसके लिए इन्ह राधा कृष्ण भक्ति कवच की कोई आवश्यकता न थी। अत भक्ति-विषयक ग्लानि भी उनके वयोवृद्ध मन को हुई है, सामाजिक व्यक्तित्व का नहीं। राधा

कृष्ण के स्मरण की यह शृङ्गारिक परम्परा मध्य भक्त कवियों में अनुकरण पर ही नहीं चली बल्कि यह बहुत कुछ विद्यापति, जयदेव आदि में पहले से ही चली आयी है। पूर्वी प्रदेश के जन कवियों के शृङ्गारी गीतों में जिस समय शिव पार्वती के स्थान पर राधा कृष्ण गृहीत हो रहे थे उसी समय से परम्परा का अनुमान किया जा सकता है। शिव पार्वती की अपेक्षा राधा कृष्ण भक्ति में शृङ्गार पूर्ण प्रवणता देखकर कविगण कृष्ण चरित्र की ओर झुके। और कुछ काल तक उन्होंने शिव-कृष्ण की समवेत स्तुति की। यहाँ तक तो भक्ति और शृङ्गार की सम्पृष्टि रही। किन्तु तदनन्तर विविध दृष्टियों से कृष्णचरित्र में ही पूर्णता की आवृत्ति हुई।[१] जयदेव के गीतगोविन्द में हरि स्मरण' और 'विलासकला', विद्यापति की पदावली में हरि और बालक, रूपगोस्वामी में म० र० सि० 'जग-मगल और सुहृदा प्रमोद', मीरा के गीतों में गिरिधर नागर' आदि उत्तरोत्तर उत्तरपक्ष प्रधान पद ही रसखान में आकर प्रेमदेव', वल्लभरसिक में आकर 'किशोर किशोरी', घनानन्द में आकर श्याम सुजान' और केशवदास में आकर नायक नायिका बन गये हैं। अत इनके 'सुमिरन को नवधाभक्ति का 'स्मरण' भी नहीं कह सकते। दास की इस उक्ति में 'भक्ति और 'रीति' का समभाव भी नहीं है, जैसा कि कुछ विद्वानों को अभिमत प्रतीत हुआ है।[२] 'न तु में जो अन्यथा भाव है उसे नजर अन्दाज कर ही ऐसी प्रतीति हुई है। भक्ति और रीति भाव सम नहीं हैं। 'कविताई का आग्रह और तज्जन्य 'रीझ का व्यामोह यहाँ प्राथमिक महत्त्व रखता है। और इसकी विफलता में ही 'सुमिरन' को दूसरा 'प्रिफरेंस' है। 'रीति आगे और 'भक्ति का बहाना पीछे है। रीति कवियों का कृष्ण वर्णन 'प्रकृत जन गुन गान ही था। नायक और नायिका की जगह 'कृष्ण और राधिका के उल्लेख के चकमे में आना ठीक नहीं, यह अपनी ही स्थापनाओं में अन्तर्विरोध का कारण बन सकता है।

निष्कर्ष—रीति काल के चौखटे में कृष्ण प्रेम का मार्मिक और सांगोपांग चित्रण जो सेनापति और कुछ कुछ मतिराम ने किया है वह सूर के वस्तुवर्णन और मीरा रसखान के वर्णन के बिल्कुल पास है।

सेनापति—सेनापति, चाहत हैं सकल जनम भरि, वृन्दावनसीमा तें न बाहिर निकसिबौ॥
राधा मन रंजन की सोभा नन कंजन की, माला गरे गुंजन की कुंजन को बसिबौ॥
—क० र० (५/२१)

मतिराम—होत रहै मन यो मतिराम कहूँ, बन जाय बड़ो तप कीजै।
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरु, ह्वै मुरली अधरारस पीजै॥ —रसराज-६०

और कवित्तरत्नाकर में उसके राधा कृष्ण प्रेम निरूपण की यह हृदयहारी निश्छलता कुछ लोगों को भक्ति शृङ्गार के वैष्णव कवियों के संसर्गजन्य जो लगे किन्तु है वह उचकोटि की कवित्वशक्ति का ही प्रतिफल। उधर देव के देवचरित्र के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है कि जैसे उनका अष्टयाम केवल उनका ही नहीं वरन् समस्त रीतिकविता

१ डॉ० श० भू० दा० गुप्त—श्री रा० क्र० वि, (पृ० १३६)
२ डॉ० न० ला० गौड़—'घ० स्व० का० धा०' (पृ० २३०)

की जवानी की प्रतिनिधि दिनचर्या है वैसे ही उनका 'देवचरित्र' भी उनके साथ साथ सम्पूर्ण शृङ्गार काल के वैराग्य-ग्रहण का प्रामाणित चरित्र है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में[1]—'भाव विलास' से लेकर 'शब्द रसायन' तक कृष्ण को शुद्ध शृङ्गार प्रतीक रूप में चित्रित करते रहने के उपरान्त देव ने इस ग्रन्थ में उनके विभिन्न चरित्रों का वर्णन करते हुए 'रसिक राय' के लोकपावन रूप की भी यत्किंचित् झाँकी दी है।' किन्तु, कृष्ण भक्ति और कृष्ण-लीला में निर्विकल्प मन से तल्लीन न हो सकने के ('कवि पथ' के) कारण ही यहाँ कृष्णचरित्र से बेमेल बातें लिख गयी हैं। जैसे—'यशोदा के गर्भ से कृष्ण का जन्म', कालिय दमन के पूर्व ही 'कालयवन वध' आदि पुराण विरोधी वृत्तान्त। फिर भी सम्पूर्ण रीतिकाल में कृष्णचरित के सभी पक्षों का ऐसा शृङ्खलाबद्ध निरूपण विरल है। यद्यपि रीतिकाल में रीति सम्प्रदाय के अतिरिक्त भक्ति सम्प्रदाय का महत्त्व ही क्या था? फिर भी पद्माकर रामभक्त कवि जान पड़ते हैं। और इस दृष्टि से वह केशव और सेनापति के ही समान हैं। केशव और सेनापति दोनों ने आराध्यदेव और शृङ्गार देव का अन्तर बनाये रखा। अतः यह कहना कि[2] 'अकेले पद्माकर ऐसे कवि हैं जिन्होंने शृङ्गार वर्णन के लिए राधा-कृष्ण को ग्रहण किया और भक्तिपरक रचनाएँ सीताराम के नाम पर लिखीं'—ठीक नहीं। वैसे ही बिहारी और ग्वाल राधा-सम्प्रदाय के भक्त समझे जाते हैं किन्तु जहाँ वह नागरी राधा और नागर कृष्ण की 'तनद्युति' से ही अपने दृग मख को पोंछ कर रह जाते हैं वहाँ ग्वाल कुमारी राधा के पाद पद्म में अपनी भक्ति गद्गद कृतियाँ (यमुनालहरी, कृष्णाष्टक, राधाष्टक, कृष्णचन्द्र जू को नखशिख[3] आदि) समर्पित करते हैं। इन कवियों में भी कृष्ण भक्ति का साम्प्रदायिक आग्रह न होकर सामान्य विश्वास भर है। किन्तु, यह साम्प्रदायिक भक्त कवियों का प्रभाव नहीं है, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं।[4] भक्त कवियों में साम्प्रदायिक कट्टरता है। किन्तु इन कवियों की भक्ति विषयक यह उदारता इनकी भक्ति को शृङ्गाराश्रित सिद्ध करने का ही एक और प्रमाण उपस्थित करती है। और, रीति-शृङ्गार के चौखटे में व्यक्त होने वाले इक्के दुक्के भक्त्यात्मक उद्गार अपवाद रूप में नियम को ही सत्य करते हैं। ऐसे ही उद्गारों में से एक यह भी है—

राधा मोहन लाल को, जिन्हें न भावत नेह,
परयो मुठी हजार दस, तिनकी आँखिन खेह। —मतिराम

इसकी तारीफ करते हुए डॉ० द्विवेदी ने कहा था कि[5] इनके भक्तिपरक उद्गारों की सचाई में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। लेकिन काव्य में व्यक्त इनकी यह सचाई स्थायी नहीं है, न ही यह कवि के संस्कार का नित्य धर्म है। पर क्षण विशेष में निःसृत इन

---

१ देव और उनकी कविता—पृ० ६१
२ डॉ० रा० प्र० चतुर्वेदी—'रीतिकालीन कविता और शृङ्गार रस का विवेचन (पृ० ५०८)
३ हस्तलिखित—ना० प्र० सभा (काशी)—संग्रहालय
४ डॉ० बच्चन सिंह—'रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना'—पृ० ४३७
५ हि० सा० भू०—पृ० १२८

उद्गारों को प्रेरणा देने वाली कोई ऐसी मनोदशा अवश्य है जो रह रह कर इन कवियों को अपने प्रकृत मार्ग से विचलित करती रहती है।[१] अधिकांश विद्वानों का यही मत है।[२]

कृष्ण के शृङ्गारिक स्वरूप के प्रति रीति-कवियों में कोई द्वन्द्व नहीं था, यह निर्विवाद है। किन्तु, कृष्ण भक्ति के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। वह वस्तुतः उनका प्रकृत क्षेत्र ही नहीं था। इसीलिए उनके काव्य में ही नहीं वरन् उनके लक्षणों में भी न तो भक्ति रस का विरोध ही किया गया और न उसकी पुष्टि ही। यह कुण्ठा वस्तुतः उनके काव्य में वर्णित कृष्ण के शृङ्गारिक स्वरूप ही के कारण थी जो भक्ति रस में प्रत्यक्ष विरोधी का कारण बनता। किन्तु, प्रश्न है कि यही अन्तर्विरोध वैष्णवाचार्यों के आड़े क्यों नहीं आता? तो, इसका सीधा उत्तर यह है कि वैष्णवाचार्यों का कृष्ण चरित्र भक्त कवियों का कच्चा माल था किन्तु रीति कवियों की कृष्ण लीला शृङ्गारिक कवियों की सम्पत्ति थी। इसमें शास्त्रीयता की अपेक्षा लोक मानस की प्रतिध्वनि थी। अतः इन्होंने भक्ति रस का जो विरोध अविरोध कुछ नहीं किया, इसके पीछे उक्त शास्त्रीय बाधा ही थी। इसमें 'नैतिक बल' का प्रश्न नहीं उठता। इस भक्ति रस के विरोध अविरोध के अभाव को कुछ लोगों ने भक्ति मात्र पर कुठाराघात समझ लिया और फलतः वह उसके नैतिक समर्थन के लिए कटिबद्ध से हो गये हैं।[३] किन्तु, वस्तुतः उक्त आलोचना[४] का लक्ष्य 'भक्ति रस' के शास्त्रीय पक्ष से ही है जिसका इन आचार्य कवियों ने न तो सैद्धान्तिक समर्थन ही किया और न युक्तिपूर्ण निषेध ही।

---

१ डॉ० बच्चन सिंह—रो० क० प्रे० व्य० पृ०-४३४

२ डा० नगेन्द्र—'देव और उनकी कविता' पृ०-६१

३ डॉ० रा० प्र० चतुर्वेदी—'रो० क० शृ० र० वि०'-पृ० ३१७

४ डॉ० नगेन्द्र—'रीतिकाव्य की भूमिका'-पृ० १६५

दशम अध्याय

आधुनिक काल की भूमिका में कृष्ण

अनुच्छेद–१

★युग सन्धि के कवि (भारतेन्दु) और कृष्ण

अनुच्छेद–२

★पुनरुत्थान के कवि (हरिऔध, गुप्त) और कृष्ण

अनुच्छेद–३

★रोमानी भावना के कवि (भारती) और कृष्ण

प्रथम अनुच्छेद

युग-सन्धि के कवि (भारतेन्दु) और कृष्ण

युग सन्धि के कवि—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म स० १६०७ (सन् १८५०) मे हुआ था जिसे साहित्य के इतिहासकारो ने सर्वसम्मति से वर्तमान काल का आरम्भ माना है। रीति या शृङ्गारकाल की उत्तर सीमा भी यही है। अत हिंदी काव्य में भारतेन्दु का उदय रीति और आधुनिक काल की सन्धि रेखा पर मानना ऐतिहासिक दृष्टि से समीचीन है।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। प्रतिभा, वश सस्कार, स्वाध्याय, जाति और जातीय भाषाओं के प्रति सहजात प्रेम ने मिलकर उनके जिस साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण किया था उसमें सहज ही अतीत की सास्कृतिक परम्पराओ और वर्तमान जीवन की बौद्धिक प्रेरणाओ का मणि काचन योग सघटित हुआ। भारतेन्दु जी ने अपने पूर्व की प्राय समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियो को जिस उदारता से आत्मसात किया, तुलसी को छोड दूसरे किसी कवि ने नही किया था। उनकी कृतियो मे चारण कवियो की जातीय भावना, वैष्णव कवियो की कृष्ण भक्ति और रीति कवियो की शृङ्गारिकता की समवेत प्रतिध्वनि है। वह दूसरी ओर नव्यतर भाषा साहित्य के प्रयोक्ता और राष्ट्रीय जागरण के वैतालो होने के कारण आधुनिक युग के पुरोधा भी हैं। उनकी कृतियों के सर्वेक्षण से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि उ होने अपनी रचनाओं मे साम तवादी सस्कारों की अवशिष्ट भूमिका पर ही आधुनिक प्रवृत्तिओं का बीजारोपण किया था। इसलिए आगत के स्रष्टा के मन मे विगत साम तवादी सस्कारो और जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह का भाव नही वरन् आग्रह का भाव है। इस सस्कार के प्रति आग्रह का उदात्त रूप उसकी कृष्ण भक्ति और अवदात रूप उसकी शृङ्गारिक रसिकता है। एक भक्ति भावित होन के कारण भक्त कवियो की पद परम्परा म साम्प्रदायिक रचनाओ की स्फूर्ति प्रदान करता है तो दूसरा कवि के कृष्ण को कुलीन विलासिता क रगो मे अनुरजित कर प्रस्तुत करता है। कि तु ये द्विविध वृतियाँ अ तत उसके अ तरतम की अभिव्यक्ति नही है। उनकी अनुकरणमूलक रचनाएँ और कुलीन विलासिता इसके प्रमाण हैं। फिर भी भक्ति और रीति की परम्पराओ का स्वायत्तीकरण श्लाघनीय है। इसके अतिरिक्त, कवि की नवो मेषशालिनी प्रतिभा ने कृष्ण भावना के निद शन म अनक नवीन प्रसगो की उद्भावना की है। इस तरह, आधुनिक युग म भारतेन्दु का कृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व रसखान की ही तरह परम्परा और प्रयोग, प्राचीन और नवीन, युगा त और युगा तरकारी महिमा से मडित है। उनके कृष्ण वल्लभ सम्प्रदाय के भक्तो के भगवान, रस सिद्ध वैष्णवो के रसेश्वर, भक्ति शृङ्गारी रसिको के रसिया, स्वच्छन्द प्रेमियो के मह बूब, रीतिबद्ध कवियो के कामनायक और आधुनिक युग के राष्ट्रोद्धारक राम भी हैं। अत

कृष्ण भावना के प्रति यह प्राचीन नवीन दृष्टिकोण भी उसकी युग-सन्धि जात प्रवृत्ति का पोषक है।

रचनाएँ—भारतेन्दु जी की, काल क्रम से रचित,कृष्ण प्रेम सम्बन्धी प्राय २५ छोटी-बडी काव्य कृतियाँ और प्राय ३० के लगभग स्फुट पद हैं जिन्हें कृष्ण भावना के निदशनार्थ छाँट कर निकाला जा सकता है। इनके अतिरिक्त उनकी चन्द्रावली नाटिका भी अपने पद्य प्रधान स्वरूप में इस विषय की सुन्दर सस्थापिका है। अत गीति प्रबन्ध, स्फुट पद और नाट्य कृति ये ही आलोच्य कृतियाँ हैं जिनके आलोडन से भारतेन्दु के प्राचीन नवीन कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का दिग्दशन किया कराया जा सकता है।

कृष्ण लीला की दृष्टि से वर्गीकरण करने पर उनकी काव्य रचना के निम्न प्रकार-भेद हो सकते हैं—

(१) पूर्ण कृष्ण लीला—यहाँ वृन्दावन लीला से ही तात्पर्य है। इस वग के अन्तर्गत उनकी प्रेम मालिका (स० १९२८), प्रेम माधुरी, प्रेम तरग, प्रेम प्रलाप, राग सग्रह (स० १९३७) के पद तथा स्फुट कविताएँ आदि हैं। (२) स्फुट शृङ्गार-लीला—इसमें गोपी कृष्ण या विशेषत राधा कृष्ण की शृङ्गार केलि ही वर्णित है। इस वग के अन्तगत प्रेमाश्रु वर्षण (स० १९३०), प्रेम फुलवारी, कृष्णचरित्र (१९४०) आदि हैं। (३) ऋतु-रसव लीला इसमें विभिन्न ऋतुओ में होने वाले उत्सवो और पवत्योहारो के परिवेश मे कृष्ण-लीला चित्रित हुई है। इसके अन्तगत कृष्ण चरित्र वर्णन मे लोक-सस्कारो का भाव भीना स्पर्श भी है और सामन्तीय ऐश्वय की चमक भी। कार्तिक स्नान (स० १९२९) श्री पचमी, होली, मधुमुकुल, वर्षा विनोद (स० १९३७) आदि इस वग के अन्तगत हैं। (४) सैद्धान्तिक रचनाएँ—प्रेम-सरोवर (सन् १९३०), विनय प्रेम पचासा (१९३८) आदि। प्रेम-सरोवर के प्रेमविषयक दोहों पर रसखान की 'प्रेम वाटिका' का प्रभाव है। (५) साम्प्रदायिक रचनाएँ—भक्ति सवस्व (स० १९२७), श्रीनाथ स्तुति (१९३४)। (६) अनुकरण मूलक रचनाएँ उत्तरार्द्ध भक्तमाल (स० १९३४), गीत गोविन्दानन्द, सतसई सिंगार (स० १९३५) आदि। (७) फारसी प्रेम और राष्ट्र प्रेम समन्वित कृष्ण काव्य—फूलों का गुच्छा (स० १९३६) आदि। इसके अन्तगत महबूब कृष्ण और राष्ट्रोद्धारक कृष्ण का रूप व्यक्त हुआ है।

कवि ने कृष्ण काव्य की विशाल परम्परा का अवगाहन किया था। इसलिए उनके द्वारा कृष्ण चरित्र के विभिन्न स्वरूपो का एक रसिक भक्त कवि की दृष्टि से सुन्दर आकलन हो गया है। इनम ब्रजेतर कृष्ण का प्राय अभाव है। कवि ने अपनी प्रेमोमग और शृङ्गारी रुचि के अनुकूल ब्रजेश कृष्ण का किशोर-लीलाओं का सुविस्तृत अकन किया। हाँ, वल्लभ भक्ति-सवेदन के परिणाम-स्वरूप बाल-कृष्ण का सुमधुर छवि अकन भी नहीं छूट सका। अत इन पूर्ण कृष्ण-लीलाओं में बाल से लेकर किशोर और यौवनकालीन प्राय सभी केलि क्रीडाओ का घात प्रतिघात चित्रित है। इस प्रेम चित्रण म कहीं तो भक्त-हृदय की तन्मयता है तो कहीं शृङ्गारिक कवि की काम विदग्धता, कहीं फारसी प्रेम की तडप है तो

कहीं लोक जीवन की निश्छलता, कहीं राजसी प्रेम की चमक है तो कहीं राष्ट्रीय प्रेम की प्रखरता। किन्तु, अधिकांश में रसिक शिरोमणि कृष्ण और काम विदग्ध कृष्ण के राग रंगों का ही व्यापक वितान तन गया है और, इसके भीतर महत्त्व कृष्ण और राष्ट्रीय कृष्ण का झीना रूप बिल्कुल छिप गया है। उक्त दो प्रबल रूपों पर भी सूर, रसखान आदि रससिद्ध भक्त कवियों और देव, मतिराम, घनानन्द, पद्माकर आदि रीतिकवियों की कृतियों की छाप है, इसे हम यथास्थान ध्वनित करते चलेंगे। सम्प्रति, इन कृष्ण-लीलाओं के कुछ स्वरूप-दृष्टान्त प्रस्तुत हैं—

कृष्णलीला का क्रमिक चित्रण

(१) बाल वर्णन—कृष्ण जन्म वर्णन ('वर्षा विनोद'—१००, १०३, १०४) के अतिरिक्त भारतेन्दु की विशेषता बाल क्रीडा के साथ साथ प्रौढ़लीला ('प्रेम मालिका'—२९) के चित्रण में है। यह भारतेन्दु की मौलिकता नहीं, उनकी रसिकता और सुरुचि शालिता का परिचायक है। कृष्ण की भावात्मकता का यह एक ज्वलन्त प्रमाण है कि वह एक ही समय भिन्न भिन्न सम्बन्ध दृष्टि से भिन्न भिन्न पहलुओं में भावित होते हैं। हाल की गाथा सतसई में उनकी इसी भावापन्नता की झलक मिलती है। सूर की भी गोपियाँ कृष्ण की असामयिक चचलता पर मीठी झिड़की देती हुई कहती हैं–'तरुनाई तन आवन दीज कत जिय होत बिहाल।' भारतेन्दु ने भी कृष्ण के इसी बाल चापल्य का वर्णन निम्न पद में किया है—

> नन्द के हृदय आनन्द वर्धिन करन भरनि जसुदा मनसि मोद भारी।
> बाल क्रीडा करन नन्द मन्दिर सदा कुञ्ज मैं प्रौढ लीला बिहारी॥ २९॥

यह परम्परा गुप्त जी के 'द्वापर तक अनाविल रूप में धावित हुई है। द्वापर की गोपी उद्धव से कहती है—'यौवन सा शैशव था उसका, यौवन का क्या कहना।

भारतेन्दु ने, इसके अतिरिक्त, कृष्ण जन्म की आनन्द बधाई (पद सं० ५८), पालना झूलना (११४, ११५), भँवरा चकई लिये खेलना (३०), उनके लिए एक छोटी दुलहन खोजना आदि विषयक पारम्परीण पद भी रचे हैं जिनका सूर, तुलसी आदि से साम्य है। अत उनका पुन उल्लेख अनावश्यक है। असुर वध और गोवर्धन धारण विषयक पदों का भी यही हाल है।

(२) यौवन लीला—कृष्ण का रूप-सम्मोहन यौवन लीला का प्रधान बिन्दु है। इसके अन्तर्गत ४ कोटि की रूप-छवियाँ आती हैं—(क) किशोर-छवि, (ख) युगल छवि (राधा-कृष्ण, चन्द्रावली कृष्ण), (ग) दूलह-छवि, और (घ) कुञ्ज छवि। इनमें से प्रथम को पूर्वराग जनित एकल छवि के अन्तर्गत समझना चाहिए। यहाँ मनहर कृष्ण अपनी कम नीयता और सुकुमारता के चरम पर प्रतिष्ठित गोपियों, गोपी शिरोमणि राधा अथवा चन्द्रावली के चितचोर रूप में चित्रित हैं। अन्य ३ स्वरूपों में वह उत्तरोत्तर राधा नाथ या चन्द्रा-चूडामणि की सरस भूमिका ग्रहण करते हुए कुन्ज बिहारी स्वरूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। किशोर छवि से युगल प्रेम की परिणति के मध्य कृष्ण की रसिकता और लीला विविधता अनन्त प्रेम-क्रीडाओं में फूट पड़ी है। यहाँ कृष्ण रति-लम्पट, लगर, धूत,

खिलार और ढीठ सब हैं। इनमें पौराणिक और लौकिक दोनों प्रकार की क्रीड़ाएँ संनिविष्ट हैं। चीरहरण, दान, रास आदि पौराणिक लीलाएँ विशेष विवरण की अपेक्षा नहीं रखतीं। वैसे ही, किशोर, युगल कुञ्ज आदि रूप छवियों का भी मौलिक महत्त्व नहीं है। उनके नटवर और त्रिभंगी रूप वर्णन पर मीरा का प्रभाव है। अन्य रूपों पर रसखान, सूर आदि रसिक भक्तों की छाप है। हाँ, युगल छवि में चन्द्रावली प्रेम और दूलह छवि में लोक सुलभ नूतनता और आधुनिकता का मौलिक योगदान निश्चय ही कवि के लिए श्रेय वर्द्धक है। अस्तु, इन नूतन प्रसंगों का उल्लेख ही यहाँ अभीष्ट है।

'प्रेम मालिका' के एक पद में राधा-नाथ और चन्द्रा चूड़ामणि कृष्ण की कुंज छवि का समवेत चित्रण मिलता है—

आजु नन्दलाल पिय कुञ्ज ठाढ़े भए, स्रवत सुभ सीस प कलित कुसुमावली।
मनहुँ निज नाथ ससि भूमि गत देखिकै, खसित आकास तें तरल तारावली॥
बहत सौरभ मिलित सुभग त्रैविधि पवन, गुंजरत महारस मत्त मधुपावली।
दास 'हरिचंद' ब्रजचन्द ठाढ़े मध्य राधिका बाम दक्षिण सुचन्द्रावली॥३३

वह नन्दलाल किशोर के साथ 'पिय' भी हैं जो उनकी कुञ्ज केलि का पूर्व संबोधन है। आगामी चित्रण इसी केलि की उद्दीपनात्मक पृष्ठभूमि है और अन्तिम भनितात्मक पंक्ति में तो राधा और चन्द्रावली का क्रमशः कृष्ण के वाम और दक्षिण पार्श्व में खड़ा कर उनके स्वीय और पर अर्थात् पति और उपपतिभाव का सूक्ष्म संकेत भी कर दिया गया है। अतः उक्त पद में कृष्ण की उपर्युक्त सभी रूप छवियों की कलात्मक व्यंजना हो गयी है। चन्द्रावली कवि की लोक प्रवण प्रणयानुभूति का ही लीला-संस्करण है। इसके आश्रय से कृष्ण की नित नूतन केलियों का सम्प्रसार हुआ है। उनकी 'चन्द्रावली' एक महत्त्वपूर्ण कृति है लोक भावना के पूजक कवि ने कृष्ण की पुराण प्रेयसी राधा के केवलत्व के स्थान पर चन्द्रावली की प्रेम महिमा को प्रतिष्ठित करके भावात्मक चरित्र का रस-स्निदग्धता ही प्रदान की है। 'चन्द्रावली' के प्रसंग में उनके इस स्वरूप पर विस्तार से विचार किया जायगा। यहाँ भारतेन्दु जी की अति प्रीता कृष्ण की दूलह-छवि के बहुवर्णी चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमें अनेकानेक विवाह पद्धतियों की झलक है। एक में अग्रवाल कुल की पद्धति, दूसरे में मुसलमानी रिवाज, तीसरे में लौकिक रीति और चौथे में कुञ्ज-परिणय के प्रयोग रास परिणय के ढङ्ग पर किये गये मिलते हैं। अग्रवालपद्धति में रँगे कृष्ण के नवदूलह रूप को देखिये—

नीली घोड़ी चढ़ि बना मेरा बन आया।
भोले मुख मखट सुन्दर लगत सुहाया॥
जामा चीरा जरकसी चमक मन भाया।
सूहा पटुका कटि कसे भला छवि छाया॥
हाथों महदी मन हाथा हाथ चुराव।
मधुरी मूरत लखि सँखियाँ आज सिरावें॥

लावनी छन्द में रचित उक्त पद में 'जामा', 'सूहा', 'पटुका' आदि को देख मुसलमानी ढङ्ग

का दूलह वेश वर्णन नही समझना चाहिए। भ्रम निवारण के लिए दुलहिन राधा के 'सिर सेंदुर मुख मैं पान अधिक छवि वाले रूप को सामने रखा जा सकता है। मुसलमानी रग ढङ्ग मे लैस कृष्ण को नीचे देख सकते हैं—

वना के नैना बाँके वे। बने दोनो मद छाके वे।
बना की भौंह कमाने वे। बनी का हिम्रा छावे वे॥
कर सुरख मेहदी पग महावर सपट अतर अपार की।
जिय बस गई सूरत निवानी दूलहे दिलदार की॥
बिधि मदन मानी छवि गुमानी नवल नेही नागरा।
निधि रसिक की 'हरिचद सरबस नद बस उजागरा॥५३ प्रे० प्र०

कृष्ण का उक्त परिवेश मे दूलह चित्रण निश्चय ही अतिशय रसिकता और सखा सुलभ निर्भीकता का परिचायक है। भारतेन्दु मूलत समन्वय के कवि हैं। इन विवाह प्रसगो में उनकी समन्वय कारिणी प्रतिभा का परिचय मिलता है। साथ ही कृष्ण की मनोरम रूप-छवि का दर्शन भी होता है। इन्होंने लौकिक विवाह-रीति मे भी कृष्ण को सजाने का उपक्रम किया है—

'दोउ जन गाँठि जोरि बैठारे।
दूलह दुलहिन को आनद लखि बढ्यो अनद अपार।
'हरीचन्द को पकरि नचावत गारि देत ब्रज नार॥ ५२ (रा० स०)

किन्तु, लोक रीति का पूर्ण निर्वाह कुञ्ज-परिणय म कराया गया है जहाँ कुज केलि की पौराणिक पद्धति पर लोक जीवन का परिणय सस्कार छाया हुआ है—

'कुञ्जन मगलचार सखी री।
थापे दीने कलस बधाये तोरन बाँधी द्वार॥
गावत सबे सोहाग छबीली मिलि सब बृज की बाम।
बन्ना बनि आयो नँद नदन मोहन कोटिक काम॥

यहाँ कुज विवाह मडप बन गया है। कृष्ण कुन्ज बिहारी कृष्ण नही, लोकपावन दूलह हैं। सूर ने रास प्रसग म राधा कृष्ण विवाह कराया था। भारतेन्दु ने कुन्ज परिणय कराया है। कुज-परिवेश मे यह दूलह वेश कल्पना कवि के लोक सस्कार का द्योतक है।

कुञ्ज कल्पना— कवि की कुन्ज सम्बन्धी धारणा भी व्यापक, नव्य और आधुनिक है। यह कुन्ज मध्यकाल की लीला कुटी या रीतिकाल के सहेट स्थल के अतिरिक्त महल, मन्दिर या भवन है जिसके भीतर कृष्ण का गोपियो के साथ झूला झूलने और दीपोत्सव मनाने से लेकर विवाहोत्सव तक के दृश्य अकित हैं।

कुज-झूला—का एक रमणीय दृश्य नीचे अकित किया जाता है।

दोऊ मिलि झूलत कुञ्ज वितान।
चहूँ ओर एकन एक सो लगे सघन विटप कतार।
इक सबल लखि कै डार डारयो तहाँ ललित हिंडोल।
तहँ झमकि झूलत हाड बदि बदि उमगि करहिं कलोल।

कुञ्ज मन्दिर का एक चित्र देखिये—

आजु कुंज मन्दिर में छके रंग दोऊ बैठ,
केलि करें लाज छोडि रंग सो जहकि जहकि ।

इससे भी कहीं स्पष्ट और आधुनिकता सम्पन्न कुञ्ज महल की कल्पना है जो रीति कवियों के ऐश्वर्य चित्रण को मात देती है । कवि ने इस रत्न खचित और दीप मालिकाओ से सुसज्जित कुञ्ज-महल मे राधा कृष्ण की जगमग छवि का वैभवपूर्ण अकन किया है—

कुञ्ज दीपावली—कुंज महल रतन खचित जगमग प्रतिबिम्बन अति
सोभित ब्रज वाल रचित दीप मालिका ।
सोरह सिंगार किये प्रीतम का ध्यान हिए,
हाथ लिए मगलमय कनक थालिका ।
गावत मिलि सरस गीत झलकत मुख परम प्रीत,
आई मिलि पूजन प्रिय गोप बालिका ।।
राधा हरि सग लसत प्रमुदित मन हेरि हँसत,
जुग मुख छबि छुट परत गोख जालिका ।

कुञ्ज महल अन्त पुर—कुञ्ज महल में राधा कृष्ण विहार का अत्यन्त कामो मद चित्रण रीति कालीन परिपाटी पर ही हुआ है । कुञ्ज के आलिगन परिरभन से सन्तोष होता न देख विलासी कवि ने उससे सटे एक ऐसे अन्त प्रकोष्ठ का निर्माण किया जिसमे उसके मानतायक की शेष अभिलाषाएँ पूरी हो सकें । नीचे एक पद मे कृष्ण की इसी काम वेदनी को दूर करने के लिए कुंज के साथ साथ महल की सयुक्त कल्पना (अन्त पुर के रूप मे) की गयी है—

प्यारी के कुंज पिय प्यारो आवत हरिहि धाय भुजन भरि लीनो ।
उमगि मिले छतियन सो लपटे दोऊ चलत न मारग रुक्यो रँग भीनो ।।
जित की तित रहि खरी सखियाँ सब छूटत भुजन आलिगन दीनो ।
'हरीचद' जब बहुत समराये तब क्यो हूँ गमन महलन मे कीनो ।। ६१–राग सग्रह

इनके अतिरिक्त, कुञ्ज परिणय का दृष्टान्त ऊपर दिया जा चुका है ।

कुञ्ज महल की केलि की आधुनिक पद्धति के साथ साथ नागर कृष्ण की आख मिचौनी के लिए झरोखों और अटारियों का प्रबन्ध भी सगत ही था । अत वृदावन के रम्य कुञ्जों कालि दी के सरस पुलिनो के अतिरिक्त भारतेन्दु के 'यौवनचोर कृष्ण ने अपनी अचगरी के लिए घाट बाट के साथ साथ झरोखा और अटारी का भी सदुपयोग किया है । यह नागर प्रवृत्ति है और इसका सकेत सूर, रसखान तथा रीतिकाल के कवियो ने किया है । भारतेन्दु ने इस परिपाटी का भरपूर उपयोग किया है । और भला करते भी क्यो नहीं । उनके जादूगर कन्हैया ने तो ब्रज के गाँव ठाँव की कौन कहे समूचे 'शहर' को ही प्रेम की डोर में नाथ लिया था—

एक बेर नैन भरि देख जाहि माहै तौन
माच्यो ब्रज गाँव ठाँव ठाँव मैं कहर है।
'हरिचन्द' जहाँ सुनो तहाँ चर्चा है यही
एक प्रेम डोर नाच्यो सगरो शहर है।
यामें न सदेह सखि दैया हौं पुकारे कहौं
भैया की सौं मैया री कन्हैया जादूगर है॥ ८२—प्रेममाधुरी

भारतेन्दु जी भी 'काशी के कन्हैया' प्रसिद्ध ही थे। रीतिकालीन परम्परा और नागर वृत्ति का प्रक्षेप कृष्ण चरित्र म भी होना स्वाभाविक ही था। राधा-कृष्ण के नौका विहार का एक चित्र स्थानीय प्रभाव का द्योतक है। काशी म गगा पर नौका विहार की मनोरम परम्परा रही है। यहाँ उनकी परोक्ष स्मृति हो सकती है—

नाव चढि दोऊ इत उत डोलैं।
छिरकत कर सों जल जमित करि गावत हँसत कलोलै॥
करनधार ललिता अति सुन्दर सखि सब खेवत नावैं।
नाव हलनि मैं पिया बाहु मैं प्यारी करि लपटाव॥
जेहि दिसि करि परिहास झुकावहि सबही मिली जल याने।
तेहि दिसि जुगुल सिमिट झुकि परही सो छवि कौन बखानै॥ रा० स०

अत घाट बाट के साथ कृष्ण द्वारा छज्जो, छतों, झरोखों और अटारियो पर की गयी आँख मिचौनी और अटखेलिया का भी उद्दाम चित्रण मिलता है—

राधिका पौढ़ी ऊँची अटारी।
पूरन चन्द उयो नभ मण्डल फैली बदन उजारी॥
दोऊ जोति मिलि एक भई है भूमि गगन लौं भारी। ७१ (प्रे० मा०)

यहाँ प्रस्तुत म तो मात्र प्रेमाश्रय का चित्रण है किन्तु 'भूमिगगन' की उपमा से 'दोऊ जोति' के रूप मे गोरी राधा और साँवरे कृष्ण दोनो के मिलकर एकाकार हो जाने की व्यजना हुए बिना नही रहती। और, यह सब कुन्जा म नही, 'ऊँची अटारी' पर हो रहा है। उपयुक्त पद मे नायिका के कोठे पर जाते ही, उसक प्रफुल्लित आनन से सम्पूर्ण अतरिक्ष में पूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना के फैल जाने का जो आलकारिक चित्रण हुआ है उसपर विहारी के एक प्रसिद्ध दोहे की छाप सुस्पष्ट है। भारतेन्दु जी ने अटारी के इस पारम्परिक उल्लेख के अतिरिक्त कृष्ण के रमण स्थल के रूप म इसे मौलिक भूमिका भी प्रदान की है—

आजु मैं देखे री आली री दोऊ मिलि पौढ़े ऊँची अटारी।
मुख सो मुख मिलाइ बीरी खात रगभरि नवल प्रिया प्रानप्यारी॥
चाँदनी प्रकाश चारु ओर छिरकाव भयो सीतल चहुँदिसि चलत बयारी।
'हरीचन्द' सखीगन करत बिजना जानि सुरति श्रम भारी॥ ५४ (प्रे० मा०)

यहाँ राधा कृष्ण के रति विहार का स्थल ऊँची अटारी है। वातावरण केवल कुन्ज केलि का ही है। केवल अतर 'कुन्ज' और अटारी' शब्दो का है। जो भारतेन्दु की कविता मे लगभग समानार्थी से हो गये हैं। भारतेन्दु ने, जिनकी प्रतिभा पर रीतिकालीन नागरकता

और भक्ति कालीन रसिकता की द्विविध छाप पडी थी, 'अटारी' को कृष्ण लीला के एक विशिष्ट अंग 'कुन्ज' की स्थानापन्नता प्रदान की है।

रथ चालन—शृंगार और विलास की वन्य विभूतियों के स्थान पर जब नागर सभ्यता में शहरू स्थापत्य का समावेश हुआ तो मनहर कृष्ण की रीति लीलाओं में भी इस आधुनिक भावना का सन्निवेश हुआ। वृन्दावन के कुञ्जों के स्थान पर छत छज्जे, चौबार, अटारी और झरोखे इसी परवर्ती मनोवृत्ति के परिणाम हैं। अतः कृष्ण का इन इन स्थलों पर गमन और विहार भी यदि रथों आदि पर चढकर होने लगा हो तो यह आश्चर्य की बात नहीं। इसे परिस्थिति का अनुरोध समझना चाहिए। परिस्थिति के इसी अनुरोध के परिणामस्वरूप भारतेन्दु के कृष्ण 'कुञ्ज कुञ्ज रथ डोलै' फिरते हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया, भारतेन्दु जी समन्वय के कवि हैं और समन्वयकारी कवि अनुकरण प्रिय हुए बिना नहीं रहता। अनुकरण प्रियता कवि की समन्वयकारिणी प्रतिभा का नाना भाव भूमियों से परिचय कराती है। यों तो भारतेन्दु ने भारत के प्रायः सभी प्रमुख वैष्णव तीर्थों में भ्रमण किया था किन्तु पूर्वी प्रदेश के प्रति उनके मन में एक विशिष्ट अनुराग का भाव था जो काल पाकर उनकी कृतियों में व्यक्त हुआ। इसी अनुराग का एक रूप कृष्ण के कुन्ज विहार के अन्तर्गत रथ चालन भी है जिस पर बंग और उत्कल देश की रथ यात्रा का परोक्ष प्रभाव माना जा सकता है। रथयात्रा प्राचीन आगमिक उत्सव है। इसका वर्णन कुम्भनदास और गोविन्दस्वामी आदि ने किया था।[1] वर्षाकालीन ब्रजभूमि की परम आनन्दमुग्ध प्रकृति की छविच्छटाओं ने जहां कवि को 'वर्षाविनोद' जैसा ऋतुप्रधान लीला काव्य लिखने की प्रेरणा दी है वहाँ कृष्णमेघतनु धारी के वन वन रथ लेकर डोलने में उपयुक्त अनुमान अतीव सम्भावनापूर्ण प्रतीत होता है। नीचे रथवाहक कृष्ण का परिचय दिया जाता है—

> लाल नहिं नेकौ रथहि चलावै।
> गली साँकरी अटकि रह्यौ रथ नहिं कहुँ इत उत जावै॥
> उत वृषभानु कुमारि अटा पै ठाढ़ी दृष्टि न टारै।
> रीझे रसिक परस्पर दोऊ 'हरीचन्द' मन माहीं।
> ये इत अपनो रथ न चलावत वे न अटा सों जाहीं॥ १०८ (र० स०)

निम्नपद पर रसखान की 'इन्हें भूलि गइ गैयाँ उन्हें गागर उठाइबो' इस पंक्ति की नैसर्गिक छाया है। यह तो साँकरी गली में रथ चलाने का वृत्तान्त हुआ। आगे कुन्ज कुन्ज में रथ लेकर विहार करने वाले कैशव को देखिए—

> कुञ्ज कुञ्ज रथ डोलै मदनमोहन जू को श्वेत ध्वजा तामें उडि उडि सोहै।
> द्रुम द्रुम कुञ्ज कुञ्ज वन वन तीर तीर घूमत रथ फिरि आवै। ९८ (व० वि०)

श्वेत ध्वज कामदव के श्वेतकेतु का ही प्रतीक है। और यह पूर्णतः साभिप्राय है। क्योंकि 'द्रुम द्रुम कुन्ज कुन्ज वन वन तीर तीर' रथ लेकर डोलने वाले इस नायक का स्वरूप मोहन ही नहीं 'मदनमोहन' का है। कृष्ण की इस काम छवि पर कौन है जो तन मन धन से

---

१ डॉ० रा० न० वर्मा—'हि० सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका'—पृ० २६७

न्योछावर न हो जाय। भारतेन्दु जी ने रथचारी कृष्ण का पौराणिक रूप के साथ साथ अत्याधुनिक चित्र भी खींचा है। इस प्रकार, इसके अन्तर्गत पौराणिक सामन्तवादी और अत्याधुनिक कृष्ण स्वरूप की व्यंजना हो जाती है। पौराणिक वृत्त के अन्तर्गत कहीं तो श्यामसुन्दर कृष्ण 'वेनु बजावत चमत फिरावत हँसत गरे बन दाम' किसी विशेष रतिप्रीता ग्वालिन के दरवाजे पर रथ रोक कर उसके द्वारा समर्पित आरती "यजन का पान करते हैं या किसी गोपी के कामनानुसार—'भीजत इनरि भरे घर ऐहैं जो गुन को सब साज ॥ —अंतर्यामी वैसा ही कर उसके मनोरथों का सुफल करते हैं।

आधुनिक वृत्त के अन्तर्गत रथचार का वह रूप लिया जा सकता है जिसमें युगल छवि की पौराणिक भूमिका का यत्किंचित् निर्वाह करते हुए भी कवि ने राधा के हाथ में रथ की बागडोर थमा दी है। यहाँ ब्रज की वह निश्छल किशोरी यन्त्र युग की कामलाशियों की भाँति गाडी में बैठ क्लब की ओर भागनेवाली नागरिका जैसी बन गयी है। और लीलानायक कृष्ण उन स्त्रैण धनपतियों के प्रतीक बन गये हैं जिनके नाजुक दिलों पर फेशनपरस्ती और सुन्दरियों के रूप गर्व का शासनचक्र दिन रात चला करता है। कृष्णके रथ चार का एक ऐसा ही युगल रूप प्रस्तुत है—

रथ चढि नन्दलाल पीय करत हैं बन फेरा।
आजु सखी लालन सँग विहरिवे की वेरा॥
और कोउ सग नाहि हरि अरु ब्रज नारी।
हाँकत रथ अपने हाथ राधा सुकुमारी॥
कुञ्ज कुञ्ज केलि करत डोलत हरि राई।
'हरीचन्द' जुगल रूप लखि कै बलि जाई॥ १२२–वर्षा विनोद

प्रणय चेष्ट कृष्ण—भारतेन्दु के काव्य में सम प्रेम और उनके कृष्ण में तुल्यानुराग की सक्रियता भी मिलती है। कवि ने कृष्ण के तुल्यानुराग के प्रसंग में नायक पक्ष की सक्रियता को प्रदर्शित करने के लिए उनके पूर्वानुराग, उनकी विकल प्रतीक्षा, मान, मानभंग की विभिन्न पद्धतियों, प्रिया शृंगार और छद्मलीलाओं का अनेकशः चित्रण किया है। किन्तु जहाँ वह अनुकूल नायक न होकर दक्षिण नायक बन जाते हैं वहाँ उनके अन्दर कठोरता और धृष्टता भी आ जाती है। इस धृष्टता का रम्य रूप वहाँ देखने को मिलता है जहाँ वह रात्रि भर प्रतीक्षा करने वाली खण्डिता के समक्ष पलक पीक, अंजन अधर, लसत महावर भाल लिये पहुँच जाते हैं। और, दग्ध नायिका न जानें क्या क्या सुनाने लग जाती है। सूक्ष्मता से देखने पर ये सारे चित्र परम्परा से प्रभावित हैं। पूर्वानुराग सूर रसखान, सुन्दर, बिहारी आदि से प्रभावित है। कृष्ण की विकल प्रतीक्षा मुख्यतः जयदेव, विद्यापति आदि कवियों से अनुप्राणित है। मानभंग की पद्धतियाँ, प्रिया शृङ्गार या छद्मलीलाएँ रीति शृंगार और भक्ति-शृंगार के कवियों की देन हैं। खण्डिताओं के दक्षिण नायक कृष्ण भी जयदेव, विद्यापति देव आदि के प्रतिरूप हैं। उदाहरण के लिए प्रतीक्षातुर कृष्ण की मिलनोत्कंठा का एक चित्र नायिका प्रति दूती वचन में चित्रित है—

तुम विनु व्याकुल विलपत वन मन वनमाली। मति करु बिलब उठि चलु वेगहि सुनु आली ॥
तुव ध्यान धारि धरि बसी अधर बजावै। भरि विरह नाम लै राधा राधा गावै ॥
तुव आगम सुमिरत छन छन सेज सजावैं। मग लखत द्वार पर बार बार उठि धावैं ॥
मुरछात देखि तुव बिना सेज वहँ खाली। मति कर विलम्ब उठि चलु वेगहि सुनु आली ॥
अपने अपराधन कबहूँ बैठि बिचारै। तुव मिलन मनोरथ अल बल बैन उचारै ॥
कबहूँ सगम सुख सुमिरत हियरो हारै। कबहूँ तेर गुन कहि कहि धीरज धारै ॥
भई रात ऊजरी दुख वियोग सों कारी। मति कर विलम्ब उठि चलु वेगहि सुनु आली ॥
सुमिरत तोहि दृग भरि रहत श्याम सुखदाई। गद्गद गल वचनहु बोलि न सकत कन्हाई ॥५६

यहाँ प्रतीक्षातुर कृष्ण म वासकसज्जा नायिका की समस्त मानसिक दशाओं और काम दशाओं का केन्द्रीकरण हो गया है। चिन्ता, स्मृति, गुणकथन उद्वेग, मूर्च्छा, प्रलाप आदि मानसिक अनुभाव हैं तथा स्वर भग, अश्रु पात आदि शारीरिक अनुभाव हैं जिनके प्रकटन से मन की गभीर प्रेम वृत्तियो का परिचय मिलता है। फिर, वियोग दशा मे प्रकृति का वैषम्य भी यहाँ वर्णित है। इस प्रकार भारतेन्दुजी ने नायिकाओ की काम और वियोगदशाओ का सम्पूर्ण समावश कृष्ण चरित्र मे कर दिया है। इसस नायक की चेष्टाओ और विरहानुभूति का भावात्मक स्वरूप पूर्णत स्पष्ट हो जाता है। उक्त प्रणय चेष्टा कृष्ण की प्रेरक पृष्ठभूमि के रूप म कविकृत गीतगोविन्द के भाषानुवाद 'गीतगोविन्दानन्द' को देखा जा सकता है। आवृत्ति भय से इन्हें छोडते हुए हम कुछ उन तत्त्वो को प्रथम बार प्रकाश मे लाना चाहते हैं जिनके मौलिक योगदान न भावात्मक कृष्ण को नूतन रूप प्रदान किया है। किन्तु, यहाँ भी किसी ऐसी आकस्मिक भावानुभूति की कल्पना निरथक है जिसकी जड हिन्दी साहित्य के समृद्ध अतीत म बिल्कुल न हो। सम्प्रति, इसी पृष्ठभूमि पर ऋतुपति कृष्ण की स्वरूप समीक्षा प्रस्तुत की जाती है।

ऋतुपति कृष्ण—भारतवप प्राचीनकाल से ही ऋतुओ का देश रहा है। षड् ऋतुओ म वप चर्या भोगने वाली जनता ने प्रकृति के उल्लास और वियोग, सौन्दय और मादकता, शान्ति और प्रगल्भता म अपने हृदय के विलास और विषाद का प्रतिबिम्बित कर दिया। फलत ऋतूत्सवो की सृष्टि हुई। और, हमारे धमप्राण सस्कारों ने देश और काल के अनुसार विभिन्न ऋतुओ के साथ देवा देवाओ की भी भाव मधुर कल्पनाएँ कीं। प्राचीनकाल म आभीरो के वनदेवता इसी कल्पना क प्रतिफल थे। धीरे धीरे य आर्यों द्वारा भी गृहीत हुए और 'गोपवेश म विष्णु' अर्थात् वणुगोपाल इसी के स्थिर स्वरूप हैं। इस प्रकार, श्रीकृष्ण का पौराणिक स्वरूप भी किसी न किसी रूप और अथ म इस ऋतुभावना की मूल कल्पना से सम्बद्ध रहा है। हिन्दी काव्य में सूरादि कृष्ण भक्तो न इस ऋतूत्सव की विशाल प्राकृतिक पट्ट भूमि पर ही कृष्णचरित्र का भावात्मक स्वरूप अकित किया है। वस्तुत कृष्ण की ब्रज लीला मानव और प्रकृति के भावात्मक स्वरूप की ही कमनीय अभिव्यक्ति है। इसका उग्र रूप असुरवधो म और सुन्दर रूप वृन्दावन की विभिन्न लीलाओ म व्यक्त हुआ है। गोचारण, वेणुवादन, शिखिपुच्छ धारण गोवर्धन धारण, दान रास, फाग और झूला— ये सारी लीलाएँ प्रकृति के प्रति हमारे उसी सुखद साहचय से आस्फृत रहे हैं। यहाँ तक कि इनम सहयोग करने वाले पात्रो के वर्णों, वस्त्र रीति नीति और सम्पूर्ण सस्कारो मे वही

रमी है। अतः कहा जा सकता है कि कृष्ण लीला के गायक कवि और वैष्णव चित्रों के चितेरा कलाकार को पृथक् से प्रकृति चित्रण करने की जरूरत भी नहीं है। क्योंकि इनके वस्तु चित्रों मे ही प्रकृति के भाव चित्र स्वयमेव घुलेमिले हैं। इसलिए काव्य बोध के रूप म कृष्ण चरित्र का भावात्मक स्वरूप जितना उर्वर और भाव बहुल रहा है, उतना और कोई तत्व नहीं। अपने पंचतन्मात्रा रूप म यह पंचललित कलाओं से लेकर भक्ति की पंच-भावोपासनाओं तक मे अन्तर्व्याप्त है। वस्तुत कृष्ण लीला पर प्राकृतिक प्रतिबिम्ब या कलात्मक प्रतिबिम्ब का अध्ययन अपने आप मे ही स्वतन्त्र गवेषणा का सुन्दर विषय है।

लोक हृदय कवि भारतेन्दु ने कृष्ण की नाना ऋतुचर्याओं के चित्रण मे जहाँ परम्परा और प्रकृति के प्रति अपनी सहृदयता का परिचय दिया है वहीं उन्होने रति पति को ऋतुपति से भिन्न रखकर मौलिक भूमिका निभाई है। इसके साथ ही उन्होने युग जीवन के ताल पर ऋतूत्सवों के परिवर्तित नव्य रूपो मे इन पौराणिक पात्रो को भी सम्मिलित किया है। इन सभी रूपो और कल्पनाओ से सहमत होना आवश्यक नहीं। इससे इनमे आधुनिकता के सहज ही दर्शन होते हैं।

कवि की एतद्विषयक प्रथम कृति 'कातिक स्नान' है। दीपोत्सव कार्तिक मास का प्रमुख पर्व है। कवि ने कृष्ण द्वारा किये गये सकेत दीपो के प्रयोग और दिवाली के त्योहार मनाने की नूतन विधि का परिचय दिया है—

सकेत-दीप—आजु सकेतन दीपक बारे।

निकट जानि गोवर्द्धन घटियाँ अपने हाथ सँवारे॥
किए प्रकासित गह्वर गिरि थल कुञ्ज पुञ्ज ब्रज सारे॥
'हरीचन्द' अपनी प्यारी की बाट निहारत प्यारे॥ १६

कृष्ण का दीपोत्सव—कृष्ण दीपोत्सव की तैयारी धनपतियो की भाँति ऐश्वर्यपूर्ण ढंग से करते हैं। इसमे अत्याधुनिक श्रृंगार-सामग्री का प्रयोग मिलता है। साथ ही 'अतर पान गतरज, रूमाल और 'पीकदान' म महफ़िली ठाट बाट की बू भी आती है। और इस बू के साथ लिपटी हुई वह किंवदन्ती भी कि भारतेन्दु जी के सिरहाने कभी इत्र के चिराग जला करते थे। निश्चय ही यहाँ प्रकृति का नैसर्गिक स्वरूप रीतिकालीन आलंकारिता की चकाचौंध में धूमिल पड गया है।

हाली + हिंडोल—होली के साथ साथ हिंडोला चित्रण भारतेन्दु की मौलिकता है। यो तो यह चित्र मूलत ऋतु विरोध का सूचक है किन्तु बंगला म 'ढोल' का प्रयोग मिलता है जिससे पूर्वी प्रदेश म इस परिपाटी के अस्तित्व की सम्भावना भी की जा सकती है। प्रा० सुकुमार सेन के निम्न वक्तव्य से 'ढोल' (होली) और 'झूलन (हिंडोल) के सम्मिश्रण के काल और कवि पर पर्याप्त प्रकाश पडता है।[1] पद्मपुराण, उत्तर खण्ड,

1 'The' Dola lila or 'Holri' or 'Hori' (spring festival) was introduced by Rupa-Goswamin (vide Gitavali) This as well as the Jhulana lila (Swing festival during the rainy season) was introduced in the 16th century Songs relating to these festivals were quite abundant in contemporary Hindi Literature also'—Prof, S Sen (H B L, P 479)

अध्याय—८५ में चैत्र शुक्ल एकादशी को दोलोत्सव का रोचक विवरण दिया गया है।[१]
होली का विवरण इस प्रकार है—

> झूलत पिय नंदलाल झुलवत सब ब्रज की बाल
> बृंदावन नवल कुंज लोल दोलिका।
> संग राधिका सुजान गावत सारंग तान
> बजत बाँसुरी मृदंग बीन ढोलिका॥
> ऊधम अति होत जात घूँघट मैं नहिं लखात
> छूटत बहुरंग उडत अबिर झोलिका।
> 'हरीचंद' दै असीस कहत जियो लख बरीस
> दिन दिन यह आवै तेहवार होलिका॥७

'दोलिका' के साथ यह 'होलिका' देखने योग्य है। 'मधुमुकुल' के अन्तर्गत राधा कृष्ण वसन्तोत्सव चित्रित है। इसमे गोपियो के यूथ का भी उल्लेख समावेश है। गान नृत्य, गेंद-क्रीडा और आँखमिचौनी के वातावरण मे ऐसी मादक अल्हडता आ जाती है कि अन्ततो गत्वा कृष्ण इनकी प्रेम फाँस मे बुरी तरह बन्दी बन जाते हैं और होली के रङ्ग गुलाल से इसकी परिसमाप्ति हो जाती है। इसी का एक दूसरा रूप मदन महोत्सव भी है। सखिया कहती हैं—

> मदन महोत्सव आजु चलो पिय मदन मोहन सों भेंट।
> चोआ चन्दन अरगजा पिय के अंग लपेटैं॥
> बहुत दिनन की साध पुजावैं सुख की रास समेटैं॥
> 'हरीचंद हिय लाइ प्रानप्रिय काम कसक सब मेटैं॥ ७६

जाडे मे रजाई के भीतर राधा-कृष्ण की रति तथा कृष्ण का खिचरी भोग लगाना आधुनिकता का उपहास करना है। 'वर्षाविनोद' मे भीगते और झूलते हुए केलि क्रीडा करना भी वैसा ही है। हाँ, पद स० ८६ में कृष्ण और मेघ का सश्लिष्ट चित्रण आवर्षक माना जा सकता है। इसके साथ ही 'श्री पंचमी०' मे राधा का कृष्ण से खेल आरभ करते हुए उनके सर पर आम्र मौर धरना विशेष रूप से द्रष्टव्य है किन्तु आम्र मजरी का इससे सुन्दर उपयोग 'कनुप्रिया' के कृष्ण करते हैं। उसे हम यथा स्थान देखेंगे।

भाव रूप कृष्ण—सैद्धांतिक पदों म 'विनय प्रेम पचासा' के अन्तर्गत कृष्ण का भाव रूप तथा पचतन्मात्रा रूप चित्रित हुए हैं जो कृष्ण के भावात्मक स्वरूप की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं—

> मन मं वृत्ति बासना ह्वै कै प्यारे करो निवास।
> ससि सूरज ह्व रैन दिना तुम हिय मे करहु प्रकास॥
> नभ ह्वै पूरो मम आगार मैं पवन होइ तन लागो।
> ह्व सुगन्ध मो घरहि बसावहु रस ह्व कै मन पागो॥
> स्रवनन पूरो होइ मधुर सुर अंजन ह्व दोउ नैन।
> होइ कामना जागहु हिय मैं करु नींद अनि रैन॥ २

---

१ प० य० उपाध्याय—भा० सम्प्र० (पृ० १४६)

उसी प्रकार 'प्रेममालिका पद स० ६८, ७० मे श्याम रस, उत्तरार्द्ध भक्तमाल', पद स० ६३ मे हरिरस, 'प्रेम फुलवारी', पद स० १९,२० म हरि रस तथा ७०,७१ म क्रमश आनन्द रस और कुब्ज रस, 'कृष्ण चरित्र, पद स० १० म हरि रस, 'स्फुट कविताएँ पद स० १७ म हरि रस—आदि भावात्मक कृष्ण के ही विविध व्यजक रूप हैं। वसे ही 'कार्तिक स्नान पद स० ३ म राधा कृष्ण के जल-तरङ्ग और दीप प्रकाश आदि रूपो म रसवादी वैष्णवो की द्वैताद्वैत स्वरूप कल्पना मिलती है।

राष्ट्रोद्धारक कृष्ण—राष्ट्रीय भाव-धारा के पुरोधा भारतेन्दु ने पौराणिक कृष्ण के लीलात्मक चरित्र मे राष्ट्रोद्धारक रूप का भी आरोप किया है। इसके लिए मुख्यत 'प्रबोधिनी पद स० १६,-१७, २२ और २५ द्रष्टव्य हैं। कृष्ण के इसी रूप का आह्वान आगे चलकर पुनरुत्थानवाद के कवि हरिऔध ने अपने 'प्रिय प्रवास म किया है।

अन्त म, भारतेन्दु जी की 'चन्द्रावली म वर्णित नायक कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का दिग्दर्शन कर इस विषय को समाप्त किया जायगा।

यो तो चन्द्रावली कृष्ण की पुराण प्रेयसी रही है[१], जिनका उल्लेख सूरादि कृष्ण भक्तो ने भी किया है किन्तु भारतेन्दु जी की इस रचना मे कृष्ण प्रेम की केन्द्रवर्ती भावना के रूप मे राधा के स्थान पर चन्द्रावली ही प्रतिष्ठित है। इसका बहुत कुछ श्रेय गौडीय वैष्णवो को दिया जाना चाहिए। किन्तु चन्द्रावली को कृष्ण की कनिष्ठा प्रेयसी बना कर उपस्थित करना भारतेन्दु जी की अपनी विशेषता है। अन्य धार्मिक स्रोतो म उसका स्वीया रूप परिस्फुट न हो सका है। अत इसी आधार पर कृष्ण चरित की परीक्षा की जा सकती है।

कवि ने कथा निर्माण म ही अपनी कल्पना का भरपूर उपयोग किया है। उन्होने चन्द्रा कृष्ण की स्फुट प्रेम भावना को अपने तदीय नामाङ्कित वैष्णव सस्कार में ढाल कर दाम्पत्य रति का स्वरूप स्थिर किया है। नायक कृष्ण स्थूलत वही है जैसा कि उन्हे पूर्ववर्ती प्रेम लक्षणा भक्ति म ग्रहण किया गया। किन्तु, कनिष्ठा नायिका चन्द्रावली के सम्बन्ध से उनके स्वरूप म भी सूक्ष्म रूपान्तरण हुआ है और वह है उनका दो पत्नियों के बीच पति रूप म पूर्णत सिमट जाना। किन्तु चन्द्रावली को केवल राधा रानी के ज्येष्ठ प्रेम का ही भय नही है, कृष्ण की भ्रमर वृत्ति का भी भय है। इस दृष्टि से इसे वैष्णव भक्ति और सामन्तवादी सस्कारो का साक्य कहा जा सकता है।

नाट्य गुण की सीमा म नायक कृष्ण धीर ललित हैं। वह परम विदग्ध, विनोदी, विलासी, नृत्य सगीतादि में निपुण तथा अन्यान्य कलाओ के ज्ञाता हैं। वह राजवश से उत्पन्न हैं। इतनी सामन्तीय विशेषताओ से सम्पन्न नायक का किसी अनुरागवती नायिका पर आसक्त होना स्वाभाविक ही है। और यह अनुराग प्रणय केलि म परिणत हो, इसके लिए परिणय की कोई बाध्यता नही है। किन्तु, लोक भावना और भक्ति-भावना के प्रति

---

१ द्रष्टव्य—पद्मपुराण, पाताल खण्ड-३६/९

२ द्रष्टव्य—'मध्यकालीन धर्मसाधना (पृ० १२४)—आचार्य ह० प्र० द्विवेदी

नैसर्गिक प्रेम के कारण ही कृष्ण की चन्द्रावली रनिवास की अनुपपस्था नायिका न बनकर उनकी प्रेम सुहागिन बन गई है । अत: कृष्ण का प्रेम यहा रीतिकालीन वासना के स्थान पर दाम्पत्य की गरिमा से मण्डित है ।

इसी दाम्पत्य की गरिमा का पक्ष राधा ठकुरानी का गभीर प्रेम और मान है । इसकी अवहेलना का दुस्साहस प्रणयभीरु कृष्ण में भी नहीं है । वह तो स्वामिनी की आज्ञा से ही चन्द्रावली के कुञ्ज मे पधारने का साहस करते हैं । और चन्द्रावली का प्रेम तो ज्येष्ठा सौत की आँख बचाकर पल्लवित ही होता है । किन्तु ज्येष्ठाप्रवृत्ति की इस गलित परिपाटी में जहाँ रनिवास की कनिष्ठा-वेदना मुखरित हुई है, वही नायक की स्त्रैण भावना ने मिलकर कृष्ण से 'ब्याह' की शपथ दिलाई है । भारतेन्दु के लीला-पुरुषोत्तम यहा सामन्त-वादी परम्पराओं मे आवृत्त होकर प्रकट हुए हैं । अत योगिनी वेशधारी कृष्ण से चन्द्रावली को 'तू तो मेरो स्वरूप ही है । यह सब प्रेम की लीला करिबे की मेरी लीला है ।—यह कहला कर भी पुन विशाखा द्वारा स्वामिनी स्वीकृति की सूचना दिलाना अभिप्राय शून्य नहीं है ।

कुल मिलाकर भारतेन्दु का प्रेम उनकी काव्य साधना का मन्त्र बीज था जो उनके उत्तर जीवन काल मे लोक से उठकर गोलोक तक छा गया है । अत उनके कृष्ण ईश्वर तो हैं किन्तु उनके प्रति कवि के मन मे जो सहज सख्य की भावना है—'सखा प्यारे कृष्ण के'—उसके कारण इन्हें कृष्ण को युग जीवन के दायरो मे व्यक्त करने की छूट-सी मिल गयी है । इनके पूर्ववर्ती कवि रसखान के कृष्ण-प्रेम का भी यही रहस्य है । यह काल की गति का प्रभाव है जिसके कारण हरिऔध जी के 'प्रिय प्रवास' म यही कृष्ण युग-पुरुष के रूप मे चित्रित हुए ।

द्वितीय अनुच्छेद

पुनरुत्थान के कवि (हरिऔध, गुप्त) और कृष्ण

पृष्ठभूमि—भारतेन्दु ने अपने भाषा साहित्य के अन्तरग और बहिरग म आधुनिकता का प्रवत्तन किया था। अन्तरग दृष्टि से 'कवि वचन सुधा' के मुख पृष्ठ पर अकित 'तजि ग्राम्य कविता ' आदि पद आधुनिक साहित्य के घोषणा पत्र हैं। उसी तरह बहिरग दृष्टि से उनकी नाट्य कृतियाँ खडी बोली साहित्य की आधार शिला हैं।

भारत की धममावना और विश्वास प्रधान सस्कृति मे यूरोपीय ज्ञान विज्ञान के आदान से उत्तरोत्तर बुद्धिवाद का प्रभाव विस्तार होता गया। वैसे ही वैसे हमारे गद्यात्मक रुक्ष जीवन को वाणी प्रदान करने वाले साहित्यिक माध्यमो का भी विकास हुआ। अत ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली मूर्द्धाभिषिक्त हुई। किन्तु सच पूछा जाय तो यह हमारे परिवर्तित जीवन-मूल्यो की ही साहित्यिक प्रतिध्वनि थी।

भाषा का आन्दोलन अपने आप म कोई जीवित आन्दोलन नही होता। बल्कि, प्रत्येक प्राचीन भाषा की अन्त प्रकृति म लिपटा हुआ जो जातीय सस्कार होता है उसी के अन्तरग आन्दोलन से उस सास्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यमो मे भी सक्रान्ति उत्पन्न होती है। और, तभी उन आदोलनो मे जीवन्तता दिखाई पडती है।

आधुनिक बुद्धिवाद ने भारतीय 'जन गण मन' को कितना आक्रान्त किया इसकी प्रथम शक्तिशाली अभिव्यक्ति हरिऔध जी का 'प्रिय प्रवास' (सन् १९१४) है। यह खडी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसका वर्ण्य विषय प्रेम, भाव और रस की दिव्य भूमि ब्रज का छोड महात्मा कृष्ण का मथुरा के कर्मलोक मे आगमन है। जो कृष्ण अपने भावात्मक स्वरूप म हजारो वर्षों से हजारो कवियो के काव्यात्मक मूल्य के शाश्वत प्रतीक बन कर जन-वाणी का शृङ्गार कर रहे थे, उनके चरित्र म कवि ने बुद्धिवाद के आग्रह से मानवीय मूल्यो का सन्निवेश कर भावात्मक पक्ष का प्राय निरसन ही कर दिया। प्रिय प्रवास के रचयिता ने रजन, प्रेम और लीला के देवता कृष्ण के प्रवास के रूप मे एक प्रकार से सौन्दर्य माधुर्य की सवाहिनी ब्रजभाषा और उसके काव्य मूल्य के रूप मे प्रेम सवेदन को ही प्रवासित कर दिया है। अत काव्य के समस्त मूल्य पर पडी युग की बुद्धिवादी प्रतिक्रिया को इस प्रतिनिधि काव्य का शीर्षक (प्रिय प्रवास) सार्थकता ही प्रदान करता है।

भारतीय सस्कृति के आधुनिक अध्येता इस प्रभाव और प्रतिक्रिया से वैसे ही उन्मथित हैं जैसे वे रीतिकालीन कवियों के फारसी प्रेम के प्रति थे। रीतियुग के स्वच्छन्द कवियो के कृष्ण प्रेम पर इसका क्या प्रभाव पडा, उसे हम यथास्थान दिखा चुके हैं। बाहरी प्रभाव के अच्छे और बुरे दोनो ही परिणाम हो सकते हैं। अत इनके प्रति सर्वथा उल्लसित मुद्रा तटस्थ समीक्षा में बाधक हो सकती है। यहाँ भी कुछ वैसी ही बातें कही

गयी हैं–[१] 'पौराणिक कथाओं' पर इस आन्दोलन (यूरोपीय बुद्धिवाद) ने नयी आभा बिखेरी है एवं इसके आलोक में हमारे इतिहास की अनेक घटनाएँ और अनेक नायक नयी ज्योति से जगमगाने लगे हैं।'

किन्तु प्रिय प्रवास (और द्वापर) आदि काव्यों में आये कृष्णचरित को देखने पर तो यही लगता है कि इस 'नयी ज्योति' में जगमगाहट कम, धुँआसा अधिक छाया है। सूर तुलसी के राम कृष्ण में ज्योति क्या कम थी ! हाँ, हरिऔध और गुप्त जी ने इन्हें मटमैला अधिक कर दिया है। द्वापर के कृष्ण पर रामचरित्र की मर्यादा और कर्तव्य निष्ठा का दबाव है। और यह पौराणिक होने के नाते स्वाभाविक भी है। तुलसी के राम पर भी तो कृष्ण का प्रभाव है ही। किन्तु, प्रिय प्रवास के कृष्ण पर तो दयानन्द सरस्वती जैसे आधुनिक पुनरुत्थान के नेताओं और बंकिमचन्द्र जैसे साहित्य चिन्तकों की पुराण विरोधी व्याख्याओं ('कृष्ण चरित्र') की छाप है। इस नवीन चिन्तन और तर्क कारों से काव्य में व्रज लीला का जो अनावरण हुआ है उसे देखते हुए सूर तुलसी की अन्धविश्वास पूर्ण पौराणिक भावुकता और रसखान की रसिकता ही काव्य दृष्टि से अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होती है। अस्तु, इसी पृष्ठभूमि पर प्रियप्रवास और द्वापर के कृष्ण चरित की समीक्षा प्रस्तुत की जाती है।

(क) प्रिय-प्रवास के कृष्ण

पुस्तक की भूमिका में ही कवि ने कृष्ण चरित के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिख दिया है कि–'मैंने श्रीकृष्णचन्द्र को इस ग्रंथ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं।' बुद्धिवाद एक ओर तो व्यक्ति के आन्तर अस्तित्व के रूप में उसके प्रेम, विश्वास आदि को नहीं मानता दूसरी ओर विश्व के भौतिक दृश्यों के पार वह नहीं झाँकता। इसलिए वह आस्तिकता और ईश्वर प्रेम का कायल भी नहीं होता। भारत के तत्कालीन मनीषी ने जब अपने हाथ में ज्ञान की मशाल उठायी तो हमारे मन से शास्त्रीय धर्म रूढ़ि और अन्ध विश्वास तो विदा हो ही गये साथ ही हमारी पुराण-कल्पना भी पिघल गयी। कृष्ण-लीला और व्रज चरित्र को सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा। और, कृष्ण के पुराण-प्रथित ईश्वर रूप के स्थान पर उनका ऐतिहासिक मानव रूप ही शेष रह गया। इस प्रकार, आधुनिक युग के कृष्ण महाभारत की भूमिका में लौटा दिये गये। लोकमान्य तिलक के गीता रहस्य की भूमिका और बंकिमचन्द्र के कृष्ण चरित्र की हिन्दी काव्य को यही देन है। ज्ञान की रोशनी के प्रति लालायित हरिऔध जी ने कृष्ण काव्य की रसवर्ती परम्परा को लाँघकर अपने काव्य में उक्त तर्क का अनुधावन किया है।

इसके अतिरिक्त, प्रिय प्रवास के कवि ने खड़ी बोली के साथ-साथ कृष्ण' को भी चुनौती के रूप में ही अंगीकार किया था। और, यह चुनौती मूलतः भारतेन्दु और पुनः पूज्यपाद पंडित जी' (म० प्र० द्विवेदी) की ओर से भाषा के सम्बन्ध में दी गयी थी। स्वभावतः इन्होंने कृष्ण चरित के लिए सूर, रसखान या भारतेन्दु के विशाल काव्य साहित्य की न देख कर आधुनिक विचारों के लोगों को' (जो असंदिग्ध रूप में स्वामी दयानन्द,

१ 'पन्त, प्रसाद और मैथिली शरण (पृ० २)–दिनकर।

तिलक या बंकिम च द्र ही हैं) श्रद्धा भरी दृष्टि से देखा। फिर, वह द्विवेदी युगीन मर्यादा वाद के प्रतिनिधि सवाहक भी हैं। इन्हीं कारणों से कृष्ण लीला के शृङ्गारिक प्रसगों का इ ह कोई बौद्धिक औचित्य नहीं मिलता। इन्हीं के शब्दों में—'आधुनिक विचारों के लोगों को यह प्रिय नहीं है कि आप पत्ति पत्ति में तो भगवान् श्रीकृष्ण को ब्रह्म लिखते चलें और चरित्र लिखने के समय 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ प्रभु' के रग म रँग कर ऐसे कार्यों का कर्ता उन्हें बनावें कि जिनके करने में एक साधारण विचार के मनुष्य को भी घृणा होवे। अत प्रिय प्रवास के महापुरुष कृष्ण आधुनिक पुनरुत्थानवाद के बौद्धिक सस्करण हैं। और, उनमे *पुनरुत्थान की प्राय सभी प्रवृत्तियाँ—बुद्धिवाद, अनासक्तिवाद, मर्यादावाद* मानवतावाद, नारी जागरण, राष्ट्रीय जागरण आदि की झलक है। इनमे अन्तिम दो-तीन तत्त्व स्वातन्त्र्य आ दोलन के सदर्भ मे अत्यन्त प्रभावशाली हैं और इनका सुन्दर वि यास गुप्त जी के काव्य में हुआ।

कथावस्तु—प्रिय प्रवास के प्रारम्भिक ५ सर्गों मे प्रिय का प्रवास गमन, आगामी ३ सर्गों मे गोपी, राधा और यशोदा का कृष्ण विरह है। इनमे माधुय पर वात्सल्य का प्रभुत्व स्पष्ट है। नवम सग म उद्धव व्रजागमन वर्णित है। शुरू से अन्त तक बुद्धि कवच मे कसे हुए कृष्ण भावुकता म बहकर उद्धव से कहते हैं—

> मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था।
> पाता हूँ अब मैं नितान्त उसको आबद्ध कर्त्तव्य मे ॥ ३
> शोभा अद्भुत शालिनी व्रजधरा प्यारी सगी गोपिका।
> माता प्रीतिमयी सनेह प्रतिमा, वात्सल्य धाता पिता ॥
> प्यारे गोपकुमार प्रेममणि के पाथोधि से गोप वे।
> भूले हैं न, सदैव याद उनकी देती व्यथा है महा ॥ ४ ॥
> जी म बार अनेक बात यह थी मेरे उठी, मैं चलू।
> प्यारी भावमयी सुभूमि व्रज मे दो ही दिनो के लिए
> बीते मास कई परन्तु अब लौं इच्छा न पूरी हुई।
> नाना काय कपाल की जटिलता होती गई बाधिका ॥ ५

दशम सग मे पुन वात्सल्य की ही प्रस्तावना है। आगामी ३ सर्गों म गोप विरह और जगली जन्तुओं का विनाश तथा उसके बाद के २ सग गोपी विरह के हेतु हैं। अन्तिम सग मे गतिशील कथानक है। उद्धव प्रत्यागमन, कृष्ण का द्वारिका वास और राधा के कौमार व्रत तीनों ही के उल्लेख से पुस्तक समाप्त हुई है।

साराशत पुस्तक का विषय कृष्ण का मथुरा प्रवास है। कवि ने जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कृष्ण चरित का यह पक्ष चुना, उसके ग्राह्य तो वस्तुत मथुरा या द्वारिका वासी कृष्ण ही थे। किन्तु कथावस्तु के सर्वेक्षण से ऐसा लगता है कि वह व्रज जीवन कृष्ण के आकर्षण से मुक्त नहीं है। साथ ही उस प्रेममय जीवन मे भी वह यथावसर बुद्धि कणों का भरने का प्रयत्न करता है। बुद्धिवादी मूल्यों के प्रसार की यह निषेधात्मक पद्धति है। इसीलिए कवि कृष्ण को मथुरा पहुँचा कर स्वय गोकुल लौट पड़ा है। इससे उसे कृष्ण

की ब्रज लीला की मानवीय व्याख्या और मनहर कृष्ण के दिव्य गुणों के बौद्धिक विश्लेषण का पूरा अवसर मिल गया है। यद्यपि कवि ने इसका कारण कथासूत्र की शृङ्खला म ताल-मेल बैठाना बतलाया है किन्तु मूल प्रयोजन वही है जिसका संकेत ऊपर किया गया। यानी, मथुरा प्रवास की कथा तो प्रस्तुत मे वर्णित है ही, ब्रज की अन्य बाल और यौवन लीलाएँ भी गाप गोपियों के स्मृत रूप म अथवा श्रोता उद्धव की प्रस्तावना में सुना दी गई हैं।

प्रिय-प्रवास के उद्धव लगभग मौन हैं। उनके मौन से ही कवि ने बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा बचायी है। अन्यथा एक ओर तो गोपियो के भाव-तरल उच्छ्वासो से उनका ज्ञान गव सदा की भाँति ढह जाता, दूसरी ओर उनके निर्गुण ब्रह्म सम्ब धी प्रवचनो से हरिऔध जी के मानव कृष्ण ही नाराज हो जाते। अत कवि ने मौन को ही श्रेयस्कर माना है।

काव्य दृष्टि से विचार करने पर कृष्ण की न तो बाल लीला ही सफल है और न माधुय लीला ही। उनकी बाल लीला में ईश्वर की असीम शक्ति और दिव्य गुणों के अभाव मे उस विस्मय विवद्धक ज्ञान द का आभास तक नही मिलता जो सूर के वात्सल्य-चित्रण का प्राण है। ब्रजभाषा के बाल वणन मे दि यता और बाल सुलभ सुकुमारता का प्रेममय द्वन्द्व है। इसी से गोपियो के मन मे कृष्ण की अनिष्ट आशका भी सहसा उनके अप्रत्याशित शौय का सबल पाकर अनुकूल वेदनीयता का कारण बन जाती है। किन्तु, यही उक्त आशका का आमूल उच्छेद कभी नही होता और प्रतिकूलता बनी रहती है। इसके अति रिक्त भारतीय आस्तिक जन मन पर उस घटना का कोई विस्मयकारी प्रभाव भी क्या पडता जब कृष्ण वशी बजाकर या डडे से पीट कर या साहस और स्फूर्ति का परिचय देकर अथवा अपनी अद्भुत चातुरी का प्रदशन कर व य ज तुओं का बध करते, जगल की आग से गायों और ग्वालों का खींच लाते या वर्षाकाल म गोवधन की गुफा में छिप कर गोप मण्डली को बचा लेते। व य जीवो के नाश से उनके तन से विभिन्न असुरों का प्रकट होना और भगवान् कृष्ण से मोक्ष प्राप्त कर स्वग विदा होना आदि म ययुगीन अधविश्वासो क साधक और आधुनिक विचारों के बाधक भले ही हों, लोक चित्त से उनके नित्य प्रभाव का निर्वा सित नही किया जा सकता। सदाचार मात्र को काव्य का स्थायीभाव बना देना अमनोवैज्ञा निक है। इसके चलते कृष्ण यशादा के सवेदनशील मातृ हृदय में सवेदनात्मक आलम्बन बन कर नही ढल पाते। इससे रसोद्रेक मे बाधा पडती है। माता मध्ययुगीन और पुत्र आधुनिक—प्रिय प्रवास के वात्सल्य वर्णन की प्रत्यक्ष बाधा यही है। और इससे यदि यशोदा का हृदयोद्यान जिसमे कल्पना की क्यारियाँ और भावना के अनेक कुसुम थे—ध्वस्त हो गया तो यह कोई आश्चय की बात नहीं। यशोदा को कृष्ण की बाल छवि के दशन का अवसर ही कहाँ दिया गया है ? यदि कुछ अवसर भी मिला तो उनके कैशोर दशन का। अत जहाँ सूर की यशोदा कृष्ण सुधि मे यह कहती है—

> सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग।
> निसि बासर छतिया लै लाऊँ, बालक लीला गाऊँ ॥ (३१६८)

हाँ हरिऔध की यशोदा कहती है—

कालिंदी के पुलिन पर की मध्य वृन्दाटवी की।
फूलो वाले विटप ढिग की कुंज की आलयो की।।
प्यारी लीला सकल जब हैं लाल की याद आती।
तो कैसा है हृदय मलता मैं बता क्यो उसे दूं।। ६१

मातृ हृदय में भी गोपियों के मधुर रास विलास की याद वात्सल्य मे माधुर्य की घुसपैठ और तज्जन्य रस-दोष का कारण है। वैसे ही, नन्द को कृष्ण लीला म अप्रतिम तेज के स्थान पर गहन बुद्धिमत्ता की झलक मिलती है—

जसी मैंने गहन उनमें बुद्धिमत्ता विलोकी
जो लीलाएँ कुँवर लखता, था वही मुग्ध होता।६३ (दशम सर्ग)

बुद्धि से व्यक्ति चकित हो सकता है किन्तु उससे मुग्ध नही हो सकता। मुग्ध तो वह प्रिय की विस्मयकारिणी लीलाओ से ही हो सकता है। अत कृष्ण के बौद्धिक स्वरूप के निर्धारण के अनन्तर उनमे ही भावात्मकता और अलौकिकता का यह सन्निवेश चारित्रिक अन्तर्विरोध का कारण बन गया है—

चरित्र ऐसा उनका विचित्र है। प्रविष्ट होती जिसम न बुद्धि है।
सदा बनाती मन को विमुग्ध है। अलौकिकालोकमयी गुणावली।।२३

यहाँ पौराणिक कृष्ण से इस आधुनिक कृष्ण का प्रत्यक्ष मेल बैठना कठिन है। उनके आदर्श आचरणो के चौखटे में गोपी कृष्ण के जार भाव का मेल तो और भी नहीं बैठता। अत इस प्रबल मर्यादावादी मूल्य के प्रति प्रिय प्रवास के 'मधुर कृष्ण' को भी समर्पित ही समझना चाहिए।

युवक कृष्ण मथुरा के राज्याधिकारी हैं। वह लोकोपकार मे दिन रात डूबे रहते हैं। मथुरा कम लाक है। इसीलिए, कवि ने कुब्जा प्रसग को पूरी तरह गायब कर दिया है जिससे गोपियो को भी कृष्ण पर उँगली उठाने का मौका नही मिलता।

इन सारी बातों के बावजूद भावात्मक कृष्ण की सत्ता यहाँ निरस्त नही होती। प्रेमविभोरी राधा के शब्दो मे कवि अन्त मे इस ओर सकेत करते हुए कहता है—

यों ही जो है अवनितम म दिव्य प्यारा उन्हें मैं।
जा छूती हूँ श्रवण करती देखती सूंघती हूँ।
तो होती हूँ मुदित उनमे भावत श्याम को पा।
न्यारी शोभा, सुगुण गरिमा, साम्यता अगजाता।।१०३

(ख) द्वापर के कृष्ण

मैथिलीशरण गुप्त पुनरुत्थान के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। उनकी समस्त कृतियों में पुनरुत्थान की प्रवृत्तियो का सुन्दर विन्यास हुआ है। किन्तु, उन्होंने काव्य म उन प्रवृत्तियो का विनियोग ऐसे कलात्मक ढग से किया है कि आधुनिक बुद्धिवाद विदेशी आयात सा नहीं लगता। गुप्त जी हरिऔध जी से इसी अर्थ म भिन्न हैं। गुप्त जी का बुद्धिवाद साहित्य के स्थायी भावो से स्वायत्त है। वह पुरातन सस्कारों से महित होकर प्रकट हुआ है। बल्कि यह कहना ज्यादा श्रेयस्कर है कि आधुनिकता से इनपर पौराणिक सस्कार ही

गुप्त जी के काव्य में चमक उठा है। आधुनिकता उनके काव्य की स्वाभाविक परिणति है—लगभग वैसी ही जैसे मध्ययुगीन संस्कार तुलसी के मानस में। अत उनके पौराणिक पात्र राम या कृष्ण के चरित्र म भी कोई ऐसा अस्वाभाविक परिवर्तन नहीं हुआ है जो हमारे सनातन विश्वास के प्रतिकूल हो। साकेत के राम भी तुलसी के भगवान की ही भाँति ईश्वर हैं। और जहाँ तक व्यक्तिगत संस्कार का प्रश्न है तुलसी की तरह गुप्त जी भी परम भक्त वैष्णव कवि हैं। किन्तु, आधुनिकता की स्वाभाविक प्रेरणा से गुप्त जी के भगवान राम भी अपनी नर लीला के सोपानों पर उत्तरोत्तर चढ़कर ईश्वरीय ऐश्वर्य को प्राप्त करते दीख पड़ते हैं। मानवीय महिमा यहाँ ईश्वरत्व के बिल्कुल पास पहुँच गयी है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कवि ईश्वर के ऐश्वर्य में कोई विश्वास ही नहीं रखता। कम-से कम गुप्त जी के राम या कृष्ण चरित्र के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। उन्होंने नवीन के साथ प्राचीन के सामंजस्य म प्राचीनता का यथेष्ट ध्यान रखा है। इसीलिए उनकी कृतियों मे भावना और बुद्धि का एक सुखद सन्तुलन है। इसी सन्तुलन की कसौटी पर उनका द्वापर काव्य खड़ा है। उनका द्वापर कृष्ण काव्य है। और, यही वह काव्य है जिसमे कवि ने इस सन्तुलन के आग्रह से वे बातें भी कही हैं जो पुनरुत्थान के आत्यन्तिक मूल्यों के आड़े आती हैं—जैसे, अवतारवाद, पुराणकल्पना, नानकांड और कर्मकांड का विरोध, उद्धव गोपी संवाद में कृष्ण का सगुण प्रेम, कुब्जा प्रेम आदि आदि। वैसे ही, सन्तुलन के आग्रह से ही उन्होंने अपने कृष्ण काव्य में उन पात्रों और संवादों की योजना की है जिनसे नारी-जागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन को परोक्ष प्रेरणा मिलती है। जैसे-विधृता चरित्र का समावेश तथा कृष्ण-वंशी के स्थान पर शंखध्वनि आदि। किन्तु, इस कर्त्तव्य चेतना के लिए कृष्ण को प्रियप्रवास का स्वयंसेवक बनना नहीं पड़ता बल्कि वह अपने अवतार-बन्धु राम के तेजस्वी रूप से ही उसका आहरण कर लेते हैं—'राम भजन कर पांचजन्य! तू, वेणु बजा लूँ आज अरे।' किन्तु कर्त्तव्य चेतना उनके निजी स्वरूप का भी एक अंग है। अत कृष्ण कहते हैं—

> कोई हो, सब धर्म छोड़ तू आ, बस मेरे शरण धरे,
>
> डर मत, कौन पाप वह, जिससे मेरे हाथों तू न तरे ?

कृष्ण में राम का आरोप— द्वापर के कृष्ण पर रामचरित्र का आरोप है। राम-भक्त कवि गुप्त जी ने कृष्ण चरित की प्रस्तावना में भी रामचरित के संस्कारों का जो सन्निवेश किया, उसे उपर्युक्त पंक्तियों मे देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त पुस्तक के मंगलाचरण म उनका यह आग्रह पूरी तरह स्पष्ट हो गया है।[1] इसी आग्रह के परिणाम स्वरूप वृन्दावन की राधा भी कुरुक्षेत्र के गीतावाचक कृष्ण की दार्शनिक उक्तियों से आसक्त होती दिखायी गयी। रामभक्ति म दास्य भाव का अन्यतम महत्व है। राधा की इस उक्ति में—'शरण एक तेरे मैं आई धरे रहें सब धर्म हरे।'—उसी भावना की परछाईं है।[2]

---

१ धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग, मुझपर चढ़ने से रहा राम! दूसरा रंग।

२ कनुप्रिया—(धर्मवीर भारती)

'क्या तुमने उस वेला मुझे बुलाया था कनु ? लो मैं सब छोड़ छाड़ कर आ गयी।'

प्रेम सौंदर्य के आश्रय और विषय राधा और कृष्ण के अनुराग की माला गूंथने के लिए गीता वाचक कृष्ण का उक्त वचन ही क्यों चुना गया, इसके पीछे भी एक रहस्य है।

द्वापर की भूमिका से स्पष्ट है कि पुस्तक का आरम्भ जिस भावना से हुआ, उस पर द्वारिकाधीश कृष्ण के महिमामय व्यक्तित्व की छाप थी। किन्तु योजना बदल जाने से *'द्वारकाधीश'* और *'योगिराज'* खंडों के बजाय प्रारम्भिक *'गोपाल'* खंड तैयार हो गया। प्रस्तुत द्वापर गोपाल-खण्ड का ही प्रत्यक्ष रूप है। स्वभावतः इस गोपाल पर द्वारकाधीश कृष्ण की छाप पड़ गयी है।

इसके अतिरिक्त गुप्त जी के अन्य पात्रों ने भी कृष्ण स्वरूप में राम के आरोप का स्मरण रखा है। यशोदा, विधृता, कुब्जा, उद्धव सब राम भक्ति के रंग में सराबोर हैं। कृष्ण के मथुरा आने पर कुब्जा को रावणपुरी में आये राम की याद आती है—'श्याम रूप, हो न हो राम ही पुनः आप आया यह।' अनन्तर उसके द्वारा श्याम की सलोनी अंगकान्ति के चित्रण में पंचवटी के राम अवतरित हो गये हैं। उदाहरणार्थ—

द्वापर के कृष्ण—श्याम रूप धारी वह जलधर जगमग ज्योतिर्मय था,
घन होकर भी सहृदय था वह, निर्भय किन्तु सदय था।

पंचवटी के राम—दिवा उतर पड़ा अवनी पर काम रूप कोई घन था,
एक अपूर्व ज्योति थी जिसमें, जीवन का गहरापन था।

द्वापर के उद्धव तो प्रेम विभोरी गोपियों से साफ कह देते हैं—'सच कहता हूँ, मैंने अपना राम तुम्हीं में पाया।' उद्धव की प्रस्तुतोक्ति वस्तुतः राम भक्त कवि की स्वगतोक्ति है। उधर राधा पर भी सीता चरित्र का आदर्श हावी हो गया है, जिससे वह विश्व मंगल की भावना में तल्लीन हो गयी है।

अतः द्वापर के कृष्ण पर रामचरित्र का स्पष्ट आरोप है। यह आरोप जहाँ कवि के निजी संस्कारों का व्यंजन है, वहाँ यह निष्प्रयोजन है और जहाँ भावात्मक कृष्ण के कमनीय रूप को प्रखरता प्रदान करता है, वहाँ अभिनन्दनीय है।

'कवि धन' कृष्ण —द्वापर का दूसरा महत् प्रयोजन *'विधृता'*—चरित्र का उद्धार है। विधृता प्रसंग में नारी की अधिकार रक्षा के साथ साथ कर्म काण्डियों पर भावात्मक कृष्ण की प्रेम महिमा की विजय दिखलायी गयी है। पुस्तक के निवेदन' में विधृता प्रसंग के आधार रूप में श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध, २३ अध्याय की एक कथा का उल्लेख किया गया है जिसके अन्तर्गत मुनि पत्नियों द्वारा वन में सखा सहित कृष्ण को भोजन कराना वर्णित है। मुनि पत्नीनुग्रह की यह कथा तनिक हेरफेर से ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड अध्याय-१८ और सूरसागर, दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध पद सं० ८००-८०८) में भी सविस्तर वर्णित है। इसी कथा में उस विधृता नारी का उल्लेख है जिसे उसके पति ने कृष्ण के पास जाने से रोक तो रखा किन्तु वह शरीर छोड़ वहाँ सबसे आगे पहुँच गयी। सूर के शब्दों में—

धन्य धन्य वै परम सभागी। मिली जाइ सबहिनि तैं आगी॥ ८००

श्रीमद्भागवत और सूरसागर दोनों मे यज्ञपत्नी की यह कथा 'चीरहरण' और 'गोवर्धन-धारण' की मध्यवर्ती है। इसके अनन्तर रास की भूमिका प्रारम्भ होती है। अत सस्कृति के आधुनिक अध्येताओं ने भ्रमवश 'यज्ञपत्नी लीला' और 'रास-लीला' के भिन्न प्रसंगो को एक मानते हुए जो यह लिखा है कि[1]—'विधृता कृष्ण के रास मे सम्मिलित होना चाहती थी—यह ठीक नही। वह आगे कहते हैं[2]—'कथा है कि (?) विधृता इस अपमान को न सह सकी और तत्क्षण उसका देहान्त हो गया एव उसकी आत्मा रास मे जा सम्मिलित हुई। कहाँ है यह कथा ? प्रश्न है कि रास उस समय कहाँ हो रहा था ? विधृता कृष्ण की रास-लीला में सम्मिलित होने के लिए बेचैन नही थी। न ही उसकी आत्मा रास मे जा सम्मिलित हुई। वह तो वस्तुत क्षुधार्त्त कृष्ण का वन मे व्यजन भोग लगाने आ रही थी। और पति द्वारा रोक लिये जाने पर उसकी आत्मा भगवान् कृष्ण मे सम्मिलित हो गयी।

विधृता प्रसग से कृष्ण के भावात्मक स्वरूप को यथेष्ट बल मिल गया है। पति को तन छोड प्रियतम कृष्ण को अपना सब कुछ समर्पण करने वाली यह नारी प्रेम के परमोच्च आदर्श का परिचय देती है जिसके समक्ष क्षुद्र तन का कोई महत्त्व नहीं होता। प्रेम प्राणी के विशुद्ध अन्तर का भाव स्रोत है जो कूल किनारों की परवाह किये बिना अग जग को रस प्लावित करता है। इसके आश्रय और विषय समान और निर्बन्ध होते हैं। जैसा कृष्ण चरित्र निर्बन्ध है, वैसा ही विधृता चरित्र भी। अत पग पग पर सासारिक बन्धनो को तोडने वाले भाव के भूखे कृष्ण के समक्ष सासारिक बन्धनो को तिलाजलि देकर पहुँच जाने वाली विधृता प्रेम के आश्रय और विषय दोनो ही पक्षों मे इस भाव सम्बन्ध को चरितार्थ करती है। गुप्त जी के निम्न कथन मे इसी तथ्य की प्रतिध्वनि है—

> दूर मधुप को भी पराग निज पहुँचा दिया कुसुम ने,
> हे वेदन, खेद, इतना भी भेद न जाना तुमने।

गुप्त जी आधुनिक युग मे सगुण मार्ग के अन्यतम कवि हैं। उन्होंने याज्ञिक ब्राह्मण और विधृता के व्याज से निवृत्ति पर प्रवृत्ति की, कर्मकाण्ड पर भक्तिवाद की, ज्ञानवाद पर पुराणवाद की और बौद्धिकता पर भावुकता की सिद्धि कर दी है। विधृता की निम्न उक्ति इसका प्रमाण है—

> कृष्ण अवैदिक ? और राम भी ? ठहरो धीरज धारो
> और पुन वाल्मीकि व्यास किस ऋचा रचयिता ऋषि से ?
> युग-युग भी परितृप्त रहेंगे जिनकी अक्षय कृषि से।
> राम कृष्ण का रूप कहाँ से देखे दृष्टि तुम्हारी
> नीरस छान्दस, उस कवि धन को जान सको तो जानो।

इस 'कवि धन' कृष्ण के भावात्मक स्वरूप को कर्मकाण्डी योगी नहीं जान सकते, बल्कि वह जानते हैं जिनका तन मन कृष्ण प्रेम मे रँग उठा है जिनके मन में वितर्कों की आँधी नही उठती वरन् विश्वास का पारावार लहराता है—

---

१ 'पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण' (पृ० ३१)—दिनकर

२ वही।

कमकाण्ड के इन भाण्डो मे वह रस कहाँ धरा है

अविश्वास ज्व हाय ! तुम्हारे घर में भाप भरा है।

इसलिए, ससार भर के योगी जिसे न जान सके, उसे कृष्ण प्रेम म सराबोर भावसाधक ने राधा के पाँव पलोटते और छछिया भर छाँछ पर नाचते देख लिया। भाव साधकों का वह भाव, कवियो का वह धन भावात्मक कृष्ण ही तो है।

अत विधृता की उद्भावना से आधुनिक काव्य विरोधी धारणाओं का निमीलन और कृष्ण के भावात्मक स्वरूप का उन्मीलन हुआ है। विधृता के प्रियतम कृष्ण दिव्य प्रेम के जाग्रत प्रतीक हैं।

कृष्ण लीला का स्वरूप गुप्त जी सस्कार से प्राचीन किन्तु सश्लेष से नवीन हैं। कृष्ण लीला के चित्रण मे इसी से पौराणिकता और आधुनिकता का प्रेमिल द्वन्द्व मिलता है। पौराणिकता का प्रसाद है—दिव्यता और आधुनिकता का आदान है—बौद्धिकता'। कृष्ण की बाल लीलाओं में कही तो दिव्यता का और कही बौद्धिकता का समावेश है। माँ यशोदा की दृष्टि मे कृष्ण दिव्य पुरुष हैं। और, जहाँ वह यह कहती है—

'जिये बाल गोपाल हमारा, वह कोई अवतारी,

नित्य नये उसके चरित्र हैं, निमय विस्मयकारी।'

वहाँ वह सूर की यशोदा की छायामूर्ति बन जाती है। किन्तु, गुप्त जी ने जहाँ उनकी लीलाओ का यशोदा द्वारा कथन कराया वहाँ उनके कृष्ण म प्रियप्रवास के बुद्धिमान् कृष्ण की झलक मिल गई है। वह कहती है—कहो कौन सी बात न उसने सूक्ष्म बुद्धि पर तोली ?

उलझ नाग से, सुलझ आग से, विजय भाग लाता है।

मध्ययुगीन सस्कार कृष्णचरित की किसी भी विस्मयकारिणी घटना को आँखें खोल कर देखना नही चाहता। उसकी दृष्टि झिलमिलाने लगती है। अत वह इसे दिव्यता के हवाले कर देता है। किन्तु, आधुनिकता का आग्रह ही यह है कि वह ऐसी हर बात को बुद्धि की तुला पर रख कर तोले। इसीलिए प्रियप्रवास के कृष्ण गोवधन धारण न कर उसकी कन्दरा मे ले जाकर ब्रजवासियो को बसा देते हैं। किन्तु द्वापर म ऐसा नही होता। वहाँ तो-'उठा लिया सचमुच पहाड ही गौरवमय गोविन्द ने।

'गोवधन की दरिया थी या पुरिया वे पाताल की ?

अत गुप्तजी की कृष्ण लीला को देखते हुए उनके कृष्ण नर और नारायण मे से किसी एक पक्ष की आत्यन्तिक उद्बुद्धि नही लगते बल्कि नर के स्वरूप मे नारायण की ही लीला के सवाहक प्रतीत होते हैं। गुप्त जी के शील निरूपण की यह प्रतिनिधि विशेषता है। कुब्जा के शब्दो म—

हृदय सशक हुआ पर आहा ! वक भृकुटियाँ तीखी,

निज विलास मे विश्व नचाती, वशीधर की दीखी !

खेल रहा था नारायण ही नर के ढाँचे मे वह। (पृ० १४४)

अत राम और कृष्ण म कोई तात्त्विक अन्तर न होने पर भी स्वरूप भूत अन्तर यह है कि राम जिसे धनुष बाण चढ़ा कर पूरा करते हैं, कृष्ण उसे अपनी त्रिभगी मुद्रा, ओठो की मुस्कान और वशी की तान से पूरा कर देते हैं।

तृतीय अनुच्छेद

रोमानी भावना के कवि (भारती) और कृष्ण

'कनुप्रिया'[1] डॉ० धर्मवीर भारती की प्रतिनिधि काव्य कृति है। यह आधुनिक छन्द शिल्प मे रचित छोटा-सा कृष्ण-काव्य है जिसमे राधा के कृष्ण प्रेम की तन्मयतापूर्ण अनुभूतियो का भाव विदग्ध अकन है।

कवि आधुनिक युग का परम प्रतिभाशाली लेखक है इसलिए उसके इस काव्य मे कृष्ण लीला का स्थूल अकन ढूढना व्यर्थ है। सच तो यह है कि स्थूल कथाओ के मूल नायक कृष्ण स्वत यहा अनुपस्थित हैं। हां, राधा की भाव कथा में उसके लीला बन्धु कनु (कृष्ण) अवश्य ही भाव रूप मे अवतरित हो अपने चरित्र के त्रिविध ब्रज वल्लभ, द्वारिकाधीश और योगिराज रूपो मे लीला प्रसार कर उसी के क्षुब्ध मानस में तल्लीन हो जाते हैं। राधा के आकुल अन्तर से छन कर व्यक्त होने के कारण यद्यपि कृष्ण चरित के उक्त तीनों ही चरण अत्यन्त सवेदनशील हैं किन्तु वे वैसे ही नहीं हैं जैसा कि उन्हे ब्रजभाषा के भावुक भक्तो ने गाया है।[2] सूर से लेकर भारतेन्दु तक सभी कवियों का लीला गान भागवत के सम पर बँधा है। बीच बीच में मीरा, रसखान या घनानन्द आदि कुछ ऐसे कवि अवश्य हुए जिन्होंने कृष्ण-चरित के साथ साथ आत्म चरित की भी अन्तरग व्यजना कर ली है। किन्तु इन सबो मे भागवत के ही आधार पर भागवत वृत्तियो का प्रतिफलन हुआ। अकेली कनुप्रिया ही ऐसी है जिसमे राधा की भावगत वृत्तियों के आधार पर कृष्ण की भागवत वृत्तियों का सगुम्फन हुआ है। यह शिल्प के चातुर्य का ही परिणाम है कि लगभग (खडी रेखा वाले शब्दो के) ७५ पृष्ठो म ही कवि ने अत्यन्त बारीकी से—प्रेमी कृष्ण, पुरुषोत्तम कृष्ण, सामन्त कृष्ण तथा योगी कृष्ण का समवेत अकन कर दिया है।

कथा द्रव्य—कृष्ण की प्रारम्भिक प्रेम लीला और मजरी परिणय, प्रकृति-पुरुष के उन्मीलन निमीलन में राधा-कृष्ण का सयोग वियोग तथा राधा विच्छिन्न कृष्ण की राजनीति और दर्शन की प्यास तथा पुन राधा का आह्वान-यही इसकी सम्पूर्ण कथा वस्तु है। यह वस्तुत कृष्णचरित के सभी पक्षो का भावात्मक बिम्ब है जिसे कवि ने राधा के हृदय दर्पण के समक्ष रख दिया है।

कृष्ण चरित के सभी कल्पित रूपो का एकत्र आकलन ही एक ऐसा काम है जिसे सामान्य कोटि की प्रतिभा कुशलता से नही कर सकती। फिर, उन बहु विचित्र रूपों का सक्षिप्त और शृङ्खलाबद्ध विन्यास, उनमे आदर्श प्रेरित योग सूत्र और वह आदर्श भी बौद्धिक युग के प्रतिकूल, कनुप्रिया की ये कुछ ऐसी विलक्षणताएँ हैं जो आधुनिक युग के बुद्धिसकुल

१ प्रथम सस्करण-१९५९ भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

२ डॉ० रामदरश मिश्र-'हिन्दी कविता प्रबन्धकाव्य'-'आलोचना का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषाक—जून, १९६५।

मुरली तो बज चुकी बहुत अब,
शख फुँकेंगे सीधे,
दूर मयूर पलेंगे रण मे,
गीध गुणो के गीधे—कनुप्रिया के निम्नोक्त अश पर अमित प्रभाव देखा जा सकता है—

'चारो दिशाओं से उत्तर का उड उड कर जाते हुए गृद्धो को क्या तुम बुलाते हो (जैसे बुलाते थे भटकी हुई गायो को) ।[१] या, फिर कनुप्रिया के इस कथन मे—'तुमने असफल इतिहास को जीर्ण वसन की भाति त्याग दिया है और इस क्षण केवल अपने मे डूबे हुए दर्द से पके हुए तुम्हें बहुत दिन बाद मेरी याद आयी है ।[२]—द्वापर[३] की गोपिया के इस वक्तव्य की ध्वनि मिलती है—

मथुरा क्या, आसिन्धु धरा की धूल छान डालें वे,
राधा सा जन रत्न कही भी, जब जानें, पा लें वे ।
सौ चक्कर काटेंगे आकर, उतरेगी तब त्योरी

प्रभाव चाहे जो भी हो पर कनुप्रिया की आत्मा अपनी है और उसमें पुरातन भी नये सस्कारों से जगमगा उठा है ।

कृष्ण लीलाएँ—वशी, रूप सम्मोहन, चीरहरण, रास, दावानल शमन, गोवधन धारण, कालिय दमन, मथुरागमन, महाभारत युद्ध, गीता दशन और स यास आदि वही हैं किन्तु उन सबा मे घिर कर व्यक्त होने वाला कनु और उसका प्यार निराला है । 'मजरी परिणय' उसके इसी अभिनव प्रेम का प्रतीक है ।

काव्य का स्थायी भाव—कवि इन सारी विलक्षणताओं का समाधान अपनी भूमिका में ही कर दता है । वह कृष्ण चरित का साधारणीकरण करते हुए उसके विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डालता है । वह मानव मन के बाह्य उद्वेगो की अपेक्षा उसके अन्दर साक्षात्कृत प्रेम-तन्मयता के क्षणो को कही अधिक तरजीह देता है । इस दृष्टि से कृष्ण का पहला स्वरूप इतिहास के थपेडों स विक्षुब्ध मानव का है जिसकी अपक्षा राधा के साथ उनके प्रेम क्षणो का अशेष महत्त्व है । एक बौद्धिक पक्ष और दूसरा भावात्मक पक्ष है । इन दोनो मे परस्पर भेद है—जसे व्रजवल्लभ से द्वारिकाधीश भिन्न हैं । किन्तु भिन्नताओ के दो ध्रुवान्तो पर खडे होकर एक दूसरे को घटिया बताना ठीक नही । उसी प्रकार यह प्रश्न भी निस्सार है कि कृष्ण अपने जीवन की इन्ही विविधताओ के कारण महान् हैं ।

कनुप्रिया के कृष्ण—कनुप्रिया का आग्रह भावात्मक कृष्ण को ही सत्य-सनातन मानने का है । उसके इस आग्रह की लपट म शासक, कूटनीतिज्ञ व्याख्याकार, इतिहास-निर्माता कृष्ण—सब एक साथ हो गय हैं । सबों पर उन प्रिय भावो की ही मोहिनी डाल दी गयी है ।

---

१ कनुप्रिया-पृ० ७४
२ वही—पृ० ८३
३ द्वापर—पृ० २०१

शाश्वत काव्य बोध—भारती जी ने बुद्धिवादी कृष्ण द्वारा अपने 'अन्धायुग'[१] का बौद्धिक विश्लेषण किया था।[२] कनुप्रिया में उन्होंने भावात्मक कृष्ण का विश्लेषण किया है। वह कहते हैं—'कनुप्रिया उसी प्रक्रिया को दूसरे भाव स्तर से देखती है। उसकी मूल वृत्ति संशय या जिज्ञासा नहीं, भावाकुल तन्मयता है। कनुप्रिया की सारी प्रतिक्रियाएँ उसी तन्मयता की विभिन्न स्थितियाँ हैं।'[३]

भावना की यह प्रतिक्रिया 'प्रिय प्रवास'[४] के बौद्धिक कृष्ण में ही फूट पड़ी है। द्वापर में यह विद्रोह पौराणिक स्तर पर प्रतिष्ठित है। किन्तु कनुप्रिया में यह काव्य स्तर पर प्रतिष्ठित है। काव्य बोध की दृष्टि से प्रिय प्रवास के कृष्ण ज्ञान बोध हैं, द्वापर में पुराण बोध और कनुप्रिया में विशुद्ध भाव बोध। इस भाव धारा में कृष्ण लीला के स्थूल उपकरण तिनके की भाँति बह गये हैं। केवल शाश्वत स्थायीभाव के रूप में बच गये हैं राधा प्रिय कनु। यही कारण है कि कृष्ण स्थूलतः अनुपस्थित होकर भी काव्य बोध के रूप में सम्पूर्ण काव्य के कथ्य में अन्तर्व्याप्त हैं।

पुस्तक में एक शाश्वत प्रश्न (शंका नहीं) भी है और वह है–काव्य और पुराण का, इतिहास और दर्शन के नाम। यह प्रश्न कवि की भावुकता से सम्बद्ध है। कवि को भावना से प्यार है और बुद्धि से इन्कार। इसलिए काव्य में कनुप्रिया के प्रति पक्षपात है और कृष्ण के प्रति उपेक्षा। इसी उपेक्षा की स्वाभाविक झलक राजनीतिज्ञ और दार्शनिक कृष्ण के पराजय में मिलती है। किन्तु यह कोई पूर्वग्रह नहीं, सत्य है। ऐतिहासिक और दार्शनिक कृष्ण को कुरुक्षेत्र और जरा ने जीर्ण कर दिया किन्तु भावात्मक कृष्ण पुराण और काव्य में चिर किशोर हैं।

वस्तुतः भावना की तन्वी राधा के द्वन्द्व का कारण क्या है? जब हम इस कारण की खोज करने चलते हैं तो कृष्ण चरित के उस मोड़ पर पहुँचते हैं जहाँ से कृष्ण अकेले ही मथुरा और द्वारिका के श्रेयशिखरों की ओर बढ़ जाते हैं। यहाँ उनकी अन्तरंग सखी उनसे विच्छिन्न हो जाती हैं। उधर कृष्ण के ऐश्वर्यों का कोई ओर अन्त नहीं है तो इधर केवल अनन्त प्रतीक्षा। दूसरे योद्धा कृष्ण में प्रेमिका राधा अपना अंश दान भी क्या कर सकती! इसीलिए, राधा ने अपनी राह बदल ली। अन्ततः प्रतापी कृष्ण की सम्पूर्ण उपलब्धियाँ प्रेम के उच्छ्वास में पिघल कर बह गयी। साम्राज्य कृष्ण के जयनाद और योगी कृष्ण की समाधि, दोनों में ही उनके हृदय की अन्तर्ध्वनि नहीं डूबी। यही अन्तर्ध्वनि राधा है। व्रजेतर (अथवा राधेतर) कृष्ण का इतिवृत्त जैसे सम्पूर्ण कृष्ण कथा में एक

---

१ रचनाकाल–सितम्बर–१९५४

२ डॉ० कृष्णनन्दन 'पीयूष' (अब स्वर्गीय) रचित काव्य 'योगनिद्रा' (फरवरी १९६७) के कथ्य में 'अन्धायुग' की छाया ग्रहण करते हुए बौद्धिक कृष्ण का ही विश्लेषण किया गया है। यद्यपि उसमें कनुप्रिया की भावुकता को भी समेटने का एक उपक्रम है।

३ कनुप्रिया की भूमिका–पृ० ७

४ प्रियप्रवास–नवम सर्ग पद सं० १ से ११ तक द्रष्टव्य–हरिऔध

निमम जुड़ावा बन गया। अत कृष्णचरित को जीवन्तता प्रदान करने के लिए यह राधा न्वयी व्रज-कथा नितान्त आवश्यक है। कनुप्रिया के कथ्य की यही रुझान है।

समासत. कनुप्रिया मे कृष्ण चरित के कोमल और कठोर दोनो ही रूप हैं। कठोरता पर कोमलता, बौद्धिकता पर भावुकता की जीत दर्शाना ही कवि का लक्ष्य है। इसीके लिए इस काव्य का ध्वन्यात्मक इतिवृत्त शब्द बिम्बो की स्फुट रेखाओं में कृष्ण चरित के सभी पहलुओं का समेट लेता है। कथा ध्वनन मे कृष्ण के प्रेमी, सामन्त और दार्शनिक ये जो तीनों वृत्त समाहित होकर साथक हो गये है, वह कुछ इसी कारण। इनम सामन्त कृष्ण निमम और योगेश्वर कृष्ण उद्भ्रान्त हैं। प्रेमी कृष्ण ही अपने आप मे पूर्ण हैं।

इनके भी दो रूप हैं—प्रेमी और पुरुषोत्तम के। प्रेमी कृष्ण अपनी नर लीला मे राधा प्रेमी हैं। और, राधा के साथ उनके प्रणय की सारी चेष्टाएँ मानवीय भ्रूकृतियो से आपूर्ण हैं। पुरुषोत्तम रूप मे वह प्रकृति स्वरूपा ह्लादिनी शक्ति से परिचालित हो नूतन सृष्टि का सविधान करते हैं। किन्तु वह मानवीय और विराट् अपन द्विविध स्वरूपो मे अन्तत प्रेमी ही हैं। अत प्रेम उनके चरित्र की सर्वोपरि शक्ति है। वही उनका अन्तरग परिचालन करती है। ऐसे म वह प्रेम शक्ति की प्रतिरूपा काव्य शक्ति के भी अन्तरग तत्त्व सिद्ध होते हैं।

कनुप्रिया कृष्ण चरित के भावात्मक स्वरूप की सीधी सादी विकास कथा नहीं, कृष्ण के विराट् व्यक्तित्व के समस्त फैलाव को राधा प्रेम म गूँथ देने का एक सफल उपक्रम है।

उपसहार—यही है कृष्ण का भावात्मक स्वरूप। इस स्वरूप के सन्धान से हो उनके काव्य पुराण प्रथित भावात्मक स्वरूप और इतिहास-दर्शनादि से समर्थित बौद्धिक व्यक्तित्व म व्याप्त अन्तर्विरोध का शमन किया जा सकता है। साथ ही हिन्दी काव्य की सहस्राधिक वर्ष व्यापी परम्परा मे व्याप्त उनके भावात्मक महत्त्व को निरखा और परखा जा सकता है।

अस्तु, कृष्ण चरित का निर्णायक क्षेत्र इतिहास और दर्शन नहीं, प्रत्युत अनन्त कल्पनाओं से आप्लुत भावो और विश्वासो का रस कोश काव्य ही है। यह बात जिस समाधि भाषा मे कही जा सकती थी, उसके तीन समथ प्रयोक्ता प्राचीन काव्य में श्रीमद्भागवत के प्रणेता व्यास, मध्ययुगीन ब्रजभाषा काव्य मे सूरसागर के रचयिता सूर और आधुनिक हिन्दी काव्य मे कनुप्रिय के रचयिता भारती ही हैं।

परिशिष्ट–१

भक्ति-शृङ्गार के कवि और कृष्ण

(क) चैतन्य मत के कवि[1]

कवि	काल	काव्य	विषय	कृष्ण
वल्लभ रसिक	स० १७२५	'माँझ'	ऋतुपरक	नटनागर
प्रियादास	१७३०–१८००	रसिक मोहिनी नखशिख वर्णन–[2]	–	राधा-कृष्ण रति रस
वृन्दावनचन्द्र	१७४०–१८१०	अष्टयाम	–	प्रेमरसकन्द
मनोहर राय	१७५७	श्रीराधारमण रस सागर–	ऋतुपरक–	रसराजकृष्ण
वृन्दावनदास–	१७७५-१८४०	प्रेमभक्ति चन्द्रिका (अनूदित) विलापकुसुमांजलि ( )	–	श्यामाश्याम रसधाम
राम हरि–	१७६०-१८४०	सतसई आलंकारिक प्रेमपत्री शृङ्गारिक रसपचीसी नायिकाभेद परक	–	अद्भुत लला
हरिदेव–	१८६२ १९१६	रसचन्द्रिका– छन्दपयोनिधि	"	– राधिकारमण
नन्दकिशोर–	१८७० १९१२–	स्फुट पद युगल केलि		–राधामाधव
गुणमंजरी दास– (गल्लूजी)	१८८४-१९४७–	राधारमण पदमंजरी[3] युगल छद्म रहस्य पद उराहनो लीला		– राधारमण
रसिक मोहन राय–	१७वीं शती (पूर्वार्द्ध)–	रसिक सेवक वाणी–		– राधारमण
किशोरीदास–	१८वीं शती (मध्य) –	किशोरीदास की बानी		– ब्रज चन्द
छोटे ब्रह्मगोपाल–	१६वीं शती	–वृन्दावन विलास		–रसिक किशोर

(ख) राधा वल्लभ सम्प्रदाय के कवि—

कवि	काल	काव्य
श्री चन्द्र सखी–	स० १७०० १७९०	पदावली
हित रूप लाल–	१७३८ १८०१	'हितहरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य' में उद्धृत (लेखक ललिताचरण)
रसिक दास–	१७४३-१८५३	सौन्दर्य लता–राधा कृष्ण नखशिख वर्णन अद्भुत लता–वल्लभ विलास रस सार, (सिद्धान्त रत्नाकर) वाणी–'राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' में उद्धृत (लेखक डॉ० विजयेन्द्र स्नातक)
अनन्य अली–	१७५६ १७६०	अष्टाष्टक– नखशिख वर्णन– वाणी– राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य में उद्धृत
चाचा हित वृन्दावन दास–	१६५-१७८४–	अष्टयाम– छद्मलीला–

---

१ विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य–'चैतन्यमत और ब्रज साहित्य'–श्रीप्रभुदयाल मीतल

२ हस्तलिखित पाण्डु लिपि–चैतन्य पुस्तकालय, पटना सिटी।

३ वही।

हठी जी— सं० १८३७ — राधा सुधा शतक

साहिबो दास— १८४२ — 'हित हरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य' में उद्धृत (लेखक—श्री ललिताचरण)

व्रजजीवन दास— — वही

सहचरि सुख— — वही

(ग) सखी सम्प्रदाय के कवि—

रूप सखी— सं० १७२५ — 'रूप सखी जी की वानी

ललित किशोरी— १७११ १८२३ — 'भगवत रसिक की वानी' में उद्धृत

पीताम्बर देव— १७३५ — 'निम्बार्क माधुरी' में उद्धृत—सम्पादक-बिहारीशरण, मथुरा

ललित मोहिनी— १७८० १८५९ — 'महावाणी वाणी

महन्तकिशोर दास—१७६१ — 'श्री वृन्दावनांक', वृन्दावन व्रजवल्लभशरण

भगवत रसिक— १७९५ १८५० — 'भगवत रसिक की वानी'

सहचरी शरण— १८३० १८६४— 'निम्बार्क माधुरी' में उद्धृत

ललित किशोरी कुन्दनलाल } १९१५ — बृहत रस कलिका / लघु रस कलिका / फुटकर पद } 'व्रज माधुरी सार' में उद्धृत
ललित माधुरी (कुन्दनलाल) }

(घ) अन्यान्य सम्प्रदाय के कवि—

घनानंद—सं० १७३०-१८१७— निम्बार्क हित सम्प्रदाय सुजानहित, कृपाकन्द आदि घनानंद ग्रंथावली (पं० वि० प्र० मिश्र) में उद्धृत

वृन्दावन देव— १७५४ १७६४ — निम्बार्क—श्री वृन्दावनांक, वृन्दावन

नागरीदास— १७५६ १८१२ — वल्लभ सम्प्रदाय नागर समुच्चय

अलबेली अलि—१८वीं शती (मध्य) विष्णुस्वामी—समय प्रबन्ध पदावली

वंशी अली— १७६४ १८२२ — 'विष्णुस्वामी और उनका सम्प्रदाय'—(लेखक गोविन्ददास वैष्णव) में उद्धृत

गोविन्द देव— १८०० १८१४ — निम्बार्क—श्री वृन्दावनांक, वृन्दावन

गोविन्दशरण— १८१४ १८८१ — " "

व्रजनिधि— १८२१ १८६०— स्वतन्त्र व्रजनिधि-ग्रन्थावली हरि नारायण

गोकुलनाथ— १८४०-१८७०— " राधा कृष्ण विलास

सर्वेश्वर शरण— १८४१ १८७०— निम्बार्क श्री वृन्दावनांक, वृन्दावन

रसिक गोविन्द १८५० १८९०— " रसिक गोविन्दानन्द घन / रसिक गोविन्द / समय प्रबन्ध / युगल रस माधुरी } निम्बार्क माधुरी तथा पोद्दार, अभिनन्दन ग्रन्थ

कृष्णदास— १८५३— " माधुर्यलहरी—(सं० केशव देव) दानलीला[1]—हस्तलिखित

नारायण स्वामी—१८८५ १९९७— स्वतन्त्र व्रजविहार

---

[1] नागरी प्रचारिणी सभा—पाण्डुलिपि संग्रह

परिशिष्ट–२

सहायक ग्रंथ-सूची

संस्कृत—
ऋग्वेद
शतपथ ब्राह्मण
ऐतरेय ब्राह्मण
तैत्तिरीय आरण्यक
छान्दोग्य उपनिषद्
महाभारत गीता
हरिवंश पुराण
विष्णु पुराण
भागवत पुराण
पद्म पुराण
ब्रह्मवैवर्त पुराण
देवी भागवत
पुराण-संहिता
दश श्लोकी निम्बार्क
वेदान्त रत्न मंजूषा पुरुषोत्तमाचार्य
ब्रह्मसूत्र अणुभाष्य, वल्लभाचार्य
सुबोधिनी (भागवत की) टीका–
भक्ति रसामृत सिन्धु रूप गोस्वामी
उज्ज्वल नील मणि ,,
लघु भागवतामृत ,,
षट् सन्दर्भ-जीव गोस्वामी
नाट्य शास्त्र आचार्य भरत
महाकवि सूरदास–आचार्य रा० च० शुक्ल
हिन्दी साहित्य का इतिहास– ,,
तुलसी ग्रन्थावली– ,,
भागवत सम्प्रदाय–प० बलदेव उपाध्याय
भारतीय वाङ्मय मे श्री राधा ,,
पुराण विमर्श ,
संस्कृत साहित्य का इतिहास ,,
गाथा सप्तशती-हाल सातवाहन
काव्यालंकार वामन
ध्वन्यालोक आनन्दवर्द्धन
काव्यानुशासन हेमचन्द्र
कवीन्द्र वचन समुच्चय
सदुक्ति कर्णामृत-श्रीधर दास
पद्यावली रूपगोस्वामी
कृष्ण कर्णामृत बिल्वमंगल ठाकुर
गीतगोविन्द जयदेव
राधा सुधानिधि हितहरिवंश
नारद भक्ति सूत्र

अपभ्रंश—
उत्तर पुराण पुष्पदन्त
प्राकृत पगलम्
कीर्तिपताका विद्यापति

हिन्दी—
सूर साहित्य आचार्य ह० प्र० द्विवेदी
मध्यकालीन धर्म साधना– ,,
हिन्दी साहित्य की भूमिका ,,
हिन्दी साहित्य का आदिकाल ,,
हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास ,,

सूरदास—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा
सूर मीमांसा ,,
हिंदी साहित्य कोश ,, (सह सम्पादक)
भारतीय साधना और सूर साहित्य—डॉ० मुंशीराम शर्मा
सूर-सौरभ— ,,
चैतन्य मत और ब्रज साहित्य—श्री प्रभुदयाल मीतल
ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद— ,,
सूर निर्णय , (सह-लेखक)
महाकवि सूरदास —पं० नन्ददुलारे वाजपेयी
सूर सागर—(सभा संस्करण) ,,
मीरा की प्रेम-साधना—डा० भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'
राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना ,,
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त
सूर और उनका साहित्य—डॉ० हरिवंश लाल शर्मा
भागवत-दर्शन— ,,
श्री राधा का क्रम विकास—डॉ० शशिभूषण दास गुप्ता
हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
बिहारी—पं० विश्वनाथ प्र० मिश्र
घनानन्द-ग्रंथावली— ,,
हिंदी साहित्य का अतीत—
हिंदी साहित्य में कृष्ण—डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ
ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास—श्री प्रभुदयाल मीतल
रीति काव्य की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र
देव और उनकी कविता ,,
रस सिद्धान्त— ,,
भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा ,,
राधावल्लभ-सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
हिंदी भक्ति रसामृत सिंधु—सं० ,
गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० जगदीश गुप्त
रीति-काव्य संग्रह— ,,
सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—डॉ० शिव प्र० सिंह
विद्यापति— ,
मध्यदेश—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
अष्टछाप— ,,
मराठी हिंदी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० र० श० केलकर

हिन्दी और कन्नड में भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ॰ हिरण्मय
हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति काव्य–डॉ॰ के॰ भास्करन नायर
हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव–डॉ॰ शशि अग्रवाल
आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण-काव्य–डॉ॰ मलिक मुहम्मद
हिन्दी को मराठी सन्तों की देन–प॰ विजयमोहन शर्मा
मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद–डॉ॰ कपिलदेव पाण्डेय
हिन्दी भक्ति शृङ्गार का स्वरूप–डॉ॰ मिथिलेश कान्ति
राम और रासान्वयी काव्य–डॉ॰ दशरथ ओझा
हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका–डॉ॰ रामनरेश वर्मा
रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण–डॉ॰ आनन्दप्रकाश दीक्षित
सूर का शृङ्गार वर्णन–डॉ॰ रमाशंकर तिवारी
मध्यकालीन प्रेम साधना–परशुराम चतुर्वेदी
हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह ,,
वैष्णवधर्म–परशुराम चतुर्वेदी
हिन्दुत्व–रामदास गौड
हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना–डॉ॰ श्यामनारायण पाण्डेय
कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत–डॉ॰ उषा गुप्त
कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत–डॉ॰ श्यामसुन्दर लाल दीक्षित
१६वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि–डॉ॰ रत्नकुमारी
मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ–डॉ॰ सावित्री सिन्हा
ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प–,,
हिन्दी काव्य में प्रेम और सौन्दर्य–डॉ॰ रामेश्वर लाल खण्डेलवाल
रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना–डॉ॰ बच्चन सिंह
रीतिकालीन कविता और शृङ्गार रस का विवेचन–डॉ॰ राजेश्वर प्र॰ चतुर्वेदी
घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा–डॉ॰ मनोहर लाल गौड
संस्कृति के चार अध्याय–डॉ॰ रामधारी सिंह "दिनकर"
पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण– ,,
कृष्ण-काव्य की परम्परा–प्रो॰ सत्यनारायण पाण्डेय
हिन्दी साहित्य पर वैष्णव प्रभाव–प॰ कृष्ण बिहारी मिश्र
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि–डा॰ सरयू प्र॰ अग्रवाल
हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम-काव्य–श्री गुरुदेव प्र॰ वर्मा॰
संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ–स॰ नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ–श्री टी॰ पी॰ सिंह
हिन्दी काव्य में शृङ्गार-परम्परा और महाकवि बिहारी–डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्त
रासपंचाध्यायी तथा भ्रमर गीत–डॉ॰ सुधीन्द्र
कृष्ण-काव्य की रूप रेखा–वेदमित्र व्रती

कृष्ण चरित्र—बंकिमचन्द्र
गीता रहस्य—लोकमान्य तिलक
वैदिक देव शास्त्र—डॉ० सूर्यकान्त
ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र
श्री राधा माधव चिन्तन—श्री हनुमान प्र० पोद्दार
विद्यापति पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी
,, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
महाकवि विद्यापति ठाकुर—श्री शिवनन्दन ठाकुर
विद्यापति ठाकुर—डॉ० उमेश मिश्र
मीराँबाई की पदावली—पं० परशुराम चतुर्वेदी
मीराँ-स्मृति-ग्रन्थ—बंगीय साहित्य परिषद्
मीराँबाई—डॉ० श्री कृष्ण लाल
मीराँ एक अध्ययन—पद्मावती शबनम
भक्तमाल—नाभा दास
चौरासी वैष्णवन की वार्ता
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—
ब्रज माधुरी सार—श्री वियोगी हरि
निम्बार्क माधुरी—बिहारी शरण, मथुरा
पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा
राग कल्पद्रुम—श्री कृष्णानन्द व्यास
राग रत्नाकर—श्री भक्त राम
रसखान और घनानन्द—बाबू अमीर सिंह
रसखानि—पं० विश्वनाथ प्र० मिश्र
घनानन्द और आनन्दघन ,,
परमानन्द सागर—सं० डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल
नन्ददास ग्रन्थावली—ना० प्र० सभा काशी
स्वामी हरिदास—सं० नलिनविलोचन शर्मा
श्री हित चतुरासी
केलि विलास स्वामी जी की—सं० आनन्द प्र० दीक्षित
भारतेन्दु ग्रन्थावली—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत-परम्परा—डॉ० सरला शुक्ल
हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा—डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव
सुजान-[illegible]
प्रिय प्रवास—हरिऔध
द्वापर—मैथिलीशरण गुप्त

कृष्णायन—प० द्वारिका प्र० मिश्र
राधा कृष्ण—राजेश्वर प्र० नारायण सिंह
कनुप्रिया—डॉ० धर्मवीर भारती
अन्धायुग— ,,

तमिल—

दिव्य प्रबन्धम्—स० अरणगराचार्य, काचीपुरम् (मद्रास)
शिलप्पदिकारम् इलगो दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया—१६६३-६४ (अंग्रेजी संस्करण)

पाण्डुलिपि—

बाल चरित्र—श्री चतन्य पुस्तकालय, पटना सिटी
श्री कृष्ण लीला— ,,
राधा कृष्णाष्टक— ,,
कृष्ण रत्नावली—रामकिशोर गोस्वामी— ,,
नखशिख वर्णन—प्रियादास— ,,
स्वरूप-वर्णन—कृष्णदास कविराज ,,
कृष्ण लीला श्याम लाल गोस्वामी— ,,
राधारमण पदमजरी गुण मजरी दास— ,,
कृष्ण चरित्र गोपालदास स्वर्णकार नागरी प्रचारिणी सभा-संग्रह
कृष्ण चरित्र (अपूर्ण) घिस्यावन दास— ,,
भागवत या श्रीकृष्ण गुण कर्मस्त—देवकवि ,,
कृष्ण लीला—प्रेमदास ,,
हरि चरित्र (भाषा भागवत) लालचदास— ,,
कृष्णायन शिवदास— ,,
रामचन्द्र चरित कृष्ण चरित्र हरि विलास— ,,
कृष्ण विलास— ,,
कृष्णचन्द्र जू को नखशिख ग्वाल कवि—ना० प्र० स० संग्रह
गोपीकृष्ण चरित्र—सन्त दास— ,,
दामोदर लीला—उदय राम— ,,
कृष्ण चरित्र भगवान पुस्तकालय, भागलपुर।

पत्र पत्रिकाएँ—

कल्याण—श्री कृष्णांक, भागवतांक, ब्रह्मवैवर्त पुराणांक, श्रीकृष्णवचनामृतांक आदि
भारती—कृष्ण लीला—विशेषांक आदि
हिन्दुस्तानी—जनवरी—१९३७ आदि
हिन्दी अनुशीलन—धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक आदि
आलोचना स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—विशेषांक आदि
विश्वभारती पत्रिका—नवम्बर—१९४४ आदि

कृष्ण चरित्र—बंकिमचन्द्र
गीता रहस्य—लोकमान्य तिलक
वैदिक देव शास्त्र—डॉ० सूर्यकान्त
ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र
श्री राधा माधव चिन्तन—श्री हनुमान प्र० पोद्दार
विद्यापति पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी
„ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
महाकवि विद्यापति ठाकुर—श्री शिवनन्दन ठाकुर
विद्यापति ठाकुर—डॉ० उमेश मिश्र
मीराबाई की पदावली—पं० परशुराम चतुर्वेदी
मीरा-स्मृति-ग्रंथ—बंगीय साहित्य परिषद्
मीराबाई—डॉ० श्री कृष्ण लाल
मीरां एक अध्ययन—पद्मावती शबनम
भक्तमाल—नाभा दास
चौरासी वैष्णवन की वार्ता
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—
ब्रज माधुरी सार—श्री वियोगी हरि
निम्बार्क माधुरी—बिहारी शरण, मथुरा
पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ—ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा
राग कल्पद्रुम—श्री कृष्णानन्द व्यास

कृष्णायन–पं० द्वारिका प्र० मिश्र
राधा कृष्ण–राजेश्वर प्र० नारायण सिंह
कनुप्रिया–डॉ० धर्मवीर भारती
अन्धायुग– ,,

तमिल–

दिव्य प्रबन्धम्–स० अरणगराचार्य, काचीपुरम (मद्रास)
शिलप्पदिकारम् इलगो-दी इलस्ट्रेटेड वीक्ली ऑफ इण्डिया–१९६३–६४
(अंग्रेजी सस्करण)

पाण्डुलिपि–

बाल-चरित्र–श्री चतन्य पुस्तकालय, पटना सिटी
श्री कृष्ण लीला– ,,
राधा कृष्णाष्टक– ,,
कृष्ण रत्नावली–रामकिशोर गोस्वामी– ,,
नखशिख वर्णन–प्रियादास– ,,
स्वरूप-वर्णन–कृष्णदास कविराज ,,
कृष्ण लीला श्याम लाल गोस्वामी– ,,
राधारमण पदमजरी-गुण मजरी दास– ,,
कृष्ण चरित्र गोपालदास स्वर्णकार नागरी प्रचारिणी सभा–सग्रह
कृष्ण चरित्र (अपूर्ण) धिरयावन दास– ,,
भागवत या श्रीकृष्ण गुण कमस्त–देवकवि ,,
कृष्ण लीला–प्रेमदास ,,
हरि चरित्र (भाषा भागवत) लालचदास– ,,
कृष्णायन शिवदास– ,,
रामचन्द्र चरित कृष्ण चरित्र हरि विलास– ,,
कृष्ण विलास– ,,
कृष्णचन्द्र जू को नखशिख-ग्वाल कवि–ना० प्र० स० सग्रह
गोपीकृष्ण चरित्र–सन्त दास– ,,
दामोदर लीला–उदय राम– ,,
कृष्ण चरित्र भगवान पुस्तकालय, भागलपुर।

पत्र पत्रिकाएँ—

कल्याण—श्री कृष्णांक, भागवतांक, ब्रह्मवैवर्त पुराणांक, श्रीकृष्णवचनामृतांक आदि
भारती–कृष्ण लीला–विशेषांक आदि
हिन्दुस्तानी–जनवरी–१९३७ आदि
हिन्दी अनुशीलन–धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक आदि
आलोचना स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य–विशेषांक आदि
विश्वभारती पत्रिका–अक्टूबर–१९४४ आदि

नागरी प्रचारिणी पत्रिका–वर्ष–१८, अंक–१, वर्ष–७०, अंक–१ आदि
सरस्वती–दिसम्बर–५६, जुलाई–६५ आदि
अवन्तिका–काव्यालोचनांक–जनवरी १९५४ मई १९५४ आदि
साहित्यकार–जुलाई १९५५
साहित्य–जुलाई १९५२
माध्यम–फरवरी १९६६
ब्रज भारती–ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा
तुलसीदल–तुलसी-स्मृति विशेषांक, सितम्बर–१९६२
जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी–१९१७
धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि ।

English

The loves of Krishna–W G Archer
Who is Krishna–Prof Kshetra Lall Saha
The Krishna Problem–S N Tada Patrikar
Vaishnavism, Shaivism and other Minor Religions Sects—
Dr R G Bhandarkar
Early History of the Vaishnava Sects Prof–Roy Choudhary
Early History of Vaishnavism in South India–Dr K S Aayangar
A History of Sanakrit Literature–Prof A B Keith
A History of Indian Literature–Winternitz
A History of Braj Buli Literature–Dr S Sen
A History of Maithili Literature–Dr J K Mishra
Maithili Christomathy–Dr Grierson
The songs of Vidyapati–Dr Subhadra Jaha
Krishna–Dr Bhagwan Das
The Bhakti cult in Ancient India–Dr B K Goswami
The Philosphy of Vaishnava Religion–Prof D N Mallik
Treatment of love in Sanskrit Literature–Dr S K De
Encyclopaedia of Religion & Ethics–Vol–7
The cultural Heritage of India Series (Vol 3 & 4)
Idea of God–Dr Vardachari
Shree Chaitanya Charitamrit–Edited by Nihar Ranjan Benerjee
The Life of shree Gawrang–D N Ganguli
Obscurse Religious Sects of Bengal–Dr S B Gupta